ॐ अर्हं

जिनागम-ग्रन्थमाला . ग्रन्थाङ्क १८

[परमश्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्रीजोरावरमलजी महाराज की पुण्य-स्मृति मे आयोजित]

पचम गणधर भगवत्सुधर्मस्वामि-प्रणीत · पञ्चम अग

व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र

[भगवतीसूत्र—द्वितीयखण्ड, शतक ६-१०]

[मूलपाठ, हिन्दी अनुवाद, विवेचन, टिप्पणयुक्त]

प्रेरणा
उपप्रवर्त्तक शासनसेवी स्व० स्वामी श्री व्रजलालजी महाराज

सयोजक तथा प्रधान सम्पादक
युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी महाराज 'मधुकर'

अनुवादक—विवेचक—सम्पादक
श्री अमर मुनि
[भण्डारी श्री पदमचन्दजी महाराज के सुशिष्य]
श्रीचन्द सुराणा 'सरस'

प्रकाशक
श्री आगम प्रकाशन-समिति, ब्यावर (राजस्थान)

[श्री व स्थानकवासी जैन श्रमणसघ के प्रथमाचार्य
श्री आत्मारामजी महाराज की जन्मशताब्दी के अवसर पर विशेप उपहार]

☐ सम्पादकमण्डल
अनुयोगप्रवर्त्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री
श्री रतनमुनि
पण्डित श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल

☐ प्रबन्धसम्पादक
श्रीचन्द सुराणा 'सरस'

☐ अर्थसौजन्य
श्रीमान् सेठ अनराजी सा, चोरडिया

☐ सम्प्रेरक
मुनि श्री विनयकुमार 'भीम'
श्री महेन्द्रमुनि 'दिनकर'

☐ प्रकाशनतिथि
वीरनिर्वाण संवत् २५०९
वि स २०४०
ई सन् १९८३

☐ प्रकाशक
श्री आगमप्रकाशन समिति
जैनस्थानक, पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)
ब्यावर—३०५९०१

☐ मुद्रक
सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यन्त्रालय,
केसरगज, अजमेर—३०५००१

☐ मूल्य ४५) रुपये

Published at the Holy Remembrance occasion

of

Rev. Guru Sri Joravarmalji Maharaj

Com-iled by Fifth Ganadhara Sudharma Swami

FIFTH ANGA

[Bhagawati Sutra II Part, Shatak 6-10]

[Original Text, Variant Readings, Hindi Version, Notes etc]

Inspiring-Soul

Up-pravartaka Shasansevi Rev. Late Swami Sri Brijlalji Maharaj

Convener & Chief Editor

Yuvacharya Sri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

Translator & Annotator

Shri Amar Muni

Sri Chand Surana 'Saras'

Publishers

Sri Agam Prakashan Samiti

Beawar (Raj)

Jinagam Granthmala Publication No 18

[An auspicious at the Holy occasion of Birth Centuary of Rev Acharya Sri Atmaramji Maharaj, the first Acharya of V S Jain Shramana Sangh]

☐ **Board of Editors**

Anuyoga-pravartaka Muni Shri Kanhaiyalal 'Kamal'
Sri Devendra Muni Shastri
Sri Ratan Muni
Pt Shobhachandra Bharilla

☐ **Managing Editor**

Srichand Surana 'Saras'

☐ **Promotor**

Munisri Vinayakumar 'Bhima
Sri Mahendramuni 'Dinakar'

☐ **Financial Assistance**

Shri Seth Anarajji Chauradiya

☐ **Date of Publication**

Vir nirvana Samvat 2509
Vikram Samvat 2040, Sept 1983

☐ **Publihers**

Sri Agam Prakashan Samiti,
Jain Sthanak, Pipaliya Bazar, Beawar (Raj.)
Pin 305901

☐ **Printer**

Satish Chandra Shukla
Vedic Yantralaya
Kesarganj, Ajmer

☐ **Price : Rs 45/-**

समर्पण

जिन पूर्वज महापुरुषो के असीम
उपकार के लोकोत्तर ऋण से समग्र स्थानक-
वासी जैन समाज सदैव ऋणी रहेगा,
जिनकी उग्र तपश्चर्या और ज्ञान-
गरिमा से जन-जन भलीभाँति परिचित है,
जिनशासन की महिमा-वृद्धि के लिए
जिन्होने अनेकानेक उपसर्ग सहन किए,
जिनकी प्रशस्य शिष्य-परम्परा आज भी
शासन की शोभा को वृद्धिगत कर रही है,
उन इतिहास-पुरुष परमम्हनीय महर्षि,
आचार्यवर्य

श्री जीवराजजी महाराज

की पावन स्मृति मे
सादर सविनय सभक्ति समर्पित।

—मधुकर मुनि

प्रकाशकीय

श्रमण भगवान् महावीर के पचम गणधर श्री सुधर्मास्वामी द्वारा ग्रथित यह व्याख्याप्रज्ञप्ति आगम द्वादशागी मे पचम स्थान पर है। यह आगम न केवल अन्य सभी अगो की अपेक्षा विशालकाय है, अपितु विविध-विषयक भी है। इसका प्रकाशन अनेक खण्डो मे ही हो सकता है। उनमे से प्रथम खण्ड, जिसमे प्रथम पाच शतको का समावेश हुआ है, पूर्व मे ग्रन्थाङ्क १४ के रूप मे प्रकाशित किया जा चुका है। तत्पश्चात् राजप्रश्नीय (ग्रन्थाक १५), प्रज्ञापनासूत्र प्र खण्ड (ग्रन्थाक १६) और प्रश्नव्याकरणसूत्र (ग्रन्थाक १७) प्रकाशित किए जा चुके हैं। व्याख्याप्रज्ञप्ति का प्रस्तुत द्वितीय खण्ड १८ वे ग्रन्थाक के रूप मे आगमप्रेमी, श्रुतसमाराधक पाठको के कर-कमलो मे पहुँच रहा है, यह निवेदन करते हमे परम हर्ष और सन्तोष का अनुभव हो रहा है।

प्रथम खण्ड की भाँति द्वितीय खण्ड का सम्पादन एव अनुवाद भण्डारी मुनि श्री पदमचन्दजी महाराज के सुशिष्य पण्डितप्रवर श्री अमरमुनिजी म तथा श्रीयुत श्रीचन्दजी सुराणा 'सरस' ने किया है। सशोधन-कार्य विद्वद्वर्य विश्रुत श्रुतधर श्रमणसघ के युवाचार्य पू श्री मधुकर मुनिजी म एव प श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल ने किया है।

प्रस्तुत द्वितीय खण्ड मे छठे से दसवें शतक तक का समावेश हुआ है। आगे का सम्पादन-अनुवाद-कार्य चालू है और आशा है यथासम्भव शीघ्र हम अगले खण्ड पाठको के समक्ष प्रस्तुत कर सकेंगे।

प्रज्ञापनासूत्र के द्वितीय खण्ड का मुद्रण चालू है और उत्तराध्ययनसूत्र शीघ्र प्रेस मे दिया जाने वाला है। अन्य आगमो पर भी कार्य हो रहा है।

प्रस्तुत प्रकाशन-कार्य मे जिन-जिन महानुभावो का बौद्धिक एव आर्थिक सहयोग हमे प्राप्त हो रहा है, उन सभी के प्रति हम अतीव आभारी हैं। युवाचार्यश्रीजी तो इस प्रकाशन के प्राणस्वरूप ही है। पू श्री अमर मुनिजी म के प्रति, समस्त अर्थसहायको के प्रति और विशेषत सेठ श्री अनराजजी सा चोरडिया के प्रति, जिनके विशेष आर्थिक सहयोग से प्रस्तुत आगम मुद्रित हो रहा है, अतीव आभारी है। श्रीमान् चोरडियाजी सा का परिचय पृथक् रूप मे दिया जा रहा है।

श्रुतज्ञान के अधिकाधिक प्रचार-प्रसार की दृष्टि से ग्रन्थो का मूल्य बहुत कम रक्खा जा रहा है और अग्रिम ग्राहको को १०००) रु तथा सस्थाओ को केवल ७००) रु मे सम्पूर्ण बत्तीसी दी जा रही है। वास्तव मे नाम मात्र का यह मूल्य है—लागत से भी बहुत कम। फिर भी अग्रिम ग्राहको की सख्या सन्तोषजनक नही है। यह स्थिति आगम-ज्ञान के प्रति समाज के अनुराग एव लगन की कमी की द्योतक है। हम समस्त अर्थसहयोगी तथा अग्रिम ग्राहक महानुभावो से साग्रह निवेदन करना चाहेगे कि वे प्रत्येक कम से कम पाच अग्रिम ग्राहक बना कर ज्ञान-प्रचार के इस पवित्र अनुष्ठान मे सहभागी बन कर हमारा उत्साह बढाएँ और पुण्य के भागी बनें।

रतनचन्द मोदी	जतनराज मेहता	चाँदमल विनायकिया
कार्यवाहक अध्यक्ष	प्रधानमन्त्री	मन्त्री

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)

प्रस्तुत आगम के विशिष्ट अर्थसहयोगी

श्री सेठ अनराजजी चोरड़िया

[सक्षिप्त जीवन-रेखा]

आगमप्रकाशन के इस परम पावन प्रयास मे नोखा (चाँदावतो) के वृहत् चोरडिया-परिवार के विशिष्ट योगदान के विषय मे पूर्व मे भी लिखा जा चुका है। वास्तव मे यह योगदान इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसकी जितनी प्रशस्ति की जाए, थोडी ही है। श्री व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र, जो अगभूत आगमो मे परिगणित है, श्री अनराजजी सा चोरडिया के विशेष अर्थ-साहाय्य से प्रकाशित हो रहा है।

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका हे, श्री चोरडिया जी का जन्म वि स १९८१ मे नोखा मे हुआ। आप श्रीमान् जोरावरमलजी सा के सुपुत्र है। आपके जन्म से आपकी माता श्रीमती फूलकु'वर बाई ने धन्यता का अनुभव किया। श्रीमान् हरकचन्दजी, दुलीचन्दजी और हुक्मीचन्दजी आपके भ्राता है। आप जैसे आर्थिक समृद्धि से सम्पन्न हैं, उसी प्रकार पारिवारिक समृद्धि के भी धनी है। आपके प्रथम सुपुत्र श्री पृथ्वीराज के राजेन्द्रकुमार और दिनेशकुमार नामक दो पुत्र हैं और द्वितीय पुत्र श्री सुमेरचन्दजी के भी सुरेन्द्रकुमार तथा नरेन्द्रकुमार नाम के दो पुत्र है। आपकी दो सुपुत्रियाँ है—श्रीमती गुलाबकु वर बाई एव श्रीमती प्रेमलता बाई। दोनो विवाहित हैं। इस प्रकार सेठ अनराजजी सा पारिवारिक दृष्टि से सम्पन्न और सुखी सद्गृहस्थ हैं।

चोरडियाजी ने १५ वर्ष की लघुवय मे ही व्यावसायिक क्षेत्र मे प्रवेश किया और अपनी प्रतिभा तथा अध्यवसाय से उसमे प्रशसनीय सफलता अर्जित की। आज आप मद्रास मे जे अनराज चोरडिया फाइनेंसियर के नाम से विख्यात पेढी के अधिपति है।

आर्थिक समृद्धि की वृद्धि के साथ-साथ सामाजिक एव धार्मिक कार्यो मे भी आपकी गहरी अभिरुचि है। यही कारण है कि अनेक शैक्षणिक, सामाजिक और धार्मिक सस्थाओ के साथ आप जुडे हुए है और उनके सुचारु सचालन मे अपना योग दे रहे हैं। निम्नलिखित सस्थाओ के साथ आपका सम्बन्ध है—

जैनभवन, मद्रास	भूतपूर्व मत्री
एस. एस. जैन एजुकेशनल सोसाइटी, मद्रास,	सदस्य कार्यकारिणी
स्वामीजी श्री हजारीमलजी म. जैन ट्रस्ट, नोखा	ट्रस्टी
भगवान् महावीर अहिंसा प्रचार सघ	सरक्षक
श्री राजस्थानी श्वे. स्था. जैन सेवासघ	सरक्षक
श्री श्वे. स्था. जैन महिला विद्यासघ	भू पू अध्यक्ष, मन्त्री एव कोपाध्यक्ष
श्री आनन्द फाउडेशन	सदस्य

हार्दिक कामना है कि श्री चोरडियाजी चिरजीवी हो और समाज, साहित्य एव धर्म के अभ्युदय मे अपना योग प्रदान करते रहे।

मन्त्री

श्री आगम-प्रकाशन समिति,,ब्यावर

आदि-वचन

विश्व के जिन दार्शनिको—दृष्टाओ/चिन्तको ने "आत्मसत्ता" पर चिन्तन किया है, या आत्म-साक्षात्कार किया है उन्होने पर-हितार्थ आत्म-विकास के साधनो तथा पद्धतियो पर भी पर्याप्त चिन्तन-मनन किया है। आत्मा तथा तत्सम्बन्धित उनका चिन्तन-प्रवचन आज आगम/पिटक/वेद/उपनिषद् आदि विभिन्न नामो से विश्रुत है।

जैन दर्शन की यह धारणा है कि आत्मा के विकारो—राग द्वेष आदि को, साधना के द्वारा दूर किया जा सकता है, और विकार जब पूर्णत निरस्त हो जाते है तो आत्मा की शक्तियाँ ज्ञान/सुख/वीर्य आदि सम्पूर्ण रूप मे उद्घाटित, उद्भासित हो जाती है। शक्तियो का सम्पूर्ण प्रकाश-विकास ही सर्वज्ञता है और सर्वज्ञ/आप्त-पुरुष की वाणी, वचन/कथन/प्ररूपणा—"आगम" के नाम से अभिहित होती है। आगम अर्थात् तत्त्वज्ञान, आत्म-ज्ञान तथा आचार-व्यवहार का सम्यक् परिबोध देने वाला शास्त्र/सूत्र/आप्तवचन।

सामान्यत सर्वज्ञ के वचनो/वाणी का सकलन नही किया जाता, वह बिखरे सुमनो की तरह होती है, किन्तु विशिष्ट अतिशयसम्पन्न सर्वज्ञ पुरुष, जो धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करते है, सघीय जीवन-पद्धति मे धर्म-साधना को स्थापित करते हैं, वे धर्मप्रवर्तक/अरिहत या तीर्थंकर कहलाते है। तीर्थंकर देव की जनकल्याणकारिणी वाणी को उन्ही के अतिशयसम्पन्न विद्वान् शिष्य गणधर सकलित कर "आगम" या शास्त्र का रूप देते है अर्थात् जिन-वचन-रूप सुमनो की मुक्त वृष्टि जब मालारूप मे ग्रथित होती है तो वह "आगम" का रूप धारण करती है। वही आगम अर्थात् जिन-प्रवचन आज हम सब के लिए आत्म-विद्या या मोक्ष-विद्या का मूल स्रोत है।

"आगम" को प्राचीनतम भाषा मे "गणिपिटक" कहा जाता था। अरिहतो के प्रवचनरूप समग्र शास्त्र-द्वादशाग मे समाहित होते हैं और द्वादशाग/आचाराग-सूत्रकृताग आदि के अग-उपाग आदि अनेक भेदोपभेद विकसित हुए है। इस द्वादशागी का अध्ययन प्रत्येक मुमुक्षु के लिए आवश्यक और उपादेय माना गया है। द्वादशागी मे भी बारहवाँ अग विशाल एव समग्र श्रुतज्ञान का भण्डार माना गया है, उसका अध्ययन बहुत ही विशिष्ट प्रतिभा एव श्रुतसम्पन्न साधक कर पाते थे। इसलिए सामान्यत एकादशाग का अध्ययन साधको के लिए विहित हुआ तथा इसी ओर सबकी गति/मति रही।

जब लिखने की परम्परा नही थी, लिखने के साधनो का विकास भी अल्पतम था, तब आगमो/शास्त्रो/को स्मृति के आधार पर या गुरु-परम्परा से कठस्थ करके सुरक्षित रखा जाता था। सम्भवत इसलिए आगम ज्ञान को श्रुतज्ञान कहा गया और इसीलिए श्रुति/स्मृति जैसे सार्थक शब्दो का व्यवहार किया गया। भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के एक हजार वर्ष बाद तक आगमो का ज्ञान स्मृति/श्रुति परम्परा पर ही आधारित रहा। पश्चात् स्मृतिदौर्बल्य, गुरुपरम्परा का विच्छेद, दुष्काल-प्रभाव आदि अनेक कारणो से धीरे-धीरे आगमज्ञान लुप्त होता चला गया। महासरोवर का जल सूखता-सूखता गोष्पद-मात्र रह गया। मुमुक्षु श्रमणो के लिए यह जहाँ चिन्ता का विषय था, वहाँ चिन्तन की तत्परता एव जागरूकता को चुनौती भी थी। वे तत्पर हुए श्रुतज्ञान-निधि के सरक्षण हेतु। तभी महान् श्रुतपारगामी देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने विद्वान् श्रमणो का एक सम्मेलन बुलाया और स्मृति-दोष से लुप्त होते आगमज्ञान को सुरक्षित एव सजोकर रखने का आह्वान किया। सर्व-सम्मति से आगमो को लिपि-बद्ध

गुरुदेव श्री जोरावरमल जी महाराज का संकल्प

मैं जब प्रात स्मरणीय गुरुदेव स्वामीजी श्री जोरावरमलजी म० के सान्निध्य मे आगमो का अध्ययन-अनुशीलन करता था तब आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित आचार्य अभयदेव व शीलाक की टीकाओ से युक्त कुछ आगम उपलब्ध थे। उन्ही के आधार पर मैं अध्ययन-वाचन करता था। गुरुदेवश्री ने कई बार अनुभव किया—यद्यपि यह सस्करण काफी श्रमसाध्य व उपयोगी है, अब तक उपलब्ध सस्करणो मे प्राय शुद्ध भी हैं, फिर भी अनेक स्थल अस्पष्ट हैं, मूलपाठो मे व वृत्ति मे कही-कही अशुद्धता व अन्तर भी है। सामान्य जन के लिये दुरूह तो है ही। चू कि गुरुदेवश्री स्वय आगमो के प्रकाण्ड पण्डित थे, उन्हे आगमो के अनेक गूढार्थ गुरु-गम से प्राप्त थे। उनकी मेधा भी व्युत्पन्न व तर्क-प्रवण थी, अत वे इस कमी को अनुभव करते थे और चाहते थे कि आगमो का शुद्ध, सर्वोपयोगी ऐसा प्रकाशन हो, जिससे सामान्य ज्ञान वाले श्रमण-श्रमणी एव जिज्ञासु जन लाभ उठा सके। उनके मन की यह तडप कई बार व्यक्त होती थी। पर कुछ परिस्थितियो के कारण उनका यह स्वप्न-सकल्प साकार नही हो सका, फिर भी मेरे मन मे प्रेरणा बन कर अवश्य रह गया।

इसी अन्तराल मे आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज, श्रमणसघ के प्रथम आचार्य जैनधर्मदिवाकर आचार्य श्री आत्माराम जी म०, विद्वद्रत्न श्री घासीलाल जी म० आदि मनीषी मुनिवरो ने आगमो की हिन्दी, सस्कृत, गुजराती आदि भाषाओ मे सुन्दर विस्तृत टीकाये लिखकर या अपने तत्त्वावधान मे लिखवा कर कमी को पूरा करने का महनीय प्रयत्न किया है।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आम्नाय के विद्वान् श्रमण परमश्रुतसेवी स्व० मुनि श्री पुण्यविजयजी ने आगम-सम्पादन की दिशा मे बहुत व्यवस्थित व उच्चकोटि का कार्य प्रारम्भ किया था। विद्वानो ने उसे बहुत ही सराहा। किन्तु उनके स्वर्गवास के पश्चात् उस मे व्यवधान उत्पन्न हो गया। तदपि आगमज्ञ मुनि श्री जम्बूविजयजी आदि के तत्त्वावधान मे आगम-सम्पादन का सुन्दर व उच्चकोटि का कार्य आज भी चल रहा है।

वर्तमान मे तेरापथ सम्प्रदाय मे आचार्य श्री तुलसी एव युवाचार्य महाप्रज्ञजी के नेतृत्व मे आगम-सम्पादन का कार्य चल रहा है और जो आगम प्रकाशित हुए है उन्हे देखकर विद्वानो को प्रसन्नता है। यद्यपि उनके पाठ-निर्णय मे काफी मतभेद की गु जाइश है, तथापि उनके श्रम का महत्त्व है। मुनि श्री कन्हैयालालजी म० "कमल" आगमो की वक्तव्यता को अनुयोगो मे वर्गीकृत करके प्रकाशित कराने की दिशा मे प्रयत्नशील है उनके द्वारा सम्पादित कुछ आगमो मे उनकी कार्यशैली की विशदता एव मौलिकता स्पष्ट होती है।

आगम-साहित्य के वयोवृद्ध विद्वान् प० श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, विश्रुत मनीषी श्री दलसुखभाई मालवणिया जैसे चिन्तनशील प्रज्ञापुरुष आगमो के आधुनिक सम्पादन की दिशा मे स्वय भी कार्य कर रहे हैं तथा अनेक विद्वानो का मार्ग-दर्शन कर रहे हैं। यह प्रसन्नता का विषय है।

इस सब कार्य-शैली पर विहगम अवलोकन करने के पश्चात् मेरे मन मे एक सकल्प उठा। आज प्राय सभी विद्वानो की कार्यशैली काफी भिन्नता लिये हुए है। कही आगमो का मूल पाठ मात्र प्रकाशित किया जा रहा है तो कही विशाल व्याख्याएँ की जा रही है। एक पाठक के लिए दुर्बोध है तो दूसरी जटिल। सामान्य पाठक को सरलतापूर्वक आगमज्ञान प्राप्त हो सके, एतदर्थ मध्यममार्ग का अनुसरण आवश्यक है। आगमो का ऐसा एक सस्करण होना चाहिए जो सरल हो, सुबोध हो, सक्षिप्त और प्रामाणिक हो। मेरे स्वर्गीय गुरुदेव ऐसा ही चाहते थे। इसी भावना को लक्ष्य मे रख कर मैंने ५-६ वर्ष पूर्व इस विषय की चर्चा प्रारम्भ की

किया गया। जिनवाणी को पुस्तकारूढ करने का यह ऐतिहासिक कार्य वस्तुत आज की समग्र ज्ञान-पिपासु प्रजा के लिए एक अवर्णनीय उपकार सिद्ध हुआ। सस्कृति, दर्शन, धर्म तथा आत्म-विज्ञान की प्राचीनतम ज्ञानधारा को प्रवहमान रखने का यह उपक्रम वीरनिर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष पश्चात् प्राचीन नगरी वलभी (सौराष्ट्र) मे आचार्य श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व मे सम्पन्न हुआ। वैसे जैन आगमो की यह दूसरी अन्तिम वाचना थी, पर लिपिबद्ध करने का प्रथम प्रयास था। आज प्राप्त जैन सूत्रो का अन्तिम स्वरूप-सस्कार इसी वाचना मे सम्पन्न किया गया था।

पुस्तकारूढ होने के बाद आगमो का स्वरूप मूल रूप मे तो सुरक्षित हो गया, किन्तु काल-दोष, श्रमण-सघो के आन्तरिक मतभेद, स्मृतिदुर्बलता, प्रमाद एव भारतभूमि पर बाहरी आक्रमणो के कारण विपुल ज्ञान-भण्डारो का विध्वस आदि अनेकानेक कारणो से आगम ज्ञान की विपुल सम्पत्ति, अर्थबोध की सम्यक् गुरु-परम्परा धीरे-धीरे क्षीण एव विलुप्त होने से नही रुकी। आगमो के अनेक महत्त्वपूर्ण पद, सन्दर्भ तथा उनके गूढार्थ का ज्ञान, छिन्न-विच्छिन्न होते चले गए। परिपक्व भाषाज्ञान के अभाव मे, जो आगम हाथ से लिखे जाते थे, वे भी शुद्ध पाठ वाले नही होते, उनका सम्यक् अर्थ-ज्ञान देने वाले भी विरले ही मिलते। इस प्रकार अनेक कारणो से आगम की पावन धारा सकुचित होती गयी।

विक्रमीय सोलहवी शताब्दी मे वीर लोकाशाह ने इस दिशा मे क्रान्तिकारी प्रयत्न किया। आगमो के शुद्ध और यथार्थ अर्थज्ञान को निरूपित करने का एक साहसिक उपक्रम पुन चालू हुआ। किन्तु कुछ काल बाद उसमे भी व्यवधान उपस्थित हो गये। साम्प्रदायिक-विद्वेष, सैद्धातिक विग्रह तथा लिपिकारो का अत्यल्प ज्ञान आगमो की उपलब्धि तथा उसके सम्यक् अर्थबोध मे बहुत बडा विघ्न बन गया। आगम-अभ्यासियो को शुद्ध प्रतिया मिलना भी दुर्लभ हो गया।

उन्नीसवी शताब्दी के प्रथम चरण मे जब आगम-मुद्रण की परम्परा चली तो सुधी पाठको को कुछ सुविधा प्राप्त हुई। धीरे-धीरे विद्वत्-प्रयासो से आगमो की प्राचीन चूर्णियाँ, निर्युक्तियाँ, टीकायें आदि प्रकाश मे आई और उनके आधार पर आगमो का स्पष्ट-सुगम भावबोध सरल भाषा मे प्रकाशित हुआ। इसमे आगम-स्वाध्यायी तथा ज्ञान-पिपासु जनो को सुविधा हुई। फलत आगमो के पठन-पाठन की प्रवृत्ति बढी है। मेरा अनुभव है, आज पहले से कही अधिक आगम-स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढी है। जनता मे आगमो के प्रति आकर्षण व रुचि जागृत हो रही है। इस रुचि-जागरण मे अनेक विदेशी आगमज्ञ विद्वानो तथा भारतीय जैनेतर विद्वानो की आगम-श्रुत-सेवा का भी प्रभाव व अनुदान है, इसे हम सगौरव स्वीकारते हैं।

आगम-सम्पादन-प्रकाशन का यह सिलसिला लगभग एक शताब्दी से व्यवस्थित चल रहा है। इस महनीय-श्रुत-सेवा मे अनेक समर्थ श्रमणो एव पुरुषार्थी विद्वानो का योगदान रहा है। उनकी सेवायें नीव की ईंट की तरह आज भले ही अदृश्य हो, पर विस्मरणीय तो कदापि नही। स्पष्ट व पर्याप्त उल्लेखो के अभाव मे हम अधिक विस्तृत रूप मे उनका उल्लेख करने मे असमर्थ है, पर विनीत व कृतज्ञ तो है ही। फिर भी स्थानकवासी जैन परम्परा के कुछ विशिष्ट-आगम श्रुत-सेवी मुनिवरो का नामोल्लेख अवश्य करना चाहेंगे।

आज से लगभग साठ वर्ष पूर्व पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराज ने जैन आगमो—३२ सूत्रो का प्राकृत मे खडी बोली मे अनुवाद किया था। उन्होने अकेले ही बत्तीस सूत्रो का अनुवाद कार्य सिर्फ ३ वर्ष व १५ दिन मे पूर्ण कर अद्भुत कार्य किया। उनकी दृढ लगनशीलता, साहस एव आगमज्ञान की गम्भीरता उनके कार्य से ही स्वत परिलक्षित होती है। वे ३२ ही आगम अल्प समय मे प्रकाशित भी हो गये।

इससे आगमपठन बहुत सुलभ व व्यापक हो गया और स्थानकवासी-तेरापथी समाज तो विशेप उपकृत हुआ।

गुरुदेव श्री जोरावरमल जी महाराज का संकल्प

मै जब प्रात स्मरणीय गुरुदेव स्वामीजी श्री जोरावरमलजी म० के सानिध्य मे आगमो का अध्ययन-अनुशीलन करता था तब आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित आचार्य अभयदेव व शीलाक की टीकाओ से युक्त कुछ आगम उपलब्ध थे। उन्ही के आधार पर मैं अध्ययन-वाचन करता था। गुरुदेवश्री ने कई बार अनुभव किया—यद्यपि यह सस्करण काफी श्रमसाध्य व उपयोगी है, अब तक उपलब्ध सस्करणो मे प्राय शुद्ध भी है, फिर भी अनेक स्थल अस्पष्ट हैं, मूलपाठो मे व वृत्ति मे कही-कही अशुद्धता व अन्तर भी है। सामान्य जन के लिये दुरुह तो है ही। चू कि गुरुदेवश्री स्वय आगमो के प्रकाण्ड पण्डित थे, उन्हे आगमो के अनेक गूढार्थ गुरु-गम से प्राप्त थे। उनकी मेधा भी व्युत्पन्न व तर्क-प्रवण थी, अत वे इस कमी को अनुभव करते थे और चाहते थे कि आगमो का शुद्ध, सर्वोपयोगी ऐसा प्रकाशन हो, जिससे सामान्य ज्ञान वाले श्रमण-श्रमणी एव जिज्ञासु जन लाभ उठा सकें। उनके मन की यह तडप कई बार व्यक्त होती थी। पर कुछ परिस्थितियो के कारण उनका यह स्वप्न-सकल्प साकार नही हो सका, फिर भी मेरे मन मे प्रेरणा बन कर अवश्य रह गया।

इसी अन्तराल मे आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज, श्रमणसघ के प्रथम आचार्य जैनधर्मदिवाकर आचार्य श्री आत्माराम जी म०, विद्वद्रत्न श्री घासीलाल जी म० आदि मनीषी मुनिवरो ने आगमो की हिन्दी, सस्कृत, गुजराती आदि भाषाओ मे सुन्दर विस्तृत टीकाये लिखकर या अपने तत्त्वावधान मे लिखवा कर कमी को पूरा करने का महनीय प्रयत्न किया है।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आम्नाय के विद्वान् श्रमण परमश्रुतसेवी स्व० मुनि श्री पुण्यविजयजी ने आगम-सम्पादन की दिशा मे बहुत व्यवस्थित व उच्चकोटि का कार्य प्रारम्भ किया था। विद्वानो ने उसे बहुत ही सराहा। किन्तु उनके स्वर्गवास के पश्चात् उस मे व्यवधान उत्पन्न हो गया। तदपि आगमज्ञ मुनि श्री जम्बूविजयजी आदि के तत्त्वावधान मे आगम-सम्पादन का सुन्दर व उच्चकोटि का कार्य आज भी चल रहा है।

वर्तमान मे तेरापथ सम्प्रदाय मे आचार्य श्री तुलसी एव युवाचार्य महाप्रज्ञजी के नेतृत्व मे आगम-सम्पादन का कार्य चल रहा है और जो आगम प्रकाशित हुए है उन्हे देखकर विद्वानो को प्रसन्नता है। यद्यपि उनके पाठ-निर्णय मे काफी मतभेद की गु जाइश है, तथापि उनके श्रम का महत्त्व है। मुनि श्री कन्हैयालालजी म० "कमल" आगमो की वक्तव्यता को अनुयोगो मे वर्गीकृत करके प्रकाशित कराने की दिशा मे प्रयत्नशील हैं उनके द्वारा सम्पादित कुछ आगमो मे उनकी कार्यशैली की विशदता एव मौलिकता स्पष्ट होती है।

आगम-साहित्य के वयोवृद्ध विद्वान् प० श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, विश्रुत मनीषी श्री दलसुखभाई मालवणिया जैसे चिन्तनशील प्रज्ञापुरुष आगमो के आधुनिक सम्पादन की दिशा मे स्वय भी कार्य कर रहे हैं तथा अनेक विद्वानो का मार्ग-दर्शन कर रहे हैं। यह प्रसन्नता का विषय है।

इस सब कार्य-शैली पर विहगम अवलोकन करने के पश्चात् मेरे मन मे एक सकल्प उठा। आज प्राय सभी विद्वानो की कार्यशैली काफी भिन्नता लिये हुए है। कही आगमो का मूल पाठ मात्र प्रकाशित किया जा रहा है तो कही विशाल व्याख्याएँ की जा रही है। एक पाठक के लिए दुर्बोध है तो दूसरी जटिल। सामान्य पाठक को सरलतापूर्वक आगमज्ञान प्राप्त हो सके, एतदर्थ मध्यममार्ग का अनुसरण आवश्यक है। आगमो का ऐसा एक सस्करण होना चाहिए जो सरल हो, सुबोध हो, सक्षिप्त और प्रामाणिक हो। मेरे स्वर्गीय गुरुदेव ऐसा ही चाहते थे। इसी भावना को लक्ष्य मे रख कर मैंने ५-६ वर्ष पूर्व इस विषय की चर्चा प्रारम्भ की

थी, सुदीर्घ चिन्तन के पश्चात् वि स २०३६ वैशाख शुक्ला दशमी, भगवान् महावीर कैवल्यदिवस को यह दृढ निश्चय घोषित कर दिया और आगमबत्तीसी का सम्पादन-विवेचन कार्य प्रारम्भ भी। इस साहसिक निर्णय मे स्व गुरुभ्राता शासनसेवी स्वामी श्री व्रजलाल जी म की प्रेरणा/प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन मेरा प्रमुख सम्बल बना है। साथ ही अनेक मुनिवगे तथा सद्गृहस्थो का भक्ति-भाव भरा सहयोग प्राप्त हुआ है, जिनका नामोल्लेख किये विना मन सन्तुष्ट नही होगा। आगम अनुयोग शैली के सम्पादक मुनि श्री कन्हैयालालजी म० "कमल", प्रसिद्ध साहित्यकार श्री देवेन्द्रमुनिजी म० शास्त्री, आचार्य श्री आत्मारामजी म० के प्रशिष्य भण्डारी श्री पदमचन्दजी म० एव प्रवचन-भूषण श्री अमरमुनिजी, विद्वद्रत्न श्री ज्ञानमुनिजी म०, स्व० विदुषी महासती श्री उज्ज्वलकु वरजी म० की सुशिष्याएँ महासती दिव्यप्रभाजी एम ए, पी-एच डी, महासती मुक्तिप्रभाजी तथा विदुषी महासती श्री उमरावकु वरजी म० 'अर्चना', विश्रुत विद्वान् श्री दलसुखभाई मालवणिया, सुख्यात विद्वान् प० श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, स्व प श्री हीरालालजी शास्त्री, डा० छगनलालजी शास्त्री एव श्रीचन्दजी सुराणा "सरस" आदि मनीषियो का सहयोग आगमसम्पादन के इस दुरूह कार्य को सरल बना सका है। इन सभी के प्रति मन आदर व कृतज्ञ भावना से अभिभूत है। इसी के साथ सेवा-सहयोग की दृष्टि से सेवाभावी शिष्य मुनि विनयकुमार एव महेन्द्रमुनि का साहचर्य-सहयोग, महासती श्री कानकु वरजी, महासती श्री झणकारकु वरजी का सेवाभाव सदा प्रेरणा देता रहा है। इस प्रसग पर इस कार्य के प्रेरणा-स्रोत स्व० श्रावक चिमनसिंहजी लोढा, तथा श्री पुखराजजी सिसोदिया का स्मरण भी सहजरूप मे हो आता है, जिनके अथक प्रेरणा-प्रयत्नो से आगम समिति अपने कार्य मे इतनी शीघ्र सफल हो रही है। चार वर्ष के इस अल्पकाल मे ही सत्तरह आगम-ग्रन्थो का मुद्रण तथा करीब १५-२० आगमो का अनुवाद-सम्पादन हो जाना हमारे सब सहयोगियो की गहरी लगन का द्योतक है।

मुझे सुदृढ विश्वास है कि परम श्रद्धेय स्वर्गीय स्वामी श्री हजारीमलजी महाराज आदि तपोपूत आत्माओ के शुभाशीर्वाद से तथा हमारे श्रमणसघ के भाग्यशाली नेता राष्ट्र-सत आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म० आदि मुनिजनो के सद्भाव-सहकार के बल पर यह सकल्पित जिनवाणी का सम्पादन-प्रकाशन कार्य शीघ्र ही सम्पन्न होगा।

इसी शुभाशा के साथ,

—मुनि मिश्रीमल "मधुकर"
(युवाचार्य)

□□

श्री ागम प्रकाशन समिति, ब्यावर

कार्यकारिणी समिति

वियाहपण्णत्तिसुत्तं (भगवईसुत्तं)

वि य-सूची

नवम शतक ४२३-५७५

दशम शतक ५७६-६२६

॥ समाप्तिसूचक ॥

छट्ठं सयं : छठा शतक

प्राथमिक

* व्याख्याप्रज्ञप्ति—भगवतीसूत्र के इस शतक मे वेदना, आहार, महाश्रव, सप्रदेश, तमस्काय, भव्य, शाली, पृथ्वी, कर्म एव अन्ययूथिकवक्तव्यता आदि विषयो पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है।

* इस छठे शतक मे भी पूर्ववत् दस उद्देशक है।

* प्रथम उद्देशक मे महावेदना और महानिर्जरा मे प्रशस्तनिर्जरा वाले जीव को विभिन्न दृष्टान्तो द्वारा श्रेष्ठ सिद्ध किया गया है, तत्पश्चात् चतुर्विधकरण की अपेक्षा जीवो के साता-असाता वेदन की प्ररूपणा की गई है और अन्त मे, जीवो मे वेदना और निर्जरा से सम्बन्धित चतुर्भंगी की प्ररूपणा की गई है।

* द्वितीय उद्देशक मे जीवो के आहार के सम्बन्ध मे प्रज्ञापनासूत्र के अतिदेशपूर्वक वर्णन किया गया है।

* तृतीय उद्देशक मे महाकर्म आदि से युक्त जीव के साथ पुद्गलो के बन्ध, चय, उपचय और अशुभ रूप मे परिणमन का तथा अल्पकर्म आदि से युक्त जीव के साथ पुद्गलो के भेद-छेद, विध्वस आदि का तथा शुभरूप मे परिणमन का दृष्टान्तद्वयपूर्वक निरूपण है, द्वितीय द्वार मे वस्त्र मे पुद्गलोपचयवत् प्रयोग से समस्त जीवो के कर्म-पुद्गलोपचय का, तृतीयद्वार मे जीवो के कर्मोपचय की सादिसान्तता का, जीवो की सादिसान्तता आदि चतुर्भंगी का, चतुर्थद्वार मे अष्टकर्मो की बन्धस्थिति आदि का, पचम द्वार से उन्नीसवे द्वार तक स्त्री-पुरुष-नपु सक आदि विभिन्न विशिष्ट कर्मबन्धक जीवो की अपेक्षा से अष्टकर्म प्रकृतियो के बन्ध-अबन्ध का विचार किया गया है। और अन्त मे, पूर्वोक्त १५ द्वारो मे उक्त जीवो के अल्पबहुत्व का निरूपण है।

* चतुर्थ उद्देशक मे कालादेश की अपेक्षा सामान्य चौबीस दण्डकवर्ती जीव, आहारक, भव्य, सज्ञी, लेश्यावान्, दृष्टि, सयत, सकषाय, सयोगी, उपयोगी, सवेदक, सशरीरी, पर्याप्तक आदि विशिष्ट जीवो मे १४ द्वारो के माध्यम से सप्रदेशत्व-अप्रदेशत्व का निरूपण किया गया है। अन्त मे, समस्त जीवो के प्रत्याख्यानी अप्रत्याख्यानी या प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी होने, जानने, करने और आयुष्य बाधने के सम्बन्ध मे प्रश्नोत्तर है।

* पचम उद्देशक मे विभिन्न पहलुओ से तमस्काय और कृष्णराजियो के सम्बन्ध मे सागोपाग वर्णन है, अन्त मे लोकान्तिक देवो से सम्बन्धित विमान, देवपरिवार, विमानसस्थान आदि का वर्णन है।

※ छठे उद्देशक मे चौबीस दण्डको के आवास, विमान आदि की सख्या का, तथा मारणान्तिक समुद्घातसमवहत जीव के आहारादि से सम्बन्धित निरूपण किया गया है ।

※ सातवे उद्देशक मे कोठे आदि मे रखे हुए शालि आदि विविधधान्यो की योनि स्थिति की तथा मुहूर्त्त से लेकर शीर्षप्रहेलिका पर्यन्त गणितयोग्य कालपरिमाण की और पल्योपम-सागरोपमादि औपमिककाल की प्ररूपणा की गई है । अन्त मे सुषमसुषमाकालीन भारत के जीव-अजीवो के भावादि का वर्णन किया गया है ।

※ आठवे उद्देशक मे रत्नप्रभादि पृथ्वियो तथा सर्वदेवलोको मे गृह-ग्राम-मेघादि के अस्तित्व-कर्तृत्व-की, जीवो के आयुष्यबन्ध एव जातिनामनिधत्तादि बारह दण्डको की, लवणादि असख्य द्वीप-समुद्रो के स्वरूप एव प्रमाण की तथा द्वीप-समुद्रो के शुभ नामो की प्ररूपणा की गई है ।

※ नौवे उद्देशक मे ज्ञानावरणीय कर्म के बन्ध के साथ अन्यकर्मो के बन्ध का, बाह्यपुद्गल-ग्रहण-पूर्वक महर्द्धिकादि देव के द्वारा एकवर्णादि के पुद्गलो के अन्यवर्णादि मे विकुर्वण-परिणमन-सम्बन्धी सामर्थ्य का, तथा अविशुद्ध-विशुद्ध लेश्यायुक्त देवो द्वारा अविशुद्ध-विशुद्ध लेश्यावाले देवादि को जानने-देखने के सामर्थ्य का निरूपण किया गया है ।

※ दशवें उद्देशक मे अन्यतीर्थिक मत-निराकरणपूर्वक सम्पूर्ण लोकवर्ती सर्वजीवो के सुख-दु ख को अणुमात्र भी दिखाने की असमर्थता की स्वमतप्ररूपणा, जीव के स्वरूपनिर्णय से सम्बन्धित प्रश्नोत्तरी, एकान्त दु खवेदनरूप अन्यतीर्थिकमतनिराकरणपूर्वक अनेकान्तशैली से सुखदु खादि-वेदनप्ररूपणा तथा जीवो द्वारा आत्मशरीरक्षेत्रावगाढ-पुद्गलाहार की प्ररूपणा की गई है । अन्त मे, केवली के आत्मा द्वारा ही ज्ञान-दर्शन-सामर्थ्य की प्ररूपणा की गई है ।[१]

□□

---

१ (क) भगवतीसूत्र (टीकानुवाद-टिप्पणयुक्त) खण्ड २, 'अनुक्रमणिका' पृ-५ से ७ तक
(ख) वियाहपण्णत्तिसुत्त, (मूलपाठटिप्पणयुक्त) भा १ 'विसयाणुक्कमो' पृ ४० से ४४ तक

छट्ठं सयं : छठा शतक

छठे शतक की संग्रहणीगाथा—

१ वेयण १ आहार २ महस्सवे य ३ सपदेस ४ तमुयए ५ भविए ६ ।
साली ७ पुढवी ८ कम्मऽन्नउत्थि ९-१० दस छट्ठगम्मि सते ।। १ ।।

[१ गाथा का अर्थ—] १ वेदना, २ आहार, ३. महाश्रव, ४. सप्रदेश, ५ तमस्काय, ६. भव्य ७ शाली, ८ पृथ्वी, ९ कर्म और १० अन्ययूथिक-वक्तव्यता, इस प्रकार छठे शतक मे ये दस उद्देशक हैं।

ो उद्देसओ : '`यण'

प्रथम उद्देशक : वेदना

महावेदना एवं महानिर्जरायुक्त जीवो का निर्णय विभिन्न दृष्टान्तो द्वारा—

२ से नूण भते ! जे महावेदणे से महानिज्जरे ? जे महानिज्जरे से महावेदणे ? महावेदणस्स य अप्पवेदणस्स य से सेए जे पसत्थनिज्जराए ?

हता, गोयमा ! जे महावेदणे एव चेव ।

[२ प्र] भगवन् ! क्या यह निश्चित है कि जो महावेदना वाला है, वह महानिर्जरा वाला है और जो महानिर्जरावाला है, वह महावेदना वाला है ? तथा क्या महावेदना वाला और अल्पवेदना वाला, इन दोनो मे वही जीव श्रेयान् (श्रेष्ठ) है, जो प्रशस्तनिर्जरा वाला है ?

[२ उ] हाँ, गौतम ! जो महावेदना वाला है, इत्यादि जैसा ऊपर कहा है, इसी प्रकार समझना चाहिए।

३ [१] छट्ठी-सत्तमासु णं भते ! पुढवीसु नेरइया महावेदणा ?

हता, महावेदणा ।

[३-१ प्र] भगवन् ! क्या छठी और सातवी (नरक-) पृथ्वी के नैरयिक महावेदना वाले हैं ?

[३-१ उ] हाँ गौतम ! वे महावेदना वाले है।

[२] ते ण भते ! समणेहिंतो निग्गथेहिंतो महानिज्जरतरा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

[३-२ प्र] भगवन् ! तो क्या वे (छठी-सातवी नरकभूमि के नैरयिक) श्रमण-निर्ग्रन्थो की अपेक्षा भी महानिर्जरा वाले हैं ?

[३-२ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है। (अर्थात्—छठी-सातवी नरक के नैरयिक, श्रमण-निर्ग्रन्थो की अपेक्षा महानिर्जरा वाले नही है ।)

४. से केणट्ठेणं भते ! एवं वुच्चति जे महावेदणे जाव पसत्थनिज्जराए (सू २) ?

गोयमा ! से जहानामए दुवे वत्थे सिया, एगे वत्थे कद्दमरागरत्ते, एगे वत्थे खजणरागरत्ते। एतेसि ण गोयमा ! दोण्ह वत्थाण कतरे वत्थे दुधोयतराए चेव, दुवामतराए चेव, दुपरिकम्मतराए चेव ? कयरे वा वत्थे सुधोयतराए चेव, सुवामतराए चेव, सुपरिकम्मतराए चेव, जे वा से वत्थे कद्दमरागरत्ते ? जे वा से वत्थे खजणरागरत्ते ?

भगव ! तत्थ ण जे से वत्थे कद्दमरागरत्ते से णं वत्थे दुधोयतराए चेव दुवामतराए चेव दुप्परिकम्मतराए चेव ।

एवामेव गोयमा ! नेरइयाण पावाइ कम्माइ गाढीकताइ चिक्कणीकताइ सिलिट्ठीकताइं खिलीभूताइ भवति; सपगाढ पि य ण ते वेदण वेदेमाणा नो महानिज्जरा, णो महापज्जवसाणा भवति। से जहा वा केइ पुरिसे अहिगरणीं आउडेमाणे महता महता सद्देण महता महता घोसेण महता महता परपराघातेणं नो सचाएति तोसे अहिगरणीए अहाबायरे वि पोग्गले परिसाडित्तए। एवामेव गोयमा ! नेरइयाण पावाइ कम्माइ गाढीकयाइ जाव नो महापज्जवसाणा भवति । भगव ! तत्थ जे से वत्थे खजणरागरत्ते से ण वत्थे सुधोयतराए चेव सुवामतराए चेव सुपरिकम्मतराए चेव ।

एवामेव गोयमा ! समणाण निग्गथाण अहाबायराइं कम्माइ सिढिलीकताइ निट्ठिताइ कडाइ विप्परिणामिताइ खिप्पामेव विद्धत्थाइ भवति जावतिय तावतिय पि णं ते वेदण वेदेमाणा महानिज्जरा महापज्जवसाणा भवति । से जहानामए केइ पुरिसे सुक्क तणहत्थय जायतेयसि पक्खिवेज्जा, से नूणं गोयमा ! से सुक्के तणहत्थए जायतेयसि पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव मसमसाविज्जति ?

हता, मसमसाविज्जति ।

एवामेव गोयमा ! समणाण निग्गथाण अहाबादराइं कम्माइ जाव महापज्जवसाणा भवति । से जहानामए केइ पुरिसे तत्तसि अयकवल्लसि उदगबिंदू जाव हता, विद्ध समागच्छति। एवामेव गोयमा ! समणाण निग्गथाण जाव महापज्जवसाणा भवति। से तेणट्ठेण जे महावेदणे से महानिज्जरे जाव निजराए ।[1]

[४ प्र] भगवन् ! तब यह कैसे कहा जाता है, कि जो महावेदना वाला है, वह महानिर्जरा वाला है, यावत् प्रशस्त निर्जरा वाला है ?

---

१ यहा 'जाव' शब्द से 'जे महानिज्जरे से महावेदणे, महावेदणस्स य अप्पवेदणस्स य से सेए जे पसत्थनिज्जराए' यह पाठ समझना चाहिए ।

[४ उ.] गौतम ! (मान लो,) जैसे दो वस्त्र है। उनमे से एक कर्दम (कीचड) के रग से रगा हुआ है और दूसरा वस्त्र खजन (गाडी के पहिये के कीट) के रग से रगा हुआ है। गौतम ! इन दोनो वस्त्रो मे से कौन-सा वस्त्र दुर्धौततर (मुश्किल से धुल सकने योग्य), दुर्वाम्यतर (बडी कठिनाई से काले धब्बे उतारे जा सके, ऐसा) और दुष्परिकर्मतर (जिस पर मुश्किल से चमक लाई जा सके तथा चित्रादि बनाये जा सके, ऐसा) है और कौन-सा वस्त्र सुधौततर (जो सरलता से धोया जा सके), सुवाम्यतर (आसानी से जिसके दाग उतारे जा सके), तथा सुपरिकर्मतर (जिस पर चमक लाना और चित्रादि बनाना सुगम) है, कर्दमराग-रक्त या खजनरागरक्त ? (गौतम स्वामी ने उत्तर दिया—) भगवन् ! उन दोनो वस्त्रो मे से जो कर्दम-रग से रगा हुआ है, वही (वस्त्र) दुर्धौततर, दुर्वाम्यतर एव दुष्परिकर्मतर है।

(भगवान् ने इस पर फरमाया—) 'हे गौतम ! इसी तरह नैरयिको के पाप-कर्म गाढीकृत (गाढ बधे हुए), चिक्कणीकृत (चिकने किये हुए), श्लिष्ट (निधत्त) किये हुए एव खिलीभूत (निकाचित किये हुए) है, इसलिए वे सम्प्रगाढ वेदना को वेदते हुए भी महानिर्जरा वाले नही है तथा महापर्यवसान वाले भी नही है।

अथवा जैसे कोई व्यक्ति जोरदार आवाज के साथ महाघोष करता हुआ लगातार जोर-जोर से चोट मार कर एरण को (हथौडे से) कूटता-पीटता हुआ भी उस एरण (अधिकरणी) के स्थूल पुद्गलो को परिशटित (विनष्ट) करने मे समर्थ नही हो सकता, इसी प्रकार हे गौतम ! नैरयिको के पापकर्म गाढ किये हुए हैं, यावत् इसलिए वे महानिर्जरा एव महापर्यवसान वाले नही हैं।

(गौतमस्वामी ने पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर पूर्ण किया—) 'भगवन् ! उन दोनो वस्त्रो मे से जो खजन के रग से रगा हुआ है, वह वस्त्र सुधौततर, सुवाम्यतर और सुपरिकर्मतर है।' (इस पर भगवान् ने कहा—) हे गौतम ! इसी प्रकार श्रमण-निर्ग्रन्थो के यथाबादर (स्थूलतर स्कन्धरूप) कर्म, शिथिलीकृत (मन्द विपाक वाले), निष्ठितकृत (सत्तारहित किये हुए) विपरिणामित (विपरिणाम वाले) होते है। (इसलिए वे) शीघ्र ही विध्वस्त हो जाते है। जितनी कुछ (जैसी-कैसी) भी वेदना को वेदते हुए श्रमण-निर्ग्रन्थ महानिर्जरा और महापर्यवसान वाले होते है।'

(भगवान् ने पूछा—) हे गौतम ! जैसे कोई पुरुष सूखे घास के पूले (तृणहस्तक) को धधकती हुई अग्नि मे डाल दे तो क्या वह सूखे घास का पूला धधकती आग मे डालते ही शीघ्र जल उठता है ?

(गौतम स्वामी ने उत्तर दिया—) हाँ भगवन् ! वह शीघ्र ही जल उठता है। (भगवान् ने कहा—) हे गौतम ! इसी तरह श्रमण-निर्ग्रन्थो के यथाबादर कर्म शीघ्र ही विध्वस्त हो जाते हैं, यावत् वे श्रमणनिर्ग्रन्थ महानिर्जरा एव महापर्यवसान वाले होते हैं।

(अथवा) जैसे कोई पुरुष, अत्यन्त तपे हुए लोहे के तवे (या कडाह) पर पानी की बूद डाले तो वह यावत् शीघ्र ही विनष्ट हो जाती है, इसी प्रकार, हे गौतम ! श्रमण निर्ग्रन्थो के यथाबादर कर्म भी शीघ्र ही विध्वस्त हो जाते है और वे यावत् महानिर्जरा एव महापर्यवसान वाले होते हैं।

इसी कारण से ऐसा कहा जाता है कि जो महावेदना वाला होता है, वह महानिर्जरा वाला होता है, यावत् वही श्रेष्ठ है जो प्रशस्तनिर्जरा वाला है।

विवेचन—महावेदना एवं महानिर्जरा वाले जीवो के विषय मे विभिन्न दृष्टान्तों द्वारा निर्णय—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू २ से ४ तक) मे महावेदनायुक्त एव महानिर्जरायुक्त कौन-से जीव है, और वे क्यो है ? इस विषय मे विविध साधक-बाधक दृष्टान्तो द्वारा निर्णय दिया गया है।

महावेदना और महानिर्जरा की व्याख्या—उपसर्ग आदि के कारण उत्पन्न हुई विशेष पीडा महावेदना और कर्मो का विशेष रूप से क्षय होना महानिर्जरा है। महानिर्जरा और महापर्यवसान का भी महावेदना और महानिर्जरा की तरह कार्यकारण भाव है। जो महानिर्जरा वाला नही होता, वह महापर्यवसान (कर्मो का विशेष रूप से सभी ओर से अन्त करने वाला) नही होता।

क्या नारक महावेदना और महानिर्जरा वाले नहीं होते ?—मूल पाठ मे इस प्रश्न को उठा कर समाधान मागा है कि नैरयिक महावेदना वाले होते हुए महानिर्जरा वाले होते है या श्रमण निर्ग्रन्थ ? भगवान् ने कीचड से रगे और खंजन से रगे, वस्त्रद्वय के दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट कर दिया है कि जो महावेदना वाले होते है, वे सभी महानिर्जरा वाले नही होते। जैसे नारक महावेदना वाले होते हैं, उन्हे अपने पूर्व कृत गाढबन्धनबद्ध निधत्त-निकाचित कर्मो के फलस्वरूप महावेदना होती है, परन्तु वे उसे समभाव से न सहकर रो रो कर, विलाप करते हुए सहते हैं, जिससे वह महावेदना महानिर्जरा रूप नही होती, बल्कि अल्पतर, अप्रशस्त, अकामनिर्जरा होकर रह जाती है। इसके विपरीत भ. महावीर जैसे श्रमणनिर्ग्रन्थ बडे-बडे उपसर्गों व परीषहो के समय समभाव से सहन करने के कारण महानिर्जरा और वह भी प्रशस्त निर्जरा कर लेते है। इस कारण वेदना महती हो या अल्प, उसे समभाव से सहने वाला ही भगवान् महावीर की तरह प्रशस्त महानिर्जरा एवं महापर्यवसान वाला हो जाता है। श्रमण-निर्ग्रन्थो के कर्म शिथिलबन्धन वाले होते है, जिन्हे वे शीघ्र ही स्थितिघात और रसघात आदि के द्वारा विपरिणाम वाले कर देते हैं। अत एव वे शीघ्र विध्वस्त हो जाते हैं। इस सम्बन्ध मे दो दृष्टान्त दिये गए हैं—सूखे घास का पूला अग्नि मे डालते ही तथा तपे हुए तवे पर पानी की बूद डालते ही वे दोनो विनष्ट हो जाते है, वैसे ही श्रमणो के कर्म शीघ्र नष्ट हो जाते है।

निष्कर्ष—यहाँ उल्लिखित कथन—'**जो महावेदना वाला होता है, वह महानिर्जरा वाला होता है**' किसी विशिष्ट जीव की अपेक्षा से समझना चाहिए, नैरयिक आदि क्लिष्ट कर्म वाले जीवो की अपेक्षा से नही। तथा जो महानिर्जरा वाला होता है, वह महावेदनावाला होता है, यह कथन भी प्रायिक समझना चाहिए क्योकि सयोगीकेवली-नामक तेरहवे गुणस्थान मे महानिर्जरा होती है, परन्तु महावेदना नही भी होती, उसकी वहाँ भजना है।

निष्कर्ष यह है कि जिनके कर्म सुधौतवस्त्रवत् सुविशोध्य होते है, वे महानुभाव कैसी भी वेदना को भोगते हुए महानिर्जरा और महापर्यवसान वाले होते हैं।

दुर्विशोध्य कर्म के चार विशेषणो की व्याख्या—**गाढीकयाइ**=जो कर्म डोरी से मजबूत बाधी हुई सूइयो के ढेर के समान आत्मप्रदेशो के साथ गाढ बधे हुए है, वे गाढीकृत हैं। **चिक्कणीकयाइ**=मिट्टी के चिकने बर्तन के समान सूक्ष्म-कर्मस्कन्धो के रस के साथ परस्पर गाढ बन्ध वाले, दुर्भेद्य कर्मों को चिकने किये हुए कर्म कहते हैं। **सिलिट्ठीकयाइं**=रस्सी से दृढतापूर्वक बाध कर आग मे तपाई हुई सुइयो का ढेर जैसे परस्पर चिपक जाता है, वे सुइयाँ एकमेक हो जाती हैं, उसी तरह

जो कर्म परस्पर एकमेक—श्लिष्ट हो (चिपक) गए है, ऐसे निधत्त कर्म। खिलीभूयाइ=खिलीभूत कर्म, वे निकाचित कर्म होते हैं, जो बिना भोगे, किसी भी अन्य उपाय से क्षीण नही होते।[1]

चौबीस दण्डकों में करण की अपेक्षा साता-असाता-वेदन की प्ररूपणा—

५ कतिविहे ण भते ! करणे पण्णत्ते ?

गोतमा ! चउव्विहे करणे पण्णत्ते, त जहा—मणकरणे वइकरणे कायकरणे कम्मकरणे।

[५ प्र] भगवन् ! करण कितने प्रकार के कहे गए है ?

[५ उ] गौतम ! करण चार प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार है—मन-करण, वचन-करण, काय-करण और कर्म-करण।

६ णेरइयाण भते ! कतिविहे करणे पण्णत्ते ?

गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—मणकरणे वइकरणे कायकरणे कम्मकरणे। एवं पचेंदियाण सव्वेसि चउव्विहे करणे पण्णत्ते। एगिदियाण दुविहे-कायकरणे य कम्मकरणे य। विगलेंदियाण वइकरणे कायकरणे कम्मकरणे।

[६ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीवो के कितने प्रकार के करण कहे गए है ?

[६ उ] गौतम ! नैरयिक जीवो के चार प्रकार के करण कहे गए है। वे इस प्रकार है—मन-करण, वचन-करण, काय-करण और कर्म-करण। इसी प्रकार समस्त पचेन्द्रिय जीवो के ये चार प्रकार के करण कहे गए हैं। एकेन्द्रिय जीवो के दो प्रकार के करण होते है—कायकरण और कर्म-करण। विकलेन्द्रिय जीवो के तीन प्रकार के करण होते है, यथा—वचन-करण, काय-करण और कर्मकरण।

७ [१] नेरइया ण भ ते ! किं करणतो वेदणं वेदेंति ? अकरणतो वेदण वेदेंति ?

गोयमा ? नेरइया ण करणओ वेदण वेदेंति, नो अकरणओ वेदण वेदेंति।

[७-१ प्र] 'भगवन् ! नैरयिक जीव करण से असातावेदना वेदते है अथवा अकरण से असातावेदना वेदते है ?

[७-१ उ] गौतम ! नैरयिक जीव करण से असातावेदना वेदते है, अकरण से असातावेदना नही वेदते।

[२] से केणट्ठेणं० ?

गोयमा ! नेरइयाण चउव्विहे करणे पण्णत्ते, त जहा—मणकरणे वइकरणे कायकरणे कम्मकरणे। इच्चेएणं चउव्विहेणं असुभेण करणेण नेरइया करणतो असायं वेदण वेदेंति, नो अकरणतो, से तेणट्ठेणं०।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्राक २५१ (ख) भगवती, हिन्दी विवेचन भा २ पृ ९३६ से ९३८ तक

विवेचन—महावेदना एव महानिर्जरा वाले जीवो के विषय मे विभिन्न दृष्टान्तो द्वारा निर्णय—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू २ से ४ तक) मे महावेदनायुक्त एव महानिर्जरायुक्त कौन-से जीव है, और वे क्यो है ? इस विषय मे विविध साधक-बाधक दृष्टान्तो द्वारा निर्णय दिया गया है ।

महावेदना और महानिर्जरा की व्याख्या—उपसर्ग आदि के कारण उत्पन्न हुई विशेष पीडा महावेदना और कर्मो का विशेष रूप से क्षय होना महानिर्जरा है । महानिर्जरा और महापर्यवसान का भी महावेदना और महानिर्जरा की तरह कार्यकारण भाव है । जो महानिर्जरा वाला नही होता, वह महापर्यवसान (कर्मो का विशेष रूप से सभी ओर से अन्त करने वाला) नही होता ।

क्या नारक महावेदना और महानिर्जरा वाले नही होते ?—मूल पाठ मे इस प्रश्न को उठा कर समाधान मागा है कि नैरयिक महावेदना वाले होते हुए महानिर्जरा वाले होते है या श्रमण निर्ग्रन्थ ? भगवान् ने कीचड से रगे और खजन से रगे, वस्त्रद्वय के दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट कर दिया है कि जो महावेदना वाले होते है, वे सभी महानिर्जरा वाले नही होते । जैसे नारक महावेदना वाले होते हैं, उन्हे अपने पूर्व कृत गाढबन्धनबद्ध निधत्त-निकाचित कर्मो के फलस्वरूप महावेदना होती है, परन्तु वे उसे समभाव से न सहकर रो रो कर, विलाप करते हुए सहते है, जिससे वह महावेदना महानिर्जरा रूप नही होती, बल्कि अल्पतर, अप्रशस्त, अकामनिर्जरा होकर रह जाती है । इसके विपरीत भ महावीर जैसे श्रमणनिर्ग्रन्थ बडे-बडे उपसर्गो व परीषहो के समय समभाव से सहन करने के कारण महानिर्जरा और वह भी प्रशस्त निर्जरा कर लेते है । इस कारण वेदना महती हो या अल्प, उसे समभाव से सहने वाला ही भगवान् महावीर की तरह प्रशस्त महानिर्जरा एवं महापर्यवसान वाला हो जाता है । श्रमण-निर्ग्रन्थो के कर्म शिथिलबन्धन वाले होते है, जिन्हे वे शीघ्र ही स्थितिघात और रसघात आदि के द्वारा विपरिणाम वाले कर देते है । अत एव वे शीघ्र विध्वस्त हो जाते है । इस सम्बन्ध मे दो दृष्टान्त दिये गए हैं—सूखे घास का पूला अग्नि मे डालते ही तथा तपे हुए तवे पर पानी की बूद डालते ही वे दोनो विनष्ट हो जाते है, वैसे ही श्रमणो के कर्म शीघ्र नष्ट हो जाते है ।

निष्कर्ष—यहाँ उल्लिखित कथन—'जो महावेदना वाला होता है, वह महानिर्जरा वाला होता है' किसी विशिष्ट जीव की अपेक्षा से समझना चाहिए, नैरयिक आदि क्लिष्ट कर्म वाले जीवो की अपेक्षा से नही । तथा जो महानिर्जरा वाला होता है, वह महावेदनावाला होता है, यह कथन भी प्रायिक समझना चाहिए क्योकि सयोगीकेवली-नामक तेरहवे गुणस्थान मे महानिर्जरा होती है, परन्तु महावेदना नही भी होती, उसकी वहाँ भजना है ।

निष्कर्ष यह है कि जिनके कर्म सुधौतवस्त्रवत् सुविशोध्य होते है, वे महानुभाव कैसी भी वेदना को भोगते हुए महानिर्जरा और महापर्यवसान वाले होते है ।

दुर्विशोध्य कर्म के चार विशेषणो की व्याख्या—**गाढीकयाइ**=जो कर्म डोरी से मजबूत बाधी हुई सूइयो के ढेर के समान आत्मप्रदेशो के साथ गाढ बधे हुए हैं, वे गाढीकृत है । **चिक्कणीकयाइ**= मिट्टी के चिकने बर्तन के समान सूक्ष्म-कर्मस्कन्धो के रस के साथ परस्पर गाढ बन्ध वाले, दुर्भेद्य कर्मो को चिकने किये हुए कर्म कहते हैं । **सिलिट्ठीकयाइं**=रस्सी से दृढतापूवक बाध कर आग मे तपाई हुई सुइयो का ढेर जैसे परस्पर चिपक जाता है, वे सुइयाँ एकमेक हो जाती है, उसी तरह

जो कर्म परस्पर एकमेक—श्लिष्ट हो (चिपक) गए है, ऐसे निधत्त कर्म। खिलीभूयाइ=खिलीभूत कर्म, वे निकाचित कर्म होते है, जो विना भोगे, किसी भी अन्य उपाय से क्षीण नही होते।[1]

चौबीस दण्डको में करण की अपेक्षा साता-असाता-वेदन की प्ररूपणा—

५ कतिविहे ण भते ! करणे पण्णत्ते ?

गोतमा ! चउव्विहे करणे पण्णत्ते, त जहा—मणकरणे वइकरणे कायकरणे कम्मकरणे।

[५ प्र] भगवन् ! करण कितने प्रकार के कहे गए है ?

[५ उ] गौतम ! करण चार प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार है—मन-करण, वचन-करण, काय-करण और कर्म-करण।

६ णेरइयाण भते ! कतिविहे करणे पण्णत्ते ?

गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—मणकरणे वइकरणे कायकरणे कम्मकरणे। एव पचेंदियाण सव्वेसि चउव्विहे करणे पण्णत्ते। एगिंदियाण दुविहे-कायकरणे य कम्मकरणे य। विगलेंदियाण वइकरणे कायकरणे कम्मकरणे।

[६ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीवो के कितने प्रकार के करण कहे गए है ?

[६ उ] गौतम ! नैरयिक जीवो के चार प्रकार के करण कहे गए है। वे इस प्रकार है—मन-करण, वचन-करण, काय-करण और कर्म-करण। इसी प्रकार समस्त पचेन्द्रिय जीवो के ये चार प्रकार के करण कहे गए है। एकेन्द्रिय जीवो के दो प्रकार के करण होते है—कायकरण और कर्म-करण। विकलेन्द्रिय जीवो के तीन प्रकार के करण होते हैं, यथा—वचन-करण, काय-करण और कर्मकरण।

७ [१] नेरइया ण भ ते ! किं करणतो वेदणं वेदेंति ? अकरणतो वेदण वेदेंति ?

गोयमा ? नेरइया ण करणओ वेदण वेदेंति, नो अकरणओ वेदण वेदेंति।

[७-१ प्र] 'भगवन् ! नैरयिक जीव करण से असातावेदना वेदते है अथवा अकरण से असातावेदना वेदते हैं ?

[७-१ उ] गौतम ! नैरयिक जीव करण से असातावेदना वेदते है, अकरण से असातावेदना नही वेदते।

[२] से केणट्ठेण० ?

गोयमा ! नेरइयाण चउव्विहे करणे पण्णत्ते, त जहा—मणकरणे वइकरणे कायकरणे कम्मकरणे। इच्चेएण चउव्विहेण असुभेणं करणेण नेरइया करणतो असाय वेदण वेदेंति, नो अकरणतो, से तेणट्ठेण०।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्राक २५१ (ख) भगवती, हिन्दी विवेचन भा २ पृ. ९३६ से ९३८ तक

[७-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ?

[७-२ उ] गौतम ! नैरयिक जीवो के चार प्रकार के करण कहे गए है, जैसे कि मन-करण, वचन-करण, काय-करण और कर्म-करण । उनके ये चारो ही प्रकार के करण अशुभ होने से वे (नैरयिक जीव) करण द्वारा असातावेदना वेदते है, अकरण द्वारा नही । इस कारण से ऐसा कहा गया है कि नैरयिक जीव करण से असातावेदना वेदते है, अकरण से नही ।

८. [१] असुरकुमारा ण किं करणतो, अकरणतो ?

गोयमा ! करणतो, नो अकरणतो ।

[८-१ प्र] भगवन् ! असुरकुमार देव क्या करण से सातावेदना वेदते है, अथवा अकरण से ?

[८-१ उ] गौतम ! असुरकुमार करण से सातावेदना वेदते है, अकरण से नही ।

[२] से केणट्ठेण० ?

गोयमा ! असुरकुमाराण चउव्विहे करणे पण्णत्ते, त जहा—मणकरणे वइकरणे कायकरणे कम्मकरणे । इच्चेएण सुभेण करणेण असुरकुमारा ण करणतो साय वेदण वेदेंति, नो अकरणतो ।

[८-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है ?

[८-२ उ] गौतम ! असुरकुमारो के चार प्रकार के करण कहे गए है । यथा—मनकरण, वचन-करण, काय-करण और कर्म-करण । असुरकुमारो के ये चारो करण शुभ होने से वे (असुरकुमार) करण से सातावेदना वेदते है, किन्तु अकरण से नही ।

९ एव जाव थणियकुमारा ।

[९] इसी तरह (नागकुमार से लेकर) यावत् स्तनितकुमार तक कहना चाहिए ।

१० पुढविकाइयाण एस चेव पुच्छा । नवर इच्चेएण सुभासुभेण करणेण पुढविकाइया करणतो वेमायाए वेदण वेदेंति, नो अकरणतो ।

[१० प्र] भगवन् ! क्या पृथ्वीकायिक जीव करण द्वारा वेदना वेदते है, या अकरण द्वारा ?

[१० उ [गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव करण द्वारा वेदना वेदते है, किन्तु अकरण द्वारा नही । विशेष यह है कि इनके ये करण शुभाशुभ होने से ये करण द्वारा विमात्रा से (विविध प्रकार से) वेदना वेदते है, किन्तु अकरण द्वारा नही । अर्थात्—पृथ्वीकायिक जीव शुभकरण होने से सातावेदना वेदते हैं और कदाचित् अशुभ करण होने से असाता वेदना वेदते है ।

११. ओरालियसरीरा सव्वे सुभासुभेण वेमायाए ।

[११] औदारिक शरीर वाले सभी जीव अर्थात्-पाच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यञ्च-पञ्चेन्द्रिय और मनुष्य, शुभाशुभ करण द्वारा विमात्रा से वेदना (कदाचित् सातावेदना और कदाचित् असातावेदना) वेदते हैं ।

१२ देवा सुभेण सात।

[१२] देव (चारो प्रकार के देव) शुभ करण द्वारा सातावेदना वेदते हैं।

विवेचन—चौबीस दण्डको मे करण की अपेक्षा साता-असातावेदन की प्ररूपणा—प्रस्तुत आठ सूत्रो (सू ५ से १२ तक) मे करण के चार प्रकार बता कर समस्त ससारी जीवो मे इन्ही शुभाशुभ करणो के द्वारा साता-असातावेदना के वेदन की प्ररूपणा की गई है।

चार करणो का स्वरूप—वेदना का मुख्य कारण करण है, फिर चाहे वह शुभ हो या अशुभ। मनसम्बन्धी, वचन-सम्बन्धी, काय-सम्बन्धी और कर्म विषयक ये चार करण होते हं। कर्म के बन्धन, सक्रमण आदि मे निमित्तभूत जीव के वीर्य को कर्मकरण कहते है।[1]

जीवो मे वेदना और निर्जरा से सम्बन्धित चतुर्भंगी का निरूपण—

१३ [१] जीवा ण भते! किं महावेदणा महानिज्जरा? महावेदणा अप्पनिज्जरा? अप्पवेदणा महानिज्जरा? अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा?

गोयमा! अत्थेगइया जीवा महावेदणा महानिज्जरा, अत्थेगइया जीवा महावेयणा अप्प-निज्जरा, अत्थेगइया जीवा अप्पवेदणा महानिज्जरा, अत्थेगइया जीवा अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा।

[१३-१ प्र] भगवन्! जीव, (क्या) महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं, महावेदना और अल्पनिर्जरा वाले है, अल्पवेदना और महानिर्जरा वाले है, अथवा अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले है?

[१३-१ उ] गौतम! कितने ही जीव महावेदना और महानिर्जरा वाले है, कितने ही जीव महावेदना और अल्पनिर्जरा वाले है, कई जीव अल्पवेदना और महानिर्जरा वाले है तथा कई जीव अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं।

[२] से केणट्ठेण०?

गोयमा! पडिमापडिवन्नए अणगारे महावेदणे महानिज्जरे। छट्ठ-सत्तमासु पुढवीसु नेरइया महावेदणा अप्पनिज्जरा। सेलेसिं पडिवन्नए अणगारे अप्पवेदणे महानिज्जरे। अणुत्तरोववाइया देवा अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा।

सेव भते! सेव भते! त्ति०।

[१३-२ प्र] भगवन्! ऐसा किस कारण से कहा जाता है?

[१३-२ उ] गौतम! प्रतिमा-प्रतिपन्न (प्रतिमा अगीकार किया हुआ) अनगार महावेदना और महानिर्जरा वाला होता है। छठी-सातवी नरक-पृथ्वियो के नैरयिक जीव महावेदना वाले, किन्तु अल्पनिर्जरा वाले होते हैं। शैलेशी अवस्था को प्राप्त अनगार अल्पवेदना और महानिर्जरा

---

१ भगवती सूत्र अ वृत्ति, पत्राक २५२

वाले होते है। और अनुत्तरोपपातिक देव अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले होते है।

हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है, यो कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरण करते है।

विवेचन—जीवो मे वेदना और निर्जरा से सम्बन्धित चतुर्भंगी का निरूपण—प्रस्तुत सूत्र मे जीवो मे वेदना और निर्जरा की चतुर्भंगी की सहेतुक प्ररूपणा की गई है।

चतुर्भंगी—(१) महावेदना और महानिर्जरा वाले, (२) महावेदना-अल्पनिर्जरा वाले, (३) अल्पवेदना-महानिर्जरा वाले और (४) अल्पवेदना-अल्पनिर्जरा वाले जीव।[1]

प्रथम उद्देशक की संग्रहणी गाथा—

१४ महावेदणे य वत्थे कद्दम-खजणमए य अधिकरणी।
तणहत्थेऽयकवल्ले करण महावेदणा जीवा ॥१॥

सेवं भंते! सेव भंते! त्ति०।

॥ छट्ठसयस्स पढमो उद्देसो समत्तो ॥

[१४—गाथा का अर्थ—] महावेदना, कर्दम और खजन के रग से रगे हुए वस्त्र, अधिकरणी (एरण), घास का पूला (तृणहस्तक), लोहे का तवा या कडाह, करण और महावेदना वाले जीव, इतने विषयो का निरूपण इस प्रथम उद्देशक मे किया गया है।

हे भगवन् यह इसी प्रकार है, हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, इस प्रकार कह कर यावत् श्रीगौतमस्वामी विचरण करने लगे।

॥ छठा शतक प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), भा-१, पृ २३३

बीओ उद्देसओ : 'आहार'

द्वितीय उद्देशक : 'आहार'

जीवो के आहार के सम्बन्ध मे अतिदेशपूर्वक निरूपण—

१ रायगिह नगर जाव एव वदासी—आहारुद्देसो जो पण्णवणाए सो सव्वो निरवसेसो नेयव्वो ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति ।

।। छट्ठे सए बीओ उद्देसो समत्तो ।।

[१] राजगृह नगर मे यावत् भगवान् महावीर ने इस प्रकार फरमाया—यहाँ प्रज्ञापना सूत्र (के २८ वे आहारपद) मे जो (प्रथम) आहार—उद्देशक कहा है वह सम्पूर्ण (निरवशेष) जान लेना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', (यो कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरण करने लगे ।)

विवेचन—जीवो के आहार के सम्बन्ध मे अतिदेशपूर्वक निरूपण—प्रस्तुत उद्देशक के इसी सूत्र के द्वारा प्रज्ञापनासूत्रवर्णित आहारपद के प्रथम उद्देशक का अतिदेश करके जीवो के आहार-सम्बन्धी वर्णन करने का निरूपण किया है ।

प्रज्ञापना मे वर्णित आहारसम्बन्धी वर्णन की सक्षिप्त झांकी—प्रज्ञापनासूत्र के २८ वे आहार पद के प्रथम उद्देशक मे क्रमश उक्त ११ अधिकारो मे वर्णित विषय ये है—

१ पृथ्वीकाय आदि जीव जो आहार करते है, वह सचित्त है, अचित्त है या मिश्र है ?

२ नैरयिक आदि जीव आहारार्थी हैं या नही ? इस पर विचार ।

३ किन जीवो को कितने-कितने काल से, कितनी-कितनी बार आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है ?

४ कौन-से जीव किस प्रकार के पुद्गलो का आहार करते है ?

५ आहार करने वाला अपने समग्र शरीर द्वारा आहार करता है, या अन्य प्रकार से ? इत्यादि प्रश्न ।

६ आहार के लिये लिये हुए पुद्गलो के कितने भाग का आहार किया जाता है ? इत्यादि चर्चा ।

७ मुँह मे खाने के लिए रखे हुए सभी पुद्गल खाये जाते है या कितने ही गिर जाते है । इसका स्पष्टीकरण ।

८ खायी हुई वस्तुएँ किस-किस रूप मे परिणत होती है ? इसकी चर्चा।

९ एकेन्द्रियादि जीवो के शरीरो को खाने वाले जीवो से सम्बन्धित वर्णन।

१० रोमाहार से सम्बन्धित विवेचन।

११ मन द्वारा तृप्त हो जाने वाले मनोभक्षी देवो से सम्बन्धित तथ्यो का निरूपण।[1]

प्रज्ञापना सूत्र के २८ वे पद के प्रथम उद्देशक मे इन ग्यारह अधिकारो का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है, विस्तार भय से यहाँ सिर्फ सूचना मात्र दी है, जिज्ञासु उक्त स्थल देखे।

॥ छठा शतक : द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

□□

---

१ (क) प्रज्ञापना सूत्र के २८ वें आहारपद के प्रथम उद्देशक मे वर्णित ११ अधिकारो की सग्रहणी गाथाएँ—

सच्चित्ताऽऽहारट्ठी केवति-किं वाऽवि सव्वतो चेव।
कतिभाग-सव्वे खलु-परिणामे चेव बोद्धव्वे ॥१॥
एगिंदियसरीरादी-लोमाहारो तहेव मणभक्खी।
एतेसिं तु पदाण विभावणा होति कातव्वा ॥२॥

(ख) भगवती सूत्र टीकानुवाद-टिप्पणयुक्त, खण्ड २, पृ २६० से २६८ तक।

(ग) विशेप जिज्ञासुओ को इस विपय का विस्तृत वर्णन प्रज्ञापना सूत्र के २८ वें पद के प्रथम उद्देशक मे देखना चाहिए।—स

तइओ उद्देसओ : 'महास'

तृतीय उद्देशक : 'महाश्रव'

तृतीय उद्देशक की संग्रहणी गाथाएँ—

१ बहुकम्म १ वत्थपोग्गल पयोगसा वीससा य २ सादीए ३ ।
कम्मट्ठिति-त्थि ४-५ सजय ६ सम्मद्दिट्ठी ७ य सण्णी ८ य ।।१।।
भविए ९ दसण १० पज्जत्त ११ भासय १२ परित्त १३ नाण १४ जोगे १५ य ।
उवओगा-ऽऽहारग १६-१७ सुहुम १८ चरिम १९ बधे य, अप्पबहु २० ।।२।।

[१] १ बहुकर्म, २ वस्त्र मे प्रयोग से और स्वाभाविक रूप से (विश्रसा) पुद्गल, ३ सादि (आदि सहित), ४ कर्मस्थिति, ५ स्त्री, ६ सयत, ७ सम्यग्दृष्टि, ८ सज्ञी, ९ भव्य, १० दर्शन, ११ पर्याप्त, १२ भाषक, १३ परित्त, १४ ज्ञान, १५ योग, १६ उपयोग, १७ आहारक, १८ सूक्ष्म, १९ चरम-बन्ध और २० अल्पबहुत्व, (इन बीस विषयो का वर्णन इस उद्देशक मे किया गया है।

प्रथमद्वार—महाकर्मा और अल्पकर्मा जीव के पुद्गल-बन्ध-भेदादि का दृष्टान्तद्वयपूर्वक निरूपण—

२ [१] से नूण भते ! महाकम्मस्स महाकिरियस्स महासवस्स महावेदणस्स सव्वतो पोग्गला बज्झति, सव्वओ पोग्गला चिज्जति, सव्वओ पोग्गला उवचिज्जति, सया समित च ण पोग्गला बज्झति, सया समित पोग्गला चिज्जति, सया समित पोग्गला उवचिज्जति, सया समित च ण तस्स आया दुरूवत्ताए दुवण्णत्ताए दुगधत्ताए दुरसत्ताए दुफासत्ताए अणिट्ठत्ताए अकतत्ताए अप्पियत्ताए असुभत्ताए अमणुण्णत्ताए अमणामत्ताए अणिच्छियत्ताए अभिज्झियत्ताए, अहत्ताए, नो उड्ढत्ताए, दुक्खत्ताए, नो सुहत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमइ ?

हंता, गोयमा ! महाकम्मस्स त चेव ।

[२-१ प्र] भगवन् ! क्या निश्चय ही महाकर्म वाले, महाक्रिया वाले, महाश्रव वाले और महावेदना वाले जीव के सर्वत (सब दिशाओ से, अथवा सभी ओर से और सभी प्रकार से) पुद्गलो का बन्ध होता है ? सर्वत (सब ओर से) पुद्गलो का चय होता है ? सर्वत पुद्गलो का उपचय होता है ? सदा सतत पुद्गलो का बन्ध होता है ? सदा सतत पुद्गलो का चय होता है ? सदा सतत पुद्गलो का उपचय होता है ? क्या सदा निरन्तर उसका आत्मा (सशरीर जीव) दुरूपता मे, दुर्वर्णता मे, दुर्गन्धता मे, दु रसता मे, दु स्पर्शता मे, अनिष्टता (इच्छा से विपरीतरूप) मे, अकान्तता (असुन्दरता), अप्रियता, अशुभता (अमगलता) अमनोज्ञता और अमनोगमता (मन से भी अस्मरणीय

रूप) मे, अनिच्छनीयता (अनीप्सित रूप) मे, अनभिध्यितता (प्राप्त करने हेतु अलोभता) मे, अधमता मे, अनूर्ध्वता मे, दु ख रूप मे,—असुखरूप मे बार-बार परिणत होता है ?

[२-१ उ] हाँ, गौतम ! महाकर्म वाले जीव के यावत् ऊपर कहे अनुसार ही···यावत् परिणत होता है ।

[२] से केणट्ठेणं० ?

गोयमा ! से जहानामए वत्थस्स अहतस्स वा धोतस्स वा तंतुग्गतस्स वा आणुपुव्वीए परिभुज्जमाणस्स सव्वओ पोग्गला बज्झंति, सव्वओ पोग्गला चिज्जंति जाव परिणमंति, से तेणट्ठेणं० ।

[२-२ प्र] (भगवन् !) किस कारण से ऐसा कहा जाता है ?

[२-२ उ] गौतम ! जैसे कोई अहत (जो पहना गया—परिभुक्त न हो), धौत (पहनने के बाद धोया हुआ), तन्तुगत (हाथ करघे से ताजा बुन कर उतरा हुआ) वस्त्र हो, वह वस्त्र जब क्रमश. उपयोग मे लिया जाता है, तो उसके पुद्गल सब ओर से बधते (सलग्न होते) हैं, सब ओर से चय होते हैं, यावत् कालान्तर मे वह वस्त्र मसोते जैसा अत्यन्त मैला और दुर्गन्धित रूप मे परिणत हो जाता है, इसी प्रकार महाकर्म वाला जीव उपर्युक्त रूप से यावत् असुखरूप मे बार-बार परिणत होता है ।

३. [१] से नूण भंते ! अप्पकम्मस्स अप्पकिरियस्स अप्पासवस्स अप्पवेदणस्स सव्वओ पोग्गला भिज्जंति, सव्वओ पोग्गला छिज्जंति, सव्वओ पोग्गला विद्धंसंति, सव्वओ पोग्गला परिविद्धंसंति, सया समितं पोग्गला भिज्जंति छिज्जंति विद्धंसंति परिविद्धंसंति, सया समितं च णं तस्स आया सुरूवत्ताए पसत्थं नेयव्वं जाव[1] सुहत्ताए, नो दुक्खत्ताए भुज्जो २ परिणमंति ?

हंता, गोयमा ! जाव परिणमंति ।

[३-१ प्र] भगवन् ! क्या निश्चय ही अल्पकर्म वाले, अल्पक्रिया वाले, अल्प आश्रव वाले और अल्पवेदना वाले जीव के सर्वत (सब ओर से) पुद्गल भिन्न (पूर्व सम्बन्धविशेष को छोड कर अलग) हो जाते हैं ? सर्वत पुद्गल छिन्न होते (टूटते) जाते है ? सर्वत पुद्गल विध्वस्त होते जाते हैं ? सर्वत पुद्गल समग्ररूप से ध्वस्त हो जाते हैं ?, क्या सदा सतत पुद्गल भिन्न, छिन्न, विध्वस्त और परिविध्वस्त होते हैं ? क्या उसका आत्मा (बाह्य आत्मा=शरीर) सदा सतत सुरूपता मे यावत् सुखरूप मे और अदु खरूप मे बार-बार परिणत होता है ? (पूर्वसूत्र मे अप्रशस्त पदो का कथन किया है, किन्तु यहाँ सब प्रशस्त-पदो का कथन करना चाहिए ।)

[३-१ उ] हाँ, गौतम ! अल्पकर्म वाले जीव का यावत् ऊपर कहे अनुसार ही यावत् परिणत होता है ।

---

१ 'जाव' पद यहाँ निम्नलिखित पदो का सूचक है—'सुवण्णत्ताए सुगंधत्ताए सुरसत्ताए सुफासत्ताए इट्ठत्ताए कंतत्ताए पियत्ताए सुभत्ताए मणुण्णत्ताए मणामत्ताए इच्छियत्ताए अणभिज्झियत्ताए उड्ढत्ताए, नो अहत्ताए, सुहत्ताए' ।

[२] से केणट्ठेणं० ?

गोयमा ! से जहानामए वत्थस्स जल्लियस्स वा पकितस्स वा मइलियस्स वा रइल्लियस्स वा आणुपुव्वीए परिकम्मिज्जमाणस्स सुद्धेण वारिणा धोव्वमाणस्स सव्वतो पोग्गला भिज्जति जाव परिणमति, से तेणट्ठेणं० ।

[३-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ?

[३-२ उ] गौतम ! जैसे कोई मैला (जल्लित), पकित (कीचड से सना), मैलसहित अथवा धूल (रज) से भरा वस्त्र हो और उसे शुद्ध (साफ) करने का क्रमश उपक्रम किया जाए, उसे पानी से धोया जाए तो उस पर लगे हुए मैले—अशुभ पुद्गल सब ओर से भिन्न (अलग) होने लगते है, यावत् उसके पुद्गल शुभरूप मे परिणत हो जाते है, (इसी तरह अल्पकर्म वाले जीव के विषय मे भी पूर्वोक्त रूप से सब कथन करना चाहिए ।)

इसी कारण से, (हे गौतम ! अल्पकर्म वाले जीव के लिए कहा गया है कि वह यावत् बारबार परिणत होता है ।)

विवेचन—महाकर्मी और अल्पकर्मी जीव के पुद्गल-बध-भेदादि का दृष्टान्तद्वयपूर्वक निरूपण—प्रस्तुत दो सूत्रो मे क्रमश महाकर्म आदि से युक्त जीव के सर्वत सर्वदा-सतत पुद्गलो के बन्ध, चय, उपचय एव अशुभरूप मे परिणमन का तथा अल्प कर्म आदि से युक्त जीव के पुद्गलो का भेद, छेद, विध्वस आदि का तथा शुभरूप मे परिणमन का दो वस्त्रो के दृष्टान्तपूर्वक निरूपण किया गया है ।

निष्कर्ष एवं आशय—जो जीव महाकर्म, महाक्रिया, महाश्रव और महावेदना से युक्त होता है, उस जीव के सभी ओर से सभी दिशाओ अथवा प्रदेशो से कर्मपुद्गल सकलनरूप से बधते है, बन्धनरूप से चय को प्राप्त होते हैं, कर्मपुद्गलो की रचना (निषेक) रूप से उपचय को प्राप्त होते है । अथवा कर्मपुद्गल बन्धनरूप मे बधते है, निधत्तरूप से उनका चय होता है, और निकाचितरूप से उनका उपचय होता है ।

जैसे नया और नही पहना हुआ स्वच्छ वस्त्र भी बार-बार इस्तेमाल करने तथा विभिन्न अशुभ पुद्गलो के सयोग से मसोते जैसा मलिन और दुर्गन्धित हो जाता है, वैसे ही पूर्वोक्त प्रकार के दुष्कर्मपुद्गलो के सयोग से आत्मा भी दुरूप के रूप मे परिणत हो जाती है । दूसरी ओर—जो जीव अल्पकर्म, अल्पक्रिया, अल्पाश्रव और अल्पवेदना से युक्त होता है, उस जीव के कर्मपुद्गल सब ओर से भिन्न, छिन्न, विध्वस्त और परिविध्वस्त होते जाते है । और जैसे मलिन, पकयुक्त, गदा और धूल से भरा वस्त्र क्रमश साफ करते जाने से, पानी से धोये जाने से उस पर सलग्न मलिन पुद्गल छूट जाते है, समाप्त हो जाते है, और अन्त मे वस्त्र साफ, स्वच्छ, चमकीला हो जाता है, इसी प्रकार कर्मो के सयोग से मलिन आत्मा भी तपश्चरणादि द्वारा कर्मपुद्गलो के झड जाने, विध्वस्त हो जाने से सुखादिरूप मे प्रशस्त बन जाती है ।

महाकर्मादि की व्याख्या—जिसके कर्मो की स्थिति आदि लम्बी हो, उसे महाकर्म वाला, जिसकी कायिकी आदि क्रियाएँ महान् हो, उसे महाक्रिया वाला, कर्मबन्ध के हेतुभूत मिथ्यात्वादि

जिसके महान् (गाढ एव प्रचुर) हो उसे, महाश्रववाला, तथा महापीडा वाले को महावेदना वाला कहा गया है ।[1]

द्वितीय द्वार—वस्त्र मे पुद्गलोपचयवत् समस्त जीवो के कर्मपुद्गलोपचय प्रयोग से या स्वभाव से ? एक प्रश्नोत्तर—

४. वत्थस्स ण भ ते ! पोग्गलोवचए किं पयोगसा, वीससा ?

गोयमा ! पयोगसा वि, वीससा वि ।

[४ प्र] भगवन् ! वस्त्र मे जो पुद्गलो का उपचय होता है, वह क्या प्रयोग (पुरुष-प्रयत्न) से होता है, अथवा स्वाभाविक रूप से (विश्रसा) ?

[४ उ] गौतम ! वह प्रयोग से भी होता है, स्वाभाविक रूप से भी होता है ।

५ [१] जहा ण भ ते ! वत्थस्स ण पोग्गलोवचए पयोगसा वि, वीससा वि तहा ण जीवाण कम्मोवचए किं पयोगसा, वीससा ?

गोयमा ! ! पयोगसा, नो वीससा ।

[५-१ प्र०] भगवन् ! जिस प्रकार वस्त्र मे पुद्गलो का उपचय प्रयोग से और स्वाभाविक रूप से होता है, तो क्या उसी प्रकार जीवो के कर्मपुद्गलो का उपचय भी प्रयोग से और स्वभाव से होता है ?

[३-१ उ] गौतम ! जीवो के कर्मपुद्गलो का उपचय प्रयोग से होता है, किन्तु स्वाभाविक रूप से नही होता ।

[२] से केणट्ठेणं० ?

गोयमा ! जीवाणं तिविहे पयोगे पण्णत्ते, त जहा—मणप्पयोगे वइप्पयोगे कायप्पयोगे य । इच्चेतेण तिविहेण पयोगेण जीवाणं कम्मोवचए पयोगसा, नो वीससा । एव सव्वेसिं पचेंदियाण तिविहे पयोगे भाणियव्वे । पुढविक्काइयाण एगविहेण पयोगेण, एव जाव वणस्सतिकाइयाण । विगलिंदियाण दुविहे पयोगे पण्णत्ते, त जहा—वइप्पयोगे य, कायप्पयोगे य । इच्चेतेण दुविहेण पयोगेण कम्मोवचए पयोगसा, नो वीससा । से एएणट्ठेण जाव नो वीससा । एव जस्स जो पयोगो जाव वेमाणियाण ।

[५-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ?

[५-२ उ] गौतम ! जीवो के तीन प्रकार के प्रयोग कहे गए हैं—मन प्रयोग, वचनप्रयोग और कायप्रयोग । इन तीन प्रकार के प्रयोगो से जीवो के कर्मो का उपचय कहा गया है । इस प्रकार समस्त पचेन्द्रिय जीवो के तीन प्रकार का प्रयोग कहना चाहिए । पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पति-

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २५३

(ख) भगवती (टीकानुवाद-टिप्पणयुक्त) खण्ड २, पृ २७० से २७२ तक

कायिक (एकेन्द्रिय पचस्थावर) जीवो तक के एक प्रकार के (काय) प्रयोग मे (कर्मपुद्गलोपचय होता है।) विकलेन्द्रिय जीवो के दो प्रकार के प्रयोग होते है, यथा—वचन-प्रयोग और काय-प्रयोग। इस प्रकार उनके इन दो प्रयोगो से कर्म (पुद्गलो) का उपचय होता हे। अत समरत जीवो के कर्मोपचय प्रयोग से होता है, स्वाभाविक-रूप से नही। इमी कारण से कहा गया हे कि यावत् स्वाभाविक रूप से नही होता। इस प्रकार जिस जीव का जो प्रयोग हो, वह कहना चाहिए। यावत् वैमानिक तक (यथायोग्य) प्रयोगो से कर्मोपचय का कथन करना चाहिए।

विवेचन—वस्त्र मे पुद्गलोपचय की तरह, समस्त जीवो के कर्मपुद्गलोपचय प्रयोग से या स्वभाव से ? प्रस्तुत सूत्रद्वय मे वस्त्र मे पुद्गलोपचय की तरह जीवो के कार्मोपचय उभयविध न होकर प्रयोग से ही होता है, इसकी सकारण प्ररूपणा की गई है।

'पयोगसा'—प्रयोग से—जीव के प्रयत्न से और वीससा—विश्रसा का अर्थ है—विना ही प्रयत्न के-स्वाभाविक रूप से।

निष्कर्ष—ससार के समस्त जीवो के कर्मपुद्गलो का उपचय प्रयोग—स्वप्रयत्न से होता है, स्वाभाविकरूप (काल, स्वभाव, नियति आदि) से नही। अगर ऐसा नही माना जाएगा तो सिद्ध जीव योगरहित है, उनके भी कर्मपुद्गलो का उपचय होने लगेगा, परन्तु यह सम्भव नही। अत कर्मपुद्गलो-पचय मन, वचन और काया इन तीनो प्रयोगो मे से किसी एक, दो या तीनो से होता है, यही युक्तियुक्त सिद्धान्त है।[1]

तृतीय द्वार-वस्त्र के पुद्गलोपचयवत् जीवो के कर्मोपचय की सादि-सान्तता आदि का विचार—

६ वत्थस्स ण भते ! पोग्गलोवचए किं सादीए सपज्जवसिते ? सादीए अपज्जवसिते ? अणादीए सपज्जवसिते ? अणादीए अपज्जवसिते ?

गोयमा ! वत्थस्स ण पोग्गलोवचए सादीए सपज्जवसिते, नो सादीए अपज्जवसिते, नो अणादीए सपज्जवसिते, नो अणादीए अपज्जवसिते।

[६ प्र] भगवन् ! वस्त्र मे पुद्गलो का जो उपचय होता है, वह सादि सान्त है, सादि अनन्त है, अनादि सान्त है, अथवा अनादि अनन्त है ?

[६ उ] गौतम ! वस्त्र मे पुद्गलो का जो उपचय होता है, वह सादि सान्त होता है, किन्तु न तो वह सादि अनन्त होता है, न अनादि सान्त होता है और न अनादि अनन्त होता है।

७ [१] जहा ण भते ! वत्थस्स पोग्गलोवचए सादीए सपज्जवसिते, नो सादीए अपज्जवसिते, नो अणादीए सपज्जवसिते, नो अणादीए अपज्जवसिते तहा ण जीवाण कम्मोवचए पुच्छा।

गोयमा ! अत्थेगइयाणं जीवाण कम्मोवचए साईए सपज्जवसिते, अत्थे० अणाईए सपज्जवसिए, अत्थे० अणाईए अपज्जवसिए, नो चेव ण जीवाण कम्मोवचए सादीए अपज्जवसिते।

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २५४

(ख) भगवती (टीकानुवाद-टिप्पणयुक्त) खण्ड २, पृ २७४

[७-१ प्र] हे भगवन् ! जिस प्रकार वस्त्र मे पुद्गलोपचय सादि-सान्त है, किन्तु सादि-अनन्त, अनादि-सान्त और अनादि-अनन्त नही है, क्या उसी प्रकार जीवो का कर्मोपचय भी सादि-सान्त है, सादि-अनन्त है, अनादि-सान्त है, अथवा अनादि-अनन्त है ?

[७-१ उ] गौतम ! कितने ही जीवो का कर्मोपचय सादि-सान्त है, कितने ही जीवो का कर्मोपचय अनादि-सान्त है, और कितने ही जीवो का कर्मोपचय अनादि-अनन्त है, किन्तु जीवो का कर्मोपचय सादि-अनन्त नही है।

[२] से केणट्ठेणं० ?

गोयमा ! इरियावहियाबंधयस्स कम्मोवचए साईए सप० । भवसिद्धियस्स कम्मोवचए अणादीए सपज्जवसिते । अभवसिद्धियस्स कम्मोवचए अणाईए अपज्जवसिते । से तेणट्ठेणं० ।[1]

[७-२ प्र] भगवन् ! यह किस कारण से कहा जाता है ?

[७-२ उ] गौतम ! ईर्यापथिक-बन्धक का कर्मोपचय सादि-सान्त है, भवसिद्धिक जीवो का कर्मोपचय अनादि-सान्त है, अभवसिद्धिक जीवो का कर्मोपचय अनादि-अनन्त है। इसी कारण से, हे गौतम ! उपर्युक्त रूप से कहा गया है।

विवेचन—जीवो के कर्मोपचय की सादि-सान्तता का विचार—प्रस्तुत सूत्रद्वय मे द्वितीय द्वार के माध्यम से वस्त्र के पुद्गलोपचय को सादि-सान्तता आदि के विचारपूर्वक जीवो के कर्मोपचय की सादि-सान्तता आदि का विचार प्रस्तुत किया गया है।

जीवो का कर्मोपचय सादि-सान्त, अनादि-सान्त, एवं अनादि-अनन्त क्यो और कैसे ?—मूलपाठ मे ईर्यापथिकबन्धकर्ता जीव की अपेक्षा से उक्त जीव का **कर्मोपचय सादि-सान्त** बताया गया है। ज्ञातव्य है कि ईर्यापथिक बन्ध क्या है ? और उसका बन्धकर्ता जीव कौन है ? कर्मबन्ध के मुख्य दो कारण है—एक तो क्रोधादि कषाय और दूसरा-मन-वचन-काया की प्रवृत्ति। जिन जीवो का कषाय सर्वथा उपशान्त या क्षीण नही हुआ है, उनको जो कर्मबन्ध होता है, वह सब साम्परायिक (काषायिक) कहलाता है, और जिन जीवो का कषाय सर्वथा उपशान्त या क्षीण हो चुका है, उनकी हलन-चलन आदि सारी प्रवृत्तियाँ यौगिक (मन वचन काया योग से जनित) होती है। योगजन्य कर्म को ही ऐर्यापथिक कर्म कहते है अर्थात् ईर्यापथ (गमनादि क्रिया) से बन्धनेवाला कर्म ऐर्यापथिक कर्म है। दूसरे शब्दो मे जो कर्म केवल हलन-चलन आदि शरीरादियोगजन्य प्रवृत्ति से बन्धता है, जिसके बन्ध मे कषाय कारण नही होता वह ऐर्यापथिक कर्म है। ऐर्यापथिक कर्म का बन्धकर्ता **ऐर्यापथिकबन्धक** कहलाता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से उपशान्तमोह, क्षीणमोह और सयोगी केवली को ऐर्यापथिक कर्म-बन्ध होता है। यह कर्म इस अवस्था से पहले नही बन्धता, इस अवस्था की अपेक्षा से इस कर्म की आदि है, अतएव इसका सादित्व है, किन्तु अयोगी (आत्मा की अक्रिय) अवस्था मे अथवा उपशमश्रेणी से गिरने पर इस कर्म का बन्ध नही होता, इस कर्म का अन्त हो जाता है, इस दृष्टि से इसका सान्तत्व है। भवसिद्धिक जीवो की अपेक्षा से कर्मोपचय अनादिसान्त है। भवसिद्धिक कहते है—सिद्ध (मुक्त) होने

१ यहाँ का पूरक पाठ इस प्रकार है—'तेणट्ठेण गोयमा ! एवं वुच्चइ अत्थे० जीवाण कम्मोवचए सादीए जाव] नो चेव ण जीवाण कम्मोवचए सादीए अपज्जवसिए।'

योग्य भव्यजीव को। भव्यजीवो के सामूहिक दृष्टि से कर्मबन्ध की कोई आदि नही है—प्रवाहरूप मे उनके कर्मोपचय अनादि हैं, किन्तु एक न एक दिन वे कर्मो का सर्वथा अन्त करके सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त करेगे, इस अपेक्षा से उनका कर्मोपचय सान्त है।

अभवसिद्धिक जीवो की अपेक्षा से कर्मोपचय अनादि-अनन्त है। अभवसिद्धिक कहते हैं—अभव्य जीवो को, जिनके कर्मो का कभी अन्त नही होगा, ऐसे अभव्य-जीवो के कर्मोपचय की प्रवाहरूप से न तो आदि है, और न अन्त है।[1]

तृतीयद्वार-वस्त्र एवं जीवो की सादि-सान्तता आदि चतुर्भंगीप्ररूपणा—

८. वत्थे ण भते! किं सादीए सपज्जवसिते? चतुभगो।

गोयमा! वत्थे सादीए सपज्जवसिते, अवसेसा तिण्णि वि पडिसेहेयव्वा।

[८ प्र.] भगवन्! क्या वस्त्र सादि सान्त है? इत्यादि पूर्वोक्त रूप से चार भग करके प्रश्न करना चाहिए।

[८ उ] गौतम! वस्त्र सादि-सान्त है, शेष तीन भगो का वस्त्र मे निषेध करना चाहिए।

९. [१] जहा ण भते! वत्थे सादीए सपज्जवसिए० तहा ण जीवा किं सादीया सपज्जवसिया? चतुभगो, पुच्छा।

गोयमा! अत्थेगतिया सादीया सप०, चत्तारि वि भाणियव्वा।

[९ १ प्र] भगवन्! जैसे वस्त्र सादि-सान्त है, किन्तु सादि-अनन्त नही है, अनादि-सान्त नही है और न अनादि-अनन्त है, वैसे जीवो के लिए भी चारो भगो को ले कर प्रश्न करना चाहिए—अर्थात् (भगवन्! क्या जीव सादि-सान्त है, सादि-अनन्त है, अनादि सान्त है अथवा अनादि-अनन्त है?)

[९-१ उ] गौतम! कितने ही जीव सादिसान्त है, कितने ही जीव सादि-अनन्त है, कई जीव अनादि-सान्त है और कितनेक अनादि-अनन्त है। (इस प्रकार जीव मे चारो ही भग कहने चाहिए)

[२] से केणट्ठेण० ?

गोयमा! नेरतिया तिरिक्खजोणिया मणुस्सा देवा गतिरागति पडुच्च सादीया सपज्जवसिया। सिद्धा गति पडुच्च सादीया अपज्जवसिया। भवसिद्धिया लद्धि पडुच्च अणादीया सपज्जवसिया। अभवसिद्धिया ससार पडुच्च अणादीया अपज्जवसिया भवति। से तेणट्ठेण०।

[९-२ प्र] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है?

[९-२ उ] गौतम! नैरयिक, तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य और देव, गति और आगति की अपेक्षा से सादि-सान्त है, सिद्धगति की अपेक्षा से सिद्धजीव सादि-अनन्त हैं, लब्धि की अपेक्षा भवसिद्धिक जीव अनादि सान्त हैं और ससार की अपेक्षा अभवसिद्धिक जीव अनादि-अनन्त है।

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २५५

(ख) भगवतीसूत्र (टीकानुवाद-टिप्पणयुक्त), खण्ड २, पृ २७४

विवेचन—वस्त्र एवं जीवों की सादि-सान्तता आदि की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्रद्वय मे वस्त्र की सादि-सान्तता बता कर जीवो की सादि-सान्तता आदि चतुर्भंगी का प्ररूपण किया गया है।

नरकादि गति की सादिसान्तता—नरकादिगति मे गमन की अपेक्षा उसकी सादिता है और वहाँ से निकलने रूप आगमन की अपेक्षा उसकी सान्तता है।

सिद्धजीवो की सादि-अनन्तता—यो तो सिद्धो का सद्भाव सदा से है। कोई भी काल या समय ऐसा नही था और न है, तथा न रहेगा कि जिस समय एक भी सिद्ध न हो, सिद्ध-स्थान सिद्धो से सर्वथा शून्य रहा हो। अतएव सामूहिक रूप से तो सिद्ध अनादि है, रोह अनगार के प्रश्न के उत्तर मे यही बात बताई गई है। किन्तु एक सिद्ध जीव की अपेक्षा से सिद्धगति मे प्रथम प्रवेश के कारण सभी सिद्ध सादि हैं। प्रत्येक सिद्ध ने किसी नियत समय मे भवभ्रमण का अन्त करके सिद्धत्व प्राप्त किया है। इस दृष्टि से सिद्धो का सादिपन सिद्ध होता है। इसी तरह प्रत्येक जीव पहले ससारी था, भव का अन्त करने के पश्चात् वह सिद्ध हुआ है, किन्तु सिद्धपर्याय का कभी अन्त न होने के कारण सिद्धो को अनन्त भी कहा जा सकता है। यो सिद्धो की अनन्तता सिद्ध होती है।

भवसिद्धिक जीवो की अनादिसान्तता—भवसिद्धिक जीवो के भव्यत्वलब्धि होती है, जो सिद्धत्व प्राप्ति तक रहती है। इसके बाद हट जाती है। इस दृष्टि से भवसिद्धिको को अनादि-सान्त कहा है।[1]

चतुर्थद्वार-अष्ट कर्मो की बन्धस्थिति आदि का निरूपण—

१०. कति ण भंते ! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—णाणावरणिज्जं दसणावरणिज्जं जाव[2] अतराइयं।

[१० प्र] भगवन् ! कर्मप्रकृतियाँ कितनी कही गई है ?

[१० उ] गौतम ! कर्मप्रकृतियाँ आठ कही गई है, वे इस प्रकार हैं—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय यावत् अन्तराय।

११ [१] नाणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स केवतियं कालं बंधठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा, अबाहूणिया कम्मठिती कम्मनिसेओ।

[११-१ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म की बन्धस्थिति कितने काल की कही गई है ?

[११-१ उ] गौतम ! ज्ञानावरणीय कर्म की बन्धस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीस क्रोडाक्रोडी सागरोपम की है। उसका अबाधाकाल तीन हजार वर्ष का है। अबाधाकाल जितनी स्थिति को कम करने से शेष कर्मस्थिति—कर्मनिषेधकाल जानना चाहिए।

---

१ (क) भगवती, अ वृत्ति (ख) भगवती (टीकानुवाद-टिप्पणयुक्त, खण्ड २, पृ-२७५

(ग) देखो, भगवती, टीकानुवाद प्रथमखण्ड, शतक १ उ ६ मे रोह अनगार के प्रश्न।

२ 'जाव' शब्द वेदनीय से अन्तराय तक के कर्मो का सूचक है।

[२] एव दरिसणावरणिज्ज पि।

[११-२] इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म के विषय मे भी जानना चाहिए।

[३] वेदणिज्ज जह० दो समया, उक्को० जहा नाणावरणिज्ज।

[११-३] वेदनीय कर्म की जघन्य (बन्ध-) स्थिति दो समय की है, उत्कृष्ट स्थिति ज्ञानावरणीय कर्म के समान तीस कोडाकोडी सागरोपम की जाननी चाहिए।

[४] मोहणिज्ज जह० अंतोमुहुत्त, उक्को० सत्तरि सागरोवमकोडाकोडीओ, सत्त य वाससहस्साणि अबाधा, अबाहूणिया कम्मठिई कम्मनिसेगो।

[११-४] मोहनीय कर्म की बन्धस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट ७० क्रोडाक्रोडी सागरोपम की है। सात हजार वर्ष का अबाधाकाल है। अबाधाकाल की स्थिति को कम करने से शेष कर्म-स्थिति—कर्मनिषेककाल जानना चाहिए।

[५] आउग जहन्नेण अंतोमुहुत्त, उक्को० तेत्तीस सागरोवमाणि पुव्वकोडितिभागमब्भहियाणि, कम्मट्ठिती कम्मनिसेओ।

[११-५] आयुष्यकर्म की बन्धस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि के त्रिभाग से अधिक तेतीस सागरोपम की है। इसका कर्मनिषेक काल (तेतीस सागरोपम का तथा शेष) अबाधाकाल जानना चाहिए।

[६] नाम-गोयाण जह० अट्ठ मुहुत्ता, उक्को० वीस सागरोवमकोडाकोडीओ, दोण्णि य वाससहस्साणि अबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिती कम्मनिसेओ।

[११-६] नामकर्म और गोत्र कर्म की बन्धस्थिति जघन्य आठ मुहूर्त्त की, और उत्कृष्ट २० क्रोडाक्रोडी सागरोपम की है। इसका दो हजार वर्ष का अबाधाकाल है। उस अबाधाकाल की स्थिति को कम करने से शेष कर्मस्थिति-कर्मनिषेककाल होता है।

[७] अतराय जहा नाणावरणिज्ज।

[११-७] अन्तराय-कर्म के विषय मे ज्ञानावरणीय कर्म की तरह (बन्धस्थिति आदि) समझ लेना चाहिए।

विवेचन—आठ कर्मों की बन्धस्थिति आदि का निरूपण—प्रस्तुत सूत्रद्वय मे आठ कर्मों की जघन्य-उत्कृष्ट बन्धस्थिति, अबाधाकाल एव कर्मनिषेककाल का निरूपण किया गया है।

बन्धस्थिति—कर्मबन्ध होने के बाद वह जितने काल तक रहता है, उसे बन्धस्थिति कहते है। **अबाधाकाल**—बाधा का अर्थ है—कर्म का उदय। कर्म का उदय न होना, 'अबाधा' कहलाता है। कर्मबन्ध से लेकर जबतक उस कर्म का उदय नही होता, तब तक के काल को अबाधाकाल कहते हैं। अर्थात्-कर्म का बन्ध और कर्म का उदय इन दोनो के बीच के काल को अबाधाकाल कहते है। **कर्मस्थिति-कर्मनिषेक-काल**—प्रत्येक कर्म बन्धने के पश्चात् उस कर्म के उदय मे आने पर अर्थात् उस कर्म का अबाधाकाल पूरा होने पर कर्म को वेदन (अनुभव) करने के प्रथम समय से लेकर बन्धे हुए कर्म-

दलिको मे से वेदनयोग्य—भोगनेयोग्य कर्मदलिको की एक प्रकार की रचना होती है उसे कर्म-निषेक कहते हैं। प्रथम समय मे बहुत अधिक कर्मनिषेक होता है, द्वितीय—तृतीय समय मे उत्तरोत्तर विशेष हीन होता जाता है। निषेक तब तक होता रहता है, जब तक वह बन्धा हुआ कर्म आत्मा के साथ (कर्मबन्धस्थिति तक) टिकता है।[1]

कर्म की स्थिति दो प्रकार की—एक तो, कर्म के रूप मे रहना, और दूसरे, अनुभव, (वेदन) योग्य कर्म रूप मे रहना। कर्म जब से अनुभव (वेदन) मे आता है, उस समय की स्थिति को अनुभव योग्य कर्मस्थिति जानना। अर्थात्—कर्म की कुल स्थिति मे से अनुदय का काल (अबाधाकाल) बाद करने पर जो स्थिति शेप रहती है, उसे अनुभव योग्य कर्मस्थिति समझना। कर्म की स्थिति जितने कोडाकोडी सागरोपम की होती है, उतने सौ वर्ष तक वह कर्म, अनुभव (वेदन) मे आए बिना आत्मा के साथ अकिंचित्कर रहता है। जैसे—मोहनीय कर्म की ७० कोडाकोडी सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति है, उसमे से ७० सौ (७०००) वर्ष तक तो वह कर्म यो ही अकिंचित्कर पडा रहता है। वही कर्म का अबाधाकाल है। उसके पश्चात् वह मोहनीय कर्म उदय मे आता है, तो ७ हजार वर्ष कम ७० कोडीकोडी सागरोपम तक अपना फल भुगताता रहता है, उस काल को कर्म निषेककाल कहते है। निष्कर्ष यह है—कर्म की सम्पूर्ण स्थिति मे से अबाधाकाल को निकाल देने पर बाकी जितना काल बचता है, वह उसका निषेक (बाधा-) काल है।

आयुष्यकर्म के निषेककाल और अबाधाकाल मे विशेषता—सिर्फ आयुष्यकर्म का निषेक काल ३३ सागरोपम का और अबाधाकाल पूर्वकोटि का त्रिभागकाल है।

वेदनीय कर्म की स्थिति—जिस वेदनीय कर्म के बन्ध मे कषाय कारण नही होता, केवल योग निमित्त होते है, वह वेदनीय कर्म बन्ध की अपेक्षा दो समय की स्थिति वाला है। वह प्रथम समय मे बन्धता है, दूसरे समय मे वेदा जाता है, किन्तु सकषाय बन्ध की स्थिति की अपेक्षा वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति १२ मुहूर्त्त की होती है।[2]

पांचवें से उन्नीसवें तक पन्द्रह द्वारों मे उक्त विभिन्न विशिष्ट जीवो की अपेक्षा से कर्म-बन्ध-अबन्ध का निरूपण—

१२. [१] नाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं इत्थी बंधति, पुरिसो बंधति, नपुंसओ बंधति, णोइत्थी-नोपुरिसो-नोनपुंसओ बंधइ ?

गोयमा ! इत्थी वि बंधइ, पुरिसो वि बंधइ, नपुंसओ वि बंधइ, नोइत्थी-नोपुरिसो-नोनपुंसओ सिय बंधइ, सिय नो बंधइ।

[१२-१ प्र] 'भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म क्या स्त्री बांधती है ? पुरुष बांधता है, अथवा नपुंसक बांधता है ? अथवा नो-स्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक (जो स्त्री, पुरुष या नपुंसक न हो, वह) बांधता है ?

१ (क) भगवतीसूत्र (टीकानुवाद-टिप्पणयुक्त) खण्ड २ पृ-२७६-२७७
(ख) शिवशर्म आचार्य कृत कर्मप्रकृति (उपा यशोविजयकृत टीका) निषेकप्ररूपणा पृ-८०
२ (क) पचसग्रह गा-३१-३२, भा आ पृ १७६
(ख) भगवतीसूत्र (टीकाऽनुवाद टिप्पणयुक्त) खण्ड २ पृ-२७७-२७८

[१२-१ उ गौतम ! ज्ञानावरणीय कर्म को स्त्री भी वाधती है, पुरुप भी वाधता है और नपु सक भी बाधता है, परन्तु जो नोस्त्री-नोपुरुप-नोनपु सक होता है, वह कदाचित् वाधता है, कदाचित् नही वाधता ।

[२] एव आउगवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ ।

[१२-२] इस प्रकार आयुष्यकर्म को छोड कर शेप सातो कर्मप्रकृतियो के विपय मे समझना चाहिए ।

१३. आउग ण भते ! कम्म कि इत्थी बधइ, पुरिसो बधइ, नपु सओ बधइ ?० पुच्छा ।

गोयमा ! इत्थी सिय बधइ, सिय नो बधइ, एव तिण्णि वि भाणियव्वा । नोइत्थी-नोपुरिसो-नोनपु सओ न बधइ ।

[१३ प्र] भगवन् ! आयुष्यकर्म को क्या स्त्री बाधती है, पुरुष वाधता है, नपु सक वाधता है अथवा नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपु सक बाँधता है ?

[१३ उ] 'गौतम ! आयुष्यकर्म स्त्री कदाचित् वाधती है और कदाचित् नही वाधती । इसी प्रकार पुरुष और नपु सक के विषय मे भी कहना चाहिए । नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपु सक आयुष्यकर्म को नही बाँधता ।'

१४ [१] णाणावरणिज्ज ण भते ! कम्म किं सजते बधइ, असजते०, सजयासजए बधइ, नोसजए-नोअसंजए-नोसजयासजए बंधति ?

गोयमा ! सजए सिय बधति सिय नो बधति, असजए बधइ, सजयासजए वि बधइ, नोसजए-नोअसजए नोसजयासजए न बधति ।

[१४-१ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म क्या सयत बाधता है, असयत बाधता है, सयता-सयत बाधता है अथवा नोसयत-नोअसयत-नोसयतासयत बाधता है ?

[१४-१ उ] गौतम ! (ज्ञानावरणीय कर्म को) सयत कदाचित् बाधता है और कदाचित् नही बाधता, किन्तु असयत बाधता है, सयतासयत भी बाधता है, परन्तु नोसयत-नोअसयत-नोसयता-सयत नही बाधता ।

[२] एव आउगवज्जाओ सत्त वि ।

[१४-२] इस प्रकार आयुष्यकर्म को छोड कर शेष सातो कर्मप्रकृतियो के विषय मे समझना चाहिए ।

[३] आउगे हेट्ठिल्ला तिण्णि भयणाए, उवरिल्ले ण बंधइ ।

[१४-३] आयुष्यकर्म के सम्बन्ध मे नीचे के तीन—सयत, असयत और सयतासयत के लिए भजना समझनी चाहिए । (अर्थात्—कदाचित् बाधते हैं और कदाचित् नही बाधते) नोसयत-नोअसयत-नोसयतासयत आयुष्यकर्म को नही बाधते ।

१४ [१] णाणावरणिज्ज ण भ ते ! कम्म किं सम्मद्दिट्ठी बधइ, मिच्छद्दिट्ठी बधइ, सम्मा-मिच्छद्दिट्ठी बधइ ?

गोयमा ! सम्मद्दिट्ठी सिय बधइ सिय नो बधइ, मिच्छद्दिट्ठी बधइ, सम्मामिच्छद्दिट्ठी बंधइ ।

[१५-१ प्र.] भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म क्या सम्यग्दृष्टि बाधता है, मिथ्यादृष्टि बाधता है अथवा सम्यग्-मिथ्यादृष्टि-बाधता है ?

[१५-१ उ] गौतम ! (ज्ञानावरणीय कर्म को) सम्यग्दृष्टि कदाचित् बाधता है, कदाचित् नही बाधता, मिथ्यादृष्टि बाधता है और सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी बाधता है ।

[२] एव आउगवज्जाओ सत्त वि ।

[१५-२] इसी प्रकार आयुष्यकर्म को छोड कर शेष सातो कर्मप्रकृतियो के विषय मे समझना चाहिए ।

[३] आउगे हेट्ठिल्ला दो भयणाए, सम्मामिच्छद्दिट्ठी न बंधइ ।

[१५-३] आयुष्यकर्म को नीचे के दो—सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि—भजना से बाधते हैं (अर्थात्—कदाचिद् बाधते है, कदाचित् नही बाधते ।) सम्यग्-मिथ्यादृष्टि (सम्यग्-मिथ्यादृष्टि अवस्था मे) नही बाधते ।

१६ [१] णाणावरणिज्ज किं सण्णी बधइ, असण्णी बंधइ, नोसण्णीनोअसण्णी बधइ ?

गोयमा ! सण्णी सिय बधइ सिय नो बधइ, असण्णी बधइ, नोसण्णीनोअसण्णी न बधइ ।

[१६-१ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म को क्या सज्ञी बाधता है, असज्ञी बाधता है अथवा नोसज्ञी-नो असज्ञी बाधता है ?

[१६-१ उ] गौतम ! (ज्ञानावरणीय कर्म को) सज्ञी कदाचित् बाधता है, और कदाचित् नही बाधता । असज्ञी बाधता है, और नोसज्ञी-नोअसज्ञी नही बाधता ।

[२] एव वेदणिज्जाऽऽउगवज्जाओ छ कम्मप्पगडीओ ।

[१६-२] इस प्रकार वेदनीय और आयुष्य को छोड कर शेष छह कर्मप्रकृतियो के विषय मे कहना चाहिए ।

[३] वेदणिज्ज हेट्ठिल्ला दो बधति, उवरिल्ले भयणाए । आउग हेट्ठिल्ला दो भयणाए, उवरिल्ले न बधइ ।

[१६-३] वेदनीय कर्म को सज्ञी भी बाधता है और असज्ञी भी बाधता है, किन्तु नोसज्ञी नो असज्ञी कदाचित् बाधता है और कदाचित् नही बाधता । आयुष्यकर्म को नीचे के दो-सज्ञी और असज्ञी जीव भजना से (कदाचित् बाधते है, कदाचित् नही) बाधते है । नोसज्ञी-नोअसज्ञी जीव आयुष्य कर्म को नही बाधते ।

१७ [१] णाणावरणिज्ज कम्म किं भवसिद्धीए बधइ, अभवसिद्धीए बधइ, नोभवसिद्धीए-नोअभवसिद्धीए बधति ?

गोयमा ! भवसिद्धीए भयणाए, अभवसिद्धीए बधति, नोभवसिद्धीएनोअभवसिद्धीए ण बधइ ।

[१७-१ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म को क्या भवसिद्धिक बाधता है, अभवसिद्धिक बाधता है अथवा नोभवसिद्धिक-नो अभवसिद्धिक बाधता है ?

[१७-१ उ] गौतम ! (ज्ञानावरणीय कर्म को) भवसिद्धिक जीव भजना से (कदाचित् बाधता है, कदाचित् नही) बाधता है । अभवसिद्धिक जीव बाधता है और नोभवसिद्धिक-नो अभव-सिद्धिक जीव नही बाधता ।

[२] एव आउगवज्जाओ सत्त वि ।

[१७-२] इस प्रकार आयुष्य कर्म को छोड कर शेष सात कर्मप्रकृतियो के विषय मे कहना चाहिए ।

[३] आउग हेट्ठिल्ला दो भयणाए, उवरिल्लो न बधइ ।

[१७-३] आयुष्यकर्म को नीचे के दो (भवसिद्धिक-भव्य और अभवसिद्धिक-अभव्य) भजना से (कदाचित् बाधते है, कदाचित् नही) बाधते है । ऊपर का (नोभवसिद्धिक-नो अभवसिद्धिक) नही बाधता ।

१८ [१] णाणावरणिज्ज किं चक्खुदसणी बधति, अचक्खुदस०, ओहिदस०, केवलदं० ?

गोयमा ! हेट्ठिल्ला तिण्णि भयणाए, उवरिल्ले ण बधइ ।

[१८-१ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म को क्या चक्षुदर्शनी बाधता है, अचक्षुदर्शनी बाधता है, अवधिदर्शनी बाधता है अथवा केवलदर्शनी बाधता है ?

[१८-१ उ] गौतम ! (ज्ञानावरणीय कर्म को) नीचे के तीन (चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी) भजना से (कदाचित् बाधते हैं, कदाचित् नही) बाधते हैं किन्तु—केवलदर्शनी नही बाधता ।

[२] एव वेदणिज्जवज्जाओ सत्त वि ।

[१८-२] इसी प्रकार वेदनीय को छोड कर शेष सात कर्मप्रकृतियो के विषय मे समझ लेना चाहिए ।

[३] वेदणिज्ज हेट्ठिल्ला तिण्णि बधति, केवलदसणी भयणाए ।

[१८-३] वेदनीयकर्म को निचले तीन (चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी) बाधते हैं, किन्तु केवलदर्शनी भजना से (कदाचित् बाधते है और कदाचित् नही) बाधते हैं ।

१९ [१] णाणावरणिज्ज कम्मं किं पज्जत्तओ बधइ, अपज्जत्तओ बंधइ, नोपज्जत्तए-नोअपज्जत्तए बधइ ?

गोयमा ! पज्जत्तए भयणाए, अपज्जत्तए बंधइ, नोपज्जत्तएनोअपज्जत्तए न बंधइ ।

[१९-१ प्र] भगवन् ! क्या ज्ञानावरणीय कर्म को पर्याप्तक जीव बाधता है, अपर्याप्त जीव बाधता है अथवा नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीव बाधता है ?

[१९-१ उ] गौतम ! (ज्ञानावरणीय कर्म को) पर्याप्तक जीव भजना से बाधता है, (कदाचित् बाधता हैं, कदाचित् नही) अपर्याप्तक जीव बाधता है और नो-पर्याप्तक-नो-अपर्याप्तक जीव नही बाधता ।

[२] एव आउगवज्जाओ ।

[१९-२] इस प्रकार आयुष्यकर्म के सिवाय शेष सात कर्मप्रकृतियो के विषय मे कहना चाहिए ।

[३] आउग हेट्ठिल्ला दो भयणाए, उवरिल्ले ण बधइ ।

[१९-३] आयुष्यकर्म को निचले दो (पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीव) भजना से (कदाचित् बाधते हैं, कदाचित् नही) बाधते हैं । नोपर्याप्त-अपर्याप्त नही बाधता ।

२०. [१] नाणावरणिज्ज किं भासए बधइ, अभासए० ?

गोयमा ! दो वि भयणाए ।

[२०-१ प्र] भगवन् ! क्या ज्ञानावरणीय कर्म को भाषक जीव बाधता है, या अभाषक जीव बाधता है ?

[२०-१ उ] गौतम ! ज्ञानावरणीय कर्म को दोनो—भाषक और अभाषक भजना से (कदचित् बांधते हैं, कदाचित् नही) बाधते है ।

[२] एव वेदणिज्जवज्जाओ सत्त ।

[२०-२] इसी प्रकार वेदनीय को छोड कर शेष सात कर्मप्रकृतियो के विषय मे कहना चाहिये ।

[३] वेदणिज्ज भासए बधइ, अभासए भयणाए ।

[२०-३] वेदनीय कर्म को भाषक जीव बाधता है, अभाषक जीव कदाचित् बाधता है, कदाचिद् नही बाधता ।

२१ [१] णाणावरणिज्ज किं परित्ते बधइ, अपरित्ते बधइ, नोपरित्तेनोअपरित्ते बधइ ?

गोयमा ! परित्ते भयणाए, अपरित्ते बधइ, नोपरित्तेनोअपरित्ते न बंधइ ।

[२१-१ प्र] भगवन् ! क्या परित्त जीव ज्ञानावरणीय कर्म को बाधता है, अपरित्त जीव बाधता है, अथवा नोपरित्त-नोअपरित्त जीव बाधता है ?

[२१-१ उ] गौतम ! परित्त जीव ज्ञानावरणीय कर्म को कदाचित् बाधता है, कदाचित् नही बाधता, अपरित्त जीव बाधता है और नोपरित्त-नोअपरित्त जीव नही बाधता।

[२] एव आउगवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ।

[२१-२] इस प्रकार आयुष्यकर्म को छोड कर शेप सात कर्मप्रकृतियो के विपय मे कहना चाहिए।

[३] आउए परित्तो वि, अपरित्तो वि भयणाए। नोपरित्तोनोअपरित्तो न बधइ।

[२१-३] आयुष्यकर्म को परित्तजीव भी और अपरित्तजीव भी भजना से (कदाचित् बाधते हैं, कदाचित् नही) बाधते है, नोपरित्त-नोअपरित्तजीव नही बाँधते।

२२. [१] णाणावरणिज्ज कम्म किं आभिणिबोहियनाणी बधइ, सुयनाणी०, ओहिनाणी०, मणपज्जवनाणी०, केवलनाणी ब० ?

गोयमा ! हेट्ठिल्ला चत्तारि भयणाए, केवलनाणी न बधइ।

[२२-१ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म क्या आभिनिबोधिक (मति) ज्ञानी बाधता है, श्रुतज्ञानी बाधता है, अवधिज्ञानी बाधता है, मन पर्यवज्ञानी बाधता है अथवा केवलज्ञानी बाधता है ?

[२२-१ उ] गौतम ! ज्ञानावरणीय कर्म को निचले चार (आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मन पर्यवज्ञानी) भजना से (कदाचित् बाधते है, कदाचित् नही) बाधते है, केवलज्ञानी नही बाधता।

[२] एव वेदणिज्जवज्जाओ सत्त वि।

[२२-२] इसी प्रकार वेदनीय को छोडकर शेष सातो कर्म-प्रकृतियो के विषय मे समझ लेना चाहिए।

[३] वेदणिज्ज हेट्ठिल्ला चत्तारि बधति, केवलनाणी भयणाए।

[२२-३] वेदनीय कर्म को निचले चारो (आभिनिबोधिकज्ञानी से लेकर मन पर्यवज्ञानी तक) बाधते है, केवलज्ञानी भजना से (कदाचित् बाधता है, कदाचित् नही) बाधता है।

२३ णाणावरणिज्ज किं मतिअण्णाणी बधइ, सुय०, विभग० ?

गोयमा ! आउगवज्जाओ सत्त वि बधति। आउग भयणाए।

[२३ प्र] भगवन् ! क्या ज्ञानावरणीय कर्म को मति-अज्ञानी बाधता है, श्रुत-अज्ञानी बाधता है या विभगज्ञानी बाधता है ?

[२३ उ] गौतम ! आयुष्यकर्म को छोड कर शेष सातो कर्म-प्रकृतियो को ये (तीनो प्रकार के अज्ञानी) बाधते है। आयुष्यकर्म को ये तीनो कदाचित् बाधते हैं, कदाचित् नही बाधते।

२४ [१] णाणावरणिज्ज किं मणजोगी बधइ, वय०, काय०, अजोगी बधइ ?

गोयमा ! हेट्ठिल्ला तिण्णि भयणाए, अजोगी न बंधइ ।

[२४-१ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म को क्या मनोयोगी, बांधता है, वचनयोगी बांधता है, काययोगी बांधता है, या अयोगी बांधता है ?

[२४-१ उ] गौतम ! (ज्ञानावरणीय कर्म को) निचले तीन—(मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी) भजना से (कदाचित् बांधते है, कदाचित् नही) बांधते है, अयोगी नही बांधता ।

[२] एव वेदणिज्जवज्जाओ ।

[२४-२] इसी प्रकार वेदनीय को छोडकर शेष सातो कर्मप्रकृतियो के विषय मे कहना चाहिए ।

[३] वेदणिज्ज हेट्ठिल्ला बंधति, अजोगी न बंधइ ।

[२४-३] वेदनीय कर्म को मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी बांधते हैं, अयोगी नही बांधता ।

२५ णाणावरणिज्ज किं सागारोवउत्ते बंधइ, अणागारोवउत्ते बंधइ ?

गोयमा ! अट्ठसु वि भयणाए ।

[२५ प्र.] भगवन् ! ज्ञानावरणीय (आदि अष्टविध) कर्म को क्या साकारोपयोग वाला बांधता है या अनाकारोपयोग वाला बांधता है ?

[२५ उ] गौतम ! (साकारोपयुक्त और अनाकारोपयुक्त दोनो प्रकार के जीव) आठो कर्मप्रकृतियो को कदाचित् बांधते हैं, कदाचित् नही बांधते ।

२६ [१] णाणावरणिज्ज किं आहारए बंधइ, अणाहारए बंधइ ?

गोयमा ! दो वि भयणाए ।

[२६-१ प्र] भगवन् ! क्या ज्ञानावरणीय कर्म आहारक जीव बांधता है या अनाहारक जीव बांधता है ?

[२६-१ उ] गौतम ! ज्ञानावरणीय कर्म को आहारक और अनाहारक, दोनो प्रकार के जीव, कदाचित् बांधते है और कदाचित् नही बांधते ।

[२] एवं वेदणिज्ज-आउगवज्जाण छण्ह ।

[२६-२] इसी प्रकार वेदनीय और आयुष्यकर्म को छोड कर शेष छहो कर्मप्रकृतियो के विषय मे समझ लेना चाहिए ।

[३] वेदणिज्ज आहारए बंधति, अणाहारए भयणाए । आउगं आहारए भयणाए, अणाहारए न बंधति ।

[२६-३] आहारक जीव वेदनीय कर्म को बांधता है, अनाहारक कदाचित् बांधता है और कदाचित् नही बांधता। (इसी प्रकार) आयुष्यकर्म को आहारक कदाचित् बांधता है, कदाचित् नही बांधता, अनाहारक नही बांधता।

२७ [१] णाणावरणिज्जं किं सुहुमे बंधइ, बादरे बंधइ, नोसुहुमेनोबादरे बंधइ ?

गोयमा ! सुहुमे बंधइ, बादरे भयणाए नोसुहुमेनोबादरे न बंधइ।

[२७-१ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म को क्या सूक्ष्म जीव बांधता है, बादर जीव बांधता है, अथवा नो-सूक्ष्म-नो बादर जीव बांधता है ?

[२७-१ उ] गौतम ! ज्ञानावरणीय कर्म को सूक्ष्म जीव बांधता है, बादर जीव भजना से (कदाचित् बांधता है, कदाचित् नही) बांधता है, किन्तु नोसूक्ष्म-नोबादर जीव नही बांधता।

[२] एवं आउगवज्जाओ सत्त वि।

[२७-२] इसी प्रकार आयुष्यकर्म को छोड कर शेष सातो कर्म-प्रकृतियो के विषय मे कहना चाहिए।

[३] आउए सुहुमे बादरे भयणाए, नोसुहुमेनोबादरे ण बंधइ।

[२७-३] आयुष्यकर्म को सूक्ष्म और बादरजीव कदाचित् बांधते है, कदाचित् नही बांधते, नोसूक्ष्म-नोबादर जीव नही बांधता।

२८ णाणावरणिज्जं किं चरिमे बंधति, अचरिमे बं० ?

गोयमा ! अट्ठ वि भयणाए।

[२८ प्र] भगवन् ! क्या ज्ञानावरणीय (आदि अष्टविध) कर्म को चरमजीव बांधता है, अथवा अचरमजीव बांधता है ?

[२८ उ] गौतम ! चरम और अचरम, दोनो प्रकार के जीव, आठो कर्मप्रकृतियो को कदाचित् बांधते है, कदाचित् नही बांधते।

विवेचन—विभिन्न विशिष्ट जीवो को अपेक्षा से अष्टकर्मप्रकृतियो के बन्ध-अबन्ध की प्ररूपणा—प्रस्तुत १७ सूत्रो (सू १२ से २८ तक) मे पांचवे द्वार से उन्नीसवे द्वार तक के माध्यम से स्त्री, पुरुष, नपुंसक, नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक आदि विविध विशिष्ट जीवो की अपेक्षा से अष्ट कर्मो के बन्ध-अबन्ध के विषय मे सैद्धान्तिक निरूपण किया गया है।

अष्टविधकर्मबन्धक-विषयक प्रश्न क्रमशः पन्द्रह द्वारो मे—प्रस्तुत पन्द्रह द्वारो मे जिन जीवो के विषय मे जिस-जिस द्वार मे कर्मबन्धविषयक प्रश्न पूछा गया है, वे क्रमश इस प्रकार हैं—(१) **पचम द्वार मे**—स्त्री, पुरुष, नपुंसक और नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक जीव, (२) **छठे द्वार मे**—संयत, असंयत, संयतासंयत और नोसंयात-नोअसंयत-नोसंयतासंयत जीव, (३) **सप्तम द्वार मे**—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव, (४) **अष्टम द्वार मे**—संज्ञी, असंज्ञी, नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीव, (५) **नवम द्वार मे**—भवसिद्धिक अभवसिद्धिक और नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीव,

(६) **दशमद्वार मे**—चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीव, (७) **ग्यारहवें द्वार मे**—पर्याप्तक, अपर्याप्तक और नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीव, (८) **बारहवें द्वार मे**—भाषक और अभाषक जीव, (९) **तेरहवें द्वार मे**—परित्त, अपरित्त और नोपरित्त-नोअपरित्त जीव, (१०) **चौदहवें द्वार में**—आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन पर्यायज्ञानी और केवलज्ञानी जीव तथा मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी विभगज्ञानी जीव, (११) **पन्द्रहवें द्वार मे**—मनोयोगी, वचनयोगी, काययोगी और अयोगी जीव, (१२) **सोलहवें द्वार मे**—साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी जीव, (१३) **सत्रहवें द्वार मे**—आहारक और अनाहारक जीव, (१४) **अठारहवें द्वार मे**—सूक्ष्म, बादर और नोसूक्ष्म-नोबादर जीव, और (१५) **उन्नीसवें द्वार मे**—चरम और अचरम जीव ।[1]

पन्द्रह द्वारो मे प्रतिपादित जीवो के कर्म-बन्ध-अबन्धविषयक समाधान का स्पष्टीकरण—(१) **स्त्रीद्वार**—स्त्री, पुरुष और नपु सक ये तीनो ज्ञानावरणीय कर्म को बाधते है । जिस जीव के स्त्रीत्व, पुरुषत्व और नपु सकत्व से सम्बन्धित वेद (कामविकार) का उदय नही होता, किन्तु केवल स्त्री, पुरुष या नपु सक का शरीर है, उसे अपगतवेद या नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपु सक जीव कहते है । वह अनिवृत्ति बादर सम्परायादि गुणस्थानवर्ती होता है । इनमे से अनिवृत्तिबादर सम्पराय और सूक्ष्म-सम्पराय गुणस्थानवर्ती जीव ज्ञानावरणीय कर्म का बन्धक होता है, क्योकि वह सात या छह कर्मो का बन्धक होता है । उपशान्तमोहादि गुणस्थानवर्ती (नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपु सक) जीव ज्ञानावरणीय कर्म के अबन्धक होते है, क्योकि ये चारो (उपशान्तमोह से अयोगीकेवली) गुणस्थान वाले जीव केवल एकविध वेदनीय कर्म के बधक होते है । इसीलिए कहा गया है—नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपु सक ज्ञानावरणीय कर्म को भजना (विकल्प) से बाधता है । और यह (वेदरहित) जीव आयुष्यकर्म को तो बाधता ही नही है, क्योकि निवृत्ति-बादरसम्पराय से लेकर अयोगी केवलीगुणस्थान तक मे आयुष्यबन्ध का व्यवच्छेद हो जाता है । स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपु सकवेदी जीव आयुष्यकर्म को एक भव मे एक ही बार बाधता है, वह भी आयुष्य का बन्धकाल होता है, तभी आयुष्यकर्म बाधता है । जब आयुष्य-बन्ध काल नही होता, तब आयुष्य नही बाधता । इसलिए कहा गया है—ये तीनो प्रकार के जीव आयुष्यकर्म को कदाचित् बाधते है, कदाचित् नही बाधते ।

(२) **सयतद्वार**—सामायिक, छेदोपस्थापनिक, परिहारविशुद्धि और सूक्ष्मसम्पराय, इन चार सयमो मे रहने वाला सयत जीव ज्ञानावरणीय को बाधता है, किन्तु यथाख्यात सयमवर्ती सयत जीव उपशान्तमोहादि वाला होने से ज्ञानावरणीय कर्म को नही बाधता, इसीलिए कहा गया है—सयत भजना से ज्ञानावरणीय कर्म को बाधता है, किन्तु असयत (मिथ्यादृष्टि आदि जीव) और सयतासयत (पचम गुणस्थानवर्ती देशविरत) जीव, ज्ञानावरणीय कर्म को बाधते है । जबकि नोसयत-नो-असयत-नोसयतासयत (अर्थात्-सिद्ध) जीव न तो ज्ञानावरणीय कर्म बाधते हैं और न ही आयुष्यादि अन्य कर्म । क्योकि उनके कर्मबध का कोई कारण नही रहता । सयत, असयत और सयतासयत, ये तीनो पूर्ववत् आयुष्यबन्धकाल मे आयुष्य बाधते है, अन्यथा नही बाधते ।

(३) **सम्यग्दृष्टिद्वार**—सम्यग्दृष्टि के दो भेद है—सराग-सम्यग्दृष्टि और वीतराग-सम्यग्-दृष्टि । जो वीतराग सम्यग्दृष्टि हैं, वे ज्ञानावरणीय कर्म को नही बाधते, क्योकि वे तो केवल एकविध वेदनीय कर्म के बन्धक हैं, जबकि सरागसम्यग्दृष्टि ज्ञानावरणीय कर्म को बाधते है । इसीलिए कहा

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ २३७ से २४२ तक

है—सम्यग्दृष्टि ज्ञानावरणीय कर्म कदाचित् बाधता है, कदाचित् नही बाधता। मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि तो ज्ञानावरणीय कर्म को बाधते ही है। सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव आयुष्यकर्म को कदाचित् बाधते है, कदाचित् नही बाधते, इस कथन का आशय यह है कि अपूर्वकरणादि सम्यग्दृष्टि जीव आयुष्य को नही बाधते, जबकि इनसे भिन्न चतुर्थ आदि गुणस्थानो वाले सम्यग्दृष्टि तथा मिथ्यादृष्टि जीव पूर्ववत् आयुष्यबन्धकाल मे आयुष्य को बाधते हैं, दूसरे समय मे नही बाधते। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवो मे (मिश्रदृष्टि अवस्था मे) आयुष्य बाधने के अध्यवसाय-स्थानो का अभाव होने से ये आयुष्य बाधते ही नही है।

(४) सज्ञीद्वार—मन-पर्याप्ति वाले जीवो को सज्ञी कहते है। वीतरागसज्ञी जीव ज्ञानावरणीय कर्म को नही बाधते, जबकि सरागसज्ञी जीव इसे बाधते है, इसीलिए कहा गया है—सज्ञी जीव ज्ञानावरणीय कर्म को कदाचित् बाधता है, कदाचित् नही बाधता, किन्तु मन पर्याप्ति से रहित असज्ञी जीव ज्ञानावरणीय कर्म को बाधते ही है। नोसज्ञी-नोअसज्ञी जीवो के तीन भेद होते हैं—सयोगी केवली, अयोगी केवली और सिद्ध भगवान्, इनके ज्ञानावरणीय कर्म के बन्ध के कारण न होने से ज्ञानावरणीय कर्म नही बाधते। अयोगीकेवली और सिद्ध भगवान् के सिवाय शेष सभी सज्ञी जीव एव असज्ञी जीव वेदनीय कर्म को बाधते है। इसलिए यह कहना युक्तिसगत है कि नोसज्ञी-नो असज्ञी जीव वेदनीय कर्म भजना से बाधते हैं। तथा पूर्वोक्त आशयानुसार सज्ञी और असज्ञी, ये दोनो आयुष्यकर्म को भजना से बाधते है। नोसज्ञी-नोअसज्ञी जीव आयुष्यकर्म को बाधते ही नही है।

(५) भवसिद्धिकद्वार—जो भवसिद्धिक वीतराग होते है, वे ज्ञानावरणीय कर्म नही बाधते, किन्तु जो भवसिद्धिक सराग होते है, वे इस कर्म को बाधते है, इसीलिए कहा गया है—भवसिद्धिक जीव ज्ञानावरणीय कर्म को भजना से बाँधते है। अभवसिद्धिक तो ज्ञानावरणीय कर्म बाँधते ही है, जबकि नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक (सिद्ध) जीव ज्ञानावरणीय कर्म एव आयुष्यकर्मादि को नही बाँधते। भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक ये दोनो आयुष्यकर्म को पूर्वोक्त आशयानुसार कदाचित् बाँधते है, कदाचित् नही बाँधते।

(६) दर्शनद्वार—चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी, यदि छद्मस्थवीतरागी हो तो ज्ञानावरणीय कर्म को नही बाधते, क्योकि वे केवल वेदनीयकर्म के बन्धक होते है। ये यदि सरागी-छद्मस्थ हो तो इसे बाधते है। इसीलिए कहा गया है कि ये तीनो ज्ञानावरणीय कर्म को भजना से बाँधते हैं। भवस्थकेवलीदर्शनी और सिद्धकेवलीदर्शनी, इन दोनो के ज्ञानावरणीय कर्मबन्ध का हेतु न होने से, ये दोनो इसे नही बाँधते। चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी छद्मस्थ वीतरागी और सरागी वेदनीय कर्म को बाँधते ही हैं। केवलदर्शनियो मे जो सयोगी केवली है, वे वेदनीयकर्म बाँधते हैं, किन्तु अयोगी केवली नही बाँधते। इसलिए कहा गया है कि केवलदर्शनी वेदनीयकर्म को भजना से बाँधते है।

(७) पर्याप्तकद्वार—जिस जीव ने उत्पन्न होने के बाद अपने योग्य आहार-शरीरादि पर्याप्तियाँ पूर्ण कर ली हो, वह पर्याप्तक और जिसने पूर्ण न की हो, वह अपर्याप्तक कहलाता है। अपर्याप्तक जीव ज्ञानावरणीयादि सात कर्म बाँधते है। पर्याप्तक जीवो के दो भेद—वीतराग और सराग। इनमे से वीतरागपर्याप्तक ज्ञानावरणीय कर्म को नही बाँधते, सरागपर्याप्तक बाँधते है, इसीलिए कहा गया है कि पर्याप्तक भजना से ज्ञानावरणीय कर्म बाँधते हैं। नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक

यानी सिद्ध जीव ज्ञानावरणीयादि आठो कर्मो को नही बाँधते। पर्याप्तक और अपर्याप्तक दोनो आयुष्यबन्ध के काल मे आयुष्य बाधते है, दूसरे समय मे नही, इसीलिए कहा गया है कि ये दोनो आयुष्य बन्ध भजना से करते है।

(८) भाषकद्वार—भाषालब्धि वाले को भाषक और भाषालब्धि से विहीन को 'अभाषक' कहते है। भाषक के दो भेद—वीतरागभाषक और सरागभाषक। वीतरागभाषक ज्ञानावरणीय कर्म नही बाँधते, सरागभाषक बाँधते है। इसीलिए कहा गया कि भाषक जीव भजना से ज्ञानावरणीय कर्म बाँधते हैं। अभाषक के चार भेद—अयोगी केवली, सिद्ध भगवान्, विग्रहगतिसमापन्न और एकेन्द्रिय पृथ्वीकायिकादि के जीव। इनमे से आदि के दो तो ज्ञानावरणीय कर्म नही बाँधते, किन्तु पिछले दो बाँधते है। आदि के दोनो अभाषक वेदनीय कर्म को नही बाँधते, जबकि पिछले दोनो वेदनीय कर्म बाँधते है। इसीलिए कहा गया है कि अभाषक जीव ज्ञानावरणीय और वेदनीयकर्म भजना से बाँधते है। भाषकजीव (सयोगी केवली गुणस्थान के अन्तिम समय तक के भाषक भी) वेदनीय कर्म बाँधते है।

(९) परित्तद्वार—एक शरीर मे एक जीव हो उसे परित्त कहते है, अथवा अल्प-सीमित ससार वाले को भी परित्त जीव कहते है। परित्त के दो प्रकार—वीतरागपरित्त और सरागपरित्त। वीतरागपरित्त ज्ञानावरणीय कर्म नही बाँधता, सरागपरित्त बाँधता है। इसीलिए कहा गया है कि परित्तजीव भजना से ज्ञानावरणीय कर्म को बाँधता है। जो जीव अनन्त जीवो के साथ एक शरीर मे रहता है, ऐसे साधारण कायवाले जीव को 'अपरित्त' कहते है, अथवा अनन्त ससारी को अपरित्त कहते है। दोनो प्रकार के अपरित्त जीव ज्ञानावरणीय कर्म बाधते है। नोपरित्त-नोअपरित्त अर्थात् सिद्ध जीव, ज्ञानावरणीयादि अष्टकर्म नही बाधते। परित्त और अपरित्त जीव आयुष्यबन्ध-काल मे आयुष्य बाधते है, किन्तु दूसरे समय मे नही, इसीलिए कहा गया है—परित्त और अपरित्त भजना से आयुष्य बाधते है।

(१०) ज्ञानद्वार—प्रथम के चारो ज्ञान वाले वीतराग-अवस्था मे ज्ञानावरणीय कर्म नही बाधते, सराग अवस्था मे बाधते है। इसीलिए इन चारो के ज्ञानावरणीय कर्मबन्ध के विषय मे भजना कही गई है। आभिनिबोधिक आदि चार ज्ञानो वाले वेदनीय कर्म को बाधते है, क्योकि छद्मस्थ वीतराग भी वेदनीय कर्म के बन्धक होते है। केवलज्ञानी वेदनीयकर्म को भजना से बाधते हैं, क्योकि सयोगी केवली वेदनीय के बन्धक तथा अयोगी केवली और सिद्ध वेदनीय के अबन्धक होते है।

(११) योगद्वार—मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी, ये तीनो सयोगी जब ११ वें, १२ वें, १३ वे गुणस्थानवर्ती होते है, तब ज्ञानावरणीय कर्म को नही बाँधते, इनके अतिरिक्त अन्य सभी सयोगी जीव ज्ञानावरणीय कर्म बाधते है। इसीलिए कहा गया कि सयोगी जीव भजना से ज्ञानावरणीय कर्म बाधते है। अयोगी के दो भेद—अयोगी केवली और सिद्ध। ये दोनो ज्ञानावरणीय, वेदनीयादि कर्म नही बाधते, किन्तु सभी सयोगी जीव वेदनीयकर्म के बन्धक होते हैं, क्योकि सयोगी केवली गुणस्थान तक सातावेदनीय का बन्ध होता है।

(१२) उपयोगद्वार—सयोगी जीव और अयोगी जीव, इन दोनो के साकार (ज्ञान) और अनाकार (दर्शन) ये दोनो उपयोग होते है। इन दोनो उपयोगो मे वर्तमान सयोगी जीव, ज्ञानावरणीयादि आठो कर्मप्रकृतियो को यथायोग्य बाधता है और अयोगी जीव नही बाधता, क्योकि अयोगी

जीव आठो कर्मप्रकृतियो का अबन्धक होता है। इसीलिए साकारोपयोगी और निराकारोपयोगी दोनो मे अष्टकर्मबन्ध की भजना कही है।

(१३) आहारकद्वार—आहारक के दो प्रकार—वीतरागी और सरागी। वीतरागी आहारक ज्ञानावरणीय कर्म नही बाधते, जबकि सरागी आहारक इसे बाधते है। इसी प्रकार अनाहारक के चार भेद होते हैं—विग्रहगति-समापन्न, समुद्घातप्राप्त केवली, अयोगीकेवली और सिद्ध। इनमे से प्रथम बाधते है, शेष तीनो ज्ञानावरणीय कर्म को नही बाधते। इसीलिए कहा गया है—आहारक की तरह अनाहारक भी ज्ञानावरणीय कर्म को भजना से बाधते है। आहारक जीव (सयोगी केवली तक) वेदनीय कर्म को बाधते है, जबकि अनाहारको मे से विग्रहगतिसमापन्न और समुद्घातप्राप्त केवली ये दोनो अनाहारक वेदनीय कर्म को बाधते है, अयोगी केवली और सिद्ध अनाहारक इसे नही बाधते। इसीलिए कहा गया है कि अनाहारकजीव वेदनीयकर्म को भजना से बाधते है। सभी प्रकार के अनाहारक जीव आयुष्यकर्म के अबधक है, जबकि आहारक जीव आयुष्यबन्धकाल मे आयुष्य बाधते है, दूसरे समय मे नही बाधते।

(१४) सूक्ष्मद्वार—सूक्ष्मजीव ज्ञानावरणीय कर्म का बधक है। बादर जीवो के दो भेद—वीतराग और सराग। वीतराग बादरजीव ज्ञानावरणीयकर्म के अबन्धक है, जबकि सराग बादर जीव इसके बन्धक है। नोसूक्ष्म-नोबादर अर्थात्—सिद्ध ज्ञानावरणीयादि सभी कर्मो के अबन्धक है। सूक्ष्म और बादर दोनो आयुष्यबन्धकाल मे आयुष्यकर्म बाधते है, दूसरे समय मे नही। इसीलिए इनका आयुष्य कर्मबन्ध भजना से कहा गया है।

(१५) चरमद्वार—चरम का अर्थ है—जिसका अन्तिम भव है या होने वाला है। यहाँ 'भव्य' को 'चरम' कहा गया है। अचरम का अर्थ है—जिसका अन्तिम भव नही होने वाला है अथवा जिसने भवो का अन्त कर दिया है। इस दृष्टि से अभव्य और सिद्ध को यहाँ 'अचरम' कहा गया है। चरम जीव यथायोग्य आठ कर्मप्रकृतियो को बाधता है और जब चरमजीव अयोगी-अवस्था मे हो, तब नही भी बाधता। इसीलिए कहा गया है कि चरमजीव आठो कर्मप्रकृतियो को भजना से बाधता है। जिसका कभी चरमभव नही होगा—ऐसा अभव्य-अचरम तो आठो प्रकृतियो को बाधता है, और सिद्ध अचरम (भवो का अन्तकर्ता) तो किसी भी कर्मप्रकृति को नही बाधता। इसीलिए कहा गया कि अचरम जीव आठो कर्म प्रकृतियो को भजना से बाधता है।[1]

पन्द्रह द्वारो मे उक्त जीवो के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा—

२९. [१] एएसि ण भंते ! जीवाण इत्थिवेदगाण पुरिसवेदगाण नपुंसगवेदगाणं अवेदगाण य कयरे २ अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा पुरिसवेदगा, इत्थिवेदगा सखेज्जगुणा, अवेदगा अणतगुणा, नपुंसगवेदगा अणतगुणा।

[२९-१ प्र] हे भगवन् ! स्त्रीवेदक, पुरुषवेदक, नपुंसकवेदक और अवेदक, इन जीवो मे से कौन किससे अल्प है, बहुत हैं, तुल्य हैं अथवा विशेषाधिक है ?

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २५६ से २५९ तक

[२९-१ उ] गौतम ! सबसे थोडे जीव पुरुषवेदक हैं, उनसे सख्येयगुणा स्त्रीवेदक जीव हैं, उनसे अनन्तगुणा अवेदक है और उनसे भी अनन्तगुणा नपु सकवेदक है ।

[२] एतेसिं सव्वेसिं पदाणं अप्पबहुगाइ उच्चारेयव्वाइ जाव[1] सव्वत्थोवा जीवा अचरिमा, चरिमा अणतगुणा ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति० ।

॥ छट्ठसए : तइओ उद्देसो समत्तो ॥

[२९-२] इन (पूर्वोक्त) सर्व पदो (सयतादि से लेकर चरम तक चतुर्दश द्वारो मे उक्त पदो) का अल्पबहुत्व कहना चाहिए । (सयत पद से लेकर) यावत् सबसे थोडे अचरम जीव हैं, और उनसे अनन्तगुणा चरम जीव है ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरने लगे ।

विवेचन—पन्द्रह द्वारो मे उक्त जीवो के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा—तीसरे उद्देशक के अन्तिम सूत्र मे सर्वप्रथम स्त्रीवेदकादि (पचमद्वार) जीवो के अल्पबहुत्व का निरूपण करके इसी प्रकार से अन्य १४ द्वारो मे उक्त चरमादिपर्यन्त जीवो के अल्पबहुत्व का अतिदेशपूर्वक निरूपण किया गया है ।

वेदको के अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण—यहाँ पुरुषवेदक जीवो की अपेक्षा स्त्रीवेदक जीवो को सख्यातगुणा अधिक बताने का कारण यह है कि देवो की अपेक्षा देवियाँ बत्तीस गुणी और बत्तीस अधिक हैं, नर मनुष्य की अपेक्षा नारी सत्ताईस गुणी और सत्ताईस अधिक है और तिर्यञ्च नर की अपेक्षा तिर्यञ्चनी तीन गुणी और तीन अधिक हैं । स्त्रीवेदको की अपेक्षा अवेदको को अनन्त गुणा बताने का कारण यह है कि अनिवृत्तिबादरसम्परायादि वाले जीव और सिद्ध जीव अनन्त हैं, इसलिए वे स्त्रीवेदको की अपेक्षा अनन्तगुणा है । अवेदको से नपु सकवेदी अनन्त इसलिए है कि सिद्धो की अपेक्षा अनन्तकायिक जीव अनन्तगुणा है, जो सब नपु सक हैं ।

संयतद्वार से चमरद्वार तक का अल्पबहुत्व—उपर्युक्त अल्पबहुत्व की तरह ही सयतद्वार से चरमद्वार तक १४ ही द्वारो का अल्पबहुत्व प्रज्ञापनासूत्र के तृतीय पद मे उक्त वर्णन की तरह कहना चाहिए ।[2]

यहाँ अचरम का अर्थ सिद्ध-अभव्यजीव लिया गया है और चरम का अर्थ भव्य । अतएव अचरम जीवो की अपेक्षा चरम जीव अनन्तगुणित कहे गए है ।

॥ छठा शतक . तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

---

१ 'जाव' पद यहाँ २९-१ सू के प्रश्न की तरह 'सजय' से लेकर चरिम-अचरिम तक प्रश्न और उत्तर का सयोजन कर लेने का सूचक है ।

२ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २६० (ख) प्रज्ञापना तृतीयपद, ८१ से १११ पृ तक

चउत्थो उद्देसओ : 'सपएस'

चतुर्थ उद्देशक : सप्रदेश

कालादेश से चौबीस दण्डक के एक-अनेक जीवों की सप्रदेशता-अप्रदेशता की प्ररूपणा—

१ जीवे णं भंते ! कालादेसेण किं सपदेसे, अपदेसे ?

गोयमा ! नियमा सपदेसे ।

[१ प्र.] भगवन् ! क्या जीव कालादेश (काल की अपेक्षा) से सप्रदेश है या अप्रदेश है ?

[१ उ.] गौतम ! कालादेश से जीव नियमतः (निश्चित रूप से) सप्रदेश है ।

२ [१] नेरतिए णं भंते ! कालादेसेण किं सपदेसे, अपदेसे ?

गोयमा ! सिय सपदेसे, सिय अपदेसे ।

[२-१ प्र.] भगवन् ! क्या नैरयिक जीव कालादेश से सप्रदेश है या अप्रदेश है ?

[२-१ उ.] गौतम ! एक नैरयिक जीव कालादेश से कदाचित् सप्रदेश है और कदाचित् अप्रदेश है ।

[२] एवं जाव[1] सिद्धे ।

[२-२ प्र.] इस प्रकार यावत् एक सिद्ध-जीव-पर्यन्त कहना चाहिए ।

३. जीवा णं भंते ! कालादेसेण किं सपदेसा, अपदेसा ?

गोयमा ! नियमा सपदेसा ।

[३ प्र.] भगवन् ! कालादेश की अपेक्षा बहुत जीव (अनेक जीव) सप्रदेश हैं या अप्रदेश हैं ?

[३ उ.] गौतम ! अनेक जीव कालादेश की अपेक्षा नियमतः सप्रदेश हैं ।

४ [१] नेरइया णं भंते ! कालादेसेण किं सपदेसा, अपदेसा ?

गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्ज सपदेसा, अहवा सपदेसा य अपदेसे य, अहवा सपदेसा य अपदेसा य ।

[४-१ प्र.] भगवन् ! नैरयिक जीव (बहुत-से नैरयिक) कालादेश की अपेक्षा क्या सप्रदेश हैं या अप्रदेश हैं ?

---

१ 'जाव' पद यहाँ भवनपति से लेकर वैमानिकदेवपर्यन्त दण्डकों का सूचक है ।

[४-१ उ] गौतम ! (नैरयिको के तीन विभाग है—) १. सभी (नैरयिक) सप्रदेश हैं, २ बहुत-से सप्रदेश और एक अप्रदेश है, और ३ बहुत-से सप्रदेश और बहुत-से अप्रदेश है।

[२] एवं जाव[1] थणियकुमारा।

[४-२] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारो तक कहना चाहिए।

५ [१] पुढविकाइया ण भते ! किं सपदेसा, अपदेसा ?
गोयमा ! सपदेसा वि, अपदेसा वि।

[५-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव सप्रदेश है या अप्रदेश हैं ?
[५-१ उ] गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव सप्रदेश भी है, अप्रदेश भी हैं।

[२] एव जाव[2] वणप्फतिकाइया।

[५-२] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक तक कहना चाहिए।

६ सेसा जहा नेरइया तहा जाव[3] सिद्धा।

[६] जिस प्रकार नैरयिक जीवो का कथन किया गया है, उसी प्रकार सिद्धपर्यन्त शेष सभी जीवो के लिए कहना चाहिए।

आहारक आदि से विशेषित जीवो में देश-अप्रदेश-वक्तव्यता—

७ [१] आहारगाणं जीवेगेंदियवज्जो तियभगो।

[७-१] जीव और एकेन्द्रिय को छोडकर शेष सभी आहारक जीवो के लिए तीन भग कहने चाहिए—यथा (१) सभी सप्रदेश, (२) बहुत सप्रदेश और एक अप्रदेश, और (३) बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश।

[२] अणाहारगाणं जीवेगिंदियवज्जा छब्भंगा एवं भाणिअव्वा-सपदेसा वा, अपएसा वा, अहवा सपदेसे य अपदेसे य, अहवा सपदेसे य अपदेसा य, अहवा सपदेसा य अपदेसे य, अहवा सपदेसा य अपदेसा य। सिद्धेहिं तियभंगो।

[७-२] अनाहारक जीवो के लिए एकेन्द्रिय को छोडकर छह भग इस प्रकार कहने चाहिए—यथा—(१) सभी सप्रदेश, (२) सभी अप्रदेश, (३) एक सप्रदेश और एक अप्रदेश, (४) एक सप्रदेश और बहुत अप्रदेश, (५) बहुत सप्रदेश और एक अप्रदेश, और (६) बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश।

सिद्धो के लिए तीन भग कहने चाहिए।

---

१ 'जाव' पद यहाँ 'असुरकुमार' से लेकर 'स्तनितकुमार' तक का सूचक है।
२ 'जाव' पद से यहाँ 'अप्कायिक' से लेकर 'वनस्पतिकायिक' तक समझना।
३ 'जाव' पद से वैमानिक पर्यन्त के दण्डको का ग्रहण समझ लेना चाहिए।

८. [१] भवसिद्धीया अभवसिद्धीया जहा ओहिया ।

[८-१] भवसिद्धिक (भव्य) और अभवसिद्धिक (अभव्य) जीवो के लिए औधिक (सामान्य) जीवो की तरह कहना चाहिए।

[२] नोभवसिद्धियनोअभवसिद्धिया जीव-सिद्धेहिं तियभगो ।

[८-२] नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीव और सिद्धो मे (पूर्ववत्) तीन भग कहने चाहिए।

९ [१] सण्णीहिं जीवादिओ तियभगो ।

[९-१] सज्ञी जीवो मे जीव आदि तीन भग कहने चाहिए।

[२] असण्णीहिं एगिंदियवज्जो तियभगो । नेरइय-देव-मणुएहिं छब्भगा ।

[९-२] असज्ञी जीवो मे एकेन्द्रिय को छोडकर तीन भग कहने चाहिए। नैरयिक, देव और मनुष्यो मे छह भग कहने चाहिए।

[३] नोसण्णि-नोअसण्णिणो जीव-मणुय-सिद्धेहिं तियभगो ।

[९-३] नोसज्ञी-नो असज्ञी, जीव, मनुष्य और सिद्धो मे तीन भग कहने चाहिए।

१०. [१] सलेसा जहा ओहिया। कण्हलेस्सा नीललेस्सा काउलेस्सा जहा आहारओ, नवर जस्स अत्थि एयाओ। तेउलेस्साए जीवादिओ तियभगो, नवर पुढविकाइएसु आउ-वणप्फतीसु छब्भगा। पम्हलेस-सुक्कलेस्साए जीवाइओ तियभंगो ।

[१०-१] सलेश्य (लेश्या वाले) जीवो का कथन, औधिक जीवो की तरह करना चाहिए। कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या वाले जीवो का कथन आहारक जीव की तरह करना चाहिए। किन्तु इतना विशेष है कि जिसके जो लेश्या हो, उसके वह लेश्या कहनी चाहिए। तेजोलेश्या मे जीव आदि तीन भग कहने चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक जीवो मे छह भग कहने चाहिए। पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या मे जीवादिक तीन भग कहने चाहिए।

[२] अलेसेहिं जीव-सिद्धेहिं तियभगो, मणुएसु छब्भगा ।

[१०-२] अलेश्य (लेश्यारहित) जीव और सिद्धो मे तीन भग कहने चाहिए, तथा अलेश्य मनुष्यो मे (पूर्ववत्) छह भग कहने चाहिए।

११ [१] सम्मद्दिट्ठीहिं जीवाइओ तियभंगो । विगलिंदिएसु छब्भगा ।

[११-१] सम्यग्दृष्टि जीवो मे जीवादिक तीन भग कहने चाहिए। विकलेन्द्रियो मे छह भग कहने चाहिए।

[२] मिच्छद्दिट्ठीहिं एगिंदियवज्जो तियभगो ।

[११-२] मिथ्यादृष्टि जीवो मे एकेन्द्रिय को छोड कर तीन भग कहने चाहिए।

[३] सम्मामिच्छद्दिट्ठीहिं छब्भंगा।

[११-२] सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवो मे छह भग कहने चाहिए।

१२. [१] संजतेहिं जीवाइओ तियभंगो।

[१२-१] सयतो मे जीवादि तीन भग कहने चाहिए।

[२] असजतेहिं एगिंदियवज्जो तियभंगो।

[१२-२] असयतो मे एकेन्द्रिय को छोड कर तीन भग कहने चाहिए।

[३] सजतासजतेहिं तियभंगो जीवादिओ।

[१२-३] सयतासयत जीवो मे जीवादि तीन भग कहने चाहिए।

[४] नोसजयनोअसजयनोसजतासजत जीव-सिद्धेहिं तियभंगो।

[१२-४] नोसयत-नोअसयत-नोसयतासयत जीव और सिद्धो मे तीन भग कहने चाहिए।

१३ [१] सकसाईहिं जीवादिओ तियभंगो। एगिंदिएसु अभंगकं। कोहकसाईहिं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो। देवेहिं छब्भंगा। माणकसाई मायाकसाई जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो। नेरतियदेवेहिं छब्भंगा। लोभकसायीहिं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो। नेरतिएसु छब्भंगा।

[१३-१] सकषायी (कषाययुक्त) जीवो मे जीवादि तीन भग कहने चाहिए। एकेन्द्रिय (सकषायी) मे अभगक (तीन भग नही, किन्तु एक भग)-कहना चाहिए। क्रोधकषायी जीवो मे जीव और एकेन्द्रिय को छोड कर तीन भग कहने चाहिए। मानकषायी और मायाकषायी जीवो मे जीव और एकेन्द्रिय को छोड कर तीन भग कहने चाहिए। नैरयिको और देवो मे छह भग कहने चाहिए। लोभकषायी जीवो मे जीव और एकेन्द्रिय को छोडकर तीन भग कहने चाहिए। नैरयिक जीवो मे छह भग कहने चाहिए।

[२] अकसाई जीव-मणुएहिं सिद्धेहिं तियभंगो।

[१३-२] अकषायी जीवो, जीव, मनुष्य और सिद्धो मे तीन भग कहने चाहिए।

१४. [१] ओहियनाणे आभिणिबोहियनाणे सुयनाणे जीवादिओ तियभंगो। विगलिंदिएहिं छब्भंगा। ओहिनाणे मणपज्जवणाणे केवलनाणे जीवादिओ तियभंगो।

[१४-१] औधिक (समुच्चय) ज्ञान, आभिनिवोधिक ज्ञान, और श्रुतज्ञान मे जीवादि तीन भग कहने चाहिए। विकलेन्द्रियो मे छह भग कहने चाहिए। अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान और केवलज्ञान मे जीवादि तीन भग कहने चाहिए।

[२] ओहिए अण्णाणे मतिअण्णाणे सुयअण्णाणे एगिंदियवज्जो तियभंगो। विभंगणाणे जीवादिओ तियभंगो।

[१४-२] औघिक (समुच्चय) अज्ञान, मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान मे एकेन्द्रिय को छोडकर तीन भग कहने चाहिए। विभगज्ञान मे जीवादि तीन भग कहने चाहिए।

१५. [१] सजोगी जहा ओहिओ। मणजोगी वयजोगी कायजोगी जीवादिओ तियभगो, नवर कायजोगी एगिंदिया तेसु अभगक।

[१५-१] जिस प्रकार औघिक जीवो का कथन किया, उसी प्रकार सयोगी जीवो का कथन करना चाहिए। मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी मे जीवादि तीन भग कहने चाहिए। विशेषता यह है कि जो काययोगी एकेन्द्रिय होते है, उनमे अभगक (अधिक भग नही, केवल एक भग) होता है।

[२] अजोगी जहा अलेसा।

[१५-२] अयोगी जीवो का कथन अलेश्यजीवो के समान कहना चाहिए।

१६. सागारोवउत्त-अणागारोवउत्तेहि जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

[१६] साकार उपयोग वाले और अनाकार उपयोग वाले जीवो मे जीव और एकेन्द्रिय को छोडकर तीन भग कहने चाहिए।

१७. [१] सवेयगा य जहा सकसाई। इत्थिवेयग-पुरिसवेदग-नपुसगवेदगेसु जीवादिओ तियभगो, नवर नपुसगवेदे एगिंदिएसु अभगय।

[१७-१] सवेदक जीवो का कथन सकषायी जीवो के समान करना चाहिए। स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुसकवेदी जीवो मे जीवादि तीन भग कहने चाहिए। विशेष यह है कि नपुसकवेद मे जो एकेन्द्रिय होते है, उनमे अभगक (अधिक भग नही, किन्तु एक भग) है।

[२] अवेयगा जहा अकसाई।

[१७-२] जैसे अकषायी जीवो के विषय मे कथन किया, वैसे ही अवेदक (वेदरहित) जीवो के विषय मे कहना चाहिए।

१८ [१] ससरीरी जहा ओहिओ। ओरालिय-वेउव्वियसरीराण जीवएगिंदियवज्जो तियभगो। आहारगसरीरे जीव-मणुएसु छब्भगा। तेयग-कम्मगाण जहा ओहिया।

[१८-१] जैसे औघिक जीवो का कथन किया, वैसे ही सशरीरी जीवो के विषय मे कहना चाहिए। औदारिक और वैक्रियशरीर वाले जीवो मे जीव और एकेन्द्रिय को छोड कर तीन भग कहने चाहिए। आहारक शरीरवाले जीवो मे जीव और मनुष्य मे छह भग कहने चाहिए। तैजस और कार्मण शरीर वाले जीवो का कथन औघिक जीवो के समान कहना चाहिए।

[२] असरीरेहि जीव-सिद्धेहि तियभगो।

[१८-२] अशरीरी, जीव और सिद्धो के लिए तीन भग कहने चाहिए।

१९ [१] आहारपज्जत्तीए सरीरपज्जत्तीए इंदियपज्जत्तीए आणापाणपज्जत्तीए जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो। भासामणपज्जत्तीए जहा सण्णी।

[१९-१] आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति और श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति वाले जीवो मे जीव और एकेन्द्रिय को छोड कर तीन भग कहने चाहिए। भाषापर्याप्ति और मन पर्याप्ति वाले जीवो का कथन सज्ञीजीवो के समान कहना चाहिए।

[२] आहारअपज्जत्तीए जहा अणाहारगा। सरीरअपज्जत्तीए इंदियअपज्जत्तीए आणापाणअपज्जत्तीए जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, नेरइय-देव-मणुएहिं छब्भंगा। भासामणअपज्जत्तीए जीवादिओ तियभंगो, णेरइय-देव-मणुएहिं छब्भंगा।

[१९-२] आहारअपर्याप्ति वाले जीवो का कथन अनाहारक जीवो के समान कहना चाहिए। शरीर-अपर्याप्ति, इन्द्रिय-अपर्याप्ति और श्वासोच्छ्वास-अपर्याप्ति वाले जीवो मे जीव और एकेन्द्रिय को छोड तीन भग कहने चाहिए। (अपर्याप्तक) नैरयिक, देव और मनुष्यो मे छह भग कहने चाहिए। भाषाअपर्याप्ति और मन-अपर्याप्ति वाले जीवो मे जीव आदि तीन भग कहने चाहिए। नैरयिक, देव और मनुष्यो मे छह भग जानने चाहिए।

२० गाहा—सपदेसाऽऽहारग भविय सण्णि लेस्सा दिट्ठी संजय कसाए।
णाणे जोगुवओगे वेदे य सरीर पज्जत्ती ॥१॥

[२०. सग्रहणी गाथा का अर्थ—] सप्रदेश, आहारक, भव्य, सज्ञी, लेश्या, दृष्टि, सयत, कषाय, ज्ञान, योग, उपयोग, वेद, शरीर और पर्याप्ति, इन चौदह द्वारो का कथन ऊपर किया गया है।

विवेचन—आहारक आदि जीवो मे सप्रदेश-अप्रदेश-वक्तव्यता—प्रस्तुत बीस सूत्रो मे (सू १ से २० तक) आहारक आदि १४ द्वारो मे सप्रदेश-अप्रदेश की दृष्टि से विविध भगो की प्ररूपणा की गई है।

सप्रदेश आदि चौदह द्वार—(१) सप्रदेशद्वार—कालादेश का अर्थ है—काल की अपेक्षा से। विभागरहित को अप्रदेश और विभागसहित को सप्रदेश कहते है। समुच्चय मे जीव अनादि है, इसलिए उसकी स्थिति अनन्त समय की है, इसलिए वह सप्रदेश है। जो जिस भाव (पर्याय) मे प्रथम-समयवर्त्ती होता है, वह काल की अपेक्षा अप्रदेश और एक समय से अधिक दो-तीन-चार आदि समयो मे वर्तने वाला काल की अपेक्षा सप्रदेश होता है।[1]

कालादेश की अपेक्षा जीवो के भंग—जिस नैरयिक जीव को उत्पन्न हुए एक समय हुआ है, वह कालादेश से अप्रदेश है, और प्रथम समय के पश्चात् द्वितीय-तृतीयादिसमयवर्ती नैरयिक सप्रदेश है। इस प्रकार औधिक जीव, नैरयिक आदि २४ और सिद्ध के मिलाकर २६ दण्डको मे एकवचन को

१ जो जस्स पढमसमए वट्टइ भावस्स सो उ अपएसो।
अण्णम्मि वट्टमाणो कालाएसेण सपएसो ॥ १ ॥
—भगवती० अ० वृत्ति, पत्राक २६१ मे उद्धृत

लेकर कदाचित् अप्रदेश, कदाचित् सप्रदेश, ये दो-दो भग होते हे। इन्ही २६ दण्डको मे बहुवचन को लेकर विचार करने पर तीन भग होते है—

(१) उपपातविरहकाल मे पूर्वोत्पन्न जीवो की सख्या असख्यात होने से सभी सप्रदेश होते हैं, अत वे सब सप्रदेश है।

(२) पूर्वोत्पन्न नैरयिको मे जब एक नया नैरयिक उत्पन्न होता है, तब उसकी प्रथम समय की उत्पत्ति की अपेक्षा से वह 'अप्रदेश' कहलाता है। इसके सिवाय बाकी नैरयिक जिनकी उत्पत्ति को दो-तीन-चार आदि समय हो गए है, वे 'सप्रदेश' कहलाते है। तथा

(३) एक-दो-तीन आदि नैरयिकजीव एक समय मे उत्पन्न भी होते है, उसी प्रमाण मे मरते भी है,[1] इसलिए वे सब 'अप्रदेश' कहलाते है, तथा पूर्वोत्पन्न और उत्पद्यमान जीव बहुत होने से वे सब सप्रदेश भी कहलाते हैं। इसीलिए मूलपाठ मे नैरयिको के क्रमश तीन भगो का सकेत है। पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रियजीवो मे दो भग होते है—वे कदाचित् सप्रदेश भी होते है, और कदाचित् अप्रदेश भी। द्वीन्द्रियो से लेकर सिद्धपर्यन्त पूर्ववत् (नैरयिको की तरह) तीन-तीन भग होते है।

२ आहारकद्वार—आहारक और अनाहारक शब्दो से विशेपित दोनो प्रकार के जीवो के प्रत्येक के एकवचन और बहुवचन को लेकर क्रमश एक-एक दण्डक यानी दो-दो दण्डक कहने चाहिए। जो जीव विग्रहगति मे या केवली समुद्घात मे अनाहारक होकर फिर आहारकत्व को प्राप्त करता है, वह आहारककाल के प्रथम समय वाला जीव 'अप्रदेश' और प्रथम समय के अतिरिक्त द्वितीय-तृतीयादि समयवर्ती जीव सप्रदेश कहलाता है। इसीलिए मूलपाठ मे कहा गया है—कदाचित् कोई सप्रदेश और कदाचिन् कोई अप्रदेश होता है। इसी प्रकार सभी आदिवाले (शुरु होने वाले) भावो मे एकवचन मे जान लेना चाहिए। अनादि वाले भावो मे तो सभी नियमत सप्रदेश होते है। बहुवचन वाले दण्डक मे भी इसी प्रकार—कदाचित् सप्रदेश भी और कदाचित् अप्रदेश भी होते है। जैसे—आहारकपने मे रहे हुए बहुत जीव होने से उनका सप्रदेशत्व है, तथा बहुत-से जीव विग्रहगति के पश्चात् प्रथम समय मे तुरन्त ही अनाहारक होने से उनका अप्रदेशत्व भी है। इस प्रकार आहारक जीवो मे सप्रदेशत्व और अप्रदेशत्व ये दोनो पाये जाते हैं। इसी प्रकार एकेन्द्रिय (पृथ्वीकायिक आदि) जीवो के लिए भी कहना चाहिए। सिद्ध अनाहारक होने से उनमे आहारकत्व नही होता है। अत सिद्ध पद और एकेन्द्रिय को छोडकर नैरयिकादि जीवो मे मूलपाठोक्त तीन भग (१ सभी सप्रदेश, अथवा २ बहुत सप्रदेश और एक अप्रदेश, अथवा ३ बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश) कहने चाहिए। अनाहारक के भी इसी प्रकार एकवचन-बहुवचन को लेकर दो दण्डक कहने चाहिए। विग्रहगतिसमापन्न जीव, समुद्घातगत केवली, अयोगी केवली और सिद्ध, ये सब अनाहारक होते हैं। ये जब अनाहारकत्व के प्रथम समय मे होते है तो 'अप्रदेश' और द्वितीय-तृतीय आदि समय मे होते हैं तो 'सप्रदेश' कहलाते हैं। बहुवचन के दण्डक मे जीव और एकेन्द्रिय को नही लेना चाहिए, क्योकि इन दोनो पदो मे 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश', यह एक ही भग पाया जाता है, क्योकि इन दोनो पदो मे विग्रहगति-समापन्न अनेक जीव सप्रदेश और अनेक जीव अप्रदेश मिलते है। नैरयिकादि तथा द्वीन्द्रिय आदि जीवो मे थोडे जीवो की उत्पत्ति होती है। अतएव

---

१ एगो व दो व तिण्णि व सखमसखा च एगसमएण।
उववज्जते वइया, उव्वट्टता वि एमेव ॥ २ ॥ —भगवती० अ० वृत्ति, पत्राक २६१ मे उद्धृत

उनमे एक-दो आदि अनाहारक होने से छह भंग सभवित होते है, जिनका मूलपाठ मे उल्लेख है। यहाँ एकवचन की अपेक्षा दो भग नही होते, क्योकि यहाँ बहुवचन का अधिकार चलता है। सिद्धो मे तीन भग होते है, उनमे सप्रदेशपद बहुवचनान्त ही सम्भवित है।

३ भव्यद्वार—भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक, इन दोनो के प्रत्येक के दो-दो दण्डक है, जो औधिक (सामान्य) जीव-दण्डक की तरह है। इनमे भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक जीव, नियमत सप्रदेश होता है। क्योकि भव्यत्व और अभव्यत्व का प्रथम समय कभी नही होता। ये दोनो भाव अनादिपारिणामिक है। नैरयिक आदि जीव, सप्रदेश भी होता है, अप्रदेश भी। बहुत जीव तो सप्रदेश ही होते हैं। नैरयिक आदि जीवो मे तीन भग होते है। एकेन्द्रिय जीवो मे 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश', यह एक ही भग होता है। क्योकि ये बहुत सख्या मे ही प्रति समय उत्पन्न होते रहते हैं। यहाँ भव्य और अभव्य के प्रकरण मे सिद्धपद नही कहना चाहिए, क्योकि सिद्ध जीव न तो भव्य कहलाते है, न अभव्य। वे नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक होते हैं। अत नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीवो मे एकवचक और बहुवचन को लेकर दो दण्डक कहने चाहिए। इसमे जीवपद और सिद्धपद, ये दो पद ही कहने चाहिए, क्योकि नैरयिक आदि जीवो के साथ नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक' विशेषण लग नही सकता। इस दण्डक के बहुवचन की अपेक्षा तीन भग मूलपाठ मे बताए है।

४ सञ्ज्ञीद्वार—सञ्ज्ञी जीवो के एकवचन और बहुवचन को लेकर दो दण्डक होते हैं। बहुवचन के दण्डक मे जीवादि पदो मे तीन भग होते है, यथा—(१) जिन सञ्ज्ञी जीवो को बहुत-सा समय उत्पन्न हुए हो गया है, वे कालादेश से सप्रदेश है (२) उत्पादविरह के बाद जब एक जीव की उत्पत्ति होती है, तब उसको प्रथम समय की अपेक्षा 'बहुत जीव सप्रदेश और एक जीव अप्रदेश' कहा जाता है, और (३) जब बहुत जीवो की उत्पत्ति एक ही समय मे होती है, तब 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश' यो कहा जाता है। इस प्रकार ये तीन भग सभी पदो मे जान लेने चाहिए। किन्तु इन दो दण्डको मे एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सिद्धपद नही कहना चाहिए, क्योकि इनमे 'सञ्ज्ञी' विशेषण सम्भव ही नही है। असञ्ज्ञी-जीवो मे एकेन्द्रियपदो को छोडकर दूसरे दण्डक मे ये ही तीन भग कहने चाहिए। पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रियो मे सदा बहुत जीवो की उत्पत्ति होती है, इसलिए उन पदो मे 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश', यह एक ही भग सम्भव है। नैरयिको से ले कर व्यन्तर देवो तक असञ्ज्ञी जीव उत्पन्न होते हैं, वे जब तक सञ्ज्ञी न हो, तब तक उनका असञ्ज्ञीपन जानना चाहिए। नैरयिक आदि मे असञ्ज्ञीपन कादाचित्क होने से एकत्व एव बहुत्व की सम्भावना होने के कारण मूलपाठ मे ६ भग बताए गए हैं। असञ्ज्ञी प्रकरण मे ज्योतिष्क, वैमानिक और सिद्ध का कथन नही करना चाहिए, क्योकि उनमे असञ्ज्ञीपन सम्भव नही है। नोसञ्ज्ञी-नोअसञ्ज्ञी विशेषण वाले जीवो के दो दण्डक कहने चाहिए। उसमे बहुवचन को लेकर द्वितीय दण्डक मे जीव, मनुष्य और सिद्ध मे उपर्युक्त तीन भग कहने चाहिए, क्योकि उनमे बहुत-से अवस्थित मिलते हैं। उनमे उत्पद्यमान एकादि सम्भव हैं। नोसञ्ज्ञी-नोअसञ्ज्ञी के इन दो दण्डको मे जीव, मनुष्य और सिद्ध, ये तीन पद ही कहने चाहिए, क्योकि नैरयिकादि जीवो के साथ 'नोसञ्ज्ञी-नोअसञ्ज्ञी' विशेषण घटित नही हो सकता।

५ लेश्याद्वार—सलेश्य जीवो के दो दण्डको मे जीव और नैरयिको का कथन औधिक दण्डक के समान करना चाहिए, क्योकि जीवत्व की तरह सलेश्यत्व भी अनादि है, इसलिए इन दोनो मे

किसी प्रकार की विशेषता नही है, किन्तु इतना विशेष है कि सलेश्य प्रकरण मे सिद्ध पद नही कहना चाहिए, क्योकि सिद्ध अलेश्य होते है। कृष्ण-नील-कापोतलेश्यावान् जीव और नैरयिको के प्रत्येक के दो-दो दण्डक आहारक जीव की तरह कहने चाहिए। जिन जीव एव नेरयिकादि मे जो लेश्या हो, वही कहनी चाहिए। जैसे कि कृष्णादि तीन लेश्याएँ, ज्योतिष्क एव वैमानिक देवो मे नही होती। सिद्धो मे तो कोई भी लेश्या नही होती। तेजोलेश्या के एकवचन और बहुवचन को लेकर दो दण्डक कहने चाहिए। बहुवचन की अपेक्षा द्वितीय दण्डक मे जीवादिपदो के तीन भग होते हैं। पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय मे ६ भग होते हे, क्योकि पृथ्वीकायादि जीवो मे तेजोलेश्यावाले एकादिदेव—(पूर्वोत्पन्न और उत्पद्यमान दोनो प्रकार के) पाए जाते हे। इसलिए सप्रदेशत्व और अप्रदेशत्व के एकत्व और बहुत्व का सम्भव है। तेजोलेश्याप्रकरण मे नैरयिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, विकलेन्द्रिय और सिद्ध, ये पद नही कहने चाहिए, क्योकि इनमे तेजोलेश्या नही होती। पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या के दो-दो दण्डक कहने चाहिए। दूसरे दण्डक मे जीवादि पदो मे तीन भग कहने चाहिए। पद्म-शुक्ललेश्याप्रकरण मे पचेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य और वैमानिक देव ही कहने चाहिए, क्योकि इनके सिवाय दूसरे जीवो मे ये लेश्याएँ नही होती। अलेश्य जीव के एकवचन और बहुवचन को लेकर दो दण्डको मे जीव, मनुष्य और सिद्ध पद का ही कथन करना चाहिए, क्योकि दूसरे जीवो मे अलेश्यत्व सभव नही है। इनमे जीव और सिद्ध मे तीन भग और मनुष्य मे छह भग कहने चाहिए, क्योकि अलेश्यत्व प्रतिपन्न (प्राप्त किये हुए) और प्रतिपद्यमान (प्राप्त करते हुए) एकादि मनुष्यो का सम्भव होने से सप्रदेशत्व मे और अप्रदेशत्व मे एकवचन और बहुवचन सम्भव है।

६ दृष्टिद्वार—सम्यग्दृष्टि के दो दण्डको मे सम्यग्दर्शनप्राप्ति के प्रथम समय मे अप्रदेशत्व है, और बाद के द्वितीय-तृतीयादि समयो मे सप्रदेशत्व है। इनमे दूसरे दण्डक मे जीवादिपदो मे पूर्वोक्त तीन भग कहने चाहिए। विकलेन्द्रियो मे पूर्वोत्पन्न और उत्पद्यमान एकादि सास्वादन सम्यग्दृष्टि जीव पाए जाते है, इस कारण इनमे ६ भग जानने चाहिए। अत सप्रदेशत्व और अप्रदेशत्व मे एकत्व और बहुत्व सभव है। एकेन्द्रिय सर्वथा मिथ्यादृष्टि होते है, उनमे सम्यग्दर्शन न होने से सम्यग्दृष्टिद्वार मे एकेन्द्रियपद का कथन नही करना चाहिए। मिथ्यादृष्टि के एकवचन और बहुवचन से दो दण्डक कहने चाहिए। उनमे से दूसरे दण्डक मे जीवादि पदो के तीन भग होते है, क्योकि मिथ्यात्व-प्रतिपन्न (प्राप्त) जीव बहुत हैं और सम्यक्त्व से भ्रष्ट होने के बाद मिथ्यात्व को प्रतिपद्यमान एक जीव भी सभव है। इस कारण तीन भग होते हैं। मिथ्यादृष्टि के प्रकरण मे एकेन्द्रिय जीवो मे 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश', यह एक ही भग पाया जाता है, क्योकि एकेन्द्रिय जीवो मे अवस्थित और उत्पद्यमान बहुत होते है। इस (मिथ्यादृष्टि—) प्रकरण मे सिद्धो का कथन नही करना चाहिए, क्योकि उनमे मिथ्यात्व नही होता। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवो के एकवचन और बहुवचन, ये दो दण्डक कहने चाहिए। उनमे से बहुवचन के दण्डक मे ६ भग होते हैं, क्योकि सम्यग्मिथ्यादृष्टित्व को प्राप्त और प्रतिपद्यमान एकादि जीव भी पाए जाते है। इस सम्यग्मिथ्यादृष्टिद्वार मे एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सिद्ध जीवो का कथन नही करना चाहिए, क्योकि उनमे सम्यग्मिथ्यादृष्टित्व असम्भव है।

७ सयतद्वार—'सयत' शब्द से विशेषित जीवो मे तीन भग कहने चाहिए, क्योकि सयम को प्राप्त बहुत जीव होते हैं, सयम को प्रतिपद्यमान एकादि जीव होते है, इसलिए तीन भग घटित होते हैं। सयतद्वार मे केवल दो ही पद कहने चाहिए—जीवपद और मनुष्यपद, क्योकि दूसरे जीवो मे

सयतत्व का अभाव है। असयत जीवो के एकवचन और बहुवचन को लेकर दो दण्डक कहने चाहिए। उनमे से बहुवचन सम्बन्धी द्वितीय दण्डक मे तीन भग होते हैं, क्योकि असयतत्व को प्राप्त बहुत जीव होते है, तथा सयतत्व से भ्रष्ट होकर असयतत्व को प्राप्त करते हुए एकादि जीव होते है, इसलिए उनमे तीन भग घटित हो सकते हैं। एकेन्द्रिय जीवो मे पूर्वोक्तयुक्ति के अनुसार 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश'—यह एक ही भग पाया जाता है। इस असयतप्रकरण मे 'सिद्धपद' नही कहना चाहिए, क्योकि सिद्धो मे असयतत्व नही होता। 'सयतासयत' पद मे भी एकवचन-बहुवचन को लेकर दो दण्डक कहने चाहिए। उनमे से दूसरे दण्डक मे बहुवचन की अपेक्षा पूर्वोक्त तीन भग कहने चाहिए, क्योकि सयतासयतत्व—देशविरतिपन को प्राप्त बहुत जीव होते है, और उससे भ्रष्ट होकर या असयम का त्याग कर सयतासयतत्व को प्राप्त होते हुए एकादि जीव होते है। अत तीन भग घटित होते है। इस सयतासयतद्वार मे भी जीव, पचेन्द्रियतिर्यञ्च और मनुष्य, ये तीन पद ही कहने चाहिए, क्योकि इन तीन पदो के अतिरिक्त अन्य जीवो मे सयतासयतत्व नही पाया जाता। नोसयत—नोअसयत—नोसयतासयत द्वार मे जीव और सिद्ध, ये दो पद ही कहने चाहिए, भग भी पूर्वोक्त तीन होते हैं।

८ कषायद्वार—सकषायी जीवो मे तीन भग पाए जाते है, यथा—(१) सकषायी जीव, सदा अवस्थित होने से सप्रदेश होते हैं—यह प्रथम भग, (२) उपशमश्रेणी से गिर कर सकषायावस्था को प्राप्त होते हुए एकादि जीव पाएजाते है इसलिए 'बहुत सप्रदेश और एक अप्रदेश' यह दूसरा भग तथा 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश' यह तीसरा भग। नैरयिकादि मे तीन भग पाए जाते है। एकेन्द्रिय जीवो मे अभग है—अर्थात् उनमे अनेक भग नही, किन्तु 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश' यह एक ही भग पाया जाता है, क्योकि एकेन्द्रिय जीवो मे बहुत जीव 'अवस्थित' और बहुत जीव 'उत्पद्यमान' पाए जाते है। सकषायी द्वारा मे 'सिद्ध पद' नही कहना चाहिए, क्योकि सिद्ध कषायरहित होते हैं। इसी तरह क्रोधादि कषायो मे कहना चाहिए। क्रोधकषाय के एकवचन-बहुवचन दण्डकद्वय मे से दूसरे दण्डक मे बहुवचन से जीवपद मे और पृथ्वीकायादि पदो मे 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश', यह एक भग ही कहना चाहिए, क्योकि मान, माया और लोभ से निवृत्त हो कर क्रोधकषाय को प्राप्त होते हुए जीव अनन्त होने से यहाँ एकादि का सम्भव नहीं है, इसलिए सकषायी जीवो की तरह तीन भग नही हो सकते। शेष (एकवचन) मे तीन भग कहने चाहिए।

देवपद मे देवो सम्बन्धी तेरह ही दण्डको मे छह भग कहने चाहिए, क्योकि उनमे क्रोधकषाय के उदय वाले जीव अल्प होने से एकत्व और बहुत्व, दोनो सभव हैं, अत सप्रदेशत्व-अप्रदेशत्व दोनो सभव है। मानकषाय और मायाकषाय वाले जीवो के भी एकवचन-बहुवचन को लेकर दण्डकद्वय क्रोधकषाय की तरह कहने चाहिए। उनमे से दूसरे दण्डक मे नैरयिको और देवो मे ६ भग होते हैं, क्योकि मान और माया के उदय वाले जीव थोडे ही पाए जाते हैं। लोभकषाय का कथन, क्रोधकषाय की तरह करना चाहिए। लोभकषाय के उदय वाले नैरयिक अल्प होने से उनमे ६ भग पाए जाते हैं। निष्कर्ष यह है कि देवो मे लोभ बहुत होता है, और नैरयिको मे क्रोध अधिक। इसलिए क्रोध, मान और माया मे देवो के ६ भग और मान, माया और लोभ मे नैरयिको के ६ भग कहने चाहिए। अकषायी द्वार के भी एकवचन और बहुवचन ये दण्डकद्वय होते है। उनमे से दूसरे दण्डक मे जीव, मनुष्य और सिद्धपद मे तीन भग कहने चाहिए। इन तीन पदो के सिवाय अन्य दण्डको का कथन नही करना चाहिए, क्योकि दूसरे जीव अकषायी नही हो सकते।

९ ज्ञानद्वार—मत्यादि भेद से अविशेषित औघिक (सामान्य) ज्ञान मे तथा मतिज्ञान और श्रुतज्ञान मे एकवचन और वहुवचन को लेकर दो दण्डक होते है। दूसरे दण्डक मे जीवादि पदो के तीन भग कहने चाहिए। यथा—औघिकज्ञानी, मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी सदा अवस्थित होने से वे सप्रदेश है, यह एक भग, मिथ्याज्ञान से निवृत्त होकर मात्र मत्यादिज्ञान को प्राप्त होने वाले एव श्रुत-अज्ञान से निवृत्त होकर श्रुतज्ञान को प्राप्त होने वाले एकादि जीव पाए जाते है, इसलिए, तथा मति-अज्ञाव से निवृत्त होकर मतिज्ञान को प्राप्त होने वाले वहुत सप्रदेश और एकादि अप्रदेश', यह दूसरा भंग तथा 'बहुत सप्रदेश और वहुत अप्रदेश', यह तीसरा भग होता है। विकलेन्द्रियो मे सास्वादन सम्यक्त्व होने से मत्यादिज्ञान वाले एकादि जीव पाए जाते है, इसलिए उनमे ६ भग घटित हो जाते हैं। यहाँ पृथ्वीकायादि जीव तथा सिद्धपद का कथन नही करना चाहिए, क्योकि उनमे मत्यादिज्ञान नही होते। इसी प्रकार अवघिज्ञान आदि मे भी तीन भग सम्भव है। विशेपता यह है कि अवधिज्ञान के एकवचन-बहुवचन-दण्डकद्वय मे एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सिद्धो का कथन नही करना चाहिए। मन पर्यवज्ञान के उक्त दण्डकद्वय मे जीव और मनुष्य का ही कथन करना चाहिए, क्योकि इनके सिवाय अन्यो को मन पर्यवज्ञान नही होता। केवलज्ञान के उक्त दोनो दण्डको मे भी मनुष्य और सिद्ध का ही कथन करना चाहिए, क्योकि दूसरे जीवो को केवलज्ञान नही होता।

मति आदि अज्ञान से अविशेषित सामान्य (औघिक) अज्ञान, मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान, इनमे जीवादि पदो मे तीन भग घटित हो जाते है, यथा—(१) ये सदा अवस्थित होते हैं, इसलिए 'सभी सप्रदेश' यह प्रथम भग हुआ, (२-३) अवस्थित के सिवाय जब दूसरे जीव, ज्ञान को छोड कर मति-अज्ञानादि को प्राप्त होते हैं, तब उनके एकादि का सम्भव होने से दूसरा और तीसरा भग भी घटित हो जाता है। एकेन्द्रिय जीवो मे 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश' यह एक ही भग पाया जाता है। सिद्धो मे तीनो अज्ञान असम्भव होने से उनमे अज्ञानो का कथन नही करना चाहिए। विभगज्ञान मे जीवादि पदो मे मति-अज्ञानादि की तरह तीन भग कहने चाहिए। इसमे एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सिद्धो का कथन नही करना चाहिए।

१० योगद्वार—सयोगी जीवो के एक-बहुवचन-दण्डकद्वय औघिक जीवादि की तरह कहने चाहिए। यथा—सयोगी जीव नियमत सप्रदेशी होते हैं। नैरयिकादि सयोगी तो सप्रदेश और अप्रदेश दोनो होते है, किन्तु बहुत जीव सप्रदेश ही होते है। इस प्रकार नैरयिकादि सयोगी मे तीन भग होते हैं, एकेन्द्रियादि सयोगीजीवो मे केवल तीसरा ही भग पाया जाता है। यहाँ सिद्ध का कथन नही करना चाहिए, क्योकि वे अयोगी होते हैं। मनोयोगी, अर्थात् तीनो योगो वाले सज्ञी जीव, वचनयोगी अर्थात् एकेन्द्रियो को छोड कर शेष सभी जीव, और काययोगी, अर्थात् एकेन्द्रियादि सभी जीव। इनमे जीवादि पद मे तीन भग होते है। जब मनोयोगी आदि जीव अवस्थित होते हैं, तब उनमे 'सभी सप्रदेश', यह प्रथम भग पाया जाता है। और जब अमनोयोगीपन छोडकर मनोयोगीपन आदि मे उत्पत्ति होती है, तब प्रथमसमयवर्ती अप्रदेशत्व की दृष्टि से दूसरे दो भग पाए जाते हैं। विशेष यह है—काययोगी मे एकेन्द्रियो मे अभगक है, अर्थात्—उनमे अनेक भग न होकर सिर्फ एक ही भग होता है—'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश'। तीनो योगो के दण्डको मे यथासम्भव जीवादिपद कहने चाहिए, किन्तु सिद्धपद का कथन नही करना चाहिए। अयोगीद्वार का कथन अलेश्यद्वार के समान कहना चाहिए। अत इसके दूसरे दण्डक मे अयोगी जीवो मे, जीव और सिद्धपद मे तीन भग और अयोगी मनुष्य मे छह भग कहने चाहिए।

११ उपयोगद्वार—साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी नैरयिक आदि मे तीन भग तथा जीवपद और पृथ्वीकायादिपदो मे एक ही भग (बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश) कहना चाहिए। इन दोनो उपयोगो मे से किसी एक मे से दूसरे उपयोग मे जाते हुए प्रथम समय मे अप्रदेशत्व और इतर समयो मे सप्रदेशत्व स्वय घटित कर लेना चाहिए। सिद्धो मे तो एकसमयोपयोगीपन होता है, तो भी साकार और अनाकार उपयोग की बारबार प्राप्ति होने से सप्रदेशत्व और एक बार प्राप्ति होने से अप्रदेशत्व होता है। इस प्रकार साकार-उपयोग को बारबार प्राप्त ऐसे बहुत सिद्धो की अपेक्षा एक भग (सभी सप्रदेश), उन्ही सिद्धो की अपेक्षा तथा एक बार साकारोपयोग को प्राप्त एक सिद्ध की अपेक्षा—'बहुत सप्रदेश और एक अप्रदेश', यह दूसरा भग तथा बारबार साकारोपयोग-प्राप्त बहुत सिद्धो की अपेक्षा एव एक बार साकारोपयोगप्राप्त बहुत सिद्धो की अपेक्षा—'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश'—यह तृतीय भग समझना चाहिए। अनाकार उपयोग मे बारबार अनाकारोपयोग को प्राप्त बहुत सिद्धो की अपेक्षा प्रथम भग, उन्ही सिद्धो की अपेक्षा तथा एक बार अनाकारोपयोग प्राप्त एक सिद्ध जीव की अपेक्षा द्वितीय भग, और बारबार अनाकारोपयोग प्राप्त बहुत सिद्धो की अपेक्षा तथा एक बार अनाकारोपयोग प्राप्त बहुत सिद्धो की अपेक्षा तृतीय भग समझ लेना चाहिए।

१२ वेदद्वार—सवेदक जीवो का कथन सकषायी जीवो के समान करना चाहिए। सवेदक जीवो मे भी जीवादि-पद मे वेद को प्राप्त बहुत जीवो और उपशमश्रेणी से गिरने के बाद सवेद अवस्था को प्राप्त होने वाले एकादि जीवो की अपेक्षा तीन भग घटित होते है। एकेन्द्रियो मे एक ही भग तथा स्त्रीवेदक आदि मे तीन भग पाए जाते हैं। जब एक वेद से दूसरे वेद मे सक्रमण होता है, तब प्रथम समय मे अप्रदेशत्व और द्वितीय आदि समयो मे सप्रदेशत्व होता है, यो तीन भग घटित होते है। नपु सकवेद के एकवचन-बहुवचन रूप दण्डकद्वय मे तथा एकेन्द्रियो मे 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश,' यह एक भग पाया जाता है। स्त्रीवेद और पुरुषवेद के दण्डको मे देव, पचेन्द्रिय तिर्यंच एव मनुष्य ही कहने चाहिए। सिद्धपद का कथन तीनों वेदो मे नही करना चाहिए। अवेदक जीवो का कथन अकषायी की तरह करना चाहिए। इसमे जीव, मनुष्य और सिद्ध ये तीन पद ही कहने चाहिए। इनमे तीन भग पाए जाते हैं।

१३ शरीरद्वार—सशरीरी के दण्डकद्वय मे औघिकदण्डक के समान जीवपद मे सप्रदेशत्व ही कहना चाहिए। क्योकि सशरीरीपन अनादि है। नैरयिकादि मे सशरीरत्व का बाहुल्य होने से तीन भग और एकेन्द्रियो मे केवल तृतीय भग ही कहना चाहिए। औदारिक और वैक्रियशरीर वाले जीवो मे जीवपद और एकेन्द्रिय पदो मे बहुत्व के कारण केवल तीसरा भग ही पाया जाता है, क्योकि जीवपद और एकेन्द्रिय पदो मे प्रतिक्षण प्रतिपन्न और प्रतिपद्यमान जीव बहुत पाए जाते है। शेष जीवो मे तीन भग पाए जाते हैं, क्योकि उनमे प्रतिपन्न बहुत पाए जाते है। एक औदारिक या एक वैक्रिय शरीर को छोड कर दूसरे औदारिक या दूसरे वैक्रिय शरीर को प्राप्त होने वाले एकादि जीव पाए जाते हैं। औदारिक शरीर के दण्डकद्वय मे नैरयिको और देवो का कथन तथा वैक्रिय-शरीर के दण्डकद्वय मे पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वनस्पतिकाय और विकलेन्द्रिय जीवो का कथन नही करना चाहिए, क्योकि नारको और देवो के औदारिक तथा (वायुकाय के सिवाय) पृथ्वी-कायादि मे वैक्रियशरीर नही होता। वैक्रियदण्डक मे एकेन्द्रिय पद मे जो तृतीय भग—(बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश) कहा गया है, वह असख्यात वायुकायिक जीवो मे प्रतिक्षण होने वाली वैक्रियक्रिया की अपेक्षा से कहा गया है। यद्यपि वैक्रियलब्धिवाले पचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य अल्प

होते है, तथापि उनमे जो तीन भग कहे गए हैं, वे वैक्रियावस्था वाले अधिक सख्या मे हैं, इस अपेक्षा से सम्भवित हैं। इसके अतिरिक्त पचेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्यो मे एकादि जीवो को वैक्रियशरीर की प्रतिपद्यमानता जाननी चाहिए। इसी कारण तीन भग घटित होगे। आहारकशरीर की अपेक्षा जीव और मनुष्यो मे पूर्वोक्त छह भग होते है, क्योकि आहारक-शरीर जीव और मनुष्य पदो के सिवाय अन्य जीवो मे न होने से आहारकशरीरी थोडे होते हे। तैजस और कार्मण शरीर का कथन औधिक जीवो के समान करना चाहिए। औधिक जीव सप्रदेश होते हैं, क्योंकि तैजस-कार्मणशरीर-सयोग अनादि है। नैरयिकादि मे तीन भग और एकेन्द्रियो मे केवल तृतीय भग कहना चाहिए। इन सशरीरादि दण्डको मे सिद्धपद का कथन नही करना चाहिए। (सप्रदेशत्वादि से कहने योग्य) अशरीर जीवादि मे जीवपद और सिद्धपद ही कहना चाहिए, क्योकि इनके सिवाय दूसरे जीवो मे अशरीरत्व नही पाया जाता। इस तरह अशरीरपद मे तीन भग कहने चाहिए।

१४ **पर्याप्तिद्वार**—जीवपद और एकेन्द्रियपदो मे आहारपर्याप्ति आदि को प्राप्त तथा आहारादि की अपर्याप्ति से मुक्त होकर आहारादिपर्याप्ति द्वारा पर्याप्तभाव को प्राप्त होने वाले जीव बहुत है, इसलिए इनमे 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश', यह एक ही भग होता है, शेष जीवो मे तीन भग पाए जाते है। यद्यपि भाषापर्याप्ति और मन पर्याप्ति, ये दोनो पर्याप्तियाँ भिन्न-भिन्न है, तथापि बहुश्रुत महापुरुषो द्वारा सम्मत होने से ये दोनो पर्याप्तियाँ एक-रूप मान ली गई हैं। अतएव भाषा-मन पर्याप्ति द्वारा पर्याप्त जीवो का कथन सज्ञी जीवो की तरह करना चाहिए। इन सव पदो मे तीन भग कहने चाहिए। यहाँ केवल पचेन्द्रिय पद ही लेना चाहिए। आहार-अपर्याप्ति दण्डक मे जीवपद और पृथ्वीकायिक आदि पदो मे 'बहुत सप्रदेश-बहुत अप्रदेश'—यह एक ही भग कहना चाहिए। क्योकि आहारपर्याप्ति से रहित विग्रहगतिसमापन्न बहुत जीव निरन्तर पाये जाते है। शेष जीवो मे पूर्वोक्त ६ भग होते हैं, क्योकि शेष जीवो मे आहारपर्याप्तिरहित जीव थोडे पाए जाते हैं। शरीर-अपर्याप्ति-द्वार मे जोवो और एकेन्द्रियो मे एक भग एव शेष जीवो मे तीन भग कहने चाहिए, क्योकि शरीरादि से अपर्याप्त जीव कालादेश की अपेक्षा सदा सप्रदेश ही पाये जाते है, अप्रदेश तो कदाचित् एकादि पाये जाते है। नैरयिक, देव और मनुष्यो मे छह भग कहने चाहिए। भाषा और मन की पर्याप्ति से अपर्याप्त जीव वे है, जिनको जन्म से भाषा और मन की योग्यता तो हो, किन्तु उसकी सिद्धि न हुई हो। ऐसे जीव पचेन्द्रिय हो होते है। अत इन जीवो मे और पचेन्द्रिय तिर्यचो मे भाषामन-अपर्याप्ति को प्राप्त बहुत जीव होते हैं, और इसकी अपर्याप्ति को प्राप्त होते हुए एकादि जीव ही पाए जाते हैं। इसलिए उनमे पूर्वोक्त तीन भग घटित होते है। नैरयिकादि मे भाषा-मन-अपर्याप्तको की अल्पतरता होने से उनमे एकादि सप्रदेश और अप्रदेश पाये जाने से पूर्वोक्त ६ भग होते है। इन पर्याप्ति-अपर्याप्ति के दण्डको मे सिद्धपद नही कहना चाहिए, क्योकि सिद्धो मे पर्याप्ति और अपर्याप्ति नही होती।

इस प्रकार १४ द्वारो को लेकर प्रस्तुत सूत्रो पर वृत्तिकार ने सप्रदेश-अप्रदेश का विचार प्रस्तुत किया है।[१]

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २६१ से २६६ तक

(ख) भगवतीसूत्र (हिन्दीविवेचनयुक्त) भा २, पृष्ठ ९८४ से ९९५ तक।

समस्त जीवो मे प्रत्याख्यान, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान के होने, जानने, करने तथा आयुष्यबन्ध के सम्बन्ध मे प्ररूपणा—

२१ [१] जीवा ण भते ! किं पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी ?

गोयमा ! जीवा पच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणाऽपच्चक्खाणी वि ।

[२१-१ प्र] भगवन् ! क्या जीव प्रत्याख्यानी है, अप्रत्याख्यानी है या प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी है ?

[२१-१ उ] गौतम ! जीव प्रत्याख्यानी भी है, अप्रत्याख्यानी भी है और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी भी है ।

[२] सव्वजीवाण एव पुच्छा ।

गोयमा ! नेरइया अपच्चक्खाणी जाव चउरिंदिया, सेसा दो पडिसेहेयव्वा । पचेंदियतिरिक्खजोणिया नो पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी वि । मणुस्सा तिण्णि वि । सेसा जहा नेरतिया ।

[२१-२ प्र] इसी तरह सभी जीवो के सम्बन्ध मे प्रश्न है (कि वे प्रत्याख्यानी है, अप्रत्याख्यानी हैं या प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी है ?)

[२१-२ उ] गौतम ! नैरयिकजीव अप्रत्याख्यानी है, यावत् चतुरिन्द्रिय जीवो तक अप्रत्याख्यानी है, इन जीवो (नैरयिक से लेकर चतुरिन्द्रिय जीवो तक) मे शेष दो भगो (प्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी) का निषेध करना चाहिए। पचेन्द्रिय तिर्यञ्च प्रत्याख्यानी नही है, किन्तु अप्रत्याख्यानी है और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी भी हैं । मनुष्य तीनो भग के स्वामी है । शेष जीवो का कथन नैरयिको की तरह करना चाहिए ।

२२ जीवा ण भते ! किं पच्चक्खाण जाणति, अपच्चक्खाण जाणति, पच्चक्खाणापच्चक्खाणं जाणति ?

गोयमा ! जे पचेंदिया ते तिण्णि वि जाणति, अवसेसा पच्चक्खाण न जाणति ।

[२२ प्र] भगवन् ! क्या जीव प्रत्याख्यान को जानते है, अप्रत्याख्यान को जानते हैं और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान को जानते है ?

[२२ उ] गौतम ! जो पञ्चेन्द्रिय जीव हैं, वे तीनो को जानते हैं । शेष जीव प्रत्याख्यान को नही जानते, (अप्रत्याख्यान को नही जानते और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान को भी नही जानते ।)

२३ जीवा ण भते ! किं पच्चक्खाण कुव्वंति अपच्चक्खाणं कुव्वति, पच्चक्खाणापच्चक्खाण कुव्वति ?

जहा ओहिया तहा कुव्वणा ।

[२३ प्र] भगवन् ! क्या जीव प्रत्याख्यान करते है, अप्रत्याख्यान करते है, प्रत्याख्याना-प्रत्याख्यान करते है ?

[२३ उ.] गौतम ! जिस प्रकार औघिकदण्डक कहा है, उसी प्रकार प्रत्याख्यान करने के विषय मे कहना चाहिये ।

२४ जीवा ण भते ! किं पच्चक्खाणनिव्वत्तियाउया, अपच्चक्खाणनि०, पच्चक्खाणा-पच्चक्खाणनि० ?

गोयमा ! जीवा य वेमाणिया य पच्चक्खाणणिव्वत्तियाउया तिण्णि वि । अवसेसा अपच्च-क्खाणनिव्वत्तियाउया ।

[२४ प्र] भगवन् ! क्या जीव, प्रत्याख्यान से निर्वर्तित आयुष्य वाले है, अप्रत्याख्यान से निर्वर्तित आयुष्य वाले है अथवा प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान से निर्वर्तित आयुष्य वाले है ? (अर्थात्—क्या जीवो का आयुष्य प्रत्याख्यान से बधता है, अप्रत्याख्यान से बधता है या प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान से बधता है ?)

[२४ उ] गौतम ! जीव और वैमानिक देव प्रत्याख्यान से निर्वर्तित आयुष्य वाले है, अप्रत्याख्यान से निर्वर्तित आयुष्य वाले भी हैं, और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान से निर्वर्तित आयुष्य वाले भी हैं । शेष सभी जीव, अप्रत्याख्यान से निर्वर्तित आयुष्य वाले है ।

विवेचन—समस्त जीवो के प्रत्याख्यानी, अप्रत्याख्यानी एव प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी होने, जानने और आयुष्य बाधने के सम्बन्ध मे प्रश्नोत्तर—प्रस्तुत ४ सूत्रो मे समस्त जीवो के प्रत्याख्यान, अप्रत्याख्यान एव प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान से सम्बन्धित पाच तथ्यो का निरूपण क्रमश. इस प्रकार किया गया है—

(१) जीव प्रत्याख्यानी भी हैं, अप्रत्याख्यानी भी है, प्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी भी है ।

(२) नैरयिको से लेकर चतुरिन्द्रिय जीव तक तथा भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव अप्रत्याख्यानी हैं । तिर्यञ्च पचेन्द्रिय अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी है, तथा मनुष्य प्रत्याख्यानी, अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी तीनो है ।

(३) पचेन्द्रिय के सिवाय कोई भी जीव प्रत्याख्यानादि को नही जानते है ।

(४) समुच्चय जीव और मनुष्य प्रत्याख्यानादि तीनो ही करते हैं, तिर्यञ्च पचेन्द्रिय अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान करते है और शेष २२ दण्डक के जीव सिर्फ अप्रत्याख्यान करते है—(प्रत्याख्यान नही करते ।)

(५) समुच्चय जीव और वैमानिक देवो मे उत्पन्न होने वाले जीव प्रत्याख्यान आदि तीनो भगो मे आयुष्य बाधते है, शेष २३ दण्डक के जीव अप्रत्याख्यान मे आयुष्य बाधते है ।[1]

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टि) भा १, पृ २४६

(ख) भगवतीसूत्र के थोकडे, द्वितीय भाग, थो न ५०, पृ ७०-७१

विशेषार्थ—प्रत्याख्यानी=सर्वविरत, प्रत्याख्यानवाला। **अप्रत्याख्यानी**=अविरत, प्रत्याख्यान-रहित। **प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी**=देशविरत (किसी अश मे प्राणातिपातादि पाप से निवृत्त और किसी अश मे अनिवृत्त।)

प्रत्याख्यान-ज्ञानसूत्र का आशय—प्रत्याख्यानादि तीनो का सम्यग्ज्ञान तभी हो सकता है, जब उस जीव मे सम्यग्दर्शन हो। इसलिए नारक, चारो निकाय के देव, तिर्यञ्च पचेन्द्रिय और मनुष्य, इन १६ दण्डको के समनस्क-सज्ञी एव सम्यग्दृष्टि पचेन्द्रिय जीव ही ज्ञपरिज्ञा से प्रत्याख्यानादि तीनो को सम्यक् प्रकार से जानते है, शेष अमनस्क-असज्ञी एवं मिथ्यादृष्टि (पचेन्द्रिय मिथ्यात्वी, एकेन्द्रिय एव विकलेन्द्रिय) प्रत्याख्यानादि तीनो को नही जानते। यही इस सूत्र का आशय है।

प्रत्याख्यानकरणसूत्र का आशय—प्रत्याख्यान तभी होता है, जबकि वह किया—स्वीकार किया जाता है। सच्चे अर्थो मे प्रत्याख्यान या प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान वही करता है, जो प्रत्याख्यान एव प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान को जानता हो। शेष जीव तो अप्रत्याख्यान ही करते है। यह इस सूत्र का आशय है।

प्रत्याख्यानादि निर्वर्तित आयुष्यबन्ध का आशय—प्रत्याख्यान आदि से आयुष्य बाधे हुए को प्रत्याख्यानादि-निर्वर्तित आयुष्यबन्ध कहते है। प्रत्याख्यानादि तीनो आयुष्यबन्ध मे कारण होते है। वैसे तो जीव और वैमानिक देवो मे प्रत्याख्यानादि तीनो वाले जीवो की उत्पत्ति होती है। किन्तु प्रत्याख्यान वाले जीवो की उत्पत्ति प्राय वैमानिको मे, एव अप्रत्याख्यानी अविरत जीवो की उत्पत्ति प्राय नैरयिक आदि मे होती है।[1]

प्रत्याख्यानादि से सम्बन्धित संग्रहणी गाथा—

२५. गाथा—

पच्चक्खाणं १ जाणइ २ कुव्वति ३ तेणेव आउनिव्वत्ती ४।
सपदेसुद्देसम्मि य एमेए दडगा चउरो ॥२॥

सेव भते! सेवं भते! त्ति०।

॥ छट्ठे सए : चउत्थो उद्देसो समत्तो ॥

[२५ गाथार्थ-] प्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान का जानना, करना, तीनो का (जानना, करना), तथा आयुष्य की निर्वृति, इस प्रकार ये चार दण्डक सप्रदेश (नामक चतुर्थ) उद्देशक मे कहे गए है।

॥ छठा शतक : चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति पत्राक २६६-२६७
(ख) भगवती हिन्दी विवेचन भा २, पृ ९९७-९९९

पंचमो उद्देसओ : 'तमुए'

पंचम उद्देशक · तमस्काय

तमस्काय के सम्बन्ध मे विविध पहलुओ से प्रश्नोत्तर—

१ [१] किमियं भंते ! तमुक्काए त्ति पवुच्चइ ? किं पुढवी तमुक्काए त्ति पवुच्चति, आऊ तमुक्काए त्ति पवुच्चति ?

गोयमा ! नो पुढवी तमुक्काए त्ति पवुच्चति, आऊ तमुक्काए त्ति पवुच्चति ।

[१-१ प्र] भगवन् ! 'तमस्काय' किसे कहा जाता है ? क्या 'तमस्काय' पृथ्वी को कहते है या पानी को ?

[१-१ उ] गौतम ! पृथ्वी तमस्काय नही कहलाती, किन्तु पानी 'तमस्काय' कहलाता है ।

[२] से केणट्ठेणं० ?

गोयमा ! पुढविकाए णं अत्थेगइए सुभे देसं पकासेति, अत्थेगइए देसं नो पकासेइ, से तेणट्ठेणं० ।

[१-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से पृथ्वी तमस्काय नही कहलाती, किन्तु पानी तमस्काय कहलाता है ?

[१-२ उ] गौतम ! कुछ पृथ्वीकाय ऐसा शुभ है, जो देश (अश या भाग) को प्रकाशित करता है और कुछ पृथ्वीकाय ऐसा है, जो देश (भाग) को प्रकाशित नही करता । इस कारण से पृथ्वी तमस्काय नही कहलाती, पानी ही तमस्काय कहलाता है ।

२ तमुक्काए णं भंते ! कहिं समुट्ठिए ? कहिं सन्निट्ठिते ?

गोयमा ! जंबुद्दीवस्स दीवस्स बहिया तिरियमसंखेज्जे दीव-समुद्दे वीतिवइत्ता अरुणवरस्स दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेतियंताओ अरुणोदयं समुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साणि ओगाहित्ता उवरिल्लाओ जलंताओ एकपदेसियाए सेढीए इत्थ णं तमुक्काए समुट्ठिए; सत्तरस एक्कवीसे जोयणसते उड्ढं उप्पतित्ता तओ पच्छा तिरियं पवित्थरमाणे पवित्थरमाणे सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंदे चत्तारि वि कप्पे आवरित्ताणं उड्ढं पि य णं जाव बंभलोगे कप्पे रिट्ठविमाणपत्थडं संपत्ते, एत्थ णं तमुक्काए सन्निट्ठिते ।

[२ प्र] भगवन् ! तमस्काय कहाँ से समुत्थित (उत्पन्न—प्रारम्भ) होता है और कहाँ जाकर सन्निष्ठित (स्थित या समाप्त) होता है ?

[२ उ] गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के बाहर तिरछे असख्यात द्वीप-समुद्रो को लाघने

के बाद अरुणवर द्वीप की बाहरी वेदिका के अन्त से अरुणोदय समुद्र मे ४२,००० योजन अवगाहन करने (जाने) पर वहाँ के ऊपरी जलान्त से एक प्रदेश वाली श्रेणी आती है, यही से तमस्काय समुत्थित (उठा—प्रादुर्भूत हुआ) है। वहाँ से १७२१ योजन ऊँचा जाने के बाद तिरछा विस्तृत से विस्तृत होता हुआ, सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार और माहेन्द्र, इन चार देवलोको (कल्पो) को आवृत (आच्छादित) करके उनसे भी ऊपर पचम ब्रह्मलोककल्प के रिष्टविमान नामक प्रस्तट (पाथडे) तक पहुँचा है और यही तमस्काय सन्निष्ठित (समाप्त या सस्थित) हुआ है।

३. तमुक्काए ण भते ! किंसंठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! अहे मल्लगमूलसठिते, उप्पि कुक्कुडगपजरगसठिए पण्णत्ते।

[३ प्र] भगवन् ! तमस्काय का सस्थान (आकार) किस प्रकार का कहा गया है ?

[३ उ] गौतम ! तमस्काय नीचे तो मल्लक (शराव या सिकोरे) के मूल के आकार का है और ऊपर कुक्कुटपजरक अर्थात् मुर्गे के पिजरे के आकार का कहा गया है।

४ तमुक्काए ण भ ते केवतिय विक्खभेण ? केवतिय परिक्खेवेण पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, त जहा—सखेज्जवित्थडे य असखेज्जवित्थडे य। तत्थ ण जे से संखेज्जवित्थडे से ण सखेज्जाइ जोयणसहस्साइ विक्खभेण, असखेज्जाइ जोयणसहस्साइ परिक्खेवेणं प०। तत्थ ण जे से असखिज्जवित्थडे से असखेज्जाइ जोयणसहस्साइ विक्खभेण, असखेज्जाइ जोयणसहस्साइ परिक्खेवेण।

[४ प्र] ! भगवन् ! तमस्काय का विष्कम्भ (विस्तार) और परिक्षेप (घेरा) कितना कहा गया है ?

[४ उ,] गौतम ! तमस्काय दो प्रकार का कहा गया है—एक तो सख्येयविस्तृत और दूसरा असख्येयविस्तृत। इनमे से जो सख्येय विस्तृत है, उसका विष्कम्भ सख्येय हजार योजन है और परिक्षेप असख्येय हजार योजन है। जो तमस्काय असख्येय विस्तृत है, उसका विष्कम्भ असख्येय हजार योजन है और परिक्षेप भी असख्येय हजार योजन है।

५. तमुक्काए ण भ ते ! केमहालए प० ?

गोयमा ! अय ण जबुद्दीवे २ जाव[1] परिक्खेवेण पण्णत्ते। देवे ण महिड्ढीए जाव[2] 'इणामेव इणामेव' त्ति कट्टु केवलकप्प जबुद्दीव दीव तिहिं अच्छरानिवाएहिं[3] तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टित्ताणं

---

१ जाव पद यहाँ इस पाठ का सूचक है—"अय जबुद्दीवे णाम दीवे दीव-समुद्दाण अब्भितरिए सव्वखुड्डाए वट्टे तेल्ला-पूयसठाणसठिते, वट्टे रहचक्कवालसठाणसठिते, वट्टे पुक्खरकण्णियासठाणसठिते, वट्टे पडिपुण्णचदसठाणसठिते एक्क जोयणसयसहस्स आयामविक्खभेण, तिण्णि जोयणसयसहस्साइ सोलस य सहस्साइ दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसते तिण्णि य कोसे अट्ठावीस च धणुसय तेरस अगुलाइ अद्ध गुलक च किंचिविसेसाहिय परिक्खेवेण"।
—जीवाभिगम प्रतिपत्ति ३, जम्बूद्वीपप्रमाण कथन प १७७५

२ 'जाव' पद यहाँ—'महज्जुईए महाबले महाजसे महेसक्खे महाणुभागे' इन पदो का सूचक है।

३ अच्छरानिवाएहिं—चुटकी बजाने जितने समय मे।

हव्वमागच्छिज्जा । से ण देवे ताए उक्किट्ठाए तुरियाए जाव देवगईए वीईवयमाणे वीईवयमाणे जाव एकाह वा दुयाह वा तियाह वा उक्कोसेण छम्मासे वीतीवएज्जा, अत्थेगइय तमुक्काय वीतीवएज्जा, अत्थेगइय तमुक्कायं नो वीतीवएज्जा । एमहालए ण गोतमा ! तमुक्काए पन्नत्ते ।

[५ प्र] भगवन् ! तमस्काय कितना वडा कहा गया है ?

[५ उ] गौतम ! समस्त द्वीप-समुद्रो के मर्वाभ्यन्तर अर्थात्—वीचोवीच यह जम्बूद्वीप है। यावत् यह एक लाख योजन का लम्वा-चौडा है। इसकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोस, एक सौ अट्ठाइस धनुष और साढे तेरह अगुल से कुछ अधिक है। कोई महाऋद्धि यावत् महानुभाव वाला देव—'यह चला, यह चला', यो करके तीन चुटकी वजाए, उतने समय मे सम्पूर्ण जम्बूद्वीप की इक्कीस वार परिक्रमा करके शीघ्र वापस आ जाए, इस प्रकार की उत्कृष्ट और त्वरायुक्त यावत् देव की गति से चलता हुआ देव यावत् एक दिन, दो दिन, तीन दिन चले, यावत् उत्कृष्ट छह महीने तक चले तव जाकर कुछ तमस्काय को उल्लघन कर पाता है, और कुछ तमस्काय को उल्लघन नही कर पाता। हे गौतम ! तमस्काय इतना वडा (महालय) कहा गया है।

६. अत्थि ण भते ! तमुकाए गेहा ति वा, गेहावणा ति वा ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[६ प्र] भगवन् ! तमस्काय मे गृह (घर) है, अथवा गृहापण (दूकाने) है ?

[६ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

७. अत्थि ण भते ! तमुकाए गामा ति वा जाव सन्निवेसा ति वा ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[७ प्र] भगवन् ! तमस्काय मे ग्राम है यावत् अथवा सन्निवेश है ?

[७ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

८ [१] अत्थि ण भते ! तमुक्काए ओराला वलाहया ससेयति,, सम्मुच्छति, वास वासति ?

हता, अत्थि ।

[८-१ प्र] भगवन् ! क्या तमस्काय मे उदार (विशाल) मेघ सस्वेद को प्राप्त होते है, सम्मूर्च्छित होते है और वर्षा बरसाते है ?

[८-१ उ] हाँ, गौतम ! ऐसा है।

[२] त भते ! किं देवो पकरेति, असुरो पकरेति ? नागो पकरेति ?

गोयमा ! देवो वि पकरेति, असुरो वि पकरेति, णागो वि पकरेति ।

[८-२ प्र] भगवन् ! क्या उसे (मेघ-सस्वेदन-सम्मूर्च्छन-वर्षण) देव करता है, असुर करता है या नाग करता है ?

[७-२ उ] हाँ, गौतम ! (ऐसा) देव भी करता है, असुर भी करता है और नाग भी करता है।

९ [१] अत्थि ण भंते ! तमुकाए बादरे थणियसद्दे, बायरे विज्जुए ?
हंता, अत्थि ।

[९-१ प्र] भगवन् ! तमस्काय मे क्या बादर स्तनित शब्द (स्थूल मेघगर्जन) है, क्या बादर विद्युत् है ?

[९-१ उ] हाँ, गौतम ! है ।

[२] त भंते ! किं देवो पकरेति ३ ?
तिण्णि वि पकरेंति ।

[९-२ प्र] भगवन् ! क्या उसे देव करता है, असुर करता है या नाग करता है ?

[९-२ उ] गौतम ! तीनो ही करते हैं । (अर्थात्—देव भी करता है, असुर भी करता है और नाग भी करता है ।)

१० अत्थि ण भंते ! तमुकाए बादरे पुढविकाए, बादरे अगणिकाए ?
णो तिणट्ठे समट्ठे, णण्णत्थ विग्गहगतिसमावन्नएणं ।

[१० प्र] भगवन् ! क्या तमस्काय मे बादर पृथ्वीकाय है और बादर अग्निकाय है ?

[१० उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है । वह निषेध विग्रहगतिसमापन्न के सिवाय समझना । (अर्थात्—विग्रहगतिसमापन्न बादर पृथ्वी और बादर अग्नि हो सकती है ।)

११ अत्थि ण भंते ! तमुकाए चदिम-सूरिय-गहगण-णक्खत्त-तारारूवा ?
णो तिणट्ठे समट्ठे, पलिपस्सतो पुण अत्थि ।

[११ प्र] भगवन् ! क्या तमस्काय मे चन्द्रमा, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारारूप हैं ?

[११ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है, किन्तु वे (चन्द्रादि) तमस्काय के परिपार्श्व मे (आसपास) हैं भी ।

१२ अत्थि ण भंते ! तमुकाए चदाभा ति वा, सूराभा ति वा ?
णो तिणट्ठे समट्ठे, कादूसणिया पुण सा ।

[१२ प्र] भगवन् ! क्या तमस्काय मे चन्द्रमा की आभा (प्रभा) या सूर्य की आभा है ?

[१२ उ.] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है, किन्तु तमस्काय मे (जो प्रभा है, वह) कादूषणिका (अपनी आत्मा को दूषित करने वाली) है ।

१३ तमुक्काए णं भंते ! केरिसए वण्णेण पण्णत्ते ?

गोयमा ! काले कालोभासे गंभीरलोमहरिसजणणे भीमे उत्तासणए परमकिण्हे वण्णेणं पण्णत्ते । देवे वि ण अत्थेगतिए जे ण तप्पढमताए पासित्ता ण खुभाएज्जा, अहे ण अभिसमागच्छेज्जा, ततो पच्छा सीहं सीहं तुरियं तुरियं खिप्पामेव वीतीवएज्जा ।

[१३ प्र] भगवन् ! तमस्काय वर्ण से कैसा है ?

[१३ उ] गौतम ! तमस्काय वर्ण से काला, काली कान्ति वाला, गम्भीर (गहरा), रोम-हर्षक (रोगटे खडे करने वाला), भीम (भयकर), उत्त्रासजनक और परमकृष्ण कहा गया है ।

कोई देव भी उस तमस्काय को देखते ही सर्वप्रथम तो क्षुब्ध हो जाता है। कदाचित् कोई देव तमस्काय मे अभिसमागम (प्रवेश) करे भी तो प्रवेश करने के पश्चात् वह शीघ्राति-शीघ्र त्वरित गति से झटपट उसे पार (उल्लघन) कर जाता है।

१४ तमुकायस्स ण भ ते ! कति नामधेज्जा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तेरस नामधेज्जा पण्णत्ता, त जहा—तमे ति वा, तमुकाए ति वा, अधकारे इ वा, महधकारे इ वा, लोगधकारे इ वा, लोगतमिस्से इ वा, देवंधकारे ति वा, देवतमिस्से ति वा, देवारण्णे ति वा, देववूहे ति वा, देवफलिहे ति वा, देवपडिक्खोभे ति वा, अरुणोदए ति वा समुद्दे।

[१४ प्र] भगवन् ! तमस्काय के कितने नाम (नामधेय) कहे गए है ?

[१४ उ] गौतम ! तमस्काय के तेरह नाम कहे गए है। वे इस प्रकार है—(१) तम, (२) तमस्काय, (३) अन्धकार, (४) महान्धकार, (५) लोकान्धकार, (६) लोकतमिस्र, (७) देवान्धकार, (८) देवतमिस्र, (९) देवारण्य, (१०) देवव्यूह, (११) देवपरिघ, (१२) देवप्रतिक्षोभ (१३) अरुणोदक समुद्र।

१५ तमुकाए णं भंते ! किं पुढविपरिणामे आउपरिणामे जीवपरिणामे पोग्गलपरिणामे ?

गोयमा ! नो पुढविपरिणामे, आउपरिणामे वि, जीवपरिणामे वि, पोग्गलपरिणामे वि।

[१५ प्र] भगवन् ! क्या तमस्काय पृथ्वी का परिणाम है, जल का परिणाम है, जीव का परिणाम है अथवा पुद्गल का परिणाम है ?

[१५ उ] गौतम ! तमस्काय पृथ्वी का परिणाम नही है, किन्तु जल का परिणाम है, जीव का परिणाम भी है और पुद्गल का परिणाम भी है।

१६ तमुकाए ण भ ते ! सव्वे पाणा भूता जीवा सत्ता पुढविकाइयत्ताए जाव तसकाइयत्ताए उववन्नपुव्वा ?

हता, गोयमा ! असइ अदुवा अणंतखुत्तो, णो चेव ण बादरपुढविकाइयत्ताए वा, बादरअगणिकाइयत्ताए वा।

[१६ प्र] भगवन् ! क्या तमस्काय मे सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्त्व-पृथ्वीकायिक रूप मे यावत् त्रसकायिक रूप मे पहले उत्पन्न हो चुके है ?

[१६ उ] हाँ, गौतम ! (सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, तमस्काय मे) अनेक बार अथवा अनन्त बार पहले उत्पन्न हो चुके है, किन्तु बादर पृथ्वीकायिक रूप मे या बादर अग्निकायिक रूप मे उत्पन्न नही हुए है।

विवेचन—तमस्काय के सम्बन्ध मे विभिन्न पहलुओ से प्रश्नोत्तर—प्रस्तुत १६ सूत्रो (सू १ से १६ तक) मे विभिन्न पहलुओ से तमस्काय के सम्बन्ध मे प्रश्न उठा कर उनका समाधान किया गया है।

तमस्काय की संक्षिप्त रूपरेखा—तमस्काय का अर्थ है—अन्धकारमय पुद्गलो का समूह। तमस्काय पृथ्वीरज स्कन्धरूप नही, किन्तु उदकरज स्कन्धरूप है। क्योकि जल अप्रकाशक होता है, और तमस्काय भी अप्रकाशक है। दोनो (अप्काय और तमस्काय) का समान स्वभाव होने से तमस्काय का परिणामी कारण अप्काय ही हो सकता है, क्योकि वह अप्काय का ही परिणाम है। तमस्काय एकप्रदेशश्रेणीरूप है, इसका अर्थ यही है कि वह समभित्ति वाली श्रेणीरूप है। एक

आकाश-प्रदेश की श्रेणीरूप नही। फिर तमस्काय का सस्थान मिट्टी के सकोरे के (मूल का) आकार-सा या ऊपर मुर्गे के पिंजरे-सा है। वह दो प्रकार का है—सख्येय विस्तृत और असख्येय विस्तृत। पहला जलान्त से प्रारम्भ होकर सख्येय योजन तक फैला हुआ है, दूसरा असख्येय योजन तक विस्तृत और असख्येय द्वीपो को घेरे हुए है। तमस्काय इतना अत्यधिक विस्तृत है कि कोई देव ६ महीने तक अपनी उत्कृष्ट शीघ्र दिव्यगति से चले तो भी वह सख्येय योजन विस्तृत तमस्काय तक पहुँचता है, असख्येय योजन विस्तृत तमस्काय तक पहुँचना बाकी रह जाता है।

तमस्काय मे न तो घर है, और न गृहापण है और न ही ग्राम, नगर, सन्निवेशादि है, किन्तु वहाँ बडे-बडे मेघ उठते हैं, उमडते है, गर्जते हैं, बरसते है। बिजली भी चमकती है। देव, असुर या नागकुमार ये सब कार्य करते है। विग्रहगतिसमापन्न बादर पृथ्वी या अग्नि को छोड कर तमस्काय मे न बादर पृथ्वीकाय है, न बादर अग्निकाय। तमस्काय मे चन्द्र-सूर्यादि नही है, किन्तु उसके आस-पास मे है, उनकी प्रभा तमस्काय मे पडती भी है, किन्तु तमस्काय के परिणाम से परिणत हो जाने के कारण नही-जैसी है। तमस्काय काला, भयकर काला और रोमहर्षक तथा त्रासजनक है। देवता भी उसे देखकर घबरा जाते है। यदि कोई देव साहस करके उसमे घुस भी जाए तो भी वह भय के मारे कायगति से अत्यन्त तेजी से और मनोगति से अतिशीघ्र बाहर निकल जाता है। तमस्काय के तम आदि तेरह सार्थक नाम है। तमस्काय पानी, जीव और पुद्गलो का परिणाम है, जलरूप होने के कारण वहाँ बादर वायु, वनस्पति और त्रसजीव उत्पन्न होते है। इनके अतिरिक्त अन्य जीवो का स्वस्थान न होने के उन की उत्पत्ति तमस्काय मे सम्भव नही है।[1]

कठिन शब्दो की व्याख्या—बलाहया ससेयति सम्मुच्छति, वास वासति=महामेघ सस्वेद को प्राप्त होते है, अर्थात्—तज्जनित पुद्गलो के स्नेह से सम्मूर्च्छित होते (उठते-उमडते) है, क्योकि मेघ के पुद्गलो के मिलने से ही उनकी तदाकाररूप से उत्पत्ति होती है, और फिर वर्षा होती है। **'बादर विद्युत्'** यहाँ तेजस्कायिक नही है, अपितु देव के प्रभाव से उत्पन्न भास्वर (दीप्तिमान्) पुद्गलो का समूह है। **पलिपस्सतो**=परिपार्श्व मे—आसपास मे। **उत्तासणए**=उग्र त्रास देने वाला। **खुभाएज्जा**=क्षुब्ध हो जाता है, घबरा जाता है। **अभिसमागच्छेज्जा**=प्रवेश करता है। **उववण्णपुव्वा**=पहले उत्पन्न हो चुके। **असइ अदुवा अणंतक्खुत्तो**=अनेक बार अथवा अनन्त बार। **देववूहे**=चक्रव्यूहवत् देवो के लिए भी दुर्भेद्य व्यूहसम। **देवपरिघ**=देवो के गमन मे बाधक परिघ-परिखा की तरह।[2]

विविध पहलुओ से कृष्णराजियो से सम्बन्धित प्रश्नोत्तर—

१७ कति ण भते ! कण्हराईओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ कण्हराईओ पण्णत्ताओ।

[१७ प्र] भगवन् ! कृष्णराजियाँ कितनी कही गई है ?

[१७ उ] गौतम ! कृष्णराजियाँ आठ हैं।

१८ कहि ण भते ! एयाओ अट्ठ कण्हराईओ पण्णत्ताओ ?

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २६८ से २७० तक

(ख) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टि) भा १, पृ २४७ से २५० तक

२ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २६८ से २७० तक

गोयमा ! उप्पि सणकुमार-माहिंदाण कप्पाण, हव्विं[1] बभलोगे कप्पे रिट्ठे विमाणपत्थडे, एत्थ ण अक्खाडग-समचउरससठाणसठियाओ अट्ठ कण्हराईओ पण्णत्ताओ, त जहा—पुरत्थिमेण दो, पच्चत्थिमेण दो, दाहिणेण दो, उत्तरेण दो। पुरत्थिमब्भतरा कण्हराई दाहिणबाहिर कण्हराइ पुट्ठा, दाहिणब्भंतरा कण्हराई पच्चत्थिमबाहिर कण्हराइ पुट्ठा, पच्चत्थिमब्भतरा कण्हराई उत्तरबाहिर कण्हराइ पुट्ठा, उत्तरऽब्भतरा कण्हराई पुरत्थिमबाहिर कण्हराइ पुट्ठा। दो पुरत्थिमपच्चत्थिमाओ बाहिराओ कण्हराईओ छलसाओ, दो उत्तरदाहिणबाहिराओ कण्हराईओ तसाओ, दो पुरत्थिमपच्चत्थिमाओ अब्भितराओ कण्हराईओ चउरसाओ, दो उत्तरदाहिणाओ अब्भितराओ कण्हराईओ चउरंसाओ।

पुव्वावरा छलसा, तसा पुण दाहिणुत्तरा बज्झा।
अब्भतर चउरसा सव्वा वि य कण्हराईओ ॥१॥
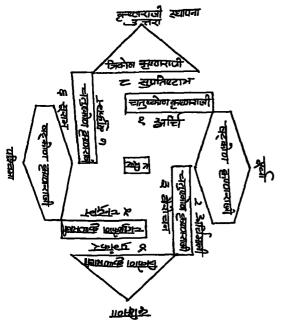
[१८ प्र] भगवन् ! ये आठ कृष्णराजियाँ कहाँ है ?

[१८ उ] गौतम ! ऊपर सनत्कुमार (तृतीय) और माहेन्द्र (चतुर्थ) कल्पो (देवलोको) पर और नीचे ब्रह्मलोक (पचम) देवलोक के अरिष्ट नामक विमान के (तृतीय) प्रस्तट (पाथडे) से नीचे, (अर्थात्) इस स्थान मे, अखाडा (प्रेक्षास्थल) के आकार की समचतुरस्र (समचौरस) सस्थान-वाली आठ कृष्णराजियाँ है। यथा—पूर्व मे दो, पश्चिम मे दो, दक्षिण मे दो और उत्तर मे दो। पूर्वाभ्यन्तर अर्थात्—पूर्वदिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजि दक्षिण दिशा की बाह्य कृष्णराजि को स्पर्श की (सटी) हुई है। दक्षिण दिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजि ने पश्चिम दिशा की बाह्य कृष्णराजि को स्पर्श किया हुआ है। पश्चिम दिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजि ने उत्तर दिशा की बाह्य कृष्णराजि को स्पर्श किया हुआ है, और उत्तर दिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजि पूर्वदिशा की बाह्य कृष्णराजि को स्पर्श की हुई है। पूर्व और पश्चिम दिशा की दो बाह्य कृष्णराजियाँ षडश (षट्कोण) है, उत्तर और दक्षिण की दो बाह्य कृष्णराजियाँ त्र्यस्र (त्रिकोण) है, पूर्व और पश्चिम की दो आभ्यन्तर कृष्णराजियाँ चतुरस्र (चतुष्कोण-चौकोन) है, इसी प्रकार उत्तर और दक्षिण की दो आभ्यन्तर कृष्णराजियाँ भी चतुष्कोण है।

[गाथार्थ—] "पूर्व और पश्चिम की कृष्णराजि षट्कोण है, तथा दक्षिण और उत्तर की बाह्य कृष्णराजि त्रिकोण है। शेष सभी आभ्यन्तर कृष्णराजियाँ चतुष्कोण है।"

---

१ हव्विं का स्पष्ट अर्थ है—नीचे। कुछ प्रतियो मे परिवर्तित पाठ 'हट्ठिं' 'हेट्ठिं' भी मिलता है।

१९. कण्हराईओ णं भंते ! केवतियं आयामेण, केवतियं विक्खभेणं, केवतियं परिक्खेवेण पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! असखेज्जाइ जोयणसहस्साइ आयामेण संखेज्जाइ जोयणसहस्साइ विक्खभेण, असखेज्जाइ जोयणसहस्साइं परिक्खेवेण पण्णत्ताओ ।

[१९ प्र] भगवन् ! कृष्णराजियो का आयाम (लम्बाई), विष्कम्भ (विस्तार-चौडाई) और परिक्षेप (घेरा=परिधि) कितना है ?

[१९ उ] गौतम ! कृष्णराजियो का आयाम असख्येय हजार योजन है, विष्कम्भ सख्येय हजार योजन है और परिक्षेप असख्येय हजार योजन कहा गया है ।

२०. कण्हराईओ ण भंते ! केमहालियाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! अय ण जबुद्दीवे दीवे जाव अद्धमास वीतीवएज्जा । अत्थेगतिय कण्हराइ वीतीवएज्जा, अत्थेगइयं कण्हराइ णो वीतीवएज्जा । एमहालियाओ ण गोयमा ! कण्हराईओ पण्णत्ताओ ।

[२० प्र] भगवन् ! कृष्णराजियाँ कितनी बडी कही गई है ?

[२० उ.] गौतम ! तीन चुटकी बजाए, उतने समय मे इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीप की इक्कीस बार परिक्रमा करके आ जाए—इतनी शीघ्र दिव्यगति से कोई देव लगातार एक दिन, दो दिन, यावत् अर्द्धमास तक चले, तब कही वह देव किसी कृष्णराजि को पार कर पाता है, और किसी कृष्णराजि को पार नही कर पाता । हे गौतम ! कृष्णराजियाँ इतनी बडी है ।

२१ अत्थि ण भंते ! कण्हराईसु गेहा ति वा, गेहावणा ति वा ?

नो इणट्ठे समट्ठे ।

[२१ प्र.] भगवन् ! क्या कृष्णराजियो मे गृह है अथवा गृहापण है ?

[२१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ (शक्य) नही है ।

२२ अत्थि ण भंते ! कण्हराईसु गामा ति वा० ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[२२ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णराजियो मे ग्राम आदि है ?

[२२ उ] (गौतम !) यह अर्थ समर्थ नही है । (अर्थात्—कृष्णराजियो मे ग्राम, नगर यावत् सन्निवेश नही हैं ।)

२३ [१] अत्थि ण भंते ! कण्ह० ओराला बलाहया सम्मुच्छंति ३ ?

हंता, अत्थि ।

[२३-१ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णराजियो मे उदार (विशाल) महामेघ सस्वेद को प्राप्त होते है, सम्मूर्छित होते है और वर्षा बरसाते है ?

[२३-१ उ] हाँ, गौतम ! कृष्णराजियो मे ऐसा होता है ।

[२] त भ ते ! किं देवो पकरेति ३ ?

गोयमा ! देवो पकरेति, नो असुरो, नो नागो य।

[२३-२ प्र] भगवन् ! क्या इन सबको देव करता है, असुर (कुमार) करता है अथवा नाग (कुमार) करता है ?

[२३-२ उ] गौतम ! (वहाँ यह सब) देव ही करता हे, किन्तु न असुर (कुमार) करता है और न नाग (कुमार) करता है।

२४. अत्थि ण भ ते ! कण्हराईसु बादरे थणियसद्दे ?

जहा ओराला (सु. २३) तहा।

[२४ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णराजियो मे बादर स्तनितशब्द है ?

[२४ उ] गौतम ! जिस प्रकार से उदार मेघो के विषय मे कहा गया हे, उसी प्रकार इनका भी कथन करना चाहिए। (अर्थात्—कृष्णराजियो मे बादर स्तनितशब्द है और उसे देव करता है, किन्तु असुरकुमार या नागकुमार नही करता।)

२५ अत्थि ण भ ते ! कण्हराईसु बादरे आउकाए बादरे अगणिकाए बायरे वणप्फतिकाए ?

णो इणट्ठे समट्ठे, णऽण्णत्थ विग्गहगतिसमावन्नएण।

[२५ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णराजियो मे बादर अप्काय, बादर अग्निकाय और बादर वनस्पतिकाय है ?

[२५ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है। यह निषेध विग्रहगतिसमापन्न जीवो के सिवाय दूसरे जीवो के लिये है।

२६ अत्थि णं भते ! ० चदिमसूरिय० ४ प० ?

णो इण०।

[२६ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णराजियो मे चन्द्रमा, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारारूप है ?

[२६ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है। (अर्थात्—ये वहाँ नही है।)

२७ अत्थि ण कण्ह० चदाभा ति वा २ ?

णो इणट्ठे समट्ठे।

[२७ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णराजियो मे चन्द्र की कान्ति या सूर्य की कान्ति (आभा) है ?

[२७ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

२८ कण्हराईओ ण भ ते ! केरिसियाओ वण्णेण पन्नत्ताओ ?

गोयमा ! कालाओ जाव[1] खिप्पामेव वीतीवएज्जा।

[२८ प्र] भगवन् ! कृष्णराजियो का वर्ण कैसा है ?

---

१ 'जाव' पद यहाँ सू १३ के निम्नोक्त पाठ का सूचक है—'कालावभासाओ गभीरलोमहरिसजणणाओ भीमाओ उत्तासणाओ परमकिण्हाओ वण्णेण पण्णत्ताओ, देवे वि अत्थेगतिए जे ण तप्पढमयाए पासित्ताण खुभाएज्जा, अहे ण अभिसमागच्छेज्जा, तओ पच्छा सीह सीह तुरिय तुरिय तत्थ खिप्पामेव वीतीवएज्जा।'

[२८ उ] गौतम ! कृष्णराजियो का वर्ण काला है, यह काली कान्ति वाली है, यावत् परमकृष्ण (एकदम काला) है। तमस्काय की तरह अतीव भयकर होने से इसे देखते ही देव क्षुब्ध हो जाता है, यावत् अगर कोई देव (साहस करके इनमे प्रविष्ट हो जाए, तो भी वह) शीघ्रगति से झटपट इसे पार कर जाता है।

२९. कण्हराईण भ ते ! कति नामधेज्जा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अट्ठ नामधेज्जा पण्णत्ता, त जहा—कण्हराई ति वा, मेहराई ति वा, मघा इ वा, माघवती ति वा, वातफलिहे ति वा, वातपलिक्खोमे इ वा, देवफलिहे इ वा, देवपलिक्खोभे ति वा।

[२९ प्र] भगवन् ! कृष्णराजियो के कितने नाम कहे गए है ?

[१९ उ] गौतम ! कृष्णराजियो के आठ नाम कहे गए है। वे इस प्रकार हैं—(१) कृष्णराजि, (२) मेघराजि, (३) मघा, (४) माघवती, (५) वातपरिघा, (६) वातपरिक्षोभा, (७) देवपरिघा और (८) देवपरिक्षोभा।

३० कण्हराईओ णं भ ते ! किं पुढविपरिणामाओ, आउपरिणामाओ, जीवपरिणामाओ, पुग्गलपरिणामाओ ?

गोयमा ! पुढविपरिणामाओ, नो आउपरिणामाओ, जीवपरिणामाओ वि, पुग्गल-परिणामाओ वि।

[३० प्र] भगवन् ! क्या कृष्णराजियाँ पृथ्वी के परिणामरूप है, जल के परिणामरूप है या जीव के परिणामरूप है, अथवा पुद्गलो के परिणामरूप हैं ?

[३० उ] गौतम ! कृष्णराजियाँ पृथ्वी के परिणामरूप है, किन्तु जल के परिणामरूप नही है, वे जीव के परिणामरूप भी है और पुद्गलो के परिणामरूप भी है।

३१. कण्हराईसु णं भ ते ! सव्वे पाणा भूया जीवा सत्ता उववन्नपुव्वा ?

हता, गोयमा ! असइ अदुवा अणतखुत्तो, नो चेव णं बादरआउकाइयत्ताए, बादरअगणिकाइ-यत्ताए, बादरवणस्सतिकाइयत्ताए वा।

[३१ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णराजियो मे सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व पहले उत्पन्न हो चुके हैं ?

[३१ उ] हाँ, गौतम ! सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व कृष्णराजियो मे अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हो चुके हैं, किन्तु बादर अप्कायरूप से, बादर अग्निकायरूप से और बादर वनस्पतिकायरूप से उत्पन्न नही हुए हैं।

विवेचन—विभिन्न पहलुओ से कृष्णराजियो से सम्बन्धित प्रश्नोत्तर—प्रस्तुत पन्द्रह सूत्रो (सू १७ से ३१ तक) मे तमस्काय की तरह कृष्णराजियो के सम्बन्ध मे विभिन्न प्रश्न उठाकर उनके समाधान प्रस्तुत कर दिये गए है।

तमस्काय और कृष्णराजि के प्रश्नोत्तरो मे कहाँ सादृश्य, कहाँ अन्तर ?—तमस्काय और

कृष्णराजि के प्रश्नो मे लगभग सादृश्य है, किन्तु उनके उत्तरो मे तमस्कायसम्बन्धी उत्तरो से कही-कही अन्तर है। यथा—कृष्णराजियाँ ८ बताई गई है। इनके सस्थान मे अन्तर है। इनका आयाम और परिक्षेप असख्येय हजार योजन है, जबकि विष्कम्भ (चौडाई=विस्तार) सख्येय हजार योजन है। ये तमस्काय से विशालता मे कम है, किन्तु इनकी भयकरता तमस्काय जितनी ही है।

कृष्णराजियो मे ग्रामादि या गृहादि नही है। वहाँ बडे-बडे मेघ है, जिन्हे देव बनाते है, गर्जाते व बरसाते है। वहाँ विग्रहगतिसमापन्न बादर अप्काय, अग्निकाय और वनस्पतिकाय के सिवाय कोई बादर अप्काय, अग्निकाय या वनस्पतिकाय नही है। वहाँ न तो चन्द्रादि हैं, और न चन्द्र सूर्य की प्रभा है। कृष्णराजियो का वर्ण तमस्काय के सदृश ही गाढ काला एव अन्धकारपूर्ण है। कृष्णराजियो के ८ सार्थक नाम हैं। वास्तव मे, ये कृष्णराजियाँ अप्काय के परिणामरूप नही हैं, किन्तु सचित्त और अचित्त पृथ्वी के परिणामरूप हैं, इसलिए कहा जा सकता है कि ये जीव और पुद्गल, दोनो के विकाररूप है। बादर अप्काय, अग्निकाय और वनस्पतिकाय को छोडकर अन्य सब जीव एक बार ही नही, अनेक बार और अनन्त बार कृष्णराजियो मे उत्पन्न हो चुके है।[1]

कृष्णराजियो के आठ नामो की व्याख्या—कृष्णराजि=काले वर्ण की पृथ्वी और पुद्गलो के परिणामरूप होने से काले पुद्गलो की राजि=रेखा। मेघराजि=काले मेघ की रेखा के सदृश। मघा=छठी नरक के समान अन्धकार वाली। माघवती=सातवी नरक के समान गाढान्धकार वाली। वातपरिघा=आधी के समान सघन अन्धकार वाली और दुर्लंघ्य। वातपरिक्षोभा=आधी के समान अन्धकार वाली और क्षोभजनक। देवपरिघा=देवो के लिए दुर्लंघ्य। देवपरिक्षोभा=देवो के लिए क्षोभजनक।[2]

लोकान्तिक देवो से सम्बन्धित विमान, देव-स्वामी, परिवार, संस्थान, स्थिति, दूरी आदि का विचार—

३२ एयासि ण अट्ठण्ह कण्हराईण अट्ठसु ओवासंतरेसु अट्ठ लोगंतियविमाणा पण्णत्ता, तं जहा—अच्ची अच्चिमाली वइरोयणे पभकरे चदाभे सूराभे सुक्काभे सुपतिट्ठाभे, मज्झे रिट्ठाभे।

[३२] इन (पूर्वोक्त) आठ कृष्णराजियो के आठ अवकाशान्तरो मे आठ लोकान्तिक विमान हैं। यथा—(१) अर्चि, (२) अर्चिमाली, (३) वैरोचन, (४) प्रभकर, (५) चन्द्राभ, (६) सूर्याभ, (७) शुक्राभ, और (८) सुप्रतिष्ठाभ। इन सबके मध्य मे रिष्टाभ विमान है।

३३ कहि णं भते! अच्ची विमाणे प०?

गोयमा! उत्तरपुरत्थिमेण।

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टि) भाग १, पृ २५१ से २५३
(ख) भगवती अ वृत्ति पत्राक २७१

२ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २७१

[३३ प्र] भगवन् ! अर्चि विमान कहाँ है ?

[३३ उ] गौतम ! अर्चि विमान उत्तर और पूर्व के बीच मे है ।

३४ कहि णं भंते ! अच्चिमाली विमाणे प० ?

गोयमा ! पुरत्थिमेण ।

[३४ प्र] भगवन् ! अर्चिमाली विमान कहाँ है ?

[३४ उ] गौतम ! अर्चिमाली विमान पूर्व मे है ।

३५ एव परिवाडीए नेयव्व जाव[1] कहि ण भंते ! रिट्ठे विमाणे पण्णत्ते ?

गोयमा ! बहुमज्झदेसभागे ।

[३५ प्र] इसी क्रम (परिपाटी) से सभी विमानो के विषय मे जानना चाहिए । यावत्—हे भगवन् ! रिष्ट विमान कहाँ बताया गया है ?

[३५ उ] गौतम ! रिष्ट विमान बहुमध्यभाग (सबके मध्य) मे बताया गया है ।

३६ एतेसु ण अट्ठसु लोगंतियविमाणेसु अट्ठविहा लोगंतिया देवा परिवसंति, तं जहा—

सारस्सयमाइच्चा वण्ही वरुणा य गद्दतोया य ।
तुसिया अव्वाबाहा अग्गिच्चा चेव रिट्ठा य ।।२।।

[३६] इन आठ लोकान्तिक विमानो मे अष्टविध (आठ जाति के) लोकान्तिक देव निवास करते है । वे (आठ प्रकार के लोकान्तिक देव) इस प्रकार हैं—(१) सारस्वत, (२) आदित्य, (३) वह्नि, (४) वरुण, (५) गर्दतोय, (६) तुषित, (७) आग्नेय और (८) रिष्ट देव (बीच मे) ।

३७. कहि णं भंते ! सारस्सता देवा परिवसंति ?

गोयमा ! अच्चिम्मि विमाणे परिवसंति ।

[३७ प्र] भगवन् ! सारस्वत देव कहाँ रहते है ?

[३७ उ] गौतम ! सारस्वत देव अर्चि विमान मे रहते है ।

३८ कहि णं भंते ! आदिच्चा देवा परिवसंति ?

गोयमा ! अच्चिमालिम्मि विमाणे० ।

[३८ प्र] भगवन् ! आदित्य देव कहाँ रहते हैं ?

[३८ उ] गौतम ! आदित्य देव अर्चिमाली विमान मे रहते है ।

३९ एव नेयव्वं जहाणुपुव्वीए जाव कहि णं भंते ! रिट्ठा देवा परिवसंति ?

गोयमा ! रिट्ठम्मि विमाणे ।

---

१. 'जाव' पद से यहाँ वैरोचन से लेकर सुप्रतिष्ठाभ विमान तक की वक्तव्यता समझ लेनी चाहिए ।

[३९ प्र] इस प्रकार अनुक्रम से यावत् रिष्ट विमान तक जान लेना चाहिए कि भगवन् ! रिष्ट देव कहाँ रहते है ?

[३९ उ.] गौतम ! रिष्ट देव रिष्ट विमान मे रहते है ।

४० [१] सारस्सय-मादिच्चाण भ ते ! देवाण कति देवा, कति देवसता पण्णत्ता ?

गोयमा ! सत्त देवा, सत्त देवसया परिवारो पण्णत्तो ।

[४०-१ प्र] भगवन् ! सारस्वत और आदित्य, इन दो देवो के कितने देव हैं और कितने सौ देवो का परिवार कहा गया है ?

[४०-१ उ] गौतम ! सारस्वत और आदित्य, इन दो देवो के सात देव (स्वामी=अधिपति) है और इनके ७०० देवो का परिवार है ।

[२] वण्ही-वरुणाणं देवाण चउद्दस देवा, चउद्दस देवसहस्सा परिवारो पण्णत्तो ।

[४०-२] वह्नि और अरुण, इन दो देवो के १४ देव स्वामी और १४ हजार देवो का परिवार कहा गया है ।

[३] गद्दतोय-तुसियाण देवाण सत्त देवा, सत्त देवसहस्सा परिवारो पण्णत्तो ।

[४०-३] गर्दतोय और तुषित देवो के ७ देव स्वामी और ७ हजार देवो का परिवार कहा गया है ।

[४] अवसेसाण नव देवा, नव देवसया परिवारो पण्णत्ता ।

पढमजुगलम्मि सत्त उ सयाणि बीयम्मि चोद्दस सहस्सा ।
ततिए सत्त सहस्सा नव चेव सयाणि सेसेसु ॥३॥

[४०-४] शेष (अव्याबाध, आग्नेय और रिष्ट, इन) तीनो देवो के नौ देव स्वामी और ९०० देवो का परिवार कहा गया है ।

(गाथार्थ—) प्रथम युगल मे ७००, दूसरे युगल मे १४,००० देवो का परिवार, तीसरे युगल मे ७,००० देवो का परिवार और शेष तीन देवो के ९०० देवो का परिवार है ।

४१ [१] लोगतिगविमाणा ण भ ते ! किंपतिट्ठिता पण्णत्ता ?

गोयमा ! वाउपतिट्ठिया पण्णत्ता ।

[४१-१ प्र] भगवन् ! लोकान्तिकविमान किसके आधार पर रहे हुए (प्रतिष्ठित) हैं ?

[४१-१ उ] गौतम ! लोकान्तिकविमान, वायुप्रतिष्ठित (वायु के आधार पर रहे हुए) हैं ।

[२] एव नेयव्व—'विमाणाण पतिट्ठाण बाहल्लुच्चत्तमेव संठाण' । बमलोयवत्तव्वया नेयव्वा जाव हता गोयमा ! असति अदुवा अणतखुत्तो, नो चेव ण देवत्ताए ।

[४१-२] इस प्रकार—जिस तरह विमानो का प्रतिष्ठान, विमानो का बाहल्य, विमानो की ऊँचाई और विमानो के सस्थान आदि का वर्णन, जीवाभिगमसूत्र के देव-उद्देशक मे ब्रह्मलोक की वक्तव्यता मे कहा है, तदनुसार यहाँ भी कहना चाहिए, यावत्—हाँ, गौतम ! सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व यहाँ अनेक बार और अनन्त बार पहले उत्पन्न हो चुके हैं, किन्तु लोकान्तिकविमानो मे देवरूप मे उत्पन्न नही हुए ।

४२ लोगतिगविमाणेसु लोगतियदेवाण भ ते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! अट्ठ सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता ।

[४२ प्र] भगवन् ! लोकान्तिकविमानो मे कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[४२ उ] गौतम ! लोकान्तिकविमानो मे आठ सागरोपम की स्थिति कही गई है ।

२३ लोगतिगविमाणेहि ण भ ते ! केवतिय अबाहाए लोगते पण्णत्ते ?

गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइ अबाहाए लोगते पण्णत्ते ।

सेव भ ते ! सेव भ ते ! त्ति० ।

।। छट्ठ सए : पचमो उद्देसओ समत्तो ।।

[४३ प्र] भगवन् ! लोकान्तिकविमानो से लोकान्त कितना दूर है ?

[४३ उ] गौतम ! लोकान्तिकविमानो से असख्येय हजार योजन दूर लोकान्त कहा गया है ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' इस प्रकार कह कर यावत् गौतमस्वामी विचरण करने लगे ।

विवेचन—लोकान्तिक देवो से सम्बन्धित विमान, देवस्वामी, परिवार, सस्थान, स्थिति, दूरी आदि का वर्णन—प्रस्तुत बारह सूत्रो (सू ३२ से ४३ तक) मे लोकान्तिक देवो से सम्बन्धित विमानादि का वर्णन किया गया है ।

विमानो का अवस्थान—पूर्व विवेचन मे लोकान्तिक देवो के विमानो के अवस्थान का रेखाचित्र दिया गया है ।

लोकान्तिक देवो का स्वरूप—ये देव ब्रह्मलोक नामक पचम देवलोक के पास रहते है, इसलिए इन्हे लोकान्तिक कहते है । अथवा ये उदयभावरूप लोक के अन्त (करने मे) रहे हुए है, क्योकि ये सब स्वामी देव एकभवावतारी (एक भव के पश्चात् मोक्षगामी) होते हैं, इसलिए भी इन्हे लोकान्तिक कहते हैं । लोकान्तिक विमानो से असख्यात योजन दूरी पर लोक का अन्त है और सभी जीव लोकान्तिक विमानो मे पृथ्वीकायादि रूप मे अनेक बार, यहाँ तक कि अनन्त बार उत्पन्न हो चुके है, किन्तु देवरूप से तो वहाँ एक बार ही उत्पन्न होते है, क्योकि लोकान्तिक विमानो मे देवरूप से उत्पन्न

होने वाले जीव नियमत भव्य होते है और एक भवपश्चात् मोक्षगामी होते है। इसलिए देवरूप से यहाँ अनेक बार या अनन्त बार उत्पन्न नही हुए।[1]

लोकान्तिक विमानो का सक्षिप्त निरूपण—जीवाभिगमसूत्र एव प्रज्ञापनासूत्र के अनुसार इनके विमान वायुप्रतिष्ठित है। इनका बाहल्य (मोटाई) २५०० योजन व ऊँचाई ७०० योजन होती है। जो विमान आवलिकाप्रविष्ट होते है, वे वृत्त (गोल) त्र्यस (त्रिकोण), या चतुरस्र (चतुष्कोण) होते है, किन्तु ये विमान आवलिकाप्रविष्ट नही होते, इसलिए इनका आकार नाना प्रकार का होता है। इन विमानो का वर्ण लाल, पीला और श्वेत होता है, ये प्रकाशयुक्त, दृष्ट वर्ण-गन्धयुक्त, एव सर्वरत्नमय होते है। इन विमानो के निवासी देव समचतुरस्र-सस्थानवाले, पद्मलेश्यायुक्त एव सम्यग्दृष्टि होते हैं।[2]

।। छठा शतक : पंचम उद्देशक समाप्त ।।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २७२

२ (क) जीवाभिगमसूत्र द्वितीय वैमानिक उद्देशक, पृ ३९४ से ४०६ तक (दे ला.)
(ख) प्रज्ञापनासूत्र दूसरा स्थानपद, ब्रह्मलोकदेवस्थानाधिकार, पृ १०३ (आ. स)
(ग) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २७२

छट्ठो उद्देसओ : 'भविए'

छठा उद्देशक : भव्य

चौबीस दण्डकों के आवास, विमान आदि की संख्या का निरूपण—

१ [१] कति ण भते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, त जहा—रयणप्पभा जाव[1] तमतमा ।

[१-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वियाँ कितनी कही गई है ?

[१-१ उ] गौतम ! पृथ्वियाँ सात कही गई है । यथा—रत्नप्रभा यावत् [शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पकप्रभा, धूमप्रभा, तम प्रभा] तमस्तम प्रभा ।

[२] रयणप्पभादीण आवासा भाणियव्वा जाव[2] अहेसत्तमाए । एव जे जत्तिया आवासा ते भाणियव्वा ।

[१-२] रत्नप्रभा पृथ्वी से लेकर यावत् अध सप्तमी (तमस्तम प्रभा) पृथ्वी तक, जिस पृथ्वी के जितने आवास हो, उतने कहने चाहिए ।

२. जाव[3] कति णं भ ते ! अणुत्तरविमाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पच अणुत्तरविमाणा पण्णत्ता, त जहा—विजए जाव सव्वट्ठसिद्धे ।

[२ प्र] भगवन् ! यावत् (भवनवासी से लेकर अनुत्तरविमान तक) अनुत्तर विमान कितने कहे गए हैं ?

[२ उ] गौतम ! पाच अनुत्तरविमान कहे गए हैं । वे इस प्रकार है—विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध विमान ।

विवेचन—चौवीस दण्डको के आवास, विमान आदि की संख्या का निरूपण—प्रस्तुत सूत्रद्वय मे से प्रथम सूत्र मे नरकपृथ्वियो की सख्या तथा उस-उस पृथ्वी के आवासो की सख्या का अतिदेश-पूर्वक निरूपण किया गया है । द्वितीय सूत्र मे अध्याहृतरूप मे भवनवासी से लेकर नौ ग्रैवेयक तक के आवासो व विमानो की सख्या का तथा प्रकटरूप मे अनुत्तरविमानो की सख्या का निरूपण किया गया है ।[4]

---

१ यहा 'जाव' पद सक्करप्पभा इत्यादि शेष पृथ्वियो तक का सूचक है ।

२. यहाँ भी 'जाव' पद रत्नप्रभा से लेकर सप्तम पृथ्वी (तमस्तम प्रभा) तक का सूचक है ।

३ यहाँ 'जाव' पद से 'भवनवासी' से अनुत्तरविमान से पूर्व तक का उल्लेख समझना चाहिए ।

४ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ २५६

चौवीस दण्डको के समुद्घात-समवहत जीव की आहारादि प्ररूपणा—

३ [१] जीवे ण भते ! मारणतियसमुग्घाएण समोहते, समोहणित्ता जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु अन्नतरसि निरयावाससि नेरइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भते ! तत्थगते चेव आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीर वा बधेज्जा ?

गोयमा ! अत्थेगइए तत्थगते चेव आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीर वा बधेज्ज, अत्थेगइए ततो पडिनियत्तति, इहमागच्छति, आगच्छित्ता दोच्च पि मारणतियसमुग्घाएण समोहणति, समोहणित्ता इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु अन्नयरसि निरयावाससि नेरइयत्ताए उववज्जित्ता ततो पच्छा आहारेज्ज वा परिणामेज्ज वा सरीर वा बंधेज्जा ।

[३-१ प्र] भगवन् ! जो जीव मारणान्तिक समुद्घात से समवहत हुआ है और समवहत हो कर इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नारकावासो मे से किसी एक नारकावास मे नैरयिक रूप मे उत्पन्न होने के योग्य है, भगवन् ! क्या वह वहाँ जा कर आहार करता है ? आहार को परिणमाता है ? और शरीर बाधता है ?

[३-१ उ] गौतम ! कोई जीव वहाँ जा कर ही आहार करता है, आहार को परिणमाता है या शरीर बाधता है, और कोई जीव वहाँ जा कर वापस लौटता है, वापस लौट कर यहाँ आता है। यहाँ आ कर वह फिर दूसरी बार मारणान्तिक समुद्घात द्वारा समवहत होता है। समवहत हो कर इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नारकावासो मे से किसी एक नारकावास मे नैरयिकरूप से उत्पन्न होता है। इसके पश्चात् आहार ग्रहण करता है, परिणमाता है और शरीर बाधता है।

[२] एवं जाव अहेसत्तमा पुढवी ।

[३-२] इसी प्रकार यावत् अध सप्तमी (तमस्तम प्रभा) पृथ्वी तक कहना चाहिए ।

४ जीवे ण भते ! मारणतियसमुग्घाएण समोहए, २ जे भविए चउसट्ठीए असुरकुमारावाससयसहस्सेसु अन्नतरसि असुरकुमारावाससि असुरकुमारत्ताए उववज्जित्तए० ।

जहा नेरइया तहा भाणियव्वा जाव[१] थणियकुमारा ।

[४ प्र] भगवन् ! जो जीव मारणान्तिक समुद्घात से समवहत हुआ है और समवहत हो कर असुरकुमारो के चौसठ लाख आवासो मे से किसी एक आवास मे उत्पन्न होने के योग्य है, क्या वह जीव वहाँ जा कर ही आहार करता है ? उस आहार को परिणमाता है और शरीर बाँधता है ?

[४ उ] गौतम ! जिस प्रकार नैरयिको के विषय मे कहा, उसी प्रकार असुरकुमारो के विषय मे, यावत् स्तनितकुमारो तक कहना चाहिए ।

५ [१] जीवे ण भते ! मारणतियसमुग्घाएण समोहए, २ जे भविए असखेज्जेसु पुढविकाइयावाससयसहस्सेसु अन्नयरसि पुढविकाइयावाससि पुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेण केवतिय गच्छेज्जा, केवतिय पाउणेज्जा ?

---

१ यहाँ 'जाव' पद से असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार पर्यन्त सभी भवनवासियो के नाम कहने चाहिए ।

गोयमा ! लोयंतं गच्छेज्जा, लोयंतं पाउणिज्जा ।

[५-१ प्र] भगवन् ! जो जीव मारणान्तिक समुद्घात से समवहत हुआ है, और समवहत हो कर असंख्येय लाख पृथ्वीकायिक आवासों में से किसी एक पृथ्वीकायिक आवास में पृथ्वीकायिक रूप से उत्पन्न होने के योग्य है, भगवन् ! वह जीव मंदर (मेरु) पर्वत से पूर्व में कितनी दूर जाता है ? और कितनी दूरी को प्राप्त करता है ?

[५-१ उ] हे गौतम ! वह लोकान्त तक जाता है और लोकान्त को प्राप्त करता है ।

[२] से णं भंते ! तत्थगए चेव आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बंधेज्जा ?

गोयमा ! अत्थेगइए तत्थगते चेव आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बंधेज्ज, अत्थेगइए ततो पडिनियत्तति, २ त्ता इहमागच्छइ, २ त्ता दोच्चं पि मारणंतियसमुग्घाएणं समोहणति, २ त्ता मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागमेत्तं वा संखेज्जतिभागमेत्तं वा, वालग्गं वा, वालग्गपुहत्तं वा एवं लिक्खं जूयं जवं अंगुलं जाव[1] जोयणकोडिं वा, जोयणकोडाकोडिं वा, संखेज्जेसु वा असंखेज्जेसु वा जोयणसहस्सेसु, लोगंते वा एगपदेसियं सेढिं मोत्तूण असंखेज्जेसु पुढविकाइयावास-सयसहस्सेसु अन्नयरंसि पुढविकाइयावासंसि पुढविकाइयत्ताए उववज्जेत्ता तओ पच्छा आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बंधेज्जा ।

[५-२ प्र] भगवन् ! क्या उपर्युक्त पृथ्वीकायिक जीव, वहाँ जा कर ही आहार करता है, आहार को परिणमाता है और शरीर बांधता है ?

[५-२ उ] गौतम ! कोई जीव, वहाँ जा कर ही आहार करता है । उस आहार को परिणमाता है और शरीर बांधता है, और कोई जीव वहाँ जा कर वापस लौटता है, वापस लौट कर यहाँ आता है, यहाँ आकर फिर दूसरी बार मारणान्तिक समुद्घात से समवहत होता है । समवहत हो कर मेरुपर्वत के पूर्व में अंगुल के असंख्येयभाग मात्र, या संख्येयभागमात्र, या बालाग्र, अथवा बालाग्र-पृथक्त्व (दो से नौ तक बालाग्र), इसी तरह लिक्षा, यूका, यव, अंगुल यावत् करोड योजन, कोटा-कोटि योजन, संख्येय हजार योजन और असंख्येय हजार योजन में, अथवा एक प्रदेश श्रेणी को छोड कर लोकान्त में पृथ्वीकाय के असंख्य लाख आवासों में से किसी आवास में पृथ्वीकायिकरूप से उत्पन्न होता है और उसके पश्चात् आहार करता है, उस आहार को परिणमाता है और शरीर बांधता है ।

[३] जहा पुरत्थिमेणं मंदरस्स पव्वयस्स आलावगो भणिओ एवं दाहिणेणं, पच्चत्थिमेणं, उत्तरेणं, उड्ढे, अहे ।

[५-३] जिस प्रकार मेरुपर्वत की पूर्वदिशा के विषय में कथन किया (आलापक कहा) गया है, उसी प्रकार से दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व और अधोदिशा के सम्बन्ध में कहना चाहिए ।

---

१ यहाँ 'जाव' पद 'विहत्थिं वा रयणिं वा कुच्छिं वा धणुं वा कोसं वा जोयणं वा जोयणसयं वा जोयणसहस्सं वा जोयणसयसहस्सं वा' पाठ का सूचक है ।

६. जहा पुढविकाइया तहा एगिंदियाण सव्वेसि एक्केक्कस्स छ आलावगा भाणियव्वा ।

[६] जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवो के विषय मे कहा गया है, उसी प्रकार मे सभी एकेन्द्रिय जीवो के विषय मे कहना चाहिए । एक-एक के छह-छह आलापक कहने चाहिए ।

७ जीवे ण भते ! मारणतियसमुग्घातेण समोहते, २ त्ता जे भविए असखेज्जेसु बेइंदियावाससयसहस्सेसु अन्नतरसि बेइंदियावाससि बेइंदियत्ताए उववज्जित्तए से ण भते !

तत्थगते चेव० जहा नेरइया । एव जाव अणुत्तरोववातिया ।

[७ प्र] भगवन् ! जो जीव, मारणान्तिक समुद्घात से समवहत हुआ है और समवहत होकर द्वीन्द्रिय जीवो के असंख्येय लाख आवासो मे से किसी एक आवास मे द्वीन्द्रिय रूप मे उत्पन्न होने वाला है, भगवन् ! क्या वह जीव वहाँ जा कर ही आहार करता है, उस आहार को परिणमाता है, और शरीर बाधता है ?

[७ उ] गौतम ! जिस प्रकार नैरयिको के लिए कहा गया, उसी प्रकार द्वीन्द्रिय जीवो से लेकर अनुत्तरौपपातिक देवो तक सब जीवो के लिए कथन करना चाहिए ।

८ जीवे णं भते ! मारणतियसमुग्घातेण समोहते, २ जे भविए एव पचसु अणुत्तरेसु महतिमहालएसु महाविमाणेसु अन्नयरसि अनुत्तरविमाणसि अणुत्तरोववाइयदेवत्ताए उववज्जित्तए, से णं भते !

तत्थगते चेव जाव आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीर वा बधेज्जा ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति० ।

।। छट्ठे सए छट्ठो उद्देसो समत्तो ।।

[८ प्र] हे भगवन् ! जो जीव मारणान्तिक समुद्घात से समवहत हुआ है और समवहत हो कर महान् से महान् महाविमानरूप पच अनुत्तरविमानो मे से किसी एक अनुत्तर विमान मे अनुत्तरौपपातिक देवरूप मे उत्पन्न होने वाला है, क्या वह जीव वहाँ जा कर ही आहार करता है, आहार को परिणमाता है और शरीर बाधता है ?

[८ उ] गौतम ! पहले कहा गया है, उसी प्रकार कहना चाहिए, यावत् आहार करता है, उसे परिणमाता है और शरीर बाधता है ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् यह इसी प्रकार है, ऐसा कह कर यावत् गौतमस्वामी विचरण करते है ।

विवेचन—चौवीस दण्डको मे मारणान्तिकसमुद्घातसमवहत जीव की आहारादि-प्ररूपणा— प्रस्तुत छह सूत्रो मे यह शका प्रस्तुत की गई है कि नारकदण्डक से लेकर अनुत्तरौपपातिक देवो तक मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत होकर जिस गति—योनि मे जाना हो, तो वहाँ जाकर आहार करता है, परिणमाता है, शरीर बाधता है, या और तरह से ? इसका समाधान किया गया है ।

आशय—जो जीव मारणान्तिक समुद्घात करके नरकावासादि उत्पत्तिस्थान पर जाते है, उस दौरान उनमे से कोई एक जीव, जो समुद्घात-काल मे ही मरणशरण हो जाता है, वह वहाँ जाकर वहाँ से अथवा समुद्घात से निवृत्त होकर वापस अपने शरीर मे आता है और दूसरी बार मारणान्तिक समुद्घात करके पुन उत्पत्तिस्थान पर आता है, फिर आहारयोग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है, तत्पश्चात् ग्रहण किये हुए उन पुद्गलो को पचा कर उनका खलरूप और रसरूप विभाग करता है। फिर उन पुद्गलो से शरीर की रचना करता है।

जीव लोकान्त मे जाकर उत्पत्तिस्थान के अनुसार अगुल के असख्येयभागमात्र आदि क्षेत्र मे समुद्घात द्वारा उत्पन्न होता है। यद्यपि जीव लोकाकाश के असख्येयप्रदेशो मे अवगाहन करने के स्वभाव वाला है, तथापि एकप्रदेशश्रेणी के असख्येयप्रदेशो मे उसका अवगाहन सभव नही है, क्योकि जीव का ऐसा ही स्वभाव है। इसीलिए यहाँ मूलपाठ मे कहा गया है—**'एगपदेसिय सेढि मोत्तूण'** अर्थात्—एकप्रदेशवाली श्रेणी को छोड कर।[1]

कठिन शब्दो के अर्थ—पडिनियत्तति—वापस लौटता है। **लोयत**=लोक के अन्त मे जाकर। **पाउणिज्जा**=प्राप्त करता है।[2]

॥ छठा शतक . छठा उद्देशक समाप्त ॥

१ (क) भगवतीसूत्र (हिन्दी विवेचन) भा २, पृ १०३०
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्राक २७३-२७४

२ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २७३

सत्तमो उद्देसओ : 'साली'

सप्तम उद्देशक : 'शाली'

कोठे आदि मे रखे हुए शाली आदि विविध धान्यो की योनि-स्थिति-प्ररूपणा—

१ अह णं भंते ! सालीण वीहीण गोधूमाण जवाण जवजवाण एतेसि ण धन्नाणं कोट्ठाउत्ताणं पल्लाउत्ताण मचाउत्ताणं मालाउत्ताण ओलित्ताण लित्ताण पिहिताण मुद्दियाण लंछियाण केवतियं काल जोणी संचिट्ठति ?

गोयमा ! जहन्नेण अतोमुहुत्त उक्कोसेण तिण्णि संवच्छराइ, तेण पर जोणी पमिलाति, तेण पर जोणी पविद्ध सति, तेण पर बीए अबीए भवति, तेण पर जोणिवोच्छेदे पन्नत्ते समणाउसो ! ।

[१ प्र] भगवन् ! शाली (कमल आदि जातिसम्पन्न चावल), व्रीहि (सामान्य चावल), गोधूम (गेहूँ), यव (जौ) तथा यवयव (विशिष्ट प्रकार का जौ), इत्यादि धान्य कोठे मे सुरक्षित रखे हो, बास के पल्ले (छबडे) मे रखे हो, मच (मचान) पर रखे हो, माल मे डालकर रखे हो, (बर्तन मे डाल कर) गोबर से उनके मुख उल्लिप्त (विशेष प्रकार से लीपे हुए) हो, लिप्त हो, ढँके हुए हो, (मिट्टी आदि से उन बर्तनो के मुख) मुद्रित (छदित किये हुए) हो, (उनके मुह वद करके) लाछित (सील लगाकर चिह्नित) किये हुए हो, (इस प्रकार सुरक्षित किये हुए हो) तो उन (धान्यो) की योनि (अकुरोत्पत्ति मे हेतुभूत शक्ति) कितने काल तक रहती है ?

[१ उ] हे गौतम ! उनकी योनि कम से कम अन्तर्मुहूर्त्त तक और अधिक से अधिक तीन वर्ष तक कायम रहती है। उसके पश्चात् उन (धान्यो) की योनि म्लान हो जाती है, प्रविध्वस को प्राप्त हो जाती है, फिर वह बीज, अबीज हो जाता है। इसके पश्चात् हे श्रमणायुष्मन् ! उस योनि का विच्छेद हुआ कहा जाता है।

२ अह भंते ! कलाय-मसूर-तिल-मुग्ग-मास-निप्फाव-कुलत्थ-आलिसंदग-सईण-पलिमंथगमादीण एतेसि णं धन्नाण० ?

जहा सालीण तहा एयाण वि, नवर पंच संवच्छराइं। सेसं त चेव।

[२ प्र] भगवन् ! कलाय, मसूर, तिल, मूग, उडद, बाल (बालोर), कुलथ, आलिसन्दक (एक प्रकार का चौला), तुअर (सतीण=अरहर), पलिमथक (गोल चना या काला चना) इत्यादि (धान्य पूर्वोक्त रूप से कोठे आदि मे रखे हुए हो तो इन) धान्यो की (योनि कितने काल तक कायम रहती है ?)

[२ उ] गौतम ! जिस प्रकार शाली धान्य के लिए कहा उसी प्रकार इन धान्यो के लिए भी कहना चाहिए। विशेषता इतनी ही है कि यहाँ उत्कृष्ट पाच वर्ष कहना चाहिए। शेष सारा वर्णन उसी तरह समझना चाहिए।

३. अह भंते ! अयसि-कुसुंभग-कोद्दव-कंगु-वरग-रालग-कोदूसग-सण-सरिसव-मूलगबीयमादीण एतेसिं ण धन्नाण० ?

एताणि वि तहेव, नवरं सत्त संवच्छराइं । सेसं तं चेव ।

[३ प्र] हे भगवन् ! अलसी, कुसुम्भ, कोद्रव (कोदो), कागणी, बरट (वटी), राल, सण, सरसो, मूलक बीज (एक जाति के शाक के बीज) आदि धान्यो की योनि कितने काल तक कायम रहती है ?

[३ उ] (हे गौतम ! जिस प्रकार शाली धान्य के लिए कहा,) उसी प्रकार इन धान्यो के लिए भी कहना चाहिए । विशेषता इतनी ही है कि इनकी योनि उत्कृष्ट सात वर्ष तक कायम रहती है । शेष वर्णन पूर्ववत् समझ लेना चाहिए ।

विवेचन—कोठे आदि मे रखे हुए शाली आदि विविध धान्यो की योनि-स्थिति-प्ररूपणा— प्रस्तुत तीन सूत्रो मे शाली आदि, कलाय आदि, तथा अलसी आदि विविध धान्यो की योनि के कायम रहने के काल का निरूपण किया गया है ।

निष्कर्ष—तीनो सूत्रो मे उल्लिखित शालि आदि धान्यो की योनि की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त है, और उत्कृष्ट स्थिति शालि आदि की तीन वर्ष है, कलाय आदि द्वितीयसूत्रोक्त धान्यो की पाच वर्ष है और अलसी आदि तृतीय सूत्रोक्त धान्यो की सात वर्ष है ।[1]

कठिन शब्दो के अर्थ—**पल्लाउत्ताण**=पल्य यानी बास के छबडे मे रखे हुए, **मचाउत्ताण**=मच पर रखे हुए, **माला-उत्ताणं**=माल-मजिल पर रखे हुए, **मुद्दियाण**=मुद्रित—छाप कर बद किये हुए ।[2]

मुहूर्त्त से लेकर शीर्ष-प्रहेलिका-पर्यन्त गणितयोग्य काल-परिमाण—

४ एगमेगस्स ण भंते ! मुहुत्तस्स केवतिया ऊसासद्धा वियाहिया ?

गोयमा ! असंखेज्जाण समयाणं समुदयसमितिसमागमेण सा एगा आवलिय त्ति पवुच्चइ, संखेज्जा आवलिया ऊसासो, संखेज्जा आवलिया निस्सासो ।

हट्ठस्स अणवगल्लस्स निरुवकिट्ठस्स जंतुणो ।
एगे ऊसासनीसासे, एस पाणु त्ति वुच्चति ॥१॥
सत्त पाणूणि से थोवे, सत्त थोवाइं से लवे ।
लवाण सत्तहत्तरिए एस मुहुत्ते वियाहिते ॥२॥
तिण्णि सहस्सा सत्त य सयाइं तेवत्तरिं च ऊसासा ।
एस मुहुत्तो दिट्ठो सव्वेहिं अणतनाणीहिं ॥३॥

[४ प्र] भगवन् ! एक-एक मुहूर्त्त के कितने उच्छ्वास कहे गये हैं ?

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा-१, पृ २५८-२५९
२ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २७४

[४ उ] गौतम ! असख्येय समयो के समुदाय की समिति के समागम से अर्थात् असख्यात समय मिलकर जितना काल होता है, उसे एक 'आवलिका' कहते हैं। सख्येय आवलिका का एक 'उच्छ्वास' होता है और सख्येय आवलिका का एक 'नि श्वास' होता है।

[गाथाओ का अर्थ—] हृष्टपुष्ट, वृद्धावस्था और व्याधि से रहित प्राणी का एक उच्छ्वास और एक नि श्वास—(ये दोनो मिल कर) एक 'प्राण' कहलाते है ।। १ ।। सात प्राणो का एक 'स्तोक' होता है। सात स्तोको का एक 'लव' होता है। ७७ लवो का एक मुहूर्त्त कहा गया है ।।२।। अथवा ३७७३ उच्छ्वासो का एक मुहूर्त्त होता है, ऐसा समस्त अनन्तज्ञानियो ने देखा है ।।३।।

५. एतेण मुहुत्तपमाणेण तीसमुहुत्तो अहोरत्तो, पण्णरस अहोरत्ता पक्खो, दो पक्खा मासो, दो मासा उऊ, तिण्णि उऊ अयणे, दो अयणा सवच्छरे, पचसवच्छरिए जुगे, वीस जुगाइ वाससय, दस वाससयाइ वाससहस्स, सय वाससहस्साइ वाससतसहस्स, चउरासीर्ति वाससतसहस्साणि से एगे पुव्वगे, चउरासीर्ति पुव्वगसयसहस्साइ से एगे पुव्वे, एव तुडिअगे तुडिए, अडडगे अडडे, अववगे अववे, हूहूअगे हूहूए, उप्पलगे उप्पले, पउमगे पउमे, नलिणगे नलिणे, अत्थनिउरगे अत्थनिउरे, अउअगे अउए, पउअगे पउए य, नउअगे नउए य, चूलिअगे चूलिआ य, सीसपहेलिअगे सीसपहेलिया। एताव ताव गणिए। एताव ताव गणियस्स विसए। तेण पर ओवमिए।

[५] इस मुहूर्त्त के अनुसार तीस मुहूर्त्त का एक 'अहोरात्र' होता है। पन्द्रह 'अहोरात्र' का एक 'पक्ष' होता है। दो पक्षो का एक 'मास' होता है। दो 'मासो' की एक 'ऋतु' होती है। तीन ऋतुओ का एक 'अयन' होता है। दो अयन का एक 'सवत्सर' (वर्ष) होता है। पाच सवत्सर का एक 'युग' होता है। बीस युग का एक वर्षशत (सौ वर्ष) होता है। दस वर्षशत का एक 'वर्षसहस्र' (एक हजार वर्ष) होता है। सौ वर्ष सहस्रो का एक 'वर्षशतसहस्र' (एक लाख वर्ष) होता है। चौरासी लाख वर्षो का एक पूर्वांग होता है। चौरासी लाख पूर्वांग का एक 'पूर्व' होता है। ८४ लाख पूर्व का एक त्रुटिताग होता है और ८४ लाख त्रुटिताग का एक 'त्रुटित' होता है। इस प्रकार पहले की राशि को ८४ लाख से गुणा करने से उत्तरोत्तर राशियाँ बनती है। वे इस प्रकार है—अटटाग, अटट, अववाग, अवव, हूहूकाग, हूहूक, उत्पलाग, उत्पल, पद्माग, पद्म, नलिनाग, नलिन, अर्थनुपूराग, अर्थनुपूर, अयुताग, अयुत, प्रयुताग, प्रयुत, नयुताग, नयुत, चूलिकाग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकाग और शीर्षप्रहेलिका। इस सख्या तक गणित है। यह गणित का विषय है। इसके बाद औपमिक काल है (उपमा का विषय है—उपमा द्वारा जाना जाता है, गणित (गणना) का नही)।

विवेचन—मुहूर्त्त से लेकर शीर्ष-प्रहेलिकापर्यन्त गणितयोग्य काल-परिमाण—प्रस्तुत सूत्रद्वय मे ४६ भेद वाले गणनीय काल का परिमाण बतलाया गया है।

गणनीय काल—जिस काल की सख्या के रूप मे गणना हो सके, उसे गणनीय या गणितयोग्य काल कहते हैं। काल का सूक्ष्मतम भाग समय होता है। असख्यात समय की एक आवलिका होती है। २५६ आवलिका का एक क्षुल्लकभवग्रहण होता है। १७ से कुछ अधिक क्षुल्लकभवग्रहण का एक उच्छ्वास-नि श्वासकाल होता है। इसके आगे की संख्या स्पष्ट है। सबसे अन्तिम गणनीय काल 'शीर्षप्रहेलिका' है, और जो १९४ अको की सख्या है। यथा—७५८२६३२५३०७३०१०२४११५७९

७३५६६९७५६६६४०६२१८९६६८४८०८०१८३२९६ इन ५४ अकों पर १४० बिन्दियाँ लगाने से शीर्षप्रहेलिका सख्या का प्रमाण होता है। यहाँ तक का काल गणित का विषय है। इसके आगे का काल औपमिक है। अतिशय ज्ञानी के अतिरिक्त साधारण व्यक्ति उस को गिनती करके उपमा के बिना ग्रहण नही कर सकते, इसलिए उसे 'उपमेय' या 'औपमिक' काल कहा गया है।[1]

पल्योपम, सागरोपम आदि औपमिककाल का स्वरूप और परिमाण—

६ से किं त ओवमिए ?

ओवमिए दुविहे पण्णत्ते, त जहा—पलिओवमे य, सागरोवमे य।

[६ प्र] भगवन्! वह औपमिक (काल) क्या है ?

[६ उ] गौतम! औपमिक काल दो प्रकार कहा गया है। वह इस प्रकार है—पल्योपम और सागरोपम।

७ से किं त पलिओवमे ? से किं त सागरोवमे ?

सत्थेण सुतिक्खेण वि छेत्तु भेत्तुं च ज किर न सक्का।
त परमाणु सिद्धा वदति आदि पमाणाण ॥४॥

अणताण परमाणुपोग्गलाण समुदयसमितिसमागमेणं सा एगा उस्सण्हसण्हिया ति वा, सण्हसण्हिया ति वा, उड्ढरेणू ति वा, तसरेणू ति वा, रहरेणू ति वा, वालग्गे ति वा, लिक्खा ति वा, जूया ति वा, जवमज्झे ति वा, अगुले ति वा। अट्ठ उस्सण्हसण्हियाओ सा एगा सण्हसण्हिया, अट्ठ सण्हसण्हियाओ सा एगा उड्ढरेणू, अट्ठ उड्ढरेणूओ सा एगा तसरेणू, अट्ठ तसरेणूओ सा एगा रहरेणू अट्ठ रहरेणूओ से एगे देवकुरु-उत्तरकुरुगाण मणूसाण वालग्गे, एव हरिवास-रम्मग-हेमवत-एरण्णवताण पुव्वविदेहाण मणूसाण अट्ठ वालग्गा स एगा लिक्खा, अट्ठ लिक्खाओ सा एगा जूया, अट्ठ जूयाओ से एगे जवमज्झे, अट्ठ जवमज्झा से एगे अगुले, एतेण अगुलपमाणेण छ अगुलाणि पादो, बारस अगुलाइ विहत्थी, चउव्वीस अगुलाणि रयणी, अडयालीसं अगुलाइ कुच्छी, छण्णउतिं अगुलाणि से एगे दडे ति वा, धणू ति वा, जूए ति वा, नालिया ति वा, अक्खे ति वा, मुसले ति वा, एतेण धणुप्पमाणेण दो धणुसहस्साइ गाउय, चत्तारि गाउयाइ जोयण, एतेण जोयणप्पमाणेण जे पल्ले जोयण आयामविक्खभेण, जोयण उड्ढ उच्चत्तेण त तिउण सविसेस परिरएण। से ण एगाहिय-बेयाहिय-तेयाहिय उक्कोस सत्तरत्तप्परूढाण ससट्ठे सन्निचिते भरिते वालग्गकोडीण, ते ण वालग्गे नो अग्गी डहेज्जा, नो वातो हरेज्जा, नो कुत्थेज्जा नो परिविद्ध सेज्जा, नो पूतित्ताए हव्वमागच्छेज्जा। ततो ण वाससते वाससते गते एगमेग वालग्ग अवहाय जावतिएण कालेण से पल्ले खीणे नीरए निम्मले निट्ठिते निल्लेवे अवहडे विसुद्धे भवति। से त पलिओवमे। गाहा—

---

१ भगवतीसूत्र (हिन्दीविवेचन युक्त) भा २, पृ १०३५-१०३६

एतेसिं पल्लाण कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिया ।
तं सागरोवमस्स तु एक्कस्स भवे परीमाणं ॥५॥

[७ प्र] भगवन् ! 'पल्योपम' (काल) क्या है ? तथा 'सागरोपम' (काल) क्या है ?

[७ उ] हे गौतम ! जो सुतीक्ष्ण शस्त्रो द्वारा भी छेदा-भेदा न जा सके ऐसे परम-अणु (परमाणु) को सिद्ध (ज्ञानसिद्ध केवली) भगवान् समस्त प्रमाणो का आदिभूत प्रमाण कहते हैं। ऐसे अनन्त परमाणुपुद्गलो के समुदाय की समितियो के समागम से एक उच्छ्लक्ष्ण श्लक्ष्णिका, श्लक्ष्ण-श्लक्ष्णिका, ऊर्ध्वरेणु, त्रसरेणु, रथरेणु, वालाग्र, लिक्षा, यूका, यवमध्य और अगुल होता है। आठ उच्छ्लक्ष्ण-श्लक्ष्णिका के मिलने से एक श्लक्ष्ण-श्लक्ष्णिका होती है। आठ श्लक्ष्ण-श्लक्ष्णिका के मिलने से एक ऊर्ध्वरेणु, आठ ऊर्ध्वरेणु मिलने से एक त्रसरेणु, आठ त्रसरेणुओ के मिलने से एक रथरेणु और आठ रथरेणुओ के मिलने से देवकुरु—उत्तरकुरु क्षेत्र के मनुष्यो का एक वालाग्र होता है, तथा देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्र के मनुष्यो के आठ वालाग्रो से हरिवर्ष और रम्यक्वर्ष के मनुष्यो का एक बालाग्र होता है। हरिवर्ष और रम्यक्वर्ष के मनुष्यो के आठ बालाग्रो से हैमवत और ऐरावत के मनुष्यो का एक बालाग्र होता है। हैमवत और ऐरावत के मनुष्यो के आठ वालाग्रो से पूर्वविदेह के मनुष्यो का एक बालाग्र होता है। पूर्वविदेह के मनुष्यो के आठ बालाग्रो से एक लिक्षा (लीख), आठ लिक्षा से एक यूका (जू), आठ यूका से एक यवमध्य और आठ यवमध्य से एक अगुल होता है। इस प्रकार के छह अगुल का एक पाद (पैर), बारह अगुल की एक वितस्ति (वेंत), चौवीस अगुल का एक हाथ, अडतालीस अगुल की एक कुक्षि, छियानवे अगुल का दण्ड, धनुष, युग, नालिका, अक्ष अथवा मूसल होता है। दो हजार धनुष का एक गाऊ होता है और चार गाऊ का एक योजन होता है।

इस योजन के परिमाण से एक योजन लम्बा, एक योजन चौडा और एक योजन गहरा (ऊपर मे ऊँचा), तिगुणी से अधिक परिधि वाला एक पल्य हो, उस पल्य मे एक दिन के उगे हुए, दो दिन के उगे हुए, तीन दिन के उगे हुए, और अधिक से अधिक सात रात्रि के उगे हुए करोडो बालाग्र, किनारे तक ऐसे ठूस-ठूस कर भरे हो, सनिचित (इकट्ठे) किये हो, अत्यन्त भरे हो, कि उन बालाग्रो को अग्नि न जला सके और हवा उन्हे उडा कर न ले जा सके, वे बालाग्र सडे नही, न ही परिध्वस्त (नष्ट) हो, और न ही वे शीघ्र दुर्गन्धित हो। इसके पश्चात् उस पल्य मे से सौ-सौ वर्ष मे एक-एक बालाग्र को निकाला जाए। इस क्रम से तब तक निकाला जाए, जब तक कि वह पल्य क्षीण हो, नीरज हो, निर्मल हो, निष्ठित (पूर्ण) हो जाए, निर्लेप हो, अपहृत हो और विशुद्ध (पूरी तरह खाली)हो जाए। उतने काल को एक 'पल्योपमकाल' कहते है। (सागरोपमकाल के परिमाण को बताने वाली गाथा का अर्थ इस प्रकार है—) इस पल्योपम काल का जो परिणाम ऊपर बतलाया गया है, वैसे दस कोटाकोटि (गुणे) पल्योपमो का एक सागरोपम-कालपरिमाण होता है।

८ एएणं सागरोवमपमाणेण चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमसुसमा १, तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमा २, दो सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमदूसमा ३, एगा सागरोवमकोडाकोडी बायालीसाए वाससहस्सेहिं ऊणिया कालो दूसमसुसमा ४, एक्कवीस वाससहस्साइं कालो दूसमा ५, एक्कवीस वाससहस्साइं कालो दूसमदूसमा ६। पुणरवि उस्सप्पिणीए एक्कवीस

वाससहस्साइ कालो दूसमदूसमा १। एक्कवीस वाससहस्साइ जाव[1] चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमसुसमा ६। दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो ओसप्पिणी। दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो उस्सप्पिणी। वीस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो ओसप्पिणी य उस्सप्पिणी य।

(८) इस सागरोपम-परिमाण के अनुसार चार कोटाकोटि सागरोपम-काल का एक सुषम-सुषमा आरा होता है, तीन कोटाकोटि सागरोपम-काल का एक सुषमा आरा होता है, दो कोटाकोटि सागरोपम-काल का एक सुषमदु षमा आरा होता है, बयालीस हजार वर्ष कम एक कोटाकोटि सागरोपम-काल का एक दु षमसुषमा आरा होता है, इक्कीस हजार वर्ष का एक दु षम आरा होता है और इक्कीस हजार वर्ष का एक दु षमदु षमा आरा होता है।

इसी प्रकार उत्सर्पिणीकाल मे पुन इक्कीस हजार वर्ष परिमित काल का प्रथम दु षम-दु षमा आरा होता है। इक्कीस हजार वर्ष का द्वितीय दु षम आरा होता है, बयालीस हजार वर्ष कम एक कोटाकोटि सागरोपम काल का तीसरा दु षम-सुषमा आरा होता है, दो कोटाकोटि सागरोपमकाल का चौथा सुषम-दु षमा आरा होता है। तीन कोटाकोटि सागरोपमकाल का पाचवाँ सुषम आरा होता है और चार कोटाकोटि सागरोपमकाल का छठा सुषम-सुषमा आरा होता है।

इस प्रकार (कुल) दस कोटाकोटि सागरोपमकाल का एक अवसर्पिणीकाल होता है और दस कोटाकोटि सागरोपम काल का ही उत्सर्पिणीकाल होता है। यो बीस कोटाकोटि सागरोपमकाल का एक अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी-कालचक्र होता है।

विवेचन—औपमिककाल का परिमाण—प्रस्तुत दो सूत्रो मे से प्रथमसूत्र मे पल्योपम एव सागरोपम काल का परिमाण तथा द्वितीय सूत्र मे अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी रूप द्वादश आरे सहित काल-चक्र का परिमाण बताया गया है।

पल्योपम का स्वरूप और प्रकार—यहाँ जो पल्योपम का स्वरूप बतलाया गया है, वह व्यवहार अद्धापल्योपम का स्वरूप बताया गया है। पल्योपम के मुख्य तीन भेद हैं—(१) उद्धार-पल्योपम, (२) अद्धापल्योपम और (३) क्षेत्रपल्योपम। उद्धारपल्योपम आदि के प्रत्येक के दो प्रकार हैं—व्यवहार उद्धारपल्योपम एव सूक्ष्म उद्धारपल्योपम, व्यवहार अद्धापल्योपम एव सूक्ष्म अद्धा-पल्योपम, तथा व्यवहार क्षेत्रपल्योपम एव सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम।

उद्धारपल्योपम—उत्सेधागुल परिमाण से एक योजन लम्बे, एक योजन चौडे और एक योजन ऊँचे—गहरे गोलाकार कुए मे देवकुरु-उत्तरकुरु के यौगलिको के मुण्डित मस्तक पर एक दिन के, दो दिन के यावत् ७ दिन के उगे हुए करोडो बालाग्रो से उस कूप को यो ठू स ठू स कर भरा जाए कि वे बालाग्र न तो आग से जल सके और न ही हवा से उड सके। फिर उनमे से प्रत्येक को एक-एक समय मे निकालते हुए जितने समय मे वह कु आ सर्वथा खाली हो जाए, उस कालमान को **व्यावहारिक उद्धार पल्योपम** कहते हैं। यह पल्योपम सख्यात समयपरिमित होता है। इसी तरह उक्त बालाग्र के असख्यात अदृश्य खण्ड किये जाएँ, जो कि विशुद्ध नेत्र वाले छद्मस्थ पुरुष के दृष्टि-गोचर होने वाले सूक्ष्म पुद्गलद्रव्य के असख्यातवे भाग एव सूक्ष्म पनक के शरीर से असख्यातगुणा

---

१ 'जाव' पद यहाँ अवसर्पिणीकाल को गणना की तरह ही उत्सर्पिणीकाल-गणना का बोधक है।

हो। उन सूक्ष्म बालाग्रखण्डो से वह कूप ठूस-ठूस कर भरा जाए और उनमे से एक-एक बालाग्रखण्ड प्रतिसमय निकाला जाये। यो निकालते-निकालते जितने काल मे वह कुंआ खाली हो जाए, उसे **सूक्ष्म उद्धारपल्योपम** कहते है। इसमे सख्यातवर्षकोटिपरिमित काल होता है।

अद्धापल्योपम—उपर्युक्त रीति से भरे हुए उपर्युक्त परिमाण वाले कूप मे से एक-एक बालाग्र सौ-सौ वर्ष मे निकाला जाए। इस प्रकार निकालते-निकालते जितने काल मे वह कुआ सर्वथा खाली हो जाए, उसे **व्यवहार 'अद्धापल्योपम'** कहते हैं। यह अनेक सख्यातवर्षकोटिप्रमाण होता है। यदि यही कुआ उपर्युक्त सूक्ष्म बालाग्रखण्डो से भरा हो और उनमे से प्रत्येक बालाग्रखण्ड को सौ-सौ वर्ष मे निकालते-निकालते जितने काल मे वह कुआ खाली हो जाए, उसे **सूक्ष्म अद्धापल्योपम** कहते हैं। इसमे असख्यातवर्षकोटिप्रमाण काल होता है।

क्षेत्रपल्योपम—उपर्युक्त परिमाण का कूप उपर्युक्त रीति से बालाग्रो से भरा हो, उन बालाग्रो को जितने आकाशप्रदेश स्पर्श किये हुए है, उन स्पर्श किये हुए आकाशप्रदेशो मे से प्रत्येक को (बौद्धिक कल्पना से) प्रति समय निकाला जाए। इस प्रकार उन छुए हुए आकाशप्रदेशो को निकालने मे जितना समय लगे, वह **व्यवहार क्षेत्रपल्योपम** है। इसमे असख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीपरिमाण काल होता है। यदि यही कुआ बालाग्र के सूक्ष्मखण्डो से ठूस-ठूस कर भरा जाए, तथा उन बालाग्र-खण्डो से छुए हुए एव नही छुए हुए सभी आकाप्रदेशो मे से प्रत्येक आकाशप्रदेश को प्रतिसमय निकालते हुए सभी को निकालने मे जितना काल लगे, वह **सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम** है। इसमे भी असख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीपरिमाणकाल होता है, किन्तु इसका काल व्यवहार क्षेत्रपल्योपम से असख्यात गुणा है।

सागरोपम के प्रकार—पल्योपम की तरह सागरोपम के तीन भेद है और प्रत्येक भेद के दो-दो प्रकार हैं।

उद्धारसागरोपम के दो भेद है—व्यवहार और सूक्ष्म। दस कोटाकोटि व्यवहार उद्धारपल्योपम का एक **व्यवहार उद्धारसागरोपम** होता है। दस कोटाकोटि सूक्ष्म उद्धारपल्योपम का एक **सूक्ष्म उद्धारसागरोपम** होता है। ढाई सूक्ष्म उद्धारसागरोपम या २५ कोडाकोडी सूक्ष्म उद्धारपल्योपम मे जितने समय होते हैं, उतने ही लोक मे द्वीप और समुद्र है।

अद्धासागरोपम के भी दो भेद हैं—व्यवहार और सूक्ष्म। दस कोडाकोडी व्यवहार अद्धा-पल्योपम का एक **व्यवहार अद्धासागरोपम** होता है और दस कोडाकोडी सूक्ष्म अद्धापल्योपम का एक **सूक्ष्म अद्धासागरोपम** होता है। जीवो की कर्मस्थिति, कायस्थिति और भवस्थिति तथा आरो का परिमाण सूक्ष्म अद्धापल्योपम और सूक्ष्म अद्धासागरोपम से मापा जाता है।

क्षेत्रसागरोपम के भी दो भेद हैं—व्यवहार और सूक्ष्म। दस कोडा-कोडी व्यवहार क्षेत्र-पल्योपम का एक व्यवहार क्षेत्रसागरोपम होता है, और दस कोडाकोडी सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम का एक सूक्ष्म सागरोपम होता है। सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम एव सूक्ष्म क्षेत्रसागरोपम से दृष्टिवाद मे उक्त द्रव्य मापे जाते है।[1]

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २७७

(ख) भगवती (हिन्दी विवेचनयुक्त) भाग-२, १०४०-१०४१

सुषमसुषमाकालीन भारतवर्ष के भाव-आविर्भाव का निरूपण—

९ जबुद्दीवे ण भते ! दीवे इमीसे ओसप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए उत्तमट्ठपत्ताए भरहस्स वासस्स केरिसए आगारभावपडोयारे होत्था ?

गोतमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था, से जहानामए आलिंगपुक्खरे ति वा, एव उत्तरकुरुवत्तव्वया[1] नेयव्वा जाव आसयति सयति । तीसे ण समाए भारहे वासे तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहवे उराला कुद्दाला जाव[2] कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला जाव छव्विहा मणूसा अणुसज्जित्था, त०—पम्हगधा १ मियगधा २ अममा ३ तेयली ४ सहा ५ सणिचारी ६ ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति० ।

॥ छट्ठे सए सत्तमो सालिउद्देसो समत्तो ॥

[९ प्र] भगवन् ! इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे उत्तमार्थ-प्राप्त इस अवसर्पिणीकाल के सुषम-सुषमा नामक आरे मे भरतक्षेत्र (भारतवर्ष) के आकार (आचार-) भाव-प्रत्यवतार (आचारो और पदार्थो के भाव-पर्याय-अवस्था) किस प्रकार के थे ?

[९ उ] गौतम ! (उस समय) भूमिभाग बहुत सम होने से अत्यन्त रमणीय था । जैसे-कोई मुरज (आलिग-तबला) नामक वाद्य का चर्ममण्डित मुखपट हो, वैसा बहुत ही सम भरतक्षेत्र का भूभाग था । इस प्रकार उस समय के भरतक्षेत्र के लिए उत्तरकुरु की वक्तव्यता के समान, यावत् बैठते है, सोते हैं, यहाँ तक वक्तव्यता कहनी चाहिए । उस काल (अवसर्पिणी के प्रथम आरे) मे भारतवर्ष मे उन-उन देशो के उन-उन स्थलो मे उदार (प्रधान) एव कुद्दालक यावत् कुश और विकुश से विशुद्ध वृक्षमूल थे, यावत् छह प्रकार के मनुष्य थे । यथा—(१) पद्मगन्ध वाले, (२) मृग (कस्तूरी के समान) गन्ध वाले, (३) अमम (ममत्वरहित), (४) तेजतली (तेजस्वी एव रूपवान्), (५) सहा (सहनशील) और शनैश्चर (उत्सुकतारहित होने से धीरे-धीरे गजगति से चलने वाले) थे ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है' यो कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरने लगे ।

१ जीवाभिगम सूत्र मे उक्त उत्तरकुरुवक्तव्यता इस प्रकार है—'मुइगपुक्खरे इ वा, सरतले इ वा-सरस्तल सर एव, करतले इ वा-करतल कर एव, इत्यादीति । एव भूमिसमताया भूमिभागगततृण-मणीना वर्णपञ्चकस्य, सुरभिगन्धस्य, मृदुस्पर्शस्य, शुभशब्दस्य, वाप्यादीना वाप्याद्यनुगतोत्पातपर्वतादीनामुत्पातपर्वताद्याश्रिताना हसासनादीना लतागृहादीना शिलापट्टकादीना च वर्णको वाच्य । तदन्ते चैतद् दृश्यम्-तत्थ ण बहवे भारया मणुस्सा मणुस्सीओ य आसयति सयति चिट्ठ ति निसीयति तुयट्ट ति । इत्यादि'—जीवाभिगम म वृत्ति ।

२ 'जाव' शब्द से कयमाला णट्टमाला इत्यादि तथा वृक्षो के नाम—"उद्दाला कोद्दाला मोद्दाला कृतमाला नृत्तमाला वृत्तमाला दन्तमाला भृङ्गमाला शङ्खमाला श्वेतमाला नाम द्रुमगणा" समझ लें । (पत्र २६४-२) । जाव शब्द मूलमतो कदमतो इत्यादि का सूचक है ।

विवेचन—सुषमसुषमाकालीन भारतवर्ष के जीवों-अजीवों के भाव-निरूपण—प्रस्तुत सूत्र में सुषमसुषमा नामक अवसर्पिणीकालिक प्रथम आरे में मनुष्यों एवं पदार्थों की उत्कृष्टता का वर्णन किया गया है।[1]

कठिन शब्द—उत्तमट्ठपत्ताए—आयुष्यादि उत्तम अवस्था को प्राप्त। तेयलि=तेजवाले और रूप वाले।

॥ छठा शतक : सप्तम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्रांक २७७-२७८

(ख) जीवाभिगमसूत्र प्रतिपत्ति ३ उत्तरकुरुवर्णन पृ. २६२ से २८४ तक

अट् मो उद्देसओ : 'पुढवी'

अष्टम उद्देशक : 'पृथ्वी'

रत्नप्रभादि पृथ्वियो तथा सर्वदेवलोकों मे गृह-ग्राम-मेघादि के अस्तित्व और कर्तृत्व की प्ररूपणा—

१ कइ ण भ ते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ पुढवीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—रयणप्पभा जाव ईसीपब्भारा ।

[१ प्र] भगवन् ! कितनी पृथ्वियाँ कही गई हैं ?'

[१ उ] गौतम ! आठ पृथ्वियाँ कही गई हैं। वे इस प्रकार—(१) रत्नप्रभा, (१) शर्करा-प्रभा (३) बालुकाप्रभा, (४) पकप्रभा, (५) धूमप्रभा, (६) तम प्रभा, (७) महातम प्रभा और (८) ईषत्प्राग्भारा।

२ अत्थि ण भ ते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे गेहा ति वा गेहावणा ति वा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

[२ प्र] भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभापृथ्वी के नीचे गृह (घर) अथवा गृहापण (दूकानें) हैं ?

[२ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है। (अर्थात्—रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे गृह या गृहापण नही है।)

३ अत्थि ण भ ते ! इमीसे रयणप्पभाए अहे गामा ति वा जाव सन्निवेसा ति वा ?

नो इणट्ठे समट्ठे ।

[३ प्र.] भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभापृथ्वी के नीचे ग्राम यावत् सन्निवेश है ?

[३ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है। (अर्थात्—रत्नप्रभापृथ्वी के नीचे ग्राम यावत् सन्निवेश नही हैं।)

४. अत्थि ण भ ते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे उराला बलाहया ससेयति, सम्मुच्छति, वास वासति ?

हता, अत्थि ।

[४ प्र] भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभापृथ्वी के नीचे महान् (उदार) मेघ सस्वेद को प्राप्त होते हैं, सम्मूर्च्छित होते है और वर्षा बरसाते हैं ?

[४ उ] हाँ गौतम ! (वहाँ महामेघ सस्वेद को प्राप्त होते है, सम्मूर्च्छित होते है और वर्षा भी बरसाते) हैं।

५. तिण्णि वि पकरिंति—देवो वि पकरेति, असुरो वि प०, नागो वि प०।

[५] ये सब कार्य (महामेघो को सस्वेदित एव सम्मूर्च्छित करने तथा वर्षा बरसाने का कार्य) ये तीनो करते है—देव भी करते ते, असुर भी करते है और नाग भी करते है।

६ अत्थि ण भ ते ! इमीसे रयण० बादरे थणियसद्दे ?

हता, अत्थि।

[६ प्र] भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभापृथ्वी मे बादर (स्थूल) स्तनितशब्द (मेघगर्जना की आवाज) है?

७. तिण्णि वि पकरेंति।

[६-७ उ] हा, गौतम ! बादर स्तनितशब्द है, जिसे (उपर्युक्त) तीनो ही करते है।

८ अत्थि ण भ ते ! इमीसे रयणप्पभाए अहे बादरे अगणिकाए ?

गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, नऽन्नत्थ विग्गहगतिसमावन्नएण।

[८ प्र] भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभापृथ्वी के नीचे बादर अग्निकाय है ?

[८ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है। यह निषेध विग्रह-गतिसमापन्नक जीवो के सिवाय (दूसरे जीवो के लिए समझना चाहिए।)

९ अत्थि ण भते ! इमीसे रयण० अहे चदिम जाव तारारूवा ?

नो इणट्ठे समट्ठे।

[९ प्र] भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नीचे क्या चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा-रूप है ?

[९ उ] (गौतम !) यह अर्थ समर्थ नही है।

१० अत्थि ण भते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए चदाभा ति वा २।

णो इणट्ठे समट्ठे।

[१० प्र] भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभापृथ्वी मे चन्द्राभा (चन्द्रमा का प्रकाश), सूर्याभा (सूर्य का प्रकाश) आदि है ?

[१० उ] (गौतम !) यह अर्थ समर्थ नही है।

११. एव दोच्चाए वि पुढवीए भाणियव्वं।

[११] इसी प्रकार (पूर्वोक्त सभी बाते) दूसरी पृथ्वी (शर्कराप्रभा) के लिए भी कहना चाहिए।

१२ एव तच्चाए वि भाणियव्व, नवर देवो वि पकरेति, असुरो वि पकरेति, णो णागो पकरेति।

[१२] इसी प्रकार (पूर्वोक्त सब बातें) तीसरी पृथ्वी (बालुकाप्रभा) के लिए भी कहना चाहिए। इतना विशेष है कि वहाँ देव भी (ये सब) करते है, असुर भी करते है, किन्तु नाग (कुमार) नही करते।

१३ चउत्थीए वि एव, नवर देवो एक्को पकरेति, नो असुरो०, नो नागो पकरेति।

[१३] चौथी पृथ्वी मे भी इसी प्रकार सब बाते कहनी चाहिए। इतना विशेष है कि वहाँ देव ही अकेले (यह सब) करते है, किन्तु असुर और नाग नही करते है।

१४ एव हेट्ठिल्लासु सव्वासु देवो एक्को पकरेति।

[१४] इसी प्रकार नीचे की (पाचवी, छठी और सातवी नरक) सब पृथ्वियो मे केवल देव ही (यह सब कार्य) करते है, (असुरकुमार और नागकुमार नही करते।)

१५. अत्थि ण भते ! सोहम्मीसाणाण कप्पाण अहे गेहा इ वा २ ?

नो इणट्ठे समट्ठे।

[१५ प्र] भगवन् ! क्या सौधर्म और ईशान कल्पो (देवलोको) के नीचे गृह अथवा गृहापण हैं ?

[१५ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

१६ अत्थि ण भते ! ० उराला बलाहया ?

हता, अत्थि।

[१६ प्र] भगवन् ! क्या सौधर्म और ईशान देवलोक के नीचे महामेघ (उदार बलाहक) है ?

[१६ उ] हाँ, गौतम ! (वहाँ महामेघ) है।

१७ देवो पकरेति, असुरो वि पकरेइ, नो नाओ पकरेइ।

[१७] (सौधर्म और ईशान देवलोक के नीचे पूर्वोक्त सब कार्य (बादलो का छाना, मेघ उमडना, वर्षा बरसाना आदि) देव करते है, असुर भी करते है, किन्तु नागकुमार नही करते।

१८ एव थणियसद्दे वि।

[१८] इसी प्रकार वहाँ स्तनितशब्द के लिए भी कहना चाहिए।

१९ अत्थि ण भते ! ० बादरे पुढविकाए, बादरे अगणिकाए ?

नो इणट्ठे समट्ठे, नऽन्नत्थ विग्गहगतिसमावन्नएण।

[१९ प्र.] भगवन् ! क्या वहाँ (सौधर्म और ईशान देवलोक के नीचे) बादर पृथ्वीकाय और बादर अग्निकाय है ?

[१९ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही। यह निषेध विग्रहगति-समापन्न जीवो के सिवाय दूसरे जीवो के लिए जानना चाहिए।

२० अत्थि ण भंते ! चंदिम० ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[२० प्र] भगवन् ! क्या वहाँ चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारारूप है ?

[२० उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

२१ अत्थि ण भते ! गामाइ वा० ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[२१ प्र] भगवन् ! क्या वहाँ ग्राम यावत् सन्निवेश है ?

[२१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही हे ।

२२ अत्थि ण भते ! चदाभा ति वा २ ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

[२२ प्र] भगवन् ! क्या यहाँ चन्द्राभा, सूर्याभा आदि है ?

[२२ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

२३. एव सणकुमार-माहिंदेसु, नवर देवो एगो पकरेति ।

[२३] इसी प्रकार सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोको मे भी कहना चाहिए । विशेष यह है कि वहाँ (यह सब) केवल देव ही करते है ।

२४ एव बभलोए वि ।

[२४] इसी प्रकार ब्रह्मलोक (पचम देवलोक) मे भी कहना चाहिए ।

२५ एव बभलोगस्स उवरिं सव्वहिं देवो पकरेति ।

[२५] इसी तरह ब्रह्मलोक से ऊपर (पच अनुत्तरविमान देवलोक तक) सर्वस्थलो मे पूर्वोक्त प्रकार से कहना चाहिए । इन सब स्थलो मे केवल देव ही (पूर्वोक्त कार्य) करते हैं ।

२६. पुच्छियव्वे य बादरे आउकाए, बादरे तेउकाए, बायरे वणस्सतिकाए । अन्न त चेव । गाहा—

तमुकाए कप्पपणए अगणी पुढवी य, अगणि पुढवीसु ।
आऊ-तेउ-वणस्सति कप्पुवरिम-कण्हराईसु ।।१।।

[२६ प्र उ] इन सब स्थलो मे बादर अप्काय, बादर अग्निकाय, और बादर वनस्पतिकाय के विषय मे प्रश्न (पृच्छा) करना चाहिए । उनका उत्तर भी पूर्ववत् कहना चाहिए ।) अन्य सब बाते पूर्ववत् कहनी चाहिए ।

[गाथा का अर्थ—] तमस्काय मे और पाच देवलोको तक मे अग्निकाय और पृथ्वीकाय के सम्बन्ध मे प्रश्न करना चाहिए । रत्नप्रभा आदि नरकपृथ्वियो मे अग्निकाय के सम्बन्ध मे प्रश्न करना

चाहिए। इसी तरह पचम कल्प—देवलोक से ऊपर सब स्थानो मे तथा कृष्णराजियो मे अप्काय, तेजस्काय और वनस्पतिकाय के सम्बन्ध मे प्रश्न करना चाहिए।

विवेचन—रत्नप्रभादि पृथ्वियो तथा सर्व देवलोको मे गृह-ग्राम-मेघादि के अस्तित्व आदि की प्ररूपणा—प्रस्तुत २६ सूत्रो मे रत्नप्रभादि सातो पृथ्वियो तथा सौधर्मादि सर्व देवलोको के नीचे तथा परिपार्श्व मे गृह, गृहापण, महामेघ, वर्षा, मेघगर्जन, बादर अग्निकाय, चन्द्रादि पाचो ज्योतिष्क, चन्द्रसूर्याभा, बादर अप्काय, बादर पृथ्वीकाय, बादर वनस्पतिकाय आदि के अस्तित्व एव वर्णादि के कर्तृत्व से सम्बन्धित विचारणा की गई है।

वायुकाय, अग्निकाय आदि का अस्तित्व कहाँ है, कहाँ नहीं?—रत्नप्रभादि पृथ्वियो के नीचे बादर पृथ्वीकाय और बादर अग्निकाय नही है, किन्तु वहाँ घनोदधि आदि होने से अप्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय है। सौधर्म, ईशान आदि देवलोको मे बादर पृथ्वीकाय नही है, क्योकि वहाँ उसका स्वस्थान न होने से उत्पत्ति नही है। तथा सौधर्म, ईशान उदधिप्रतिष्ठित होने से वहाँ बादर अप्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय का सद्भाव है। इसी तरह सनत्कुमार और माहेन्द्र मे तमस्काय होने से वहाँ बादर अप्काय और वनस्पतिकाय का होना सुसगत है। तमस्काय मे और पाचवे देवलोक तक बादर अग्निकाय और बादर पृथ्वीकाय का अस्तित्व नही है। शेष तीन का सद्भाव है। बारहवे देवलोक तक इसी तरह जान लेना चाहिए। पाचवे देवलोक से ऊपर के स्थानो मे तथा कृष्णराजियो मे भी बादर अप्काय, तेजस्काय और वनस्पतिकाय का सद्भाव नही है, क्योकि उनके नीचे वायुकाय का ही सद्भाव है।

महामेघ-सस्वेदन-वर्षणादि कहाँ, कौन करते है? दूसरी पृथ्वी की सीमा से आगे नागकुमार नही जाते, तथा तीसरी पृथ्वी की सीमा से आगे असुरकुमार नही जाते, इसलिए दूसरी नरकपृथ्वी तक महामेघ-सस्वेदन वर्षण-गर्जन आदि सब कार्य देव और असुरकुमार करते है, तथा चौथी पृथ्वी के नीचे-नीचे सब कार्य केवल देव ही करते है। सौधर्म और ईशान देवलोक के नीचे तक तो चमरेन्द्र की तरह असुरकुमार जा सकते है, किन्तु नागकुमार नही जा सकते, इसलिए इन दो देवलोको के नीचे देव और असुरकुमार ही करते है, इस से आगे सनत्कुमार से अच्युत देवलोक तक मे केवल देव ही करते हैं। इससे आगे देव की जाने की शक्ति नही है और न ही वहाँ मेघ आदि का सद्भाव है।[1]

जीवो के आयुष्यबन्ध के प्रकार एवं जाति-नामनिधत्तादि बारह दण्डकों की चौबीस दण्डकीय जीवो मे प्ररूपणा—

२७ कतिविहे ण भते! आउयबधे पण्णत्ते?

गोयमा! छव्विहे आउयबधे पण्णत्ते, त जहा—जातिनामनिहत्ताउए गतिनामनिहत्ताउए ठितिनामनिहत्ताउए ओगाहणानामनिहत्ताउए पदेसनामनिहत्ताउए अणुभागनामनिहत्ताउए।

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २७९
(ख) भगवतीसूत्र (टीकानुवाद-टिप्पणयुक्त) खण्ड २, पृ ३२९
(ग) तत्त्वार्थसूत्र अ ३ सू १ से ६ तक भाष्यसहित, पृ ६४ से ७४ तक
(घ) सूत्रकृताग श्रु-१, अ-५, निरयविभक्ति

[२७ प्र] भगवन् ! आयुष्यबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२७ उ] गौतम ! आयुष्यबन्ध छह प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है—(१) जातिनामनिधत्तायु, (२) गतिनामनिधत्तायु, (३) स्थितिनामनिधत्तायु, (४) अवगाहनानामनिधत्तायु, (५) प्रदेशनामनिधत्तायु और (६) अनुभागनामनिधत्तायु।

२८ एव दडओ[1] जाव वेमाणियाण।

[१७] यावत् वैमानिको तक दण्डक कहना चाहिए।

२९ जीवा ण भते ! किं जातिनामनिहत्ता गतिनामनिहत्ता जाव अणुभागनामनिहत्ता ?

गोतमा ! जातिनामनिहत्ता वि जाव[2] अणुभागनामनिहत्ता वि।

[२९ प्र] भगवन् ! क्या जीव जातिनामनिधत्त है ? गतिनामनिधत्त है ? अथवा यावत् अनुभागनामनिधत्त है ?

[२९ उ] गौतम ! जीव जानिनामनिधत्त भी है, यावत् अनुभागनामनिधत्त भी है।

३०. दडओ जाव वेमाणियाण।

[३०] यह दण्डक यावत् वैमानिक तक कहना चाहिए।

३१ जीवा णं भते ! किं जातिनामनिहित्ताउया जाव अणुभागनामनिहित्ताउया ?

गोयमा ! जातिनामनिहत्ताउया वि जाव अणुभागनामनिहित्ताउया वि।

[३१ प्र] भगवन् ! क्या जीव जातिनामनिधत्तायुष्क है, यावत् अनुभागनामनिधत्तायुष्क है ?

[३१ उ] गौतम ! जीव, जातिनामनिधत्तायुष्क भी है, यावत् अनुभागनामनिधत्तायुष्क भी हैं।

३२ दडओ जाव वेमाणियाण।

[३२] यह दण्डक यावत् वैमानिक तक कहना चाहिए।

३३ एवमेए दुवालस दडगा भाणियव्वा—जीवा ण भते ! किं जातिनामनिहत्ता १, जातिनामनिहत्ताउया० २, जीवा ण भते ! किं जातिनामनिउत्ता ३, जातिनामनिउत्ताउया० ४, जातिगोयनिहत्ता ५, जातिगोयनिहत्ताउया ६, जातिगोत्तनिउत्ता ७, जातिगोत्तनिउत्ताउया ८, जातिणामगोत्तनिहत्ता ९, जातिणामगोयनिहत्ताउया १०, जातिणामगोयनिउत्ता ११, जीवा ण भते ! किं जातिनामगोत्तनिउत्ताउया जाव अणुभागनामगोत्तनिउत्ताउया १२ ?

गोतमा ! जातिनामगोयनिउत्ताउया वि जाव अणुभागनामगोत्ततिउत्ताउया वि।

---

१ 'जाव' पद से नैरयिक से लेकर वैमानिकपर्यन्त दण्डक समझे।

२ 'जाव' पद से 'ठिति-ओगाहणा-पएस' आदि पद 'निहत्त' पदान्त समझ लेने चाहिए।

[३३ प्र] इस प्रकार ये बारह दण्डक कहने चाहिए—

[प्र] भगवन् क्या जीव, जातिनामनिधत्त है ?, जातिनामनिधत्तायु है ?, क्या जीव, जातिनामनियुक्त है ?, जातिनामनियुक्तायु है ?, जातिगोत्रनिधत्त है ?, जातिगोत्रनिधत्तायु है ?, जातिगोत्रनियुक्त हैं ?, जातिगोत्रनियुक्तायु हैं ?, जातिनामगोत्र-निधत्त हैं ?, जातिनामगोत्रनिधत्तायु है ?, भगवन् ! क्या जीव जातिनामगोत्रनियुक्तायु है ? यावत् अनुभागनाम-गोत्रनियुक्तायु हैं ?

[३३ उ] गौतम ! जीव, जातिनामनिधत्त भी है, यावत् अनुभागनामगोत्रनियुक्तायु भी है।

३४ दडओ जाव वेमाणियाण।

[३४] यह दण्डक यावत् वैमानिको तक कहना चाहिए।

विवेचन——जीवो के आयुष्यबन्ध के प्रकार एवं जातिनामनिधत्तादि बारह दण्डको की चौबीस दण्डकीय जीवो मे प्ररूपणा—प्रस्तुत आठ सूत्रो (सू २७ से ३४ तक) मे जीवो के आयुष्यबन्ध के ६ प्रकार, तथा चौबीस ही दण्डक के जीवो मे जातिनामनिधत्तादि बारह दण्डको—आलापको की प्ररूपणा की गई है।

षड्विध आयुष्यबन्ध की व्याख्या—(१) **जातिनामनिधत्तायु**—एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक पाच प्रकार की जाति है, तद्‌रूप जो नाम (अर्थात्-जातिनाम रूप नाम कर्म की एक उत्तर-प्रकृति अथवा जीव का एक प्रकार का परिणाम), वह जातिनाम है। उसके साथ निधत्त (निषिक्त या निषेक को—प्रतिसमय अनुभव मे आने के लिए कर्मपुद्‌गलो की रचना को—प्राप्त) जो आयु, उसे जातिनामनिधत्तायु कहते हैं। (२) **गतिनामधित्तायु** एव (३) **स्थितिनामनिधत्तायु**—नैरयिक आदि चार प्रकार की 'गति' कहलाती है। अमुक भव मे विवक्षित समय तक जीव का रहना 'स्थिति' कहलाती है। इस रूप आयु को क्रमश 'गतिनामनिधत्तायु' और 'स्थितिनामनिधत्तायु' कहते है। अथवा प्रस्तुत सूत्र मे जातिनाम, गतिनाम और अवगाहनानाम का ग्रहण करने से केवल जाति, गति और अवगाहनारूप नामकर्मप्रकृति का कथन किया गया है। तथा स्थिति, प्रदेश और अनुभाग का ग्रहण होने से पूर्वोक्त प्रकृतियो की स्थिति आदि कही गई है। यह स्थिति जात्यादिनाम से सम्बन्धित होने से नामकर्म रूप ही कहलाती है। इसलिए यहाँ सर्वत्र 'नाम' का अर्थ 'नामकर्म' ही घटित होता है, अर्थात्—स्थितिरूप नाम-कर्म जो हो, वह **'स्थितिनाम'** उसके साथ जो निधत्तायु, उसे **'स्थितिनामनिधत्तायु'** कहते हैं। (४) **अवगाहनानामनिधत्तायु**—जीव जिसमे अवगाहित होता—रहता—है, उसे **'अवगाहना'** कहते हैं, वह है—औदारिक आदि शरीर। उसका नाम—**अवगाहनानाम**, अथवा अवगाहनारूप जो परिणाम। उसके साथ निधत्तायु **'अवगाहनानामनिधत्तायु'** कहलाती है। (५) **प्रदेशनामनिधत्तायु**—प्रदेशो का अथवा आयुष्यकर्म के द्रव्यो का उस प्रकार का नाम—परिणमन, वह **प्रदेशनाम**, अथवा प्रदेशरूप एक प्रकार का नामकर्म, वह है—प्रदेशनाम, उसके साथ निधत्तायु, **'प्रदेशनामनिधत्तायु'** कहलाती है। (६) **अनुभागनामनिधत्तायु**—अनुभाग अर्थात् आयुष्यकर्म के द्रव्यो का विपाक, तद्‌रूप जो नाम (परिणाम), वह है—**अनुभागनाम** अथवा अनुभागरूप जो नामकर्म वह है—**अनुभागनाम**। उसके साथ निधत्त जो आयु, वह **'अनुभागनामनिधत्तायु'** कहलाती है।

आयुष्य जात्यादिनामकर्म से विशेषित क्यो ?—यहाँ आयुष्यबन्ध को विशेष्य और जात्यादि नामकर्म को विशेषण रूप से व्यक्त किया गया है, उसका कारण यह है कि जब नारकादि आयुष्य

का उदय होता है, तभी जात्यादि नामकर्म का उदय होता है। अकेला आयुकर्म ही नैरयिक आदि का भवोपग्राहक है। इसीलिए यहाँ आयुष्य की प्रधानता बताई गई है।

आयुष्य और बन्ध दोनो मे अभेद—यद्यपि प्रश्न यहाँ आयुष्यबन्ध के प्रकार के विषय मे है, किन्तु उत्तर है—आयुष्य के प्रकार का, तथापि आयुष्य बन्ध इन दोनो मे अव्यतिरेक—अभेदरूप है। जो बन्धा हुआ हो, वही आयुष्य, इस प्रकार के व्यवहार के कारण यहाँ आयुष्य के साथ बन्ध का भाव सम्मिलित है।

नामकर्म से विशेषित १२ दण्डको की व्याख्या—(१) **जातिनाम-निधत्त आदि**—जिन जीवो ने जातिनाम निषिक्त किया है, अथवा विशिष्ट बन्धवाला किया है वे जीव **'जातिनामनिधत्त'** कहलाते है। इसी प्रकार **गतिनामनिधत्त, स्थितिनामनिधत्त, अवगाहनानामनिधत्त, प्रदेशनामनिधत्त, और अनुभागनामनिधत्त,** इन सबकी व्याख्या जान लेनी चाहिए। (२) **जातिनामनिधत्तायु**—जिन जीवो ने जातिनाम के साथ आयुष्य को निधत्त किया है, उन्हे 'जातिनामनिधत्तायु' कहते है। इसी तरह दूसरे पदो का अर्थ भी समझ लेना चाहिए। (३) **जातिनामनियुक्त**—जिन जीवो ने जातिनाम को नियुक्त (सम्बद्ध—निकाचित) किया है, अथवा वेदन प्रारम्भ किया है, वे। इसी तरह दूसरे पदो का अर्थ जान लेना चाहिए। (४) **जातिनामनियुक्त-आयु**—जिन जीवो ने जातिनाम के साथ आयुष्य नियुक्त किया है, अथवा उसका वेदन प्रारम्भ किया है, वे। इसी प्रकार अन्य पदो का अर्थ भी जान लेना चाहिए। (५) **जातिगोत्रनिधत्त**—जिन जीवो ने एकेन्द्रियादिरूप जाति तथा गोत्र—एकेन्द्रियादि जाति के योग्य नीचगोत्रादि को निधत्त किया है, वे। इसी प्रकार अन्य पदो का अर्थ भी समझ लेना चाहिए। (६) **जातिगोत्रनिधत्तायु**—जिन जीवो ने जाति और गोत्र के साथ आयुष्य को निधत्त किया है, वे। इसी प्रकार अन्य पदो का अर्थ भी समझ लेना चाहिए। (७) **जातिगोत्रनियुक्त**—जिन जीवो ने जाति और गोत्र को नियुक्त किया है, वे। (८) **जातिगोत्रनियुक्तायु**—जिन जीवो ने जाति और गोत्र के साथ आयुष्य को नियुक्त कर लिया है, वे। इसी तरह अन्य पदो का अर्थ भी समझ ले। (९) **जातिनाम-गोत्र-निधत्त**—जिन जीवो ने जाति, नाम और गोत्र को निधत्त किया है, वे। इसी प्रकार दूसरे पदो का अर्थ भी जान ले। (१०) **जाति-नाम-गोत्रनिधत्तायु**—जिन जीवो ने जाति, नाम और गोत्र के साथ आयुष्य को निधत्त कर लिया है, वे। इसी प्रकार अन्य पदो का अर्थ भी जान लेना चाहिए (११) **जाति-नाम-गोत्र-नियुक्त**—जिन जीवो ने जाति, नाम और गोत्र को नियुक्त किया है, वे। इसी प्रकार दूसरे पदो का अर्थ भी समझ ले। (१२) **जाति-नाम-गोत्र-नियुक्तायु**—जिन जीवो ने जाति, नाम और गोत्र के साथ आयुष्य को नियुक्त किया है, वे। इसी तरह अन्य पदो का अर्थ भी समझ लेना चाहिए।[1]

लवणादि असंख्यात-द्वीप-समुद्रो का स्वरूप और प्रमाण—

३५ लवणे ण भते ! समुद्दे किं उस्सिओदए, पत्थडोदए, खुभियजले, अखुभियजले ?

गोयमा ! लवणे ण समुद्दे उस्सिओदए, नो पत्थडोदए; खुभियजले, नो अखुभियजले। एत्तो

---

१ (क) भगवती सूत्र अ वृत्ति, पत्राक २८०-२८१

(ख) भगवती० (हिन्दीविवेचन) भा-२, पृ १०५३ से १०५६ तक।

आढत्त जहा जीवाभिगमे जाव[1] से तेण० गोयमा ! बाहिरया णं दीव-समुद्दापुण्णा पुण्णप्पमाणा वोलट्टमाणा वोसट्टमाणा समभरघडत्ताए चिट्ठंति, सठाणतो एगविहिविहाणा, वित्थरओ अणेगविहि-विहाणा, दुगुणा दुगुणप्पमाणतो जाव अस्सिं तिरियलोए असखेज्जा दीव-समुद्दा सयंभूरमणपज्जवसाणा पण्णत्ता समणाउसो ! ।

[३५ प्र] भगवन् ! क्या लवणसमुद्र, उच्छ्रितोदक (उछलते हुए जल वाला) है, प्रस्तृतोदक (सम जलवाला) है, क्षुब्ध जल वाला है अथवा अक्षुब्ध जल वाला है ?

[३५ उ] गौतम ! लवणसमुद्र उच्छ्रितोदक है, किन्तु प्रस्तृतोदक नही है, वह क्षुब्ध जल वाला है, किन्तु अक्षुब्ध जल वाला नही है । यहाँ से प्रारम्भ करके जिस प्रकार जीवाभिगम सूत्र मे कहा है, इसी प्रकार से जान लेना चाहिए, यावत् इस कारण, हे गौतम ! बाहर के (द्वीप-) समुद्र पूर्ण, पूर्णप्रमाण वाले, छलाछल भरे हुए, छलकते हुए और समभर घट के रूप मे, (अर्थात्—परिपूर्ण भरे हुए घडे के समान), तथा सस्थान से एक ही तरह के स्वरूप वाले, किन्तु विस्तार की अपेक्षा अनेक प्रकार के स्वरूप वाले हैं, द्विगुण-द्विगुण विस्तार वाले है, (अर्थात्—अपने पूर्ववर्ती द्वीप से दुगुने प्रमाण वाले हैं) यावत् इस तिर्यक्लोक मे असख्येय द्वीप-समुद्र हैं । सबसे अन्त मे 'स्वयम्भूरमण-समुद्र' है । हे श्रमणायुष्मन् ! इस प्रकार द्वीप और समुद्र कहे गए हैं ।

विवेचन—लवणादि असख्यात द्वीप-समुद्रो का स्वरूप और प्रमाण—प्रस्तुत सूत्र मे लवणसमुद्र से लेकर असख्य द्वीपो एव समुद्रो के स्वरूप एव प्रमाण का निरूपण किया गया है ।

लवणसमुद्र का स्वरूप—लवणसमुद्र की जलवृद्धि ऊर्ध्वदिशा मे १६००० योजन से कुछ अधिक होती है, इसलिए यह उछलते हुए जल वाला है, सम जल वाला (प्रस्तृतोदक) नही । तथा उसमे महा-पातालकलशो मे रही हुई वायु के क्षोभ से वेला (ज्वार) आती है, इस कारण लवणसमुद्र का पानी क्षुब्ध होता है, अतएव वह अक्षुब्धजल वाला नही है ।[2]

अढाई द्वीप और दो समुद्रो से बाहर के समुद्र—बाहर के समुद्रो के वर्णन के लिए मूलपाठ मे जीवाभिगम सूत्र का निर्देश किया है । सक्षेप मे, वे समुद्र क्षुब्धजल वाले नही, अक्षुब्धजल वाले है, तथा वे उछलते हुए जल वाले नही, अपितु समजल वाले है, पूर्ण, पूर्णप्रमाण, यावत् पूर्ण भरे हुए घडे के समान हैं । लवणसमुद्र मे महामेघ सस्वेदित, सम्मूर्च्छित होते हैं, वर्षा बरसाते है, किन्तु बाहर के समुद्रो मे ऐसा नही होता । बाहरी समुद्रो मे बहुत-से उदकयोनि के जीव और पुद्गल उदकरूप मे अपक्रमते है, व्युत्क्रमते हैं, च्यवते है और उत्पन्न होते है । इन सब समुद्रो का सस्थान समान है किन्तु विस्तार की अपेक्षा ये पूर्व-पूर्व द्वीप से दुगने-दुगने होते चले गए हैं ।[3]

---

१ 'जाव' पद से यह पाठ जानना चाहिए—"पवित्थरमाणा २ बहुउप्पलपउमकुमुयनलिणसुभगसोगंधियपुंडरीय-महापुंडरीयसतपत्तसहस्सपत्तकेसरफुल्लोवइया उब्भासमाणवीइया ।"

२ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २८२

३ (क) भगवतीसूत्र (टीकानुवादटिप्पणयुक्त) खण्ड-२, पृ ३३४-३३५

(ख) जीवाभिगमसूत्र वृत्तिसहित प्रतिपत्ति ३, पत्राक ३२०-३२१

(ग) तत्त्वार्थसूत्र सभाष्य, अ ३, सू ८ से १३ तक

द्वीप-समुद्रो के शुभ नामो का निर्देश—

३६ दीव-समुद्दा ण भंते ! केवतिया नामधेज्जेहिं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जावतिया लोए सुभा नामा, सुभा रूवा, सुभा गंधा, सुभा रसा, सुभा फासा एवतिया ण दीव-समुद्दा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता । एव नेयव्वा सुभा नामा, उद्धारो परिणामो सव्व-जीवाण ।

सेव भंते ! सेव भंते ! त्ति० ।

॥ छट्ठे सए : अट्ठमो उद्देसग्रो समत्तो ॥

[३६ प्र] भगवन् ! द्वीप-समुद्रो के कितने नाम कहे गए हैं ?

[३६ उ] गौतम ! इस लोक मे जितने भी शुभ नाम है, शुभ रूप, शुभ रस, शुभ गन्ध और शुभ स्पर्श है, उतने ही नाम द्वीप-समुद्रो के कहे गए है । इस प्रकार सब द्वीप-समुद्र शुभ नाम वाले जानने चाहिए । तथा उद्धार, परिणाम और सर्व जीवो का (द्वीपो एव समुद्रो मे) उत्पाद जानना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर यावत् श्री गौतम-स्वामी विचरण करने लगे ।

विवेचन—द्वीपो-समुद्रो के शुभनामो का निर्देश—प्रस्तुत सूत्र मे किया गया है । **द्वीप-समुद्रो के शुभ नाम**—ये समुद्र बहुत-से उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुन्दर एव सुगन्धित पुण्डरीक-महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र, केशर एव विकसित पद्मो आदि से युक्त है । स्वस्तिक, श्रीवत्स आदि सुशब्द, पीतादि सुन्दर रूपवाचक शब्द, कपूर आदि सुगन्धवाचक शब्द, मधुररसवाचक शब्द तथा नवनीत आदि मृदुस्पर्शवाचक शब्द जितने भी इस लोक मे हैं, उतने ही शुभ नामो वाले द्वीप-समुद्र है ।

ये द्वीप-समुद्र उद्धार, परिणाम और उत्पाद वाले—ढाई सूक्ष्म उद्धार सागरोपम, या २५ कोडा-कोडी सूक्ष्म उद्धार पल्योपम मे जितने समय होते हैं, उतने लोक मे द्वीप समुद्र हैं, ये द्वीपसमुद्र पृथ्वी, जल, जीव और पुद्गलो के परिणाम वाले है, इनमे जीव पृथ्वीकायिक से यावत् त्रसकायिक रूप मे अनेक या अनन्त वार पहले उत्पन्न हो चुके है ।[3]

॥ छठा शतक : अष्टम उद्देशक समाप्त ॥

---

३ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्राक २८२

(ख) जीवाभिगम सवृत्तिक पत्र-३७२-३७३

(ग) तत्त्वार्थ अ ३, सू ७

आढत्त जहा जीवाभिगमे जाव[1] से तेण० गोयमा ! बाहिरया ण दीव-समुद्दापुण्णा पुण्णप्पमाणा वोलट्टमाणा वोसट्टमाणा समभरघडत्ताए चिट्ठ ति, सठाणतो एगविहिविहाणा, वित्थरश्रो श्रणेगविहि-विहाणा, दुगुणा दुगुणप्पमाणतो जाव अस्सि तिरियलोए असखेज्जा दीव-समुद्दा सयभूरमणपज्जवसाणा पण्णत्ता समणाउसो ! ।

[३५ प्र] भगवन् ! क्या लवणसमुद्र, उच्छ्रितोदक (उछलते हुए जल वाला) है, प्रस्तृतोदक (सम जलवाला) है, क्षुब्ध जल वाला है अथवा अक्षुब्ध जल वाला है ?

[३५ उ] गौतम ! लवणसमुद्र उच्छ्रितोदक है, किन्तु प्रस्तृतोदक नही है, वह क्षुब्ध जल वाला है, किन्तु अक्षुब्ध जल वाला नही है । यहाँ से प्रारम्भ करके जिस प्रकार जीवाभिगम सूत्र मे कहा है, इसी प्रकार से जान लेना चाहिए, यावत् इस कारण, हे गौतम ! बाहर के (द्वीप-) समुद्र पूर्ण, पूर्णप्रमाण वाले, छलाछल भरे हुए, छलकते हुए और समभर घट के रूप मे, (अर्थात्—परिपूर्ण भरे हुए घडे के समान), तथा सस्थान से एक ही तरह के स्वरूप वाले, किन्तु विस्तार की अपेक्षा अनेक प्रकार के स्वरूप वाले है, द्विगुण-द्विगुण विस्तार वाले है, (अर्थात्—अपने पूर्ववर्ती द्वीप से दुगुने प्रमाण वाले है) यावत् इस तिर्यक्लोक मे असख्येय द्वीप-समुद्र है । सबसे अन्त मे 'स्वयम्भूरमण-समुद्र' है । हे श्रमणायुष्मन् ! इस प्रकार द्वीप और समुद्र कहे गए है ।

विवेचन—लवणादि असंख्यात द्वीप-समुद्रो का स्वरूप और प्रमाण—प्रस्तुत सूत्र मे लवणसमुद्र से लेकर असख्य द्वीपो एव समुद्रो के स्वरूप एव प्रमाण का निरूपण किया गया है ।

लवणसमुद्र का स्वरूप—लवणसमुद्र की जलवृद्धि ऊर्ध्वदिशा मे १६००० योजन से कुछ अधिक होती है, इसलिए यह उछलते हुए जल वाला है, सम जल वाला (प्रस्तृतोदक) नही । तथा उसमे महा-पातालकलशो मे रही हुई वायु के क्षोभ से वेला (ज्वार) आती है, इस कारण लवणसमुद्र का पानी क्षुब्ध होता है, अतएव वह अक्षुब्धजल वाला नही है ।[2]

अढाई द्वीप और दो समुद्रो से बाहर के समुद्र—बाहर के समुद्रो के वर्णन के लिए मूलपाठ मे जीवाभिगम सूत्र का निर्देश किया है । सक्षेप मे, वे समुद्र क्षुब्धजल वाले नही, अक्षुब्धजल वाले है, तथा वे उछलते हुए जल वाले नही, अपितु समजल वाले है, पूर्ण, पूर्णप्रमाण, यावत् पूर्ण भरे हुए घडे के समान हैं । लवणसमुद्र मे महामेघ सस्वेदित, सम्मूर्च्छित होते हैं, वर्षा बरसाते हैं, किन्तु बाहर के समुद्रो मे ऐसा नही होता । बाहरी समुद्रो मे बहुत-से उदकयोनि के जीव और पुद्गल उदकरूप मे अपक्रमते है, व्युत्क्रमते हैं, च्यवते है और उत्पन्न होते हैं । इन सब समुद्रो का सस्थान समान है किन्तु विस्तार की अपेक्षा ये पूर्व-पूर्व द्वीप से दुगने-दुगने होते चले गए है ।[3]

---

१ 'जाव' पद से यह पाठ जानना चाहिए—"पवित्थरमाणा २ बहुउप्पलपउमकुमुयनलिणसुभगसोगंधियपु डरीय-महापु डरीयसतपत्तसहस्सपत्तकेसरफुल्लोवइया उब्भासमाणवीइया ।"

२ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २८२

३ (क) भगवतीसूत्र (टीकानुवादटिप्पणयुक्त) खण्ड-२, पृ ३३४-३३५

(ख) जीवाभिगमसूत्र वृत्तिसहित प्रतिपत्ति ३, पत्राक ३२०-३२१

(ग) तत्त्वार्थसूत्र सभाष्य, अ ३, सू ८ से १३ तक

द्वीप-समुद्रों के शुभ नामों का निर्देश—

३६ दीव-समुद्दा णं भंते ! केवतिया नामधेज्जेहिं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जावतिया लोए सुभा नामा, सुभा रूवा, सुभा गंधा, सुभा रसा, सुभा फासा एवतिया णं दीव-समुद्दा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता । एवं नेयव्वा सुभा नामा, उद्धारो परिणामो सव्वजीवाणं ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ छट्ठे सए : अट्ठमो उद्देसओ समत्तो ॥

[३६ प्र.] भगवन् ! द्वीप-समुद्रों के कितने नाम कहे गए हैं ?

[३६ उ.] गौतम ! इस लोक में जितने भी शुभ नाम हैं, शुभ रूप, शुभ रस, शुभ गन्ध और शुभ स्पर्श हैं, उतने ही नाम द्वीप-समुद्रों के कहे गए हैं । इस प्रकार सब द्वीप-समुद्र शुभ नाम वाले जानने चाहिए । तथा उद्धार, परिणाम और सर्व जीवों का (द्वीपों एवं समुद्रों में) उत्पाद जानना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर यावत् श्री गौतमस्वामी विचरण करने लगे ।

विवेचन—द्वीपों-समुद्रों के शुभनामों का निर्देश—प्रस्तुत सूत्र में किया गया है । **द्वीप-समुद्रों के शुभ नाम**—ये समुद्र बहुत-से उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुन्दर एवं सुगन्धित पुण्डरीक-महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र, केशर एवं विकसित पद्मों आदि से युक्त हैं । स्वस्तिक, श्रीवत्स आदि सुशब्द, पीतादि सुन्दर रूपवाचक शब्द, कपूर आदि सुगन्धवाचक शब्द, मधुररसवाचक शब्द तथा नवनीत आदि मृदुस्पर्शवाचक शब्द जितने भी इस लोक में हैं, उतने ही शुभ नामों वाले द्वीप-समुद्र हैं ।

ये द्वीप-समुद्र उद्धार, परिणाम और उत्पाद वाले—ढाई सूक्ष्म उद्धार सागरोपम, या २५ कोडा-कोडी सूक्ष्म उद्धार पल्योपम में जितने समय होते हैं, उतने लोक में द्वीप-समुद्र हैं, ये द्वीपसमुद्र पृथ्वी, जल, जीव और पुद्गलों के परिणाम वाले हैं, इनमें जीव पृथ्वीकायिक से यावत् त्रसकायिक रूप में अनेक या अनन्त वार पहले उत्पन्न हो चुके हैं ।[3]

॥ छठा शतक : अष्टम उद्देशक समाप्त ॥

---

३ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्रांक २८२
(ख) जीवाभिगम सवृत्तिक पत्र-३७२-३७३
(ग) तत्त्वार्थ अ. ३, सू. ७

न मो उद्देसओ : 'कम्म'

नवम उद्देशक : कर्म

ज्ञानावरणीयबन्ध के साथ अन्य कर्मबन्ध-प्ररूपणा—

१ जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणे कति कम्मप्पगडीओ बंधइ ?

गोयमा ! सत्तविहबंधए वा, अट्ठविहबंधए वा, छव्विहबंधए वा । बंधुद्देसो पण्णवणाए नेयव्वो ।

[१ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म को बांधता हुआ जीव कितनी कर्म-प्रकृतियों को बाँधता है ?

[१ उ] गौतम ! सात प्रकृतियों को बांधता है, आठ प्रकार को बांधता है अथवा छह प्रकृतियों को बांधता है । यहाँ प्रज्ञापनासूत्र का बन्ध-उद्देशक कहना चाहिए ।

विवेचन—ज्ञानावरणीय बन्ध के साथ अन्यकर्मबन्धप्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र में ज्ञानावरणीय कर्म के बन्ध के साथ-साथ अन्य कर्म-प्रकृतियों के बन्ध की प्ररूपणा की गई है ।

स्पष्टीकरण—जिस समय जीव का आयुष्यबन्धकाल नहीं होता, उस समय वह ज्ञानावरणीय को बांधते समय आयुष्यकर्म को छोडकर सात कर्मों को बांधता है, आयुष्य के बन्धकाल में आठ कर्म-प्रकृतियों को बांधता है, किन्तु सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थान की अवस्था में मोहनीय कर्म और आयुकर्म को नहीं बांधता, इसलिए वहाँ ज्ञानावरणीय कर्म बांधता हुआ जीव छह कर्मप्रकृतियों को बांधता है ।[1]

बाह्यपुद्गलों के ग्रहणपूर्वक महर्द्धिकादि देव की एक वर्णादि के पुद्गलों को अन्य वर्णादि में विकुर्वण एवं परिणमन-सामर्थ्य—

२ देवे णं भंते ! महिड्ढीए जाव[2] महाणुभागे बाहिरए पोग्गले अपरियादिइत्ता पभू एगवण्णं एगरूवं विउव्वित्तए ?

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक २८३

(ख) प्रज्ञापनासूत्र, पद २४, बन्धोद्देशक (मू. पा. टि.) विभाग १, पृ. ३८५ से ३८७ तक

(ग) प्रज्ञापनासूत्रीय बन्धोद्देशक का सारांश—

(प्र) भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म को बांधता हुआ नैरयिक ज्ञानावरणीय कर्म को बांधता हुआ कितनी कर्मप्रकृतियों को बांधता है ?

(उ) गौतम ! वह या तो आठ प्रकार के कर्म को बांधता है या सात प्रकार के कर्म बांधता है । इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक कहना । विशेष यह है कि जैसे समुच्चय जीव के लिए कहा, उसी प्रकार मनुष्यों के लिए कहना, कि वह आठ, सात या छह प्रकृतियों को बांधता है ।

—प्रज्ञापना पद २४, बन्धोद्देशक

२ 'जाव' पद से सूचित पाठ—"महज्जुइए महाबले महाजसे महेसक्खे (महासोक्खे-महासक्खे) महाणुभागे" जीवाभिगमसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक १०९

गोयमा ! नो इणट्ठे० ।

[२ प्र] भगवन् ! महर्द्धिक यावत् महानुभाग देव बाहर के पुद्गलो को ग्रहण किये विना एक वर्ण वाले और एक रूप (एक आकार वाले) (स्वशरीरादि) की विकुर्वणा करने मे समर्थ हे ?

[२ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

३ देवे ण भ ते ! बाहिरए पोग्गले परियादिइत्ता पभू ?

हता, पभू ।

[३ प्र] भगवन् ! क्या वह देव बाहर के पुद्गलो को ग्रहण करके (उपर्युक्त रूप से) विकुर्वणा करने मे समर्थ है ?

[३ उ] हाँ गौतम ! (वह ऐसा करने मे) समर्थ है ।

४. से ण भ ते ! किं इहगए पोग्गले परियादिइत्ता विउव्वति, तत्थगए पोग्गले परियादिइत्ता विकुव्वति, अन्नत्थगए पोग्गले परियादिइत्ता विउव्वति ?

गोयमा ! नो इहगते पोग्गले परियादिइत्ता विउव्वति, तत्थगते पोग्गले परियादिइत्ता विकुव्वति, नो अन्नत्थगए पोग्गले परियादिइत्ता विउव्वति ।

[४ प्र] भगवन् ! क्या वह देव इहगत (यहाँ रहे हुए) पुद्गलो को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है अथवा तत्रगत (वहाँ—देवलोक मे रहे हुए) पुद्गलो को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है या अन्यत्रगत (किसी दूसरे स्थान मे रहे हुए) पुद्गलो को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है ?

[४ उ] गौतम ! वह देव, यहाँ रहे हुए पुद्गलो को ग्रहण करके विकुर्वणा नही करता, वह वहाँ (देवलोक मे रहे हुए तथा जहाँ विकुर्वणा करता है, वहाँ) के पुद्गलो को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है, किन्तु अन्यत्र रहे हुए पुद्गलो को ग्रहण करके विकुर्वणा नही करता ।

५ एव एतेण गमेण जाव एगवण्णं एगरूव, एगवण्ण अणेगरूव, अणेगवण्ण एगरूव, अणेगवण्ण अणेगरूवं, चउण्हं चउभगो ।

[५] इस प्रकार इस गम (आलापक) द्वारा विकुर्वणा के चार भग कहने चाहिए (१) एक वर्ण वाला, एक आकार (रूप) वाला, (२) एक वर्ण वाला अनेक आकार वाला, (३) अनेक वर्ण वाला और एक आकार वाला, तथा (४) अनेक वर्ण वाला, और अनेक आकार वाला । (अर्थात्—वह इन चारो प्रकार के रूपो को विकुर्वित करने मे समर्थ है ।)

६ देवे ण भ ते ! महिड्ढीए जाव महाणुभागे बाहिरए पोग्गले अपरियादिइत्ता पभू कालगं पोग्गलं नीलगपोग्गलत्ताए परिणामित्तए ? नीलग पोग्गल वा कालगपोग्गलत्ताए परिणामित्तए ?

गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, परियादितित्ता पभू ।

[६ प्र] भगवन् ! क्या महर्द्धिक यावत् महानुभाग वाला देव, बाहर के पुद्गलो को ग्रहण किये विना काले पुद्गल को नीले पुद्गल के रूप मे, और नीले पुद्गल को काले पुद्गल के रूप मे परिणत करने मे समर्थ है ?

[६ उ] गौतम ! (बाहर के पुद्गलो को ग्रहण किये विना) यह अर्थ समर्थ नही है, किन्तु बाहरी पुद्गलो को ग्रहण करके देव वैसा करने मे समर्थ है ।

७ से ण भ ते ! किं इहगए पोग्गले० त चेव, नवर परिणामेति त्ति भाणियव्व ।

[७ प्र] भगवन् ! वह देव इहगत, तत्रगत या अन्यत्रगत पुद्गलो (मे से किन) को ग्रहण करके वैसा करने मे समर्थ है ?

[७ उ] गौतम ! वह इहगत और अन्यत्रगत पुद्गलो को ग्रहण करके वैसा नही कर सकता, किन्तु तत्र (देवलोक—) गत पुद्गलो को ग्रहण करके वैसा परिणत करने मे समर्थ है । [विशेष यह है कि यहाँ 'विकुर्वित करने मे' के बदले 'परिणत करने मे' कहना चाहिए ।]

८ [१] एव कालगपोग्गल लोहियपोग्गलत्ताए ।

[२] एव कालएण जाव[1] सुक्किल ।

[८-१] इसी प्रकार काले पुद्गल को लाल पुद्गल के रूप मे (परिणत करने मे समर्थ है ।)

[८-२] इसी प्रकार काले पुद्गल के साथ यावत् शुक्ल पुद्गल तक समझना ।

९. एवं णीलएण जाव सुक्किलं ।

[९] इसी प्रकार नीले पुद्गल के साथ यावत् शुक्ल पुद्गल तक जानना ।

१० एव लोहिएण जाव सुक्किल ।

[१०] इसी प्रकार लाल पुद्गल को यावत् शुक्ल तक (परिणत करने मे समर्थ है ।)

११ एवं हालिद्दएणं जाव सुक्किलं ।

[११] इसी प्रकार पीले पुद्गल को यावत् शुक्ल तक (परिणत करने मे समर्थ है, यो कहना चाहिए ।)

१२. एव एताए परिवाडीए गध-रस-फास० कक्खडफासपोग्गल मउयफासपोग्गलत्ताए । एवं दो दो गरुय-लहुय २, सीय-उसिण २, णिद्ध-लुक्ख २, वण्णाइ सव्वत्थ परिणामेइ । आलावगा य दो दो-पोग्गले अपरियादिइत्ता, परियादिइत्ता ।

[१२] इसी प्रकार इस क्रम (परिपाटी) के अनुसार गन्ध, रस और स्पर्श के विषय मे भी समझना चाहिए । यथा—(यावत्) कर्कश स्पर्शवाले पुद्गल को मृदु (कोमल) स्पर्शवाले (पुद्गल मे परिणत करने मे समर्थ है ।)

इसी प्रकार दो-दो विरुद्ध गुणो को अर्थात् गुरु और लघु, शीत और उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष, वर्ण आदि को वह सर्वत्र परिणमाता है । 'परिणमाता है' इस क्रिया के साथ यहाँ इस प्रकार दो-दो आलापक कहने चाहिए, यथा—(१) पुद्गलो को ग्रहण करके परिणमाता है, (२) पुद्गलो को ग्रहण किये विना नही परिणमाता ।

१ 'जाव' पद से यहाँ सर्वत्र आगे-आगे के सभी वर्ण जान लेने चाहिए ।

विवेचन—बाह्य पुद्गलो के ग्रहणपूर्वक महर्द्धिकादि देव की एक वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श के पुद्गलो को अन्य वर्णादि मे विकुर्वण एव परिणमन-सामर्थ्य—प्रस्तुत ११ सूत्रो मे महर्द्धिक देव के द्वारा बाह्य पुद्गलो को ग्रहण करके एक वर्णादि के पुद्गलो को एक या अनेक अन्य वर्णादि के रूप मे विकुर्वित अथवा परिणमित करने के सामर्थ्य के सम्बन्ध मे निरूपण किया गया है।

निष्कर्ष—महर्द्धिक यावत् महाप्रभावशाली देव देवलोक मे रहे हुए पुद्गलो को ग्रहण करके उत्तरवैक्रियरूप बना सकता (विकुर्वणा करता) है और फिर दूसरे स्थान मे जाता है, किन्तु इहगत अर्थात्—प्रश्नकार के समीपस्थ क्षेत्र मे रहे हुए पुद्गलो को तथा अन्यत्रगत—प्रज्ञापक के क्षेत्र और देव के स्थान से भिन्न क्षेत्र मे रहे हुए पुद्गलो को ग्रहण करके विकुर्वणा नही कर सकता।[1]

विभिन्न वर्णादि के २५ आलापकसूत्र—मूलपाठ मे उक्त अतिदेशानुसार वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के आलापकसूत्र इस प्रकार बनते है—

(१) **पांच वर्णो के १० द्विकसयोगी आलापकसूत्र**—(१) काले को नीलरूप मे, (२) काले को लोहितरूप मे, (३) काले को हारिद्ररूप मे, (४) काले को शुक्लरूप मे, (५) नीले को लोहितरूप मे, (६) नील को हारिद्ररूप मे, (७) नीले को शुक्लरूप मे, (८) लोहित को हारिद्ररूप मे, (९) लोहित को शुक्लरूप मे, तथा (११) हारिद्र को शुक्लरूप मे परिणमा सकता है।

(२) **दो गध का एक आलापकसूत्र**—(१) सुगन्ध को दुर्गन्धरूप मे, अथवा दुर्गन्ध को सुगन्धरूप मे।

(३) **पांच रस के दस आलापकसूत्र**—(१) तिक्त को कटुरूप मे, (२) तिक्त को कषायरूप मे, (३) तिक्त को अम्लरूप मे, (५) तिक्त को मधुररूप मे, (५) कटु को कषायरूप मे, (६) कटु को अम्लरूप मे, (७) कटु को मधुररूप मे, (८) कषाय को अम्लरूप मे, (९) कषाय को मधुररूप मे, और (१०) अम्ल को मधुररूप मे परिणमा सकता है।

(४) **आठ स्पर्श के चार आलापकसूत्र**—(१) गुरु को लघुरूप मे अथवा लघु को गुरुरूप मे, (२) शीत को उष्णरूप मे या उष्ण को शीतरूप मे, (३) स्निग्ध को रूक्षरूप मे या रूक्ष को स्निग्धरूप मे, और (४) कर्कश को कोमलरूप मे या कोमल को कर्कशरूप मे परिणमा सकता है।[2]

अविशुद्ध-विशुद्ध लेश्यायुक्त देवो द्वारा अविशुद्ध-विशुद्ध लेश्यावाले देवादि को जानने-देखने की प्ररूपणा—

१३ [१] अविसुद्धलेसे ण भते ! देवे असमोहतेण अप्पाणेण अविसुद्धलेस देव देविं अन्नयर जाणति पासति ?

णो इणट्ठे समट्ठे १।

[१३-१ प्र] भगवन् ! क्या अविशुद्ध लेश्यावाला देव असमवहत—(उपयोगरहित) आत्मा

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २८३

२ भगवतीसूत्र (टीकानुवाद-टिप्पणयुक्त) खण्ड-२, पृ ३३९

से अविशुद्ध लेश्यावाले देव को या देवी को या अन्यतर को (—इन दोनो मे से किसी एक को) जानता और देखता है ?

[१३-१ उ] गौतम ! यह अर्थ (बात) समर्थ (शक्य) नही है।

[1][२] एव अविसुद्धलेसे० असमोहएण अप्पाणेण विसुद्धलेस देव० ? नो इणट्ठे समट्ठे २।
अविसुद्धलेसे० समोहएण अप्पाणेण अविसुद्धलेस देव० ? नो इणट्ठे समट्ठे ३।
अविसुद्धलेसे देवे समोहएण अप्पाणेण विसुद्धलेस देव० ? नो इणट्ठे समट्ठे ४।
अविसुद्धलेसे० समोहयासमोहएण अप्पाणेण अविसुद्धलेसं देवं० ? णो इणट्ठे समट्ठे ५।
अविसुद्धलेसे समोहयासमोहतेण० विसुद्धलेस देव० ? नो इणट्ठे समट्ठे ६।
विसुद्धलेसे० असमोहएण अप्पाणेणं अविसुद्धलेस देव० ? नो इणट्ठे समट्ठे ७।
विसुद्धलेसे० असमोहएण विसुद्धलेस देव० ? नो इणट्ठे समट्ठे ८।
विसुद्धलेसे ण भते ! देवे समोहएण० अविसुद्धलेसं देव० जाणइ० ? हता, जाणइ० ९।
एव विसुद्धलेसे० समोहएण० विसुद्धलेस देव० जाणइ० ? हता, जाणइ० १०।
विसुद्धलेसे० समोहयासमोहएण अप्पाणेण अविसुद्धलेस देवं जाणइ २ ? हता, जाणइ० ११।
विसुद्धलेसे० समोहयासमोहएण अप्पाणेण विसुद्धलेसं देवं० ? हता, जाणइ० १२।[2]
एव हेट्ठिल्लएहिं अट्ठहिं न जाणइ न पासइ, उवरिल्लएहिं चउहिं जाणइ पासइ।
सेव भते ! सेवं भते ! त्ति०।

॥ छट्ठ सए : नवमो उद्देसो समत्तो ॥

[१३-२] २—इसी तरह अविशुद्ध लेश्यावाला देव अनुपयुक्त (असमवहत) आत्मा से, विशुद्ध लेश्यावाले देव को, देवी को या अन्यतर को जानता और देखता है ?

३ अविशुद्ध लेश्यावाला देव उपयुक्त आत्मा से अविशुद्ध लेश्यावाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

४ अविशुद्ध लेश्यावाला देव उपयुक्त आत्मा से विशुद्ध लेश्यावाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

५ अविशुद्ध लेश्यावाला देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा से अविशुद्ध लेश्यावाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

६ अविशुद्ध लेश्यावाला देव, उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा से विशुद्ध लेश्यावाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

७ विशुद्ध लेश्यावाला देव, अनुपयुक्त आत्मा द्वारा, अविशुद्ध लेश्यावाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

१-२ इन दो चिह्नो के अन्तर्गत पाठ इस वाचना की प्रति मे नही है, वाचनान्तर की प्रति मे है, ऐसा वृत्तिकार का मत है। —स

८ विशुद्ध लेश्यावाला देव, अनुपयुक्त आत्मा द्वारा, विशुद्ध लेश्यावाले, देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

[आठो प्रश्नो का उत्तर] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है। (अर्थात्—नही जानता-देखता।)

[९ प्र.] भगवन् ! विशुद्ध लेश्यावाला देव क्या उपयुक्त आत्मा से अविशुद्ध लेश्यावाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

[९ उ] हाँ गौतम ! ऐसा देव जानता और देखता है।

[१० प्र] इसी प्रकार क्या विशुद्ध लेश्यावाला देव, उपयुक्त आत्मा से विशुद्ध लेश्यावाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

[१० उ] हाँ गौतम ! वह जानता-देखता है।

[११ प्र] विशुद्ध लेश्यावाला देव, उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा से, अविशुद्ध लेश्यावाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

[१२ प्र] विशुद्ध लेश्यावाला देव, उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा से, विशुद्ध लेश्यावाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

[११-१२ उ] हाँ गौतम ! वह जानता और देखता है। यो पहले (निचले) जो आठ भग कहे गए है, उन आठ भगो वाले देव नही जानते-देखते। किन्तु पीछे (ऊपर के) जो चार भग कहे गए हैं, उन चार भगो वाले देव, जानते और देखते है।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यो कह कर श्री गौतम स्वामी यावत् विचरण करने लगे।

विवेचन—अविशुद्ध-विशुद्ध लेश्यायुक्त देवो द्वारा अविशुद्ध-विशुद्ध लेश्यावाले देवादि को जानने-देखने सम्बन्धी प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र मे मुख्यतया १२ विकल्पो द्वारा देवो द्वारा देव, देवी एव अन्यतर को जानने-देखने के सम्बन्ध मे प्ररूपणा की गई है।

तीन पदो के बारह विकल्प—

(१) अविशुद्धलेश्यायुक्त देव अनुपयुक्त आत्मा से अशुद्धलेश्यावाले देवादि को
(२) अविशुद्धलेश्यायुक्त देव अनुपयुक्त आत्मा से विशुद्धलेश्यावाले देवादि को
(३) अविशुद्धलेश्यायुक्त देव उपयुक्त आत्मा से अविशुद्धलेश्यावाले देवादि को
(४) अविशुद्धलेश्यायुक्त देव उपयुक्त आत्मा से विशुद्धलेश्यावाले देवादि को
(५) अविशुद्धलेश्यायुक्त देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा से अविशुद्धलेश्यावाले देवादि को
(६) अविशुद्धलेश्यायुक्त देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा से विशुद्धलेश्यावाले देवादि को
(७) विशुद्धलेश्यायुक्त देव अनुपयुक्त आत्मा से अविशुद्धलेश्यावाले देवादि को
(८) विशुद्धलेश्यायुक्त देव अनुपयुक्त आत्मा से विशुद्धलेश्यावाले देवादि को
(९) विशुद्धलेश्यायुक्त देव उपयुक्त आत्मा से अविशुद्धलेश्यावाले देवादि को
(१०) विशुद्धलेश्यायुक्त देव उपयुक्त आत्मा से विशुद्धलेश्यावाले देवादि को

(११) विशुद्धलेश्यायुक्त देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा से अविशुद्धलेश्यावाले देवादि को
(१२) विशुद्धलेश्यायुक्त देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा से विशुद्धलेश्यावाले देवादि को

अविशुद्धलेश्यावाले देव विभगज्ञानी होते है, इसलिए पूर्वोक्त ६ विकल्पो मे उक्त देव मिथ्यादृष्टि होने के कारण देव-देवी आदि को नही जान-देख सकते। तथा सातवे-आठवे विकल्प मे उक्त देव अनुपयुक्तना के कारण जान-देख नही पाते। किन्तु अन्तिम चार विकल्पो मे उक्त देव एक तो, सम्यग्दृष्टि है, दूसरे उनमे से ९वे, १०वे विकल्पो मे उक्त देव उपयुक्त भी है, तथा ११वे, १२वे विकल्प मे उक्त देव उपयुक्तानुपयुक्त मे उपयुक्तपन सम्यग्दृष्टि एव सम्यग्ज्ञान का कारण है। इसलिए पिछले चारो विकल्प वाले देव, देवादि को जानते-देखते है।[1]

॥ छठा शतक नवम उद्देशक समाप्त ॥

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २८४
(ख) भगवती (हिन्दी विवेचनयुक्त) भा २, पृ १०६६

दसमो उद्देसओ : 'अन्नउत्थी'

दशम उद्देशक : अन्यतीर्थी

अन्यतीर्थिकमतनिराकरणपूर्वक सम्पूर्ण लोक में सर्वजीवो के सुखदुःख को अणुमात्र भी दिखाने की असमर्थता की प्ररूपणा—

१ [१] अन्नउत्थिया ण भंते ! एवमाइक्खति जाव परूवेंति-जावतिया रायगिहे नयरे जीवा एवतियाण जीवाणं नो चक्किया केइ सुह वा दुह वा जाव कोलट्ठिगमातमवि निप्फावमातमवि कलममायमवि मासमायमवि मुग्गमातमवि जूयामायमवि लिक्खामायमवि अभिनिवट्टेत्ता उवदसित्तए, से कहमेयं भंते ! एवं ?

गोयमा ! जं ण ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खति जाव मिच्छ ते एवमाहंसु, अह पुण गोतमा ! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि सव्वलोए वि य ण सव्वजीवाणं णो चक्किया केइ सुह वा त चेव जाव उवदसित्तए।

[१-१ प्र] भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते है, यावत् प्ररूपणा करते है कि राजगृह नगर मे जितने जीव है, उन सबके दु ख या सुख को बेर की गुठली जितना भी, बाल (निष्पाव नामक धान्य) जितना भी, कलाय (गुवार के दाने या काली दाल अथवा मटर या चावल) जितना भी, उडद के जितना भी, मू ग-प्रमाण, यूका (जू) प्रमाण, लिक्षा (लीख) प्रमाण भी बाहर निकाल कर नही दिखा सकता। भगवन् ! यह बात यो कैसे हो सकती है ?

[१-१ उ] गौतम ! जो अन्यतीर्थिक उपर्युक्त प्रकार से कहते है, यावत् प्ररूपणा करते है, वे मिथ्या कहते है। हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ, यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि (केवल राजगृह नगर मे ही नही) सम्पूर्ण लोक मे रहे हुए सर्व जीवो के सुख या दु ख को कोई भी पुरुष उपर्युक्तरूप से यावत् किसी भी प्रमाण मे बाहर निकाल कर नही दिखा सकता।

[२] से केणट्ठेणं० ?

गोयमा ! अय ण जबुद्दीवे २ जाव विसेसाहिए परिक्खेवेणं पन्नत्ते। देवे ण महिड्ढीए जाव महाणुभागे एग मह सविलेवण गधसमुग्गगं गहाय त अवदालेति, तं अवदालित्ता जाव इणामेव कट्टु केवलकप्प जबुद्दीव २ तिहिं अच्छरानिवातेहिं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टित्ताण हव्वमागच्छेज्जा, से नूणं गोतमा ! से केवलकप्पे जबुद्दीवे २ तेहिं घाणपोग्गलेहिं फुडे ?

हता, फुडे। चक्किया णं गोतमा ! केइ तेसिं घाणपोग्गलाण कोलट्ठियमायमवि जाव उवदंसित्तए ?

णो इणट्ठे समट्ठे। से तेणट्ठेण जाव उवदसेत्तए।

[१-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ?

[१-२ उ] गौतम ! यह जम्बूद्वीप नामक द्वीप एक लाख योजन का लम्बा-चौडा है। इसकी परिधि ३ लाख १६ हजार दो सौ २७ योजन, ३ कोश, १२८ धनुष और १३½ अगुल से कुछ अधिक है। कोई महर्द्धिक यावत् महानुभाग देव एक बडे विलेपन वाले गन्धद्रव्य के डिब्बे को लेकर उघाडे और उघाड कर तीन चुटकी बजाए, उतने समय मे उपर्युक्त जम्बूद्वीप की ११ बार परिक्रमा करके वापस शीघ्र आए तो हे गौतम ! (मै तुम से पूछता हूँ—) उस देव की इस प्रकार की शीघ्र गति से गन्ध पुद्गलो के स्पर्श से यह सम्पूर्ण जम्बूद्वीप स्पृष्ट हुआ या नही ?

(गौतम—) हाँ भगवन् ! वह स्पृष्ट हो गया।

[भगवान्—] हे गौतम ! कोई पुरुष उन गन्धपुद्गलो को बेर की गुठली जितना भी, यावत् लिक्षा जितना भी दिखलाने मे समर्थ है ?

[गौतम—] भगवन् ! यह अर्थ समर्थ नही है।

[भगवान्—] हे गौतम ! इसी प्रकार जीव के सुख-दु ख को भी बाहर निकाल कर बतलाने मे, यावत् कोई भी व्यक्ति समर्थ नही है।

विवेचन—अन्यतीर्थिकमत—निराकरणपूर्वक सम्पूर्ण लोक मे सर्वजीवो के सुख-दु ख को अणुमात्र भी दिखाने की असमर्थता की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र मे राजगृहवासी जीवो के सुख-दु ख को लिक्षाप्रमाण भी दिखाने मे असमर्थता की अन्यतीर्थिकप्ररूपणा का निराकरण करते हुए सम्पूर्ण लोक मे सर्वजीवो के सुख दु ख को अणुमात्र भी दिखाने की असमर्थता की सयुक्तिक भगवद्-मत प्ररूपणा प्रस्तुत की गई है।

दृष्टान्त द्वारा स्वमत-स्थापना—जैसे गन्ध के पुद्गल मूर्त्त होते हुए भी अतिसूक्ष्म होने के कारण अमूर्त्ततुल्य हैं, उन्हे दिखलाने मे कोई समर्थ नही, वैसे ही समग्र लोक के सर्वजीवो के सुख-दु ख को भी बाहर निकाल कर दिखाने मे कोई भी समर्थ नही है।[1]

जीव का निश्चित स्वरूप और उसके सम्बन्ध में अनेकान्त शैली मे प्रश्नोत्तर—

२. जीवे ण भंते ! जीवे ? जीवे जीवे ?

गोयमा ! जीवे ताव नियमा जीवे, जीवे वि नियमा जीवे।

[२ प्र] भगवन् ! क्या जीव चैतन्य है या चैतन्य जीव है ?

[२ उ] गौतम ! जीव तो नियमत (निश्चितरूप से) जीव (चैतन्य स्वरूप है) और जीव (चैतन्य) भी निश्चितरूप से जीवरूप है।

३. जीवे ण भते ! नेरइए ? नेरइए जीवे ?

गोयमा ! नेरइए ताव नियमा जीवे, जीवे पुण सिय नेरइए, सिय अनेरइए।

[३ प्र] भगवन् ! क्या जीव नैरयिक है या नैरयिक जीव है ?

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २८५

[३ उ] गौतम ! नैरयिक तो नियमत जीव है, और जीव तो कदाचित् नैरयिक भी हो सकता है, कदाचित् नैरयिक से भिन्न भी हो सकता है।

४. जीवे ण भंते ! असुरकुमारे ? असुरकुमारे जीवे ?

गोतमा ! असुरकुमारे ताव नियमा जीवे, जीवे पुण सिय असुरकुमारे, सिय णो असुरकुमारे।

[४ प्र] भगवन् ! क्या जीव, असुरकुमार है या असुरकुमार जीव है ?

[४ उ] गौतम ! असुरकुमार तो नियमत जीव है, किन्तु जीव तो कदाचित् असुरकुमार भी होता है, कदाचित् असुरकुमार नही भी होता।

५. एवं दडओ णेयव्वो जाव वेमाणियाण।

[५] इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक सभी दण्डक (आलापक) कहने चाहिए।

६ जीवति भंते ! जीवे ? जीवे जीवति ?

गोयमा ! जीवति ताव नियमा जीवे, जीवे पुण सिय जीवति, सिय नो जीवति।

[६ प्र] भगवन् ! जो जीता—प्राण धारण करता है, वह जीव कहलाता है, या जो जीव है, वह जीता—प्राण धारण करता है ?

[६ उ] गौतम ! जो जीता—प्राण धारण करता है, वह तो नियमत जीव कहलाता है, किन्तु जो जीव होता है, वह प्राण धारण करता (जीता) भी है और कदाचित् प्राण धारण नही भी करता।

७ जीवति भंते ! नेरतिए ? नेरतिए जीवति ?

गोयमा ! नेरतिए ताव नियमा जीवति, जीवति पुण सिय नेरतिए, सिय अनेरइए।

[७ प्र] भगवन् ! जो जीता है, वह नैरयिक कहलाता है, या जो नैरयिक होता है, वह जीता—प्राण धारण करता है ?

[७ उ] गौतम ! नैरयिक तो नियमत जीता है, किन्तु जो जीता है, वह नैरयिक भी होता है, और अनैरयिक भी होता है।

८ एव दडओ नेयव्वो जाव वेमाणियाण।

[८] इसी प्रकार यावत् वैमानिकपर्यन्त सभी दण्डक (आलापक) कहने चाहिए।

९ भवसिद्धीए ण भंते ! नेरइए ? नेरइए भवसिद्धीए ?

गोयमा ! भवसिद्धीए सिय नेरइए, सिय अनेरइए। नेरतिए वि य सिय भवसिद्धीए, सिय अभवसिद्धीए।

[९ प्र] भगवन् ! जो भवसिद्धिक होता है, वह नैरयिक होता है, या जो नैरयिक होता है, वह भवसिद्धिक होता है ?

[९ उ] गौतम ! जो भवसिद्धिक (भव्य) होता है, वह नैरयिक भी होता है, और अनैरयिक भी होता है। तथा जो नैरयिक होता है, वह भवसिद्धिक भी होता है और अभवसिद्धिक भी होता है।

१०. एव दडग्रो जाव वेमाणियाण।

[१०] इसी प्रकार यावत् वैमानिकपर्यन्त सभी दण्डक (आलापक) कहने चाहिए।

विवेचन—जीव का निश्चित स्वरूप और उसके सम्बन्ध में अनेकान्तशैली मे प्रश्नोत्तर— प्रस्तुत नौ सूत्रो (सू २ से १० तक) मे जीव के सम्बन्ध मे निम्नोक्त अकित किये गए है—

१ जीव नियमत चैतन्यरूप है और चैतन्य भी नियमत जीव-स्वरूप है।

२ नैरयिक नियमत जीव है, किन्तु जीव कदाचित् नैरयिक और कदाचित् अनैरयिक भी हो सकता है।

३ असुरकुमार से लेकर वैमानिक देव तक नियमत जीव हैं, किन्तु जीव कदाचित् असुरकुमारादि होता है, कदाचित् नही भी होता।

४. जो जीता (प्राण धारण करता) है, वह निश्चय ही जीव है, किन्तु जो जीव होता है, वह (द्रव्य-) प्राण धारण करता है और नही भी करता।

५ नैरयिक नियमत· जीता है, किन्तु जो जीता है, वह नैरयिक भी हो सकता है, अनैरयिक भी। यावत् वैमानिक तक यही सिद्धान्त है।

६ जो भवसिद्धिक होता है, वह नैरयिक भी होता है, अनैरयिक भी। तथा जो नैरयिक होता है, वह भवसिद्धिक होता है, अभवसिद्धिक भी।[1]

दो बार जीव शब्दप्रयोग का तात्पर्य—दूसरे प्रश्न मे जो दो बार जीवशब्द का प्रयोग किया गया है, उसमे से एक जीव शब्द का अर्थ 'जीव' (चेतन-धर्मीद्रव्य) है जबकि दूसरे जीवशब्द का अर्थ चैतन्य (धर्म) है। जीव और चैतन्य मे अविनाभाव, सम्बन्ध बताने हेतु यह समाधान दिया गया है। अर्थात्—जो जीव है, वह चैतन्यरूप है और जो चैतन्यरूप है, वह जीव है।

'जीव, कदाचित् जीता है, कदाचित् नहीं जीता, इसका तात्पर्य—अजीव के तो आयुष्यकर्म न होने से वह प्राणो को धारण नही करता, किन्तु जीवो मे भी जो ससारी जीव हैं, वे ही प्राणो को धारण करते हैं, किन्तु जो सिद्ध जीव हैं, वे जीव होते हुए भी द्रव्यप्राणो को धारण नही करते। इस अपेक्षा से कहा गया है—जो जीव होता है, वह जीता (प्राण धारण करता) भी है, नही भी जीता।[2]

एकान्तदु.खवेदनरूप अन्यतीर्थिकमतनिराकरणपूर्वक अनेकान्तशैली से सुखदुःखादिवेदन-प्ररूपणा—

११ [१] अन्नउत्थिया ण भते ! एवमाइक्खति जाव परूवेंति—"एव खलु सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता एगतदुक्ख वेदण वेदेंति से कहमेत भते ! एव ?

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त [मूलपाठ टिप्पणयुक्त] भा १, पृ २७०-२७१

२ भगवती० अ वृत्ति, पत्राक २८६

गोतमा ! जं णं ते अन्नउत्थिया जाव मिच्छं ते एवमाहंसु । अहं पुण गोतमा ! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि—अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता एगंतदुक्खं वेदणं वेदेंति, आहच्च सातं । अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता एगंतसातं वेदणं वेदेंति, आहच्च असायं वेयणं वेदेंति । अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता वेमाताए वेयणं वेयंति, आहच्च सायमसायं ।

[११-१ प्र] भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते है, यावत् प्ररूपणा करते हैं कि सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एकान्तदुःखरूप वेदना को वेदते (भोगते—अनुभव करते) हे, तो भगवन् ! ऐसा कैसे हो सकता है ?

[११-१ उ] गौतम ! अन्यतीर्थिक जो यह कहते हैं, यावत् प्ररूपणा करते है, वे मिथ्या कहते है। हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ, यावत् प्ररूपणा करता हूँ—कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एकान्तदुःखरूप वेदना वेदते है, और कदाचित् साता (सुख) रूप वेदना भी वेदते है, कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एकान्त साता (सुख) रूप वेदना वेदते है और कदाचित् असाता (दुःख) रूप वेदना भी वेदते है, तथा कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व विमात्रा (विविध प्रकार) से वेदना वेदते है, (अर्थात्—) कदाचित् सातारूप और कदाचित् असातारूप (वेदना वेदते है।)

[२] **से केणट्ठेणं० ?**

गोयमा ! नेरइया एगंतदुक्खं वेयणं वेयंति, आहच्च सातं । भवणवति-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया एगंतसातं वेदणं वेदेंति, आहच्च असायं । पुढविक्काइया जाव मणुस्सा वेमाताए वेदणं वेदेंति, आहच्च सातमसातं । से तेणट्ठेणं० ।

[११-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कथन किया जाता है ?

[११-२ उ] गौतम ! नैरयिक जीव, एकान्तदुःखरूप वेदना वेदते है, और कदाचित् सातारूप वेदना भी वेदते है। भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक एकान्तसाता (सुख) रूप वेदना वेदते है, किन्तु कदाचित् असातारूप वेदना भी वेदते हैं। तथा पृथ्वीकायिक जीवो से लेकर मनुष्यो पर्यन्त विमात्रा से (विविध रूपो मे) वेदना वेदते है। (अर्थात्) कदाचित् सुख और कदाचित् दुःख वेदते है। इसी कारण से, हे गौतम ! उपर्युक्त रूप से कहा गया है।

विवेचन—एकान्तदुःखवेदनरूप अन्यतीर्थिकमत-निराकरणपूर्वक अनेकान्तशैली से सुख-दुःखादिवेदना-प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र मे अन्यतीर्थिको की सब जीवो द्वारा एकान्तदुःखवेदन की मान्यता का खण्डन करते हुए अनेकान्तशैली से दुःखबहुल सुख, सुखबहुल दुःख एवं सुख-दुःखमिश्र के वेदन का निरूपण किया गया है।

समाधान का स्पष्टीकरण—नैरयिक जीव एकान्त दुःख वेदते है, किन्तु तीर्थंकर भगवान् के जन्मादि कल्याणको के अवसर पर कदाचित् सुख भी वेदते हैं। देव एकान्तसुख वेदते हैं, किन्तु पारस्परिक आहनन (संघर्ष, ईर्ष्या, द्वेष आदि) मे, तथा प्रिय वस्तु के वियोगादि मे असाता वेदना भी वेदते है। पृथ्वीकायिक जीवो से लेकर मनुष्यो तक के जीव किसी समय सुख और किसी समय दुःख, कभी सुख-दुःख—मिश्रित वेदना वेदते है।[१]

---

१ भगवती० अ० वृत्ति, पत्रांक २८६

चौबीस दण्डकों मे आत्म-शरीरक्षेत्रावगाढपुद्गलाहार प्ररूपणा—

१२. नेरतिया ण भ ते ! जे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति ते किं आयसरीरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति ? अणतरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति ? परपरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति ?

गोतमा ! आयसरीरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति, नो अणतरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति, नो परपरखेत्तोगाढे ।

[१२ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव, जिन पुद्गलो का आत्मा (अपने) द्वारा ग्रहणते—आहार करते है, क्या वे आत्म-शरीर क्षेत्रावगाढ (जिन आकाशप्रदेशो मे शरीर है, उन्ही प्रदेशो मे स्थित) पुद्गलो को आत्मा द्वारा ग्रहण करते है ? या अनन्तरक्षेत्रावगाढ पुद्गलो को आत्मा द्वारा ग्रहण करते है ? अथवा परम्परक्षेत्रावगाढ पुद्गलो को आत्मा द्वारा करते है ?

[१२ उ] गौतम ! वे आत्म-शरीर-क्षेत्रावगाढ पुद्गलो को आत्मा द्वारा ग्रहण करते है, किन्तु न तो अनन्तर क्षेत्रावगाढ पुद्गलो को आत्मा द्वारा ग्रहण करते हैं और न ही परम्पर-क्षेत्रावगाढ पुद्गलो को आत्मा द्वारा ग्रहण करते है ।

१३ जहा नेरइया तहा जाव वेमाणियाण दडओ ।

[१३] जिस प्रकार नैरयिको के लिए कहा, उसी प्रकार यावत् वैमानिक-पर्यन्त दण्डक (आलापक) कहना चाहिए ।

विवेचन—चौबीस दण्डको मे आत्मशरीरक्षेत्रावगाढपुद्गलाहार-प्ररूपणा—प्रस्तुत दो सूत्रो द्वारा शास्त्रकार ने समस्त ससारी जीवो के द्वारा आहाररूप मे ग्रहण योग्य पुद्गलो के सम्बन्ध मे प्रश्न उठा कर स्वसिद्धान्तसम्मत निर्णय प्रस्तुत किया है ।

निष्कर्ष—जीव स्वशरीरक्षेत्र मे रहे हुए पुद्गलो को आत्मा द्वारा ग्रहण करते है, किन्तु स्वशरीर से अनन्तर और परम्पर क्षेत्र मे रहे हुए पुद्गलो का आत्मा द्वारा आहार नही करता ।[1]

केवली भगवान् का आत्मा द्वारा ज्ञान-दर्शनसामर्थ्य—

१४, [१] केवली ण भ ते ! आयाणेहिं जाणति पासति ?

गोतमा ! नो इणट्ठे० ।

[१४-१ प्र] भगवन् ! क्या केवली भगवान् इन्द्रियो द्वारा जानते-देखते हैं ?

[१४-१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

[२] से केणट्ठेणं० ?

गोयमा ! केवली ण पुरत्थिमेण मित पि जाणति अमितं पि जाणति जाव निव्वुडे दसणे केवलिस्स, से तेणट्ठेणं० ।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २८६

सत्तमं सयं : सप्तम शतक

प्राथमिक

* व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र के सप्तम शतक मे आहार, विरति, स्थावर, जीव आदि कुल दश उद्देशक हैं।
* प्रथम उद्देशक मे जीव के अनाहार और सर्वाल्पाहार के काल का, लोकसस्थान का, श्रमणोपाश्रय मे बैठे हुए सामायिकस्थ श्रमणोपासक को लगने वाली क्रिया का, श्रमणोपासक के व्रत मे अतिचार लगने के शकासमाधान का, श्रमण-माहन को प्रतिलाभित करने वाले श्रमणोपासक को लाभ का, नि सगतादि कारणो से कर्मरहित जीव की उर्ध्वगति का, दु खी को दु ख की स्पृष्टता आदि सिद्धान्तो का, अनुपयुक्त अनगार को लगने वाली क्रिया का, अगारादि आहार-दोषो के अर्थ का निरूपण किया गया है।
* द्वितीय उद्देशक मे सुप्रत्याख्यानी और दुष्प्रत्याख्यानी के स्वरूप का, प्रत्याख्यान के भेद-प्रभेदो का, जीव और चौबीस दण्डको मे मूल-उत्तरगुण प्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी का, मूलगुण प्रत्याख्यानी आदि मे अल्पबहुत्व का, सर्वत और देशत मूल-उत्तरगुण-प्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी के चौबीस दण्डको मे अस्तित्व एव अल्पबहुत्व का, सयत आदि एव प्रत्याख्यानी आदि के अस्तित्व तथा अल्पबहुत्व का एव जीवो की शाश्वतता—अशाश्वतता का निरूपण किया गया है।
* तृतीय उद्देशक मे वनस्पतिकायिक जीवो के सर्वाल्पाहार एव सर्वमहाहार के काल की, वानस्पतिकादिक मूल जीवादि से स्पष्ट मूलादि की, आलू आदि अनन्तकायत्व एव पृथक्कायत्व की, जीवो मे लेश्या की अपेक्षा अल्प-महाकर्मत्व की, जीवो मे वेदना और निर्जरा के पृथक्त्व की, और अन्त मे चौवीस दण्डकवर्ती जीवो की शाश्वतता-अशाश्वतता की प्ररूपणा की गई है।
* चतुर्थ उद्देशक मे ससारी जीवो के सम्बन्ध मे जीवाभिगम के अतिदेशपूर्वक वर्णन है।
* पचम उद्देशक मे पक्षियो के विषय मे योनिसग्रह, लेश्य आदि ११ द्वारो के माध्यम से विचार किया गया है।
* छठे उद्देशक मे जीवो के आयुष्यबन्ध और आयुष्यवेदन के सम्बन्ध मे, जीवो की महावेदना—अल्पवेदना के सम्बन्ध मे, जीवो के अनाभोगनिर्वर्तित-आयुष्य तथा कर्कश-अकर्कश-वेदनीय, साता-असातावेदनीय के सम्बन्ध मे प्रतिपादन किया गया है, अन्त मे, छठे आरे मे भारत, भारतभूमि, भारतवासी मनुष्यो तथा पशु-पक्षियो के आचार-विचार एव भाव-स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है।
* सातवें उद्देशक मे उपयोगपूर्वक गमनादि करने वाले अनगार की क्रिया की, कामभोग एव कामीभोगी के स्वरूप की, छद्मस्थ, अवधिज्ञानी एव केवली आदि मे भोगित्व की, असज्ञी व समर्थ जीवो द्वारा अकाम एव प्रकामनिकरण की प्ररूपणा की गई है।

* आठवें उद्देशक मे केवल सयमादि से सिद्ध होने के निषेध की, हाथी और कुथुए के समान जीवत्व की, नैरयिको की १० वेदनाओ की, हाथी और कुथुए मे अप्रत्याख्यान-क्रिया की समानता की प्ररूपणा है।

* नौवें उद्देशक मे असवृत अनगार द्वारा विकुर्वणासामर्थ्य का, तथा महाशिलाकण्टक एव रथ-मूसल सग्राम का सागोपाग विवरण प्रस्तुत किया गया है।

* दशवें उद्देशक मे कालोदायी द्वारा पचास्तिकायचर्चा और सम्बुद्ध होकर प्रव्रज्या स्वीकार से लेकर सल्लेखनापूर्वक समाधिमरण तक का वर्णन है।[1]

□□

१ वियाहपण्णत्ति सुत्त, विसमाणुक्कमो ४४ से ४८ तक

सत्तमं सयं : सप्तम शतक

प्राथमिक

* व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र के सप्तम शतक मे आहार, विरति, स्थावर, जीव आदि कुल दश उद्देशक हैं।

* प्रथम उद्देशक मे जीव के अनाहार और सर्वाल्पाहार के काल का, लोकसस्थान का, श्रमणोपाश्रय मे बैठे हुए सामायिकस्थ श्रमणोपासक को लगने वाली क्रिया का, श्रमणोपासक के व्रत मे अतिचार लगने के शकासमाधान का, श्रमण-माहन को प्रतिलाभित करने वाले श्रमणोपासक को लाभ का, नि सगतादि कारणो से कर्मरहित जीव की उर्ध्वगति का, दु खी को दु ख की स्पृष्टता आदि सिद्धान्तो का, अनुपयुक्त अनगार को लगने वाली क्रिया का, अगारादि आहार-दोषो के अर्थ का निरूपण किया गया है।

* द्वितीय उद्देशक मे सुप्रत्याख्यानी और दुष्प्रत्याख्यानी के स्वरूप का, प्रत्याख्यान के भेद-प्रभेदो का, जीव और चौबीस दण्डको मे मूल-उत्तरगुण प्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी का, मूलगुण प्रत्याख्यानी आदि मे अल्पबहुत्व का, सर्वत और देशत मूल-उत्तरगुण-प्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी के चौबीस दण्डको मे अस्तित्व एव अल्पबहुत्व का, सयत आदि एव प्रत्याख्यानी आदि के अस्तित्व तथा अल्पबहुत्व का एव जीवो की शाश्वतता—अशाश्वतता का निरूपण किया गया है।

* तृतीय उद्देशक मे वनस्पतिकायिक जीवो के सर्वाल्पाहार एव सर्वमहाहार के काल की, वानस्पतिकादिक मूल जीवादि से स्पष्ट मूलादि की, आलू आदि अनन्तकायत्व एव पृथक्कायत्व की, जीवो मे लेश्या की अपेक्षा अल्प-महाकर्मत्व की, जीवो मे वेदना और निर्जरा के पृथक्त्व की, और अन्त मे चौवीस दण्डकवर्ती जीवो की शाश्वतता-अशाश्वतता की प्ररूपणा की गई है।

* चतुर्थ उद्देशक मे ससारी जीवो के सम्बन्ध मे जीवाभिगम के अतिदेशपूर्वक वर्णन है।

* पचम उद्देशक मे पक्षियो के विषय मे योनिसग्रह, लेश्य आदि ११ द्वारो के माध्यम से विचार किया गया है।

* छठे उद्देशक मे जीवो के आयुष्यबन्ध और आयुष्यवेदन के सम्बन्ध मे, जीवो की महावेदना—अल्पवेदना के सम्बन्ध मे, जीवो के अनाभोगनिर्वर्तित-आयुष्य तथा कर्कश-अकर्कश-वेदनीय, साता-असातावेदनीय के सम्बन्ध मे प्रतिपादन किया गया है, अन्त मे, छठे आरे मे भारत, भारतभूमि, भारतवासी मनुष्यो तथा पशु-पक्षियो के आचार-विचार एव भाव-स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है।

* सातवें उद्देशक मे उपयोगपूर्वक गमनादि करने वाले अनगार की क्रिया की, कामभोग एव कामीभोगी के स्वरूप की, छद्मस्थ, अवधिज्ञानी एव केवली आदि मे भोगित्व की, असज्ञी व समर्थ जीवो द्वारा अकाम एव प्रकामनिकरण की प्ररूपणा की गई है।

४ [१] जीवे ण भंते ! कं समयं सव्वप्पाहारए भवति ?

गोयमा ! पढमसमयोववन्नए वा, चरमसमयभवत्थे वा, एत्थ णं जीवे सव्वप्पाहारए भवति ।

[४-१ प्र] भगवन् ! जीव किस समय मे सबसे अल्प आहारक होता है ?

[४-१ उ] गौतम ! उत्पत्ति के प्रथम समय मे अथवा भव (जीवन) के अन्तिम (चरम) समय मे जीव सबसे अल्प आहार वाला होता है ।

[२] **दंडओ भाणियव्वो जाव वेमाणियाणं ।**

[४-२] इसी प्रकार वैमानिकपर्यन्त चौवीस ही दण्डको मे कहना चाहिए ।

विवेचन—जीवो के अनाहार और सर्वाल्पाहार के काल की प्ररूपणा—द्वितीय सूत्र से चतुर्थ सूत्र तक जीव के अनाहारकत्व और सर्वाल्पाहारकत्व की प्ररूपणा चौवीस ही दण्डको की अपेक्षा से की गई है ।

परभवगमनकाल मे आहारक-अनाहारक रहस्य—सैद्धान्तिक दृष्टि से एक भव का आयुष्य पूर्ण करके जीव जब ऋजुगति से परभव मे (उत्पत्तिस्थान मे) जाता है, तब परभवसम्बन्धी आयुष्य के प्रथम समय मे ही आहारक होता है, किन्तु जब (वक्र) विग्रहगति से जाता है, तब प्रथम समय मे वक्र मार्ग मे चलता हुआ वह अनाहारक होता है, क्योकि उत्पत्तिस्थान पर न पहुँचने से उसके आहरणीय पुद्गलो का अभाव होता है । तथा जब एक वक्र (मोड) से दो समय मे उत्पन्न होता है, तब पहले समय मे अनाहारक और द्वितीय समय मे आहारक होता है, जब दो वक्रो (मोडो) से तीन समय मे उत्पन्न होता है, तब प्रारम्भ के दो समयो तक अनाहारक रहता है, तीसरे मे आहारक होता है, और जब तीन वक्रो से चार समय मे उत्पन्न होता है, तब तीन समय तक अनाहारक और चौथे मे नियमत. आहारक होता है । तीन मोडो का क्रम इस प्रकार होता है—त्रसनाडी से बाहर विदिशा मे रहा हुआ कोई जीव, जब अधोलोक से ऊर्ध्वलोक मे त्रसनाडी से बाहर की दिशा मे उत्पन्न होता है, तब वह अवश्य ही प्रथम एक समय मे विश्रेणी से समश्रेणी मे आता है । दूसरे समय मे त्रसनाडी मे प्रविष्ट होता है, तृतीय समय मे ऊर्ध्वलोक मे जाता है और चौथे समय मे लोकनाडी से बाहर निकलकर उत्पत्तिस्थान मे उत्पन्न होता है । इनमे से पहले के तीन समयो मे तीन वक्र समश्रेणी मे जाने से हो जाते है । जब त्रसनाडी से निकल कर जीव बाहर विदिशा मे ही उत्पन्न हो जाता है तो चार समय मे चार वक्र भी हो जाते है, पाचवे समय मे वह उत्पत्तिस्थान को प्राप्त करता है । ऐसा कई आचार्य कहते है ।

जो नारकादि त्रस, त्रसजीवो मे ही उत्पन्न होता है, उसका गमनागमन त्रसनाडी से बाहर नही होता, अतएव वह तीसरे समय मे नियमत आहारक हो जाता है । जैसे—कोई मत्स्यादि भरतक्षेत्र के पूर्वभाग मे स्थित है, वह वहाँ से मरकर ऐरवतक्षेत्र के पश्चिम भाग मे नीचे नरक मे उत्पन्न होता है, तब एक ही समय मे भरतक्षेत्र के पूर्व भाग से पश्चिम भाग मे जाता है, दूसरे समय मे ऐरवत क्षेत्र के पश्चिम भाग मे जाता है और तीसरे समय मे नरक मे उत्पन्न होता है । इन तीन समयो मे से प्रथम दो मे वह अनाहारक और तीसरे समय मे आहारक होता है ।

सर्वाल्पाहारता . दो समयो मे—उत्पत्ति के प्रथम समय मे आहार ग्रहण करने का हेतुभूत शरीर अल्प होता है, इसलिए उस समय जीव सर्वाल्पाहारी होता है, तथा अन्तिम समय मे प्रदेशो के

स त्त मं : स त्त म स य

सप्तम शतक

सप्तम शतक की संग्रहणी गाथा—

१ आहार १ विरति २ थावर ३ जीवा ४ पक्खी ५ य आउ ६ अणगारे ७ ।
छउमत्थ ८ असंवुड ९ अन्नउत्थि १० दस सत्तमम्मि सते ।। १ ।।

[१ गाथा का अर्थ—] १ आहार, २ विरति, ३ स्थावर, ४ जीव, ५ पक्षी, ६ आयुष्य, ७ अनगार, ८ छद्मस्थ, ९ असवृत और १० अन्यतीर्थिक, ये दश उद्देशक सातवे शतक मे है।

प ढ मो उद्दे स ओ : 'आ हा र'

प्रथम उद्देशक : 'आहार'

जीवो के अनाहार और सर्वाल्पाहार के काल की प्ररूपणा—

२. तेण कालेणं तेण समएणं जाव एव वदासी—

[२] उस काल और उस समय मे, यावत् गौतमस्वामी ने (श्रमण भगवान् महावीर से) इस प्रकार पूछा—

३ [१] जीवे ण भते ! क समयमणाहारए भवति ?

गोयमा ! पढमे समए सिय आहारए, सिय अणाहारए । बितिए समए सिय आहारए, सिय अणाहारए । ततिए समए सिय आहारए, सिय अणाहारए । चउत्थे समए नियमा आहारए ।

[३-१ प्र] भगवन् ! (परभव मे जाता हुआ) जीव किस समय मे अनाहारक होता है ?

[३-१ उ] गौतम ! (परभव मे जाता हुआ) जीव, प्रथम समय मे कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है, द्वितीय समय मे भी कदाचित् आहारक और कदाचित् अनाहारक होता है, तृतीय समय मे भी कदाचित् आहारक और कदाचित् अनाहारक होता है, परन्तु चौथे समय मे नियमत (अवश्य) आहारक होता है ।

[२] एव दडओ । जीवा य एगिदिया य चउत्थे समए । सेसा ततिए समए ।

[३-२] इसी प्रकार नैरयिक आदि चौवीस ही दण्डको मे कहना चाहिए । सामान्य जीव और एकेन्द्रिय ही चौथे समय मे आहारक होते हैं । इनके सिवाय शेष जीव, तीसरे समय मे आहारक होते है ।

४ [१] जीवे ण भंते ! कं समयं सव्वप्पाहारए भवति ?

गोयमा ! पढमसमयोववन्नए वा, चरमसमयभवत्थे वा, एत्थ णं जीवे सव्वप्पाहारए भवति ।

[४-१ प्र] भगवन् ! जीव किस समय मे सबसे अल्प आहारक होता है ?

[४-१ उ] गौतम ! उत्पत्ति के प्रथम समय मे अथवा भव (जीवन) के अन्तिम (चरम) समय मे जीव सबसे अल्प आहार वाला होता है ।

[२] दंडओ भाणियव्वो जाव वेमाणियाणं ।

[४-२] इसी प्रकार वैमानिकपर्यन्त चौवीस ही दण्डको मे कहना चाहिए ।

विवेचन—जीवो के अनाहार और सर्वाल्पाहार के काल की प्ररूपणा—द्वितीय सूत्र से चतुर्थ सूत्र तक जीव के अनाहारकत्व और सर्वाल्पाहारकत्व की प्ररूपणा चौवीस ही दण्डको की अपेक्षा से की गई है ।

परभवगमनकाल में आहारक-अनाहारक रहस्य—सैद्धान्तिक दृष्टि से एक भव का आयुष्य पूर्ण करके जीव जब ऋजुगति से परभव मे (उत्पत्तिस्थान मे) जाता है, तब परभवसम्बन्धी आयुष्य के प्रथम समय मे ही आहारक होता है, किन्तु जब (वक्र) विग्रहगति से जाता है, तब प्रथम समय मे वक्र मार्ग मे चलता हुआ वह अनाहारक होता है, क्योकि उत्पत्तिस्थान पर न पहुँचने से उसके आहरणीय पुद्गलो का अभाव होता है । तथा जब एक वक्र (मोड) से दो समय मे उत्पन्न होता है, तब पहले समय मे अनाहारक और द्वितीय समय मे आहारक होता है, जब दो वक्रो (मोडो) से तीन समय मे उत्पन्न होता है, तब प्रारम्भ के दो समयो तक अनाहारक रहता है, तीसरे मे आहारक होता है, और जब तीन वक्रो से चार समय मे उत्पन्न होता है, तब तीन समय तक अनाहारक और चौथे मे नियमत· आहारक होता है । तीन मोडो का क्रम इस प्रकार होता है—त्रसनाडी से बाहर विदिशा मे रहा हुआ कोई जीव, जब अधोलोक से ऊर्ध्वलोक मे त्रसनाडी से बाहर की दिशा मे उत्पन्न होता है, तब वह अवश्य ही प्रथम एक समय मे विश्रेणी से समश्रेणी मे आता है । दूसरे समय मे त्रसनाडी मे प्रविष्ट होता है, तृतीय समय मे ऊर्ध्वलोक मे जाता है और चौथे समय मे लोकनाडी से बाहर निकलकर उत्पत्तिस्थान मे उत्पन्न होता है । इनमे से पहले के तीन समयो मे तीन वक्र समश्रेणी मे जाने से हो जाते है । जब त्रसनाडी से निकल कर जीव बाहर विदिशा मे ही उत्पन्न हो जाता है तो चार समय मे चार वक्र भी हो जाते हैं, पाचवे समय मे वह उत्पत्तिस्थान को प्राप्त करता है । ऐसा कई आचार्य कहते है ।

जो नारकादि त्रस, त्रसजीवो मे ही उत्पन्न होता है, उसका गमनागमन त्रसनाडी से बाहर नही होता, अतएव वह तीसरे समय मे नियमत आहारक हो जाता है । जैसे—कोई मत्स्यादि भरतक्षेत्र के पूर्वभाग मे स्थित है, वह वहाँ से मरकर ऐरवतक्षेत्र के पश्चिम भाग मे नीचे नरक मे उत्पन्न होता है, तब एक ही समय मे भरतक्षेत्र के पूर्व भाग से पश्चिम भाग मे जाता है, दूसरे समय मे ऐरवत क्षेत्र के पश्चिम भाग मे जाता है और तीसरे समय मे नरक मे उत्पन्न होता है । इन तीन समयो मे से प्रथम दो मे वह अनाहारक और तीसरे समय मे आहारक होता है ।

सर्वाल्पाहारता दो समयो मे—उत्पत्ति के प्रथम समय मे आहार ग्रहण करने का हेतुभूत शरीर अल्प होता है, इसलिए उस समय जीव सर्वाल्पाहारी होता है, तथा अन्तिम समय मे प्रदेशो के

सकुचित हो जाने एव जीव के शरीर के अल्प अवयवो मे स्थित हो जाने के कारण जीव सर्वाल्पाहारी होता है ।

अनाभोगनिर्वर्तित आहार की अपेक्षा से यह कथन किया गया है । क्योकि अनाभोगनिर्वर्तित आहार बिना इच्छा के अनुपयोगपूर्वक ग्रहण किया जाता है । वह उत्पत्ति के प्रथम समय से लेकर अन्तिम समय तक प्रतिसमय सतत होता है, किन्तु आभोगनिर्वर्तित आहार नियत समय पर और इच्छापूर्वक ग्रहण किया हुआ होता है ।[1]

लोक के संस्थान का निरूपण—

५ किसठिते ण भते ! लोए पण्णत्ते ?

गोयमा ! सुपतिट्ठगसठिते लोए पण्णत्ते, हेट्ठा वित्थिण्णे जाव उप्पि उद्धमुइगाकारसठिते । तसि च ण सासयसि लोगसि हेट्ठा वित्थिण्णसि जाव उप्पि उद्धमुइगाकारसठितसि उप्पन्ननाणदसणधरे अरहा जिणे केवली जीवे वि जाणति पासति, अजीवे वि जाणति पासति । ततो पच्छा सिज्झति जाव अतं करेति ।

[५ प्र] भगवन् ! लोक का सस्थान (आकार) किस प्रकार का कहा गया है ?

[५ उ] गौतम ! लोक का सस्थान सुप्रतिष्ठिक (सकोरे) के आकार का कहा गया है । वह नीचे विस्तीर्ण (चौडा) है और यावत् ऊपर ऊर्ध्व मृदग के आकार का है । ऐसे नीचे से विस्तृत यावत् ऊपर ऊर्ध्वमृदगाकार इस शाश्वत लोक मे उत्पन्न केवलज्ञान-दर्शन के धारक, अर्हन्त, जिन, केवली, जीवो को भी जानते और देखते हैं तथा अजीवो को भी जानते और देखते है । इसके पश्चात् वे सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होते है, यावत् सब दु खो का अन्त करते है ।

विवेचन—लोक के सस्थान का निरूपण—प्रस्तुत सूत्र मे लोक के आकार का उपमा द्वारा निरूपण किया गया है ।

लोक का सस्थान—नीचे एक उलटा सकोरा (शराव) रखा जाए, फिर उस पर एक सीधा और उस पर एक उलटा सकोरा रखा जाए तो लोक का सस्थान बनता है । लोक का विस्तार नीचे सात रज्जूपरिमाण है । ऊपर क्रमश घटते हुए सात रज्जू की ऊँचाई पर एक रज्जू विस्तृत है । तत्पश्चात् उत्तरोत्तर क्रमश बढते हुए साढे दस रज्जू की ऊँचाई पर ५ रज्जू और शिरोभाग मे १ रज्जू विस्तार है । मूल (नीचे) से लेकर ऊपर तक की कुल ऊँचाई १४ रज्जू है ।

लोक की आकृति को यथार्थरूप से समझाने के लिए लोक के तीन विभाग किये गए हैं—अधोलोक, तिर्यक्लोक और ऊर्ध्वलोक । अधोलोक का आकार उलटे सकोरे (शराव) जैसा है, तिर्यक्लोक का आकार झालर या पूर्ण चन्द्रमा जैसा है और ऊर्ध्वलोक का आकार ऊर्ध्व मृदग जैसा है ।[2]

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २८७-२८८

२ भगवती (हिन्दीविवेचन युक्त) भाग-३, पृ १०८२

श्रमणोपाश्रय मे बैठकर सामायिक किये हुए श्रमणोपासक को लगने वाली क्रिया—

६. [१] समणोवासगस्स ण भते ! समाइयकडस्स समणोवस्सए अच्छमाणस्स तस्स णं भते ! किं ईरियावहिया किरिया कज्जइ ? सपराइया किरिया कज्जति ?

गोतमा ! नो इरियावहिया किरिया कज्जति, संपराइया किरिया कज्जति ।

[६-१ प्र] भगवन् ! श्रमण के उपाश्रय मे बैठे हुए सामायिक किये हुए श्रमणोपासक (निर्ग्रन्थ साधुओ के उपासक=श्रावक) को क्या ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, अथवा साम्परायिकी क्रिया लगती है ?

[६-१ उ] गौतम ! उसे साम्परायिकी क्रिया लगती है, ऐर्यापथिकी क्रिया नही लगती ।

[२] से केणट्ठेण जाव सपराइया० ?

गोयमा ! समणोवासयस्स ण सामाइयकडस्स समणोवस्सए अच्छमाणस्स आया अहिकरणी भवति । आयाहिगरणवत्तिय च ण तस्स नो ईरियावहिया किरिया कज्जति, सपराइया किरिया कज्जति । से तेणट्ठेणं जाव संपराइया० ।

[६-२ प्र] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है ?

[६-२ उ] गौतम ! श्रमणोपाश्रय मे बैठे हुए सामायिक किये हुए श्रमणोपासक की आत्मा अधिकरणी (कषाय के साधन से युक्त) होती है । जिसकी आत्मा अधिकरण का निमित्त होती है, उसे ऐर्यापथिकी क्रिया नही लगती, किन्तु साम्परायिकी क्रिया लगती है । हे गौतम ! इसी कारण से (कहा गया है कि उसे) यावत् साम्परायिकी क्रिया लगती है ।

विवेचन—श्रमणोपाश्रय मे बैठे हुए सामायिक किये हुए श्रमणोपासक को लगने वाली क्रिया—प्रस्तुत सूत्र मे श्रमणोपाश्रयासीन सामायिकधारी श्रमणोपासक को साम्परायिक क्रिया लगने की सयुक्तिक प्ररूपणा की गई है ।

साम्परायिक क्रिया लगने का कारण—जो व्यक्ति सामायिक करके श्रमणोपाश्रय मे नही बैठा हुआ है, उसे तो साम्परायिक क्रिया लग सकती है, किन्तु इसके विपरीत जो सामायिक करके श्रमणोपाश्रय मे बैठा है, उसे ऐर्यापथिक क्रिया न लग कर साम्परायिक क्रिया लगने का कारण है, उक्त श्रावक मे कषाय का सद्भाव । जब तक आत्मा मे कषाय रहेगा, तब तक तन्निमित्तक साम्परायिक क्रिया लगेगी, क्योकि साम्परायिक क्रिया कषाय के कारण लगती है ।

आया अहिकरणी भवति—उसका आत्मा=जीव अधिकरण—हल, शकट आदि, कषाय के आश्रयभूत अधिकरण वाला है ।[1]

श्रमणोपासक के व्रत-प्रत्याख्यान मे अतिचार लगने की शंका का समाधान—

७ समणोवासगस्स ण भते ! पुव्वामेव तसपाणसमारंभे पच्चक्खाते भवति, पुढविसमारंभे

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २८९

अपच्चक्खाते भवति, से य पुढविं खणमाणे अन्नयर तस पाणं विहिंसेज्जा, से ण भते ! त वत अतिचरति ?

णो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु से तस्स अतिवाताए आउट्टति ।

[७ प्र] भगवन् ! जिस श्रमणोपासक ने पहले से ही त्रस-प्राणियो के समारम्भ (हनन) का प्रत्याख्यान कर लिया हो, किन्तु पृथ्वीकाय के समारम्भ (वध) का प्रत्याख्यान नही किया हो, उस श्रमणोपासक से पृथ्वी खोदते हुए किसी त्रसजीव की हिंसा हो जाए, तो भगवन् ! क्या उसके व्रत (त्रसजीववध-प्रत्याख्यान) का उल्लघन होता है ?

[७ उ] गौतम ! यह अर्थ (बात) समर्थ (शक्य) नही, क्योकि वह (श्रमणोपासक) त्रस-जीव के अतिपात (वध) के लिए प्रवृत्त नही होता ।

८ समणोवासगस्स णं भते ! पुव्वामेव वणस्सतिसमारभे पच्चक्खाते, से य पुढविं खणमाणे अन्नयरस्स रुक्खस्स मूलं छिंदेज्जा, से ण भ ते ! त वत अतिचरति ?

णो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु से तस्स अतिवाताए आउट्टति ।

[८ प्र] भगवन् ! जिस श्रमणोपासक ने पहले से ही वनस्पति के समारम्भ का प्रत्याख्यान किया हो,) (किन्तु पृथ्वी के समारम्भ का प्रत्याख्यान न किया हो,) पृथ्वी को खोदते हुए (उसके हाथ से) किसी वृक्ष का मूल छिन्न हो (कट) जाए, तो भगवन् ! क्या उसका व्रत भग होता है ?

[८ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है, क्योकि वह श्रमणोपासक उस (वनस्पति) के अतिपात (वध) के लिए प्रवृत्त नही होता ।

विवेचन—श्रमणोपासक के व्रतप्रत्याख्यान में दोष लगने की शका का समाधान—प्रस्तुत सूत्र-द्वय मे त्रसजीवो या वनस्पतिकायिक जीवो की हिंसा का त्याग किये हुए व्यक्तियो को पृथ्वी खोदते समय किसी त्रस जीव का या वनस्पतिकाय का हनन हो जाने से स्वीकृत व्रतप्रत्याख्यान मे अतिचार लगने का निषेध प्रतिपादित किया गया है ।

अहिंसाव्रत मे अतिचार नहीं लगता—त्रसजीववध का या वनस्पतिकायिक-जीववध का प्रत्याख्यान किये हुए श्रमणोपासक से यदि पृथ्वी खोदते समय किसी त्रसजीव की हिंसा हो जाए अथवा किसी वृक्ष की जड कट जाए तो उसके द्वारा गृहीत व्रत-प्रत्याख्यान मे दोष नही लगता, क्योकि सामान्यत देशविरति श्रावक के सकल्पपूर्वक आरम्भी हिंसा का त्याग होता है, इसलिए जिन जीवो की हिंसा का उसने प्रत्याख्यान किया है, उन जीवो की सकल्पपूर्वक हिंसा करने मे जब तक वह प्रवृत्त नही होता, तव तक उसका व्रतभग नही होता ।[1]

श्रमण या माहन को आहार द्वारा प्रतिलाभित करने वाले श्रमणोपासक को लाभ—

९ समणोवासए ण भ ते ! तहारूव समण वा माहण वा फासुएण एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेण पडिलाभेमाणे किं लभति ?

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २८९

गोयमा ! समणोवासए णं तहारूवं समण वा माहण वा जाव पडिलामेमाणे तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा समाहिं उप्पाएति, समाहिकारए णं तमेव समाहिं पडिलभति ।

[९ प्र] भगवन् ! तथारूप (उत्तम) श्रमण और माहन को प्रासुक (अचित्त), एषणीय (भिक्षा मे लगने वाले दोषो से रहित) अशन, पान, खादिम और स्वादिम (चतुर्विध आहार) द्वारा प्रतिलाभित करते (बहराते—विधिपूर्वक देते) हुए श्रमणोपासक को क्या लाभ होता है ?

[९ उ] गौतम ! तथारूप श्रमण या माहन को यावत् प्रतिलाभित करता हुआ श्रमणोपासक, तथारूप श्रमण या माहन को समाधि उत्पन्न करता है। उन्हे समाधि प्राप्त कराने वाला श्रमणोपासक उसी समाधि को स्वय प्राप्त करता है ।

१० समणोवासए ण भ ते ! तहारूव समण वा माहण वा जाव पडिलामेमाणे किं चयति ?

गोयमा ! जीविय चयति, दुच्चय चयति, दुक्कर करेति, दुल्लभ लभति, बोहिं बुज्झति ततो पच्छा सिज्झति जाव अंत करेति ।

[१० प्र] भगवन् ! तथारूप श्रमण या माहन को यावत् प्रतिलाभित करता हुआ श्रमणोपासक क्या त्याग (या सचय) करता (देता) है ?

[१० उ] गौतम ! वह श्रमणोपासक जीवित (जीवननिर्वाह के कारणभूत जीवितवत् अन्नपानादि द्रव्य) का त्याग करता—(देता) है, दुस्त्यज वस्तु का त्याग करता है, दुष्कर कार्य करता है दुर्लभ वस्तु का लाभ लेता है, बोधि (सम्यग्दर्शन) का बोध प्राप्त (अनुभव) करता है, उसके पश्चात् वह सिद्ध (मुक्त) होता है, यावत् सब दु खो का अन्त करता है ।

विवेचन—श्रमण या माहन को आहार द्वारा प्रतिलाभित करने वाले श्रमणोपासक को लाभ— प्रस्तुत सूत्रद्वय मे श्रमण या माहन को आहार देने वाले श्रमणोपासक को प्राप्त होने वाले लाभ एव विशिष्ट त्याग—सचयलाभ का निरूपण किया गया है ।

चयति क्रिया के विशेष अर्थ—मूलपाठ मे आए हुए 'चयति' क्रिया पद के फलितार्थ के रूप मे शास्त्रकार ने श्रमणोपासक को होने वाले ८ लाभो का निरूपण किया है—

१ अन्नपानी देना—जीवनदान देना है, अत वह जीवन का दान (त्याग) करता है ।
२ जीवित की तरह दुस्त्याज्य अन्नादि द्रव्य का दुष्कर त्याग करता है ।
३ त्याग का अर्थ अपने से दूर करना—विरहित करना भी है । अत जीवित की तरह जीवित को अर्थात् कर्मो की दीर्घ स्थिति को दूर करता—ह्रस्व करता है ।
४ दुष्ट कर्म-द्रव्यो का सचय=दुश्चय है, उसका त्याग करता है ।
५ फिर अपूर्वकरण के द्वारा ग्रन्थिभेदरूप दुष्कर कार्य को करता है ।
६ इसके फलस्वरूप दुर्लभ—अनिवृत्तिकरणरूप दुर्लभ वस्तु को उपलब्ध करता है अर्थात् चय=उपार्जन करता है ।
७ तत्पश्चात् बोधि का लाभ चय=उपार्जन=अनुभव करता है ।

८ तदनन्तर परम्परा से सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होता है, यावत् समस्त कर्मो—दु खो का अन्त (त्याग) कर देता है।[1]

दान विशेष से बोधि और सिद्धि की प्राप्ति—अन्यत्र भी अनुकम्पा, अकामनिर्जरा, बालतप, दानविशेष एव विनय से बोधिगुण प्राप्ति का, तथा कई जीव उसी भव मे सर्वकर्मविमुक्त होकर मुक्त हो जाते हैं, और कई जीव महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर तीसरे भव मे सिद्ध हो जाते है, यह उल्लेख मिलता है।[2]

निःसंगतादि कारणों से कर्मरहित (मुक्त) जीव की (ऊर्ध्व) गति-प्ररूपणा—

११ अत्थि ण भते ! अकम्मस्स गती पण्णायति ?

हंता, अत्थि।

[११ प्र] भगवन् ! क्या कर्मरहित जीव की गति होती (स्वीकृत की जाती) है ?

[११ उ] हाँ गौतम ! अकर्म जीव की गति होती—स्वीकार की जाती—है।

१२ कह ण भंते ! अकम्मस्स गती पण्णायति ?

गोयमा ! निस्संगताए १ निरंगणताए २ गतिपरिणामेण ३ बंधणछेयणताए ४ निरिंधणताए ५ पुव्वपओगेण ६ अकम्मस्स गती पण्णायति।

[१२ प्र] भगवन् ! अकर्म जीव की गति कैसे होती है ?

[१२ उ] गौतम ! नि सगता से, नीरागता (निरजनता) से, गतिपरिणाम से, बन्धन का छेद (विच्छेद) हो जाने से, निरिन्धनता—(कर्मरूपी इन्धन से मुक्ति) होने से, और पूर्वप्रयोग से कर्मरहित जीव की गति होती है।

१३. [१] कह ण भते ! निस्सगताए १ निरगणताए २ गतिपरिणामेण ३ बधणछेयणताए ४ निरिंधणताए ५ पुव्वप्पओगेण ६ अकम्मस्स गती पण्णायति ?

गो० ! से जहानामए केइ पुरिसे सुक्क तु ब निच्छिद्दं निरुवहतं आणुपुव्वीए परिकम्मेमाणे परिकम्मेमाणे दब्भेहि य कुसेहि य वेढेति, वेढित्ता अट्ठहिं मट्टियालेवेहि लिंपति, २ उण्हे दलयति, भूइ भूइ सुक्क समाण अत्थाहमतारमपोरिसियसि उदगसि पक्खिवेज्जा, से नूण गोयमा ! से तु बे तेसिं अट्ठण्ह मट्टियालेवाण गुरुयत्ताए भारियत्ताए सलिलतलमतिवतित्ता अहे धरणितलपतिट्ठाणे भवति ?

हता, भवति। अहे ण से तु बे तेसिं अट्ठण्ह मट्टियालेवाण परिक्खएण धरणितलमतिवतित्ता उप्पि सलिलतलपतिट्ठाणे भवति ?

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २८९

२ 'अणुकपऽकामणिज्जरबालतवे दाण विणए' इत्यादि तथा—
'केई तेणेव भवेण निव्वुया सव्वकम्मओ मुक्का।
केई तइयभवेण सिज्झिस्सति जिणसगासे' ॥१॥ —भगवती अ-वृत्ति प २८९ मे उद्धृत

हता भवति। एव खलु गोयमा! निस्संगताए निरंगणताए गतिपरिणामेणं अकम्मस्स गती पण्णायति।

[१३-१] भगवन्! नि संगता से, नीरागता से, गतिपरिणाम से, बन्धन का छेद होने से, निरिन्धनता से और पूर्वप्रयोग से कर्मरहित जीव की गति कैसे होती है?

[१३-१ उ] गौतम! जैसे, कोई पुरुष एक छिद्ररहित और निरुपहत (बिना फटे-टूटे) सूखे तुम्बे पर क्रमश परिकर्म (संस्कार) करता-करता उस पर डाभ (नारियल की जटा) और कुश लपेटे। उन्हे लपेट कर उस पर आठ बार मिट्टी के लेप लगा दे, फिर उसे (सूखने के लिए) धूप मे रख दे। बार-बार (धूप मे देने से) अत्यन्त सूखे हुए उस तुम्बे को अथाह, अतरणीय (जिस पर तैरा न जा सके), पुरुष-प्रमाण से भी अधिक जल मे डाल दे, तो हे गौतम! वह तुम्बा मिट्टी के उन आठ लेपो से अधिक भारी हो जाने से क्या पानी के उपरितल (ऊपरी सतह) को छोड़ कर नीचे पृथ्वीतल पर (पेंदे मे) जा बैठता है?

(गौतम स्वामी—) हाँ, भगवन्! वह तुम्बा नीचे पृथ्वीतल पर जा बैठता है। (भगवान् ने पुन पूछा—) गौतम! (पानी मे पडा रहने के कारण) आठो ही मिट्टी के लेपो के (गलकर) नष्ट हो (उतर) जाने से क्या वह तुम्बा पृथ्वीतल को छोड कर पानी के उपरितल पर आ जाता है?

(गौतम स्वामी—) हाँ, भगवन्! वह पानी के उपरितल पर आ जाता है। (भगवान्—) हे गौतम! इसी तरह नि संगता (कर्ममल का लेप हट जाने) से, नीरागता से एव गतिपरिणाम से कर्मरहित जीव की भी (ऊर्ध्व) गति होती (जानी या मानी) जाती है।

[२] कहं णं भंते! बंधणछेदणत्ताए अकम्मस्स गती पण्णत्ता?

गोयमा! से जहानामए कलसिंबलिया ति वा, मुग्गसिंबलिया ति वा, माससिंबलिया ति वा, सिंबलिसिंबलिया ति वा, एरंडमिंजिया ति वा उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी फुडित्ताणं एगंतमंतं गच्छइ एव खलु गोयमा!०।

[१३-२ प्र] भगवन्! बन्धन का छेद हो जाने से अकर्मजीव की गति कैसे होती है?

[१३-२ उ] गौतम! जैसे कोई मटर की फली, मूंग की फली, उडद की फली, शिम्बलि—सेम की फली, और एरण्ड के फल (बीज) को धूप मे रख कर सुखाए तो सूख जाने पर वह फटता है और उसमे का बीज उछल कर दूर जा गिरता है, हे गौतम! इसी प्रकार कर्मरूप बन्धन का छेद हो जाने पर कर्मरहित जीव की गति होती है।

[३] कहं णं भंते! निरिंधणताए अकम्मस्स गती०?

गोयमा! से जहानामए धूमस्स इंधणविप्पमुक्कस्स उड्ढं वीससाए निव्वाघातेणं गती पवत्तति एव खलु गोतमा!०।

[१३-३ प्र] भगवन्! इन्धनरहित होने (निरिन्धनता) से कर्मरहित जीव की गति किस प्रकार होती है?

[१३-३ उ] गौतम ! जैसे इन्धन से छूटे (मुक्त) हुए धू ए की गति किसी प्रकार की रुकावट (व्याघात) न हो तो स्वाभाविक रूप से (विश्रसा) ऊर्ध्व (ऊपर की ओर) होती है, इसी प्रकार हे गौतम ! कर्मरूप इन्धन से रहित होने से कर्मरहित जीव की गति (ऊपर की ओर) होती है।

[४] **कह ण भ ते ! पुव्वप्पयोगेण अकम्मस्स गती पण्णत्ता ?**

गोतमा ! से जहानामए कडस्स कोदंडविप्पमुक्कस्स लक्खाभिमुही निव्वाघातेण गती पवत्तति एव खलु गोयमा ! नीसगयाए निरगणयाए पुव्वप्पयोगेणं अकम्मस्स गती पण्णत्ता।

[१३-४ प्र] भगवन् ! पूर्वप्रयोग से कर्मरहित जीव की गति किस प्रकार होती है ?

[१३-४ उ] गौतम ! जैसे—धनुष से छूटे हुए बाण की गति बिना किसी रुकावट के लक्ष्याभिमुखी (निशान की ओर) होती है, इसी प्रकार, हे गौतम ! पूर्वप्रयोग से कर्मरहित जीव की गति होती है।

इसीलिए हे गौतम ! ऐसा कहा गया कि नि सगता से नीरागता से यावत् पूर्वप्रयोग से कर्मरहित जीव की (ऊर्ध्व) गति होती है।

विवेचन—नि सगतादि कारणो से कर्मरहित (मुक्त) जीव की (ऊर्ध्व) गति-प्ररूपणा— प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू ११ से १३ तक) मे असगता आदि हेतुओ से दृष्टान्तपूर्वक कर्मरहित मुक्त जीव की गति की प्ररूपणा की गई है।

अकर्मजीव की गति के छह कारण—(१) निःसगता=निर्लेपता। जैसे तुम्बे पर डाभ और कुश को लपेट कर मिट्टी के आठ गाढे लेप लगाने के कारण जल पर तैरने के स्वभाव वाला तुम्बा भी भारी होने से पानी के तले बैठ जाता है किन्तु मिट्टी के लेप हट जाने पर वह तुम्बा पानी के ऊपरी तल पर आ जाता है, वैसे ही आत्मा कर्मो के लेप से भारी हो जाने से नरकादि अधोगमन करता रहता है, किन्तु कर्मलेप से रहित हो जाने पर स्वत ही ऊर्ध्वगति करता है। **(२) नीरागता**—मोहरहितता। मोह के कारण कर्मयुक्त जीव भारी होने से ऊर्ध्वगति नही कर पाता, मोह सर्वथा दूर होते ही वह कर्मरहित होकर ऊर्ध्वगति करता है। **(३) गतिपरिणाम**—जिस प्रकार तिर्यग्वहन स्वभाव वाले वायु के सम्बन्ध से रहित दीपशिखा स्वभाव से ऊपर की ओर गमन करती है, वैसे ही मुक्त (कर्मरहित) आत्मा भी नानागतिरूप विकार के कारणभूत कर्म का अभाव होने से ऊर्ध्वगति स्वभाव होने से ऊपर की ओर ही गति करता है। **(४) बन्धछेद**—जिस प्रकार बीजकोष के बन्धन के टूटने से एरण्ड आदि के बीज की ऊर्ध्वगति देखी जाती है, वैसे ही मनुष्यादि भव मे बाधे रखने वाले गति-जाति नाम आदि समस्त कर्मो के बन्ध का छेद होने से मुक्त जीव की ऊर्ध्वगति जानी जाती है। **(५) निरिन्धनता**—जैसे इन्धन से रहित होने से धु आ स्वभावत ऊपर की ओर गति करता है, वैसे ही कर्मरूप इन्धन से रहित होने से अकर्म जीव की स्वभावत ऊर्ध्वगति होती है। **(६) पूर्वप्रयोग**—मूल मे धनुष से छूटे हुए बाण की निराबाध लक्ष्याभिमुख गति का दृष्टान्त दिया गया है। दूसरा दृष्टान्त यह भी है—जैसे कुम्हार के प्रयोग से किया गया हाथ, दण्ड और चक्र के सयोगपूर्वक जो चाक घूमता है, वह चाक उस प्रयत्न (प्रयोग) के बन्द होने पर भी पूर्वप्रयोगवश सस्कारक्षय होने तक घूमता है, इसी प्रकार ससारस्थित आत्मा ने मोक्ष प्राप्ति के लिए जो अनेक

बार प्रणिधान किया है, उसका अभाव होने पर भी उसके आवेशपूर्वक मुक्त (कर्मरहित) जीव का गमन निश्चित होता है।[1]

दु:खी को दु:ख की स्पृष्टता आदि सिद्धान्तों की प्ररूपणा—

१४ दुक्खी भंते ! दुक्खेण फुडे ? अदुक्खी दुक्खेण फुडे ?

गोयमा ! दुक्खी दुक्खेणं फुडे, नो अदुक्खी दुक्खेण फुडे ।

[१४ प्र] भगवन् ! क्या दु खी जीव दु ख से स्पृष्ट (वद्ध या व्याप्त) होता है अथवा अदु खी जीव दु ख से स्पृष्ट होता है ?

[१४ उ] गौतम ! दु खी जीव ही दु ख से स्पृष्ट होता है, किन्तु अदु खी (दु.खरहित) जीव दु ख से स्पृष्ट नही होता ।

१५. [१] दुक्खी भंते ! नेरतिए दुक्खेण फुडे ? अदुक्खी नेरतिए दुक्खेण फुडे ?

गोयमा ! दुक्खी नेरतिए दुक्खेण फुडे, नो अदुक्खी नेरतिए दुक्खेण फुडे ।

[१४-१ प्र] भगवन् ! क्या दु खी नैरयिक दु ख से स्पृष्ट होता है या अदु:खी नैरयिक दु ख से स्पृष्ट होता है ?

[१५-१ उ] गौतम ! दु खी नैरयिक ही दु ख से स्पृष्ट होता है, अदु खी नैरयिक दु ख से स्पृष्ट नही होता ।

[२] एव दंडओ जाव वेमाणियाणं ।

[१५-२] इसी तरह वैमानिक पर्यन्त चौबीस ही दण्डको मे कहना चाहिए ।

[३] एवं पच दडगा नेयव्वा—दुक्खी दुक्खेणं फुडे १ दुक्खी दुक्ख परियादियति २ दुक्खी दुक्खं उदीरेति ३ दुक्खी दुक्ख वेदेति ४ दुक्खी दुक्ख निज्जरेति ५ ।

[१५-३] इसी प्रकार के पाच दण्डक (आलापक) कहने चाहिए यथा—(१) दु खी दु ख से स्पृष्ट होता है, (२) दु.खी दु ख का परिग्रहण करता है, (३) दु खी दु ख की उदीरणा करता है, (४) दु खी दु ख का वेदन करता है और (५) दु खी दु ख की निर्जरा करता है ।

विवेचन—दु खी को दु ख की स्पृष्टता आदि सिद्धान्तो की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्रद्वय मे दु खी जीव ही दु ख का स्पर्श, ग्रहण, उदीरण, वेदन और निर्जरण करता है, अदु खी नही, इस सिद्धान्त की मीमासा की गई है ।

दु खी और अदु खी की मीमासा—यहाँ दु ख के कारणभूत कर्म को दु ख कहा गया है । इस दृष्टि से कर्मवान् जीव को दु खी और अकर्मवान् (सिद्ध भगवान्) को अदु खी कहा गया है । अत जो दु खी (कर्मयुक्त) है, वही दु ख (कर्म) से स्पृष्ट-बद्ध होता है, वही दु ख (कर्म) को ग्रहण (निधत्त)

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २९०, (ख) तत्त्वार्थभाष्य, अ १०, सू ६ पृ २२८-२२९
(ग) 'पूर्वप्रयोगादसगत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च तद्गति । तत्वार्थ-सर्वार्थसिद्धि, अ १०, सू ६

करता है, दु ख (कर्म) की उदीरणा करता है, वेदन भी करता है। और वह (कर्मवान्) स्वय ही स्व-दु ख (कर्म) की निर्जरा करता है। अत अकर्मवान् (अदु खी-सिद्ध) मे ये ५ बाते नही होती।[1]

उपयोगरहित गमनादि प्रवृत्ति करने वाले अनगार को साम्परायिकी क्रिया लगने का सयुक्तिक निरूपण—

१६ [१] अणगारस्स ण भ ते ! अणाउत्तं गच्छमाणस्स वा, चिट्ठमाणस्स वा, निसीयमाणस्स वा, तुयट्टमाणस्स वा; अणाउत्त वत्थं पडिग्गहं कबल पादपुंछणं गेण्हमाणस्स वा, निक्खिवमाणस्स वा, तस्स ण भ ते ! किं इरियावहिया किरिया कज्जति ? संपराइया किरिया कज्जति ?

गो० ! नो ईरियावहिया किरिया कज्जति, संपराइया किरिया कज्जति ।

[१६-१ प्र] भगवन् ! उपयोगरहित (अनायुक्त) गमन करते हुए, खडे होते (ठहरते) हुए, बैठते हुए, या सोते (करवट बदलते) हुए, और इसी प्रकार बिना उपयोग के वस्त्र, पात्र, कम्बल और पादप्रोछन (प्रमार्जनिका या रजोहरण) ग्रहण करते (उठाते) हुए या रखते हुए अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है अथवा साम्परायिकी क्रिया लगती है ?

[१६-१ उ,] गौतम ! ऐसे (पूर्वोक्त) अनगार को ऐर्यापथिक क्रिया नही लगती, साम्परायिक क्रिया लगती है।

[२] से केट्ठे ण० ?

गोयमा ! जस्स ण कोह-माण-माया-लोभा वोच्छिन्ना भवति तस्स ण इरियावहिया किरिया कज्जति, नो सपराइया किरिया कज्जति। जस्स ण कोह-माण-माया-लोभा अवोच्छिन्ना भवति तस्स ण सपराइया किरिया कज्जति, नो इरियावहिया। अहासुत्तं रिय रीयमाणस्स इरियावहिया किरिया कज्जति। उस्सुत्तं रीयमाणस्स सपराइया किरिया कज्जति, से ण उस्सुत्तमेव रियति। से तेणट्ठे ण०।

[१६-२ प्र.] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है ?

[१६-२ उ] गौतम ! जिस जीव के क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न (अनुदित उदयावस्थारहित) हो गए, उसी को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, उसे साम्परायिकी क्रिया नही लगती। किन्तु जिस जीव के क्रोध, मान, माया और लोभ, (ये चारो) व्युच्छिन्न (अनुदित) नही हुए, उसको साम्परायिकी क्रिया लगती है, ऐर्यापथिकी क्रिया नही लगती। सूत्र (आगम) के अनुसार प्रवृत्ति करने वाले अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है और उत्सूत्र प्रवृत्ति करने वाले अनगार को साम्परायिकी क्रिया लगती है। उपयोगरहित गमनादि प्रवृत्ति करने वाला अनगार, सूत्रविरुद्ध प्रवृत्ति करता है। हे गौतम ! इस कारण से कहा गया है कि उसे साम्परायिकी क्रिया लगती है।

विवेचन—उपयोगरहित गमनादि-प्रवृत्ति करने वाले अनगार को साम्परायिकी क्रिया लगने का सयुक्तिक निरूपण—प्रस्तुत १६ वें सूत्र मे उपयोगशून्य होकर गमानादि क्रिया करने वाले अनगार को ऐर्यापिथिकी नही, साम्परायिकी क्रिया लगती है, इसका युक्तिपूर्वक निरूपण किया गया है।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २९१

'वोच्छिन्ना' शब्द का तात्पर्य—मूलपाठ मे जो 'वोच्छिन्ना' शब्द है, उसके 'अनुदित' और 'क्षीण' ये दोनो अर्थ युक्तिसगत लगते है, क्योकि ऐर्यापथिकी क्रिया ११वे, १२वे और १३वे गुणस्थान मे पाई जाती है, और १२वे, १३वें गुणस्थान मे कषाय का सर्वथा क्षय हो जाता है। जबकि ११वे गुणस्थान मे कषाय का क्षय नही होकर उसका उपशम होता है, अर्थात्—कषाय उदयावस्था मे नही रहता। इस दृष्टि से 'वोच्छिन्न' शब्द के यहाँ 'क्षीण और अनुदित' दोनो अर्थ लेने चाहिए।[1]

'अहासुत्त' और 'उस्सुत्त' का तात्पर्यार्थ—'अहासुत्त का सामान्य अर्थ है—'सूत्रानुसार', परन्तु यहाँ ऐर्यापथिक क्रिया की दृष्टि से विचार करते समय 'अहासुत्त' का अर्थ होगा—यथाख्यात चारित्र-पालन की विधि के सूत्रो (नियमो) के अनुसार क्योकि ११वे से १३वे गुणस्थानवर्ती यथाख्यातचारित्री को ही ऐर्यापथिक क्रिया लगती है। इसलिए यथाख्यातचारित्री अनगार ही 'अहासुत्त' प्रवृत्ति करने वाले कहे जा सकते है। १०वें गुणस्थान तक के अनगार सूक्ष्मसम्परायी (सकषायी) होने के कारण अहासुत्त (यथाख्यात-क्षायिक चारित्रानुसार) प्रवृत्ति नही करते, इसलिए उन्हे क्षयोपशम जन्य चरित्र के अनुसार कषायभावयुक्त प्रवृत्ति करने के कारण साम्परायिक क्रिया लगती है। अत यहाँ[2] 'उत्सूत्र' का अर्थ श्रुतविरुद्ध प्रवृत्ति करना नही, अपितु, यथाख्यात चारित्र के विरुद्ध प्रवृत्ति करना होता है।

अंगारादि दोष से युक्त और मुक्त, तथा क्षेत्रातिकान्तादि दोषयुक्त एवं शस्त्रातीतादि-युक्त पान-भोजन का अर्थ—

१७ अह भते ! सइंगालस्स सधूमस्स सजोयणादोसदुट्ठस्स पाणभोयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

गोयमा ! जे णं निग्गथे वा निग्गथी वा फासुएसणिज्ज असण-पाण-खाइम-साइम पडिगाहित्ता मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववन्ने आहारं आहारेति एस ण गोयमा ! सइगाले पाण-भोयणे। जे ण निग्गथे वा निग्गथी वा फासुएसणिज्जं असण-पाण-खाइम-साइम पडिगाहित्ता महयाअप्पत्तियं कोह-किलाम करेमाणे आहारमाहारेति एस ण गोयमा ! सधूमे पाणभोयणे। जे ण निग्गथे वा २ जाव पडिग्गाहित्ता गुणुप्पायणहेतु अन्नदव्वेणं सद्धि संजोएत्ता आहारमाहारेति एस ण गोयमा ! सजोयणा-दोसदुट्ठे पाण-भोयणे। एस ण गोतमा ! सइगालस्स सधूमस्स संजोयणादोसदुट्ठस्स पाण-भोयणस्स अट्ठे पण्णत्ते।

[१७ प्र] भगवन् ! अगारदोष, धूमदोष और सयोजनादोष से दूषित पान-भोजन (आहार-पानी) का क्या अर्थ कहा गया है ?

[१७ उ] गौतम ! जो निर्ग्रन्थ (साधु) अथवा निर्ग्रन्थी (साध्वी) प्रासुक और एषणीय अशन-पान-खादिम-स्वादिमरूप आहार ग्रहण करके उसमे मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित और आसक्त (अध्युपपन्न=मोह मे एकाग्रचित्त) होकर आहार करते हैं, हे गौतम ! यह अगार दोष से दूषित आहार-पानी कहलाता है। जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी प्रासुक और एषणीय अशन-पान-खादिम-स्वादिम रूप आहार ग्रहण करके, उसके प्रति अत्यन्त अप्रीतिपूर्वक, क्रोध से खिन्नता करते हुए आहार

---

१ भगवतीसूत्र (हिन्दीविवेचन) भाग-३, पृ १०९५

२ श्रीभगवती उपक्रम, पृष्ठ ५९

करते हैं, तो हे गौतम ! यह धूम-दोष से दूषित आहार-पानी कहलाता है। जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी प्रासुक यावत् आहार ग्रहण करके गुण (स्वाद) उत्पन्न करने हेतु दूसरे पदार्थों के साथ सयोग करके आहार-पानी करते हैं, हे गौतम ! वह आहारपानी सयोजनादोष से दूषित कहलाता है। हे गौतम ! यह अगारदोष, धूमदोष और सयोजनादोष से दूषित पानभोजन का अर्थ कहा गया है।

१८ अह भंते ! वीतिंगालस्स वीयधूमस्स सजोयणादोसविप्पमुक्कस्स पाण-भोयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

गोयमा ! जे णं णिग्गथे वा २ जाव पडिगाहेत्ता अमुच्छिते जाव आहारेति एस ण गोयमा ! वीतिंगाले पाण-भोयणे। जे ण निग्गंथे वा २ जाव पडिगाहेत्ता णो महताअप्पत्तिय जाव आहारेति, एस णं गोयमा ! वीतधूमे पाण-भोयणे। जे ण निग्गथे वा २ जाव पडिगाहेत्ता जहा लद्ध तहा आहार आहारेति एस ण गोतमा ! सजोयणादोसविप्पमुक्के पाण-भोयणे। एस ण गोतमा ! वीतिंगालस्स वीतधूमस्स सजोयणादोसविप्पमुक्कस्स पाण-भोयणस्स अट्ठे पण्णत्ते।

[१८ उ] भगवन् ! अगारदोष, धूमदोष और सयोजनादोष, इन तीन दोषो से मुक्त (रहित) पानभोजन का क्या अर्थ कहा गया है ?

[१८ उ] गौतम ! जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी प्रासुक और एषणीय अशन-पान-खादिम-स्वादिमरूप चतुर्विध आहार को ग्रहण करके मूर्च्छारहित यावत् आसक्तिरहित होकर आहार करते है, हे गौतम ! यह अगारदोषरहित पान-भोजन कहलाता है। जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी यावत् अशनादि को ग्रहण करके अत्यन्त अप्रीतिपूर्वक यावत् आहार नही करता है, हे गौतम ! यह धूम दोषरहित पानभोजन है। जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी यावत् अशनादि को ग्रहण करके, जैसा मिला है, वैसा ही आहार कर लेते है, (स्वादिष्ट बनाने के लिए उसमे दूसरे पदार्थों का सयोग नही करते,) तो हे गौतम ! यह सयोजनादोषरहित पान-भोजन कहलाता है। हे गौतम ! यह अगारदोष-रहित, धूमदोषरहित एव सयोजनादोषविमुक्त पान-भोजन का अर्थ कहा गया है।

१९ अह भते ! खेत्तातिक्कतस्स कालातिक्कतस्स मग्गातिक्कंतस्स पमाणातिक्कंतस्स पाण-भोयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

गोयमा ! जे णं निग्गथे वा निग्गथी वा फासुएसणिज्ज असण-पाण-खाइम-साइम अणुग्गते सूरिए पडिग्गाहित्ता उग्गते सूरिए आहार आहारेति एस ण गोतमा ! खेत्तातिक्कते पाण-भोयणे। जे ण निग्गथे वा २ जाव० साइम पढमाए पोरिसीए पडिगाहेत्ता पच्छिम पोरिसिं उवायणावेत्ता आहार आहारेति एस ण गोयमा ! कालातिक्कते पाण-भोयणे। जे ण निग्गंथे वा २ जाव० सातिम पडिगाहित्ता पर अद्धजोयणमेराए वीतिक्कमावेत्ता आहारमाहारेति एस ण गोयमा ! मग्गातिक्कते पाण-भोयणे। जे ण निग्गथे वा निग्गथी वा फासुएसणिज्ज जाव सातिम पडिगाहित्ता पर बत्तीसाए कुक्कुडिअडगप्पमाणमेत्ताणं कवलाण आहारमाहारेति एस ण गोतमा ! पमाणातिक्कते पाण-भोयणे। अट्ठकुक्कुडिअडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारमाहारेमाणे अप्पाहारे, दुवालसकुक्कुडिअडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारमाहारेमाणे अवड्ढोमोयरिया, सोलसकुक्कुडिअडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारमाहारेमाणे दुभागप्पत्ते,

चउव्वीस कुक्कुडिअंडगप्पमाणमेत्ते जाव आहारमाहारेमाणे ओमोदरिया, बत्तीस कुक्कुडिअंडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारमाहारेमाणे पमाणपत्ते, एत्तो एक्केण वि गासेण ऊणगं आहारमाहारेमाणे समणे निग्गथे नो पकामरसभोई इति वत्तव्व सिया। एस ण गोयमा! खेत्तातिक्कतस्स कालातिक्कतस्स मग्गातिक्कतस्स पमाणातिक्कंतस्स पाण-भोयणस्स अट्ठे पण्णत्ते।

[१९ प्र] भगवन्! क्षेत्रातिक्रान्त, कालातिक्रान्त, मार्गातिक्रान्त और प्रमाणातिक्रान्त पान-भोजन का क्या अर्थ है?

[१९ उ] गौतम! जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी, प्रासुक और एषणीय अशन-पान-खादिम-स्वादिमरूप चतुर्विध आहार को सूर्योदय से पूर्व ग्रहण करके सूर्योदय के पश्चात् उस आहार को करते है, तो हे गौतम! यह क्षेत्रातिक्रान्त पान-भोजन कहलाता है। जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी यावत् चतुर्विध आहार को प्रथम प्रहर (पौरुषी) मे ग्रहण करके अन्तिम प्रहर (पौरुषी) तक रख कर सेवन करते हैं, तो हे गौतम! यह कालातिक्रान्त पान-भोजन कहलाता है। जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी यावत् चतुर्विध आहार को ग्रहण करके आधे योजन (दो कोस) की मर्यादा (सीमा) का उल्लघन करके खाते हैं, तो हे गौतम! यह मार्गातिक्रान्त पान-भोजन कहलाता है। जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी प्रासुक एव एषणीय यावत् आहार को ग्रहण करके कुक्कुटीअण्डक (मुर्गी के अडे के) प्रमाण बत्तीस कवल (कौर या ग्रास) की मात्रा से अधिक (उपरान्त) आहार करता है, तो हे गौतम! यह प्रमाणातिक्रान्त पान-भोजन कहलाता है।

कुक्कुटी-अण्डकप्रमाण आठ कवल की मात्रा मे आहार करने वाला साधु 'अल्पाहारी' कहलाता है। कुक्कुटी-अण्डकप्रमाण बारह कवल की मात्रा मे आहार करने वाला साधु अपार्द्ध अवमोदरिका (किंचित् न्यून अर्ध ऊनोदरी) वाला होता है। कुक्कुटी-अण्डकप्रमाण सोलह कवल की मात्रा मे आहार करने वाला साधु द्विभागप्राप्त आहार वाला (अर्धाहारी) कहलाता है। कुक्कुटी-अण्डकप्रमाण चौबीस कवल की मात्रा मे आहार करने वाला साधु ऊनोदरिका वाला होता है। कुक्कुटी-अण्डकप्रमाण बत्तीस कवल की मात्रा मे आहार करने वाला साधु प्रमाणप्राप्त (प्रमाणोपेत) आहारी कहलाता है। इस (बत्तीस कवल) से एक भी ग्रास कम आहार करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ 'प्रकामरसभोजी' (अत्यधिक मधुरादिरसभोक्ता) नही है, यह कहा जा सकता है। हे गौतम! यह क्षेत्रातिक्रान्त, कालातिक्रान्त, मार्गातिक्रान्त और प्रमाणातिक्रान्त पान-भोजन का अर्थ कहा गया है।

२० अह भते! सत्थातीतस्स सत्थपरिणामितस्स एसियस्स वेसियस्स सामुदाणियस्स पाण-भोयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

गोयमा! जे ण निग्गथे वा निग्गथी वा निक्खित्तसत्थमुसले ववगतमाला-वण्णगविलेवणे ववगतचुय-चइय-चत्तदेहं जीवविप्पजढ अकयमकारियमसकप्पियमणाहूतमकीतकडमणुद्दिट्ठं नवकोडीपरिसुद्ध दसदोसविप्पमुक्क उग्गम-उप्पायणेसणासुपरिसुद्ध वीतिगाल वीतधूम सजोयणादोसविप्पमुक्क असुरसुर अचवचव अदुतमविलबित अपरिसाडि अक्खोव-जण-वणाणुलेवणभूत सयमजातामायावत्तिय सजमभारवहणट्ठयाए बिलमिव पन्नगभूएण अप्पाणेण आहारमाहारेति, एस ण गोतमा! सत्थातीतस्स सत्थपरिणामितस्स जाव पाण-भोयणस्स अट्ठे पन्नत्ते।

सेव भंते ! सेव भंते ! त्ति० ।

।। सत्तम सए : पढमो उद्देसो समत्तो ।।

[२० प्र] भगवन् ! शस्त्रातीत, शस्त्रपरिणामित, एषित, व्येषित, सामुदायिक भिक्षारूप पान-भोजन का क्या अर्थ कहा गया है ?

[२० उ] गौतम ! जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी शस्त्र और मूसलादि का त्याग किये हुए हैं, पुष्प-माला और चन्दनादि (वर्णक) के विलेपन से रहित हैं, वे यदि उस आहार को करते है, जो (भोज्य वस्तु मे पैदा होने वाले) कृमि आदि जन्तुओ से रहित, जीवच्युत और जीवविमुक्त (प्रासुक), है, जो साधु के लिए नही बनाया गया है, न बनवाया गया है, जो असकल्पित (आधाकर्मादि दोष रहित) है, अनाहूत (आमत्रणरहित) है, अक्रीतकृत (नही खरीदा हुआ) है, अनुद्दिष्ट (औद्देशिक दोष से रहित) है, नवकोटिविशुद्ध है, (शकित आदि) दस दोषो से विमुक्त है, उद्गम (१६ उद्गम-दोष) और उत्पादना (१६ उत्पादन) सम्बन्धी एषणा दोषो से रहित सुपरिशुद्ध है, अगारदोषरहित है, धूमदोषरहित है, सयोजनादोषरहित है । तथा जो सुरसुर और चपचप शब्द से रहित, बहुत शीघ्रता और अत्यन्त विलम्ब से रहित, आहार का लेशमात्र भी छोडे बिना, नीचे न गिराते हुए, गाडी की धुरी के अजन अथवा घाव पर लगाए जाने वाले लेप (मल्हम) की तरह केवल सयमयात्रा के निर्वाह के लिए और सयम-भार को वहन करने के लिए, जिस प्रकार सर्प बिल मे (सीधा) प्रवेश करता है, उसी प्रकार जो आहार करते हैं, तो हे गौतम ! वह शस्त्रातीत, शस्त्रपरिणामित यावत् पान भोजन का अर्थ है ।

'हे भगवन् ! यह इस प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', (यो कह कर यावत् गौतम-स्वामी विचरते है ।

विवेचन—अगारादि दोष से युक्त और मुक्त, तथा क्षेत्रातिक्रान्तादि दोषयुक्त एव शस्त्रातीतादियुक्त पान-भोजन का अर्थ—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू १७ से २० तक) मे अगार, धूम और सयोजनादोष से युक्त तथा मुक्त पान-भोजन का क्षेत्र, काल, मार्ग, और प्रमाण को अतिक्रान्त पान-भोजन का एव शस्त्रातीतादि पानभोजन का अर्थ प्ररूपित किया गया है ।

अगारादि दोषो का स्वरूप—साधु के द्वारा गवेषणैषणा और ग्रहणैषणा से लाए हुए निर्दोष आहार को साधुओ के मण्डल (माडले) मे बैठकर सेवन करते समय ये दोष लगते है, इसलिए इन्हे ग्रासैषणा (माडला या मडल) के पाच दोष कहते है । वे इस प्रकार है—(१) **अगार**—सरस स्वादिष्ट आहार मे आसक्त एव मुग्ध होकर आहार की या दाता की प्रशसा करते हुए खाना । इस प्रकार आहार पर मूर्च्छा रूप अग्नि से सयम रूप ईन्धन कोयले (अगार) की तरह दूषित हो जाता है । (२) **धूम**—नीरस या अमनोज्ञ आहार करते हुए आहार या दाता की निन्दा करना । (३) **सयोजना**—स्वादिष्ट एव रोचक बनाने के लिए रसलोलुपतावश एक द्रव्य के साथ दूसरे द्रव्यो को मिलाना । (४) **अप्रमाण**– शास्त्रोक्तप्रमाण से अधिक आहार करना और (५) **अकारण**—साधु के लिए ६ कारणो से आहार करने और ६ कारणो से छोडने का विधान है, किन्तु उक्त कारणो के विना केवल वलवीर्यवृद्धि के लिए आहार करना । इन ५ दोषो मे से १७-१८वें सूत्रो मे अगार, धूम और

सयोजना दोषो से युक्त और रहित की व्याख्या की गई है। शेष दो १९ और २०वे सूत्र मे प्रमाणातिक्रान्त और सयमयात्रार्थ तथा सयमभारवहनार्थ के रूप मे गतार्थ कर दिया है।[1]

क्षेत्रातिक्रान्त का भावार्थ—यहाँ क्षेत्र का अर्थ सूर्यसम्बन्धी तापक्षेत्र अर्थात्—दिन है, इसका अतिक्रमण करना क्षेत्रातिक्रान्त है।

कुक्कुटी-अण्डप्रमाण का तात्पर्य—आहार का प्रमाण बताने के लिए 'कुक्कुटी-अण्डकप्रमाण' शब्द दिया दिया है। इसके दो अर्थ होते है—(१) कुक्कुटी के अडे के जितने प्रमाण का एक कवल, तथा (२) जीवरूपी पक्षी के लिए आश्रयरूप होने से यह गदी अशुचिप्राय काया 'कुकुटी' है, इस कुकुटी के उदरपूरक पर्याप्त आहार को कुकुटी-अण्डकप्रमाण कहते है।[2]

शस्त्रातीतादि की शब्दश व्याख्या—**शस्त्रातीत**=अग्नि आदि शस्त्र से उत्तीर्ण, **सत्थपरिणामित**=शस्त्रो से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श अन्यरूप मे परिणत किया हुआ, अर्थात्—अचित्त किया हुआ। **एसियस्स**=एषणीय—गवेषणा आदि से गवेषित। **वेसियस्स**=विशेष या विविध प्रकार से गवेषणा, ग्रहणैषणा एव ग्रासैषणा से विशोधित अथवा वैषिक अर्थात् मुनिवेष-मात्र देखने से प्राप्त। **सामुदाणियस्स**=गृहसमुदायो से उत्पादनादोष से रहित भिक्षाजीविता।

नवकोटिविशुद्ध का अर्थ—(१) किसी जीव की हिसा न करना, (२) न कराना, (३) न ही अनुमोदन करना, (४) स्वय न पकाना, (५) दूसरो से न पकवाना, (६) पकानेवालो का अनुमोदन न करना, (७) स्वय न खरीदना, (८) दूसरो से न खरीदवाना, और (९) खरीदनेवाले का अनुमोदन न करना। इन दोषो से रहित आहारादि नवकोटिविशुद्ध कहलाते है।[3]

उद्गम, उत्पादना और एषणा के दोष—शास्त्र मे आधाकर्म आदि १६ उद्गम के, धात्री, दूती आदि १६ उत्पादना के, एव शकित आदि १० एषणा के दोष बताए है। उनमे से प्रथम वर्ग के दोष दाता से, द्वितीय वर्ग के साधु से और तृतीय वर्ग के दोनो से लगते है।[4] □□

॥ सप्तक शतक : प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति पत्राक २९२, (ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ३, पृ १०९८

२ भगवती, अ वृत्ति, पत्राक २९२

३ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्राक २९३ (ख) भगवती हिन्दी विवेचन पृ ११०३

४ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्राक २९४ (ख) पिण्डनिर्युक्ति, प्रवचनसारोद्धार आदि ग्रन्थ।

ीओ उद्देसओ : 'िरति'

द्वितीय उद्देशक : विरति

सुप्रत्याख्यानी और दुष्प्रत्याख्यानी का स्वरूप—

१ [१] से नूण भते ! सव्वपाणेहिं सव्वभूतेहिं सव्वजीवेहिं सव्वसत्तेहिं 'पच्चक्खाय' इति वदमाणस्स सुपच्चक्खाय भवति ? दुपच्चक्खाय भवति ?

गोतमा ! सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं 'पच्चक्खाय' इति वदमाणस्स सिय सुपच्चक्खात भवति, सिय दुपच्चक्खातं भवति ।

[१-१ प्र] हे भगवन् ! 'मैंने सर्व प्राण, सर्व भूत, सर्व जीव, और सभी सत्त्वो की हिंसा का प्रत्याख्यान किया है', इस प्रकार कहने वाले के सुप्रत्याख्यान होता है या दुष्प्रत्याख्यान होता है ?

[१-१ उ] गौतम ! 'मैंने सभी प्राण यावत् सभी सत्त्वो की हिंसा का प्रत्याख्यान किया है,' इस प्रकार कहने वाले के कदाचित् सुप्रत्याख्यान होता है और कदाचित् दुष्प्रत्याख्यान होता है ।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ 'सव्वपाणेहिं जाव सिय दुपच्चक्खात भवति ?'

गोतमा ! जस्स ण सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं 'पच्चक्खाय' इति वदमाणस्स णो एव अभिसमन्नागत भवति 'इमे जीवा, इमे अजीवा, इमे तसा, इमे थावरा' तस्स ण सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं 'पच्चक्खाय' इति वदमाणस्स नो सुपच्चक्खाय भवति, दुपच्चक्खाय भवति । एव खलु से दुपच्चक्खाई सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं 'पच्चक्खाय' इति वदमाणो नो सच्चं भास भासति, मोस भास भासइ, एव खलु से मुसावाती सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं तिविह तिविहेण असजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे सकिरिए असवुडे एगतदडे एगंतबाले यावि भवति । जस्स ण सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं 'पच्चक्खाय' इति वदमाणस्स एव अभिसमन्नागतं भवति 'इमे जीवा, इमे अजीवा, इमे तसा, इमे थावरा' तस्स ण सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं 'पच्चक्खाय' इति वदमाणस्स सुपच्चक्खाय भवति, नो दुपच्चक्खाय भवति । एव खलु से सुपच्चक्खाई सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं 'पच्चक्खाय' इति वयमाणे सच्च भास भासति, नो मोस भास भासति, एव खलु से सच्चवादी सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं तिविह तिविहेण सजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे अकिरिए सवुडे [एगतअदडे] एगतपडिते यावि भवति । से तेणट्ठेण गोयमा ! एवं वुच्चइ जाव सिय दुपच्चक्खाय भवति ।

[१-२ प्र] भगवन् ! ऐसा क्यो कहा जाता है कि सभी प्राण यावत् सभी सत्त्वो की हिंसा का प्रत्याख्यान—उच्चारण करने वाले के कदाचित् सुप्रत्याख्यान और कदाचित् दुष्प्रत्याख्यान होता है ?

[१-उ] गौतम ! 'मैंने समस्त प्राण यावत् सर्व सत्त्वो की हिंसा का प्रत्याख्यान किया है,' इस प्रकार कहने वाले जिस पुरुष को इस प्रकार (यह) अभिसमन्वागत (ज्ञात=अवगत) नही होता कि 'ये जीव है, ये अजीव है, ये त्रस है, ये स्थावर है', उस पुरुष का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान नही होता, किन्तु दुष्प्रत्याख्यान होता है। साथ ही, 'मैंने सभी प्राण यावत् सभी सत्त्वो की हिंसा का प्रत्याख्यान किया है,' इस प्रकार कहने वाला वह दुष्प्रत्याख्यानी पुरुष सत्यभाषा नही बोलता, किन्तु मृषाभाषा बोलता है। इस प्रकार वह मृषावादी सर्व प्राण यावत् समस्त सत्त्वो के प्रति तीन करण, तीन योग से असयत (सयमरहित), अविरत (हिंसादि से अनिवृत्त या विरतिरहित), पापकर्म से अप्रतिहत(नही रुका हुआ) और पापकर्म का अप्रत्याख्यानी (जिसने पापकर्म का प्रत्याख्यान—त्याग नही किया है), (कायिकी आदि) क्रियाओ से युक्त (सक्रिय), असंवृत (सवररहित), एकान्तदण्ड (हिंसा) कारक एव एकान्तबाल (अज्ञानी) है।

'मैंने सर्व प्राण यावत् सर्व सत्त्वो की हिंसा का प्रत्याख्यान किया है,' यो कहने वाले जिस पुरुष को यह ज्ञात होता है कि 'ये जीव है, ये अजीव हैं, ये त्रस है, और ये स्थावर हैं,' उस (सर्व प्राण, यावत् सर्व सत्त्वो की हिंसा का मैंने त्याग किया है, यो कहने वाले) पुरुष का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान है, किन्तु दुष्प्रत्याख्यान नही है। 'मैने सर्व प्राण यावत् सर्व सत्त्वो की हिंसा का प्रत्याख्यान किया है,' इस प्रकार कहता हुआ वह सुप्रत्याख्यानी सत्यभाषा बोलता है, मृषाभाषा नही बोलता। इस प्रकार वह सुप्रत्याख्यानी सत्यभाषी, सर्व प्राण यावत् सत्त्वो के प्रति तीन करण, तीन योग से संयत, विरत है। (अतीतकालीन) पापकर्मो को (पश्चात्ताप-आत्मनिन्दा से) उसने प्रतिहत (घात) कर (या रोक) दिया है, (अनागत पापो को) प्रत्याख्यान से त्याग दिया है, वह अक्रिय (कर्मबन्ध की कारणभूत क्रियाओ से रहित) है, सवृत (आस्रवद्वारो को रोकने वाला, सवरयुक्त) है, (एकान्त अदण्डरूप है) और एकान्त पण्डित है। इसीलिए, हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि यावत् कदाचित् सुप्रत्याख्यान होता है और कदाचित् दुष्प्रत्याख्यान होता है।

विवेचन—सुप्रत्याख्यानी और दुष्प्रत्याख्यानी का स्वरूप—प्रस्तुत सूत्र मे सुप्रत्याख्यानी और दुष्प्रत्याख्यानी का रहस्य बताया गया है। **सुप्रत्याख्यान और दुष्प्रत्याख्यान का रहस्य**—किसी व्यक्ति के केवल मुह से ऐसा बोलने मात्र से ही प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान नही हो जाता कि 'मैंने समस्त प्राणियो की हिंसा का प्रत्याख्यान (त्याग) कर दिया है,' किन्तु इस प्रकार बोलने के साथ-साथ अगर वह भलीभाति जानता है कि 'ये जीव है, ये अजीव हैं, ये त्रस हैं, ये स्थावर हैं' तो उसका प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान है और वह सत्यभाषी, सयत, विरत आदि भी होता है, किन्तु अगर उसे जीवाजीवादि के विषय मे समीचीन ज्ञान नही होता तो केवल प्रत्याख्यान के उच्चारण से वह न तो सुप्रत्याख्यानी होता है, न ही सत्यभाषी, सयत, विरत आदि। इसीलिए दशवैकालिक मे कहा गया है—'**पढमं नाणं, तओ दया**।' ज्ञान के अभाव मे कृत प्रत्याख्यान का यथावत् परिपालन न होने से वह दुष्प्रत्याख्यानी रहता है, सुप्रत्याख्यानी नही होता।[1]

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २९५,

(ख) देखिये, इसके समर्थन मे दशवैकालिक सू, अ ४, गाथा—१० से १३ तक

प्रत्याख्यान के भेद-प्रभेदों का निरूपण—

२. कतिविहे णं भंते ! पच्चक्खाणे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, तं जहा—मूलगुणपच्चक्खाणे य उत्तरगुणपच्चक्खाणे य।

[२ प्र] भगवन् ! प्रत्याख्यान कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२ उ] गौतम ! प्रत्याख्यान दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है—(१) मूलगुण-प्रत्याख्यान और (२) उत्तरगुणप्रत्याख्यान।

३ मूलगुणपच्चक्खाणे ण भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, त जहा—सव्वमूलगुणपच्चक्खाणे य देसमूलगुणपच्चक्खाणे य।

[३ प्र] भगवन् ! मूलगुणप्रत्याख्यान कितने प्रकार का कहा गया है ?

[३ उ] गौतम ! (मूलगुणप्रत्याख्यान) दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—(१) सर्वमूलगुणप्रत्याख्यान और (२) देशमूलगुणप्रत्याख्यान।

४ सव्वमूलगुणपच्चक्खाणे ण भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पचविहे पण्णत्ते, त जहा—सव्वातो पाणातिवातातो वेरमण जाव सव्वातो परिग्गहातो वेरमण।

[४ प्र] भगवन् ! सर्वमूलगुणप्रत्याख्यान कितने प्रकार का कहा गया है ?

[४ उ] गौतम ! (सर्वमूलगुणप्रत्याख्यान) पाच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है—(१) सर्व-प्राणातिपात से विरमण, (२) सर्व-मृषावाद से विरमण, (३) सर्व-अदत्तादान से विरमण, (४) सर्व-मैथुन से विरमण और (५) सर्व-परिग्रह से विरमण।

५ देसमूलगुणपच्चक्खाणे ण भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पचविहे पण्णत्ते, त जहा—थूलातो पाणातिवातातो वेरमण जाव थूलातो परिग्गहातो वेरमण।

[५ प्र] भगवन् ! देशमूलगुणप्रत्याख्यान कितने प्रकार का कहा गया है ?

[५ उ] गौतम ! (देशमूलगुणप्रत्याख्यान) पाच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—स्थूल प्राणातिपात से विरमण यावत् स्थूल परिग्रह से विरमण।

६ उत्तरगुणपच्चक्खाणे ण भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं०—सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणे य, देसुत्तरगुणपच्चक्खाणे य।

[६ उ] भगवन् ! उत्तरगुणप्रत्याख्यान कितने प्रकार का कहा गया है ?

[६ उ] गौतम ! (उत्तरगुणप्रत्याख्यान) दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—(१) सर्व-उत्तरगुणप्रत्याख्यान और (२) देश-उत्तरगुणप्रत्याख्यान।

७ सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणे ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दसविहे पण्णत्ते, त जहा—

अणागत १ अतिक्कत २ कोडीसहित ३ नियटिय ४ चेव ।

सागारमणागारं ५-६ परिमाणकड ७ निरवसेस ८ ।।१।।

साकेयं ९ चेव अद्धाए १०, पच्चक्खाण भवे दसहा ।

[७ प्र] भगवन् ! सर्व-उत्तरगुणप्रत्याख्यान कितने प्रकार का कहा गया है ?

[७ उ] गौतम ! सर्व-उत्तरगुणप्रत्याख्यान दस प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार—(१) अनागत, (२) अतिक्रान्त, (३) कोटिसहित, (४) नियत्रित, (५) साकार (सागार), (६) अनाकार (अनागार), (७) परिमाणकृत, (८) निरवशेष, (९) सकेत और (१०) अद्धाप्रत्याख्यान । इस प्रकार (सर्वोत्तरगुण-) प्रत्याख्यान दस प्रकार का होता है ।

८ देसुत्तरगुणपच्चक्खाणे ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! सत्तविहे पण्णत्ते, त जहा—दिसिव्वय १ उवभोग-परीभोगपरिमाण २ अणत्थदड-वेरमण ३ सामाइय ४ देसावगासियं ५ पोसहोववासो ६ अतिहिसविभागो ७ अपच्छिममारणतिय-सलेहणा भूसणाऽऽराहणता ।

[८ प्र] भगवन् ! देश-उत्तरगुणप्रत्याख्यान कितने प्रकार का कहा गया है ?

[८ उ] गौतम ! (देश-उत्तरगुणप्रत्याख्यान) सात प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार—(१) दिग्व्रत (दिशापरिमाणव्रत), (२) उपभोग-परिभोगपरिणाम, (३) अनर्थदण्डविरमण, (४) सामायिक, (५) देशावकाशिक, (६) पौषधोपवास, और (७) अतिथि-सविभाग तथा अपश्चिम मारणान्तिक-सलेखना-जोषणा-आराधना ।

विवेचन—प्रत्याख्यान के भेद-प्रभेदो का निरूपण—प्रस्तुत सात सूत्रो (सू २ से ८ तक) मे प्रत्याख्यान के मूल और उत्तर भेदो-प्रभेदो का निरूपण किया गया है ।

परिभाषाएँ—चारित्ररूप कल्पवृक्ष के मूल के समान प्राणातिपातविरमण आदि 'मूलगुण' कहलाते है, मूलगुणविषयक प्रत्याख्यान (त्याग-विरति) **'मूलगुणप्रत्याख्यान'** कहलाता है । वृक्ष की शाखा के समान मूलगुणो की अपेक्षा, जो उत्तररूप गुण हो, वे 'उत्तरगुण' कहलाते हैं, और तद्-विषयक प्रत्याख्यान **'उत्तरगुण-प्रत्याख्यान'** कहलाता है । सर्वथा मूलगुणप्रत्याख्यान **'सर्वमूलगुण-प्रत्याख्यान'** और देशत (अशत) मूलगुणप्रत्याख्यान **'देशमूलगुणप्रत्याख्यान'** कहलाता है । सर्व-विरत मुनियो के सर्वमूलगुणप्रत्याख्यान और देशविरत श्रावको के देशमूलगुणप्रत्याख्यान होता है ।[1]

दशविध सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यान का स्वरूप—(१) **अनागत**—भविष्य मे जो तप, नियम या प्रत्याख्यान करना है, उसमे भविष्य मे बाधा पडती देखकर उसे पहले ही कर लेना । (२) **अतिक्रान्त**—

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २९६।९

पहले जिस तप, नियम, व्रत-प्रत्याख्यान को करना था, उसमे गुरु, तपस्वी, एव रुग्ण की सेवा आदि कारणो से बाधा पडने के कारण उस तप, व्रत-प्रत्याख्यान आदि को बाद मे करना, (३) **कोटिसहित**—जहाँ एक प्रत्याख्यान की समाप्ति तथा दूसरे प्रत्याख्यान की आदि एक ही दिन मे हो जाए। जैसे—उपवास के पारणे मे आयम्बिल आदि तप करना। (४) **नियन्त्रित**—जिस दिन जिस प्रत्याख्यान को करने का निश्चय किया है, उस दिन रोगादि बाधाओ के आने पर भी, उसे नही छोडना, नियमपूर्वक करना। (५) **साकार (सागार)**—जिस प्रत्याख्यान मे कुछ आगार (छूट या अपवाद) रखा जाय। उन आगारो मे से किसी आगार के उपस्थित होने पर त्यागी हुई वस्तु के त्याग का काल पूरा होने से पहले ही उसे सेवन कर लेने पर भी प्रत्याख्यान-भग नही होता। जैसा—नवकारसी, पौरसी आदि। (६) **अनाकार (अनागार)**—जिस प्रत्याख्यान मे 'महत्तरागार' आदि कोई आगार न हो। 'अनाभोग' और 'सहसाकार' तो उसमे होते ही हैं। (७) **परिमाणकृत**—दत्ति, कवल (ग्रास), घर, भिक्षा या भोज्यद्रव्यो की मर्यादा करना। (८) **निरवशेष**—अशन, पान, खादिम और स्वादिम, इन चारो प्रकार के आहार का सर्वथा प्रत्याख्यान—त्याग करना। (९) **सकेतप्रत्याख्यान**—अगूठा, मुट्ठी, गाठ आदि किसी भी वस्तु के सकेत को लेकर किया जाने वाला प्रत्याख्यान। (१०) **अद्धा-प्रत्याख्यान**—अद्धा अर्थात् काल विशेष को नियत करके जो प्रत्याख्यान किया जाता है।[1] जैसे—पोरिसी, दो पोरिसी, मास, अर्द्धमास आदि। **सप्तविध देशोत्तरगुणप्रत्याख्यान का स्वरूप**—(१) **दिग्व्रत**—पूर्वादि छहो दिशाओ की गमनमर्यादा करना, नियमित दिशा से आगे आस्रव-सेवन का त्याग करना। (२) **उपभोग-परिभोगपरिमाणव्रत**—उपभोग्य (एक बार भोगने योग्य-भोजनादि) और परिभोग्य (बार-बार भोगे जाने योग्य वस्त्रादि) वस्तुओ (२६ बोलो) की मर्यादा करना। (३) **अनर्थदण्डविरमणव्रत**—अपध्यान, प्रमाद, हिंसाकारीशस्त्रप्रदान, पापकर्मोपदेश, आदि निरर्थक-निष्प्रयोजन हिंसादिजनक कार्य अनर्थदण्ड हैं, उनसे निवृत्त होना। (४) **सामायिकव्रत**—सावद्य व्यापार (प्रवृत्ति) एव आर्त्त-रौद्रध्यान को त्याग कर धर्मध्यान मे तथा समभाव मे मनोवृत्ति या आत्मा को लगाना। एक सामायिक की मर्यादा एक मुहूर्त्त की है। सामायिक मे बत्तीस दोषो से दूर रहना चाहिए। (५) **देशावकाशिकव्रत**—दिग्व्रत मे जो दिशाओ की मर्यादा का तथा पहले के स्वीकृत सभी व्रतो की मर्यादा का दैनिक सकोच करना, मर्यादा के उपरान्त क्षेत्र मे आस्रवसेवन न करना, मर्यादितक्षेत्र मे जितने द्रव्यो की मर्यादा की है, उसके उपरान्त सेवन न करना। (६) **पौषधोपवासव्रत**—एक दिन-रात (आठ पहर तक) चतुर्विध आहार, मैथुन, स्नान, शृगार आदि का तथा समस्त सावद्य व्यापार का त्याग करके धर्मध्यान मे लीन रहना, पौषध के अठारह दोषो का त्याग करना। (७) **अतिथिसविभागव्रत**—उत्कृष्ट अतिथि महाव्रती साधुओ को उनके लिए कल्पनीय अशनादि चतुर्विध आहार, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोछन, पीठ (चौकी), फलक (पट्टा), शय्या, सस्तारक, औषध, भैषज, ये १४ प्रकार की वस्तुएँ निष्कामबुद्धिपूर्वक आत्मकल्याण की भावना से देना, दान का सयोग न मिलने पर भी भावना रखना, तथा मध्यम एव जघन्य अतिथि को भी देना।[2]

दिग्व्रत आदि तीन को गुणव्रत और सामायिक आदि ४ व्रतो को शिक्षाव्रत भी कहते है।

---

१ देखिये, इन दस प्रत्याख्यानो के लक्षण को सूचित करने वाली गाथाएँ—भगवती अ वृत्ति, पृ २९६, २९७

२ (क) उपासकदशाग अ. वृत्ति, (ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा-३, पृ १११८ से ११२० तक

अपश्चिम-मारणान्तिक-सल्लेखना-जोषणा-आराधनता की व्याख्या—यद्यपि प्राणियो का आवीचिमरण प्रतिक्षण होता है, परन्तु यहाँ उस मरण की विवक्षा नही की गई है, किन्तु समग्र आयु की समाप्तिरूप मरण की विवक्षा है। अपश्चिम अर्थात् जिसके पीछे कोई सल्लेखनादि कार्य करना शेष नही, ऐसी अन्तिम मारणान्तिक (आयुष्यसमाप्ति के अन्त—मरणकाल मे) की जाने वाली शरीर और कषाय आदि को कृश करने वाली तपस्याविशेष 'अपश्चिम-मारणान्तिक सल्लेखना' है। उसकी जोषणा—स्वीकार करने की आराधना अखण्डकाल (आयु समाप्ति) तक करना अपश्चिम-मारणान्तिक-सल्लेखना-जोषणा-आराधना है। यहाँ दिग्व्रतादि सात गुण अवश्य देशोत्तर-गुणरूप है, किन्तु सल्लेखना के लिए नियम नही है, क्योकि यह देशोत्तरगुणवाले के लिए देशोत्तर-गुणरूप और सर्वोत्तरगुण वाले के लिए सर्वोत्तरगुणरूप है। तथापि देशोत्तरगुणवाले को भी अन्तिम समय मे यह अवश्यकरणीय है, यह सूचित करने के लिए देशोत्तरगुण के साथ इसका कथन किया गया है।[1]

जीव और चौबीस दण्डकों में मूलगुण-उत्तरगुणप्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी-वक्तव्यता—

९. जीवा ण भंते ! किं मूलगुणपच्चक्खाणी, उत्तरगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी ?

गोयमा ! जीवा मूलगुणपच्चक्खाणी वि, उत्तरगुणपच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि।

[९ प्र] भगवन् ! क्या जीव, मूलगुणप्रत्याख्यानी है, उत्तरगुणप्रत्याख्यानी है, अथवा अप्रत्याख्यानी है ?

[९ उ] गौतम ! जीव (समुच्चयरूप मे) मूलगुणप्रत्याख्यानी भी है, उत्तरगुणप्रत्याख्यानी भी है और अप्रत्याख्यानी भी है।

१०. नेरइया ण भंते ! किं मूलगुणपच्चक्खाणी० ? पुच्छा।

गोतमा ! नेरइया नो मूलगुणपच्चक्खाणी, नो उत्तरगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी।

[१० प्र] भगवन् ! क्या नैरयिकजीव, मूलगुणप्रत्याख्यानी है, उत्तरगुणप्रत्याख्यानी है या अप्रत्याख्यानी है ?

[१० उ] गौतम ! नैरयिक जीव, न तो मूलगुणप्रत्याख्यानी है, और न उत्तरगुणप्रत्याख्यानी हैं, किन्तु अप्रत्याख्यानी है।

११ एवं जाव चउरिंदिया।

[११ प्र] इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवो पर्यन्त कहना चाहिए।

१२ पचेंदियतिरिक्खजोणिया मणुस्सा य जहा जीवा (सु. ९)।

[१२] पचेन्द्रियतिर्यञ्चो और मनुष्यो के विषय मे (समुच्चय-औधिक) जीवो की तरह कहना चाहिए।

१३. वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणिया जहा नेरइया (सु १०)।

---

1 भगवती अ वृत्ति, पत्राक २९७

[१३] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के सम्बन्ध मे नैरयिक जीवो की तरह कथन करना चाहिए।—ये सब अप्रत्याख्यानी है।

विवेचन—जीव और चौबीस दण्डको में मूलगुण-उत्तरगुणप्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी-वक्तव्यता—प्रस्तुत ५ सूत्रो (९ से १३ तक) मे समुच्चयजीवो तथा नैरयिको से ले कर वैमानिक तक के जीवो मे मूलगुणप्रत्याख्यानी, उत्तरगुणप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी के अस्तित्व की पृच्छा करके उसका समाधान किया गया है।

निष्कर्ष—नैरयिको, पचस्थावरो, तीन विकलेन्द्रिय जीवो, तथा वाणव्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिको मे मूलगुणप्रत्याख्यानी या उत्तरगुणप्रत्याख्यानी नही होते, वे सर्वथा अप्रत्याख्यानी होते है। तिर्यञ्चपचेन्द्रिय जीवो और मनुष्यो मे तीनो ही विकल्प पाए जाते है। किन्तु तिर्यंचो मे मात्र देशप्रत्याख्यानी ही हो सकते हैं।

मूलोत्तरगुणप्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी जीव, पंचेन्द्रियतिर्यंचो और मनुष्यो मे अल्प-बहुत्व—

१४ एतेसि णं भते ! जीवाण मूलगुणपच्चक्खाणीण जाव अपच्चक्खाणीण य कतरे कतरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा मूलगुणपच्चक्खाणी, उत्तरगुणपच्चक्खाणी असखेज्जगुणा, अपच्च-क्खाणी अणतगुणा।

[१४ प्र] भगवन् ! मूलगुणप्रत्याख्यानी, उत्तरगुणप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी, इन जीवो मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

[१४ उ] गौतम ! सबसे थोडे जीव मूलगुणप्रत्याख्यानी हैं, (उनसे) उत्तरगुणप्रत्याख्यानी असख्येय गुणा हैं, और (उनसे) अप्रत्याख्यानी अनन्तगुणा है।

१५. एतेसि ण भ ते ! पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं० पुच्छा।

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा पंचेंदियतिरिक्खजोणिया मूलगुणपच्चक्खाणी, उत्तरगुणपच्च-क्खाणी असखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी असखिज्जगुणा।

[१५ प्र] भगवन् ! इन मूलगुणप्रत्याख्यानी आदि (पूर्वोक्त) जीवो मे पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिक जीव कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

[१५ उ] गौतम ! मूलगुणप्रत्याख्यानी पचेन्द्रियतिर्यञ्च जीव सबसे थोडे है, उनसे उत्तरगुण-प्रत्याख्यानी असख्यगुणा है, और उनसे अप्रत्याख्यानी असख्यगुणा है।

१६ एतेसि ण भ ते ! मणुस्साणं मूलगुणपच्चक्खाणीण० पुच्छा।

गोयमा ! सव्वथोवा मणुस्सा मूलगुणपच्चक्खाणी, उत्तरगुणपच्चक्खाणी सखेज्जगुणा, अपच्च-क्खाणी असखेज्जगुणा।

[१६ प्र] भगवन् ! इन मूलगुणप्रत्याख्यानी आदि जीवो मे मनुष्य कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

[१६ उ] गौतम ! मूलगुणप्रत्याख्यानी मनुष्य सबसे थोडे है, उनसे उत्तरगुणप्रत्याख्यानी सख्यातगुणा हैं और उनसे अप्रत्याख्यानी मनुष्य असख्यातगुणा है ।

विवेचन—मूलगुण—उत्तरगुणप्रत्याख्यानी एवं अप्रत्याख्यानी जीवो, पंचेन्द्रिय तिर्यंचो और मनुष्यो मे अल्पबहुत्व की प्ररूपणा—प्रस्तुत तीन सूत्रो (१४ से १६ तक) मे मूलगुणप्रत्याख्यानी आदि समुच्चयजीवो, तिर्यंचपचेन्द्रियो और मनुष्यो मे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक का विचार किया गया है ।

निष्कर्ष—अप्रत्याख्यानी ही सबसे अधिक है, समुच्चय जीवो मे वे अनन्तगुणे है, तिर्यञ्च पचेन्द्रियो और मनुष्यो मे असख्यातगुणे हैं ।

सर्वतः और देशतः मूलोत्तरगुणप्रत्याख्यानी तथा अप्रत्याख्यानी का जीवों तथा चौबीस-दण्डकों में अस्तित्व तथा अल्पबहुत्व—

१७ जीवा ण भते ! किं सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी ? देशमूलगुणपच्चक्खाणी ? अपच्चक्खाणी ?

गोयमा ! जीवा सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी, देसमूलगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी वि ।

[१७ प्र] भगवन् ! क्या जीव, सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी है, देशमूलगुणप्रत्याख्यानी है या अप्रत्याख्यानी है ?

[१७ उ] गौतम ! जीव (समुच्चय मे), सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी भी है, देशमूलगुण-प्रत्याख्यानी भी है और अप्रत्याख्यानी भी हैं ।

१८ नेरइयाण पुच्छा । गोयमा ! नेरतिया नो सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी, नो देसमूलगुण-पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी ।

[१८ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीवो के विषय मे भी यही प्रश्न है ।

[१८ उ] गौतम ! नैरयिक जीव, न तो सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी है, और न ही देशमूलगुण प्रत्याख्यानी है, वे अप्रत्याख्यानी है ।

१९. एवं जाव चउरिंदिया ।

[१९] इसी तरह यावत् चतुरिन्द्रियपर्यन्त कहना चाहिए ।

२०. पचेंदियतिरिक्खपुच्छा ।

गोयमा ! पचेंदियतिरिक्खा नो सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी, देसमूलगुणपच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि ।

[२० प्र] पंचेन्द्रियतिर्यञ्चजीवो के विषय मे भी यही प्रश्न है ।

[२० उ] गौतम ! पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी नही है, देशमूलगुण-प्रत्याख्यानी है और अप्रत्याख्यानी भी है ।

२१. मणुस्सा जहा जीवा ।

[२१] मनुष्यो के विषय मे (औधिक) जीवो की तरह कथन करना चाहिए ।

२२ वाणमतर-जोतिस-वेमाणिया जहा नेरइया ।

[२२] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के विषय मे नैरयिको की तरह कहना चाहिए ।

२३. एतेसि ण भ ते ! जीवाण सव्वमूलगुणपच्चक्खाणीण देसमूलगुणपच्चक्खाणीण अपच्च-क्खाणीण य कतरे कतरेहितो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी । एव अप्पाबहुगाणि तिण्णि वि जहा **पढमिल्लए दडए (सु. १४-१६), नवर सव्वत्थोवा पचेंदियतिरिक्खजोणिया देसमूलगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी असखेज्जगुणा ।**

[२३ प्र] भगवन् ! इन सर्वमूलप्रत्याख्यानी, देशमूलप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी जीवो मे कौन किन से अल्प, अधिक, तुल्य और विशेषाधिक है ?

[२३ उ] गौतम ! सबसे थोडे सर्वमूलप्रत्याख्यानी जीव है, उनसे असख्यातगुणे देशमूल-प्रत्याख्यानी जीव है, और अप्रत्याख्यानी जीव उनसे अनन्तगुणे है । इसी प्रकार तीनो—औधिक जीवो, पचेन्द्रियतिर्यचो और मनुष्यो—का अल्प-बहुत्व प्रथम दण्डक मे कहे अनुसार कहना चाहिए, किन्तु इतना विशेष है कि देशमूलगुणप्रत्याख्यानी पचेन्द्रियतिर्यञ्च सबसे थोडे है और अप्रत्याख्यानी पचेन्द्रियतिर्यच उनसे असख्येय-गुणे है ।

२४ जीवा ण भते ! किं सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणी ? देसुत्तरगुणपच्चक्खाणी ? अपच्चक्खाणी ?

गोयमा ! जीवा सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणी वि, तिण्णि वि ।

[२४ प्र] भगवन् ! जीव क्या सर्व-उत्तरगुणप्रत्याख्यानी है, देश-उत्तरगुणप्रत्याख्यानी है अथवा अप्रत्याख्यानी है ?

[२४ उ] गौतम ! जीव सर्व-उत्तरगुणप्रत्याख्यानी भी है, देश-उत्तरगुणप्रत्याख्यानी भी है और अप्रत्याख्यानी भी है । (अर्थात्—) तीनो प्रकार के है ।

२५ पचेंदियतिरिक्खजोणिया मणुस्सा य एव चेव ।

[२५] पचेन्द्रियतिर्यञ्चो और मनुष्यो का कथन भी इसी तरह करना चाहिए ।

२६. सेसा अपच्चक्खाणी जाव वेमाणिया ।

[२६] वैमानिकपर्यन्त शेष सभी जीव अप्रत्याख्यानी है ।

२७ एतेसि णं भंते ! जीवाण सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणी०, अप्पाबहुगाणि ।

तिण्णि वि जहा पढमे दंडए (सु १४-१६) जाव मणूसाण ।

[२७ प्र] भगवन् ! इन सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानी, देशोत्तरगुणप्रत्याख्यानी एव अप्रत्याख्यानी जीवो मे से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

[२७ उ] गौतम ! इन तीनो का अल्पबहुत्व प्रथम दण्डक (सू १४-१६) मे कहे अनुसार यावत् मनुष्यो तक जान लेना चाहिए ।

विवेचन—सर्वत और देशत मूलोत्तरगुणप्रत्याख्यानी तथा अप्रत्याख्यानी जीवो का तथा चौबीस दण्डको मे अस्तित्व एवं अल्पबहुत्व—प्रस्तुत ११ सूत्रो (सू १७ से २७ तक) मे सर्वत देशत मूलोत्तरगुणप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी समुच्चय जीवो तथा चौबीसदण्डकवर्ती जीवो के अस्तित्व एव अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की गई है ।

निष्कर्ष—सर्वमूलगुणप्रत्याख्यान केवल मनुष्य मे ही होता है, देशमूलगुणप्रत्याख्यानी मनुष्य और पचेन्द्रिय तिर्यंच दोनो ही हो सकते है, तथा शेष सभी जीव अप्रत्याख्यानी होते है । मनुष्य और तिर्यंच पचेन्द्रिय कदाचित् अप्रत्याख्यानी भी होते है । सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानी तथा देशोत्तरगुणप्रत्याख्यानी मनुष्य और तिर्यंच पचेन्द्रिय हो सकते है । शेष सभी जीव अप्रत्याख्यानी हैं । अत सबसे थोडे सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी हैं, उनसे अधिक देशमूलगुणप्रत्याख्यानी जीव है, और सबसे अधिक अप्रत्याख्यानी हैं ।[1]

जीवो और चौबीस दण्डको में संयत आदि तथा प्रत्याख्यानी आदि के अस्तित्व एवं अल्पबहुत्व की प्ररूपणा—

२८ जीवा ण भंते ! किं संजता ? असंजता ? संजतासंजता ?

गोयमा ! जीवा संजया वि०, तिण्णि वि, एव जहेव पण्णवणाए तहेव भाणियव्व जाव वेमाणिया । अप्पाबहुगं तहेव (सु. १४-१६) तिण्ह वि भाणियव्व ।

[२८ प्र] भगवन् ! क्या जीव सयत है, असयत है, अथवा सयतासयत है ?

[२८ उ] गौतम ! जीव सयत भी है, असयत भी है और सयतासयत भी है । इस तरह प्रज्ञापना सूत्र ३२वे पद मे कहे अनुसार यावत् वैमानिकपर्यन्त कहना चाहिए और अल्पबहुत्व भी तीनो का पूर्ववत् (सू १४ से १६ तक मे उक्त) कहना चाहिए ।

२९ जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणी ? अपच्चक्खाणी ? पच्चक्खाणापच्चक्खाणी ?

गोतमा ! जीवा पच्चक्खाणी वि, एव तिण्णि वि ।

[२९ प्र] भगवन् ! क्या जीव प्रत्याख्यानी है, अप्रत्याख्यानी हैं, अथवा प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी है ?

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ २८१ से २८३ तक

[२० उ.] गौतम ! पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी नही है, देशमूलगुण-प्रत्याख्यानी है और अप्रत्याख्यानी भी है।

२१. मणुस्सा जहा जीवा।

[२१] मनुष्यो के विषय मे (औधिक) जीवो की तरह कथन करना चाहिए।

२२ वाणमंतर-जोतिस-वेमाणिया जहा नेरइया।

[२२] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के विषय मे नैरयिको की तरह कहना चाहिए।

२३. एतेसि ण भंते ! जीवाण सव्वमूलगुणपच्चक्खाणीणं देसमूलगुणपच्चक्खाणीण अपच्च-क्खाणीण य कतरे कतरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी। एवं अप्पाबहुगाणि तिण्णि वि जहा पढमिल्लए दंडए (सु. १४-१६), नवरं सव्वत्थोवा पचेंदियतिरिक्खजोणिया देसमूलगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी असखेज्जगुणा।

[२३ प्र] भगवन् ! इन सर्वमूलप्रत्याख्यानी, देशमूलप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी जीवो मे कौन किन से अल्प, अधिक, तुल्य और विशेषाधिक है ?

[२३ उ] गौतम ! सबसे थोडे सर्वमूलप्रत्याख्यानी जीव है, उनसे असख्यातगुणे देशमूल-प्रत्याख्यानी जीव हैं, और अप्रत्याख्यानी जीव उनसे अनन्तगुणे है। इसी प्रकार तीनो—औधिक जीवो, पचेन्द्रियतिर्यंचो और मनुष्यो—का अल्प-बहुत्व प्रथम दण्डक मे कहे अनुसार कहना चाहिए, किन्तु इतना विशेष है कि देशमूलगुणप्रत्याख्यानी पचेन्द्रियतिर्यञ्च सबसे थोडे हैं और अप्रत्याख्यानी पचेन्द्रियतिर्यंच उनसे असख्येय-गुणे हैं।

२४ जीवा ण भंते ! किं सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणी ? देसुत्तरगुणपच्चक्खाणी ? अपच्चक्खाणी ?

गोयमा ! जीवा सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणी वि, तिण्णि वि।

[२४ प्र] भगवन् ! जीव क्या सर्व-उत्तरगुणप्रत्याख्यानी है, देश-उत्तरगुणप्रत्याख्यानी है अथवा अप्रत्याख्यानी है ?

[२४ उ] गौतम ! जीव सर्व-उत्तरगुणप्रत्याख्यानी भी हैं, देश-उत्तरगुणप्रत्याख्यानी भी है और अप्रत्याख्यानी भी हैं। (अर्थात्—) तीनो प्रकार के है।

२५ पचेंदियतिरिक्खजोणिया मणुस्सा य एवं चेव।

[२५] पचेन्द्रियतिर्यञ्चो और मनुष्यो का कथन भी इसी तरह करना चाहिए।

२६. सेसा अपच्चक्खाणी जाव वेमाणिया।

[२६] वैमानिकपर्यन्त शेष सभी जीव अप्रत्याख्यानी है।

२७ एतेसि णं भंते ! जीवाणं सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणी०, अप्पाबहुगाणि।

तिण्णि वि जहा पढमे दडए (सु १४-१६) जाव मणूसाण।

[२७ प्र] भगवन् ! इन सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानी, देशोत्तरगुणप्रत्याख्यानी एव अप्रत्याख्यानी जीवो मे से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

[२७ उ] गौतम ! इन तीनो का अल्पबहुत्व प्रथम दण्डक (सू १४-१६) मे कहे अनुसार यावत् मनुष्यो तक जान लेना चाहिए।

विवेचन—सर्वत और देशत मूलोत्तरगुणप्रत्याख्यानी तथा अप्रत्याख्यानी जीवो का तथा चौबीस दण्डको मे अस्तित्व एव अल्पबहुत्व—प्रस्तुत ११ सूत्रो (सू १७ से २७ तक) मे सर्वत देशत मूलोत्तरगुणप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी समुच्चय जीवो तथा चौवीसदण्डकवर्ती जीवो के अस्तित्व एव अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की गई है।

निष्कर्ष—सर्वमूलगुणप्रत्याख्यान केवल मनुष्य मे ही होता है, देशमूलगुणप्रत्याख्यानी मनुष्य और पचेन्द्रिय तिर्यंच दोनो ही हो सकते है, तथा शेष सभी जीव अप्रत्याख्यानी होते हैं। मनुष्य और तिर्यंच पचेन्द्रिय कदाचित् अप्रत्याख्यानी भी होते है। सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानी तथा देशोत्तरगुणप्रत्याख्यानी मनुष्य और तिर्यंच पचेन्द्रिय हो सकते है। शेष सभी जीव अप्रत्याख्यानी है। अत सबसे थोडे सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी हैं, उनसे अधिक देशमूलगुणप्रत्याख्यानी जीव है, और सबसे अधिक अप्रत्याख्यानी है।[1]

जीवो और चौबीस दण्डको में संयत आदि तथा प्रत्याख्यानी आदि के अस्तित्व एवं अल्पबहुत्व की प्ररूपणा—

२८ जीवा णं भंते ! किं संजता ? असंजता ? संजतासंजता ?

गोयमा ! जीवा संजया वि०, तिण्णि वि, एवं जहेव पण्णवणाए तहेव भाणियव्व जाव वेमाणिया। अप्पाबहुग तहेव (सु. १४-१६) तिण्ह वि भाणियव्व।

[२८ प्र] भगवन् ! क्या जीव सयत हैं, असयत है, अथवा सयतासयत हैं ?

[२८ उ] गौतम ! जीव सयत भी है, असयत भी है और सयतासयत भी है। इस तरह प्रज्ञापना सूत्र ३२वें पद मे कहे अनुसार यावत् वैमानिकपर्यन्त कहना चाहिए और अल्पबहुत्व भी तीनो का पूर्ववत् (सू १४ से १६ तक मे उक्त) कहना चाहिए।

२९ जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणी ? अपच्चक्खाणी ? पच्चक्खाणापच्चक्खाणी ?

गोतमा ! जीवा पच्चक्खाणी वि, एव तिण्णि वि।

[२९ प्र] भगवन् ! क्या जीव प्रत्याख्यानी हैं, अप्रत्याख्यानी हैं, अथवा प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी है ?

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ २८१ से २८३ तक

[२९ उ] गौतम ! जीव प्रत्याख्यानी भी है, अप्रत्याख्यानी भी हैं और प्रत्याख्याना-प्रत्याख्यानी भी हैं। अर्थात् तीनो प्रकार के है।

३० एव मणुस्साण वि।

[३०] इसी प्रकार मनुष्य भी तीनो ही प्रकार के हैं।

३१. पंचिदियतिरिक्खजोणिया आदिल्लविरहिया।

[३१] पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव प्रारम्भ के विकल्प से रहित हैं, (अर्थात् वे प्रत्याख्यानी नही है), किन्तु अप्रत्याख्यानी है या प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी हैं।

३२ सेसा सव्वे अपच्चक्खाणी जाव वेमाणिया।

[३२] शेष सभी जीव यावत् वैमानिक तक अप्रत्याख्यानी है।

३३. एतेसि ण भते ! जीवाण पच्चक्खाणीण जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा पच्चक्खाणी, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी असखेज्जगुणा, अपच्च-क्खाणी अणतगुणा।

[३३ प्र] भगवन् ! इन प्रत्याख्यानी आदि जीवो मे कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है?

[३३ उ] गौतम ! सबसे अल्प जीव प्रत्याख्यानी है, उनसे प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी असख्येयगुणे हैं और उनसे अप्रत्याख्यानी अनन्तगुणे है।

३४. पचेंदियतिरिक्खजोणिया सव्वत्थोवा पच्चक्खाणापच्चक्खाणी अपच्चक्खाणी अ [illegible]ज्जगुणा।

[३४] पचेन्द्रिय तिर्यञ्च जीवो मे प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी जीव सबसे थोडे है, और उनसे असख्यातगुणे अप्रत्याख्यानी हैं।

३५ मणुस्सा सव्वत्थोवा पच्चक्खाणी, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी सखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी असखेज्जगुणा।

[३५] मनुष्यो मे प्रत्याख्यानी मनुष्य सबसे थोडे हैं, उनसे सख्येयगुणे प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी है और उनसे भी असख्येयगुणे अप्रत्याख्यानी है।

विवेचन—संयत आदि तथा प्रत्याख्यानी आदि के जीवो तथा चौवीस दण्डको मे अस्तित्व एव अल्पबहुत्व की प्ररूपणा—प्रस्तुत आठ सूत्रो (सू २८ से ३५ तक) मे जीवो तथा चौवीस दण्डको मे सयत-असयत-सयतासयत तथा प्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी-प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी के अस्तित्व एव अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

जीवों की शाश्वतता-अशाश्वतता का अनेकान्तशैली से निरूपण—

३६. [१] जीवा ण भंते ! किं सासता ? असासता ?

गोयमा ! जीवा सिय सासता, सिय असासता ।

[३६-१ प्र] भगवन् ! क्या जीव शाश्वत है या अशाश्वत है ?

[३६-१ उ] गौतम ! जीव कथचित् शाश्वत है और कथचित् अशाश्वत है ।

[२] **से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ 'जीवा सिय सासता, सिय असासता' ?**

गोतमा ! दव्वट्ठताए सासता, भावट्ठयाए असासता । से तेणट्ठेण गोतमा ! एवं वुच्चइ जाव सिय असासता ।

[३६-२ प्र] भगवन् ! यह किस कारण से कहा जाता है कि जीव कथञ्चित् शाश्वत है, कथञ्चित् अशाश्वत है ?

[३६-२ उ] गौतम ! द्रव्य की दृष्टि से जीव शाश्वत है, और भाव (पर्याय) की दृष्टि से जीव अशाश्वत है । हे गौतम ! इस कारण ऐसा कहा गया है कि जीव कथचित् शाश्वत है, कथचित् अशाश्वत हैं ।

३७. नेरइया ण भंते ! किं सासता ? असासता ?

एव जहा जीवा तहा नेरइया वि ।

[३७ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक जीव शाश्वत हैं या अशाश्वत हैं ?

[३७ उ] जिस प्रकार (औघिक) जीवो का कथन किया था, उसी प्रकार नैरयिको का कथन करना चाहिए ।

३८. एवं जाव वेमाणिया जाव सिय असासता ।

सेव भंते ! सेव भंते ! त्ति० ।

।। सत्तम सए वितिओ उद्देसओ समत्तो ।।

[३८] इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त चौबीस ही दण्डको के विषय मे कथन करना चाहिए कि वे जीव कथञ्चित् शाश्वत हैं, कथञ्चित् अशाश्वत है ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कहकर यावत् गौतम-स्वामी विचरने लगे ।

विवेचन—जीवो की शाश्वतता-अशाश्वतता का अनेकान्तशैली से प्ररूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे जीवो एव चौवीस दण्डको के विषय मे शाश्वतता-अशाश्वतता का विचार स्याद्वादशैली मे प्रस्तुत किया गया है ।

[२९ उ] गौतम ! जीव प्रत्याख्यानी भी है, अप्रत्याख्यानी भी है और प्रत्याख्याना-प्रत्याख्यानी भी है। अर्थात् तीनो प्रकार के है।

३० एव मणुस्साण वि।

[३०] इसी प्रकार मनुष्य भी तीनो ही प्रकार के है।

३१. पंचिंदियतिरिक्खजोणिया आदिल्लविरहिया।

[३१] पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव प्रारम्भ के विकल्प से रहित है, (अर्थात् वे प्रत्याख्यानी नही हैं), किन्तु अप्रत्याख्यानी हैं या प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी है।

३२. सेसा सव्वे अपच्चक्खाणी जाव वेमाणिया।

[३२] शेष सभी जीव यावत् वैमानिक तक अप्रत्याख्यानी है।

३३. एतेसि ण भते ! जीवाण पच्चक्खाणीण जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा पच्चक्खाणी, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी असखेज्जगुणा, अपच्च-क्खाणी अणंतगुणा।

[३३ प्र] भगवन् ! इन प्रत्याख्यानी आदि जीवो मे कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

[३३ उ] गौतम ! सबसे अल्प जीव प्रत्याख्यानी है, उनसे प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी असख्येयगुणे हैं और उनसे अप्रत्याख्यानी अनन्तगुणे हैं।

३४. पचेंदियतिरिक्खजोणिया सव्वत्थोवा पच्चक्खाणापच्चक्खाणी अपच्चक्खाणी अ[illegible]ज्जगुणा।

[३४] पचेन्द्रिय तिर्यञ्च जीवो मे प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी जीव सबसे थोडे है, और उनसे असख्यातगुणे अप्रत्याख्यानी हैं।

३५ मणुस्सा सव्वत्थोवा पच्चक्खाणी, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी सखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी असखेज्जगुणा।

[३५] मनुष्यो मे प्रत्याख्यानी मनुष्य सबसे थोडे है, उनसे सख्येयगुणे प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी है और उनसे भी असख्येयगुणे अप्रत्याख्यानी है।

विवेचन—सयत आदि तथा प्रत्याख्यानी आदि के जीवो तथा चौवीस दण्डको मे अस्तित्व एव अल्पबहुत्व की प्ररूपणा—प्रस्तुत आठ सूत्रो (सू २८ से ३५ तक) मे जीवो तथा चौवीस दण्डको मे सयत-असयत-सयतासयत तथा प्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी-प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी के अस्तित्व एव अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

जीवों की शाश्वतता-अशाश्वतता का अनेकान्तशैली से निरूपण—

३६ [१] जीवा ण भते ! किं सासता ? असासता ?

गोयमा ! जीवा सिय सासता, सिय असासता ।

[३६-१ प्र] भगवन् ! क्या जीव शाश्वत है या अशाश्वत हैं ?

[३६-१ उ] गौतम ! जीव कथचित् शाश्वत है और कथचित् अशाश्वत है ।

[२] से केणट्ठेणं भते ! एव वुच्चइ 'जीवा सिय सासता, सिय असासता' ?

गोतमा ! दव्वट्ठताए सासता, भावट्ठयाए असासता । से तेणट्ठेण गोतमा ! एव वुच्चइ जाव सिय असासता ।

[३६-२ प्र] भगवन् ! यह किस कारण से कहा जाता है कि जीव कथचित् शाश्वत है, कथञ्चित् अशाश्वत है ?

[३६-२ उ] गौतम ! द्रव्य की दृष्टि से जीव शाश्वत है, और भाव (पर्याय) की दृष्टि से जीव अशाश्वत है । हे गौतम ! इस कारण ऐसा कहा गया है कि जीव कथचित् शाश्वत है, कथचित् अशाश्वत हैं ।

३७ नेरइया ण भते ! किं सासता ? असासता ?

एव जहा जीवा तहा नेरइया वि ।

[३७ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक जीव शाश्वत हैं या अशाश्वत हैं ?

[३७ उ] जिस प्रकार (औघिक) जीवो का कथन किया था, उसी प्रकार नैरयिको का कथन करना चाहिए ।

३८. एव जाव वेमाणिया जाव सिय असासता ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति० ।

॥ सत्तम सए . वितिओ उद्देसओ समत्तो ॥

[३८] इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त चौबीस ही दण्डको के विषय मे कथन करना चाहिए कि वे जीव कथञ्चित् शाश्वत है, कथञ्चित् अशाश्वत है ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कहकर यावत् गौतम-स्वामी विचरने लगे ।

विवेचन—जीवो की शाश्वतता-अशाश्वतता का अनेकान्तशैली से प्ररूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे जीवो एव चौवीस दण्डको के विषय मे शाश्वतता-अशाश्वतता का विचार स्याद्वादशैली मे प्रस्तुत किया गया है ।

आशय—द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि से जीव (जीवद्रव्य) शाश्वत है, किन्तु विभिन्न गतियो एव योनियो मे परिभ्रमण करने और विभिन्न पर्याय धारण करने के कारण पर्यायार्थिक-नय की दृष्टि से वह अशाश्वत है।[१]

यद्यपि कोई एक नैरयिक शाश्वत नही है, क्योकि तेतीस सागरोपम से अधिक काल तक कोई भी जीव नैरयिक पर्याय मे नही रहता, किन्तु जगत् नैरयिक जीवो से शून्य कभी नही होता, अतएव सतति की अपेक्षा से उन्हे शाश्वत कहा गया है।

॥ सप्तम शतक . द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

---

६ भगवतीसूत्र अ वृत्ति पत्राक २९९

तइओ उद्देसओ : 'थावर'

तृतीय उद्देशक : 'स्थावर'

वनस्पतिकायिक जीवो के सर्वाल्पाहारकाल एवं सर्वमहाकाल की वक्तव्यता—

१ वणस्सतिकाइया णं भंते ! कं कालं सव्वप्पाहारगा वा सव्वमहाहारगा वा भवंति ?

गोयमा ! पाउस-वरिसारत्तेसु णं एत्थ णं वणस्सतिकाइया सव्वमहाहारगा भवंति, तदाणंतरं च णं सरदे, तयाणंतरं च णं हेमंते, तदाणंतरं च णं वसंते, तदाणंतरं च णं गिम्हे। गिम्हासु णं वणस्सतिकाइया सव्वप्पाहारगा भवंति।

[१ प्र] भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीव किस काल मे सर्वाल्पाहारी (सबसे थोडा आहार करने वाले) होते है और किस काल मे सर्वमहाहारी (सबसे अधिक आहार करने वाले) होते है ?

[१ उ] गौतम ! प्रावृट् (पावस) ऋतु (श्रावण और भाद्रपद मास) मे तथा वर्षा ऋतु (आश्विन और कार्तिक मास) मे वनस्पतिकायिक जीव सर्वमहाहारी होते है। इसके पश्चात् शरद् ऋतु मे, तदनन्तर हेमन्त ऋतु मे, इसके बाद वसन्त ऋतु मे और तत्पश्चात् ग्रीष्म ऋतु मे वनस्पतिकायिक जीव क्रमश अल्पाहारी होते हैं। ग्रीष्म ऋतु मे वे सर्वाल्पाहारी होते है।

२ जति णं भंते ! गिम्हासु वणस्सइकाइया सव्वप्पाहारगा भवंति, कम्हा णं भंते ! गिम्हासु बहवे वणस्सतिकाइया पत्तिया पुप्फिया फलिया हरितगरेरिज्जमाणा सिरीए अतीव अतीव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति ?

गोयमा ! गिम्हासु णं बहवे उसिणजोणिया जीवा य पुग्गला य वणस्सतिकाइयत्ताए वक्कमंति विउक्कमंति चयंति उववज्जंति, एवं खलु गोयमा ! गिम्हासु बहवे वणस्सतिकाइया पत्तिया पुप्फिया जाव चिट्ठंति।

[२ प्र] भगवन् ! यदि ग्रीष्म ऋतु मे वनस्पतिकायिक जीव सर्वाल्पाहारी होते हैं, तो बहुत-से वनस्पतिकायिक ग्रीष्मऋतु मे पत्तो वाले, फूलो वाले, फलो वाले, हरियाली से देदीप्यमान (हरेभरे) एव श्री (शोभा) से अतीव सुशोभित कैसे होते है ?

[२ उ] हे गौतम ! ग्रीष्म ऋतु मे बहुत-से उष्णयोनि वाले जीव और पुद्गल वनस्पतिकाय के रूप मे उग (उत्पन्न हो) जाते है, विशेषरूप से उत्पन्न होते है, वृद्धि को प्राप्त होते है, और विशेषरूप से वृद्धि को प्राप्त होते हैं। हे गौतम ! इस कारण से ग्रीष्म ऋतु मे बहुत-से वनस्पति-कायिक पत्तो वाले, फूलो वाले, फलो वाले यावत् सुशोभित होते हैं।

विवेचन—वनस्पतिकायिक जीवो के सर्वाल्पाहारकाल एव सर्वमहाहारकाल की वक्तव्यता—उद्देशक के प्रारम्भिक इन दो सूत्रो मे वनस्पतिकायिक जीव किस ऋतु मे सर्वमहाहारी और किस ऋतु मे सर्वाल्पाहारी होते है, और क्यो ? यह सयुक्तिक निरूपण किया गया है।

प्रावृट् और वर्षा ऋतु मे वनस्पतिकायिक सर्वमहाहारी क्यो ?—छह ऋतुओ मे से इन दो ऋतुओ मे वनस्पतिकायिक जीव सर्वाधिक आहारी होते है, इसका कारण यह है कि इन ऋतुओ मे वर्षा अधिक बरसती है, इसलिए जलस्नेह की अधिकता के कारण वनस्पति को अधिक आहार मिलता है।

ग्रीष्म ऋतु में सर्वाल्पाहारी होते हुए भी वनस्पतियाँ पत्रित-पुष्पित क्यो ?—ग्रीष्म ऋतु मे जो वनस्पतियाँ पत्र, पुष्प, फलो से युक्त हरीभरी दिखाई देती है, इसका कारण उस समय उष्णयोनिक जीवो और पुद्गलो के उत्पन्न होने, बढने आदि का सिलसिला चालू हो जाना है।[1]

वनस्पतिकायिक मूलजीवादि से स्पृष्ट मूलादि के आहार के सम्बन्ध में सयुक्तिक समाधान—

३ से नूण भ ते ! मूला मूलजीवफुडा, कंदा कंदजीवफुडा जाव बीया बीयजीवफुडा ?

हता, गोतमा ! मूला मूलजीवफुडा[2] जाव बीया बीयजीवफुडा।

[३ प्र] भगवन् ! क्या वनस्पतिकाय के मूल, निश्चय ही मूलजीवो से स्पृष्ट (व्याप्त) होते है, कन्द, कन्द के जीवो से स्पृष्ट होते हैं, यावत् बीज, बीज के जीवो से स्पृष्ट होते है ?

[३ उ] हाँ गौतम ! मूल, मूल के जीवो से स्पृष्ट होते हैं, यावत् बीज, बीज के जीवो से स्पृष्ट होते है।

४. जति णं भंते ! मूला मूलजीवफुडा जाव[3] बीया बीयजीवफुडा, कम्हा ण भ ते ! वणस्सतिकाइया आहारेति ? कम्हा परिणामेति ?

गोयमा ! मूला मूलजीवफुडा पुढविजीवपडिबद्धा तम्हा आहारेंति, तम्हा परिणामेति। कंदा कदजीवफुडा मूलजीवपडिबद्धा तम्हा आहारेंति, तम्हा परिणामेति। एव जाव बीया बीयजीवफुडा फलजीवपडिबद्धा तम्हा आहारेंति, तम्हा परिणामेति।

[४ प्र] भगवन् ! यदि मूल, मूलजीवो से स्पृष्ट होते है, यावत् बीज, बीज के जीवो से स्पृष्ट होते है, तो फिर, भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीव किस प्रकार से (कैसे) आहार करते है, और किस तरह से उसे परिणमाते है ?

[४ उ] गौतम ! मूल, मूल के जीवो से व्याप्त (स्पृष्ट) हैं और वे पृथ्वी के जीव के साथ सम्बद्ध (सयुक्त—जुडे हुए) होते है, इस तरह से वनस्पतिकायिक जीव आहार करते है, और उसे परिणमाते हैं। इसी प्रकार कन्द, कन्द के जीवो के साथ स्पृष्ट (व्याप्त) होते है और मूल के जीवो से

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३००

२ 'मूलजीवफुडा' का अर्थ—मूल के जीवो से स्पृष्ट-व्याप्त है।

३ 'जाव' शब्द कन्द से लेकर बीज तक के पदो का, सूचक है। यथा—'खधा, खधजीवफुडा, तया, साला, पवाला, पत्ता, पुप्फा, फला, बीया।'

सम्बद्ध (जुडे हुए) रहते है, इस प्रकार यावत् बीज, बीज के जीवो से व्याप्त (स्पृष्ट) होते हैं, और वे फल के जीवो के साथ सम्बद्ध रहते है, इससे वे आहार करते और उसे परिणमाते हैं।

विवेचन—वनस्पतिकायिक मूलजीवादि से स्पृष्ट मूलादि के आहार के सम्बन्ध मे सयुक्तिक समाधान—प्रस्तुत सूत्रद्वय (सू ३ और ४) मे वनस्पतिकाय के मूल आदि अपने-अपने जीव के साथ स्पृष्ट—व्याप्त होते हुए कैसे आहार करते है ? इसका युक्तिसगत समाधान प्रस्तुत किया गया है।

वृक्षादिरूप वनस्पति के दस प्रकार—मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा (छाल), शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल और बीज।

मूलादि जीवो से व्याप्त मूलादि द्वारा आहारग्रहण—मूलादि, अपने-अपने जीवो से व्याप्त होते हुए भी परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध रहते है—जैसे मूल पृथ्वी से, कन्द मूल से, स्कन्ध कन्द से, त्वचा स्कन्ध से शाखा त्वचा से, प्रवाल शाखा से, पत्र प्रवाल से, पुष्प पत्र से, फल पुष्प से और बीज फल से सम्बद्ध-परिबद्ध होता है, इस कारण परम्परा से मूलादि सब एक दूसरे से जुडे हुए होने से अपना-अपना आहार ले लेते है। और उसे परिणमाते है।[1]

आलू, मूला आदि वनस्पतियो मे अनन्तजीवत्व और विभिन्नजीवत्व की प्ररूपणा—

५ अह भंते ! आलुए मूलए सिंगबेरे हिरिली सिरिली सिस्सिरिली किट्टिया छिरिया छीरविरालिया कण्हकदे वज्जकदे सूरणकदे खिलूडे भद्दमुत्था पिंडहलिद्दा लोहीणी हूथिहमगा (थिरुगा) मुग्गकण्णी अस्सकण्णी सीहकण्णी सीहढी मुसु ढी, जे यावन्ने तहप्पगारा सव्वे ते अणतजीवा विविहसत्ता ?

हता, गोयमा ! आलुए मूलए जाव अणतजीवा विविहसत्ता।

[५ प्र] अब प्रश्न यह है 'भगवन् ! आलू, मूला, शृ गबेर (अदरख), हिरिली, सिरिली, सिस्सिरिली, किट्टिका, छिरिया, छीरविदारिका, वज्रकन्द सूरणकन्द, खिलूडा, (आर्द्र-) भद्रमोथा, पिंडहरिद्रा (हल्दी की गाठ), रोहिणी, हुथीहू, थिरुगा, मुद्गकर्णी, अश्वकर्णी, सिंहकर्णी, सिहण्डो, मुसुण्ढी, ये और इसी प्रकार की जितनी भी दूसरी वनस्पतियाँ है, क्या वे सब अनन्त जीववाली और विविध (पृथक्-पृथक्) जीववाली है।

[५ उ] हाँ गौतम ! आलू मूला, यावत् मुसुण्ढी, ये और इसी प्रकार की जितनी भी दूसरी वनस्पतियाँ है, वे सब अनन्तजीव वाली और विविध (भिन्न-भिन्न) जीववाली है।

विवेचन—आलू, मूला आदि वनस्पतियो मे अनन्त जीवत्व और विभिन्न जीवत्व की प्ररूपणा—प्रस्तुत पचम सूत्र मे आलू, मूला आदि तथा इसी प्रकार की भूमिगत मूलवाली अनन्तकायिक वनस्पतियो मे अनन्त जीवत्व तथा पृथक् जीवत्व की प्ररूपणा की गई है।

'अनन्तजीवा विविहसत्ता' की व्याख्या—आलू आदि अनन्तकाय के प्रकार लोकरूढिगम्य हैं, भिन्न-भिन्न देशो मे ये उन-उन नामो से प्रसिद्ध है, इनमे अनन्त जीव है, तथा विविध सत्त्व (पृथक् चेतनावाले) हैं अथवा वर्णादि के भेद से ये विविध प्रकार के हैं, अथवा एक स्वरूप या एककायिक होते हुए भी इन मे अनन्त जीवत्व है, इस दृष्टि से विविध यानी विचित्र कर्मो के कारण

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३००

इनकी पृथक्-पृथक् सत्ता-चेतना है, अथवा जिनके विविध अर्थात् विचित्र विधा=प्रकार या भेद हैं, वे भी विविध सत्त्व है।[1]

चौवीस दण्डकों मे लेश्या की अपेक्षा अल्पकर्मत्व और महाकर्मत्व की प्ररूपणा—

६. [१] सिय भंते ! कण्हलेसे नेरतिए अप्पकम्मतराए, नीललेसे नेरतिए महाकम्मतराए ?

हंता, गोयमा ! सिया।

[६-१ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्मवाला और नील-लेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्मवाला होता है ?

[६-१ उ] हाँ, गौतम ! कदाचित् ऐसा होता है।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति 'कण्हलेसे नेरतिए अप्पकम्मतराए, नीललेसे नेरतिए महाकम्मतराए' ?

गोयमा ! ठिंति पडुच्च, से तेणट्ठेण गोयमा ! जाव महाकम्मतराए।

[६-२ प्र] भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते है, कि कृष्णलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्मवाला होता है और नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्मवाला होता है ?

[६-२ उ] गौतम ! स्थिति की अपेक्षा से ऐसा कहा जाता है कि यावत् (नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित्) महाकर्म वाला होता है।

७. [१] सिय भंते ! नीललेसे नेरतिए अप्पकम्मतराए, काउलेसे नेरतिए महाकम्मतराए ?

हंता, सिया।

[७-१ प्र] भगवन् ! क्या नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्मवाला होता है और कापोतलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्मवाला होता है ?

[७-१ उ] हाँ गौतम ! कदाचित् ऐसा होता है।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चति 'नीललेसे अप्पकम्मतराए, काउलेसे नेरतिए महाकम्मतराए ?'

गोयमा ! ठिंति पडुच्च, से तेणट्ठेण गोयमा जाव महाकम्मतराए।

[७-२ प्र] भगवन् ! आप किस कारण से ऐसा कहते हैं कि नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्मवाला होता है और कापोतलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्मवाला होता है ?

[७-२ उ.] गौतम ! स्थिति की अपेक्षा ऐसा कहता हूँ कि यावत् (कापोतलेश्या वाला नैरयिक कदाचित्) महाकर्मवाला होता है।

८ एव असुरकुमारे वि, नवरं तेउलेसा अब्भहिया।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३००

[८] इसी प्रकार असुरकुमारो के विषय मे भी कहना चाहिए, परन्तु उनमे एक तेजोलेश्या अधिक होती है। (अर्थात्—उनमे कृष्ण, नील, कापोत और तेजो, ये चार लेश्याएँ होती है।)

९ एव जाव वेमाणिया, जस्स जति लेसाओ तस्स तति भाणियव्वाओ। जोतिसियस्स न भण्णति। जाव सिय भ ते! पम्हलेसे वेमाणिए अप्पकम्मतराए, सुक्कलेसे वेमाणिए महाकम्मतराए ?

हता, सिया। से केणट्ठेण० सेस जहा नेरइयस्स जाव महाकम्मतराए।

[९] इसी तरह यावत् वैमानिक देवो तक कहना चाहिए। जिसमे जितनी लेश्याएँ हो, उतनी कहनी चाहिए, किन्तु ज्योतिष्क देवो के दण्डक का कथन नही करना चाहिए। (प्रश्नोत्तर की सयोजना इस प्रकार यावत् वैमानिक तक कर लेनी चाहिए, यथा—)

[प्र] भगवन्! क्या पद्मलेश्या वाला वैमानिक कदाचित् अल्प कर्म वाला और शुक्ललेश्या वाला वैमानिक कदाचित् महाकर्म वाला होता है ?

[उ] हाँ, गौतम! कदाचित् होता है।

[प्र] भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते है ?

[उ] (इसके उत्तर मे) शेष सारा कथन नैरयिक की तरह यावत् 'महाकर्मवाला होता है', यहाँ तक करना चाहिए।

विवेचन—चौवीस दण्डको मे लेश्या की अपेक्षा अल्पकर्मत्व-महाकर्मत्व-प्ररूपणा—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू ६ से ९ तक) मे नैरयिको से लेकर वैमानिक दण्डक तक के जीवो मे लेश्या के तारतम्य का सयुक्तिक निरूपण किया गया है।

सापेक्ष कथन का आशय—सामान्यतया कृष्णलेश्या वाला जीव महाकर्मी और नीललेश्यावाला जीव उससे अल्पकर्मी होता है, किन्तु आयुष्य की स्थिति की अपेक्षा से कृष्णलेश्यी जीव अल्पकर्मी और नीललेश्यी जीव महाकर्मी भी हो सकता है। उदाहरणार्थ—सप्तम नरक मे उत्पन्न कोई कृष्ण-लेश्यी नैरयिक है, जिसने अपने आयुष्य की बहुत-सी स्थिति क्षय कर दी है, इस कारण उसने बहुत-से कर्म भी क्षय कर दिये है, किन्तु उसकी अपेक्षा कोई नीललेश्यी नैरयिक दस सागरोपम की स्थिति से पचम नरक मे अभी तत्काल उत्पन्न हुआ है, उसने अपने आयुष्य की स्थिति अभी अधिक क्षय नही की। इस कारण पूर्वोक्त कृष्णलेश्यी नैरयिक की अपेक्षा इस नीललेश्यी के कर्म अभी बहुत बाकी हैं। इस दृष्टि से नीललेश्यी कृष्णलेश्यी की अपेक्षा महाकर्मवाला है।

ज्योतिष्क दण्डक मे निषेध का कारण—ज्योतिष्क देवो मेय ह सापेक्षता घटित नही हो सकती, क्योकि उनमे केवल एक तेजोलेश्या होती है। दूसरी लेश्या न होने से उसे दूसरी लेश्या की अपेक्षा अल्पकर्मी या महाकर्मी नही कहा जा सकता।[1]

चौवीस दण्डकवर्ती जीवो मे वेदना और निर्जरा के तथा इन दोनो के समय के पृथक्त्व का निरूपण—

१०. [१] से नूण भ ते! जा वेदणा सा निज्जरा ? जा निज्जरा सा वेदणा ?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३०१

[१०-१ प्र] भगवन् ! क्या वास्तव मे, जो वेदना है, वह निर्जरा कही जा सकती है ? और जो निर्जरा है, वह वेदना कही जा सकती है ?

[१०-१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चइ 'जा वेयणा न सा निज्जरा, जा निज्जरा न सा वेयणा' ?

गोयमा ! कम्म वेदणा, णोकम्म निज्जरा । से तेणट्ठेण गोयमा ! जाव न सा वेदणा ।

[१०-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि जो वेदना है, वह निर्जरा नही कही जा सकती, और जो निर्जरा है, वह वेदना नही कही जा सकती ?

[१०-२ उ] गौतम ! वेदना कर्म है और निर्जरा नोकर्म है । इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि यावत् जो निर्जरा है, वह वेदना नही कही जा सकती ।

११ [१] नेरतियाण भंते ! जा वेदणा सा निज्जरा ? जा निज्जरा सा वेदणा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

[११-१ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिको की जो वेदना है, उसे निर्जरा कहा जा सकता है, और जो निर्जरा है, उसे वेदना कहा जा सकता है ?

[११-१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चति नेरइयाणं जा वेदणा न सा निज्जरा, जा निज्जरा न सा वेयणा ?

गोतमा ! नेरइयाण कम्म वेदणा, णोकम्म निज्जरा । से तेणट्ठेण गोतमा ! जाव न सा वेयणा ।

[११-२ प्र] भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते है कि नैरयिको की जो वेदना है, उसे निर्जरा नही कहा जा सकता, और जो निर्जरा है, उसे वेदना नही कहा जा सकता ?

[११-२ उ] गौतम ! नैरयिको की जो वेदना है, वह कर्म है और जो निर्जरा है, वह नोकर्म है । इस कारण से, हे गौतम ! मैं ऐसा कहता हूँ कि यावत् जो निर्जरा है, उसे वेदना नही कहा जा सकता ।

१२ एव जाव वेमाणियाण ।

[१२] इसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त (चौवीस ही दण्डको मे) कहना चाहिए ।

१३ [१] से नूणं भंते ! जं वेदेंसु तं निज्जरेंसु ? जं निज्जरेंसु तं वेदेंसु ? –

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[१३-१ प्र] भगवन् ! जिन कर्मो का वेदन कर (भोग) लिया, क्या उनको निर्जीर्ण कर लिया और जिन कर्मो को निर्जीर्ण कर लिया, क्या उनका वेदन कर लिया ?

[१३-१ उ] गौतम ! यह बात (अर्थ) समर्थ (शक्य) नही है ।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चति 'जं वेदेंसु नो तं निज्जरेंसु, जं निज्जरेंसु नो तं वेदेंसु' ?
गोयमा ! कम्मं वेदेंसु, नोकम्मं निज्जरिंसु, से तेणट्ठेण गोयमा ! जाव नो तं वेदेंसु ।

[१३-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते है कि जिन कर्मों का वेदन कर लिया, उनको निर्जीर्ण नही किया, और जिन कर्मो को निर्जीर्ण कर लिया, उनका वेदन नही किया ?

[१३-२ उ] गौतम ! वेदन किया गया कर्मो का, किन्तु निर्जीर्ण किया गया है—नोकर्मों को, इस कारण से, हे गौतम ! मैने कहा कि यावत् उनका वेदन नही किया ।

१४ नेरतिया णं भंते ! जं वेदेंसु तं निज्जरिंसु ? एवं नेरइया वि ।

[१४ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीवो ने जिस कर्म का वेदन कर लिया, क्या उसे निर्जीर्ण कर लिया ?

[१४ उ] पहले कहे अनुसार नैरयिको के विषय मे भी जान लेना चाहिए ।

१५. एवं जाव वेमाणिया ।

[१५] इसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त चौवीस ही दण्डक मे कथन करना चाहिए ।

१६ [१] से नूणं भंते ! जं वेदेंति तं निज्जरिंति, जं निज्जरेंति तं वेदेंति ?
गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे ।

[१६-१ प्र] भगवन् ! क्या वास्तव मे जिस कर्म को वेदते है, उसकी निर्जरा करते हैं, और जिसकी निर्जरा करते है, उसको वेदते है ?

[१६-१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जाव 'नो तं वेदेंति' ?
गोतमा ! कम्मं वेदेंति, नोकम्मं निज्जरेंति । से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव नो तं वेदेंति ।

[१६-२ प्र] भगवन् ! यह आप किस कारण से कहते है कि जिसको वेदते है, उसकी निर्जरा नही करते और जिसकी निर्जरा करते है, उसको वेदते नही हैं ?

[१६-२ उ] गौतम ! कर्म को वेदते है, और नोकर्म को निर्जीर्ण करते है । इस कारण से हे गौतम ! मैं कहता हूँ कि यावत् जिसको निर्जीर्ण करते हैं, उसका वेदन नही करते ।

१७ एवं नेरइया वि जाव वेमाणिया ।

[१७] इसी तरह नैरयिको के विषय मे जानना चाहिए । यावत् वैमानिकपर्यन्त चौवीस ही दण्डको मे इसी तरह कहना चाहिए ।

१८ [१] से नूणं भंते ! जं वेदिस्सति तं निज्जरिस्सति ? जं निज्जरिस्सति तं वेदिस्सति ?
गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

[१८-१ प्र] भगवन् ! क्या वास्तव मे, जिस कर्म का वेदन करेंगे, उसकी निर्जरा करेंगे, और जिस कर्म की निर्जरा करेंगे, उसका वेदन करेंगे ?

[१८-१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

[२] से केणट्ठेणं जाव 'णो त वेदिस्सति' ?

गोयमा ! कम्म वेदिस्संति, नोकम्मं निज्जरिस्सति। से तेणट्ठेण जाव नो त निज्जरि(वेदि) स्सति।

[१८-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते है कि यावत् उसका वेदन नही करेगे ?

[१८-२ उ] गौतम ! कर्म का वेदन करेंगे, नोकर्म की निर्जरा करेंगे। इस कारण से, हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि जिसका वेदन करेंगे, उसकी निर्जरा नही करेंगे, और जिसकी निर्जरा करेंगे, उसका वेदन नही करेंगे।

१९. एवं नेरतिया वि जाव वेमाणिया।

[१९] इसी तरह नैरयिको के विषय मे जान लेना चाहिए। यावत् वैमानिकपर्यन्त चौवीस ही दण्डको मे इसी तरह कहना चाहिए।

२०. [१] से नूण भंते! जे वेदणासमए से निज्जरासमए, जे निज्जरासमए से वेदणासमए?

गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे।

[२०-१ प्र] भगवन् ! जो वेदना का समय है, क्या वह निर्जरा का समय है और जो निर्जरा का समय है, वह वेदना का समय है ?

[२०-१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चति 'जे वेदणासमए न से णिज्जरासमए, जे निज्जरासमए न से वेदणासमए' ?

गोयमा ! ज समयं वेदेंति नो त समय निज्जरेंति, ज समय निज्जरेंति नो तं समय वेदेंति; अन्नम्मि समए वेदेंति, अन्नम्मि समए निज्जरेंति, अन्ने से वेदणासमए, अन्ने से निज्जरासमए। से तेणट्ठेण जाव न से वेदणासमए।

[२०-२ प्र] भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते है कि जो वेदना का समय है, वह निर्जरा का समय नही है और जो निर्जरा का समय है, वह वेदना का समय नही है ?

[२०-२ उ] गौतम ! जिस समय मे वेदते है, उस समय निर्जरा नही करते, और जिस समय निर्जरा करते हैं, उस समय वेदन नही करते। अन्य समय मे वेदन करते है और अन्य समय मे निर्जरा करते है। वेदना का समय दूसरा है और निर्जरा का समय दूसरा है। इसी कारण से, हे गौतम ! मैं कहता हूं कि यावत् निर्जरा का जो समय है, वह वेदना का समय नही है।

२१ [२] नेरतियाण भ ते ! जे वेदणासमए से निज्जरासमए ? जे निज्जरासमए से वेदणासमए ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

[२१-१ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक जीवो का जो वेदना का समय है, वह निर्जरा का समय है और जो निर्जरा का समय है, वह वेदना का समय है ?

[२१-१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

[२] से केणट्ठेणं भ ते ! एवं वुच्चइ 'नेरइयाण जे वेदणासमए न से निज्जरासमए, जे निज्जरासमए न से वेदणासमए ?'

गोयमा ! नेरइया ण ज समयं वेदेंति णो त समय निज्जरेंति, ज समय निज्जरेंति नो त समय वेदेंति, अन्नम्मि समए वेदेंति, अन्नम्मि समए निज्जरेंति, अन्ने से वेदणासमए, अन्ने से निज्जरासमए । से तेणट्ठेण जाव न से वेदणासमए ।

[२१-२ प्र] भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते है कि नैरयिको के जो वेदना का समय है, वह निर्जरा का समय नही है, और जो निर्जरा का समय है, वह वेदना का समय नही है ?

[२१-२ उ] गौतम ! नैरयिक जीव, जिस समय मे वेदन करते है, उस समय मे निर्जरा नही करते, और जिस समय मे निर्जरा करते है, उस समय मे वेदन नही करते । अन्य समय मे वे वेदन करते है और अन्य समय मे निर्जरा करते है । उनके वेदना का समय दूसरा है और निर्जरा का समय दूसरा है । इस कारण से, मै ऐसा कहता हूँ कि यावत् जो निर्जरा का समय है, वह वेदना का समय नही है ।

२२. एव जाव वेमाणियाण ।

[२२] इसी प्रकार यावत् वैमानिकपर्यन्त चौवीस ही दण्डको मे कहना चाहिए ।

विवेचन—चौवीस दण्डकवर्ती जीवो मे वेदना और निर्जरा के तथा इन दोनो के समय के पृथक्त्व का निरूपण—प्रस्तुत १३ सूत्रो (सू १० से २२ तक) मे विभिन्न पहलुओ से सामान्य जीव मे, चौबीसदण्डकवर्ती जीवो मे वेदना और निर्जरा के पृथक्त्व का तथा इन दोनो के समय के पृथक्त्व का निरूपण किया गया है ।

वेदना और निर्जरा की व्याख्या के अनुसार दोनो के पृथक्त्व की सिद्धि—उदयप्राप्त कर्म को भोगना 'वेदना' कहलाती है और जो कर्म भोग कर क्षय कर दिया गया है, उसे निर्जरा कहते हैं । वेदना कर्म की होती है । इसी कारण वेदना को (उदयप्राप्त) कर्म कहा गया है,[१] और निर्जरा को नोकर्म (कर्माभाव) । तात्पर्य यह है कि कार्मण वर्गणा के पुद्गल सदैव विद्यमान रहते हैं, किन्तु वे सदा कर्म नही कहलाते । कषाय और योग के निमित्त से जीव के साथ बद्ध होने पर ही उन्हे 'कर्म' सज्ञा प्राप्त होती है और वेदन के अन्तिम समय तक वह सज्ञा रहती है । निर्जरा होने पर वे पुद्गल 'कर्म' नही रहते, अकर्म हो जाते हैं ।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३०२

चौवीस दण्डकवर्ती जीवों की शाश्वतता-अशाश्वतता का निरूपण—

२३ [१] नेरतिया भंते ! किं सासया, असासया ?

गोयमा ! सिय सासया, सिय असासया।

[२३-१ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव शाश्वत है या अशाश्वत है ?

[२३-१ उ] गौतम ! नैरयिक जीव कथञ्चित् शाश्वत हैं और कथञ्चित् अशाश्वत है।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ 'नेरतिया सिय सासया, सिय असासया' ?

गोयमा ! अव्वोच्छित्तिनयट्ठताए सासया, वोच्छित्तिणयट्ठयाए असासया। से तेणट्ठेणं जाव सिय असासया।

[२३-२ प्र] भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते है कि नैरयिक जीव कथचित् शाश्वत है और कथचित् अशाश्वत हैं ?'

[२३-२ उ] गौतम ! अव्युच्छित्ति (द्रव्यार्थिक) नय की अपेक्षा से नैरयिक जीव शाश्वत हैं और व्युच्छित्ति (पर्यायार्थिक) नय की अपेक्षा से नैरयिक जीव अशाश्वत है। इस कारण से, हे गौतम ! मैं ऐसा कहता हूँ कि नैरयिक जीव कथचित् शाश्वत है और कथचित् अशाश्वत है।

२४ एव जाव वेमाणियाणं जाव सिय असासया।

सेवं भंते ! सेव भंते ! त्ति०।

॥ सत्तम सए : तइओ उद्देसओ समत्तो ॥

[२४] इसी प्रकार यावत् वैमानिकदेव-पर्यन्त कहना चाहिये कि वे कथञ्चित् शाश्वत हैं और कथञ्चित् अशाश्वत् है। यावत् इसी कारण से मैं कहता हूँ कि वैमानिक देव कथञ्चित् शाश्वत हैं, कथञ्चित् अशाश्वत हैं।'

भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन्। यह इसी प्रकार है, इस प्रकार कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरण करते है।

विवेचन—चौबीस दण्डकवर्ती जीवो की शाश्वतता-अशाश्वतता का निरूपण—प्रस्तुत दो सूत्रो (२३ और २४) मे चौवीस दण्डकवर्ती जीवो की शाश्वतता और अशाश्वतता का सापेक्षिक कथन किया गया है।

अव्युच्छित्तिनयार्थता व्युच्छित्तिनयार्थता का अर्थ—अव्युच्छित्ति (ध्रुवता) प्रधान नय अव्युच्छित्ति नय है, उसका अर्थ है—द्रव्य, अर्थात्—द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा और व्युच्छित्ति प्रधान जो नय है, उसका अर्थ है—पर्याय, अर्थात्—पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा। द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा सभी पदार्थ शाश्वत हैं और पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा सभी पदार्थ अशाश्वत है।[1]

॥ सप्तम शतक : तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३०२

चउत्थो उद्देसओ : 'जीवा'

चतुर्थ उद्देशक : 'जीव'

षड्विध संसारसमापन्नक जीवो के सम्बन्ध में वक्तव्यता—

१ रायगिहे नगरे जाव एव वदासी—

[१] राजगृह नगर मे यावत् (श्री गौतमस्वामी ने) श्रमण भगवान् महावीर से इस प्रकार पूछा—

२ कतिविहा ण भते ! ससारसमावन्नगा जीवा पण्णत्ता ?

गोयमा ? छव्विहा ससारसमावन्नगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—पुढविकाइया एव जहा जीवाभिगमे जाव सम्मत्तकिरिय वा मिच्छत्तकिरियं वा।

[संग्रहणी गाथा—जीवा छव्विह पुढवी जीवाण ठिती, भवट्ठिती काए।
निल्लेवण प्रणगारे किरिया सम्मत्त मिच्छत्ता ।।][1]

सेवं भते ! सेव भते त्ति० !

।। सत्तम सए : चउत्थो उद्देसओ समत्तो ।।

[२ प्र] भगवन् ! ससारसमापन्नक (ससारी) जीव कितने प्रकार के कहे गए है ?

[२ उ] गौतम ! ससारसमापन्नक जीव, छह प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार है—(१) पृथ्वीकायिक, (२) अप्कायिक, (३) तेजस्कायिक, (४) वायुकायिक, (५) वनस्पतिकायिक एव (६) त्रसकायिक।

इस प्रकार यह समस्त वर्णन जीवाभिगमसूत्र के तिर्यञ्चसम्बन्धी दूसरे उद्देशक मे कहे अनुसार सम्यक्त्वक्रिया और मिथ्यात्वक्रिया पर्यन्त कहना चाहिए।

[संग्रहणी गाथा का अर्थ—जीव के छह भेद, पृथ्वीकायिक जीवो के छह भेद, पृथ्वीकायिक आदि जीवो की स्थिति, भवस्थिति, सामान्यकायस्थिति, निर्लेपन, अनगारसम्बन्धी वर्णन सम्यक्त्वक्रिया और मिथ्यात्वक्रिया।]

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—षड्विध संसारसमापन्नक जीवो के सम्बन्ध में जीवाभिगमसूत्रानुसार वक्तव्यता—

---

१ यह सग्रहणी गाथा वाचनान्तर मे है, वृत्तिकार ने वृत्ति मे इसे उद्धृत करके इसकी व्याख्या भी की है।
—देखें—भगवती अ वृत्ति, पत्राक ३०२-३०३

प्रस्तुत चतुर्थ उद्देशक के दो सूत्रो मे ससारी जीवो के भेद तथा जीवाभिगमसूत्रोक्त उनसे सम्बन्धित वर्णन का निर्देश किया है।

ससारी जीवो के सम्बन्ध मे जीवाभिगमसूत्रोक्त तथ्य—जीवाभिगमसूत्र मे तिर्यञ्च के दूसरे उद्देशक मे जो बाते है, उनकी झाकी सग्रहणीगाथा मे दे ही दी है। (१) ससारी जीवो के ६ भेदो का उल्लेख कर दिया है। तत्पश्चात् (२) **पृथ्वीकायिक जीवो के ६ भेद**—श्लक्ष्णा, शुद्धपृथ्वी, बालुकापृथ्वी, मन शिला, शर्करापृथ्वी, और खरपृथ्वी। इन सबकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति श्लक्ष्णा की १ हजार वर्ष, शुद्धपृथ्वी की १२ हजार वर्ष, बालुका की १४ हजार वर्ष, मन शिला की १६ हजार वर्ष, शर्करापृथ्वी की १८ हजार वर्ष और खरपृथ्वी की २२ हजार वर्ष की है। (३) **स्थिति**—नारको और देवो की जघन्य १० हजार वर्ष, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की है। तिर्यंच और मनुष्य की जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की, उत्कृष्ट ३ पल्योपम की। इसी तरह अन्य जीवो की भवस्थिति प्रज्ञापनासूत्र के चतुर्थ स्थितिपदानुसार जान ले। (४) **निर्लेपन**—तत्काल उत्पन्न पृथ्वीकायिक जीवो को प्रतिसमय एक-एक निकाले तो जघन्य असख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल मे और उत्कृष्ट भी असख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीकाल मे निर्लेप (रिक्त) होते है, इत्यादि प्रकार से सभी जीवो का निर्लेपन कहना चाहिए। (५) **अनगार**—जो कि अविशुद्ध लेश्यावाला अवधिज्ञानी है, उसके देव-देवी को जानने सम्बन्धी १२ आलापक कहने चाहिए। (६) **अन्यतीर्थिको**—द्वारा एक समय मे **सम्यक्त्व-मिथ्यात्व क्रियाद्वय** करने की प्ररूपणा का खण्डन, एक समय मे इन परस्पर विरोधी दो क्रियाओ मे से एक ही क्रिया का मण्डन है। इस प्रकार सासारिक जीव सम्बन्धी वक्तव्यता है।[1]

॥ सप्तम शतक : चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्राक ३०२-३०३, (ख) जीवाभिगमसूत्र, तिर्यञ्च सम्बन्धी उद्देशक २, प-१३९ सू १०० से १०४ तक (ग) प्रज्ञापनासूत्र चतुर्थ स्थितिपद

पंचमो उद्देसओ : 'पक्खी'

पंचम उद्देशक : 'पक्षी'

खेचर-पंचेन्द्रिय जीवो के योनिसंग्रह आदि तथ्यो का अतिदेशपूर्वक निरूपण—

१ रायगिहे जाव एव वदासी—

[१] राजगृह नगर मे यावत् गौतमस्वामी ने (श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से) इस प्रकार पूछा —

२ खहचरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण भते ! कतिविहे जोणीसगहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! तिविहे जोणीसगहे पण्णत्ते, त जहा—अडया पोयया सम्मुच्छिमा। एव जहा जीवाभिगमे जाव नो चेव ण ते विमाणे वीतीवएज्जा। एमहालया ण गोयमा ! ते विमाणा पण्णत्ता।

[संग्रहगाथा—'जोणीसगह लेसा दिट्ठी णाणे य जोग-उवओगे।
उववाय-ट्ठिइ-समुग्घाय-चवण-जाइ-कुल-विहीओ ॥]'[1]

सेव भते ! सेव भते ! त्ति०।

॥ सत्तम सए : पचमो उद्देसओ समत्तो ॥

[२ प्र] हे भगवन् ! खेचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्च जीवो का योनिसग्रह कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२ उ] गौतम ! (खेचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्च जीवो का) योनिसग्रह तीन प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है—अण्डज, पोतज और सम्मूर्च्छिम। इस प्रकार (आगे का सारा वर्णन) जीवाभिगमसूत्र मे कहे अनुसार यावत् 'उन विमानो का उल्लघन नही किया जा सकता, हे गौतम ! वे विमान इतने महान् (बडे) कहे गए हैं,' यहाँ तक कहना चाहिए।

[सग्रहगाथा का अर्थ—योनिसग्रह, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, योग, उपयोग, उपपात, स्थिति, समुद्घात, च्यवन और जाति-कुलकोटि।]

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरने लगे।

---

१ यह सग्रहगाथा वाचनान्तर मे है, वृत्तिकार ने इसे वृत्ति मे उद्धृत की है, और इसकी व्याख्या भी की है।
—देखें—भगवती अ वृत्ति, पत्राक ३०३

विवेचन—खेचर तिर्यञ्च पचेन्द्रियजीवो के योनिसग्रह आदि तथ्यो का अतिदेशपूर्वक निरूपण—प्रस्तुत पचम उद्देशक के दो सूत्रो मे खेचर पचेन्द्रियजीवो के योनिसग्रह, तथा जीवाभिगम-सूत्र निर्देशानुसार इनसे सम्बन्धित अन्य तथ्यो का निरूपण किया गया है।

खेचर पचेन्द्रिय जीवो के योनिसग्रह के प्रकार—उत्पत्ति के हेतु को योनि कहते हैं, तथा अनेक का कथन एक शब्द द्वारा कर दिया जाए, उसे सग्रह कहते है। खेचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्च अनेक होते हुए भी उक्त तीन प्रकार के योनिसग्रह द्वारा उनका कथन किया गया है। **अण्डज**—अडे से उत्पन्न होने वाले मोर, कबूतर, हस आदि। **पोतज**—जरायु (जड-जेर) बिना उत्पन्न होने वाले चिमगादड आदि। **सम्मूर्च्छिम**—माता-पिता के सयोग के बिना उत्पन्न होने वाले, मेढक आदि जीव।[1]

जीवाभिगमोक्त तथ्य—जीवाभिगम सूत्रानुसार खेचर पचेन्द्रिय तिर्यंच मे लेश्या ६, दृष्टि-३, ज्ञान-३ (भजना से), अज्ञान-३ (भजना से), योग-३, उपयोग-२ पाये जाते हैं। सामान्यत ये चारो गति से आते है, और चारो गतियो मे जाते है। इनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट पल्योपम के असख्यातवे भाग है। केवलीसमुद्घात और आहारसमुद्घात को छोडकर इनमे पाच समुद्घात पाए जाते हैं। इनकी बारह लाख कुलकोडी है। इस प्रकरण मे अन्तिम सूत्र विजय, वैजयन्त, जयन्त, और अपराजित का है। इन चारो का विस्तार इतना है कि यदि कोई देव नौ आकाशान्तर प्रमाण (८५०७४०$\frac{१५}{६०}$ योजन) का एक डग भरता हुआ छह महीने तक चले तो किसी विमान के अन्त को प्राप्त करता है, किसी विमान के अन्त को नही। जीवाभिगम से विस्तृत वर्णन जान लेना चाहिए।[2]

॥ सप्तम शतक : पचम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्राक ३०३

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्राक ३०३, (ख) जीवाभिगमसूत्र सू ९६ से ९९ तक, पत्राक १३१ से १३८ तक

छट्ठो उद्देसओ : 'आउ'

छठा उद्देशक : आयु

चौवीस दण्डकवर्ती जीवो के आयुष्यबन्ध और आयुष्यवेदन के सम्बन्ध में प्ररूपणा—

१ रायगिहे जाव एवं वदासी—

[१] राजगृह नगर मे (गौतमस्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से) यावत् इस प्रकार पूछा—

२. जीवे ण भते ! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए से ण भते ! किं इहगते नेरतियाउय पकरेति ? उववज्जमाणे नेरतियाउय पकरेति ? उववन्ने नेरइयाउयं पकरेति ?

गोयमा ! इहगते नेरइयाउय पकरेइ, नो उववज्जमाणे नेरइयाउय पकरेइ, नो उववन्ने नेरइयाउयं पकरेइ।

[२ प्र] भगवन् ! जो जीव नारको (नैरयिको) मे उत्पन्न होने योग्य है, भगवन् ! वह क्या इस भव मे रहता हुआ नारकायुष्य बाधता है, अथवा वहाँ (नरक मे) उत्पन्न होता हुआ नारकायुष्य बाधता है या फिर (नरक मे) उत्पन्न होने पर नारकायुष्य बाधता है ?

[२ उ] गौतम ! वह (नरक मे उत्पन्न होने योग्य जीव) इस भव मे रहता हुआ ही नारकायुष्य बाध लेता है, परन्तु नरक मे उत्पन्न हुआ नारकायुष्य नही बाधता और न नरक मे उत्पन्न होने पर नारकायुष्य बाधता है।

३. एव असुरकुमारेसु वि।

[३] इसी प्रकार असुरकुमारो के (आयुष्यबन्ध के) विषय मे कहना चाहिए।

४ एव जाव वेमाणिएसु।

[४] इसी प्रकार यावत् वैमानिकपर्यन्त कहना चाहिए।

५ जीवे ण भते ! जे भविए नेरतिएसु उववज्जित्तए से णं भते ! किं इहगते नेरतियाउय पडिसवेदेति ? उववज्जमाणे नेरइयाउय पडिसवेदेति ? उववन्ने नेरइयाउय पडिसवेदेति ?

गोयमा ! णो इहगते नेरइयाउय पडिसवेदेइ, उववज्जमाणे नेरइयाउय पडिसवेदेति, उववन्ने वि नेरइयाउय पडिसवेदेति।

[५ प्र] भगवन् ! जो जीव नारको मे उत्पन्न होने वाला है, भगवन् ! क्या वह इस भव मे रहता हुआ नरकायुष्य का वेदन (प्रतिसवेदन) करता है, या वहाँ उत्पन्न होता हुआ नरकायुष्य का वेदन करता है, अथवा वहाँ उत्पन्न होने के पश्चात् नरकायुष्य का वेदन करता है ?

[५ उ] गौतम ! वह (नरक मे उत्पन्न होने योग्य जीव) इस भव मे रहता हुआ नरकायुष्य का वेदन नही करता, किन्तु वहाँ उत्पन्न होता हुआ वह नरकायुष्य का वेदन करता है, और उत्पन्न होने के पश्चात् भी नरकायुष्य का वेदन करता है।

६ एव जाव वेमाणिएसु।

[६] इस प्रकार यावत् वैमानिक तक चौवीस दण्डको मे (आयुष्यवेदन का) कथन करना चाहिए।

विवेचन—चौवीस दण्डकवर्ती जीवो के आयुष्यबन्ध और आयुष्यवेदन के सम्बन्ध मे प्ररूपणा—नैरयिक से लेकर वैमानिक तक के जीवो मे से जो जीव जिस गति मे उत्पन्न होने वाला है, वह यहाँ रहा हुआ ही उस भव का आयुष्यवेदन कर लेता है, या वहाँ उत्पन्न होता हुआ करता है, अथवा वहाँ उत्पन्न होने के बाद आयुष्यबन्ध या आयुष्यवेदन करता है? इस विषय मे सैद्धान्तिक समाधान प्रस्तुत किया गया है।

चौवीस दण्डकवर्ती जीवो के महावेदना-अल्पवेदना के सम्बन्ध में प्ररूपणा—

७ जीवे ण भते ! जे भविए नेरतिएसु उववज्जित्तए से ण भते ! कि इहगते महावेदणे? उववज्जमाणे महावेदणे? उववन्ने महावेदणे?

गोयमा ! इहगते सिय महावेयणे, सिय अप्पवेदणे, उववज्जमाणे सिय महावेदणे, सिय अप्पवेदणे; अहे ण उववन्ने भवति ततो पच्छा एगंतदुक्ख वेदणं वेदेति, आहच्च सातं।

[७ प्र] भगवन् ! जो जीव नारको मे उत्पन्न होने वाला है, भगवन् ! क्या वह यहाँ (इस भव मे) रहता हुआ ही महावेदना वाला हो जाता है, या नरक मे उत्पन्न होता हुआ महावेदना वाला होता है, अथवा नरक मे उत्पन्न होने के पश्चात् महावेदना वाला होता है?

[७ उ] गौतम ! वह (नरक मे उत्पन्न होने वाला जीव) इस भव मे रहा हुआ कदाचित् महावेदना वाला होता है, कदाचित् अल्पवेदना वाला होता है। नरक मे उत्पन्न होता हुआ भी कदाचित् महावेदना वाला और कदाचित् अल्पवेदना वाला होता है, किन्तु जब नरक मे उत्पन्न हो जाता है, तब वह एकान्तदुःखरूप वेदना वेदता है, कदाचित् सुख (साता) रूप (वेदना वेदता है।)

८ [१] जीवे ण भते ! जे भविए असुरकुमारेसु उववज्जित्तए पुच्छा।

गोयमा ! इहगते सिय महावेदणे, सिय अप्पवेदणे; उववज्जमाणे सिय महावेदणे, सिय अप्पवेदणे, अहे ण उववन्ने भवति ततो पच्छा एगतसातं वेदण वेदेति, आहच्च असात।

[८-१ प्र] भगवन् ! जो जीव असुरकुमारो मे उत्पन्न होने वाला है, (उसके सम्बन्ध मे भी) यही प्रश्न है।

[८-१ उ] गौतम ! (जो जीव असुरकुमारो मे उत्पन्न होने वाला है,) वह यहाँ (इस भव मे) रहा हुआ कदाचित् महावेदना वाला और कदाचित् अल्पवेदना वाला होता है, वहाँ उत्पन्न होता हुआ भी वह कदाचित् महावेदना वाला और कदाचित् अल्पवेदना वाला होता है, किन्तु जब

वह वहाँ उत्पन्न हो जाता है, तब एकान्तसुख (साता) रूप वेदना वेदता है, कदाचित् दु ख (असाता) रूप वेदना वेदता है ।

[२] एव जाव थणियकुमारेसु ।

[८-२] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारो तक कहना चाहिए ।

९ जीवे ण भते ! जे भविए पुढविकाएसु उववज्जित्तए पुच्छा ।

गोयमा ! इहगए सिय महावेदणे, सिय अप्पवेदणे; एव उववज्जमाणे वि; अहे ण उववन्ने भवति ततो पच्छा वेमाताए वेदण वेदेति ।

[९ प्र] भगवन् ! जो जीव पृथ्वीकाय मे उत्पन्न होने योग्य है, (उसके सम्बन्ध मे भी) यही पृच्छा है ।

[९ उ] गौतम ! वह (पृथ्वीकाय मे उत्पन्न होने योग्य) जीव इस भव मे रहा हुआ कदाचित् महावेदनायुक्त और कदाचित् अल्पवेदनायुक्त होता है, इसी प्रकार वहाँ उत्पन्न होता हुआ भी वह कदाचित् महावेदना और कदाचित् अल्पवेदना से युक्त होता है और जब वहाँ उत्पन्न हो जाता है, तत्पश्चात् वह विमात्रा (विविध प्रकार) से वेदना वेदता है ।

१०. एव जाव मणुस्सेसु ।

[१०] इसी प्रकार का कथन यावत् मनुष्यपर्यन्त करना चाहिए ।

११ वाणमतर-जोतिसिय-वेमाणिएसु जहा असुरकुमारेसु (सु ८[१]) ।

[११] जिस प्रकार असुरकुमारो के विषय मे (अल्पवेदना-महावेदना-सम्बन्धी) कथन किया गया है, उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के विषय मे भी कहना चाहिए ।

विवेचन—चौवीस दण्डकवर्ती जीवो के महावेदना-अल्पवेदना के सम्बन्ध मे प्ररूपणा— नारकादि दण्डको मे उत्पन्न होने योग्य जीव क्या यहाँ रहता हुआ, वहाँ उत्पन्न होता हुआ या वहाँ उत्पन्न होने के पश्चात् महावेदना वाला होता है ? इस प्रकार के प्रश्नो का सापेक्षशैली से प्रस्तुत पचसूत्री (सू ७ से ११ तक) मे समाधान किया गया है ।

निष्कर्ष—नरकोत्पन्नयोग्य जीव यहाँ रहा हुआ कदाचित् महावेदना और कदाचित् अल्पवेदना से युक्त होता है, वहाँ उत्पन्न होता भी इसी तरह होता है, किन्तु वहाँ उत्पन्न होने के बाद नरकपालादि के असयोगकाल मे या तीर्थंकरो के कल्याणक-अवसरो पर कदाचित् सुख के सिवाय एकान्त दु ख ही भोगता है । दस भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव पूर्वोक्त दोनो अवस्थाओ मे पूर्ववत् होते है, किन्तु वहाँ उत्पन्न होने के पश्चात् प्रहारादि के आ पडने के सिवाय कदाचित् दु ख के सिवाय एकान्तसुख ही भोगते है, पृथ्वीकाय से लेकर मनुष्यो तक के जीव पूर्वोक्त दोनो अवस्थाओ मे पूर्ववत् ही होते हैं, किन्तु उस-उस भव मे उत्पन्न होने के पश्चात् विविध प्रकार (विमात्रा) से वेदना वेदते हैं ।[1]

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ २९०-२९१

चौवीस दण्डकवर्ती जीवों मे अनाभोगनिर्वर्तित आयुष्यबन्ध की प्ररूपणा—

१२ जीवा ण भंते ! किं आभोगनिव्वत्तियाउया ? अणाभोगनिव्वत्तिताउया ?

गोयमा ! नो आभोगनिव्वत्तिताउया, अणाभोगनिव्वत्तिताउया ।

[१२ प्र] भगवन् ! जीव, आभोगनिर्वर्तित आयुष्य वाले है या अनाभोगनिर्वर्तित आयुष्य वाले है ?

[१२ उ] गौतम ! जीव, आभोगनिर्वर्तित आयुष्य वाले नही है, किन्तु अनाभोगनिर्वर्तित आयुष्य वाले है ।

१३ एव नेरइया वि ।

[१३] इसी प्रकार नैरयिको के (आयुष्य के) विषय मे भी कहना चाहिए ।

१४ एव जाव वेमाणिया ।

[१४] यावत् वैमानिक पर्यन्त इसी तरह कहना चाहिए ।

विवेचन—चौवीस दण्डकवर्ती जीवो मे अनाभोगनिर्वर्तित आयुष्यबन्ध की प्ररूपणा—प्रस्तुत त्रिसूत्री मे चतुर्विंशति दण्डको के जीवो मे आभोगनिर्वर्तित आयुष्य-बन्ध का निषेध करके अनाभोग-निर्वर्तित आयुष्य-बन्ध की प्ररूपणा की गई है ।

आभोगनिर्वर्तित और अनाभोगनिर्वर्तित आयुष्य—समस्त सासारिक जीव अनाभोगपूर्वक (अजानपने मे=न जानते हुए) आयुष्य बाधते है, वे आभोगपूर्वक (जानपने मे=जानते हुए) आयुष्य बन्ध नही करते ।

समस्त जीवो के कर्कश-अकर्कश-वेदनीय कर्मबन्ध का हेतुपूर्वक निरूपण—

१५ अत्थि ण भंते ! जीवा ण कक्कसवेदणिज्जा कम्मा कज्जति ?

हंता, अत्थि ।

[१५ प्र] भगवन् ! क्या जीवो के कर्कश वेदनीय (अत्यन्त दु ख से भोगने योग्य—कठोर वेदना वाले) कर्म बधते है ?

[१५ उ] हाँ, गौतम ! बधते है ।

१६ कह ण भंते ! जीवा ण कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जति ?

गोयमा ! पाणातिवातेण जाव मिच्छादसणसल्लेणं, एव खलु गोयमा ! जीवाण कक्कसवेद-णिज्जा कम्मा कज्जति ।

[१६ प्र] भगवन् ! जीवो के कर्कशवेदनीय कर्म कैसे बधते हैं ?

[१६ उ] गौतम ! प्राणातिपात से यावत् मिथ्यादर्शन शल्य से जीवो के कर्कशवेदनीय कर्म बधते हैं ।

१७. अत्थि ण भंते ! नेरइयाण कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जति ?

एव चेव ।

[१७ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक जीवो के कर्कशवेदनीय कर्म बधते हैं ?

[१७ उ] हाँ, गौतम ! पहले कहे अनुसार बधते हे ।

१८. एव जाव वेमाणियाण ।

[१८] इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक कहना चाहिए ।

१९ अत्थि ण भंते ! जीवाण अकक्कसवेदणिज्जा कम्मा कज्जति ?

हता, अत्थि ।

[१९ प्र] भगवन् ! क्या जीवो के अकर्कशवेदनीय (सुखपूर्वक भोगने योग्य) कर्म बधते है ?

[१९ उ] हाँ गौतम ! बधते है ।

२० कह ण भंते ! जीवाण अकक्कसवेदणिज्जा कम्मा कज्जति ?

गोयमा ! पाणातिवातवेरमणेण जाव परिग्गहवेरमणेण कोहविवेगेण जाव मिच्छादसणसल्ल-विवेगेण, एव खलु गोयमा ! जीवाण अकक्कसवेदणिज्जा कम्मा कज्जति ।

[२० प्र] भगवन् ! जीवो के अकर्कशवेदनीय कर्म कैसे बधते है ?

[२० उ] गौतम ! प्राणातिपातविरमण से यावत् परिग्रह-विरमण तक से, इसी तरह क्रोध-विवेक से (लेकर) यावत् मिथ्यादर्शनशल्यविवेक से (जीवो के अकर्कशवेदनीय कर्म बधते है ।) हे गौतम ! इस प्रकार से जीवो के अकर्कशवेदनीय कर्म बधते है ।

२१ अत्थि ण भंते ! नेरतियाण अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जति ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

[२१ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक जीवो के अकर्कशवेदनीय कर्म बधते है ?

[२१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है । (अर्थात्—नैरयिको के अकर्कशवेदनीय कर्मो का बन्ध नही होता ।)

२२ एव जाव वेमाणिया । नवर मणुस्साण जहा जीवाण (सु १९) ।

[२२] इसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए । परन्तु मनुष्यो के विषय मे इतना विशेष है कि जैसे औघिक जीवो के विषय मे कहा गया है, वैसे ही सारा कथन करना चाहिए ।

विवेचन—समस्त जीवो के कर्कश-अकर्कश वेदनीय कर्मबन्ध का हेतुपूर्वक निरूपण—प्रस्तुत ८ सूत्रो (सू १५ से २२ तक) मे समुच्चय जीवो और चौवीस दण्डकवर्ती जीवो के कर्कशवेदनीय और अकर्कशवेदनीय कर्मबन्ध के सम्बन्ध मे सहेतुक निरूपण किया गया है ।

कर्कशवेदनीय और अकर्कशवेदनीय कर्मबन्ध कैसे, और कब ?—जीवो के कर्कशवेदनीय कर्म बध जाते है, उनका पता तब लगता है, जब वे उदय मे आते है, भोगने पडते है, क्योकि कर्कशवेदनीय कर्म भोगते समय अत्यन्त दु खरूप प्रतीत होते है। जैसे स्कन्दक आचार्य के शिष्यो ने पहले किसी भव मे कर्कशवेदनीय कर्म बाधे थे। अकर्कशवेदनीय कर्म भोगने मे सुखरूप प्रतीत होते हैं, जैसे कि भरत चक्री आदि ने बाधे थे। कर्कशवेदनीय को बाधने का कारण १८ पापस्थानक-सेवन और अकर्कशवेदनीय-कर्मबन्ध का कारण इन्ही १८ पापस्थानो का त्याग है। नरकादि जीवो मे प्राणातिपात आदि पापस्थानो से विरमण न होने से वे अकर्कशवेदनीय-कर्मबन्ध नही कर सकते।[1]

चौवीस दण्डकवर्ती जीवो के साता-असाता वेदनीय कर्मबन्ध और उनके कारण—

२३ अत्थि ण भते ! जीवाण सातावेदणिज्जा कम्मा कज्जति ?

हता, अत्थि।

[२३ प्र] भगवन् ! क्या जीवो के सातावेदनीय कर्म बधते हैं ?

[२३ उ] हाँ, गौतम ! बधते है।

२४. कहं ण भते ! जीवाण सातावेदणिज्जा कम्मा कज्जति ?

गोयमा ! पाणाणुकपाए भूयाणुकपाए जीवाणुकपाए सत्ताणुकपाए, बहूणं पाणाण जाव सत्ताण अदुक्खणयाए असोयणयाए अजूरणयाए अतिप्पणयाए अपिट्टणयाए अपरितावणयाए, एवं खलु गोयमा ! जीवाण सातावेदणिज्जा कम्मा कज्जति।

[२४ प्र] भगवन् ! जीवो के सातावेदनीय कर्म कैसे बधते है ?

[२४ उ] गौतम ! प्राणो पर अनुकम्पा करने से, भूतो पर अनुकम्पा करने से, जीवो के प्रति अनुकम्पा करने से और सत्त्वो पर अनुकम्पा करने से, तथा बहुत-से प्राण, भूत, जीव और सत्त्वो को दु ख न देने से, उन्हे शोक (दैन्य) उत्पन्न न करने से, (शरीर को सुखा देने वाली) चिन्ता (विषाद या खेद) उत्पन्न न कराने से, विलाप एव रुदन करा कर आसू न बहवाने से, उनको न पीटने से, उन्हे परिताप न देने से (जीवो के सातावेदनीय कर्म बधते है।) हे गौतम ! इस प्रकार से जीवो के सातावेदनीय कर्म बधते है।

२५ एव नेरतियाण वि।

[२५] इसी प्रकार नैरयिक जीवो के (भी सातावेदनीय कर्मबन्ध के) विषय मे कहना चाहिए।

२६ एव जाव वेमाणियाण।

[२६] इसी प्रकार यावत् वैमानिकपर्यन्त कहना चाहिए।

२७ अत्थि णं भते ! जीवाण असातावेदणिज्जा कम्मा कज्जति ?

हता, अत्थि।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३०५

[२७ प्र] भगवन्! क्या जीवो के असातावेदनीय कर्म बधते है?

[२७ उ] हाँ गौतम! बधते है।

२८ कहृ ण भते! जीवाणं अस्सायावेयणिज्जा कम्मा कज्जति?

गोयमा! परदुक्खणयाए परसोयणयाए परजूरणयाए परतिप्पणयाए परपिट्टणयाए परपरितावणयाए, बहूण पाणाण जाव सत्ताण दुक्खणताए सोयणयाए जाव परितावणयाए, एव खलु गोयमा! जीवाण असातावेदणिज्जा कम्मा कज्जति।

[२८ प्र] भगवन्! जीवो के असातावेदनीय कर्म कैसे बधते है?

[२८ उ] गौतम! दूसरो को दु ख देने से, दूसरे जीवो को शोक उत्पन्न करने से, जीवो को विषाद या चिन्ता उत्पन्न करने से, दूसरो को रुलाने या विलाप कराने से, दूसरो को पीटने से और जीवो को परिताप देने से, तथा बहुत-से प्राण, भूत, जीव एव सत्त्वो को दु ख पहुँचाने से, शोक उत्पन्न करने से यावत् उनको परिताप देने से (जीवो के असातावेदनीय कर्मवन्ध होता है।) हे गौतम इस प्रकार से जीवो के असातावेदनीय कर्म बधते है।

२९ एव नेरतियाण वि।

[२९] इसी प्रकार नैरयिकजीवो के (असातावेदनीय कर्मवन्ध के) विषय मे समझना चाहिए।

३० एव जाव वेमाणियाणं।

[३०] इसी प्रकार यावत् वैमानिकपर्यन्त (असातावेदनीयबन्धविषयक) कथन करना चाहिए।

विवेचन—चौवीस दण्डकवर्ती जीवो के साता-असातावेदनीय कर्मबन्ध और उनके कारण— प्रस्तुत आठ सूत्रो (२३ से ३० तक) मे समस्त जीवो के सातावेदनीय एव असातावेदनीय कर्मबन्ध तथा इनके कारणो का निरूपण किया गया है।

कठिन शब्दो के अर्थ—असोयणयाए=शोक उत्पन्न न करने से। **अजूरणयाए**=जिससे शरीर छीजे, ऐसा विषाद या शोक पैदा न करने से। **अतिप्पणयाए**—आसू बहे, इस प्रकार का विलाप या रुदन न कराने से। **अपिट्टणयाए**=मारपीट न करने से।[1]

दुःषमदुःषमकाल मे भारतवर्ष, भारतभूमि एवं भारत के मनुष्यों के आचार (आकार) और भाव के स्वरूप-निरूपण—

३१ जबुद्दीवे ण भते! दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए दुस्समदुस्समाए समाए उत्तमकट्ठपत्ताए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे भविस्सति?

गोयमा! काले भविस्सति हाहाभूते भभाभूए कोलाहलभूते, समयाणुभावेण य ण खरफरुस-धूलिमइला दुव्विसहा वाउला भयकरा वाता सवट्टगा य वाइति, इह अभिक्ख धूमाहिंति य दिसा

1 भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३०५

समता रयस्सला रेणुकलुसतमपडलनिरालोगा, समयलुक्खयाए य ण अहिय चदा सीत मोच्छति, अहिय सूरिया तवइस्सति, अदुत्तर च ण अभिक्खण बहवे अरसमेहा विरसमेहा खारमेहा खत्तमेहा (खट्टमेहा) अग्गिमेहा विज्जुमेहा विसमेहा असणिमेहा अपिबणिज्जोदगा वाहिरोगवेदणोदीरणापरिणामसलिला अमणुण्णपाणियगा चडानिलपहयतिक्खधारानिवायपउर वास वासिहिंति। जेण भारहे वासे गामागर-नगर-खेड-कब्बड-मडब-दोणमुह-पट्टणाऽऽसमगत जणवय, चउप्पयगवेलए खहयरे य पक्खिसघे, गामाऽ-रण्णपयारनिरए तसे य पाणे बहुप्पगारे, रुक्ख-गुच्छ-गुम्म-लय-वल्लि-तण-पव्वग-हरितोसहि-पवाल-कुरमादीए य तणवणस्सतिकाइए विद्ध सेहिंति। पव्वय-गिरि-डोगरुत्थल-भट्टिमादीए य वेयड्ढगिरिवज्जे विरावेहिंति। सलिलबिल-गड्ड-दुग्ग-विसमनिण्णुन्नताइ गगा-सिंधू-वज्जाइ समीकरेहिंति।

[३१ प्र] भगवन्! इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष मे इस अवसर्पिणी काल का दु षमदु षम नामक छठा आरा जब अत्यन्त उत्कट अवस्था को प्राप्त होगा, तब भारतवर्ष का आकारभाव-प्रत्यवतार (आकार या आचार और भावो का आविर्भाव) कैसा होगा?

[३१ उ] गौतम! वह काल हाहाभूत (मनुष्यो के हाहाकार से युक्त), भभाभूत (दु खार्त्त पशुओ के भा-भा शब्दरूप आर्त्तनाद से युक्त) तथा कोलाहलभूत (दु खपीडित पक्षियो के कोलाहल से युक्त) होगा। काल के प्रभाव से अत्यन्त कठोर, धूल से मलिन (धूमिल), असह्य, व्याकुल (जीवो को व्याकुल कर देने वाली), भयकर वात (हवाएँ) एव सवर्त्तक वात (हवाएँ) चलेगी। इस काल मे यहाँ बारबार चारो ओर से धूल उडने से दिशाएँ रज (धूल) से मलिन, और रेत से कलुषित, अन्धकारपटल से युक्त एव आलोक से रहित होगी। समय (काल) की रूक्षता के कारण चन्द्रमा अत्यन्त शीतलता (ठडक) फेंकेगे, सूर्य अत्यन्त तपेंगे। इसके अनन्तर बारम्बार बहुत से खराब रस वाले मेघ, विपरीत रसवाले मेघ, खारे जलवाले मेघ, खत्तमेघ (खाद के समान पानी वाले मेघ), (अथवा खट्टमेघ=खट्टे पानी वाले बादल), अग्निमेघ (अग्नि के समान गर्मजल वाले मेघ), विद्युत्मेघ (बिजली सहित मेघ), विषमेघ (जहरीले पानी वाले मेघ), अशनिमेघ (ओले—गडे बरसाने वाले या वज्र के समान पर्वतादि को चूर-चूर कर देने वाले मेघ), अपेय (न पीने योग्य) जल से पूर्ण मेघ (अथवा तृषा शान्त न कर सकने वाले पानी से युक्त मेघ), व्याधि, रोग और वेदना को उत्पन्न करने (उभाडने) वाले जल से युक्त तथा अमनोज्ञ जल वाले मेघ, प्रचण्ड वायु के थपेडो (आघात) से आहत हो कर तीक्ष्ण धाराओ के साथ गिरते हुए प्रचुर वर्षा बरसाएँगे, जिससे भारतवर्ष के ग्राम, आकर (खान), नगर, खेडे, कर्बट, मडम्ब, द्रोणमुख (बन्दरगाह), पट्टण (व्यापारिक मडियो) और आश्रम मे रहने वाले जनसमूह, चतुष्पद (चौपाये जानवर), खग (आकाश-चारी पक्षीगण), ग्रामो और जगलो मे सचार मे रत त्रसप्राणी तथा अनेक प्रकार के वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लताएँ, बेले, घास, दूब, पर्व्वक (गन्ने आदि), हरियाली, शालि आदि धान्य, प्रवाल और अकुर आदि तृणवनस्पतियाँ, ये सब विनष्ट हो जाएँगी। वैताढ्यपर्वत को छोड कर शेष सभी पर्वत, छोटे पहाड, टीले, डू गर, स्थल, रेगिस्तान बजरभूमि (भाठा-प्रदेश) आदि सबका विनाश हो जाएगा। गगा और सिन्धु, इन दो नदियो को छोड कर शेष नदियाँ, पानी के झरने, गड्ढे, (सरोवर, झील आदि), (नष्ट हो जाएँगे), दुर्गम और विषम (ऊँची-नीची) भूमि मे रहे हुए सब स्थल समतल क्षेत्र (सपाट मैदान) हो जाएँगे।

३२. तीसे ण भते! समाए भरहस्स वासस्स भूमीए केरिसए आयारभावपडोयारे भविस्सति?

गोयमा ! भूमी भविस्सति इगालभूता मुम्मुरभूता छारियभूता वे ल्लयभूया तत्तसमजोतिभूया धूलिबहुला रेणुबहुला पंकबहुला पणगबहुला चलणिबहुला, बहूण धरणिगोयराण सत्ताण दुनिक्कमा यावि भविस्सति ।

[३२ प्र] भगवन् ! उस समय भारतवर्ष की भूमि का आकार और भावो का आविर्भाव (स्वरूप) किस प्रकार का होगा ?

[३२ उ] गौतम ! उस समय इस भरतक्षेत्र की भूमि अगारभूत (अगारो के समान), मुर्मुरभूत (गोबर के उपलो की अग्नि के समान), भस्मीभूत (गर्म राख के समान), तपे हुए लोह के कडाह के समान, तप्तप्राय अग्नि के समान, बहुत धूल वाली, बहुत रज वाली, बहुत कीचड वाली, बहुत शैवाल (अथवा पाच रग की काई) वाली, चलने जितने बहुत कीचड वाली होगी, जिस पर पृथ्वीस्थित जीवो का चलना बडा ही दुष्कर हो जाएगा ।

३३. तीसे ण भंते ! समाए भारहे वासे मणुयाण केरिसए आयारभाव-पडोयारे भविस्सति ?

गोयमा ! मणुया भविस्सति दुरूवा दुव्वण्णा दुगंधा दूरसा दूफासा, अणिट्ठा अकंता जाव अमणामा, हीणस्सरा दीणस्सरा अणिट्ठस्सरा जाव अमणामस्सरा, अणादिज्जवयण-पच्चायाता निल्लज्जा कूड-कवड-कलह-वह-बंध-वेर-निरया मज्जादातिक्कमप्पहाणा अकज्जनिच्चुज्जता गुरुनियोगविणयरहिता य विकलरूवा परूढनह-केस-मंसुरोमा काला खरफरुसझामवण्णा फुट्टसिरा कविलपलियकेसा बहुण्हारुसपिणद्धदुद्दसणिज्जरूवा सकुडियवलीतरगपरिवेढियगमगा जरापरिणत व्व थेरगनरा पविरलपरिसडियदतसेढी उब्भडघडमुहा विसमनयणा वकनासा वकवलीविगतभेसणमुहा कच्छूकसराभिभूता खरतिक्खनक्खकडूइय-विक्खयतणू दुद्द-किडिभ-सिज्झफुडियफरुसच्छवी चित्तलगा टोलगति-विसम-सधिबधणउक्कुडुअट्ठिगविभत्तदुब्बलाकुसघयणकुप्पमाणकुसठिता कुरूवा कुट्ठाणासणकुसेज्जकुभोइणो असुइणो अणेगवाहिपरिपीलियगमगा खलतिविब्भलगती निरुच्छाहा सत्तपरिवज्जिया विगतचेट्ठनट्ठतेया अभिक्खण सीय-उण्ह-खर-फरुस-वातविज्झडियमलिणपसुरउगु डितगमगा बहुकोह-माण-माया बहुलोभा असुहदुक्खभागी ओसन्न धम्मसण्णा-सम्मत्तपरिब्भट्ठा उक्कोसेणं रयणिपमाणमेत्ता सोलसवीसतिवासपरमाउसा पुत्त-णत्तुपरियालपणयबहुला गगा-सिंधूओ महानदीओ वेयड्ढ च पव्वय निस्साए बहुत्तरिं णिगोदा बीयबीयामेत्ता बिलवासिणो भविस्सति ।

[३३ प्र] भगवन् ! उस समय (दु षमदु षम नामक छठे आरे) मे भारतवर्ष के मनुष्यो का आकार या आचार और भावो का आविर्भाव (स्वरूप) कैसा होगा ?

[३३ उ] गौतम ! उस समय मे भारतवर्ष के मनुष्य अति कुरूप, कुवर्ण, कुगन्ध, कुरस और कुस्पर्श से युक्त, अनिष्ट, अकान्त (कान्तिहीन या अप्रिय) यावत् अमनोगम, हीनस्वर वाले, दीनस्वर वाले, अनिष्टस्वर वाले यावत् अमनाम स्वर वाले, अनादेय और अप्रतीतियुक्त वचन वाले, निर्लज्ज, कूट-कपट, कलह, वध (मारपीट), बन्ध, और वैरविरोध मे रत, मर्यादा का उल्लघन करने मे प्रधान (प्रमुख), अकार्य करने मे नित्य उद्यत, गुरुजनो (माता-पिता आदि पूज्यजनो) के आदेशपालन, और विनय से रहित, विकलरूप (बेडौल सूरत शक्ल) वाले, बढे हुए नख, केश, दाढी, मू छ और रोम वाले,

कालेकलूटे, अत्यन्त कठोर श्यामवर्ण के बिखरे हुए बालो वाले, पीले और सफेद केशो वाले, बहुत-सी नसो (स्नायुओ) से शरीर बधा हुआ होने से दुर्दर्शनीय रूप वाले, सकुचित (सिकुडे हुए) और वलीतरगो (झुरियो) से परिवेष्टित, टेढेमेढे अगोपाग वाले, इसलिए जरापरिणत वृद्धपुरुषो के समान प्रविरल (थोडे-से) टूटे और सडे हुए दातो वाले, उद्भट घट के समान भयकर मुख वाले, विषम नेत्रो वाले, टेढी नाक वाले तथा टेढेमेढे एव झुरियो से विकृत हुए भयकर मुख वाले, एक प्रकार की भयकर खुजली (पाव=पामा) वाले, कठोर एव तीक्ष्ण नखो से खुजलाने के कारण विकृत बने हुए, दाद, एक प्रकार के कोढ (किडिभ), सिध्म (एक प्रकार के भयकर कोढ वाले, फटी हुई कठोर चमडी वाले, विचित्र अग वाले, ऊट आदि-सी गति (चाल) वाले, (बुरी आकृति वाले), शरीर के जोडो के विषम बधन वाले, ऊँची- नीची विषम हड्डियो एव पसलियो से युक्त, कुगठनयुक्त, कुसहनन वाले, कुप्रमाणयुक्त विषम सस्थानयुक्त, कुरूप, कुस्थान मे बढे हुए शरीर वाले, कुशय्या वाले (खराब स्थान मे शयन करने वाले), कुभोजन करने वाले, विविध व्याधियो से पीडित, स्खलित गति (लडखडाती चाल) वाले, उत्साहरहित, सत्त्वरहित, विकृत चेष्टा वाले, तेजोहीन, बारबार शीत, उष्ण, तीक्ष्ण और कठोर वात से व्याप्त (सत्रस्त), रज आदि से मलिन अग वाले, अत्यन्त क्रोध, मान, माया और लोभ से युक्त, अशुभ दु ख के भागी, प्राय धर्मसज्ञा और सम्यक्त्व से परिभ्रष्ट, होगे। उनकी अवगाहना उत्कृष्ट एक रत्निप्रमाण (एक मु ड हाथ भर) होगी। उनका आयुष्य (प्राय) सोलह वर्ष का और अधिक-से-अधिक बीस वर्ष का (परमायुष्य) होगा। वे बहुत से पुत्र-पौत्रादि परिवार वाले होगे और उन पर उनका अत्यन्त स्नेह (ममत्व या मोहयुक्त प्रणय) होगा। इनके ७२ कुटुम्ब (निगोद) बीजभूत (आगामी मनुष्यजाति के लिए बीजरूप) तथा बीजमात्र होगे। ये गगा और सिन्धु महानदियो के बिलो मे और वैताढ्य पर्वत की गुफाओ का आश्रय लेकर निवास करेगे।

विवेचन—दु षमदुःषमकाल मे भारतवर्ष, भारत-भूमि एवं भारत के मनुष्यो के आचार (आकार) और भाव का स्वरूप-निरूपण—प्रस्तुत सूत्र मे विस्तार से अवसर्पिणी के छठे आरे के दु षमदु षमकाल मे भारतवर्ष के, भारत-भूमि की, एव भारत के मनुष्यो के आचार-विचार एव आकार तथा भावो के स्वरूप का निरूपण किया गया है।

निष्कर्ष—छठे आरे मे भरतक्षेत्र की स्थिति अत्यन्त सकटापन्न, भयकर, हृदय-विदारक, अनेक रोगोत्पादक, अत्यन्त शीत, ताप, वर्षा आदि से दु सह्य एव वनस्पतिरहित नीरस सूखी-रूखी भूमि पर निवास के कारण असह्य होगी। भारतभूमि अत्यन्त गर्म, धूलभरी, कीचड से लथपथ एव जीवो के चलने मे दु सह होगी। भारत के मनुष्यो की स्थिति तो अत्यन्त दु खद, असह्य, कषाय से रजित होगी। विषम-बेडौल अगो से युक्त होगी।[1]

कठिन शब्दो के विशेष अर्थ—**उत्तमकट्ठपत्ताए**=उत्कट अवस्था—पराकाष्ठा या परमकष्ट को प्राप्त। **दुव्विसहा**=दु सह, कठिनाई से सहन करने योग्य। **वाउल**=व्याकुल। **वाया-संवट्टगा य वाहिंति**-सवर्तक हवाएँ चलेगी। **धूमाहिंति**=धूल उडती होने से। **रेणुकलुसतमपडलनिरालोगा**=रज से मलिन होने से अन्धकार के पटल जैसी, नही दिखाई देने वाली। **चडानिलपहयतिक्खधारानिवाय-पउर वासं वासिहिंति**=प्रचण्ड हवाओ से टकराकर अत्यन्त तीक्ष्ण धारा के साथ गिराने से प्रचुर

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भाग-१, पृ २९३-२९४

वर्षा बरसाएँगे। डोंगर=छोटे पर्वत। दुण्णिक्कमा=दुर्निक्रम—मुश्किल से चलने योग्य। अणादेज्ज-वयणा=जिनके वचन स्वीकार करने योग्य न हो। मज्जायातिक्कमप्पहाणा=मर्यादा का उल्लघन करने मे अग्रणी। गुरुनियोगविणयरहिता=गुरुजनो के आदेश पालन एव विनय से रहित। फुट्टसिरा खडे या बिखरे केशो वाले। कविल-पलियकेसा=कपिल (पीले) एव पलित (सफेद) केशो वाले। उब्भडघडमुहा=उद्भट- (विकराल) घटमुख जैसे मुखवाले। वंकवलीविगतभेसणमुहा=टेढेमेढे झुर्रियो से व्याप्त (विकृत) भीषणमुख वाले। कच्छूकसराभिभूता=कच्छू (पाँव) के कारण खाजखुजली से आक्रान्त। टोलगति=ऊँट के समान गति वाले, अथवा ऊँट के समान वेडौल आकृति वाले। खलतविब्भलगती =स्खलनयुक्त विह्वल गति वाले। ओसन्न=वहुलता से, प्राय। णिगोदा=कुटुम्व। पुत्त-णत्तुपरियालपणयबहुला=पुत्र-नाती आदि परिवार वाले एव उनके परिपालन मे अत्यन्त ममत्व वाले।[1]

छठे आरे के मनुष्यो के आहार तथा मनुष्य-पशु-पक्षियो के आचारादि के अनुसार मरणोपरान्त उत्पत्ति का वर्णन—

३४ ते ण भते ! मणुया कमाहारमाहारेंहिंति ?

गोयमा ! तेण कालेण तेणं समएण गगा-सिंधूओ महानदीओ रहपहवित्थाराओ अक्खसोतप्प-माणमित्त जल वोज्झिहिंति, से वि य ण जले बहुमच्छ-कच्छभाइण्णे णो चेव ण आउबहुले भविस्सति। तए ण ते मणुया सूरोग्गमणमुहुत्तसि य सूरत्थमणमुहुत्तसि य बिलेहिंतो निद्धाहिंति, बिलेहिंतो निद्धाइत्ता मच्छ-कच्छभे थलाइं गाहेहिंति, मच्छ-कच्छभे थलाइ गाहेत्ता सीतातवतत्तएहिं मच्छ-कच्छएहिं एक्कवीसं वाससहस्साइ वित्ति कप्पेमाणा विहरिस्सति।

[३४ प्र] भगवन् ! (उस दु षमदु षमकाल के) मनुष्य किस प्रकार का आहार करेंगे ?

[३४ उ] गौतम ! उस काल और उस समय मे गगा और सिन्धु महानदियाँ रथ के मार्ग-प्रमाण विस्तार वाली होगी। उनमे अक्षस्रोतप्रमाण (रथ की धुरी के प्रवेश करने के छिद्र जितने भाग मे आ सके उतना) पानी बहेगा। वह पानी भी अनेक मत्स्य, कछुए आदि से भरा होगा और उसमे भी पानी बहुत नही होगा। वे बिलवासी मनुष्य सूर्योदय के समय एक मुहूर्त्त और सूर्यास्त के समय एक मुहूर्त्त (अपने-अपने) बिलो से बाहर निकलेंगे। बिलो से बाहर निकल कर वे गगा और सिन्धु नदियो मे से मछलियो और कछुओ आदि को पकड कर जमीन मे गाडेंगे। इस प्रकार गाडे हुए मत्स्य-कच्छपादि (रात की) ठड और (दिन की) धूप से सिक जाएँगे। (तब वे शाम को गाडे हुए मत्स्य आदि को सुबह और सुबह के गाडे हुए मत्स्य आदि को शाम को निकाल कर खाएँगे।) इस प्रकार शीत और आतप से पके हुए मत्स्य-कच्छपादि से इक्कीस हजार वर्ष तक जीविका चलाते हुए (जीवननिर्वाह करते हुए) वे विहरण (जीवनयापन) करेंगे।

३५ ते ण भ ते ! मणुया निस्सीला णिग्गुणा निम्मेरा निप्पच्चक्खाणपोसहोववासा उस्सन्न मसाहारा मच्छाहारा खोद्दाहारा कुणिमाहारा कालमासे काल किच्चा कहिं गच्छिहिंति ? कहिं उववज्जिहिंति ?

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३०६ से ३०९ तक

कालेकलूटे, अत्यन्त कठोर श्यामवर्ण के बिखरे हुए बालो वाले, पीले और सफेद केशो वाले, बहुत-सी नसो (स्नायुओ) से शरीर बधा हुआ होने से दुर्दर्शनीय रूप वाले, सकुचित (सिकुडे हुए) और वलीतरगो (झुर्रियो) से परिवेष्टित, टेढेमेढे अगोपाग वाले, इसलिए जरापरिणत वृद्धपुरुषो के समान प्रविरल (थोडे-से) टूटे और सडे हुए दातो वाले, उद्‌भट घट के समान भयकर मुख वाले, विषम नेत्रो वाले, टेढी नाक वाले तथा टेढेमेढे एव झुर्रियो से विकृत हुए भयकर मुख वाले, एक प्रकार की भयकर खुजली (पाव=पामा) वाले, कठोर एव तीक्ष्ण नखो से खुजलाने के कारण विकृत बने हुए, दाद, एक प्रकार के कोढ (किडिभ), सिध्म (एक प्रकार के भयकर कोढ वाले, फटी हुई कठोर चमडी वाले, विचित्र अग वाले, ऊट आदि-सी गति (चाल) वाले, (बुरी आकृति वाले), शरीर के जोडो के विषम बधन वाले, ऊँची- नीची विषम हड्डियो एव पसलियो से युक्त, कुगठनयुक्त, कुसहनन वाले, कुप्रमाणयुक्त विषम सस्थानयुक्त, कुरूप, कुस्थान मे बढे हुए शरीर वाले, कुशय्या वाले (खराब स्थान मे शयन करने वाले), कुभोजन करने वाले, विविध व्याधियो से पीडित, स्खलित गति (लडखडाती चाल) वाले, उत्साहरहित, सत्त्वरहित, विकृत चेष्टा वाले, तेजोहीन, बारबार शीत, उष्ण, तीक्ष्ण और कठोर वात से व्याप्त (सत्रस्त), रज आदि से मलिन अग वाले, अत्यन्त क्रोध, मान, माया और लोभ से युक्त, अशुभ दु ख के भागी, प्राय धर्मसज्ञा और सम्यक्त्व से परिभ्रष्ट, होगे। उनकी अवगाहना उत्कृष्ट एक रत्निप्रमाण (एक मु ड हाथ भर) होगी। उनका आयुष्य (प्राय) सोलह वर्ष का और अधिक-से-अधिक बीस वर्ष का (परमायुष्य) होगा। वे बहुत से पुत्र-पौत्रादि परिवार वाले होगे और उन पर उनका अत्यन्त स्नेह (ममत्व या मोहयुक्त प्रणय) होगा। इनके ७२ कुटुम्ब (निगोद) बीजभूत (आगामी मनुष्यजाति के लिए बीजरूप) तथा बीजमात्र होगे। ये गगा और सिन्धु महानदियो के बिलो मे और वैताढ्य पर्वत की गुफाओ का आश्रय लेकर निवास करेगे।

विवेचन—दु षमदु षमकाल मे भारतवर्ष, भारत-भूमि एव भारत के मनुष्यो के आचार (आकार) और भाव का स्वरूप-निरूपण—प्रस्तुत सूत्र मे विस्तार से अवसर्पिणी के छठे आरे के दु षमदु षमकाल मे भारतवर्ष के, भारत-भूमि की, एवं भारत के मनुष्यो के आचार-विचार एव आकार तथा भावो के स्वरूप का निरूपण किया गया है।

निष्कर्ष—छठे आरे मे भरतक्षेत्र की स्थिति अत्यन्त सकटापन्न, भयकर, हृदय-विदारक, अनेक रोगोत्पादक, अत्यन्त शीत, ताप, वर्षा आदि से दु सह्य एव वनस्पतिरहित नीरस सूखी-रूखी भूमि पर निवास के कारण असह्य होगी। भारतभूमि अत्यन्त गर्म, धूलभरी, कीचड से लथपथ एव जीवो के चलने मे दु सह होगी। भारत के मनुष्यो की स्थिति तो अत्यन्त दु खद, असह्य, कषाय से रजित होगी। विषम-बेडौल अगो से युक्त होगी।[1]

कठिन शब्दो के विशेष अर्थ—**उत्तमकट्ठपत्ताए**=उत्कट अवस्था—पराकाष्ठा या परमकष्ट को प्राप्त। **दुव्विसहा**=दु सह, कठिनाई से सहन करने योग्य। **वाउल**=व्याकुल। **वाया-संवट्टगा य वाहिंति**-सवर्तक हवाएँ चलेगी। **धूमाहिंति**=धूल उडती होने से। **रेणुकलुसतमपडलनिरालोगा**=रज से मलिन होने से अन्धकार के पटल जैसी, नही दिखाई देने वाली। **चडानिलपहयतिक्खधारानिवाय-पउर वास वासिहिंति**=प्रचण्ड हवाओ से टकराकर अत्यन्त तीक्ष्ण धारा के साथ गिराने से प्रचुर

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भाग-१, पृ २९३-२९४

वर्षा बरसाएँगे। डोंगर=छोटे पर्वत। दुण्णिक्कमा=दुर्निक्रम—मुश्किल से चलने योग्य। अणादेज्ज-वयणा=जिनके वचन स्वीकार करने योग्य न हो। मज्जायातिक्कमप्पहाणा=मर्यादा का उल्लघन करने मे अग्रणी। गुरुनियोगविणयरहिता=गुरुजनो के आदेश पालन एव विनय से रहित। फुट्टसिरा खडे या बिखरे केशो वाले। कविल-पलियकेसा=कपिल (पीले) एव पलित (सफेद) केशो वाले। उब्भडघडमुहा=उद्भट- (विकराल) घटमुख जैसे मुखवाले। वकवलीविगतभेसणमुहा=टेढेमेढे झुर्रियो से व्याप्त (विकृत) भीषणमुख वाले। कच्छूकसराभिमूता=कच्छू (पाँव) के कारण खाजखुजली से आक्रान्त। टोलगति=ऊँट के समान गति वाले, अथवा ऊँट के समान बेडौल आकृति वाले। खलतविब्भलगती =स्खलनयुक्त विह्वल गति वाले। ओसन्न=बहुलता से, प्राय। णिगोदा=कुटुम्ब। पुत्त-णत्तुपरियालपणयबहुला=पुत्र-नाती आदि परिवार वाले एव उनके परिपालन मे अत्यन्त ममत्व वाले।[1]

छठे आरे के मनुष्यो के आहार तथा मनुष्य-पशु-पक्षियो के आचारादि के अनुसार मरणोपरान्त उत्पत्ति का वर्णन—

३४ ते ण भंते ! मणुया कमाहारमाहारेहिंति ?

गोयमा ! तेण कालेण तेणं समएणं गगा-सिघूओ महानदीओ रहपहवित्थाराओ अक्खसोतप्पमाणमित्तं जल वोज्झिहिंति, से वि य ण जले बहुमच्छ-कच्छभाइण्णे णो चेव णं आउबहुले भविस्सति। तए ण ते मणुया सूरोग्गमणमुहुत्तसि य सूरत्थमणमुहुत्तसि य बिलेहिंतो निद्धाहिंति, बिलेहिंतो निद्धाइत्ता मच्छ-कच्छभे थलाइं गाहेहिंति, मच्छ-कच्छभे थलाइ गाहेत्ता सीतातवतत्तएहिं मच्छ-कच्छएहिं एक्कवीस वाससहस्साइ वित्तिं कप्पेमाणा विहरिस्सति।

[३४ प्र] भगवन् ! (उस दु षमदु षमकाल के) मनुष्य किस प्रकार का आहार करेंगे ?

[३४ उ] गौतम ! उस काल और उस समय मे गगा और सिन्धु महानदियाँ रथ के मार्ग-प्रमाण विस्तार वाली होगी। उनमे अक्षस्रोतप्रमाण (रथ की धुरी के प्रवेश करने के छिद्र जितने भाग मे आ सके उतना) पानी बहेगा। वह पानी भी अनेक मत्स्य, कछुए आदि से भरा होगा और उसमे भी पानी बहुत नही होगा। वे बिलवासी मनुष्य सूर्योदय के समय एक मुहूर्त और सूर्यास्त के समय एक मुहूर्त (अपने-अपने) बिलो से बाहर निकलेगे। बिलो से बाहर निकल कर वे गगा और सिन्धु नदियो मे से मछलियो और कछुओ आदि को पकड कर जमीन मे गाडेंगे। इस प्रकार गाडे हुए मत्स्य-कच्छपादि (रात की) ठड और (दिन की) धूप से सिक जाएँगे। (तब वे शाम को गाडे हुए मत्स्य आदि को सुबह और सुबह के गाडे हुए मत्स्य आदि को शाम को निकाल कर खाएँगे।) इस प्रकार शीत और आतप से पके हुए मत्स्य-कच्छपादि से इक्कीस हजार वर्ष तक जीविका चलाते हुए (जीवननिर्वाह करते हुए) वे विहरण (जीवनयापन) करेंगे।

३५ ते ण भंते ! मणुया निस्सीला णिग्गुणा निम्मेरा निप्पच्चक्खाणपोसहोववासा उस्सन्न मसाहारा मच्छाहारा खोद्दाहारा कुणिमाहारा कालमासे काल किच्चा कहिं गच्छहिंति ? कहिं उववज्जिहिंति ?

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३०६ से ३०९ तक

गोयमा ! श्रोसन्न नरग-तिरिक्ख-जोणिएसु उववज्जिहिंति ।

[३५ प्र] भगवन् ! वे (उस समय के) शीलरहित, गुणरहित, मर्यादाहीन, प्रत्याख्यान (त्याग-नियम) और पोषधोपवास से रहित, प्राय मासाहारी, मत्स्याहारी, क्षुद्राहारी (अथवा मधु का आहार करने वाले अथवा भूमि खोद कर कन्दमूलादि का आहार करने वाले) एव कुणिमाहारी (मृतक का मास खाने वाले) मनुष्य मृत्यु के समय मर (काल) कर कहाँ जाएँगे, कहाँ उत्पन्न होगे ?

[३५ उ] गौतम ! वे (पूर्वोक्त प्रकार के) मनुष्य मर कर प्राय (नरक और तिर्यञ्चगति मे जाएँगे, और) नरक एव तिर्यञ्च-योनियो मे उत्पन्न होगे ।

३६, ते णं भ ते ! सीहा वग्घा विगा दीविया अच्छा तरच्छा परस्सरा णिस्सीला तहेव जाव कहिं उववज्जिहिंति ?

गोयमा ! श्रोसन्नं नरग-तिरिक्खजोणिएसु उववज्जिहिंति ।

[३६ प्र] भगवन् ! (उस काल और उस समय के) नि शील यावत् कुणिमाहारी सिंह, व्याघ्र, वृक (भेडिये), द्वीपिक (चीते, अथवा गेंडे), रीछ (भालू), तरक्ष (जरख) और शरभ (गेंडा) आदि (हिंस्र पशु) मृत्यु के समय मर कर कहाँ जाएँगे, कहाँ उत्पन्न होगे ?

[३६ उ] गौतम ! वे प्राय नरक और तिर्यञ्चयोनि मे उत्पन्न होगे ।

३७. ते ण भंते ! ढका कका विलका मद्दुगा सिही णिस्सीला ?

तहेव जाव श्रोसन्न नरग-तिरिक्खजोणिएसु उववज्जिहिंति ।

सेव भ ते ! सेव भंते ! त्ति० ।

॥ सत्तम सए : छट्ठो उद्देसश्रो समत्तो ॥

[३७ प्र] भगवन् ! (उस काल और उस समय के) नि शील आदि पूर्वोक्त विशेषणो से युक्त ढक (एक प्रकार के कौए), कक, बिलक, मद्गुक (जलकाक-जलकौए), शिखी (मोर) (आदि पक्षी मर कर कहाँ उत्पन्न होगे ?)

[३७ उ] गौतम ! (वे उस काल के पूर्वोक्त पक्षीगण मर कर) प्राय नरक एव तिर्यंच योनियो मे उत्पन्न होगे ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर श्री गौतमस्वामी यावत् विचरण करने लगे ।

विवेचन—छठे आरे के मनुष्यो के आहार तथा मनुष्य-पशुपक्षियो के आचार आदि के अनुसार मरणोपरान्त उत्पत्ति का वर्णन—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू ३४ से ३७ तक) मे से प्रथम मे छठे आरे के मनुष्यो की आहारपद्धति का तथा आगे के तीन सूत्रो मे क्रमश उस काल के नि शीलादि मानवो, पशुओ एव पक्षियो की मरणोपरान्त गति-योनि का वर्णन किया गया है ।

निष्कर्ष—उस समय के मनुष्यो का आहार प्राय मास, मत्स्य और मृतक का होगा । मासाहारी होने से वे शील, गुण, मर्यादा, त्याग-प्रत्याख्यान एव व्रत-नियम आदि धर्म-पुण्य से नितान्त

विमुख होगे। मत्स्य आदि को जमीन मे गाड कर, फिर उन्हे सूर्य के ताप और चन्द्रमा की शीतलता से सिकने देना ही उनकी आहार पकाने की पद्धति होगी। इस प्रकार की पद्धति से २१ हजार वर्ष तक जीवनयापन करने के पश्चात् वे मानव अथवा वे पशु-पक्षी आदि मर कर नरक या तिर्यञ्चगति मे उत्पन्न होगे।[1]

कठिन शब्दो के विशेषार्थ—अवखसोतप्पमाणमेत्त=रथ की धुरी टिकने के छिद्र जितने प्रमाणभर। **वोज्झिहिति**=वहेगे। **निद्धाहिति**=निकलेगे। **णिम्मेरा**=कुलादि की मर्यादा से हीन, नगधडग रहने वाले।[2]

॥ सप्तम शतक : छठा उद्देशक समाप्त ॥

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ २९५-२९६
२ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३०९

त ा उद्दे ओ : अणगार

सप्तम उद्देशक : अनगार

संवृत एवं उपयोगपूर्वक प्रवृत्ति करने वाले अनगार को लगने वाली क्रिया की प्ररूपणा

१ सवुडस्स ण भ ते अणगारस्स आउत्त गच्छमाणस्स जाव आउत्त तुयट्टमाणस्स, आउत्त वत्थ पडिग्गहं कबल पायपु छण गिण्हमाणस्स वा निक्खिवमाणस्स वा, तस्स ण भ ते ! किं इरियावहिया किरिया कज्जति ? सपराइया किरिया कज्जति ?

गोतमा ! संवुडस्स ण अणगारस्स जाव तस्स ण इरियावहिया किरिया कज्जति, णो संपराइया किरिया कज्जति ।

[१-१ प्र] भगवन् ! उपयोगपूर्वक चलते-बैठते, यावत् उपयोगपूर्वक करवट बदलते (सोते) तथा उपयोगपूर्वक वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोछन (रजोहरण) आदि ग्रहण करते और रखते हुए उस सवृत (सवरयुक्त) अनगार को क्या ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है अथवा साम्परायिकी क्रिया लगती है ?

[१-१ उ] गौतम ! उपयोगपूर्वक गमन करते हुए यावत् रखते हुए उस सवृत अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, किन्तु साम्परायिकी क्रिया नही लगती ।

[२] से केणट्ठे ण भते ! एवं वुच्चइ 'सवुडस्स ण जाव नो संपराइया किरिया कज्जति' ?

गोयमा ! जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा वोच्छिन्ना भवति तस्स ण इरियावहिया किरिया कज्जति तहेव जाव उस्सुत्तं रीयमाणस्स सपराइया किरिया कज्जति, से ण अहासुत्तमेव रीयति, से तेणट्ठे ण गोतमा ! जाव नो सपराइया किरिया कज्जति ।

[१-२ प्र] भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि यावत् उस सवृत अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, किन्तु साम्परायिकी क्रिया नही लगती ?

[१-२ उ] गौतम ! (वास्तव मे) जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्यवच्छिन्न (अनुदयप्राप्त अथवा सर्वथा क्षीण) हो गए हैं, उस (११-१२-१३ वे गुणस्थानवर्ती अनगार) को ही ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, क्योकि वही यथासूत्र (यथाख्यात-चारित्र सूत्रो-नियमो के अनुसार) प्रवृत्ति करता है । इस कारण से, हे गौतम ! उसको यावत् साम्परायिकी क्रिया नही लगती ।

विवेचन—संवृत एव उपयोगपूर्वक प्रवृत्ति करने वाले अनगार को लगने वाली क्रिया की प्ररूपणा—पूर्ववत् (शतक ७ उद्दे १ के सूत्र १६ के अनुसार) यहाँ भी सवृत एव उपयोगपूर्वक

यथासूत्र प्रवृत्ति करने वाले अकपायी अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगने की सयुक्तिक प्ररूपणा की गई है।

विविध पहलुओं से काम-भोग एवं कामी-भोगी के स्वरूप और उनके अल्पबहुत्व की प्ररूपणा—

२. रूवी भंते ! कामा ? अरूवी कामा ?

गोयमा ! रूवी कामा समणाउसो !, नो अरूवी कामा।

[२ प्र] भगवन् ! काम रूपी है या अरूपी है ?

[२ उ] आयुष्मन् श्रमण ! काम रूपी है, अरूपी नही है।

३ सचित्ता भंते ! कामा ? अचित्ता कामा ?

गोयमा ! सचित्ता वि कामा, अचित्ता वि कामा।

[३ प्र] भगवन् ! काम सचित्त हैं अथवा अचित्त हैं ?

[३ उ] गौतम ! काम सचित्त भी है और काम अचित्त भी है।

४ जीवा भंते ! कामा ? अजीवा कामा ?

गोतमा ! जीवा वि कामा, अजीवा वि कामा।

[४ प्र] भगवन् ! काम जीव है अथवा अजीव है ?

[४ उ] गौतम ! काम जीव भी है और काम अजीव भी है।

५ जीवाणं भंते ! कामा ? अजीवाणं कामा ?

गोयमा ! जीवाण कामा, नो अजीवाण कामा।

[५ प्र] भगवन् ! काम जीवो के होते हैं या अजीवो के होते है ?

[५ उ] गौतम ! काम जीवो के होते हैं, अजीवो के नही होते।

६. कतिविहा ण भंते ! कामा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा कामा पण्णत्ता, त जहा—सद्दा य, रूवा य।

[६ प्र] भगवन् ! काम कितने प्रकार के कहे गए है ?

[६ उ] गौतम ! काम दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—(१) शब्द और (२) रूप।

७ रूवी भंते ! भोगा ? अरूवी भोगा ?

गोयमा ! रूवी भोगा, नो अरूवी भोगा।

[७ प्र] भगवन् ! भोग रूपी है अथवा अरूपी हैं ?

[७ उ] गौतम ! भोग रूपी होते है, वे (भोग) अरूपी नही होते ।

८ सचित्ता भंते ! भोगा ? अचित्ता भोगा ?

गोयमा ! सचित्ता वि भोगा, अचित्ता वि भोगा ।

[८ प्र] भगवन् ! भोग सचित्त होते है या अचित्त होते है ?

[८ उ] गौतम ! भोग सचित्त भी होते हैं और भोग अचित्त भी होते है ।

९. जीवा भंते ! भोगा ?० पुच्छा ।

गोयमा ! जीवा वि भोगा, अजीवा वि भोगा ।

[९ प्र] भगवन् ! भोग जीव होते हैं या अजीव होते है ।

[९ उ] गौतम ! भोग जीव भी होते है और भोग अजीव भी होते हैं ।

१०. जीवाण भंते ! भोगा ? अजीवाणं भोगा ?

गोयमा ! जीवाण भोगा, नो अजीवाणं भोगा ।

[१० प्र] भगवन् ! भोग जीवो के होते हैं या अजीवो के होते है ?

[१० उ] गौतम ! भोग जीवो के होते हैं, अजीवो के नही होते ।

११. कतिविहा णं भंते ! भोगा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा भोगा पण्णत्ता, त जहा—गधा, रसा, फासा ।

[११ प्र] भगवन् ! भोग कितने प्रकार के कहे गए है ?

[११ उ] गौतम ! भोग तीन प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार—(१) गन्ध, (२) रस और (३) स्पर्श ।

१२ कतिविहा णं भंते ! कामभोगा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पचविहा कामभोगा पण्णत्ता, त जहा—सद्दा रूवा गधा रसा फासा ।

[१२ प्र] भगवन् ! काम-भोग कितने प्रकार के कहे गए है ?

[१२ उ] गौतम ! काम-भोग पाच प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार है—शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श ।

१३ [१] जीवा ण भंते ! किं कामी ? भोगी ?

गोयमा ! जीवा कामी वि, भोगी वि ।

[१३-१ प्र] भगवन् ! जीव कामी है अथवा भोगी हैं ?

[१३-१ उ] गौतम जीव कामी भी है और भोगी भी है।

[२] से केणट्ठेण भंते! एवं वुच्चति 'जीवा कामी वि, भोगी वि'?

गोयमा! सोइंदिय-चक्खिंदियाइं पडुच्च कामी, घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियाइं पडुच्च भोगी। से तेणट्ठेण गोयमा! जाव भोगी वि।

[१३-२ प्र] भगवन्! ऐसा किस कारण से कहते है कि जीव कामी भी है और भोगी भी है?

[१३-२ उ] गौतम! श्रोत्रेन्द्रिय और चक्षुरिन्द्रिय की अपेक्षा से जीव कामी है और घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय एवं स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्षा से जीव भोगी है। इस कारण से, हे गौतम! जीव कामी भी है और भोगी भी है।

१४ नेरइया णं भंते! किं कामी? भोगी?

एवं चेव।

[१४ प्र] भगवन्! नैरयिक जीव, कामी है अथवा भोगी है?

[१४ उ] गौतम! नैरयिक जीव भी पूर्ववत् कामी भी है, भोगी भी है।

१५ एवं जाव थणियकुमारा।

[१५] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारो तक कहना चाहिए।

१६ [१] पुढविकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! पुढविकाइया नो कामी, भोगी।

[१६-१ प्र] भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवो के सम्बन्ध मे भी यही प्रश्न है।

[१६-१ उ] गौतम! पृथ्वीकायिक जीव, कामी नही है, किन्तु भोगी है।

[२] से केणट्ठेण जाव भोगी?

गोयमा! फासिंदियं पडुच्च, से तेणट्ठेण जाव भोगी।

[१६-२ प्र] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि पृथ्वीकायिक जीव कामी नही, किन्तु भोगी है?

[१६-२ उ] गौतम! स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्षा से पृथ्वीकायिक जीव भोगी है। इस कारण से, हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीव यावत् भोगी हैं।

[३] एवं जाव वणस्सतिकाइया।

[१६-३] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीवो तक कहना चाहिए।

१७ [१] बेइंदिया एवं चेव। नवरं जिब्भिंदिय-फासिंदियाइं पडुच्च।

[१७-१] इसी प्रकार द्वीन्द्रिय जीव भी भोगी है, किन्तु विशेषता यह है कि वे जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्षा भोगी हैं।

[२] तेइंदिया वि एवं चेव। नवरं घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियाइं पडुच्च।

[१७-२] त्रीन्द्रिय जीव भी इसी प्रकार भोगी हैं, किन्तु विशेषता यह है कि वे घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्षा से भोगी हैं।

[३] चउरिंदियाणं पुच्छा।

गोयमा ! चउरिंदिया कामी वि भोगी वि।

[१७-३ प्र] भगवन् ! चतुरिन्द्रिय जीवो के सम्बन्ध मे प्रश्न है कि वे कामी हैं अथवा भोगी हैं ?

[१७-३ उ.] गौतम ! चतुरिन्द्रिय जीव कामी भी है और भोगी भी है।

[४] से केणट्ठेणं जाव भोगी वि ?

गोयमा ! चक्खिंदियं पडुच्च कामी, घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियाइं पडुच्च भोगी। से तेणट्ठेण जाव भोगी वि।

[१७-४ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते है कि चतुरिन्द्रिय जीव कामी भी है और भोगी भी हैं ?

[१७-४ उ] गौतम ! (चतुरिन्द्रिय जीव) चक्षुरिन्द्रिय की अपेक्षा से कामी है और घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्षा से भोगी हैं। इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि चतुरिन्द्रिय जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं।

१८ अवसेसा जहा जीवा जाव वेमाणिया।

[१८] शेष वैमानिक-पर्यन्त सभी जीवो के विषय मे औघिक जीवो की तरह कहना चाहिए कि वे कामी भी है, भोगी भी है।

१९ एतेसि णं भंते ! जीवाणं कामभोगीणं नोकामीणं, नोभोगीणं, भोगीण य कतरे कतरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा कामभोगी, नोकामी नोभोगी अणंतगुणा, भोगी अणंतगुणा।

[१९ प्र] भगवन् ! काम-भोगी, नोकामी नोभोगी और भोगी, इन जीवो मे से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

[१९ उ] गौतम ! कामभोगी जीव सबसे थोडे हैं, नोकामी-नोभोगी जीव उनसे अनन्तगुणे है और भोगी जीव उनसे अनन्तगुणे हैं।

विवेचन—विविध पहलुओ से काम-भोग एव कामी-भोगी के स्वरूप और उनके अल्पबहुत्व की प्ररूपणा—प्रस्तुत अठारह सूत्रो (सू २ से १९ तक) मे विविध पहलुओ से काम, भोग, कामी-भोगी जीवो के स्वरूप और उनके अल्पबहुत्व से सम्बन्धित सिद्धान्तसम्मत प्रश्नोत्तरी प्रस्तुत की गई है।

निष्कर्ष—जिनकी कामना-अभिलाषा तो की जाती हो किन्तु जो विशिष्ट शरीरस्पर्श के द्वारा भोगे न जाते हो, वे काम है, जैसे—मनोज्ञशब्द, सस्थान तथा वर्ण काम है। रूपी का अर्थ है—जिनमे रूप या मूर्तता हो। इस दृष्टि से काम रूपी है, क्योकि उनमे पुद्गलधर्मता होने से वे मूर्त्त हैं। समनस्क प्राणी के रूप की अपेक्षा से काम सचित्त है और शब्दद्रव्य की अपेक्षा तथा असज्ञी जीवो के शरीर के रूप की अपेक्षा से वे अचित्त भी है। यह सचित्त और अचित्त शब्द विशिष्ट चेतना अथवा सज्ञित्व तथा विशिष्टचेतनाशून्यता अथवा असज्ञित्व का बोधक है। जीवो के शरीर के रूपो की अपेक्षा से काम जीव है और शब्दो तथा चित्रित पुतली, चित्र आदि की अपेक्षा से काम अजीव भी है। कामसेवन के कारणभूत होने से वे जीवो के ही होते है, अजीवो मे काम का अभाव है। जो शरीर से भोगे जाएँ, वे गन्ध, रस और स्पर्श 'भोग' कहलाते है। वे भोग पुद्गल धर्मी होने से मूर्त्त है, अत रूपी हैं, अरूपी नही। किन्ही सज्ञीजीवो के गन्धादिप्रधान शरीरो की अपेक्षा से भोग सचित्त हैं और असज्ञीजीवो के गन्धादिविशिष्ट शरीरो की अपेक्षा अचित्त भी है। जीवो के शरीर तथा अजीव द्रव्य विशिष्टगन्धादि की अपेक्षा से भोग, जीव भी है, अजीव भी।

चतुरिन्द्रिय और सभी पचेन्द्रिय जीव काम-भोगी है, वे सबसे थोडे है। उनसे नोकामी-नोभोगी अर्थात् सिद्ध जीव अनन्तगुणे हैं और भोगी जीव—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, और त्रीन्द्रिय जीव उनसे अनन्तगुणे है क्योकि वनस्पतिकाय के जीव अनन्त हैं।[1]

क्षीणभोगी छद्मस्थ, अधोऽवधिक, परमावधिक एवं केवली मनुष्यो मे भोगित्व-प्ररूपणा—

२०. छउमत्थे णं भते! मणुस्से जे भविए अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववज्जित्तए, से नूण भते! से खीणभोगी नो पभू उट्ठाणेण कम्मेण बलेणं वीरिएण पुरिसक्कारपरक्कमेण विउलाइ भोगभोगाइ भु जमाणे विहरित्तए, से नूण भते! एयमट्ठ एव वयह?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, पभू ण से उट्ठाणेण वि कम्मेण वि बलेण वि वीरिएण वि पुरिसक्कारपरक्कमेण वि अन्नयराइ विपुलाइ भोगभोगाइ भु जमाणे विहरित्तए, तम्हा भोगी, भोगे परिच्चयमाणे महानिज्जरे महापज्जवसाणे भवति।

[२० प्र] भगवन्! ऐसा छद्मस्थ मनुष्य, जो किसी देवलोक मे देव रूप मे उत्पन्न होने वाला है, भगवन्! वास्तव मे, क्षीणभोगी (अन्तिम समय मे दुर्बल शरीर वाला होने से) उत्थान, कर्म बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम के द्वारा विपुल और भोगने योग्य भोगो को भोगता हुआ विहरण (जीवनयापन) करने मे समर्थ नही है? भगवन्! क्या आप इस अर्थ (तथ्य) को इसी तरह कहते है?

[२० उ] गौतम! यह अर्थ समर्थ नही है, क्योकि वह (देवलोक मे उत्पत्तियोग्य क्षीण-शरीरी भी) उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम द्वारा किन्ही विपुल एव भोग्य भोगो को

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३१०-३११

(यत्किंचित् रूप मे मन से भी) भोगने मे समर्थ है। इसलिए वह भोगी भोगो का (मन से) परित्याग करता हुआ ही महानिर्जरा और महापर्यवसान (महान् शुभ अन्त) वाला होता है।

२१ आहोहिए ण भंते ! मणुस्से जे भविए अन्नयरेसु देवलोएसु०, ।

एव चेव जहा छउमत्थे जाव महापज्जवसाणे भवति ।

[२१ प्र] भगवन् ! ऐसा अधोऽवधिक (नियत क्षेत्र का अवधिज्ञानी) मनुष्य, जो किसी देवलोक मे उत्पन्न होने योग्य है, क्या वह क्षीणभोगी उत्थान यावत् पुरुषकारपराक्रम द्वारा विपुल एव भोग्य भोगो को भोगने मे समर्थ है ?

[२१ उ] (हे गौतम !) इसके विषय मे उपर्युक्त छद्मस्थ के समान ही कथन जान लेना चाहिए, यावत् (भोगो का परित्याग करता हुआ ही वह महानिर्जरा और) महापर्यवसान वाला होता है।

२२ परमाहोहिए णं भंते ! मणुस्से जे भविए तेणेव भवग्गहणेण सिज्झित्तए जाव अंत करेत्तए, से नूणं भंते ! से खीणभोगी० ।

सेसं जहा छउमत्थस्स ।

[२२ प्र] भगवन् ! ऐसा परमावधिक (परम अवधिज्ञानी) मनुष्य जो उसी भवग्रहण से (जन्म मे) सिद्ध होने वाला यावत् सर्व-दु खो का अन्त करने वाला है, क्या वह क्षीणभोगी यावत् भोगने योग्य विपुल भोगो को भोगने मे समर्थ है ?

[२२ उ] (हे गौतम !) इसका उत्तर भी छद्मस्थ के लिये दिये हुए उत्तर के समान समझना चाहिए।

२३ केवली णं भंते ! मणूसे जे भविए तेणेव भवग्गहणेण० ।

एव चेव जहा परमाहोहिए जाव महापज्जवसाणे भवति ।

[२३ प्र] भगवन् ! केवलज्ञानी मनुष्य भी, जो उसी भव मे सिद्ध होने वाला है, यावत् सभी दु खो का अन्त करने वाला है, क्या वह विपुल और भोग्य भोगो को भोगने मे समर्थ है ?

[२४ उ] (हे गौतम !) इसका कथन भी परमावधिज्ञानी की तरह करना चाहिए, या यावत् वह महानिर्जरा और महापर्यवसान वाला होता है।

विवेचन—क्षीणभोगी छद्मस्थ, अधोऽवधिक, परमावधिक, एव केवली मनुष्यो मे भोगित्व-प्ररूपणा—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू २० से २३ तक) मे अन्तिम समय मे क्षीणदेह छद्मस्थादि मनुष्य भोग भोगने मे असमर्थ होने से भोगी कैसे कहे जा सकते है ? इस प्रश्न का सिद्धान्तसम्मत समाधान प्रतिपादित किया गया है।

भोग भोगने मे असमर्थ होने से ही भोगत्यागी नहीं—भोग भोगने का साधन शरीर होने से उसे यहाँ भोगी कहा गया है। तपस्या या रोगादि से जिसका शरीर अशक्त और क्षीण हो गया है, उसे 'क्षीणभोगी' कहते हैं। देवलोक मे देवरूप मे उत्पन्न होने वाला छद्मस्थ मनुष्य मरणासन्न अवस्था

मे अत्यन्त क्षीणभोगी दुर्बल होने से अन्तिम समय मे जीता हुआ भी उत्थानादि द्वारा किन्ही भोगों को भोगने मे जब असमर्थ है, तब वह भोगी कैसे कहलाएगा ? उसे भोगत्यागी कहना चाहिए, यह २१ वे सूत्रके प्रश्न का आशय है। इसका सिद्धान्तसम्मत उत्तर दिया गया है कि ऐसा दुर्बल मानव भी अन्तिम अवस्था मे जीता हुआ भी (मन एव वचन से) भोगो को भोगने मे समर्थ होता है। अतएव वह भोगी ही कहलाएगा, भोगत्यागी नही। भोगत्यागी तो वह तब कहलाएगा, जब भोगो (स्वाधीन अथवा अस्वाधीन समस्त भोग्य भोगो) का मन-वचन-काया तीनो से परित्याग कर देगा। ऐसी स्थिति मे वह भोग-त्यागी मनुष्य निर्जरा करता है, उससे भी देवलोकगति प्राप्त करता है अथवा महानिर्जरा एव महापर्यवसान वाला होता है।

नियतक्षेत्रविषयक अवधिज्ञान वाला अधोऽवधिक कहलाता है। उत्कृष्ट अवधिज्ञानवाला परमावधिज्ञानी चरमशरीरी होता है, और केवलज्ञानी तो चरमशरीरी है ही। इन की भोगित्व एव भोगत्यागित्व सम्बन्धी प्ररूपणा छद्मस्थ की तरह ही है।[1]

असंज्ञी और समर्थ (संज्ञी) जीवो द्वारा अकामनिकरण और प्रकामनिकरण वेदन का सयुक्तिक निरूपण—

२४ जे इमे भ ते ! असण्णिणो पाणा, तं जहा—पुढविकाइया जाव वणस्सतिकाइया छट्ठा य एगइया तसा, एते ण अधा मूढा तम पविट्ठा तमपडलमोहजालपलिच्छन्ना अकामनिकरण वेदणं वेदेंतीति वत्तव्व सिया ?

हता, गोयमा ! जे इमे असण्णिणो पाणा जाव वेदण वेदेंतीति वत्तव्व सिया।

[२४ प्र] भगवन् ! ये जो असज्ञी (अमनस्क) प्राणी है, यथा—पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक, ये पाच (स्थावर) तथा छठे कई त्रसकायिक (सम्मूर्च्छिम) जीव है, जो अन्ध (अन्धो की तरह अज्ञानान्ध) हैं, मूढ (मोहयुक्त होने से तत्त्वश्रद्धान के अयोग्य) हैं, तामस (अज्ञानरूप अन्धकार) मे प्रविष्ट की तरह है, (ज्ञानावरणरूप) तम पटल और (मोहनीयरूप) मोहजाल से प्रतिच्छन्न (आच्छादित) है, वे अकाम निकरण (अज्ञान रूप मे) वेदना वेदते हैं, क्या ऐसा कहा जा सकता है ?

[२४ उ] हाँ गौतम ! जो ये असज्ञी प्राणी पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक और छठे कई त्रसकायिक (सम्मूर्च्छिम) जीव है, यावत् ये सब अकामनिकरण वेदना वेदते है, ऐसा कहा जा सकता है।

२४. अत्थि ण भ ते ! पभू वि अकामनिकरण[2] वेदण वेदेति ?

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक
(ख) तुलना कीजिए—
वत्थ-गधमलकार, इत्थीओ सयणाणि य।
अच्छदा जे न भु जति, न से 'चाइ' त्ति वुच्चई ॥ २ ॥
जे य कते पिए भोए लद्धे वि पिट्ठिकुव्वई।
साहीणे चयइ भोए, से हु 'चाइ' त्ति वुच्चई ॥ ३ ॥ —दशवैकालिक सूत्र अ २, गा २-३

२ अकामनिकरण—जिसमे अकाम अर्थात् वेदना के अनुभव मे अमनस्क होने से अनिच्छा ही निकरण=कारण है, वह अकामनिकरण है, यह अज्ञानकारणक है।

हंता, गोयमा ! अत्थि ।

[२५ प्र] भगवन् ! क्या ऐसा होता है कि समर्थ होते हुए भी जीव, अकामनिकरण (अज्ञान-पूर्वक-अनिच्छापूर्वक) वेदना को वेदते है ?

[२५ उ] हाँ, गौतम ! वेदते हैं ।

२६. कहं णं भंते ! पभू वि अकामनिकरणं वेदणं वेदेंति ?

गोतमा ! जे णं णो पभू विणा पदीवेणं अंधकारंसि रूवाइं पासित्तए, जे णं नो पभू पुरतो रूवाइं अणिज्झाइत्ता णं पासित्तए, जे णं नो पभू मग्गतो रूवाइं अणवयक्खित्ता णं पासित्तए, जे णं नो पभू पासतो रूवाइं अणवलोएत्ता णं पासित्तए, जे णं नो पभू उड्ढं रूवाइं अणालोएत्ता णं पासित्तए, जे णं नो पभू अहे रूवाइं अणालोएत्ता णं पासित्तए, एस णं गोतमा ! पभू वि अकामनिकरणं वेदणं वेदेंति ।

[२६ प्र] भगवन् ! समर्थ होते हुए भी जीव, अकामनिकरण वेदना को कैसे वेदते है ?

[२६ उ] गौतम ! जो जीव समर्थ होते हुए भी अन्धकार मे दीपक के बिना रूपो (पदार्थों) को देखने मे समर्थ नही होते, जो अवलोकन किये बिना सम्मुख रहे हुए रूपो (पदार्थों) को देख नही सकते, अवेक्षण किये बिना पीछे (पीठ के पीछे) के भाग को नहीं देख सकते, अवलोकन किये बिना अगल-बगल के (पार्श्वभाग के दोनो ओर के) रूपो को नही देख सकते, आलोकन किये बिना ऊपर के रूपो को नही देख सकते और न आलोकन किये बिना नीचे के रूपो को देख सकते हैं, इसी प्रकार हे गौतम ! ये जीव समर्थ होते हुए भी अकामनिकरण वेदना वेदते है ।

२७ अत्थि णं भंते ! पभू वि पकामनिकरणं वेदणं वेदेंति ।

हंता, अत्थि ।

[२७ प्र] भगवन् ! क्या ऐसा भी होता है कि समर्थ होते हुए भी जीव, प्रकामनिकरण, (तीव्र इच्छापूर्वक) वेदना को वेदते हैं ?

[२७ उ] हाँ, गौतम ! वेदते है ।

२८ कहं णं भंते ! पभू वि पकामनिकरणं[1] वेदणं वेदेंति ?

गोयमा ! जे णं नो पभू समुद्दस्स पारं गमित्तए, जे णं नो पभू समुद्दस्स पारगताइं रूवाइं पासित्तए, जे णं नो पभू देवलोगं गमित्तए, जे णं नो पभू देवलोगगताइं रूवाइं पासित्तए एस णं गोयमा ! पभू वि पकामनिकरणं वेदणं वेदेंति ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ सत्तमसए : सत्तमो उद्देसओ समत्तो ॥

१ पकामनिकरण—प्रकाम—अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति न होने से प्रकृष्ट अभिलाषा ही जिसमे निकरण—कारण है, वह प्रकामनिकरण है ।

[२८ प्र.] भगवन् ! समर्थ होते हुए भी जीव, प्रकामनिकरण वेदना को किस प्रकार वेदते है ?

[२८ उ.] गौतम ! जो समुद्र के पार जाने मे समर्थ नही है, जो समुद्र के पार रहे हुए रूपो को देखने मे समर्थ नही है, जो देवलोक मे जाने मे समर्थ नही है, और जो देवलोक मे रहे हुए रूपो को देख नही सकते, हे गौतम ! वे समर्थ होते हुए भी प्रकामनिकरण वेदना को वेदते हैं।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करते है।

विवेचन—असज्ञी और समर्थ (सज्ञी) जीवो द्वारा अकामनिकरण एव प्रकामनिकरणवेदन का सयुक्तिक निरूपण—प्रस्तुत पाच सूत्रो (सू २४ से २८ तक) मे असज्ञी एव समर्थ जीवो द्वारा अकामनिकरण वेदन का तथा समर्थ जीवो द्वारा प्रकामनिकरणवेदन का सयुक्तिक निरूपण किया गया है।

असज्ञी और सज्ञी द्वारा अकाम-प्रकामनिकरण वेदन क्यो और कैसे ?—असज्ञी जीवो के मन न होने से वे इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति या विचारशक्ति के अभाव मे सुखदुख रूप वेदना अकामनिकरण रूप मे (अनिच्छा से, अज्ञानतापूर्वक) भोगते हैं। सज्ञी जीव समनस्क होने से देखने-जानने मे अथवा ज्ञानशक्ति और इच्छाशक्ति मे समर्थ होते हुए भी अनिच्छापूर्वक (अकामनिकरण) अज्ञानदशा मे सुखदु खरूप वेदन करते हैं। जैसे—देखने की शक्ति होते भी अन्धकार मे रहे हुए पदार्थो को दीपक के बिना मनुष्य नही देख सकता, इसी प्रकार आगे-पीछे, अगल-बगल, ऊपर नीचे रहे हुए पदार्थो को देखने की शक्ति होते हुए भी मनुष्य उपयोग के बिना नही देख सकता, वैसे ही समर्थ जीव के विषय मे समझना चाहिए। सज्ञी (समनस्क) जीवो मे इच्छाशक्ति और ज्ञानशक्ति होते हुए भी उसे प्रवृत्त करने का सामर्थ्य नही है, केवल उसकी तीव्र अभिलाषा है, इस कारण वे प्रकामनिकरण (तीव्र इच्छापूर्वक) वेदना वेदते हैं। जैसे—समुद्रपार जाने की, समुद्रपार रहे हुए रूपो को देखने की, देवलोक मे जाने की तथा वहाँ के रूपो को देखने की शक्ति न होने से जीव तीव्र अभिलाषापूर्वक वेदना वेदते है, वैसे ही यहाँ समझना चाहिए।

निष्कर्ष—असज्ञी जीव इच्छा और ज्ञान की शक्ति के अभाव मे अनिच्छा से अज्ञानपूर्वक सुख-दु ख वेदते हैं। सज्ञी जीव इच्छा और ज्ञानशक्ति से युक्त होते हुए भी उपयोग के बिना अनिच्छा से और अज्ञानपूर्वक सुख-दु ख वेदते है, और ज्ञान एव इच्छाशक्ति से युक्त होते हुए भी प्राप्तिरूप सामर्थ्य के अभाव मे मात्र तीव्रकामनापूर्वक वेदना वेदते हैं।[1]

॥ सप्तम शतक सप्तम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवती० अ वृत्ति, पत्राक ३१२, (ख) भगवती० (गुजराती अनुवाद-टिप्पणयुक्त) खण्ड ३, पृ २९

अट्ठ ।ो उद्दे ओ : 'छउ त्थ'

अष्टम उद्देशक : 'छद्मस्थ'

संयमादि से छद्मस्थ के सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होने का निषेध—

१ छउमत्थे ण भंते ! मणूसे तीयमणंतं सासय समय केवलेणं संजमेणं० ?

एव जहा पढमसते चउत्थे उद्देसए (सू० १२-१८) तहा भाणियव्व जाव अलमत्थु ।

[१ प्र] भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य, अनन्त और शाश्वत अतीतकाल मे केवल सयम द्वारा, केवल संवर द्वारा, केवल ब्रह्मचर्य से, तथा केवल अष्टप्रवचनमाताओ के पालन से सिद्ध हुआ है, बुद्ध हुआ है, यावत् उसने सर्व दु खो का अन्त किया है ?

[१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है। इस विषय मे प्रथम शतक के चतुर्थ उद्देशक (सू १२-१८) मे जिस प्रकार कहा है, उसी प्रकार यहाँ यावत् 'अलमत्थु' पाठ तक कहना चाहिए ।

विवेचन—सयमादि से छद्मस्थ के सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होने का निषेध—प्रस्तुत प्रथम सूत्र मे भगवतीसूत्र के प्रथम शतक के चतुर्थ उद्देशक मे उक्त पाठ के अतिदेशपूर्वक निषेध किया गया है कि केवल सयम आदि से अतीत मे कोई छद्मस्थ सिद्ध, बुद्ध, मुक्त नही हुआ, अपितु केवली होकर ही सिद्ध होते है, यह निरूपण है ।

फलितार्थ—प्रथम शतक के चतुर्थ उद्देशकोक्त पाठ का फलितार्थ यह है कि भूत, वर्तमान और भविष्य मे जितने जीव सिद्ध, बुद्ध मुक्त हुए है, होते है, होगे, वे सभी उत्पन्न ज्ञान-दर्शन के धारक अरिहन्त, जिन, केवली होकर ही हुए है, होते है, होगे। उत्पन्न ज्ञान-दर्शनधारक अरिहन्त, जिन केवली को ही अलमत्थु (पूर्ण) कहना चाहिये ।[1]

हाथी और कुंथुए के समानजीवत्व की प्ररूपणा—

२. से णूण भंते ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे चेव जीवे ?

हता, गोयमा ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य एव जहा रायपसेणइज्जे जाव खुड्डिय वा, महालिय वा, से तेणट्ठेण गोयमा ! जाव समे चेव जीवे ।

[२ प्र] भगवन् ! क्या वास्तव मे, हाथी और कुन्थुए का जीव समान है ?

[२ उ] हाँ गौतम ! हाथी और कुन्थुए का जीव समान है। इस विषय मे रायपसेणीय (राजप्रश्नीय) सूत्र मे कहे अनुसार यावत् 'खुड्डिय वा महालिय वा' इस पाठ तक कहना चाहिए ।

हे गौतम ! इसी कारण से हाथी और कुंथुए का जीव समान है ।

---

१ भगवती (हिन्दीविवेचन) भाग ३, पृ ११८३

विवेचन—हाथी और कुन्थुए के समान जीवत्व की प्ररूपणा—प्रस्तुत द्वितीय सूत्र मे रायपसेणीय सूत्रपाठ के अतिदेशपूर्वक हाथी और कुन्थुए के समजीवत्व की प्ररूपणा की गई है।

राजप्रश्नीय सूत्र में समान जीवत्व की सदृष्टान्त प्ररूपणा—हाथी का शरीर बडा और कुथुए का छोटा होते हुए भी दोनो मे मूलत आत्मा (जीव) समान है, इसे सिद्ध करने के लिए राजप्रश्नीय सूत्र मे दीपक का दृष्टान्त दिया गया है। जैसे—एक दीपक का प्रकाश एक कमरे मे फैला हुआ है, यदि उसे किसी बर्तन द्वारा ढँक दिया जाए तो उसका प्रकाश बर्तन-परिमित हो जाता है, इसी प्रकार जब जीव हाथी का शरीर धारण करता है तो वह (आत्मा) उतने बडे शरीर मे व्याप्त रहता है और जब कुथुए का शरीर धारण करता है तो उसके छोटे-से शरीर मे (आत्मा) व्याप्त रहता है। इस प्रकार केवल छोटे-बडे शरीर का ही अन्तर रहता है जीव मे कुछ भी अन्तर नही है। सभी जीव समान रूप से असख्यात प्रदेशो वाले है। उन प्रदेशो का सकोच-विस्तार मात्र होता है।

चौबीस दण्डकवर्ती जीवो द्वारा कृत पापकर्म दुःखरूप और उसकी निर्जरा सुखरूप—

३. नेरइयाणं भंते ! पावे कम्मे जे य कडे, जे य कज्जति, जे य कज्जिस्सति सव्वे से दुक्खे ? जे निज्जिण्णे से णं सुहे ?

हंता, गोयमा ! नेरइयाणं पावे कम्मे जाव सुहे।

[३ प्र] भगवन् ! नैरयिको द्वारा जो पापकर्म किया गया है, जो किया जाता है और जो किया जाएगा, क्या वह सब दु खरूप है और (उनके द्वारा) जिसकी निर्जरा की गई है, क्या वह सुख रूप है ?

[३ उ] हाँ, गौतम ! नैरयिको द्वारा जो पापकर्म किया गया है, यावत् वह सब दु खरूप है और (उनके द्वारा) जिन (पापकर्मो) की निर्जरा की गई है, वह सब सुखरूप है।

४ एव जाव वेमाणियाण।

[४] इस प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त चौबीस दण्डको मे जान लेना चाहिए।

विवेचन—चौबीस दण्डकवर्ती जीवो द्वारा कृत पापकर्म दुःखरूप और उसकी निर्जरा सुखरूप—प्रस्तुत सूत्रद्वय मे नैरयिको से वैमानिक-पर्यन्त सब जीवो के लिए पापकर्म दुख रूप और उसकी निर्जरा सुखरूप बताई गई है।

निष्कर्ष—पापकर्म ससार-परिभ्रमण का कारण होने से दु खरूप है, और पापकर्मो की निर्जरा सुखस्वरूप मोक्ष का हेतु होने से सुखरूप है।[१]

सुख और दु ख के कारण को यहाँ सुख-दु ख कहा गया है।

संज्ञाओ के दस प्रकार—चौबीस दण्डको में—

कति ण भंते ! सण्णाओ पण्णत्ताओ ?

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्राक ३१३, (ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ३, पृ ११८५

गोयमा ! दस सण्णाओ पण्णत्ताओ, त जहा—आहारसण्णा १ भयसण्णा २ मेहुणसण्णा ३ परिग्गहसण्णा ४ कोहसण्णा ५ माणसण्णा ६ मायासण्णा ७ लोभसण्णा ८ ओहसण्णा ९ लोगसण्णा १० ।

[५ प्र] भगवन् ! सज्ञाएँ कितने प्रकार की कही गई है ?

[५ उ] गौतम ! सज्ञाएँ दस प्रकार की कही गई है। वे इस प्रकार है—(१) आहारसज्ञा, (२) भयसज्ञा, (३) मैथुनसज्ञा, (४) परिग्रहसज्ञा, (५) क्रोधसज्ञा, (६) मानसज्ञा, (७) मायासज्ञा, (८) लोभसज्ञा, (९) लोकसज्ञा और (१०) ओघसज्ञा ।

६. एवं जाव वेमाणियाणं ।

[६] वैमानिकपर्यन्त चौबीस दण्डको मे ये दस सज्ञाएँ पाई जाती है ।

विवेचन—सज्ञाओं के दस प्रकार . चौबीस दण्डको मे—प्रस्तुत पचम सूत्र मे आहारसज्ञा आदि १० प्रकार की सज्ञाएँ चौबीसदण्डकवर्ती जीवो मे बताई गई है ।

सज्ञा की परिभाषाएँ—सज्ञान या आभोग अर्थात्—एक प्रकार की धुन को या मोहनीयादि कर्मोदय से आहारादि प्राप्ति की इच्छाविशेष को सज्ञा कहते है, अथवा जीव का आहारादि विषयक चिन्तन या मानसिक ज्ञान भी सज्ञा है । अथवा जिस क्रिया से जीव की इच्छा जानी जाए, उस क्रिया को भी सज्ञा कहते है ।

सज्ञाओ की व्याख्या—(१) **आहारसज्ञा**—क्षुधावेदनीय के उदय से कवलादि आहारार्थ पुद्गल-ग्रहणेच्छा, (२) **भयसज्ञा**—भयमोहनीय के उदय से व्याकुलचित्त पुरुष का भयभीत होना, कापना, रोमाचित होना, घबराना आदि, (३) **मैथुनसज्ञा**—पुरुषवेदादि (नोकषायरूप वेदमोहनीय) के उदय से, स्त्री आदि के अगो को छूने, देखने आदि की तथा तज्जनित कम्पनादि, जिससे मैथुनेच्छा अभिव्यक्त हो, (४) **परिग्रहसज्ञा**—लोभरूप कषायमोहनीय के उदय से आसक्तिपूर्वक्त सचित्त-अचित्त-द्रव्यग्रहणेच्छा, (५) **क्रोधसज्ञा**—क्रोध के उदय से आवेश, दोष रूप परिणाम एव नेत्र लाल होना, कापना, मुह सूखना आदि क्रियाएँ । (६) **मानसज्ञा**—मान के उदय से अहकारादिरूप परिणाम, (७) **मायासज्ञा**—माया के उदय से दुर्भावनावश दूसरो को ठगना, धोखा देना आदि, (८) **लोभसज्ञा**—लोभके उदय से सचित्त-अचित्तपदार्थ-प्राप्ति की लालसा, (९) **ओघसंज्ञा**—मतिज्ञानावरण आदि के क्षयोपशम से शब्द और अर्थ का सामान्यज्ञान, अथवा धुन ही धुन मे बिना उपयोग के की गई प्रवृत्ति, और (१०) **लोकसज्ञा**—सामान्य रूप से ज्ञात वस्तु को विशेष रूप से जानना, अथवा लोकरूढि या लोकदृष्टि के अनुसार प्रवृत्ति करना लोकसज्ञा है ।[1] ये दसो सज्ञाएँ न्यूनाधिक रूप से सभी छद्मस्थ ससारी जीवो मे पाई जाती है ।

नैरयिको को सतत अनुभव होने वाली दस वेदनाएँ—

६. नेरइया दसविह वेयण पच्चणुभवमाणा विहरति, त जहा—सीत उसिण खुह पिवास कडु परज्झ जर दाह भय सोगं ।

---

१ भगवती. अ वृत्ति, पत्राक ३१४

[७] नैरयिक जीव दस प्रकार की वेदना का अनुभव करते हुए रहते हैं। वह इस प्रकार— (१) शीत, (२) उष्ण, (३) क्षुधा, (४) पिपासा (५) कण्डू (खुजली), (६) पराधीनता, (७) ज्वर, (८) दाह, (९) भय और (१०) शोक।

विवेचन—नैरयिकों को सतत अनुभव होने वाली दस वेदनाएँ—प्रस्तुत सूत्र में शीत आदि दस वेदनाएँ, जो नैरयिकों को प्रत्यक्ष अनुभव में आती हैं, बताई गई हैं।

हाथी और कुंथुए को समान अप्रत्याख्यानिकी क्रिया लगने की प्ररूपणा—

८. [१] से नूणं भंते ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य समा चेव अपच्चक्खाणकिरिया कज्जति ?

हंता, गोयमा ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य जाव कज्जति।

[८-१ प्र] भगवन् क्या वास्तव में, हाथी और कुन्थुए के जीव को अप्रत्याख्यानिकी क्रिया समान लगती है ?

[८-१ उ] हाँ, गौतम ! हाथी और कुन्थुए के जीव को अप्रत्याख्यानिकी क्रिया समान लगती है।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जाव कज्जति ?

गोयमा ! अविरतिं पडुच्च। से तेणट्ठेणं जाव कज्जति।

[८-२ प्र] भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि हाथी और कुंथुए के यावत् क्रिया समान लगती है ?

[८-२ उ] गौतम ! अविरति की अपेक्षा से हाथी और कुन्थुए के जीव को अप्रत्याख्यानिकी क्रिया समान लगती है।

विवेचन—हाथी और कुंथुए को समान अप्रत्याख्यानिकी क्रिया लगने की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र में हाथी और कुन्थुए को अविरति की अपेक्षा से अप्रत्याख्यानिकी क्रिया समान रूप से लगने की प्ररूपणा की गई है, क्योंकि अविरति का सद्भाव दोनों में समान है।

आधाकर्मसेवी साधु को कर्मबन्धादि-निरूपण—

९. आहाकम्मं णं भंते ! भुंजमाणे किं बंधति ? किं पकरेति ? किं चिणाति ? किं उवचिणाति ?

एवं जहा पढमे सते नवमे उद्देसए (सु. २६) तहा भाणियव्वं जाव सासते पंडिते, पंडितत्तं असासयं।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

॥ सत्तमसए : अट्ठमो उद्देसओ समत्तो ॥

[१ प्र] भगवन् ! आधाकर्म (आहारादि) का उपयोग करने वाला साधु क्या बांधता है ? क्या करता है ? किसका चय करता है और किसका उपचय करता है ?

गोयमा ! दस सण्णाओ पण्णत्ताओ, त जहा—आहारसण्णा १ भयसण्णा २ मेहुणसण्णा ३ परिग्गहसण्णा ४ कोहसण्णा ५ माणसण्णा ६ मायासण्णा ७ लोभसण्णा ८ ओहसण्णा ९ लोगसण्णा १० ।

[५ प्र] भगवन् ! सज्ञाएँ कितने प्रकार की कही गई है ?

[५ उ] गौतम ! सज्ञाएँ दस प्रकार की कही गई है । वे इस प्रकार है—(१) आहारसज्ञा, (२) भयसज्ञा, (३) मैथुनसज्ञा, (४) परिग्रहसज्ञा, (५) क्रोधसज्ञा, (६) मानसज्ञा, (७) मायासज्ञा, (८) लोभसज्ञा, (९) लोकसज्ञा और (१०) ओघसज्ञा ।

६. एवं जाव वेमाणियाणं ।

[६] वैमानिकपर्यन्त चौबीस दण्डको मे ये दस सज्ञाएँ पाई जाती है ।

विवेचन—संज्ञाओ के दस प्रकार : चौबीस दण्डको मे—प्रस्तुत पचम सूत्र मे आहारसज्ञा आदि १० प्रकार की सज्ञाएँ चौबीसदण्डकवर्ती जीवो मे बताई गई है ।

सज्ञा की परिभाषाएँ—सज्ञान या आभोग अर्थात्—एक प्रकार की धुन को या मोहनीयादि कर्मोदय से आहारादि प्राप्ति की इच्छाविशेष को सज्ञा कहते है, अथवा जीव का आहारादि विषयक चिन्तन या मानसिक ज्ञान भी सज्ञा है । अथवा जिस क्रिया से जीव की इच्छा जानी जाए, उस क्रिया को भी सज्ञा कहते है ।

सज्ञाओ की व्याख्या—(१) **आहारसज्ञा**—क्षुधावेदनीय के उदय से कवलादि आहारार्थ पुद्गल-ग्रहणेच्छा, (२) **भयसज्ञा**—भयमोहनीय के उदय से व्याकुलचित्त पुरुष का भयभीत होना, कापना, रोमाचित होना, घबराना आदि, (३) **मैथुनसज्ञा**—पुरुषवेदादि (नोकषायरूप वेदमोहनीय) के उदय से, स्त्री आदि के अगो को छूने, देखने आदि की तथा तज्जनित कम्पनादि, जिससे मैथुनेच्छा अभिव्यक्त हो, (४) **परिग्रहसज्ञा**—लोभरूप कषायमोहनीय के उदय से आसक्तिपूर्वक्त सचित्त-अचित्त-द्रव्यग्रहणेच्छा, (५) **क्रोधसज्ञा**—क्रोध के उदय से आवेश, दोष रूप परिणाम एव नेत्र लाल होना, कापना, मुह सूखना आदि क्रियाएँ । (६) **मानसज्ञा**—मान के उदय से अहकारादिरूप परिणाम, (७) **मायासंज्ञा**—माया के उदय से दुर्भावनावश दूसरो को ठगना, धोखा देना आदि, (८) **लोभसज्ञा**—लोभके उदय से सचित्त-अचित्तपदार्थ-प्राप्ति की लालसा, (९) **ओघसंज्ञा**—मतिज्ञानावरण आदि के क्षयोपशम से शब्द और अर्थ का सामान्यज्ञान, अथवा धुन ही धुन मे बिना उपयोग के की गई प्रवृत्ति, और (१०) **लोकसंज्ञा**—सामान्य रूप से ज्ञात वस्तु को विशेष रूप से जानना, अथवा लोकरूढि या लोकदृष्टि के अनुसार प्रवृत्ति करना लोकसज्ञा है ।[1] ये दसो सज्ञाएँ न्यूनाधिक रूप से सभी छद्मस्थ ससारी जीवो मे पाई जाती है ।

नैरयिको को सतत अनुभव होने वाली दस वेदनाएँ—

६. नेरइया दसविह वेयण पच्चणुभवमाणा विहरति, त जहा—सीत उसिण खुह पिवास कडु परज्झ जर दाह भय सोग ।

---

१ भगवती, अ वृत्ति, पत्राक ३१४

[७] नैरयिक जीव दस प्रकार की वेदना का अनुभव करते हुए रहते हैं। वह इस प्रकार—(१) शीत, (२) उष्ण, (३) क्षुधा, (४) पिपासा (५) कण्डू (खुजली), (६) पराधीनता, (७) ज्वर, (८) दाह, (९) भय और (१०) शोक।

विवेचन—नैरयिको को सतत अनुभव होने वाली दस वेदनाएँ—प्रस्तुत सूत्र मे शीत आदि दस वेदनाएँ, जो नैरयिको को प्रत्यक्ष अनुभव मे आती है, बताई गई है।

हाथी और कुंथए को समान अप्रत्याख्यानिकी क्रिया लगने की प्ररूपणा—

८. [१] से नूण भंते ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य समा चेव अपच्चक्खाणकिरिया कज्जति ?

हंता, गोयमा ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य जाव कज्जति।

[८-१ प्र] भगवन् क्या वास्तव मे, हाथी और कुन्थुए के जीव को अप्रत्याख्यानिकी क्रिया समान लगती है ?

[८-१ उ] हाँ, गौतम ! हाथी और कुन्थुए के जीव को अप्रत्याख्यानिकी क्रिया समान लगती है।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एव वुच्चइ जाव कज्जति ?

गोयमा ! अविरतिं पडुच्च। से तेणट्ठेण जाव कज्जति।

[८-२ प्र] भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते है कि हाथी और कुथुए के यावत् क्रिया समान लगती है ?

[८-२ उ] गौतम ! अविरति की अपेक्षा से हाथी और कुन्थुए के जीव को अप्रत्याख्यानिकी क्रिया समान लगती है।

विवेचन—हाथी और कुथुए को समान अप्रत्याख्यानिकी क्रिया लगने की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र मे हाथी और कुन्थुए को अविरति की अपेक्षा से अप्रत्याख्यानिकी क्रिया समान रूप से लगने की प्ररूपणा की गई है, क्योकि अविरति का सद्भाव दोनो मे समान है।

आधाकर्मसेवी साधु को कर्मबन्धादि-निरूपण—

९ आहाकम्मं णं भंते ! भुंजमाणे किं बंधति ? किं पकरेति ? किं चिणाति ? किं उवचिणाति ?

एव जहा पढमे सते नवमे उद्देसए (सू २६) तहा भाणियव्व जाव सासते पडिते, पडितत्तं असासयं।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

॥ सत्तमसए : अट्ठमो उद्देसओ समत्तो ॥

[१ प्र] भगवन् ! आधाकर्म (आहारादि) का उपयोग करने वाला साधु क्या बाधता है ? क्या करता है ? किसका चय करता है और किसका उपचय करता है ?

णवमो उद्देसओ : 'असंवुड'

नवम उद्देशक : 'असंवृत'

असंवृत अनगार द्वारा इहगत बाह्यपुद्गलग्रहणपूर्वक विकुर्वण-सामर्थ्य-निरूपण—

१ असवुडे ण भते ! अणगारे बाहिरए पोग्गले अपरियादिइत्ता पभू एगवण्ण एगरूव विउव्वित्तए ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[१ प्र] भगवन् ! क्या असवृत (सवररहित=प्रमत्त) अनगार, बाहर के पुद्गलो को ग्रहण किये बिना, एक वर्ण वाले एक रूप की विकुर्वणा करने मे समर्थ है ?

[१ उ] (गौतम !) यह अर्थ समर्थ नही है ।

२. असवुडे ण भते ! अणगारे बाहिरए पोग्गले परियादिइत्ता पभू एगवण्ण एगरूव जाव हता, पभू ।

[२ प्र] भगवन् ! क्या असवृत अनगार बाहर के पुद्गलो को ग्रहण करके एक वर्ण वाले एक रूप की विकुर्वणा करने मे समर्थ है ?

[२ उ] हाँ, गौतम ! वह ऐसा करने मे समर्थ है ।

३ से भते ! कि इहगए पोग्गले परियादिइत्ता विउव्वइ ? तत्थगए पोग्गले परियादिइत्ता विउव्वइ ? अन्नत्थगए पोग्गले परियादिइत्ता विउव्वइ ?

गोयमा ! इहगए पोग्गले परियादिइत्ता विकुव्वइ, नो तत्थगए पोग्गले परियादिइत्ता विकुव्वइ, नो अन्नत्थगए पोग्गले जाव विकुव्वइ ।

[३ प्र] भगवन् ! वह असवृत अनगार यहाँ (मनुष्य-लोक मे) रहे हुए पुद्गलो को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है, या वहा रहे हुए पुद्गलो को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है, अथवा अन्यत्र रहे पुद्गलो को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है ?

[३ उ] गौतम ! वह यहाँ (मनुष्यलोक मे) रहे हुए पुद्गलो को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है, किन्तु न तो वहाँ रहे हुए पुद्गलो को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है, और न ही अन्यत्र रहे हुए पुद्गलो को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है ।

४ एवं एगवण्णं अणेगरूव चउभंगो जहा छट्ठसए नवमे उद्देसए (सू. ५) तहा इहावि भाणियव्व । नवर अणगारे इहगए चेव पोग्गले परियादिइत्ता विकुव्वइ । सेस त चेव जाव लुक्खपोग्गल निद्धपोग्गलत्ताए परिणामेत्तए ?

हता, पभू । से भते ! किं इहगए पोग्गले परियादिइत्ता जाव (सु. ३) नो अन्नत्थगए पोग्गले परियादिइत्ता विकुव्वइ ।

[४] इस प्रकार एकवर्ण एकरूप, एकवर्ण अनेकरूप, अनेकवर्ण एकरूप और अनेकवर्ण अनेकरूप, यो चौभगी का कथन जिस प्रकार छठे शतक के नौवें उद्देशक (सू ५) मे किया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए। किन्तु इतना विशेष है कि यहाँ रहा हुआ मुनि, यहाँ रहे हुए पुद्गलो को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है। शेष सारा वर्णन उसी के अनुसार यहाँ भी कहना चाहिए, यावत् '[प्र] भगवन् ! क्या रूक्ष पुद्गलो को स्निग्ध पुद्गलो के रूप मे परिणत करने मे समर्थ है ? [उ] हाँ, गौतम ! समर्थ है। [प्र] भगवन् ! क्या वह यहाँ रहे हुए पुद्गलो को ग्रहण करके यावत् (सू ३) अन्यत्र रहे हुए पुद्गलो को ग्रहण किये बिना विकुर्वणा करता है ?' यहा तक कहना चाहिए।

विवेचन—असवृत अनगार के विकुर्वण-सामर्थ्य का निरूपण—प्रस्तुत सूत्रचतुष्टय मे असवृत अनगार के विकुर्वण-सामर्थ्य का छठे शतक के नौवे उद्देशक के अतिदेशपूर्वक निरूपण किया गया है।

निष्कर्ष—वैक्रियलब्धिमान् असवृत अनगार यहाँ रहे हुए बाह्य पुद्गलो को ग्रहण करके ही एकवर्ण-एकरूप, एकवर्ण-अनेकरूप, अनेकवर्ण-एकरूप या अनेकवर्ण-अनेकरूप की विकुर्वणा करने मे समर्थ है, अन्यथा नही। इसी प्रकार वह यहाँ रहा हुआ, यहाँ रहे हुए बाह्य पुद्गलो को ग्रहण करके विक्रिया करता है, यहाँ तक कि वर्ण की तरह गन्ध, रस, स्पर्श आदि के विविध विकल्प भी उसके विकुर्वणा-सामर्थ्य की सीमा मे है, जिनका कथन छठे शतक के नौवे उद्देशक की तरह यहाँ भी कर लेना चाहिए।[1] निष्कर्ष यह है कि वर्ण के १०, गध का १, रस के १०, और स्पर्श के चार, यो २५ भग एव पहले के चार भग मिला कर कुल २९ भग होते है।

'इहगए', तत्थगए' एव 'अनत्थगए' का तात्पर्य—प्रश्नकर्त्ता गौतम स्वामी हैं, अत उनकी अपेक्षा 'इहगए' का अर्थ 'मनुष्यलोक मे रहा हुआ' ही करना सगत है। 'तत्थगए' का अर्थ है—वैक्रिय करके वह अनगार जहाँ जाएगा, वह स्थान और 'अनत्थगए' का अर्थ है—उपर्युक्त दोनो स्थानो से भिन्न स्थान। तात्पर्य यह है कि जिस स्थान पर रह कर अनगार वैक्रिय करता है, वहाँ के पुद्गल 'इहगत' कहलाते हैं। वैक्रिय करके जिस स्थान पर जाता है, वहाँ के पुद्गल 'तत्रगत' कहलाते हैं, और इन दोनो स्थानो से भिन्न स्थान के पुद्गल 'अन्यत्रगत' हैं। देव तो 'तत्रगत' अर्थात्—देवलोकगत पुद्गलो को ग्रहण करके वैक्रिय कर सकता है, लेकिन अनगार तो मध्यलोकगत होने के कारण 'इहगत' अर्थात्—मनुष्यलोकगत पुद्गल को ही ग्रहण करके विक्रिया कर सकता है।[2]

महाशिलाकण्टक संग्राम मे जय-पराजय का निर्णय—

५. णायमेत अरहता, सुयमेत अरहया, विण्णायमेत अरहया, महासिलाकटए सगामे महासिलाकटए सगामे। महासिलाकटए ण भते ! सगामे वट्टमाणे के जयित्था ? के पराजइत्था ?

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ ३०३

(ख) भगवतीसूत्र के थोकडे, द्वितीय भाग, थोकडा न ६७, पृ १२५

२ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३१५

गोयमा ! वज्जी विदेहपुत्ते जइत्था, नव मल्लई नव लेच्छई कासी-कोसलगा—अट्ठारस वि गणरायाणो पराजइत्था।

[५ प्र] अर्हन्त भगवान् ने यह जाना है, अर्हन्त भगवान् ने यह सुना है—अर्थात्—सुनने की तरह प्रत्यक्ष देखा है, तथा अर्हन्त भगवान् को यह विशेष रूप से ज्ञात है कि महाशिलाकण्टक सग्राम महाशिलाकण्टक सग्राम ही है। (अत प्रश्न यह है कि) भगवन् ! जब महाशिलाकण्टक सग्राम चल रहा (प्रवर्त्तमान) था, तब उसमे कौन जीता और कौन हारा ?

[५ उ] गौतम ! वज्जी (वज्जीगण का अथवा वज्री इन्द्र और) विदेहपुत्र कूणिक राजा जीते, नौ मल्लकी और नौ लेच्छकी, जो कि काशी और कौशलदेश के १८ गणराजा थे, वे पराजित हुए।

महाशिलाकण्टक-संग्राम के लिए कूणिक राजा की तैयारी और अठारह गणराजाओ पर विजय का वर्णन—

६. तए ण से कूणिए राया महासिलाकटग सगाम उट्ठित जाणित्ता कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एव वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! उदाइ हत्थिराय परिकप्पेह, हय-गय-रह-जोहकलिय चाउरगिणि सेण सन्नाहेह, सन्नाहेत्ता जाव मम एतमाणत्तिय खिप्पामेव पच्चप्पिणह।

[६] उस समय मे महाशिलाकण्टक-सग्राम उपस्थित हुआ जान कर कूणिक राजा ने अपने कौटुम्बिक पुरुषो (आज्ञापालक सेवको) को बुलाया। बुला कर उनसे इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही 'उदायी' नामक हस्तिराज (पट्टहस्ती) को तैयार करो, और अश्व, हाथी, रथ और योद्धाओ से युक्त चतुरगिणी सेना सन्नद्ध (शस्त्रास्त्रादि से सुसज्जित) करो और ये सब करके यावत् (मेरी आज्ञानुसार कार्य करके) शीघ्र ही मेरी आज्ञा मुझे वापिस सौपो।

७ तए ण ते कोडु बियपुरिसा कूणिएणं रण्णा एव वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा जाव[1] अजलि कट्टु 'एव सामी ! तह' त्ति आणाए विणएण वयणं पडिसुणति, पडिसुणित्ता खिप्पामेव छेयायरियोवएसमतिकप्पणाविकप्पेहिं सुनिउणेहिं एवं जहा उववातिए जाव भीम सगामिय अउज्झ उदाइ हत्थिराय परिकप्पेंति हय-गय-जाव सन्नाहेति, सन्नाहित्ता जेणेव कूणिए राया तेणेव उवा०, तेणेव २ करयल० कूणियस्स रण्णो तमाणत्तिय पच्चप्पिणति।

[७] तत्पश्चात् कूणिक राजा द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर वे कौटुम्बिक पुरुष हृष्ट-तुष्ट हुए, यावत् मस्तक पर अजलि करके (आज्ञा शिरोधार्य करके)—हे स्वामिन् ! 'ऐसा ही होगा, जैसी आज्ञा', यो कह कर उन्होने विनयपूर्वक वचन (आज्ञाकथन) स्वीकार किया। वचल स्वीकार करके निपुण आचार्यों के उपदेश से प्रशिक्षित एव तीक्ष्ण बुद्धि-कल्पना के सुनिपुण विकल्पो से युक्त तथा औपपातिकसूत्र मे कहे गए विशेषणो से युक्त यावत् भीम (भयकर) सग्राम के योग्य उदार (प्रधान अथवा योद्धा के बिना अकेले ही टक्कर लेने वाले) उदायी नामक हस्तीराज (पट्टहस्ती) को सुसज्जित किया। साथ ही घोडे, हाथी, रथ और योद्धाओ से युक्त चतुरगिणी सेना भी (शस्त्रास्त्रादि

१ जाव शब्द 'हट्ठतुट्ठचित्तमाणदिया नदिया पीइमणा' इत्यादि पाठ का सूचक है।

से) सुसज्जित की। सुसज्जित करके जहाँ कूणिक राजा था, वहाँ उसके पास आए और करबद्ध होकर उन्होने कूणिक राजा को उसकी उक्त आज्ञा वापिस सौपी—आज्ञानुसार कार्य सम्पन्न हो जाने की सूचना दी।

८ तए ण से कूणिए राया जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवा०, २ त्ता मज्जणघर अणुप्पविसति, मज्जण० २ ण्हाते कतबलिकम्मे कयकोतुयमगलपायच्छित्ते सव्वालकारविभूसिए सन्नद्धबद्धवम्मियकवए उप्पीलियसरासणपट्टिए पिणद्धगेवेज्जविमलवरबद्धचिधपट्टे गहियायुहप्पहरणे सकोरेंटमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण चउचामरवालवीइतगे मगलजयसद्दकतालोए एव जहा उववातिए जाव उवाग-च्छित्ता उदाइ हत्थिराय दुरूढे।

[८] तत्पश्चात् कूणिक राजा जहाँ स्नानगृह था, वहाँ आया, उसने स्नानगृह मे प्रवेश किया। फिर स्नान किया, स्नान से सम्बन्धित मर्दनादि बलिकर्म किया, फिर प्रायश्चित्तरूप (विघ्ननाशक) कौतुक (मषी-तिलक आदि) तथा मगल किये। समस्त आभूषणो से विभूषित हुआ। सन्नद्धबद्ध (शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित) हुआ, लोहकवच को धारण किया, फिर मुडे हुए धनुर्दण्ड को ग्रहण किया। गले के आभूषण पहने और योद्धा के योग्य उत्तमोत्तम चिह्नपट बाधे। फिर आयुध (गदा आदि शस्त्र) तथा प्रहरण (भाले आदि शस्त्र) ग्रहण किये। फिर कोरण्टक पुष्पो की माला सहित छत्र धारण किया तथा उसके चारो ओर चार चामर ढुलाये जाने लगे। लोगो द्वारा मागलिक एव जय-विजय शब्द उच्चारण किये जाने लगे। इस प्रकार कूणिक राजा औपपातिकसूत्र मे कहे अनुसार यावत् उदायी नामक प्रधान हाथी पर आरूढ हुआ।

९ तए ण से कूणिए नरिंदे हारोत्थयसुकयरतियवच्छे जहा उववातिए जाव सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं उद्धुव्वमाणीहिं हय-गय-रह-पवरजोहकलिताए चातुरगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे महया भडचडगरवदपरिक्खित्ते जेणेव महासिलाकटए सगामे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता महासिलकटय सगामं ओयाए, पुरओ य से सक्के देविंदे देवराया एगं मह अभेज्जकवय वइरपडिरूवग विउव्वित्ताणं चिट्ठति। एव खलु दो इदा सगाम संगामेति, तं जहा—देविंदे य मणुइदे य, एगहत्थिणा वि ण पभू कूणिए राया पराजिणित्तए।

[९] इसके बाद हारो से आच्छादित वक्ष स्थल वाला कूणिक जनमन मे रति-प्रीति उत्पन्न करता हुआ औपपातिक सूत्र मे कहे अनुसार यावत् श्वेत चामरो से बार-बार बिजाता हुआ, अश्व, हस्ती, रथ और श्रेष्ठ योद्धाओ से युक्त चतुरगिणी सेना से सपरिवृत्त (घिरा हुआ), महान् सुभटो के विशाल समूह मे व्याप्त (परिक्षिप्त) कूणिक राजा, जहाँ महाशिलाकण्टक सग्राम (होने जा रहा) था, वहाँ आया। वहाँ आकर वह महाशिलाकण्टक सग्राम मे (स्वय) उतरा। उसके आगे देवराज देवेन्द्र शक्र वज्रप्रतिरूपक (वज्र के समान) अभेद्य एक महान् कवच की विकुर्वणा करके खडा हुआ। इस प्रकार (उस युद्धक्षेत्र मे मानो) दो इन्द्र सग्राम करने लगे, जैसे कि—एक देवेन्द्र (शक्र) और दूसरा मनुजेन्द्र (कूणिक राजा)। अब कूणिक राजा केवल एक हाथी से भी (शत्रुपक्ष की सेना को) पराजित करने मे समर्थ हो गया।

१० तए ण से कूणिए राया महासिलाकटक सगाम सगामेमाणे नव मल्लई, नव लेच्छइ, कासी कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो हयमहियपवरवीरघातियविवडियचिंधधय-पडागे किच्छप्पाण-गते दिसो दिसि पडिसेहेत्था ।

[१०] तत्पश्चात् उस कूणिक राजा ने महाशिलाकण्टक सग्राम करते हुए, नौ मल्लकी और नौ लेच्छकी, जो काशी और कोशल देश के अठारह गणराजा थे, उनके प्रवरवीर योद्धाओ को नष्ट किया, घायल किया और मार डाला । उनकी चिह्नांकित ध्वजा-पताकाएँ गिरा दी । उन वीरो के प्राण सकट मे पड गए, अत उन्हे युद्धस्थल से दसो दिशाओ मे भगा दिया (तितर-वितर कर दिया) ।

विवेचन—महाशिलाकण्टक सग्राम के लिए कूणिकराजा की तैयारी और अठारह गणराजाओ पर विजय का वर्णन—प्रस्तुत पाच सूत्रो (सू-६ से १० तक) मे कूणिकराजा की सग्राम के लिए तैयारी से लेकर अठारह गणराजाओ पर विजय का वर्णन है ।

महाशिलाकण्टक सग्राम उपस्थित होने का कारण—यहाँ मूलपाठ मे इस सग्राम के उपस्थित होने का कारण नही दिया है, किन्तु वृत्तिकार ने 'औपपातिक' 'निरयावलिका' आदि सूत्रो मे समागत वर्णन के अनुसार सक्षेप मे इस युद्ध का कारण इस प्रकार दिया है—चम्पानगरी मे कूणिक राजा राज्य करता था । हल्ल और विहल्ल नाम के उसके दो छोटे भाई थे । उन दोनो को उनके पिता श्रेणिक राजा ने अपने जीवनकाल मे उनके हिस्से का एक सेचानक गन्धहस्ती और अठारहसरा वकचूड हार दिया था । ये दोनो भाई प्रतिदिन सेचानक गन्धहस्ती पर बैठ कर गगातट पर जलक्रीडा और मनोरजन करते थे । उनके इस आमोद-प्रमोद को देखकर कूणिक की रानी पद्मावती को अत्यन्त ईर्ष्या हुई । उसने कूणिक राजा को हल्ल-विहल्ल कुमार से सेचानक हाथी ले लेने के लिए प्रेरित किया । कूणिक ने हल्ल-विहल्ल कुमार से सेचानक हाथी मागा । इस पर उन्होने कहा—'यदि आप हाथी लेना चाहते है तो हमारे हिस्से का राज्य दे दीजिए ।' किन्तु कूणिक उनकी न्यायसंगत बात की परवाह न करके बारबार हाथी मागने लगा । इस पर दोनो भाई कूणिक के भय से भागकर अपने हाथी और अन्त पुर सहित वैशाली नगरी मे अपने मातामह चेटक राजा की शरण मे पहुँचे । कूणिक ने नाना के पास दूत भेजकर हल्ल-विहल्ल कुमार को सौप देने का सन्देश भेजा । किन्तु चेटक राजा ने हल्ल-विहल्ल को नही सौपा । पुन कूणिक ने दूत के साथ सन्देश भेजा कि यदि आप दोनो कुमारो को नही सौपते है तो युद्ध के लिए तैयार हो जाइए । चेटक राजा ने न्यायसगत बात कही, उस पर कूणिक ने कोई विचार नही किया । सीधा ही युद्ध मे उतरने के लिए तैयार हो गया । यह था महाशिलाकण्टक युद्ध का कारण ।[1]

महाशिलाकण्टक सग्राम मे कूणिक की जीत कैसे हुई ? चेटक राजा ने भी देखा कि कूणिक युद्ध किये बिना नही मानेगा । और जब उन्होने सुना कि कूणिक ने युद्ध मे सहायता के लिए 'काल' आदि विमातृजात दसो भाइयो को चेटक राजा के साथ युद्ध करने के लिए बुलाया है, तब उन्होने भी शरणागत की रक्षा एव न्याय के लिए अठारह गणराज्यो के अधिपति राजाओ को अपनी-अपनी

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३१६
(ख) औपपातिकसूत्र पत्राक ६२, ६६, ७२
(ग) भगवती (हिन्दीविवेचन युक्त) भाग-३, पृ-११९६ से ११९८

सेनासहित बुलाया। वे सब ससैन्य एकत्रित हुए। दोनो ओर की सेनाएँ युद्धभूमि मे आ डटी। घोर सग्राम शुरू हुआ। चेटक राजा का ऐसा नियम था कि वे दिन मे एक ही वार एक ही बाण छोडते, और उनका छोडा हुआ बाण कभी निष्फल नही जाता था। पहले दिन कूणिक का भाई कालकुमार सेनापति बनकर युद्ध करने लगा, किन्तु चेटक राजा के एक ही बाण से वह मारा गया। इससे कूणिक की सेना भाग गई। इस प्रकार दस दिन मे चेटकराजा ने कालकुमार आदि दसो भाइयो को मार गिराया। ग्यारहवे दिन कूणिक की बारी थी। कूणिक ने सोचा—'मैं भी दसो भाइयो की तरह चेटकराजा ने आगे टिक न सकू गा। मुझे भी वे एक ही बाण मे मार डालेंगे।' अत उसने तीन दिन तक युद्ध स्थगित रखकर चेटकराजा को जीतने के लिए अष्टमतप (तेला) करके देवाराधना की। अपने पूर्वभव के मित्र देवो का स्मरण किया, जिससे शक्रेन्द्र और चमरेन्द्र दोनो उसकी सहायता के लिए आए। शक्रेन्द्र ने कूणिक से कहा—चेटकराजा परम श्रावक है, इसलिए उसे मैं मारू गा नही, किन्तु तेरी रक्षा करू गा। अत शक्रेन्द्र ने कूणिक की रक्षा करने के लिए वज्र सरीखे अभेद्य कवच की विकुर्वणा की और चमरेन्द्र ने महाशिलाकण्टक और रथमूसल, इन दो सग्रामो की विकुर्वणा की। इन दोनो इन्द्रो की सहायता के कारण कूणिक की शक्ति बढ गयी। वास्तव मे इन्द्रो की सहायता से ही महाशिलाकण्टक सग्राम मे कूणिक की विजय हुई, अन्यथा, विजय मे सदेह था।[1]

महाशिलाकण्टक संग्राम के स्वरूप, उसमें मानवविनाश और उनकी मरणोत्तरगति का निरूपण—

११ से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति 'महासिलाकटए सगामे महासिलाकटए सगामे' ?

गोयमा ! महासिलाकटए ण सगामे वट्टमाणे जे तत्थ आसे वा हत्थी वा जोहे वा सारही वा तणेण वा कट्ठेण वा पत्तेण वा सक्कराए वा अभिहम्मति सव्वे से जाणति 'महासिलाए अहं अभिहते महासिलाए अह अभिहते'; से तेणट्ठेण गोयमा ! महासिलाकटए सगामे महासिलाकटए सगामे।

[११ प्र] भगवन् ! इस 'महाशिलाकण्टक' सग्राम को महाशिलाकण्टक सग्राम क्यो कहा जाता है ?

[११ उ] गौतम ! जब महाशिलाकण्टक सग्राम हो रहा था, तब उस सग्राम मे जो भी घोडा, हाथी, योद्धा या सारथि आदि तृण से, काष्ठ से, पत्ते से या ककर आदि से आहत होते, वे सब ऐसा अनुभव करते थे कि हम महाशिला (के प्रहार) से मारे गए हैं। (अर्थात्—महाशिला हमारे ऊपर आ पडी है।) हे गौतम ! इस कारण से इस सग्राम को महाशिलाकण्टक सग्राम कहा जाता है।

१२ महासिलाकटए ण भते ! सगामे वट्टमाणे कति जणसतसाहस्सीओ वहियाओ ?

गोयमा ! चउरासीतिं जणसतसाहस्सीओ वहियाओ।

[१२ प्र] भगवन् ! जब महाशिलाकण्टक सग्राम हो रहा था, तब उसमे कितने लाख मनुष्य मारे गए ?

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३१७
(ख) औपपातिक सूत्र, पत्राक ६६

[१२ उ] गौतम ! महाशिलाकण्टक-सग्राम मे चौरासी लाख मनुष्य मारे गए।

१३ ते ण भते ! मणुया निस्सीला जाव निप्पच्चक्खाणपोसहोववासा सारुट्ठा परिकुविया समरवहिया अणुवसंता कालमासे कालं किच्चा कहिं गता ? कहिं उववन्ना ?

गोयमा ! ओसन्न नरग-तिरिक्खजोणिएसु उववन्ना।

[१३ प्र] भगवन् ! शीलरहित यावत् प्रत्याख्यान एव पौषधोपवास से रहित, रोष (आवेश) मे भरे हुए, परिकुपित, युद्ध मे घायल हुए और अनुपशान्त वे (युद्ध करने वाले) मनुष्य मृत्यु के समय मर कर कहाँ गए, कहाँ उत्पन्न हुए ?

[१३ उ] गौतम ! ऐसे मनुष्य प्राय नरक और तिर्यञ्चयोनियो मे उत्पन्न हुए है।

विवेचन—महाशिलाकण्टक-सग्राम के स्वरूप, उसमे मानवविनाश एव उनकी मरणोत्तरगति का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू ११ से १३ तक) मे महाशिलाकण्टक के स्वरूप तथा उसमे मृत मानवो की सख्या एव उनकी गति के विषय मे किये गए प्रश्नो का समाधान अकित किया गया है।

फलितार्थ—युद्ध मे धन, जन, सस्कृति और सतति के विनाश के अतिरिक्त सबसे बडी हानि शासको द्वारा अपने अहपोषण, राज्यविस्तार, वैभवप्राप्ति या ईर्ष्या को चरितार्थ करने के लिए युद्ध मे झोके हुए सैनिको के अज्ञानवश, आवेशवश एव त्याग-प्रत्याख्यानरहित मरण के कारण दुर्गति की प्राप्ति, मानव जैसे अमूल्य जन्म की असफलता है।

रथमूसलसग्राम मे जय-पराजय का, उसके स्वरूप का, तथा उसमें मृत मनुष्यो की संख्या, गति आदि का निरूपण—

१४ णायमेतं अरहया, सुतमेतं अरहता, विण्णायमेतं अरहता रहमुसले संगामे रहमुसले सगामे। रहमुसले णं भते ! सगामे वट्टमाणे के जइत्था ? के पराजइत्था ?

गोयमा ! वज्जी विदेहपुत्ते चमरे य असुरिंदे असुरकुमारराया जइत्था, नव मल्लई नव लेच्छई पराजइत्था।

[१४ प्र] भगवन् ! अर्हन्त भगवान् ने जाना है, इसे प्रत्यक्ष किया है और विशेषरूप से जाना है कि यह रथमूसलसग्राम है। (अत मेरा प्रश्न यह है कि) भगवन् ! यह रथमूसलसग्राम जब हो रहा था, तब कौन जीता, कौन हारा ?

[१४ उ] हे गौतम (वज्जी गण या वश का विदेहपुत्र या) वज्री-इन्द्र और विदेहपुत्र (कूणिक) एव असुरेन्द्र असुरराज चमर जीते और नौ मल्लकी और नौ लिच्छवी (ये अठारह गण) राजा हार गए।

१५ तए ण से कूणिए राया रहमुसल सगामं उवट्ठित०, सेस जहा महासिलाकटए नवरं भूताणंदे हत्थिराया जाव रहमुसल सगाम ओयाए, पुरतो य से सक्के देविंदे देवराया। एव तहेव जाव चिट्ठति, मग्गतो य से चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया एग महं आयस किढिणपडिरूवगं विउव्वित्ताण

चिट्ठति, एव खलु तओ इदा सगाम सगामेति, त जहा—देविंदे मणुइदे असुरिंदे य । एगहत्थिणा वि ण पभू कूणिए राया जइत्तए तहेव जाव दिसो दिसिं पडिसेहेत्था ।

[१५] तदनन्तर रथमूसल-सग्राम उपस्थित हुआ जान कर कूणिक राजा ने अपने कौटुम्बिक पुरुषो (सेवको) को बुलाया । इसके बाद का सारा वर्णन महाशिलाकण्टक की तरह यहाँ कहना चाहिए । इतना विशेष है कि यहाँ 'भूतानन्द' नामक हस्तिराज (पट्टहस्ती) है । यावत् वह कूणिक राजा रथमूसलसग्राम मे उतरा । उसके आगे देवेन्द्र देवराज शक्र है, यावत् पूर्ववत् सारा वर्णन कहना चाहिए । उसके पीछे असुरेन्द्र असुरराज चमर लोह के बने हुए एक महान् किठिन (बास-निर्मित तापस पात्र) जैसे कवच की विकुर्वणा करके खडा है । इस प्रकार तीन इन्द्र सग्राम करने के लिए प्रवृत्त हुए है । यथा—देवेन्द्र (शक्र), मनुजेन्द्र (कूणिक) और असुरेन्द्र (चमर) । अब कूणिक केवल एक हाथी से सारी शत्रु-सेना को पराजित करने मे समर्थ है । यावत् पहले कहे अनुसार उसने शत्रु राजाओ (की सेना) को दसो दिशाओ मे भगा दिया ।

१६ से केणट्ठे ण भते ! एव वुच्चति 'रहमुसले सगामे रहमसले संगामे' ?

गोयमा ! रहमुसले ण संगामे वट्टमाणे एगे रहे अणासए असारहिए अणारोहए समुसले महताजणक्खयं जणवह जणप्पमद्दं जणसवट्टकप्प रुहिरकद्दम करेमाणे सव्वतो समता परिधावित्था; से तेणट्ठे ण जाव रहमुसले सगामे ।

[१६ प्र] भगवन् ! इस 'रथमूसलसग्राम' को रथमूसलसग्राम क्यो कहा जाता है ?

[१६ उ] गौतम ! जिस समय रथमूसलसग्राम हो रहा था, उस समय अश्वरहित, सारथि-रहित और योद्धाओ से रहित एक रथ केवल मूसलसहित, अत्यन्त जनसहार, जनवध, जन-प्रमर्दन और जनप्रलय (सवर्तक) के समान रक्त का कीचड करता हुआ चारो ओर दौडता था । इसी कारण से उस सग्राम को 'रथमूसलसग्राम' यावत् कहा गया है ।

१७. रहमुसले ण भते ! सगामे वट्टमाणे कति जणसयसाहस्सीओ वहियाओ ?

गोयमा ! छण्णउंति जणसयसाहस्सीओ वहियाओ ।

[१७ प्र] भगवन् ! जब रथमूसलसग्राम हो रहा था, तब उसमे कितने लाख मनुष्य मारे गए ?

[१७ उ] गौतम ! रथमूसलसग्राम मे छियानवे लाख मनुष्य मारे गए ।

१८ ते ण भते ! मणुया निस्सीला जाव (सु १३) उववन्ना ?

गोयमा ! तत्थ ण दस साहस्सीओ एगाए मच्छियाए कुच्छिसि उववन्नाओ, एगे देवलोगेसु उववन्ने, एगे सुकुले पच्चायाते, अवसेसा ओसन्न नरग-तिरिक्खजोणिएसु उववन्ना ।

[१८ प्र] भगवन् ! नि शील (शीलरहित) यावत् वे मनुष्य मृत्यु के समय मरकर कहाँ गए, कहाँ उत्पन्न हुए ?

[१८ उ] गौतम ! उनमे से दस हजार मनुष्य तो एक मछली के उदर मे उत्पन्न हुए, एक मनुष्य देवलोक मे उत्पन्न हुआ, एक मनुष्य उत्तम कुल (मनुष्यगति) मे उत्पन्न हुआ, और शेष प्राय नरक और तिर्यञ्चयोनियो मे उत्पन्न हुए है।

१९. कम्हा ण भते ! सक्के देविंदे देवराया, चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया कूणियस्स रण्णो साहज्ज दलइत्था ?

गोयमा ! सक्के देविंदे देवराया पुव्वसगतिए, चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया परियाय-सगतिए, एव खलु गोयमा ! सक्के देविंदे देवराया, चमरे य असुरिंदे असुरकुमारराया कूणियस्स रण्णो साहज्ज दलइत्था।

[१९ प्र] भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र और असुरेन्द्र असुरराज चमर, इन दोनो ने कूणिक राजा को किस कारण से सहायता (युद्ध मे सहयोग) दी ?

[१९ उ] गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र तो कूणिक राजा का पूर्वसगतिक (पूर्वभवसम्बन्धी—कार्तिक सेठ के भव मे मित्र) था, और असुरेन्द्र असुरकुमार राजा चमर, कूणिक राजा का पर्याय-सगतिक (पूरण नामक तापस की अवस्था का साथी) मित्र था। इसीलिए, हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र और असुरेन्द्र असुरराज चमर ने कूणिक राजा को सहायता दी।

विवेचन—रथमूसलसग्राम मे जय-पराजय का, उसके स्वरूप का तथा उसमे मृत मनुष्यो की सख्या, गति आदि का निरूपण—प्रस्तुत छह सूत्रो (सू १४ से १९ तक) मे रथमूसलसम्बन्धी सारा वर्णन प्राय पूर्वसूत्रोक्त महाशिलाकण्टक की तरह ही किया गया है।

ऐसे युद्धो मे सहायता क्यो ?—इन महायुद्धो का वर्णन पढ कर एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इन्द्र जैसे सम्यग्दृष्टिसम्पन्न देवाधिपतियो ने कूणिक की अन्याययुक्त युद्ध मे सहायता क्यो की ? इसी प्रश्न को शास्त्रकार ने उठाकर उसका समाधान दिया है। पूर्वभवसागतिक और पर्याय-सागतिक होने के कारण ही विवश होकर इन्द्रो तक को सहायता देने हेतु आना पडता है।

'संग्राम मे मृत मनुष्य देवलोक में जाता है', इस मान्यता का खण्डनपूर्वक स्वसिद्धान्त-मण्डन—

२० [१] बहुजणे ण भते ! अन्नमन्नस्स एवमाइक्खति जाव परूवेति—एव खलु बहवे मणुस्सा अन्नतरेसु उच्चावएसु सगामेसु अभिमुहा चेव पहया समाणा कालमासे काल किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति। से कहमेत भते ! एवं ?

गोयमा ! ज ण से बहुजणे अन्नमन्नस्स एवमाइक्खति जाव उववत्तारो भवंति, जे ते एवमाहसु मिच्छं ते एवमाहसु, अह पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि—

[२०-१ प्र] भगवन् ! बहुत-से (धर्मोपदेशक या पौराणिक) लोग परस्पर ऐसा कहते हैं, यावत् प्ररूपणा करते हैं कि—अनेक प्रकार के छोटे-बडे (उच्चावच) सग्रामो मे से किसी भी सग्राम मे सामना करते हुए (अभिमुख रहकर लडते हुए) आहत हुए एव घायल हुए बहुत-से मनुष्य मृत्यु के समय मर कर किसी भी देवलोक मे देवरूप मे उत्पन्न होते है। भगवन् ! ऐसा कैसे हो सकता है ?

[२०-१ उ] गौतम ! बहुत-से मनुष्य, जो इस प्रकार कहते है, यावत् प्ररूपणा करते हैं, कि सग्राम मे मारे गए मनुष्य, देवलोको मे उत्पन्न होते है, ऐसा कहने वाले मिथ्या कहते है। हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ यावत् प्ररूपणा करता हूँ—

"[२] एव खलु गोयमा ! तेण कालेण तेण समएण वेसाली नाम नगरी होत्था । वण्णओ । तत्थ ण वेसालीए णगरीए वरुणे नाम णागनत्तुए परिवसति अड्ढे जाव अपरिभूते समणोवासए अभिगत-जीवाजीवे जाव पडिलाभेमाणे छट्ठछट्ठेण अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण अप्पाण भावेमाणे विहरति ।"

[२०-२] गौतम ! उस काल और उस समय मे वैशाली नाम की नगरी थी। उसका वर्णन औपपातिकसूत्रोक्त (चम्पानगरी की तरह) जान लेना चाहिए। उस वैशाली नगरी मे 'वरुण' नामक नागनप्तृक (नाग नामक गृहस्थ का नाती=दौहित्र या पौत्र) रहता था। वह धनाढ्य यावत् अपरिभूत (किसी के आगे न दबने वाला—दबग) व्यक्ति था। वह श्रमणोपासक था, और जीवा-जीवादि तत्त्वो का ज्ञाता था, यावत् वह आहारादि द्वारा श्रमण-निर्ग्रन्थो को प्रतिलाभित करता हुआ तथा निरन्तर छठ-छठ की (बेले की) तपस्या द्वारा अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरण करता था।

[३] तए ण से वरुणे णागनत्तुए अन्नया कयाई रायाभिओगेणं गणाभिओगेण बलाभिओगेण रहमुसले सगामे आणत्ते समाणे छट्ठभत्तिए, अट्ठमभत्त अणुवट्टेति, अट्ठमभत्त अणुवट्टेत्ता कोडु बियपुरिसे सद्दावेति, सद्दावेत्ता एव वदासी—खिप्पामेव भो ! देवाणुप्पिया ! चातुग्घट आसरह जुत्तामेव उवट्ठावेह हय-गय-रहपवर जाव सन्नाहेत्ता मम एतमाणत्तिय पच्चप्पिणह ।

[२०-३] एक बार राजा के अभियोग (आदेश) से, गण के अभियोग से तथा बल (बलवान्—जबर्दस्त व्यक्ति) के अभियोग से वरुण नागनप्तृक (नत्तुआ) को रथमूसलसग्राम मे जाने की आज्ञा दी गई। तब उसने षष्ठभक्त (बेले के तप) को बढाकर अष्टभक्त (तेले का) तप कर लिया। तेले की तपस्या करके उसने अपने कौटुम्बिक पुरुषो (सेवको) को बुलाया। और बुलाकर इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो ! चार घटो वाला अश्वरथ, सामग्रीयुक्त तैयार करके शीघ्र उपस्थित करो। साथ ही अश्व, हाथी, रथ और प्रवर योद्धाओ से युक्त चतुरगिणी सेना को सुसज्जित करो, यावत् यह सब सुसज्जित करके मेरी आज्ञा मुझे वापस सौपो।

"[४] तए ण ते कोडु बियपुरिसा जाव पडिसुणेत्ता खिप्पामेव सच्छत्त सज्झय जाव उवट्ठावेंति, हय-गय-रह जाव सन्नाहेति, सन्नाहित्ता जेणेव वरुणे नागनत्तुए जाव पच्चप्पिणति ।

[२०-४] तदनन्तर उन कौटुम्बिक पुरुषो ने उसकी आज्ञा स्वीकार एव शिरोधार्य करके यथाशीघ्र छत्रसहित एव ध्वजासहित चार घटाओ वाला अश्वरथ, यावत् तैयार करके उपस्थित किया। साथ ही घोडे, हाथी, रथ एव प्रवर योद्धाओ से युक्त चतुरगिणी सेना को यावत् सुसज्जित किया। और ऐसा करके यावत् वरुण नागनत्तुआ को उसकी आज्ञा वापिस सौपी।

"[५] तए ण से वरुणे नागनत्तुए जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छति जहा कूणिओ (सु ८) जाव पायच्छित्ते सव्वालकारविभूसिते सन्नद्धबद्ध० सकोरेंटमल्लदामेण जाव धरिज्जमाणेण

अणेगगणनायग जाव दूयसंधिवाल० सद्धि संपरिवुडे मज्जणघरातो पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव चातुघंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चातुघंट आसरह दुरूहइ, दुरूहित्ता हय-गय-रह जाव संपरिवुडे महता भडचडगर० जाव परिक्खित्ते जेणेव रहमुसले संगामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रहमुसल संगाम ओयाते।

[२०-५] तत्पश्चात् वह वरुण नागनप्तृक, जहाँ स्नानगृह था, वहाँ आया। इसके पश्चात् यावत् कौतुक और मंगलरूप प्रायश्चित्त (विघ्ननाशक) किया, सर्व अलंकारो से विभूषित हुआ, कवच पहना, कोरटपुष्पो की मालाओ से युक्त छत्र धारण किया, इत्यादि सारा वर्णन कूणिक राजा की तरह कहना चाहिए। फिर अनेक गणनायको, दूतो और सन्धिपालो के साथ परिवृत होकर वह स्नानगृह से बाहर। निकल कर बाहर की उपस्थानशाला मे आया और सुसज्जित चातुर्घण्ट अश्वरथ पर आरूढ हुआ। रथ पर आरूढ हो कर अश्व, गज, रथ और योद्धाओ से युक्त चतुरंगिणी सेना के साथ, यावत् महान् सुभटो के समूह से परिवृत होकर जहाँ रथमूसल-संग्राम होने वाला था, वहाँ आया। वहाँ आकर वह रथमूसल-संग्राम मे उतरा।

"[६] तए णं से वरुणे णागनत्तुए रहमुसल संगाम ओयाते समाणे अयमेयारूव अभिग्गह अभिगिण्हइ—कप्पति मे रहमुसल संगाम संगामेमाणस्स जे पुव्वि पहणति से पडिहणित्तए, अवसेसे नो कप्पतीति। अयमेतारूवं अभिग्गह अभिगिण्हित्ता रहमुसल संगाम संगामेति।

[२०-६] उस समय रथमूसल-संग्राम मे प्रवृत्त होने के साथ ही वरुण नागनप्तृक ने इस प्रकार इस रूप का अभिग्रह (नियम) किया—मेरे लिए यही कल्प (उचित नियम) है कि रथमूसल संग्राम मे युद्ध करते हुए जो मुझ पर पहले प्रहार करेगा, उसे ही मुझे मारना (प्रहत करना) है, (अन्य) व्यक्तियो को नही। इस प्रकार यह अभिग्रह करके वह रथमूसल-संग्राम मे प्रवृत्त हो गया।

"[७] तए णं तस्स वरुणस्स नागनत्तुयस्स रहमुसल संगाम संगामेमाणस्स एगे पुरिसे सरिसए सरिसत्तए सरिसव्वए सरिसभंडमत्तोवगरणे रहेण पडिरह हव्वमागते।

[२०-७] उसी समय रथमूसल-संग्राम मे जूझते हुए वरुण नाग-नप्तृक के रथ के सामने प्रतिरथी के रूप मे एक पुरुष शीघ्र ही आया, जो उसी के सदृश, उसी के समान त्वचा वाला था, उसी के समान उम्र का और उसी के समान अस्त्र-शस्त्रादि उपकरणो से युक्त था।

"[८] तए ण से पुरिसे वरुण णागणत्तुय एव वयासी—पहण भो! वरुणा! णागणत्तुया! पहण भो! वरुणा! णागणत्तुया! तए ण से वरुणे णागणत्तुए त पुरिस एव वदासि—नो खलु मे कप्पति देवाणुप्पिया! पुव्वि अहयस्स पहणित्तए, तुम चेव पुव्व पहणाहि।

[२०-८] तब उस पुरुष ने वरुण नागनप्तृक को इस प्रकार (ललकारते हुए) कहा—"हे वरुण नागनत्तुआ! मुझ पर प्रहार कर, अरे, वरुण नागनत्तुआ! मुझ पर वार कर!" इस पर वरुण नागनत्तुआ ने उस पुरुष से यो कहा—"हे देवानुप्रिय! जो मुझ पर प्रहार न करे, उस पर पहले प्रहार करने का मेरा कल्प (नियम) नही है। इसलिए तुम (चाहो तो) पहले मुझ पर प्रहार करो।"

"[९] तए ण से पुरिसे वरुणेण णागणत्तुएण एव वुत्ते समाणे आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे धणु परामुसति, परामुसित्ता उसु परामुसति, उसु परामुसित्ता ठाणं ठाति, ठाणं ठिच्चा आयतकण्णायत उसु करेति, आयतकण्णायत उसु करेत्ता वरुण णागणत्तय गाढप्पहारीकरेति।

[२०-९] तदनन्तर वरुण नागनत्तुआ के द्वारा ऐसा कहने पर उस पुरुष ने शीघ्र ही क्रोध से लालपीला हो कर यावत् दात पीसते हुए (मिसमिसाते हुए) अपना धनुष उठाया। फिर बाण उठाया। फिर धनुष पर यथास्थान बाण चढाया। फिर अमुक आसन से अमुक स्थान पर स्थित होकर धनुष को कान तक खीचा। ऐसा करके उसने वरुण नागनत्तुआ पर गाढ प्रहार किया।

"[१०] तए ण से वरुणे णागणत्तुए तेण पुरिसेण गाढप्पहारीकए समाणे आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे धणु परामुसति, धणु परामुसित्ता उसु परामुसति, उसु परामुसित्ता आयतकण्णायत उसु करेति, आयतकण्णायत उसु करेत्ता त पुरिस एगाहच्च कूडाहच्च जीवियातो ववरोवेति।

[२०-१०] इसके पश्चात् उस पुरुष द्वारा किये गए गाढ प्रहार से घायल हुए वरुण नागनत्तुआ ने शीघ्र कुपित होकर यावत् मिसमिसाते हुए धनुष उठाया। फिर उस पर बाण चढाया और उस बाण को कान तक खीचा। ऐसा करके उस पुरुष पर छोडा। जैसे एक ही जोरदार चोट से पत्थर के टुकडे-टुकडे हो जाते हैं, उसी प्रकार वरुण नागनप्तृक ने एक ही गाढ प्रहार से उस पुरुष को जीवन से रहित कर दिया।

"[११] तए ण से वरुणे णागणत्तुए तेण पुरिसेण गाढप्पहारीकते समाणे अत्थामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमें अधारणिज्जमिति कट्टु तुरए निगिण्हति, तुरए निगिण्हित्ता रह परावत्तेइ, २ त्ता रहमुसलातो सगामातो पडिनिक्खमति, रहमुसलाओ सगामातो पडिणिक्खमेत्ता एगतमत अवक्कमति, एगतमत अवक्कमित्ता तुरए निगिण्हति, निगिण्हित्ता रह ठवेति, २ त्ता रहातो पच्चोरुहति, रहातो पच्चोरुहित्ता रहाओ तुरए मोएति, २ तुरए विसज्जेति, विसज्जित्ता दब्भसथारगं सथरेति, संथरित्ता दब्भसथारग दुरुहति, दब्भस० दुरुहित्ता पुरत्थाभिमुहे सपलियकनिसण्णे करयल जाव कट्टु एव वयासी—नमोऽत्थु ण अरहताण जाव सपत्ताण। नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स आइगरस्स जाव संपाविउकामस्स मम धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स। वदामि ण भगवत तत्थगत इहगते, पासउ मे से भगव तत्थगते, जाव वदति नमसति, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—पुव्वि पि ण मए समणस्स भगवतो महावीरस्स अतिय थूलए पाणातिवाते पच्चक्खाए जावज्जीवाए एव जाव थूलए परिग्गहे पच्चक्खाते जावज्जीवाए, इयाणि पि ण अह तस्सेव भगवतो महावीरस्स अतिय सव्व पाणातिवाय पच्चक्खामि जावज्जीवाए, एव जहा खदओ (स० २ उ० १ सु० ५०) जाव एत पि ण चरिमेहिं उस्साह-निस्सासेहिं 'वोसिरिस्सामि' त्ति कट्टु सन्नाहपट्ट मुयति, सन्नाहपट्ट मुइत्ता सल्लुद्धरण करेति, सल्लुद्धरण करेत्ता आलोइयपडिक्कते समाहिपत्ते आणुपुव्वीए कालगते।

[२०-११] तत्पश्चात् उस पुरुष के गाढ प्रहार से सख्त घायल हुआ वरुण नागनप्तृक अशक्त, अबल, अवीर्य, पुरुषार्थ एव पराक्रम से रहित हो गया। अत 'अब मेरा शरीर टिक नही सकेगा' ऐसा

समझकर उसने घोडो को रोका, घोडो को रोक कर रथ को वापिस फिराया और रथमूसलसग्राम-स्थल से बाहर निकल गया। सग्रामस्थल से बाहर निकल कर एकान्त स्थान मे आकर रथ को खडा किया। फिर रथ से नीचे उतर कर उसने घोडो को छोड कर विसर्जित कर दिया। फिर दर्भ (डाभ) का सथारा (बिछौना) बिछाया और पूर्वदिशा की ओर मुह करके दर्भ के सस्तारक पर पर्यकासन से बैठा। और दोनो हाथ जोड कर यावत् इस प्रकार कहा—अरिहन्त भगवन्तो को, यावत् जो सिद्धगति को प्राप्त हुए है, नमस्कार हो। मेरे धर्मगुरु धर्माचार्य श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को नमस्कार हो, जो धर्म की आदि करने वाले यावत् सिद्धगति प्राप्त करने के इच्छुक है। यहाँ रहा हुआ मैं वहाँ (दूर स्थान पर) रहे हुए भगवान् को वन्दन करता हूँ। वहाँ रहे हुए भगवान् मुझे देखे। इत्यादि कहकर यावत् उसने वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—पहले मैंने श्रमण भगवान् महावीर के पास स्थूल प्राणातिपात का जीवनपर्यन्त प्रत्याख्यान किया था, यावत् स्थूल परिग्रह का जीवनपर्यन्त प्रत्याख्यान किया था, किन्तु अब मै उन्ही अरिहन्त भगवान् महावीर के पास (साक्षी से) सर्व प्राणातिपात का जीवनपर्यन्त प्रत्याख्यान करता हूँ। इस प्रकार स्कन्दक की तरह (अठारह ही पापस्थानो का सर्वथाप्रत्याख्यान कर दिया।) फिर इस शरीर का भी अन्तिम श्वासोच्छ्वास के साथ व्युत्सर्ग (त्याग) करता हूँ, यो कह कर उसने सन्नाहपट (कवच) खोल दिया। कवच खोल कर लगे हुए बाण को बाहर खीचा। बाण शरीर से बाहर निकाल कर उसने आलोचना की, प्रतिक्रमण किया, और समाधि-युक्त होकर मरण प्राप्त किया।

"[१२] तए ण तस्स वरुणस्स नागनत्तुयस्स एगे पियबालवयसए रहमुसल सगाम सगामेमाणे एगेण पुरिसेण गाढप्पहारीकए समाणे अत्थामे अबले जाव अधारणिज्जमिति कट्टु वरुण नागनत्तुय रहमुसलातो सगामातो पडिनिक्खममाण पासति, पासित्ता तुरए निगिण्हति, तुरए निगिण्हित्ता जहा वरुणे नागनत्तुए जाव तुरए विसज्जेति, विसज्जित्ता दब्भसथारग दुरुहति, दब्भसंथारग दुरुहित्ता पुरत्थाभिमुहे जाव अजलि कट्टु एवं वदासी—जाइ ण भते! मम पियबालवयसस्स वरुणस्स नागनत्तुयस्स सीलाइ वताइ गुणाइ वेरमणाइ पच्चक्खाणपोसहोववासाइ ताइ ण ममं पि भवतु त्ति कट्टु सन्नाहपट्ट मुयइ, सन्नाहपट्ट मुइत्ता सल्लुद्धरण करेति, सल्लुद्धरण करेत्ता आणुपुव्वीए कालगते।

[२०-१२] उस वरुण नागनत्तुआ का एक प्रिय बालमित्र भी रथमूसलसग्राम मे युद्ध कर रहा था। वह भी एक पुरुष द्वारा प्रबल प्रहार करने से घायल हो गया। इससे अशक्त अबल, यावत् पुरुषार्थ-पराक्रम से रहित बने हुए उसने सोचा—अब मेरा शरीर टिक नही सकेगा। जब उसने वरुण नागनत्तुआ को रथमूसलसग्राम-स्थल से बाहर निकलते हुए देखा, तो वह भी अपने रथ को वापिस फिरा कर रथमूसलसग्राम से बाहर निकला, घोडो को रोका और जहाँ वरुण नागनत्तुआ ने घोडो को रथ से खोलकर विसर्जित किया था, वहाँ उसने भी घोडो को विसर्जित कर दिया। फिर दर्भ के सस्तारक को बिछा कर उस पर बैठा। दर्भसस्तारक पर बैठकर पूर्वदिशा की ओर मुख करके यावत् दोनो हाथ जोड कर यो बोला—'भगवन्! मेरे प्रिय बालमित्र वरुण नागनप्तृक के जो शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास है, वे सब मेरे भी हो', इस प्रकार कह कर उसने कवच खोला। कवच खोलकर शरीर मे लगे हुए बाण को बाहर निकाला। इस प्रकार करके वह भी क्रमश समाधियुक्त होकर कालधर्म को प्राप्त हुआ।

"[१३] तए णं तं वरुणं नागणत्तुयं कालगयं जाणित्ता अहासन्निहितेहिं वाणमंतरेहिं देवेहिं दिव्वे सुरभिगंधोदगवासे वुट्ठे, दसद्धवण्णे कुसुमे निवाडिए, दिव्वे य गीयगंधव्वनिनादे कते यावि होत्था।

[२०-१३] तदनन्तर उस वरुण नागनत्तुआ को कालधर्म प्राप्त हुआ जान कर निकटवर्ती वाणव्यन्तर देवों ने उस पर सुगन्धितजल की वृष्टि की, पांच वर्ण के फूल बरसाए और दिव्यगीत एवं गन्धर्व-निनाद भी किया।

"[१४] तए णं तस्स वरुणस्स नागनत्तुयस्स तं दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवज्जुइं दिव्वं देवाणुभागं सुणित्ता य पासित्ता य बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ जाव परूवेति—एवं खलु देवाणुप्पिया! बहवे मणुस्सा जाव उववत्तारो भवंति"।

[२०-१४] तब से उस वरुण नागनत्तुआ की उस दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवप्रभाव को सुन कर और जान कर बहुत-से लोग परस्पर इस प्रकार कहने लगे, यावत् प्ररूपणा करने लगे कि—'देवानुप्रियो! जो संग्राम करते हुए बहुत-से मनुष्य मरते हैं, यावत् वे देवलोकों में उत्पन्न होते हैं।"

विवेचन—'संग्राम में मृत्यु प्राप्त मनुष्य देवलोक में जाता है' इस मान्यता का खण्डन—प्रस्तुत २० वें सूत्र में वरुण नागनत्तुआ का प्रत्यक्ष उदाहरण दे कर 'युद्ध में मरने वाले सभी देवलोक में जाते हैं' इस भ्रान्त मान्यता का निराकरण और भ्रान्त धारणा का कारण अंकित किया है।

फलितार्थ—भगवान् महावीर के युग में एक मान्यता यह थी कि युद्ध में मरने वाले—वीरगति पाने वाले—स्वर्ग में जाते हैं। इसी मान्यता की प्रतिच्छाया भगवद्गीता (अ. २, श्लोक ३२, ३७) में इस प्रकार से है—

> **यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।**
> **सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ! लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥३२॥**
> **हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं, जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।**
> **तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय! युद्धाय कृतनिश्चयः ॥३७॥**

अर्थात्—'हे अर्जुन! अनायास ही (युद्ध के कारण) स्वर्ग का द्वार खुला हुआ है। सुखी क्षत्रिय ही ऐसे युद्ध करने का लाभ पाते हैं।

यदि युद्ध में मर गए तो मर कर स्वर्ग पाओगे, और अगर विजयी बन गए तो पृथ्वी का उपभोग (राजा बन कर) करोगे। इसलिए हे कुन्तीपुत्र! कृतनिश्चय हो करके युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।'

प्रस्तुत सूत्र में वरुण नागनत्तुआ और उसके बालमित्र का उदाहरण प्रस्तुत करके भगवान् ने इस भ्रान्त मान्यता का निराकरण कर दिया कि केवल संग्राम करने से या युद्ध में मरने से किसी को स्वर्ग प्राप्त नहीं होता, अपितु अज्ञानपूर्वक तथा त्याग-व्रत-प्रत्याख्यान से रहित होकर असमाधिपूर्वक मरने से प्रायः नरक या तिर्यंचगति ही मिलती है। अतः संग्राम करने वाले को संग्राम करने से अथवा उसमें मरने से स्वर्ग प्राप्त नहीं होता, अपितु न्यायपूर्वक संग्राम करने के बाद जो संग्रामकर्ता अपने

दुष्कृत्यों के लिए पश्चात्ताप करता है, आलोचन, प्रतिक्रमण करके शुद्ध हो कर समाधिपूर्वक मरता है, वही स्वर्ग मे जाता है।[1]

वरुण की देवलोक मे और उसके मित्र की मनुष्यलोक मे उत्पत्ति और अन्त मे दोनो की महाविदेह मे सिद्धि का निरूपण—

२१ वरुणे ण भंते ! नागनत्तुए कालमासे कालं किच्चा कहिं गते ? कहिं उववन्ने ?

गोयमा ! सोहम्मे कप्पे अरुणाभे विमाणे देवत्ताए उववन्ने। तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता। तत्थ णं वरुणस्स वि देवस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

[२१-प्र] भगवन् वरुण नागनत्तुआ मृत्यु के समय मे कालधर्म पा कर कहाँ गया, कहाँ उत्पन्न हुआ ?

[२१-उ] गौतम ! वह सौधर्मकल्प (देवलोक) मे अरुणाभ नामक विमान मे देवरूप मे उत्पन्न हुआ है। उस देवलोक मे कतिपय देवो की चार पल्योपम की स्थिति (आयु) कही गई है। अतः वहाँ वरुण-देव की स्थिति भी चार पल्योपम की है।

२२ से णं भंते ! वरुणे देवे ताओ देवलोगातो आउक्खएणं भवक्खएणं ठितिक्खएणं० ?

जाव महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव अंतं काहिति।

[२२-प्र] भगवन् ! वह वरुण देव उस देवलोक से आयु-क्षय होने पर, भव-क्षय होने पर तथा स्थिति-क्षय होने पर कहाँ जाएगा, कहाँ उत्पन्न होगा ?

[२२-उ] गौतम ! वह महाविदेह क्षेत्र मे जन्म ले कर सिद्ध होगा, यावत् सभी दु खो का अन्त करेगा।

२३. वरुणस्स णं भंते णागणत्तुयस्स पियबालवयसए कालमासे कालं किच्चा कहिं गते ? कहिं उववन्ने ?

गोयमा ! सुकुले पच्चायाते।

[२३-प्र] भगवन् ! वरुण नागनत्तुआ का प्रिय बालमित्र काल के अवसर पर कालधर्म पा कर कहाँ गया ?, कहाँ उत्पन्न हुआ ?

[२३-उ] गौतम ! वह सुकुल मे (मनुष्यलोक मे अच्छे कुल मे) उत्पन्न हुआ है।

२४ से णं भंते ! ततोहिंतो अणंतरं उवट्टित्ता कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ?

गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव अंतं काहिति।

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ३०७ का टिप्पण
(ख) जैनसाहित्य का बृहद् इतिहास भा-१, पृ २०३
(ग) भगवद्गीता अ २, श्लो ३२, ३७

"[१३] तए णं त वरुण नागणत्तुय कालगय जाणित्ता ग्रहासन्निहितेहिं वाणमंतरेहिं देवेहिं दिव्वे सुरभिगंधोदगवासे वुट्ठे, दसद्धवण्णे कुसुमे निवाडिए, दिव्वे य गीयगंधव्वनिनादे कते यावि होत्था।

[२०-१३] तदनन्तर उस वरुण नागनत्तुआ को कालधर्म प्राप्त हुआ जान कर निकटवर्ती वाणव्यन्तर देवो ने उस पर सुगन्धितजल की वृष्टि की, पाच वर्ण के फूल बरसाए और दिव्यगीत एव गन्धर्व-निनाद भी किया।

"[१४] तए ण तस्स वरुणस्स नागनत्तुयस्स त दिव्वं देविड्ढि दिव्व देवजुइ दिव्वं देवाणुभाग सुणित्ता य पासित्ता य बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ जाव परूवेति—एव खलु देवाणुप्पिया! बहवे मणुस्सा जाव उववत्तारो भवति"।

[२०-१४] तब से उस वरुण नागनत्तुआ की उस दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवप्रभाव को सुन कर और जान कर बहुत-से लोग परस्पर इस प्रकार कहने लगे, यावत् प्ररूपणा करने लगे कि—'देवानुप्रियो! जो सग्राम करते हुए बहुत-से मनुष्य मरते हैं, यावत् वे देवलोको मे उत्पन्न होते हैं।"

विवेचन—'सग्राम मे मृत्यु प्राप्त मनुष्य देवलोक मे जाता है' इस मान्यता का खण्डन—प्रस्तुत २० वे सूत्र मे वरुण नागनत्तुआ का प्रत्यक्ष उदाहरण दे कर 'युद्ध मे मरने वाले सभी देवलोक मे जाते हैं' इस भ्रान्त मान्यता का निराकरण और भ्रान्त धारणा का कारण अकित किया है।

फलितार्थ—भगवान् महावीर के युग मे एक मान्यता यह थी कि युद्ध मे मरने वाले—वीरगति पाने वाले—स्वर्ग मे जाते है। इसी मान्यता की प्रतिच्छाया भगवद्गीता (अ २, श्लोक ३२, ३७) मे इस प्रकार से है—

यदृच्छया चोपपन्न स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रिया पार्थ! लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥३२॥
हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं, जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय! युद्धाय कृतनिश्चय ॥३७॥

अर्थात्—'हे अर्जुन! अनायास ही (युद्ध के कारण) स्वर्ग का द्वार खुला हुआ है। सुखी क्षत्रिय ही ऐसे युद्ध करने का लाभ पाते है।

यदि युद्ध मे मर गए तो मर कर स्वर्ग पाओगे, और अगर विजयी बन गए तो पृथ्वी का उपभोग (राजा बन कर) करोगे। इसलिए हे कुन्तीपुत्र! कृतनिश्चय हो करके युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।'

प्रस्तुत सूत्र मे वरुण नागनत्तुआ और उसके बालमित्र का उदाहरण प्रस्तुत करके भगवान् ने इस भ्रान्त मान्यता का निराकरण कर दिया कि केवल सग्राम करने से या युद्ध मे मरने से किसी को स्वर्ग प्राप्त नही होता, अपितु अज्ञानपूर्वक तथा त्याग-व्रत-प्रत्याख्यान से रहित होकर असमाधिपूर्वक मरने से प्राय नरक या तिर्यंचगति ही मिलती है। अत सग्राम करने वाले को सग्राम करने से अथवा उसमे मरने से स्वर्ग प्राप्त नही होता, अपितु न्यायपूर्वक सग्राम करने के बाद जो सग्रामकर्ता अपने

दुष्कृत्यो के लिए पश्चात्ताप करता है, आलोचन, प्रतिक्रमण करके शुद्ध हो कर समाधिपूर्वक मरता है, वही स्वर्ग मे जाता है।[1]

वरुण की देवलोक मे और उसके मित्र की मनुष्यलोक मे उत्पत्ति और अन्त मे दोनो की महाविदेह मे सिद्धि का निरूपण—

२१ वरुणे ण भते ! नागनत्तुए कालमासे काल किच्चा कहि गते ? कहि उववन्ने ?

गोयमा ! सोहम्मे कप्पे अरुणाभे विमाणे देवत्ताए उववन्ने। तत्थ ण अत्थेगइयाण देवाणं चत्तारि पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता। तत्थ ण वरुणस्य वि देवस्स चत्तारि पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता।

[२१-प्र] भगवन् वरुण नागनत्तुआ मृत्यु के समय मे कालधर्म पा कर कहाँ गया, कहाँ उत्पन्न हुआ ?

[२१-उ] गौतम ! वह सौधर्मकल्प (देवलोक) मे अरुणाभ नामक विमान मे देवरूप मे उत्पन्न हुआ है। उस देवलोक मे कतिपय देवो की चार पल्योपम की स्थिति (आयु) कही गई है। अत: वहाँ वरुण-देव की स्थिति भी चार पल्योपम की है।

२२ से ण भते ! वरुणे देवे ताओ देवलोगातो आउक्खएण भवक्खएण ठितिक्खएण० ?

जाव महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव अत काहिति।

[२२-प्र] भगवन् ! वह वरुण देव उस देवलोक से आयु-क्षय होने पर, भव-क्षय होने पर तथा स्थिति-क्षय होने पर कहाँ जाएगा, कहाँ उत्पन्न होगा ?

[२२-उ] गौतम ! वह महाविदेह क्षेत्र मे जन्म ले कर सिद्ध होगा, यावत् सभी दु खो का अन्त करेगा।

२३. वरुणस्स णं भते णागणत्तुयस्स पियबालवयसए कालमासे काल किच्चा कहि गते ? कहि उववन्ने ?

गोयमा ! सुकुले पच्चायाते।

[२३-प्र] भगवन् ! वरुण नागनत्तुआ का प्रिय बालमित्र काल के अवसर पर कालधर्म पा कर कहाँ गया ?, कहाँ उत्पन्न हुआ ?

[२३-उ] गौतम ! वह सुकुल मे (मनुष्यलोक मे अच्छे कुल मे) उत्पन्न हुआ है।

२४ से ण भते ! ततोहिंतो अणतर उवट्टित्ता कहि गच्छिहिति ? कहि उववज्जिहिति ?

गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव अत काहिति।

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ३०७ का टिप्पण

(ख) जैनसाहित्य का बृहद् इतिहास भा-१, पृ २०३

(ग) भगवद्गीता अ २, श्लो ३२, ३७

४ तेण कालेण तेण समएण समणे भगव महावीरे जाव गुणसिलए समोसढे जाव परिसा पडिगता ।

[४] उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर यावत् गुणशीलक चैत्य मे पधारे, वहाँ उनका समवसरण लगा । यावत् परिषद् (धर्मोपदेश सुनकर) वापिस चली गई ।

५ तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवतो महावीरस्स जेट्ठे अतेवासी इदभूती णाम अणगारे गोतमगोत्ते णं जहा बितियसते नियठुद्देसए (श० २ उ० ५ सू० २१-२३) जाव भिक्खायरियाए अडमाणे अहापज्जत्तं भत्त-पाण पडिग्गाहित्ता रायगिहातो जाव अतुरियमचवलमसभते जाव रिय सोहेमाणे सोहेमाणे तेसिं अन्नउत्थियाण अदूरसामतेण वीइवयति ।

[५] उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी गौतमगोत्रीय इन्द्रभूति नामक अनगार, दूसरे शतक के निर्ग्रन्थ उद्देशक मे कहे अनुसार भिक्षाचरी के लिए पर्यटन करते हुए यथापर्याप्त आहार-पानी ग्रहण करके राजगृह नगर से यावत् त्वराहित, चपलतारहित, सम्भ्रान्ततारहित, यावत् ईर्यासमिति का शोधन करते-करते अन्यतीर्थिको के पास से होकर निकले ।

६. [१] तए ण ते अन्नउत्थिया भगवं गोयम अदूरसामतेणं वीइवयमाणं पासति, पासेत्ता अन्नमन्न सद्दावेंति, अन्नमन्न सद्दावेत्ता एव वयासी—"एव खलु देवाणुप्पिया ! अम्ह इमा कहा अविप्प-कडा, अयं च ण गोतमे अम्ह अदूरसामतेण वीतीवयति, त सेय खलु देवाणुप्पिया ! अम्ह गोतम एयमट्ठ पुच्छित्तए" त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स अतिए एयमट्ठ पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता जेणेव भगव गोतमे तेणेव उवागच्छति, तेणेव उवागच्छित्ता भगव गोतम एव वदासी—एव खलु गोयमा ! तव धम्मायरिए धम्मोवदेसए समणे णायपुत्ते पच अत्थिकाए पण्णवेति, त जहा—धम्मत्थिकाय जाव आगासत्थिकाय, त चेव रूविकाय अजीवकाय पण्णवेति, से कहमेय भते ! गोयमा ! एवं ?

[६-१] तत्पश्चात् उन अन्यतीर्थिको ने भगवान् गौतम को थोडी दूर से जाते हुए देखा । देखकर उन्होने एक दूसरे को बुलाया । बुला कर एक दूसरे से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! बात ऐसी है कि (पचास्तिकाय सम्बन्धी) यह बात हमारे लिए अप्रकट—अज्ञात है । यह (इन्द्रभूति) गौतम हमसे थोडी ही दूर पर जा रहे हैं । इसलिए हे देवानुप्रियो ! हमारे लिए गौतम से यह अर्थ (बात) पूछना श्रेयस्कर है, ऐसा विचार करके उन्होने परस्पर (एक दूसरे से) इस सम्बन्ध मे परामर्श किया । परामर्श करके जहाँ भगवान् गौतम थे, वहाँ उनके पास आए । पास आ कर उन्होने भगवान् गौतम से इस प्रकार पूछा—

[प्र] हे गौतम ! तुम्हारे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण ज्ञातपुत्र पच अस्तिकाय की प्ररूपणा करते हैं । जैसे कि—धर्मास्तिकाय यावत् आकाशास्तिकाय । यावत् 'एक पुद्गलास्तिकाय को ही श्रमण ज्ञातपुत्र रूपीकाय और अजीवकाय कहते हैं', यहाँ तक (पहले की हुई) अपनी सारी चर्चा उन्होने गौतम से कही । फिर पूछा—'हे भदन्त गौतम ! यह बात ऐसे कैसे है ?'

[२] तए णं से भगव गोतमे ते अन्नउत्थिए एव वयासी—"नो खलु वय देवाणुप्पिया ! अत्थिभाव 'नत्थि' त्ति वदामो, नत्थिभाव 'अत्थि' त्ति वदामो । अम्हे ण देवाणुप्पिया ! सव्व अत्थिभाव 'अत्थी' ति वदामो, सव्व नत्थिभाव 'नत्थी' ति वदामो । त चेदसा खलु तुब्भे देवाणुप्पिया ! एतमट्ठं सयमेव पच्चुविक्खह" त्ति कट्टु ते अन्नउत्थिए एव वदति । एव वदित्ता जेणेव गुणसिलए चेतिए जेणेव समणे० एव जहा नियठुद्देसए (श० २ उ० ५ सू० २५ [१]) जाव भत्त-पाण पडिदसेति, भत्त-पाण पडिदसेत्ता समण भगव महावीर वदति नमसति, वदित्ता नमसित्ता नच्चासन्ने जाव पज्जुवासति ।

[६-२ उ] इस पर भगवान् गौतम ने उन अन्यतीर्थिको से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो ! हम अस्तिभाव (विद्यमान) को नास्ति (नही है), ऐसा नही कहते, इसी प्रकार 'नास्तिभाव' (अविद्यमान) को अस्ति (है) ऐसा नही कहते । हे देवानुप्रियो ! हम सभी अस्तिभावो को अस्ति (है), ऐसा कहते हैं और समस्त नास्तिभावो को नास्ति (नही है), ऐसा कहते है । अत हे देवानुप्रियो ! आप स्वय अपने ज्ञान (अथवा मन) से इस बात (अर्थ) पर अनुप्रेक्षण (चिन्तन) करिये ।' इस प्रकार कह कर श्री गौतमस्वामी ने उन अन्यतीर्थिको से यो कहा—जैसा भगवान् बतलाते है, वैसा ही है ।' इस प्रकार कह कर श्री गौतमस्वामी गुणशीलक चैत्य मे जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ उनके पास आए । और द्वितीय शतक के निर्ग्रन्थ उद्देशक (सू-२५-१) मे बताये अनुसार यावत् आहार-पानी(भक्त-पान) भगवान् को दिखलाया । भक्तपान दिखला कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दन-नमस्कार किया । वन्दन-नमस्कार करके उनसे न बहुत दूर और न बहुत निकट रह कर यावत् उपासना करने लगे ।

७ तेणं कालेण तेण समएण समणे भगवं महावीरे महाकहापडिवन्ने यावि होत्था, कालोदाई य त देसं हव्वमागए ।

[७] उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर महाकथा-प्रतिपन्न (बहुत-से जन-समूह को धर्मोपदेश देने मे प्रवृत्त) थे । उसी समय कालोदायी उस स्थल (प्रदेश) मे आ पहुँचा ।

८ 'कालोदाई' ति समणे भगव महावीरे कालोदाइ एव वदासी—"से नूण ते कालोदाई ! अन्नया कयाई एगयओ सहियाण समुवागताण सन्निविट्ठाण तहेव (सू० ३) जाव से कहमेत मन्ने एव ? से नूण कालोदाई ! अत्थे समट्ठे ? हंता, अत्थि । त सच्चे ण एसमट्ठे कालोदाई !, अह पच अत्थिकाए पण्णवेमि, तं जहा—धम्मत्थिकायं जाव पोग्गलत्थिकाय । तत्थ ण अह चत्तारि अत्थिकाए अजीवकाए पण्णवेमि तहेव जाव एग च ण अहं पोग्गलत्थिकाय रूविकायं पण्णवेमि" ।

[८] 'हे कालोदायी !' इस प्रकार सम्बोधन करके श्रमण भगवान् महावीर ने कालोदायी से इस प्रकार पूछा—'हे कालोदायी ! क्या वास्तव मे, किसी समय एक जगह सभी साथ आए हुए और एकत्र सुखपूर्वक बैठे हुए तुम सब मे पचास्तिकाय के सम्बन्ध मे इस प्रकार विचार हुआ था कि यावत् 'यह बात कैसे मानी जाए ?' हे कालोदायिन् ! क्या यह बात यथार्थ है ?' (कालोदायी—) 'हाँ, यथार्थ है ।'

दसमो उद्देसओ : 'अन्नउत्थिय'

दशम उद्देशक : 'अन्ययूथिक'

अन्यतीर्थिक कालोदायी की पंचास्तिकाय-चर्चा और सम्बुद्ध होकर प्रव्रज्या स्वीकार—

१. तेणं कालेण तेण समएण रायगिहे नाम नगरे होत्था । वण्णओ । गुणसिलए चेइए । वण्णओ । जाव पुढविसिलापट्टए ।

[१] उस काल और उस समय मे राजगृह नामक नगर था । उसका वर्णन करना चाहिए । वहाँ गुणशीलक नामक चैत्य था । उसका वर्णन भी समझ लेना चाहिए । यावत् (एक) पृथ्वीशिला-पट्टक था । उसका वर्णन ।

२ तस्स ण गुणसिलयस्स चेतियस्स अदूरसामते बहवे अन्नउत्थिया परिवसति, त जहा—कालोदाई सेलोदाई सेवालोदाई उदए णामुदए नम्मुदए अन्नवालए सेलवालए सखवालए सुहत्थी गाहावई ।

[२] उस गुणशीलक चैत्य के पास थोडी दूर पर बहुत-से अन्यतीर्थी रहते थे । यथा—कालोदायी, शैलोदायी, शैवालोदायी, उदय, नामोदय, नर्मोदय, अन्यपालक, शैलपालक, शखपालक और सुहस्ती गृहपति ।

३ तए ण तेसि अन्नउत्थियाण अन्नया कयाई एगयओ सहियाण समुवागताण सन्निविट्ठाणं सन्निसण्णाण अयमेयारूवे मिहोकहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु समणे णातपुत्ते पच अत्थिकाए पण्णवेति, त जहा—धम्मत्थिकाय जाव आगासत्थिकाय । तत्थ ण समणे णातपुत्ते चत्तारि अत्थिकाए अजीवकाए पण्णवेति, तं०—धम्मत्थिकायं अधम्मत्थिकायं आगासत्थिकाय पोग्गलत्थिकाय । एग च समणे णायपुत्ते जीवत्थिकाय अरूविकाय जीवकाय पन्नवेति । तत्थ ण समणे णायपुत्ते चत्तारि अत्थिकाए अरूविकाए पन्नवेति, त जहा—धम्मत्थिकाय अधम्मत्थिकाय आगासत्थिकाय जीवत्थिकाय । एग च ण समणे णायपुत्ते पोग्गलत्थिकाय रूविकाय अजीवकाय पन्नवेति । से कहमेत मन्ने एव ? ।

[३] तत्पश्चात् किसी समय वे सब अन्यतीर्थिक एक स्थान पर आए, एकत्रित हुए और सुखपूर्वक भलीभाँति बैठे । फिर उनमे परस्पर इस प्रकार का वार्तालाप प्रारम्भ हुआ—'ऐसा (सुना) है कि श्रमण ज्ञातपुत्र (महावीर) पाच अस्तिकायो का निरूपण करते है, यथा—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय । इनमे से चार अस्तिकायो को श्रमण ज्ञातपुत्र 'अजीव-काय' बताते हैं । जैसे कि—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय । एक जीवास्तिकाय को श्रमण ज्ञातपुत्र 'अरूपी' और जीवकाय बतलाते हैं । उन पाच अस्तिकायो मे से चार अस्तिकायो को श्रमण ज्ञातपुत्र अरूपीकाय बतलाते हैं । जैसे कि—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और जीवास्तिकाय । केवल एक पुद्गलास्तिकाय को ही श्रमण ज्ञातपुत्र रूपीकाय और अजीवकाय कहते हैं । उनकी यह बात कैसे मानी जाए ?

४ तेण कालेण तेण समएण समणे भगव महावीरे जाव गुणसिलए समोसढे जाव परिसा पडिगता ।

[४] उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर यावत् गुणशीलक चैत्य मे पधारे, वहाँ उनका समवसरण लगा । यावत् परिषद् (धर्मोपदेश सुनकर) वापिस चली गई ।

५ तेण कालेणं तेण समएण समणस्स भगवतो महावीरस्स जेट्ठे अतेवासी इदभूती णाम अणगारे गोतमगोत्ते णं जहा बितियसते नियठुद्देसए (श० २ उ० ५ सू० २१-२३) जाव भिक्खायरियाए अडमाणे अहापज्जत्तं भत्त-पाण पडिग्गाहित्ता रायगिहातो जाव अतुरियमचवलमसंभते जाव रिय सोहेमाणे सोहेमाणे तेसिं अन्नउत्थियाण अदूरसामतेण वीइवयति ।

[५] उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी गौतमगोत्रीय इन्द्रभूति नामक अनगार, दूसरे शतक के निर्ग्रन्थ उद्देशक मे कहे अनुसार भिक्षाचरी के लिए पर्यटन करते हुए यथापर्याप्त आहार-पानी ग्रहण करके राजगृह नगर से यावत् त्वराहित, चपलतारहित, सम्भ्रान्ततारहित, यावत् ईर्यासमिति का शोधन करते-करते अन्यतीर्थिको के पास से होकर निकले ।

६. [१] तए ण ते अन्नउत्थिया भगवं गोयम अदूरसामतेणं वीइवयमाणं पासति, पासेत्ता अन्नमन्न सद्दावेंति, अन्नमन्नं सद्दावेत्ता एव वयासी—"एव खलु देवाणुप्पिया ! अम्ह इमा कहा अविप्प-कडा, अय च ण गोतमे अम्ह अदूरसामतेण वीतीवयति, त सेय खलु देवाणुप्पिया ! अम्ह गोतम एयमट्ठ पुच्छित्तए" त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स अतिए एयमट्ठ पडिसुर्णेति, पडिसुणित्ता जेणेव भगव गोतमे तेणेव उवागच्छति, तेणेव उवागच्छित्ता भगव गोतम एव वदासी—एव खलु गोयमा ! तव धम्मायरिए धम्मोवदेसए समणे णायपुत्ते पच अत्थिकाए पण्णवेति, त जहा—धम्मत्थिकाय जाव आगासत्थिकाय, त चेव रूविकाय अजीवकाय पण्णवेति, से कहमेय भते ! गोयमा ! एवं ?

[६-१] तत्पश्चात् उन अन्यतीर्थिको ने भगवान् गौतम को थोडी दूर से जाते हुए देखा । देखकर उन्होने एक दूसरे को बुलाया । बुला कर एक दूसरे से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! बात ऐसी है कि (पचास्तिकाय सम्बन्धी) यह बात हमारे लिए अप्रकट—अज्ञात है । यह (इन्द्रभूति) गौतम हमसे थोडी ही दूर पर जा रहे हैं । इसलिए हे देवानुप्रियो ! हमारे लिए गौतम से यह अर्थ (बात) पूछना श्रेयस्कर है, ऐसा विचार करके उन्होने परस्पर (एक दूसरे से) इस सम्बन्ध मे परामर्श किया । परामर्श करके जहाँ भगवान् गौतम थे, वहाँ उनके पास आए । पास आ कर उन्होने भगवान् गौतम से इस प्रकार पूछा—

[प्र] हे गौतम ! तुम्हारे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण ज्ञातपुत्र पच अस्तिकाय की प्ररूपणा करते हैं । जैसे कि—धर्मास्तिकाय यावत् आकाशास्तिकाय । यावत् 'एक पुद्गलास्तिकाय को ही श्रमण ज्ञातपुत्र रूपीकाय और अजीवकाय कहते हैं', यहाँ तक (पहले की हुई) अपनी सारी चर्चा उन्होने गौतम से कही । फिर पूछा—'हे भदन्त गौतम ! यह बात ऐसे कैसे है ?'

[२] तए णं से भगव गोतमे ते अन्नउत्थिए एव वयासी—"नो खलु वय देवाणुप्पिया ! अत्थिभाव 'नत्थि' त्ति वदामो, नत्थिभाव 'अत्थि' त्ति वदामो। अम्हे ण देवाणुप्पिया ! सव्व अत्थिभाव 'अत्थी' ति वदामो, सव्व नत्थिभाव 'नत्थी' ति वदामो। त चेदसा खलु तुब्भे देवाणुप्पिया ! एतमट्ठ सयमेव पच्चुविक्खह" त्ति कट्टु ते अन्नउत्थिए एव वदति। एव वदित्ता जेणेव गुणसिलए चेतिए जेणेव समणे० एव जहा नियठुद्देसए (श० २ उ० ५ सू० २५ [१]) जाव भत्त-पाण पडिदसेति, भत्त-पाण पडिदसेत्ता समण भगव महावीर वदति नमसति, वदित्ता नमसित्ता नच्चासन्ने जाव पज्जुवासति।

[६-२ उ] इस पर भगवान् गौतम ने उन अन्यतीर्थिको से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो ! हम अस्तिभाव (विद्यमान) को नास्ति (नही है), ऐसा नही कहते, इसी प्रकार 'नास्तिभाव' (अविद्यमान) को अस्ति (है) ऐसा नही कहते। हे देवानुप्रियो ! हम सभी अस्तिभावो को अस्ति (है), ऐसा कहते है और समस्त नास्तिभावो को नास्ति (नही है), ऐसा कहते है। अत हे देवानुप्रियो ! आप स्वय अपने ज्ञान (अथवा मन) से इस बात (अर्थ) पर अनुप्रेक्षण (चिन्तन) करिये।' इस प्रकार कह कर श्री गौतमस्वामी ने उन अन्यतीर्थिको से यो कहा—जैसा भगवान् बतलाते है, वैसा ही है।' इस प्रकार कह कर श्री गौतमस्वामी गुणशीलक चैत्य मे जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ उनके पास आए। और द्वितीय शतक के निर्ग्रन्थ उद्देशक (सू-२५-१) मे बताये अनुसार यावत् आहार-पानी(भक्त-पान) भगवान् को दिखलाया। भक्तपान दिखला कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके उनसे न बहुत दूर और न बहुत निकट रह कर यावत् उपासना करने लगे।

७ तेण कालेण तेण समएण समणे भगव महावीरे महाकहापडिवन्ने यावि होत्था, कालोदाई य त देस हव्वमागए।

[७] उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर महाकथा-प्रतिपन्न (बहुत-से जन-समूह को धर्मोपदेश देने मे प्रवृत्त) थे। उसी समय कालोदायी उस स्थल (प्रदेश) मे आ पहुँचा।

८ 'कालोदाई' ति समणे भगव महावीरे कालोदाइ एव वदासी—"से नूण ते कालोदाई ! अन्नया कयाई एगयओ सहियाण समुवागताण सन्निविट्ठाण तहेव (सू० २) जाव से कहमेत मन्ने एव ? से नूणं कालोदाई ! अत्थे समट्ठे ? हता, अत्थि। त सच्चे ण एसमट्ठे कालोदाई !, अह पच अत्थिकाए पण्णवेमि, त जहा—धम्मत्थिकाय जाव पोग्गलत्थिकाय। तत्थ णं अह चत्तारि अत्थिकाए अजीवकाए पण्णवेमि तहेव जाव एग च ण अह पोग्गलत्थिकाय रूविकाय पण्णवेमि"।

[८] 'हे कालोदायी !' इस प्रकार सम्बोधन करके श्रमण भगवान् महावीर ने कालोदायी से इस प्रकार पूछा—'हे कालोदायी ! क्या वास्तव मे, किसी समय एक जगह सभी साथ आए हुए और एकत्र सुखपूर्वक बैठे हुए तुम सब मे पचास्तिकाय के सम्बन्ध मे इस प्रकार विचार हुआ था कि यावत् 'यह बात कैसे मानी जाए ?' हे कालोदायिन् ! क्या यह बात यथार्थ है ?' (कालोदायी—) 'हाँ, यथार्थ है।'

(भगवान्—) 'हे कालोदायी ! पचास्तिकायसम्बन्धी यह बात सत्य है। मैं धर्मास्तिकाय यावत् पुद्गलास्तिकाय-पर्यन्त पच अस्तिकाय की प्ररूपणा करता हूँ। उनमे से चार अस्तिकायो को मै अजीवकाय बतलाता हूँ। यावत् पूर्व कथितानुसार एक पुद्गलास्तिकाय को मैं रूपीकाय (अजीव-काय) बतलाता हूँ।'

९ तए ण से कालोदाई समण भगव महावीरं एवं वदासी—एयसि ण भते ! धम्मत्थिकायसि अधम्मत्थिकायसि आगासत्थिकायसि अरूविकायसि अजीवकायसि चक्किया केइ आसइत्तए वा सइत्तए वा चिट्ठित्तए वा निसीदित्तए वा तुयट्टित्तए वा ?

णो इणट्ठे समट्ठे कालोदाई ! । एगंसि णं पोग्गलत्थिकायसि रूविकायसि अजीवकायसि चक्किया केइ आसइत्तए वा सइत्तए वा जाव तुयट्टित्तए वा ।

[९ प्र] तब कालोदायी ने श्रमण भगवान् महावीर से इस प्रकार पूछा—'भगवन् ! क्या धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय, इन अरूपी अजीवकायो पर कोई बैठने, सोने, खड़े रहने, नीचे बैठने यावत् करवट बदलने, आदि क्रियाएँ करने मे समर्थ है ?'

[९ उ] हे कालोदायिन् ! यह अर्थ (बात) समर्थ (शक्य) नही है। एक पुद्गलास्तिकाय ही रूपी अजीवकाय है जिस पर कोई भी बैठने, सोने, या यावत् करवट बदलने, आदि क्रियाएँ करने मे समर्थ है।

१० एयसि ण भते ! पोग्गलत्थिकायसि रूविकायसि अजीवकायसि जीवाण पावा कम्मा पावफलविवागसजुत्ता कज्जति ?

णो इणट्ठे समट्ठे कालोदाई !।

[१० प्र] भगवन् ! जीवो को पापफलविपाक से सयुक्त करने वाले (अशुभफलदायक) पापकर्म, क्या इस रूपीकाय और अजीवकाय को लगते है ? क्या इस रूपीकाय और अजीवकायरूप पुद्गलास्तिकाय मे पापकर्म लगते है ?

[१० उ] कालोदायिन् ! यह अर्थ समर्थ नही है। (अर्थात्—रूपी अजीव पुद्गलास्तिकाय को, जीवो को पापफलविपाकयुक्त करने वाले पापकर्म नही लगते।)

११. एयसि ण जीवत्थिकायसि अरूविकायसि जीवाण पावा कम्मा पावफलविवागसजुत्ता कज्जति ?

हता, कज्जंति ।

[११ प्र] (भगवन् !) क्या इस अरूपी (काय) जीवास्तिकाय मे जीवो को पापफलविपाक से युक्त पापकर्म लगते है ?

[११ उ] हाँ (कालोदायिन् !) लगते है। (अर्थात्—अरूपी जीवास्तिकाय मे ही जीव पापफलकर्म से सयुक्त होते है।)

१२ एत्थ णं से कालोदाई संबुद्धे समणं भगवं महावीरं वंदति नमसति, वंदित्ता नमसित्ता एवं वयासी—इच्छामि णं भंते ! तुब्भं अंतिए धम्मं निसामित्तए एवं जहा खंदए (श० २ उ० १ सू० ३२-४५) तहेव पव्वइए, तहेव एक्कारस अंगाइं जाव विहरति ।

[१२] (भगवान् द्वारा समाधान पाकर) कालोदायी सम्बुद्ध (बोधि को प्राप्त) हुआ । फिर उसने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया । वन्दन-नमस्कार करके उसने इस प्रकार कहा—'भगवन् ! मै आपसे धर्म-श्रवण करना चाहता हूँ ।'

भगवान् ने उसे धर्म-श्रवण कराया । फिर जैसे स्कन्दक ने भगवान् से प्रव्रज्या अगीकार की थी (श २ उ १ सू ३२-४५) वैसे ही कालोदायी भगवान् के पास प्रव्रजित हुआ । उसी प्रकार उसने ग्यारह अगो का अध्ययन किया, यावत् कालोदायी अनगार विचरण करने लगे ।

विवेचन—अन्यतीर्थिक कालोदायी की पचास्तिकायचर्चा और सम्बुद्ध होकर प्रव्रज्या-स्वीकार—प्रस्तुत उद्देशक के प्रारम्भ से लेकर १२ सूत्रो मे कालोदायी का अनगार के रूप मे प्रव्रजित होने तक का घटनाक्रम प्रतिपादित किया गया है ।

कालोदायी के जीवनपरिवर्तन का घटनाचक्र—(१) कालोदायी आदि अन्यतीर्थिक साथियो का पचास्तिकाय के सम्बन्ध मे वार्तालाप, (२) श्री गौतमस्वामी को पास से जाते देख, पचास्तिकाय सम्बन्धी भगवान् की मान्यता के सम्बन्ध मे उनसे पूछा, (३) उन्होने कालोदायी आदि की पञ्चास्तिकाय-सम्बन्धी मान्यता भगवत्सम्मत बताई, (४) जिज्ञासावश कालोदायी ने भगवान् का साक्षात्कार करके पुन समाधान प्राप्त किया, पचास्तिकाय के सम्बन्ध मे अन्य प्रश्न किये, (५) सतोषजनक उत्तर पाकर वह सम्बोधि-प्राप्त हुआ, (६) भगवान् से उसने धर्म-श्रवण की इच्छा प्रकट की, धर्मोपदेश सुना, स्कन्दक की तरह ससारविरक्त होकर प्रव्रजित हुआ, (७) कालोदायी अनगार ने ग्यारह अगो का अध्ययन किया और विचरण करने लगा ।[1]

जीवो के पापकर्म और कल्याणकर्म क्रमश. पाप-कल्याण-फल-विपाकसंयुक्त होने का सदृष्टान्त निरूपण—

१३ तए ण समणे भगवं महावीरे अन्नया कयाइ रायगिहातो णगरातो गुणसिल० पडिनिक्खमति, २ बहिया जणवयविहारं विहरइ ।

[१३] किसी समय श्रमण भगवान् महावीर राजगृह नगर के गुणशीलक चैत्य से निकल कर बाहर जनपदो मे विहार करते हुए विचरण करने लगे ।

१४ तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नगरे, गुणसिलए चेइए । तए णं समणे भगवं महावीरे अन्नया कयाइ जाव समोसढे, परिसा जाव पडिगता ।

[१४] उस काल और उस समय मे राजगृह नामक नगर था । (नगर के बाहर) गुणशीलक नामक चैत्य था । किसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पुन वहाँ पधारे यावत् उनका समवसरण लगा । यावत् परिषद् धर्मोपदेश सुन कर लौट गई ।

---

१ वियाहपण्णत्ति सुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भाग १, पृ ३१२ से ३१५-तक

१५ तए ण से कालोदाई अणगारे अन्नया कयाई जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगव महावीरं वदइ नमंसइ, वंदित्ता नमसित्ता एवं वदासि—अत्थि ण भते ! जीवाण पावा कम्मा पावफलविवागसजुत्ता कज्जति ?

हता, अत्थि ।

[१५ प्र] तदनन्तर अन्य किसी समय कालोदायी अनगार, जहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विराजमान थे, वहाँ उनके पास आए और श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—

भगवन् ! क्या जीवो को पापफलविपाक से सयुक्त पाप-कर्म लगते है ?

[१५ उ] हाँ, (कालोदायिन् !) लगते है ।

१६ कह ण भते ! जीवाण पावा कम्मा पावफलविवागसजुत्ता कज्जति ?

कालोदाई ! से जहानामए केइ पुरिसे मणुण्ण थालीपागसुद्धं अट्ठारसवंजणाकुल विससमिस्सं भोयण भु जेज्जा, तस्स ण भोयणस्स आवाते भद्दए भवति, ततो पच्छा परिणममाणे परिणममाणे दुरूवत्ताए दुग्गधत्ताए जहा महस्सवए (स० ६ उ० ३ सु० २ [१]) जाव भुज्जो भुज्जो परिणमति, एवामेव कालोदाई ! जीवाण पाणातिवाए जाव मिच्छादसणसल्ले, तस्स ण आवाते भद्दए भवइ, ततो पच्छा परिणममाणे परिणममाणे दुरूवत्ताए जाव भुज्जो भुज्जो परिणमति, एव खलु कालोदाई ! जीवाण पावा कम्मा पावफलविवाग० जाव कज्जति ।

[१६ प्र] भगवन् ! जीवो को पापफलविपाकसयुक्त पापकर्म कैसे लगते है ?

[१६ उ] कालोदायिन् ! जैसे कोई पुरुष सुन्दर स्थाली (हाडी, तपेली या देगची) मे पकाने से शुद्ध पका हुआ, अठारह प्रकार के दाल, शाक आदि व्यजनो से युक्त विषमिश्रित भोजन का सेवन करता है। वह भोजन उसे आपात (ऊपर-ऊपर से या प्रारम्भ) मे अच्छा लगता है, किन्तु उसके पश्चात् वह भोजन परिणमन होता-होता खराब रूप मे, दुर्गन्धरूप मे यावत् छठे शतक के महाश्रव नामक तृतीय उद्देशक (सू २-१) मे कहे अनुसार यावत् बार-बार अशुभ परिणाम प्राप्त करता है। हे कालोदायिन् ! इसी प्रकार जीवो को प्राणातिपात से लेकर यावत् मिथ्यादर्शनशल्य तक अठारह पापस्थान का सेवन ऊपर-ऊपर से प्रारम्भ मे तो अच्छा लगता है, किन्तु बाद मे जब उनके द्वारा बाधे हुए पापकर्म उदय मे आते है, तब वे अशुभरूप मे परिणत होते-होते, दुरूपपने मे, दुर्गन्धरूप मे यावत् बार-बार अशुभ परिणाम पाते हैं। हे कालोदायिन् ! इस प्रकार से जीवो के पापकर्म अशुभफलविपाक से युक्त होते हैं।

१७. अत्थि ण भते ! जीवाण कल्लाणा कम्मा कल्लाणफलविवागसजुत्ता कज्जति ?

हंता, कज्जति ।

[१७ प्र] भगवन् ! क्या जीवो के कल्याण (शुभ) कर्म कल्याणफलविपाक सहित होते हैं ?

[१७ उ] हाँ, कालोदायिन् ! होते है ।

१८ कह णं भंते! जीवाणं कल्लाणा कम्मा जाव कज्जंति ?

कालोदाई! से जहानामए केइ पुरिसे मणुण्णं थालीपागसुद्धं अट्ठारसवंजणाकुलं ओसहसम्मिस्सं भोयणं भुंजेज्जा, तस्स णं भोयणस्स आवाते णो भद्दए भवति, तओ पच्छा परिणममाणे परिणममाणे सुरूवत्ताए सुवण्णत्ताए जाव सुहत्ताए, नो दुक्खत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमति। एवामेव कालोदाई! जीवाणं पाणातिवातवेरमणे जाव परिग्गहवेरमणे कोहविवेगे जाव मिच्छादंसणसल्लविवेगे तस्स णं आवाए नो भद्दए भवइ, ततो पच्छा परिणममाणे परिणममाणे सुरूवत्ताए जाव सुहत्ताए, नो दुक्खत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमइ, एवं खलु कालोदाई! जीवाणं कल्लाणा कम्मा जाव कज्जंति।

[१८ प्र] भगवन्! जीवों के कल्याणकर्म, कल्याणफलविपाक से संयुक्त कैसे होते हैं ?

[१८ उ] कालोदायिन्! जैसे कोई पुरुष मनोज्ञ (सुन्दर) स्थाली (हाँडी, तपेली या देगची) में पकाने से शुद्ध पका हुआ और अठारह प्रकार के दाल, शाक आदि व्यंजनों से युक्त औषधमिश्रित भोजन करता है, तो वह भोजन ऊपर-ऊपर से प्रारम्भ में अच्छा न लगे, परन्तु बाद में परिणत होता-होता जब वह सुरूपत्व रूप में, सुवर्णरूप में यावत् सुख (या शुभ) रूप में बार-बार परिणत होता है, तब वह दुःखरूप में परिणत नहीं होता, इसी प्रकार हे कालोदायिन्! जीवों के लिए प्राणातिपात-विरमण यावत् परिग्रह-विरमण, क्रोधविवेक (क्रोधत्याग) यावत् मिथ्यादर्शनशल्य-विवेक प्रारम्भ में अच्छा नहीं लगता, किन्तु उसके पश्चात् उसका परिणमन होते-होते सुरूपत्व रूप में, सुवर्णरूप में उसका परिणाम यावत् सुखरूप होता है, दुःखरूप नहीं होता। इसी प्रकार हे कालोदायिन्! जीवों के कल्याण (पुण्य) कर्म कल्याणफलविपाक-संयुक्त होते हैं।

विवेचन—जीवों के पापकर्म और कल्याणकर्म क्रमशः पापकल्याणफलविपाक-संयुक्त होने का सदृष्टान्त निरूपण—प्रस्तुत छह सूत्रों में कालोदायी अनगार द्वारा पापकर्म और कल्याणकर्म के फल से सम्बन्धित चार प्रश्नों का भगवान् द्वारा दिया गया दृष्टान्तपूर्वक समाधान प्रस्तुत किया गया है।

निष्कर्ष—जिस प्रकार सर्वथा सुसंस्कृत एवं शुद्ध रीति से पकाया हुआ विषमिश्रित भोजन खाते समय बड़ा रुचिकर लगता है, किन्तु जब उसका परिणमन होता है, तब वह अत्यन्त अप्रीतिकर, दुःखद और प्राणविनाशकारक होता है। इसी प्रकार प्राणातिपात आदि पापकर्म करते समय जीव को अच्छे लगते हैं, किन्तु उनका फल भोगते समय वे बड़े दुःखदायी होते हैं। औषधयुक्त भोजन करना कष्टकर लगता है, उस समय उसका स्वाद अच्छा नहीं लगता, किन्तु उसका परिणाम हितकर, सुखकर और आरोग्यकर होता है। इसी प्रकार प्राणातिपातादि से विरति कष्टकर एवं अरुचिकर लगती है, किन्तु उसका परिणाम अतीव हितकर और सुखकर होता है।[1]

अग्निकाय को जलाने और बुझानेवालों में से महाकर्म आदि और अल्पकर्मादि से संयुक्त कौन और क्यों ?

१९. [१] दो भंते! पुरिसा सरिसया जाव सरिसभंडमत्तोवगरणा अन्नमन्नेणं सद्धिं अगणिकायं समारभंति, तत्थ णं एगे पुरिसे अगणिकायं उज्जालेति, एगे पुरिसे अगणिकायं निव्वावेति।

1. भगवती. अ. वृत्ति, पत्रांक ३२६

एतेसि णं भंते ! दोण्ह पुरिसाण कतरे पुरिसे महाकम्मतराए चेव, महाकिरियतराए चेव, महासवतराए चेव, महावेदणतराए चेव ? कतरे वा पुरिसे अप्पकम्मतराए चेव जाव अप्पवेदणतराए चेव ? जे वा से पुरिसे अगणिकाय उज्जालेति, जे वा से पुरिसे अगणिकाय निव्वावेति ?

कालोदाई ! तत्थ ण जे से पुरिसे अगणिकाय उज्जालेति से णं पुरिसे महाकम्मतराए चेव जाव महावेदणतराए चेव। तत्थ ण जे से पुरिसे अगणिकाय निव्वावेति से ण पुरिसे अप्पकम्मतराए चेव जाव अप्पवेयणतराए चेव।

[१९-१ प्र] भगवन् ! (मान लीजिए) समान उम्र के यावत् समान ही भाण्ड, पात्र और उपकरण वाले दो पुरुष, एक दूसरे के साथ अग्निकाय का समारम्भ करे, (अर्थात्—) उनमे से एक पुरुष अग्निकाय को जलाए और एक पुरुष अग्निकाय को बुझाए, तो हे भगवन् ! उन दोनो पुरुषो मे से कौन-सा पुरुष महाकर्म वाला, महाक्रिया वाला, महा-आश्रव वाला और महावेदना वाला है और कौन-सा पुरुष अल्पकर्म वाला, अल्पक्रिया वाला, अल्प-आश्रव वाला और अल्पवेदना वाला होता है ? (अर्थात्—दोनो मे से जो अग्नि जलाता है, वह महाकर्म आदि वाला होता है, या जो आग बुझाता है, वह महाकर्मादि युक्त होता है ?)

[१९-१ उ] हे कालोदायिन् ! उन दोनो पुरुषो मे से जो पुरुष अग्निकाय को जलाता है, वह पुरुष महाकर्म वाला यावत् महावेदना वाला होता है, और जो पुरुष अग्निकाय को बुझाता है, वह अल्पकर्म वाला यावत् अल्पवेदना वाला होता है।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चइ—'तत्थ णं जे से पुरिसे जाव अप्पवेयणतराए चेव' ?

कालोदाई ! तत्थ ण जे से पुरिसे अगणिकाय उज्जालेति से ण पुरिसे बहुतराग पुढविकायं समारभति, बहुतरागं आउक्कायं समारभति, अप्पतराग तेउकायं समारभति, बहुतराग वाउकाय समारभति, बहुतराग वणस्सतिकाय समारभति, बहुतरागं तसकायं समारभति। तत्थ ण जे से पुरिसे अगणिकाय निव्वावेति से ण पुरिसे अप्पतराग पुढविक्काय समारभति, अप्प० आउ०, बहुतराग तेउक्काय समारभति, अप्पतरागं वाउकाय सभारभइ, अप्पतराग वणस्सतिकाय समारभइ, अप्पतराग तसकाय समारभइ। से तेणट्ठेण कालोदाई ! जाव अप्पवेदणतराए चेव।

[१९-२ प्र.] भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि उन दोनो पुरुषो मे से जो पुरुष अग्निकाय को जलाता है, वह महाकर्म वाला आदि होता है और जो अग्निकाय को बुझाता है, वह अल्पकर्म वाला आदि होता है ?

[१९-२ उ] कालोदायिन् ! उन दोनो पुरुषो मे से जो पुरुष अग्निकाय को जलाता है, वह पृथ्वीकाय का बहुत समारम्भ (वध) करता है, अप्काय का बहुत समारम्भ करता है, तेजस्काय का अल्प समारभ करता है, वायु काय का बहुत समारभ करता है, वनस्पतिकाय का बहुत समारम्भ करता है और त्रसकाय का बहुत समारम्भ करता है, और जो पुरुष अग्निकाय को बुझाता है, वह पृथ्वीकाय का अल्प समारम्भ करता है, अप्काय का अल्प समारम्भ करता है, वायुकाय का अल्प समारम्भ करता है, वनस्पतिकाय का अल्प समारम्भ करता है एव त्रसकाय का भी अल्प समारम्भ करता है, किन्तु अग्निकाय का बहुत समारम्भ करता है। इसलिए

हे कालोदायिन्! जो पुरुष अग्निकाय को जलाता है, वह पुरुष महाकर्म वाला आदि है और जो पुरुष अग्निकाय को बुझाता है, वह अल्पकर्म वाला आदि है।

विवेचन—अग्निकाय को जलाने और बुझाने वालों में महाकर्म आदि और अल्पकर्म आदि से संयुक्त कौन और क्यों?—प्रस्तुत सूत्र (१९) में कालोदायी द्वारा पूछे गए पूर्वोक्त प्रश्न का भगवान् द्वारा दिया गया संयुक्तिक समाधान अंकित है।

अग्नि जलाने वाला महाकर्म आदि से युक्त क्यों?—अग्नि जलाने से बहुत-से अग्निकायिक जीवों की उत्पत्ति होती है, उनमें से कुछ जीवों का विनाश भी होता है। अग्नि जलाने वाला पुरुष अग्निकाय के अतिरिक्त अन्य सभी कायों का विनाश (महारम्भ) करता है। इसलिए अग्नि जलाने वाला पुरुष ज्ञानावरणीय आदि महाकर्म उपार्जन करता है, दाहरूप महाक्रिया करता है, कर्मबन्ध का हेतुभूत महा-आश्रव करता है और जीवों को महावेदना उत्पन्न करता है, जबकि अग्नि बुझाने वाला पुरुष एक अग्निकाय के अतिरिक्त अन्य सब कायों का अल्प आरम्भ करता है। इसलिए वह जलाने वाले पुरुष की अपेक्षा अल्प-कर्म, अल्प-क्रिया, अल्प-आश्रव और अल्प-वेदना से युक्त होता है।[1]

प्रकाश और ताप देने वाले अचित्त प्रकाशमान पुद्गलों की प्ररूपणा—

२०. अत्थि णं भंते! अचित्ता वि पोग्गला ओभासेंति उज्जोवेंति तवेंति पभासेंति?

हंता, अत्थि।

[२०] भगवन्! क्या अचित्त पुद्गल भी अवभासित (प्रकाशयुक्त) होते (करते) हैं, वे वस्तुओं को उद्योतित करते हैं, ताप करते हैं (या स्वयं तपते) हैं और प्रकाश करते हैं?

[२० उ] हाँ कालोदायिन्! अचित्त पुद्गल भी यावत् प्रकाश करते हैं।

२१. कतरे णं भंते! ते अचित्ता पोग्गला ओभासंति जाव पभासंति?

कालोदाई! कुद्धस्स अणगारस्स तेयलेस्सा निसट्ठा समाणी दूरं गता दूरं निपतति, देसं गता देसं निपतति, जहिं जहिं च णं सा निपतति तहिं तहिं च णं ते अचित्ता वि पोग्गला ओभासेंति जाव पभासेंति। एते णं कालोदायी! ते अचित्ता वि पोग्गला ओभासेंति जाव पभासेंति।

[२१ प्र] भगवन्! अचित्त होते हुए भी कौन-से पुद्गल अवभासित होते या करते हैं, यावत् प्रकाश करते हैं?

[२१ उ] कालोदायिन्! क्रुद्ध (कुपित) अनगार की निकली हुई तेजोलेश्या दूर जाकर उस देश में गिरती है, जाने योग्य देश (स्थल) में जाकर उस देश में गिरती है। जहाँ वह गिरती है, वहाँ अचित्त पुद्गल भी अवभासित (प्रकाशयुक्त) होते या करते हैं यावत् प्रकाश करते हैं।

विवेचन—प्रकाश और ताप देने वाले अचित्त प्रकाशमान पुद्गलों की प्ररूपणा—प्रस्तुत दो सूत्रों में स्वयं प्रकाशमान अचित्त प्रकाशक, तापकर्ता एवं उद्योतक पुद्गलों की प्ररूपणा की गई है।

---

१. भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३२७

सचित्तवत् अचित्त तेजस्काय के पुद्गल—सचित्त तेजस्काय के पुद्गल तो प्रकाश, ताप, उद्योत आदि करते ही है, वे अवभासित यावत् प्रकाशित भी होते ही हैं, किन्तु अचित्त पुद्गल भी अवभासित होते एव प्रकाश, ताप, उद्योत आदि करते है, यह इस सूत्र का आशय है। कुपित साधु द्वारा निकाली हुई तेजोलेश्या के पुद्गल अचित्त होते है।[1]

कालोदायी द्वारा तपश्चरण, संल्लेखना और समाधिपूर्वक निर्वाणप्राप्ति—

२२ तए ण से कालोदाई अणगारे समण भगव महावीरं वदति नमंसति, वंदित्ता नमसित्ता बहूहि चउत्थ-छट्ठऽट्ठम जाव अप्पाण भावेमाणे जहा पढमसए कालासवेसियपुत्ते (स० १ उ० ६ सु० २४) जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति०।

॥ सत्तमे सए : दसमो उद्देसो समत्तो ॥

॥ सत्तमं सतं समत्तं ॥

[२२] इसके पश्चात् वह कालोदायी अनगार श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते है। वन्दन-नमस्कार करके बहुत-से चतुर्थ (भक्त-प्रत्याख्यान=उपवास), षष्ठ (भक्त-प्रत्याख्यान=दो उपवास—बेला), अष्टम (भक्त-प्रत्याख्यान=तेला) इत्यादि तप द्वारा यावत् अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे, यावत् प्रथम शतक के नौवे उद्देशक (सू २४) मे वर्णित कालास्यवेषी पुत्र की तरह सिद्ध, बुद्ध, मुक्त यावत् सब दु खो से मुक्त हुए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है।'

विवेचन—कालोदायी अनगार द्वारा तपश्चरण, सल्लेखना और समाधिमरणपूर्वक निर्वाण-प्राप्ति—प्रस्तुत सूत्र मे कालास्यवेषी पुत्र की तरह कालोदायी अनगार के भी अन्तिम सल्लेखनासाधना आदि के द्वारा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होने का निरूपण किया गया है।

॥ सप्तम शतक : दशम उद्देशक समाप्त ॥

॥ सप्तम शतक सम्पूर्ण ॥

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३२७

अट्ठमं सयं : अष्ट शतक

प्राथमिक

* व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र के अष्टम शतक मे पुद्गल, आशीविष, वृक्ष, क्रिया, आजीव, प्रासुक, अदत्त, प्रत्यनीक, बन्ध और आराधना, ये दस उद्देशक हैं।

* **प्रथम उद्देशक** मे परिणाम की दृष्टि से पुद्गल के तीन प्रकारो का, नौ दण्डको द्वारा प्रयोग-परिणत पुद्गलो का, फिर मिश्रपरिणत पुद्गलो का तथा विस्रसापरिणत पुद्गलो के भेद-प्रभेद का निरूपण है। तत्पश्चात्—मन-वचन-काया की अपेक्षा विभिन्न प्रकार से प्रयोग, मिश्र और विस्रसा से एक, दो, तीन, चार आदि द्रव्यो के परिणमन का वर्णन है। फिर परिमाणो की दृष्टि से पुद्गलो के अल्पबहुत्व की चर्चा है।

* **द्वितीय उद्देशक** मे आशीविष, उसके दो मुख्य प्रकार तथा उसके अधिकारी जीवो एव उनके विष-सामर्थ्य का निरूपण है। तत्पश्चात् छद्मस्थ द्वारा सर्वभाव से ज्ञान के अविषय और केवली द्वारा सर्वभावेन ज्ञान के विषय के १० स्थानो का, ज्ञान-अज्ञान के स्वरूप एव भेद-प्रभेद का, औधिक जीवो, चौवीस दण्डकवर्ती जीवो एव सिद्धो मे ज्ञान-अज्ञान का प्ररूपण, गति आदि ८ द्वारो की अपेक्षा लब्धिद्वार, उपयोगादि बीस द्वारो की अपेक्षा ज्ञानी-अज्ञानी का प्ररूपण एव ज्ञानी और अज्ञानी के स्थितिकाल, अन्तर और अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

* **तृतीय उद्देशक** मे सख्यातजीविक, असख्यातजीविक और अनन्तजीविक वृक्षो का, छिन्नकच्छप आदि के टुकडो के बीच का जीवप्रदेश स्पृष्ट और शस्त्रादि के प्रभाव से रहित होने का एव रत्न-प्रभादि पृथ्वियो के चरमत्व-अचरमत्व आदि का निरूपण किया गया है।

* **चतुर्थ उद्देशक** मे क्रियाओ और उनसे सम्बन्धित भेद-प्रभेदो आदि का अतिदेशपूर्वक निर्देश है।

* **पचम उद्देशक** मे सामायिक आदि साधना मे उपविष्ट श्रावक का सामान स्वकीय न रहने पर भी स्वकीयत्व का, तथा श्रमणोपासक के व्रतादि के लिए ४९ भगो का, तथा आजीविकोपासको के सिद्धान्त, नाम, आचार-विचार और श्रमणोपासको की उनसे विशेषता का वर्णन है, अन्त मे चार प्रकार के देवलोको का निरूपण है।

* **छठे उद्देशक** मे तथारूप श्रमण या माहन को प्रासुक-अप्रासुक, एषणीय-अनेषणीय आहारदान का श्रमणोपासक को फल-प्राप्ति का, गृहस्थ के द्वारा स्वय एव स्थविर के निमित्त कह कर दिये गए पिण्ड-पात्रादि की उपभोगमर्यादा का निरूपण है तथा अकृत्यसेवी किन्तु आराधना-तत्पर निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी की विभिन्न पहलुओ से आराधकता की सयुक्तिक प्ररूपणा है। तत्पश्चात् जलते दीपक तथा घर मे जलने वाली वस्तु का विश्लेषण है, और एक जीव या बहुत जीवो को परकीय एक या बहुत-से शरीरो की अपेक्षा होने वाली क्रियाओ का निरूपण है।

* सप्तम उद्देशक मे अन्यतीर्थिको के द्वारा अदत्तादान को लेकर स्थविरो पर आक्षेप एव स्थविरो द्वारा प्रतिवाद का निरूपण है। अन्त मे गति प्रवाद (प्रपात) के पाच भेदो का निरूपण है।

* अष्टम उद्देशक मे गुण, गति, समूह, अनुकम्पा, श्रुत एव भावविषयक प्रत्यनीको के भेदो का, निर्ग्रन्थ के लिए आचरणीय पचविध व्यवहार का, विविध पहलुओ से ऐर्यापथिक और साम्परायिक कर्मबन्ध का, २२ परीषहो मे से कौन-सा परिषह किस कर्म के उदय से उत्पन्न होता है, तथा सप्तविधबन्धक आदि के परीषहो का निरूपण है। तदनन्तर उदय, अस्त और मध्याह्न के समय मे सूर्यो की दूरी और निकटता के प्रतिभासादि का एव मानुषोत्तर पर्वत के अन्दर-बाहर के ज्योतिष्क देवो व इन्द्रो के उपपातविरहकाल का वर्णन है।

* नवम उद्देशक मे विस्रसाबन्ध के भेद-प्रभेद एव स्वरूप का, प्रयोगबन्ध, शरीर-प्रयोगबन्ध एव पच शरीरो के प्रयोगबन्ध का सभेद निरूपण है। पच शरीरो के एक दूसरे के बन्धक-अबन्धक की चर्चा तथा औदारिकादि पाच शरीरो के देश-सर्वबन्धको एव बन्धको के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा है।

* दशम उद्देशक मे श्रुत-शील की आराधना-विराधना की दृष्टि से अन्यतीर्थिक-मतनिराकरण-पूर्वक स्वसिद्धान्त का ,ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना, इनका परस्पर सम्बन्ध एव इनकी उत्कृष्ट-मध्यम-जघन्याराधना के फल का, तथा पुद्गलपरिणाम के भेद-प्रभेदो का, एव पुद्गलास्तिकाय के एक प्रदेश से लेकर अनन्त प्रदेश तक के अष्ट भगो का निरूपण है। अन्त मे अष्ट कर्मप्रकृतियाँ, उनके अविभागपरिच्छेद, उनसे आवेष्टित-परिवेष्टित समस्त ससारी जीवो की एव कर्मो के परस्पर सहभाव की वक्तव्यता है।[1]

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) विषयसूची

अट्ठमं यं : अष्टम शतक

अष्टम शतक की संग्रहणी गाथा

१. पोग्गल १ आसीविस २ रुक्ख ३ किरिय ४ आजीव ५ फासुगमदत्ते ६-७।

पडिणीय ८ बंध ९ आराहणा य १० दस अट्ठमम्मि सते ॥ १ ॥

[१ गाथार्थ] १ पुद्गल, २ आशीविष, ३ वृक्ष, ४ क्रिया, ५ आजीव, ६ प्रासुक, ७ अदत्त, ८ प्रत्यनीक, ९ बन्ध और १० आराधना, आठवें शतक मे ये दस उद्देशक है।

मो उद्देसओ : 'पोग्गल'

प्रथम उद्देशक : 'पुद्गल'

पुद्गलपरिणामों के तीन प्रकारों का निरूपण—

२ रायगिहे जाव एवं वदासि—

[२-उपोद्घात] राजगृह नगर मे यावत् गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर से इस प्रकार पूछा—

३ कतिविहा णं भंते ! पोग्गला पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—पयोगपरिणता मीससापरिणता वीससापरिणता।

[३-प्र] भगवन् ! पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए है ?

[३-उ] गौतम ! पुद्गल तीन प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) प्रयोग-परिणत, (२) मिश्र-परिणत और (३) विस्रसा-परिणत।

विवेचन—पुद्गल-परिणामो के तीन प्रकारो का निरूपण—प्रस्तुत सूत्र मे परिणाम (परिणति) की दृष्टि से पुद्गल के तीन प्रकारो का निरूपण किया गया है।

परिणामो की दृष्टि से तीनो पुद्गलो का स्वरूप—(१) प्रयोग-परिणत—जीव के व्यापार (क्रिया) से शरीर आदि के रूप मे परिणत पुद्गल, (२) मिश्र-परिणत—प्रयोग और विस्रसा (स्वभाव) इन दोनो द्वारा परिणत पुद्गल और (३) विस्रसा-परिणत—विस्रसा यानी स्वभाव से परिणत पुद्गल।

मिश्रपरिणत पुद्गलो के दो रूप—(१) प्रयोग-परिणाम को छोड़े बिना स्वभाव से (विस्रसा) परिणामान्तर को प्राप्त मृतकलेवर आदि पुद्गल मिश्रपरिणत कहलाते है, अथवा (२) विस्रसा (स्वभाव) से परिणत औदारिक आदि वर्गणाएँ, जब जीव के व्यापार (प्रयोग) से औदारिक आदि शरीररूप मे परिणत होती है, तब वे मिश्रपरिणत कहलाती हैं, जब कि उनमे प्रयोग और विस्रसा, दोनो परिणामो की विवक्षा की गई हो। विस्रसापरिणाम को छोडकर अकेले प्रयोग-परिणामो की विवक्षा हो, तब उक्त वर्गणाएँ प्रयोग-परिणत ही कहलाएँगी।[1]

नौ दण्डको द्वारा प्रयोग-परिणत पुद्गलो का निरूपण—

प्रथम दण्डक

४. पयोगपरिणता णं भंते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—एगिंदियपयोगपरिणता बेइंदियपयोगपरिणता जाव पंचिंदियपयोगपरिणता।

[४-प्र] भगवन् ! प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए है ?

[४-उ] गौतम ! (प्रयोग-परिणत पुद्गल) पाच प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, (२) द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, (३) त्रीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, (४) चतुरिन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, (५) पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल।

५. एगिंदियपयोगपरिणता णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा, तं जहा—पुढविक्काइयएगिंदियपयोगपरिणता जाव वणस्सतिकाइयएगिंदियपयोगपरिणता।

[५-प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[५-उ] गौतम ! (एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल) पाच प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार है—पृथिवीकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल, यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल।

६. [१] पुढविक्काइयएगिंदियपयोगपरिणता णं भंते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमपुढविक्काइयएगिंदियपयोगपरिणता य बादरपुढविक्काइयएगिंदियपयोगपरिणता य।

[६-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए है ?

[६-१ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, जैसे कि—सूक्ष्मपृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल और बादरपृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल।

---

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्राक ३२८

[२] आउक्काइयएगिंदियपयोगपरिणता एव चेव।

[६-२] इसी प्रकार अप्कायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल भी दो प्रकार के (सूक्ष्म और बादर-रूप से) कहने चाहिए।

[३] एवं दुयओ भेदो जाव वणस्सतिकाइया य।

[६-३] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल तक के प्रत्येक के दो दो भेद (सूक्ष्म और बादर-रूप से) कहने चाहिए।

७ [१] बेइंदियपयोगपरिणताणं पुच्छा।

गोयमा! अणेगविहा पण्णत्ता।

[७-१ प्र] भगवन्! अब द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल के प्रकारो के विषय मे पृच्छा है।

[७-१ उ] गौतम! वे (द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल) अनेक प्रकार के कहे गए है।

[२] एव तेइंदिय-चउरिंदियपयोगपरिणता वि।

[७-२] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गलो और चतुरिन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गलो के प्रकार (अनेक विध) के विषय मे जानना चाहिए।

८ पंचिंदियपयोगपरिणताणं पुच्छा।

गोयमा! चतुव्विहा पण्णत्ता, त जहा—नेरतियपंचिंदियपयोगपरिणता, तिरिक्ख०, एवं मणुस्स०, देवपंचिंदिय०।

[८-प्र] अब (गौतमस्वामी की) पृच्छा पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गलो के (प्रकार के) विषय मे है।

[८-उ] गौतम! (पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल) चार प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—(१) नारक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल, (२) तिर्यञ्च-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल, (३) मनुष्य-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल और (४) देव-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल।

९ नेरइयपंचिंदियपयोग० पुच्छा।

गोयमा! सत्तविहा पण्णत्ता, त जहा—रतणप्पभापुढविनेरइयपंचिंदियपयोगपरिणता वि जाव अहेसत्तमपुढविनेरइयपंचिंदियपयोगपरिणता वि।

[९-प्र] (सर्वप्रथम) नैरयिक पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गलो के (प्रकार के) विषय मे (गौतमस्वामी की) पृच्छा है।

[९-उ] गौतम! (नैरयिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत-पुद्गल) सात प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार हैं—रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत-पुद्गल यावत् अध-सप्तमा (तमस्तमा)-पृथ्वी-नैरयिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल।

मिश्रपरिणत पुद्गलो के दो रूप—(१) प्रयोग-परिणाम को छोड़े विना स्वभाव से (विस्रसा) परिणामान्तर को प्राप्त मृतकलेवर आदि पुद्गल मिश्रपरिणत कहलाते है, अथवा (२) विस्रसा (स्वभाव) से परिणत औदारिक आदि वर्गणाएँ, जब जीव के व्यापार (प्रयोग) से औदारिक आदि शरीररूप मे परिणत होती है, तब वे मिश्रपरिणत कहलाती है, जब कि उनमे प्रयोग और विस्रसा, दोनो परिणामो की विवक्षा की गई हो। विस्रसापरिणाम को छोडकर अकेले प्रयोग-परिणामो की विवक्षा हो, तब उक्त वर्गणाएँ प्रयोग-परिणत ही कहलाएँगी।[1]

नौ दण्डको द्वारा प्रयोग-परिणत पुद्गलो का निरूपण—

प्रथम दण्डक

४ पयोगपरिणता णं भंते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पचविहा पण्णत्ता, त जहा—एगिंदियपयोगपरिणता बेइंदियपयोगपरिणता जाव पंचिंदियपयोगपरिणता।

[४-प्र] भगवन् ! प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए है ?

[४-उ] गौतम ! (प्रयोग-परिणत पुद्गल) पाच प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार है—(१) एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, (२) द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, (३) त्रीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, (४) चतुरिन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, (५) पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल।

५ एगिंदियपयोगपरिणता ण भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पचविहा, त जहा—पुढविक्काइयएगिंदियपयोगपरिणता जाव वणस्सतिकाइयएगिंदियपयोगपरिणता।

[५-प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए है ?

[५-उ] गौतम ! (एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल) पाच प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—पृथिवीकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल, यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल।

६ [१] पुढविक्काइयएगिंदियपयोगपरिणता ण भंते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, त जहा—सुहुमपुढविक्काइयएगिंदियपयोगपरिणता य बादरपुढविक्काइयएगिंदियपयोगपरिणता य।

[६-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए है ?

[६-१ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, जैसे कि—सूक्ष्मपृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल और बादरपृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल।

---

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्राक ३२८

[५] एव एतेण अभिलावेण परिसप्पा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—उरपरिसप्पा य, भुयपरिसप्पा य।

[१०-५] इसी प्रकार अभिलाप (पाठ) द्वारा परिसर्प स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल भी दो प्रकार के कहे गए है। यथा—उर परिसर्प-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल और भुजपरिसर्प-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल।

[६] उरपरिसप्पा दुविहा पण्णत्ता, त जहा—सम्मुच्छिमा य, गब्भवक्कतिया य।

[१०-६] (पूर्वोक्त चतुष्पदस्थलचर सम्बन्धी पुद्गलवत्) उर परिसर्प (सम्बन्धी प्रयोगपरिणत पुद्गल) भी दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा—सम्मूर्च्छिम (उर परिसर्पसम्बन्धी पुद्गल) और गर्भज (उर परिसर्प-सम्बन्धी पुद्गल)।

[७] एव भुयपरिसप्पा वि।

[१०-७] इसी प्रकार भुजपरिसर्प-सम्बन्धी पुद्गल के भी दो भेद समझ लेने चाहिए।

[८] एवं खहचरा वि।

[१०-८] इसी तरह खेचर (तिर्यञ्चपचेन्द्रियसम्बन्धी पुद्गल) के भी पूर्ववत् (सम्मूर्च्छिम और गर्भज) दो भेद कहे गए हैं।

११ मणुस्सपचिंदियपयोग० पुच्छा।

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, त जहा—सम्मुच्छिममणुस्स० गब्भवक्कतियमणुस्स०।

[११ प्र] भगवन्! मनुष्य-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए है?

[११ उ] गौतम! वे (मनुष्य-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल) दो प्रकार के कहे गए है। यथा—सम्मूर्च्छिममनुष्य-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल और गर्भजमनुष्य-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल।

१२. देवपचिंदियपयोग० पुच्छा।

गोयमा! चउव्विहा पन्नत्ता, त जहा—भवणवासिदेवपचिंदियपयोग० एव जाव वेमाणिया।

[१२ प्र] भगवन्! देव-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत-पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं?

[१२ उ] गौतम! वे चार प्रकार के कहे गए हैं। जैसे कि—भवनवासी-देव-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल, यावत् वैमानिकदेव-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल।

१३ भवणवासिदेवपचिंदिय० पुच्छा।

गोयमा! दसविहा पण्णत्ता, त जहा—असुरकुमार० जाव थणियकुमार०।

१० [१] तिरिक्खजोणियपंचिदियपयोगपरिणताण पुच्छा ।

गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, त जहा—जलचरपंचिदियतिरिक्खजोणिय० थलचरतिरिक्ख-जोणियपंचिदिय० खहचरतिरिक्खपंचिदिय० ।

[१०-१ प्र] अब प्रश्न है—तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गलो के (प्रकार के) विषय मे ।

[१०-१ उ] गौतम ! तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल तीन प्रकार के कहे गए हैं। जैसे कि—(१) जलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल, (२) स्थलचर-तिर्यञ्च-योनिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल और (३) खेचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल ।

[२] जलयरतिरिक्खजोणियपओग० पुच्छा ।

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, त जहा—सम्मुच्छिमजलचर० गब्भवक्कंतियजलचर० ।

[१०-२ प्र] भगवन् ! जलचर तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए है ?

[१०-२ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए है। जैसे कि—(१) सम्मूर्च्छिम जलचर-तिर्यञ्चयोनिक पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल और (२) गर्भव्युत्क्रान्तिक (गर्भज) जलचर-तिर्यञ्च-योनिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल ।

[३] थलचरतिरिक्ख० पुच्छा ।

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, त जहा—चउप्पदथलचर० परिसप्पथलचर० ।

[१०-३ प्र] भगवन् ! स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[१०-३ उ] गौतम ! (स्थलचरतिर्यञ्च-योनिक पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल) दो प्रकार के कहे गए है। यथा—चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल और परिसर्प-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिकपचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल ।

[४] चउप्पदथलचर० पुच्छा ।

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, त जहा—सम्मुच्छिमचउप्पदथलचर० गब्भवक्कतियचउप्पय-थलचर० ।

[१०-४ प्र] अब मेरा प्रश्न है कि चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के है ?

[१०-४ उ] गौतम ! वे (पूर्वोक्त पुद्गल) दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—सम्मूर्च्छिम चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल और गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल ।

[५] एव एतेण अभिलावेण परिसप्पा दुविहा पण्णत्ता, त जहा—उरपरिसप्पा य, भुयपरिसप्पा य।

[१०-५] इसी प्रकार अभिलाप (पाठ) द्वारा परिसर्प स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल भी दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा—उर परिसर्प-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल और भुजपरिसर्प-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल।

[६] उरपरिसप्पा दुविहा पण्णत्ता, त जहा—सम्मुच्छिमा य, गब्भवक्कतिया य।

[१०-६] (पूर्वोक्त चतुष्पदस्थलचर सम्बन्धी पुद्‌गलवत्) उर.परिसर्प (सम्बन्धी प्रयोगपरिणत पुद्‌गल) भी दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा—सम्मूर्च्छिम (उर परिसर्पसम्बन्धी पुद्‌गल) और गर्भज (उर परिसर्प-सम्बन्धी पुद्‌गल)।

[७] एव भुयपरिसप्पा वि।

[१०-७] इसी प्रकार भुजपरिसर्प-सम्बन्धी पुद्‌गल के भी दो भेद समझ लेने चाहिए।

[८] एवं खहचरा वि।

[१०-८] इसी तरह खेचर (तिर्यञ्चपचेन्द्रियसम्बन्धी पुद्‌गल) के भी पूर्ववत् (सम्मूर्च्छिम और गर्भज) दो भेद कहे गए है।

११ मणुस्सपचिदियपयोग० पुच्छा।

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, त जहा—सम्मुच्छिममणुस्स० गब्भवक्कतियमणुस्स०।

[११ प्र] भगवन् ! मनुष्य-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल कितने प्रकार के कहे गए है ?

[११ उ] गौतम ! वे (मनुष्य-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल) दो प्रकार के कहे गए है। यथा—सम्मूर्च्छिममनुष्य-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल और गर्भजमनुष्य-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल।

१२. देवपचिदियपयोग० पुच्छा।

गोयमा ! चउव्विहा पन्नत्ता, त जहा—भवणवासिदेवपचिदियपयोग० एव जाव वेमाणिया।

[१२ प्र] भगवन् ! देव-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत-पुद्‌गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[१२ उ] गौतम ! वे चार प्रकार के कहे गए हैं। जैसे कि—भवनवासी-देव-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल, यावत् वैमानिकदेव-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल।

१३ भवणवासिदेवपचिदिय० पुच्छा।

गोयमा ! दसविहा पण्णत्ता, त जहा—असुरकुमार० जाव थणियकुमार०।

[१३ प्र] भगवन् ! भवनवासी-देवपचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल कितने प्रकार के कहे गए है ?

[१३ उ] वे (भवनवासीदेवसम्बन्धी-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल) दस प्रकार के कहे गए हैं। यथा—असुरकुमार-देव-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल यावत् स्तनितकुमार-देव-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल।

१४ एव एतेण अभिलावेण अट्ठविहा वाणमतरा पिसाया जाव गधव्वा।

[१४] इसी प्रकार इसी अभिलाप (पाठ) से आठ प्रकार के वाणव्यन्तर देव (प्रयोग-परिणत पुद्‌गल) कहने चाहिए। यथा—पिशाच (वाणव्यन्तरदेव-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल) से यावत् गन्धर्व-(वाण० देव०-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल) तक।

१५ जोइसिया पचविहा पण्णत्ता, त जहा—चदविमाणजोतिसिय० जाव ताराविमाणजोतिसियदेव०।

[१५] (इसी प्रकार के अभिलापवत्) ज्योतिष्कदेवप्रयोग-परिणत पुद्‌गल भी पाच प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—चन्द्रविमानज्योतिष्कदेव (-प्रयोग-परिणत) यावत् ताराविमान-ज्योतिष्क-देव(-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल)।

१६. [१] वेमाणिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—कप्पोवग० कप्पातीतगवेमाणिय०।

[१६-१] वैमानिकदेव(-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल) के दो प्रकार कहे गए है। यथा—कल्पोपपन्नक वैमानिकदेव(-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल) और कल्पातीत-वैमानिकदेव (-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल)।

[२] कप्पोवगा दुवालसविहा पण्णत्ता, त जहा—सोहम्मकप्पोवग० जाव अच्चुयकप्पोवग-वेमाणिया।

[१६-२] कल्पोपपन्नक वैमानिक देव० बारह प्रकार के कहे गए हैं। यथा— सौधर्म कल्पोपपन्नक से यावत् अच्युत कल्पोपपन्नक देव तक। (इन बारह प्रकार के वैमानिक देवो से सम्बन्धित प्रयोग-परिणत पुद्‌गल १२ प्रकार के होते है।)

[३] कप्पातीत० दुविहा पण्णत्ता, त जहा—गेवेज्जगकप्पातीतवे० अणुत्तरोववाइयकप्पातीतवे०।

[१६-३] कल्पातीत वैमानिकदेव दो प्रकार के कहे गए है। यथा—ग्रैवेयक-कल्पातीत-वैमानिकदेव और अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव। (इन्ही दो प्रकार के कल्पातीत वैमानिकदेवो से सम्बन्धित प्रयोग-परिणत-पुद्‌गल दो प्रकार के कहने चाहिए।)

[४] गेवेज्जगकप्पातीतगा नवविहा पण्णत्ता, त जहा—हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जगकप्पातीतगा जाव उवरिमउवरिमगेविज्जगकप्पातीतया।

[१६-४] ग्रैवेयककल्पातीत वैमानिकदेवो के नौ प्रकार कहे गए है। यथा—अधस्तन-अधस्तन (सबसे नीचे की त्रिक मे नीचे का) ग्रैवेयक कल्पातीत वैमानिक देव यावत् उपरितन-

उपरितन (सबसे ऊपर की त्रिक मे सबसे ऊपर वाले ग्रैवेयक-कल्पातीत-वैमानिक-देव। (इन्ही नामो से सम्बन्धित प्रयोग-परिणत-पुद्गलो के नौ प्रकार कह देने चाहिए।)

[५] अणुत्तरोववाइयकप्पातीतगवेमाणियदेवपंचिदियपयोगपरिणया ण भंते! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

गोयमा! पचविहा पण्णत्ता, त जहा—विजयअणुत्तरोववाइय० जाव परिणया जाव सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयदेवपंचिदिय जाव परिणता। १ दडगो।

[१६-५ प्र] भगवन्! अनुत्तरौपपातिक कल्पातीतवैमानिक-देव-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए है ?

[१६-५ उ] गौतम! वे (अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देवसम्बन्धी प्रयोग-परिणत पुद्गल) पाच प्रकार के कहे गए हैं। जैसे कि—विजय-अनुत्तरौपपातिक कल्पातीतवैमानिकदेव-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल यावत् सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक कल्पातीतवैमानिकदेव-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल।

प्रथम दण्डक पूर्ण हुआ।

द्वितीय दण्डक

१७. [१] सुहुमपुढविकाइयएगिंदियपयोगपरिणया ण भंते! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। त जहा—पज्जत्तगसुहुमपुढविकाइय जाव परिणया य अपज्जत्तगसुहुमपुढविकाइय जाव परिणया य। [केई अपज्जत्तगं पढम भणति, पच्छा पज्जत्तग।]

[१७-१ प्र] भगवन्! सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[१७-१] गौतम! वे दो प्रकार के कहे गए है। यथा—पर्याप्तक-सूक्ष्मपृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल और अपर्याप्तक सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल।

[कई आचार्य अपर्याप्तक (वाले प्रकार) को पहले और पर्याप्तक (वाले प्रकार) को बाद मे कहते हैं।]

[२] बादरपुढविकाइयएगिंदिय० ? एव चेव।

[१७-२] इसी प्रकार बादर-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल के भी (उपर्युक्त-वत्) दो भेद कहने चाहिए।

१८ एव जाव वणस्सइकाइया। एक्केक्का दुविहा—सुहुमा य बादरा य, पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य भाणियव्वा।

[१८] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक (एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल) तक प्रत्येक के सूक्ष्म और बादर ये दो भेद और फिर इन दोनो के पर्याप्तक और अपर्याप्तक भेद (वाले प्रयोग-परिणत पुद्गल) कहने चाहिए।

१६ [१] बेंदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगबेंदियपयोगपरिणया य, अपज्जत्तग जाव परिणया य ।

[१९-१ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए है ?

[१६-१ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए है। जैसे कि—पर्याप्तक द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल और अपर्याप्तक द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल ।

[२] एव तेइंदिया वि ।

[१६-२] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गलो के प्रकार के विषय मे भी जान लेना चाहिए ।

[३] एव चउरिंदिया वि ।

[१६-३] इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गलो के प्रकार के विषय मे भी समझ लेना चाहिए ।

२०. [१] रयणप्पभापुढविनेरइय० पुच्छा ।

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, त जहा—पज्जत्तगरयणप्पभापुढवि जाव परिणया य, अपज्जत्तग जाव परिणया य ।

[२०-१ प्र] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

[२०-१ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—पर्याप्तक रत्नप्रभापृथ्वी नैरयिक-प्रयोग-परिणत पुद्गल और अपर्याप्तक रत्नप्रभा-नैरयिक-प्रयोग-परिणत पुद्गल ।

[२] एवं जाव अहेसत्तमा ।

[२०-२] इसी प्रकार यावत् अध सप्तमीपृथ्वी नैरयिक-प्रयोग-परिणत पुद्गलो के प्रकार (प्रत्येक के दो-दो) के विषय मे कहना चाहिए ।

२१ [१] सम्मुच्छिमजलचरतिरिक्ख० पुच्छा ।

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, त जहा—पज्जत्तग० अपज्जत्तग० । एव गब्भवक्कतिया वि ।

[२१-१ प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम-जलचर-तिर्यञ्चयोनिक पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[२१-१ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए है। जैसे कि—पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम जलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल और अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम-जलचर-तिर्यञ्चयोनिक पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल ।

इसी प्रकार गर्भज-जलचरसम्बन्धी प्रयोगपरिणत पुद्गलो के प्रकार के विषय मे जान लेना चाहिए ।

[२] सम्मुच्छिमचउप्पदथलचर० । एव चेव । एव गब्भवक्कतिया य ।

[२१-२] इसी प्रकार सम्मूर्च्छिम चतुष्पदस्थलचरसम्बन्धी प्रयोग-परिणत पुद्गलो के प्रकार के विषय मे तथा गर्भज चतुष्पदस्थलचर सम्बन्धी प्रयोग-परिणत पुद्गलो के प्रकार के विषय मे भी जानना चाहिए ।

[३] एव जाव सम्मुच्छिमखहयर० गब्भवक्कतिया य एक्केक्के पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य भाणियव्वा ।

[२१-३] इसी प्रकार यावत् सम्मूर्च्छिम खेचर और गर्भज खेचर से सम्वन्धित प्रयोगपरिणत पुद्गलो के प्रत्येक के पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो-दो भेद कहने चाहिए ।

२२ [१] सम्मुच्छिममणुस्सपंचिदिय० पुच्छा ।

गोयमा ! एगविहा पन्नत्ता—अपज्जत्तगा चेव ।

[२२-१ प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम-मनुष्य-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[२२-१ उ] गौतम ! वे एक प्रकार के कहे गए है । यथा—अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम मनुष्य-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल ।

[२] गब्भवक्कतियमणुस्सपंचिदिय० पुच्छा ।

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, त जहा—पज्जत्तगगब्भवक्कतिया वि, अपज्जत्तगगब्भवक्कतिया वि ।

[२२-२ प्र] भगवन् ! गर्भज मनुष्य-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए है ?

[२२-२ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार—पर्याप्तक-गर्भज-मनुष्य-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल और अपर्याप्तक-गर्भज-मनुष्य-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल ।

२३ [१] असुरकुमारभवणवासिदेवाण पुच्छा ।

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, त जहा—पज्जत्तगअसुरकुमार० अपज्जत्तगअसुर० ।

[२३-१ प्र] भगवन् ! असुरकुमार-भवनवासीदेव-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

[२३-१ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए है । यथा—पर्याप्तक असुरकुमार-भवनवासीदेव-प्रयोग-परिणत पुद्गल और अपर्याप्तक-असुरकुमार-भवनवासीदेव-प्रयोग-परिणत पुद्गल ।

[२] एव जाव थणियकुमारा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य ।

[२३-२] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार भवनवासीदेव तक प्रयोग-परिणत पुद्गलो के पर्याप्तक और अपर्याप्तक, ये दो-दो भेद कहने चाहिए ।

२४ एव एतेण अभिलावेण दुएण भेदेण पिसाया य जाव गधव्वा, चदा जाव ताराविमाणा, सोहम्मकप्पोवगा जाव अच्चुओ, हिट्ठिमहिट्ठिमगेविज्जकप्पातीत जाव उवरिमउवरिमगेविज्ज०, विजयअणुत्तरो० जाव अपराजिय० ।

[२४] इसी प्रकार इसी अभिलाप से पिशाचो से लेकर यावत् गन्धर्वों तक (आठ प्रकार के वाणव्यन्तर देवो के प्रयोग-परिणत पुद्गलो) के तथा चन्द्र से लेकर तारा-पर्यन्त (पाच प्रकार के ज्योतिष्कदेवो के प्रयोग-परिणत पुद्गलो) के एव सौधर्मकल्पोपपन्नक से यावत् अच्युतकल्पोपपन्नक तक के और अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयककल्पातीत से लेकर उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक कल्पातीत देव-प्रयोग-परिणत पुद्गलो के, एव विजय-अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत से यावत् अपराजित-अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत देव-प्रयोग-परिणत पुद्गलो के प्रत्येक के पर्याप्तक और अपर्याप्तक, ये दो-दो भेद कहने चाहिए ।

२५ सव्वट्ठसिद्धकप्पातीय० पुच्छा ।

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, त जहा—पज्जत्तगसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरो० अपज्जत्तगसव्वट्ठ जाव परिणया वि । २ दडगा ।

[२५ प्र] भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीतदेव-प्रयोग-परिणत पुद्गलो के कितने प्रकार है ?

[२५ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए है । यथा—पर्याप्तक सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीतदेव-प्रयोग-परिणत पुद्गल और अपर्याप्तक सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-देव-प्रयोग-परिणत पुद्गल ।

दूसरा दण्डक पूर्ण हुआ ।

तृतीय दण्डक

२६ जे अपज्जत्तासुहुमपुढवीकाइयएगिंदियपयोगपरिणया ते ओरालिय-तेया-कम्मगसरीरप्पयोगपरिणया, जे पज्जत्तासुहुम० जाव परिणया ते ओरालिय-तेया-कम्मगसरीरप्पयोगपरिणया । एव जाव चउरिंदिया पज्जत्ता । नवर जे पज्जत्तगबादरवाउकाइयएगिंदियपयोगपरिणया ते ओरालिय-वेउव्विय-तेया-कम्मसरीर जाव परिणता । सेस तं चेव ।

[२६] जो पुद्गल अपर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकाय-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत है, वे औदारिक, तैजस और कार्मण-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं । जो पुद्गल पर्याप्तक-सूक्ष्म-पृथ्वीकाय-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत है, वे भी औदारिक, तैजस और कार्मण-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं ।

इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रियपर्याप्तक तक के (प्रयोग-परिणत पुद्गलो के विषय मे) जानना चाहिए । परन्तु विशेष इतना है कि जो पुद्गल पर्याप्त-बादर-वायुकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत है, वे औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण-शरीर-प्रयोग-परिणत है । (क्योकि वायुकाय मे वैक्रिय शरीर भी पाया जाता है ।) शेष सब पूर्वोक्त वक्तव्यतानुसार जानना चाहिए ।

२७ [१] जे अपज्जत्तरयणप्पभापुढविनेरइयपंचिदियपयोगपरिणया ते वेउव्विय-तेया-कम्म-सरीरप्पयोगपरिणया । एव पज्जत्तया वि ।

[२७-१] जो पुद्गल अपर्याप्त-रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत है, वे वैक्रिय, तैजस और कार्मण शरीर-प्रयोग-परिणत है । इसी प्रकार पर्याप्तक-रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गलो के सम्बन्ध मे भी जानना चाहिए ।

[२] एवं जाव अहेसत्तमा ।

[२७-२] इसी प्रकार यावत् अध सप्तमपृथ्वी-नैरयिक-प्रयोग-परिणत-पुद्गलो तक के सम्बन्ध मे कहना चाहिए ।

२८ [१] जे अपज्जत्तगसम्मुच्छिमजलचर जाव परिणया ते ओरालिय-तेया-कम्मासरीर जाव परिणया । एवं पज्जत्तगा वि ।

[२८-१] जो पुद्गल अपर्याप्तक-सम्मूच्छिम-जलचर-प्रयोग-परिणत है, वे औदारिक, तैजस और कार्मणशरीर-प्रयोग-परिणत है । इसी प्रकार पर्याप्तक-सम्मूच्छिम-जलचर-प्रयोग-परिणत पुद्गलो के सम्बन्ध मे जानना चाहिए ।

[२] गब्भवक्कतिया अपज्जत्तया एवं चेव ।

[२८-२] गर्भज-अपर्याप्तक-जलचर-(प्रयोग-परिणत पुद्गलो) के विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए ।

[३] पज्जत्तयाण एव चेव, नवर सरीरगाणि चत्तारि जहा बादरवाउक्काइयाण पज्जत्तगाणं ।

[२८-३] गर्भज-पर्याप्तक-जलचर-(प्रयोग-परिणत-पुद्गलो) के विषय मे भी इसी तरह जानना चाहिए । विशेष यह है कि उनको पर्याप्तक बादर वायुकायिकवत् चार शरीर (-प्रयोगपरिणत) कहना चाहिए ।

[४] एव जहा जलचरेसु चत्तारि आलावगा भणिया एव चउप्पद-उरपरिसप्प-भुयपरिसप्प-खहयरेसु वि चत्तारि आलावगा भाणियव्वा ।

[२८-४] जिस तरह जलचरो के चार आलापक कहे गए है, उसी प्रकार चतुष्पद, उर परिसर्प, भुजपरिसर्प एव खेचरो (के प्रयोग-परिणतपुद्गलो) के भी चार-चार आलापक कहने चाहिए ।

२९ [१] जे सम्मुच्छिममणुस्सपंचिदियपयोगपरिणया ते ओरालिय-तेया-कम्मासरीर जाव परिणया ।

[२९-१] जो पुद्गल सम्मूर्च्छिम-मनुष्य-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे औदारिक, तैजस और कार्मण-शरीर-प्रयोग-परिणत है ।

[२] एव गब्भवक्कतिया वि अपज्जत्तगा वि ।

२४ एव एतेण अभिलावेण दुएण भेदेण पिसाया य जाव गधव्वा, चदा जाव ताराविमाणा, सोहम्मकप्पोवगा जाव अच्चुओ, हिट्ठिमहिट्ठिमगेविज्जकप्पातीत जाव उवरिमउवरिमगेविज्ज०, विजयअणुत्तरो० जाव अपराजिय० ।

[२४] इसी प्रकार इसी अभिलाप से पिशाचो से लेकर यावत् गन्धर्वो तक (आठ प्रकार के वाणव्यन्तर देवो के प्रयोग-परिणत पुद्गलो) के तथा चन्द्र से लेकर तारा-पर्यन्त (पाच प्रकार के ज्योतिष्कदेवो के प्रयोग-परिणत पुद्गलो) के एव सौधर्मकल्पोपपन्नक से यावत् अच्युतकल्पोपपन्नक तक के और अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयककल्पातीत से लेकर उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक कल्पातीत देव-प्रयोग-परिणत पुद्गलो के, एव विजय-अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत से यावत् अपराजित-अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत देव-प्रयोग-परिणत पुद्गलो के प्रत्येक के पर्याप्तक और अपर्याप्तक, ये दो-दो भेद कहने चाहिए ।

२५ सव्वट्ठसिद्धकप्पातीय० पुच्छा ।

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, त जहा—पज्जत्तगसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरो० अपज्जत्तगसव्वट्ठ जाव परिणया वि । २ दडगा ।

[२५ प्र] भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीतदेव-प्रयोग-परिणत पुद्गलो के कितने प्रकार है ?

[२५ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए है । यथा—पर्याप्तक सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीतदेव-प्रयोग-परिणत पुद्गल और अपर्याप्तक सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-देव-प्रयोग-परिणत पुद्गल ।

दूसरा दण्डक पूर्ण हुआ ।

तृतीय दण्डक

२६ जे अपज्जत्तासुहुमपुढवीकाइयएगिंदियपयोगपरिणया ते ओरालिय तेया-कम्मगसरीरप्पयोगपरिणया, जे पज्जत्तासुहुम० जाव परिणया ते ओरालिय-तेया-कम्मगसरीरप्पयोगपरिणया । एव जाव चउरिंदिया पज्जत्ता । नवर जे पज्जत्तगबादरवाउकाइयएगिंदियपयोगपरिणया ते ओरालिय-वेउव्विय-तेया-कम्मसरीर जाव परिणता । सेस तं चेव ।

[२६] जो पुद्गल अपर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकाय-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे औदारिक, तैजस और कार्मण-शरीर-प्रयोग-परिणत है । जो पुद्गल पर्याप्तक-सूक्ष्म-पृथ्वीकाय-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे भी औदारिक, तैजस और कार्मण-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं ।

इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रियपर्याप्तक तक के (प्रयोग-परिणत पुद्गलो के विषय मे) जानना चाहिए । परन्तु विशेष इतना है कि जो पुद्गल पर्याप्त-बादर-वायुकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत है, वे औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं । (क्योकि वायुकाय मे वैक्रिय शरीर भी पाया जाता है ।) शेष सब पूर्वोक्त वक्तव्यतानुसार जानना चाहिए ।

२७ [१] जे अपज्जत्तरयणप्पभापुढविनेरइयपंचिंदियपयोगपरिणया ते वेउव्विय-तेया-कम्म-सरीरप्पयोगपरिणया। एव पज्जत्तया वि।

[२७-१] जो पुद्गल अपर्याप्त-रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत है, वे वैक्रिय, तैजस और कार्मण शरीर-प्रयोग-परिणत है। इसी प्रकार पर्याप्तक-रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गलो के सम्बन्ध मे भी जानना चाहिए।

[२] एव जाव अहेसत्तमा।

[२७-२] इसी प्रकार यावत् अध सप्तमपृथ्वी-नैरयिक-प्रयोग-परिणत-पुद्गलो तक के सम्बन्ध मे कहना चाहिए।

२८ [१] जे अपज्जत्तगसम्मुच्छिमजलचर जाव परिणया ते ओरालिय-तेया-कम्मासरीर जाव परिणया। एवं पज्जत्तगा वि।

[२८-१] जो पुद्गल अपर्याप्तक-सम्मूच्छिम-जलचर-प्रयोग-परिणत है, वे औदारिक, तैजस और कार्मणशरीर-प्रयोग-परिणत है। इसी प्रकार पर्याप्तक-सम्मूच्छिम-जलचर-प्रयोग-परिणत पुद्गलो के सम्बन्ध मे जानना चाहिए।

[२] गब्भवक्कंतिया अपज्जत्तया एव चेव।

[२८-२] गर्भज-अपर्याप्तक-जलचर-(प्रयोग-परिणत पुद्गलो) के विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

[३] पज्जत्तयाण एव चेव, नवर सरीरगाणि चत्तारि जहा बादरवाउक्काइयाण पज्जत्तगाण।

[२८-३] गर्भज-पर्याप्तक-जलचर-(प्रयोग-परिणत-पुद्गलो) के विषय मे भी इसी तरह जानना चाहिए। विशेष यह है कि उनको पर्याप्तक बादर वायुकायिकवत् चार शरीर (-प्रयोगपरिणत) कहना चाहिए।

[४] एव जहा जलचरेसु चत्तारि आलावगा भणिया एवं चउप्पद-उरपरिसप्प-भुयपरिसप्प-खहयरेसु वि चत्तारि आलावगा भाणियव्वा।

[२८-४] जिस तरह जलचरो के चार आलापक कहे गए हैं, उसी प्रकार चतुष्पद, उर परिसर्प, भुजपरिसर्प एव खेचरो (के प्रयोग-परिणतपुद्गलो) के भी चार-चार आलापक कहने चाहिए।

२९ [१] जे सम्मुच्छिममणुस्सपंचिंदियपयोगपरिणया ते ओरालिय-तेया-कम्मासरीर जाव परिणया।

[२९-१] जो पुद्गल सम्मूर्च्छिम-मनुष्य-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे औदारिक, तैजस और कार्मण-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं।

[२] एवं गब्भवक्कतिया वि अपज्जत्तगा वि।

[२९-२] इसी प्रकार अपर्याप्तक गर्भज-मनुष्य-(पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गलो) के विषय मे भी कहना चाहिए।

[३] पज्जत्तगा वि एव चेव, नवर सरीरगाणि पच भाणियव्वाणि।

[२९-३] पर्याप्तक गर्भज-मनुष्य-(पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गलो) के विषय मे भी (सामान्यतया) इसी तरह कहना चाहिए। विशेषता यह है कि इनमे (औदारिक से लेकर कार्मण तक) पचशरीर-(प्रयोग-परिणत पुद्‌गल) कहना चाहिए।

३० [१] जे अपज्जत्तगा असुरकुमारभवणवासि जहा नेरइया तहेव। एव पज्जत्तगा वि।

[३०-१] जो पुद्‌गल अपर्याप्तक असुरकुमार-भवनवासीदेव-प्रयोगपरिणत है, उनका आलापक नैरयिको की तरह कहना चाहिए। पर्याप्तक-असुरकुमारदेव-प्रयोग-परिणत पुद्‌गलो के विषय मे भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

[२] एव दुयएण भेदेण जाव थणियकुमारा।

[३०-२] यावत् स्तनितकुमारपर्यन्त पर्याप्तक-अपर्याप्तक दोनो मे, इसी तरह कहना चाहिए।

३१ एव पिसाया जाव गधव्वा, चदा जाव ताराविमाणा, सोहम्मो कप्पो जाव अच्चुओ, हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्ज जाव उवरिमउवरिमगेवेज्ज०, विजय-अणुत्तरोववाइए जाव सव्वट्ठसिद्धअणु०, एक्केक्केण दुयओ भेदो भाणियव्वो जाव जे पज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइया जाव परिणया ते वेउव्विय-तेया-कम्मासरीरपयोगपरिणया। दडगा ३।

[३१] इसी तरह पिशाच से लेकर गन्धर्व वाणव्यन्तर-देव, चन्द्र से लेकर ताराविमान-पर्यन्त ज्योतिष्क-देव और सौधर्मकल्प से लेकर यावत् अच्युतकल्प-पर्यन्त तथा अध स्तन-अध स्तन-ग्रैवेयक कल्पातीतदेव से लेकर उपरितन-उपरितन ग्रैवेयककल्पातीत देव तक एव विजय-अनुत्तरौपपातिक कल्पातीतदेव से लेकर यावत् सर्वार्थसिद्ध कल्पातीत वैमानिकदेवो तक पर्याप्तक और अपर्याप्तक दोनो भेदो मे वैक्रिय, तैजस और कार्मण-शरीर-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल कहने चाहिए।

चतुर्थ दण्डक

३२ [१] जे अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदियपयोगपरिणता ते फासिंदियपयोगपरिणया।

[३२-१] जो पुद्‌गल अपर्याप्तक सूक्ष्मपृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत है, वे स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत है।

[२] जे पज्जत्तासुहुमपुढविकाइया० एवं चेव।

[३२-२] जो पुद्‌गल पर्याप्तक सूक्ष्मपृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत है, वे भी स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं।

[३] जे अपज्जत्ताबादरपुढविक्काइया० एवं चेव।

[३२-३] जो अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल है, वे भी इसी प्रकार समझने चाहिए।

[४] एवं पज्जत्तगा वि।

[३२-४] पर्याप्तक बादरपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल भी इसी प्रकार स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत समझने चाहिए।

[५] एव चउक्कएण भेदेणं जाव वणस्सइकाइया।

[३२-५] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक पर्यन्त-प्रत्येक के सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्तक इन चार-चार भेदो मे स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल कहने चाहिए।

३३ [१] जे अपज्जत्ताबेइंदियपयोगपरिणया ते जिब्भिदिय-फासिंदियपयोगपरिणया।

[३३-१] जो पुद्गल अपर्याप्तक द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत है, वे जिह्वेन्द्रिय एव स्पर्शेन्द्रिय प्रयोगपरिणित है।

[२] जे पज्जत्ताबेइंदिया एव चेव।

[३३-२] इसी प्रकार पर्याप्तक-द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल भी जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं।

[३] एव जाव चउरिंदिया, नवर एक्केक्क इंदियं वड्ढेयव्वं।

[३३-३] इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवो तक (पर्याप्तक और अपर्याप्तक दोनो मे) कहना चाहिए। किन्तु एक-एक इन्द्रिय बढानी चाहिए। (अर्थात्—त्रीन्द्रियप्रयोगपरिणत पुद्गल स्पर्श-जिह्वा-घ्राणेन्द्रिय-प्रयोगपरिणत है, और चतुरिन्द्रिय-प्रयोगपरिणत पुद्गल स्पर्श-जिह्वा-घ्राण-चक्षुरिन्द्रिय प्रयोगपरिणत है।)

३४ [१] जे अपज्जत्तारयणप्पभापुढविनेरइयपंचिंदियपयोगपरिणया ते सोइंदिय-चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियपयोगपरिणया।

[३४-१] जो पुद्गल अपर्याप्त रत्नप्रभा (आदि) पृथ्वी नैरयिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे श्रोत्रेन्द्रिय-चक्षुरिन्द्रिय-घ्राणेन्द्रिय-जिह्वेन्द्रिय-स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोगपरिणत है।

[२] एव पज्जत्तगा वि।

[३४-२] इसी प्रकार पर्याप्तक (रत्नप्रभादिपृथ्वी नैरयिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल के विषय मे भी पूर्ववत् (पचेन्द्रियप्रयोगपरिणत) कहना चाहिए।

३५ एवं सव्वे भाणियव्वा तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवा, जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव परिणया ते सोइंदिय-चक्खिंदिय जाव परिणया। दडगा ४।

[३५] पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य और देव, इन सबके विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए, यावत् जो पुद्गल पर्याप्तसर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिककल्पतीतदेव-प्रयोग-परिणत है, वे सब श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत है ।

पंचम दण्डक

३६. [१] जे अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदियओरालिय-तेय-कम्मासरीरप्पयोगपरिणया ते फासिंदियपयोगपरिणया । जे पज्जत्तासुहुम० एवं चेव ।

[३६-१] जो पुद्गल अपर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर प्रयोग-परिणत है, वे स्पर्शेन्द्रियप्रयोगपरिणत हैं । जो पुद्गल पर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय औदारिक-तैजस-कार्मण-शरीर-प्रयोग-परिणत है, वे भी स्पर्शेन्द्रियप्रयोगपरिणत है ।

[२] बादर० अपज्जत्ता एव चेव । एव पज्जत्तगा वि ।

[३६-२] अपर्याप्तबादरकायिक एव पर्याप्तबादर पृथ्वीकायिक-औदारिकादि शरीरत्रय प्रयोगपरिणत पुद्गल के विषय मे भी इस प्रकार कहना चाहिए ।

३७ एव एएण अभिलावेण जस्स जति इदियाणि सरीराणि य ताणि भाणियव्वाणि जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव देवपंचिदिय-वेउव्विय-तेया-कम्मासरीरपयोगपरिणया ते सोइदिय-चक्खिदिय जाव फासिंदियपयोगपरिणया । दडगा ५ ।

[३७] इस प्रकार इस अभिलाप के द्वारा जिस जीव के जितनी इन्द्रिया और शरीर हो, उसके उतनी इन्द्रियो तथा उतने शरीरो का कथन करना चाहिए । यावत् जो पुद्गल पर्याप्तसर्वार्थ-सिद्ध-अनुत्तरौपपातिक कल्पातीतदेव पचेन्द्रिय-वैक्रिय-तैजस-कार्मणशरीर-प्रयोग-परिणत है, वे श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत है ।

छठा दण्डक

३८. [१] जे अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदियपयोगपरिणया ते वण्णतो कालवण्णपरिणया वि, नील०, लोहिय०, हालिद्द०, सुक्किल० । गधतो सुब्भिगधपरिणया वि, दुब्भिगधपरिणया वि । रसतो तित्तरसपरिणया वि, कडुयरसपरिणया वि, कसायरसप०, अंबिलरसप०, महुररसप० । फासतो कक्खडफासपरि० जाव लुक्खफासपरि० । सठाणतो परिमडलसठाणपरिणया वि वट्ट० तस० चउरस० आयतसठाणपरिणया वि ।

[३८-१] जो पुद्गल अपर्याप्तक सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत है, वे वर्ण से काले वर्ण, नीले वर्ण, रक्तवर्ण, पीत (हारिद्र) वर्ण एव श्वेतवर्ण रूप से परिणत है, गन्ध से सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध रूप से परिणत है, रस से तीखे, कटु, काषाय (कसैले), खट्टे और मीठे इन पाचो रस-रूप मे परिणत हैं, स्पर्श से कर्कशस्पर्श यावत् रूक्षस्पर्श के रूप मे परिणत है और सस्थान से परि-मण्डल, वृत्त, त्र्यस (तिकोन), चतुरस्र (चौकोर) और आयत, इन पाचो सस्थानो के रूप मे परिणत है।

[२] जे पज्जत्तासुहुमपुढवि० एव चेव ।

[३८-२] जो पुद्गल पर्याप्तक-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रियप्रयोगपरिणत है, उन्हे भी इसी प्रकार वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-सस्थानरूप मे परिणत जानना चाहिए ।

३९. एव जहाऽऽणुपुव्वीए नेयव्व जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव परिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणया वि जाव आयतसठाणपरिणया वि । दडगा ६ ।

[३९] इसी प्रकार क्रमश सभी (पूर्वोक्त विशेषण-विशिष्ट जीवो के प्रयोग-परिणत पुद्गलो) के विषय मे जानना चाहिए । यावत् जो पुद्गल पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक देवपचेन्द्रिय-वैक्रिय-तैजस-कार्मण-शरीरप्रयोगपरिणत है, वे वर्ण से काले वर्ण रूप मे यावत् सस्थान से आयत सस्थान तक परिणत है ।

सप्तम दण्डक

४०. [१] जे अपज्जत्तासुहुमपुढवि० एगिंदियओरालिय-तेया-कम्मासरीरप्पयोगपरिणया ते वण्णओ कालवण्णपरि० जाव आययसठाणपरि० वि ।

[४०-१] जो पुद्गल अपर्याप्तक-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-तैजस-कार्मण-शरीर-प्रयोग परिणत है, वे वर्ण से काले वर्ण के रूप मे भी परिणत है, यावत् आयत-सस्थान-रूप मे भी परिणत है ।

[२] जे पज्जत्तासुहुमपुढवि० एव चेव ।

[४०-२] इसी प्रकार पर्याप्तक-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-प्रयोग-परिणत है, वे भी इसी तरह वर्णादि-परिणत है ।

४१. एवं जहाऽऽणुपुव्वीए नेयव्व जस्स जति सरीराणि जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयदेवपंचिंदियवेउव्विय-तेया-कम्मासरीर जाव परिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव आयतसठाणपरिणया वि । दडगा ७ ।

[४१] इस प्रकार यथानुक्रम से (सभी जीवो के विषय मे) जानना चाहिए । जिसके जितने शरीर हो, उतने कहने चाहिए, यावत् जो पुद्गल पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक देव-पचेन्द्रिय-वैक्रिय-तैजस-कार्मण-शरीर प्रयोग परिणत है, वे वर्ण से काले वर्ण के रूप मे, यावत् सस्थान से आयतसस्थानरूप मे परिणत हैं ।

अष्टम दण्डक

४२ [१] जे अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदियफासिंदियपयोगपरिणया ते वण्णओ कालवण्ण-परिणया जाव आययसठाणपरिणया वि ।

[४२-१] जो पुद्गल अपर्याप्तकसूक्ष्मपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत है, वे वर्ण से काले वर्ण के रूप मे परिणत है, यावत् सस्थान से आयत-सस्थान के रूप मे परिणत है ।

[२] जे पज्जत्तासुहुमपुढवि० एव चेव ।

[४२-२] जो पुद्गल पर्याप्तक-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग परिणत है, वे भी इसी प्रकार जानने चाहिए ।

४३ एव जहाऽऽणुपुव्वीए जस्स जति इदियाणि तस्स तति भाणियव्वाणि जाव जे पज्जत्ता-सव्वट्ठसिद्धअणुत्तर जाव देवपचिंदियसोइदिय जाव फासिंदियपयोगपरिणया वि ते वण्णओ कालवण्ण-परिणया जाव आययसठाणपरिणया वि । दडगा ८ ।

[४३] इसी प्रकार अनुक्रम से आलापक कहने चाहिए। विशेष यह कि जिसके जितनी इन्द्रिया हो उतनी कहनी चाहिए। यावत् जो पुद्गल पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक देव-पचेन्द्रिय-श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोगपरिणत है, वे वर्ण से काले वर्ण के रूप मे, यावत् सस्थान से आयत सस्थान के रूप मे परिणत है ।

नौवाँ दण्डक

४४ [१] जे अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदियओरालिय-तेया-कम्मासरीरफासिंदियपयोग-परिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव आयतसठाणप० वि ।

[४४-१] जो पुद्गल अपर्याप्तक-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे वर्ण से काले वर्ण के रूप मे भी परिणत है, यावत् सस्थान से आयत-सस्थान के रूप मे परिणत हैं ।

[२] जे पज्जत्तासुहुमपुढवि० एव चेव ।

[४४-२] जो पुद्गल पर्याप्तक-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोगपरिणत है, वे भी इसी तरह (पूर्ववत्) जानने चाहिए ।

४५ एव जहाऽऽणुपुव्वीए जस्स जति सरीराणि इदियाणि य तस्स तति भाणियव्वाणि जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइया जाव देवपचिंदिय-वेउव्विय-तेया-कम्मासोइदिय जाव फासिंदिय-पयोगपरि० ते वण्णओ कालवण्णपरि० जाव आययसठाणपरिणया वि । एव एए नव दडगा ९ ।

[४५] इसी प्रकार अनुक्रम से सभी आलापक कहने चाहिए। विशेषतया जिसके जितने शरीर और इन्द्रिया हो, उसके उतने शरीर और उतनी इन्द्रियो का कथन करना चाहिए, यावत् जो पुद्गल पर्याप्तकसर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिकदेव-पचेन्द्रिय-वैक्रिय-तैजस-कार्मण-शरीर तथा श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोगपरिणत हैं, वे वर्ण से काले वर्ण के रूप मे यावत् सस्थान से आयत सस्थान के रूपो मे परिणत हैं ।

इस प्रकार ये नौ दण्डक पूर्ण हुए ।

विवेचन—नौ दण्डको द्वारा प्रयोग-परिणत पुद्गलो का निरूपण—प्रस्तुत ४२ सूत्रो (सू ४ से ४५ तक) नौ दण्डको की दृष्टि से प्रयोग-परिणत पुद्गलो का निरूपण किया गया है ।

विवक्षाविशेष से नौ दण्डक (विभाग)—प्रयोगपरिणत पुद्गलो को विभिन्न पहलुओ मे समझाने के लिए शास्त्रकार ने नौ दण्डको द्वारा निरूपण किया है। प्रथम दण्डक मे सूक्ष्म एकेन्द्रिय से लेकर सर्वार्थसिद्ध देवो तक जीवो की विशेषता से प्रयोगपरिणत पुद्गलो के भेद-प्रभेदो का कथन है। (२) द्वितीय दण्डक मे उन्ही जीवो मे से एकेन्द्रिय जीवो के प्रत्येक के सूक्ष्म और बादर ये दो-दो भेद करके फिर इन सूक्ष्म और बादर के तथा आगे के सब जीवो (यानी सूक्ष्मपृथ्वीकायिक से लेकर सर्वार्थसिद्ध देवो तक) के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से दो-दो भेद (अपर्याप्तक भेद वाले सम्मूर्च्छिम मनुष्य को छोडकर) प्रयोग-परिणत पुद्गलो के किये गए है। (३) तृतीय दण्डक मे पूर्वोक्त विशेषणयुक्त पृथ्वीकायिक से लेकर सर्वार्थसिद्धपर्यन्त सभी जीवो के औदारिक आदि पाच मे मे यथायोग्य शरीरो की अपेक्षा से प्रयोगपरिणत पुद्गलो का कथन किया गया है। (४) चतुर्थ दण्डक मे पूर्वोक्त शरीरादि विशेषणयुक्त एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय सर्वार्थसिद्ध जीवो तक के यथायोग्य इन्द्रियो की अपेक्षा से प्रयोगपरिणत-पुद्गलो का कथन किया गया है। (५) पचम दण्डक मे औदारिक आदि पाच शरीर और स्पर्शन आदि पाच इन्द्रियो की सम्मिलित विवक्षा से समस्त जीवो के यथायोग्य प्रयोग-परिणत पुद्गलो का कथन है। (६) छठे दण्डक मे वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा से पूर्वोक्त समस्त विशेषणयुक्त सर्व जीवो के प्रयोग-परिणत पुद्गलो का कथन है। (७) सप्तम दण्डक मे औदारिक आदि शरीर और वर्णादि की अपेक्षा से पुद्गलो का कथन है। (८) अष्टम दण्डक मे इन्द्रिय और वर्णादि की अपेक्षा से पुद्गलो का कथन है, और (९) नवम दण्डक मे शरीर, इन्द्रिय और वर्णादि की अपेक्षा से जीवो के प्रयोगपरिणत पुद्गलो का कथन किया गया है।

द्वीन्द्रियादि जीवो की अनेकविधता—मूलपाठ मे कहा गया है कि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव अनेक प्रकार के है, जैसे कि द्वीन्द्रिय मे लट, गिंडोला, अलसिया, शख, सीप, कौडी, कृमि आदि अनेक प्रकार के जीव है, त्रीन्द्रिय मे जू, लीख, चीचड, माकण (खटमल), चींटी, मकोडा आदि अनेक प्रकार के जीव है, और चतुरिन्द्रिय मे मक्खी, मच्छर, भौरा, भृ गारी आदि अनेकविध जीव हैं, उनको बताने हेतु ही यहाँ अनेकविधता का कथन किया गया है।

पचेन्द्रिय जीवो के भेद-प्रभेद—मुख्यतया इनके चार भेद है—नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य और देव। विवेक्षा विशेष से इनके अनेक अवान्तर भेद हैं।[1]

कठिन शब्दो के विशेष अर्थ—**सम्मुच्छिमा**—सम्मूर्च्छिम—माता-पिता के सयोग के बिना उत्पन्न होने वाले तिर्यंच और मनुष्य। **गब्भवक्कतिया**—गर्भव्युत्क्रान्तक—गर्भ से उत्पन्न होने वाले। **परिसप्पा**—परिसर्प—रेग कर चलने वाले जीव। **उरपरिसप्प**—उर परिसर्प—पेट से रेग कर चलने वाले जीव। **भुयपरिसप्प**=भुजपरिसर्प—भुजा के सहारे से चलने वाले। **थलयर**=स्थलचर—भूमि पर चलने वाले जीव। **खहयरा**=खेचर—(आकाश मे) उडने वाले पक्षी। **अभिलावेण**=अभिलाप—पाठ से। **गेवेज्जग**=ग्रैवेयक देव। **कप्पोवगा**=कल्पोपपन्नक देव=जहाँ इन्द्रादि अधिकारी और उनके अधीनस्थ छोटे-बडे आदि का व्यवहार है। **कप्पातीत**=कल्पातीत—जहाँ अधिकारी-अधीनस्थ जैसा कोई भेद नही है, सभी स्वतत्र एव अहमिन्द्र है। **अणुत्तरोववाइय**=अनुत्तरोपपातिक—सर्वोत्तम

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३३१-३३२

देवलोक मे उत्पन्न हुए देव। ओरालिय=औदारिक शरीर। तेया=तैजस शरीर। वेउव्विय=वैक्रिय शरीर। कम्मग=कार्मण शरीर। वट्ट=वृत्त—गोल। तस=त्र्यस्र-त्रिकोण। चउरंस=चतुरस्र-चौकोर (चतुष्कोण)। तित्तरस=तिक्त-तीखा रस। अबिल=आम्ल—खट्टा। कसाय=कसैला। जहाणुपुव्वीए=यथाक्रम से।[1]

मिश्रपरिणत-पुद्गलो का नौ दण्डको द्वारा निरूपण—

४६ मीसापरिणया ण भते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पचविहा पण्णत्ता, त जहा—एगिंदियमीसापरिणया जाव पंचिंदियमीसापरिणया।

[४६ प्र] भगवन् ! मिश्रपरिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए है ?

[४६ उ] गौतम ! वे पाच प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार है—एकेन्द्रिय-मिश्रपरिणत पुद्गल यावत् पचेन्द्रियमिश्रपरिणत पुद्गल।

४७ एगिंदियमीसापरिणया ण भते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! एव जहा पओगपरिणएहिं नव दडगा भणिया एव मीसापरिणएहि वि नव दडगा भाणियव्वा, तहेव सव्व निरवसेस, नवर अभिलावो 'मीसापरिणया' भाणियव्व, सेस तं चेव, जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरो० जाव आययसठाणपरिणया वि।

[४७ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय मिश्रपुद्गल कितने प्रकार के कहे गए है ?

[४७ उ] गौतम ! जिस प्रकार प्रयोगपरिणत पुद्गलो के विषय मे नौ दण्डक कहे गए हैं, उसी प्रकार मिश्र-परिणत पुद्गलो के विषय मे भी नौ दण्डक कहने चाहिए, और सारा वर्णन उसी प्रकार करना चाहिए। विशेषता यह है कि प्रयोग-परिणत के स्थान पर मिश्र-परिणत कहना चाहिए। शेष समस्त वर्णन पूर्ववत् करना चाहिए, यावत् जो पुद्गल पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरोपपातिक हैं, वे यावत् आयत-सस्थानरूप से भी परिणत है।

विवेचन—मिश्रपरिणत पुद्गलो का नौ दण्डको द्वारा निरूपण—प्रस्तुत सूत्रद्वय (सू ४६-४७) मे प्रयोगपरिणत पुद्गलो के भेद-प्रभेद की तरह मिश्रपरिणत पुद्गलो के भी भेद-प्रभेद का अतिदेशपूर्वक निरूपण किया गया है।

विस्रसापरिणत पुद्गलो के भेद-प्रभेदो का निर्देश—

४८ वीससापरिणया ण भते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पचविहा पण्णत्ता, त जहा—वण्णपरिणया गंधपरिणया रसपरिणया फासपरिणया सठाणपरिणया। जे वण्णपरिणया ते पचविहा पण्णत्ता, त जहा—कालवण्णपरिणया जाव सुक्किल्लवण्णपरिणया। जे गधपरिणया ते दुविहा पण्णत्ता, त जहा—सुब्भिगधपरिणया वि, दुब्भिगधपरिणया वि।

१ (क) भगवतीसूत्र (गुजराती अनुवादयुक्त) खण्ड-३, पृ ४२ से ४६ तक
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचनयुक्त) भाग-३, पृ. १२३६ से १२५२ तक

एव जहा पण्णवणाए[1] तहेव निरवसेस जाव जे संठाणओ आयतसठाणपरिणया ते वण्णओ कालवण्ण-परिणया वि जाव लुक्खफासपरिणया वि ।

[४८ प्र] भगवन् ! विस्रसा-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए है ?

[४८ उ] गौतम ! पाच प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार हैं—वर्णपरिणत, गन्ध-परिणत, रसपरिणत, स्पर्शपरिणत और सस्थानपरिणत । जो पुद्गल वर्ण-परिणत हैं, वे पाच प्रकार के कहे गए हैं । यथा—काले वर्ण के रूप मे परिणत यावत् शुक्ल वर्ण के रूप मे परिणत पुद्गल । जो गन्धपरिणत पुद्गल है, वे दो प्रकार के कहे गए है । यथा—सुरभिगन्धपरिणत और दुरभिगन्धपरिणत पुद्गल । इस प्रकार आगे का सारा वर्णन जिस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र (के प्रथम पद) मे किया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी करना चाहिए, यावत् जो पुद्गल सस्थान से आयत-सस्थान-परिणत हैं, वे वर्ण से काले वर्ण के रूप मे भी परिणत है, यावत् (स्पर्श से) रूक्ष-स्पर्शरूप मे भी परिणत हैं ।

विवेचन—विस्रसापरिणत पुद्गलो के भेद-प्रभेदो का निर्देश—प्रस्तुत सूत्र मे विस्रसापरिणत (स्वभाव से परिणाम को प्राप्त) पुद्गलो के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा से तथा इन वर्णादि के परस्पर मिश्र होने पर विकल्प की विवक्षा से प्रज्ञापनासूत्र के अतिदेश-पूर्वक अनेक भेद-प्रभेदो का निर्देश किया गया है ।[2]

मन-वचन-काया की अपेक्षा विभिन्न प्रकार से प्रयोग-मिश्र-विस्रसा से एक द्रव्य के परिणमन की प्ररूपणा—

४९ एगे भंते ! दव्वे किं पयोगपरिणए ? मीसापरिणए ? वीससापरिणए ?

गोयमा ! पयोगपरिणए वा, मीसापरिणए वा, वीससापरिणए वा ।

[४९ प्र] गौतम ! एक द्रव्य क्या प्रयोग-परिणत होता है, मिश्रपरिणत होता है अथवा विस्रसा-परिणत होता है ?

[४९ उ] गौतम ! एक द्रव्य, प्रयोग-परिणत होता है, अथवा मिश्रपरिणत होता है, अथवा विस्रसा-परिणत होता है ।

५० जदि पयोगपरिणए किं मणप्पयोगपरिणए ? वइप्पयोगपरिणए ? कायप्पयोगपरिणए ?

गोयमा ! मणप्पयोगपरिणए वा, वइप्पयोगपरिणए वा, कायप्पयोगपरिणए वा ।

[५० प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या वह मन प्रयोगपरिणत होता है, वचन-प्रयोग-परिणत होता है अथवा कायप्रयोग-परिणत होता है ?

---

१ प्रज्ञापनासूत्र प्रथमपद सूत्र १० [१-२] (महा विद्या)

२ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ ३२६

(ख) प्रज्ञापनासूत्र, प्रथमपद, सूत्र १० [१-२]

[५० उ] गौतम ! वह मन प्रयोगपरिणत होता है या वचन-प्रयोग-परिणत होता है अथवा कायप्रयोगपरिणत होता है।

५१ जदि मणप्पओगपरिणए किं सच्चमणप्पओगपरिणए ? मोसमणप्पयोग० ? सच्चामोसमणप्पयो० ? असच्चामोसमणप्पयो० ?

गोयमा ! सच्चमणप्पयोगपरिणए वा, मोसमणप्पयोग० वा, सच्चामोसमणप्प०, असच्चामोसमणप्प० वा।

[५१ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य मन प्रयोग-परिणत होता है तो क्या वह सत्यमन प्रयोग-परिणत होता है, अथवा मृषा-मन प्रयोगपरिणत होता है, या सत्य-मृषा-मन प्रयोग-परिणत होता है, या असत्यामृषा-मन प्रयोग-परिणत होता है ?

[५१ उ] गौतम ! वह सत्यमन प्रयोगपरिणत होता है, अथवा मृषामन प्रयोगपरिणत होता है, या सत्य-मृषामन प्रयोगपरिणत होता है या फिर असत्यामृषामन प्रयोग-परिणत होता है।

५२ जदि सच्चमणप्पओगप० किं आरंभसच्चमणप्पयो० ? अणारंभसच्चमणप्पयोगपरि० ? सारंभसच्चमणप्पयोग० ? असारंभसच्चमण० ? समारंभसच्चमणप्पयोगपरि० ? असमारंभसच्चमणप्पयोगपरिणए ?

गोयमा ! आरंभसच्चमणप्पओगपरिणए वा जाव असमारंभसच्चमणप्पयोगपरिणए वा।

[५२ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य, सत्यमन प्रयोग-परिणत होता है तो क्या वह आरम्भ-सत्यमन प्रयोग-परिणत होता है, अनारम्भ-सत्यमन प्रयोग-परिणत होता है, सारम्भ-सत्यमन प्रयोग-परिणत होता है, असारम्भ-सत्यमन प्रयोग-परिणत होता है, समारम्भ-सत्यमन प्रयोगपरिणत होता है अथवा असमारम्भ-सत्यमन प्रयोगपरिणत होता है ?

[५२ उ] गौतम ! वह आरम्भ-सत्यमन प्रयोगपरिणत होता है, अथवा यावत् असमारम्भ-सत्यमन प्रयोगपरिणत होता है।

५३ [१] जदि मोसमणप्पयोगपरिणए किं आरंभमोसमणप्पयोगपरिणए वा ?

एवं जहा सच्चेण तहा मोसेण वि।

[५३-१ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य, मृषामन प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या वह आरम्भ-मृषामन प्रयोग-परिणत होता है अथवा यावत् असमारम्भ-मृषामन प्रयोग-परिणत होता है ?

[५३-१ उ] गौतम ! जिस प्रकार (पूर्वोक्त विशेषणयुक्त) सत्यमन प्रयोग-परिणत के विषय में कहा है, उसी प्रकार (पूर्वोक्त विशेषणयुक्त) मृषामन प्रयोग-परिणत के विषय में भी कहना चाहिए।

[२] एवं सच्चामोसमणप्पयोगपरिणए वि। एवं असच्चामोसमणप्पयोगेण वि।

[५३-२] इसी प्रकार (पूर्वोक्त विशेषणों से युक्त) सत्यमृषा-मन प्रयोग-परिणत के विषय में भी तथा इसी प्रकार असत्य-मृषामन प्रयोग-परिणत के विषय में भी कहना चाहिए।

५४. जदि वइप्पयोगपरिणए किं सच्चवइप्पयोगपरिणए मोसवयप्पयोगपरिणए ?

एवं जहा मणप्पयोगपरिणए तहा वयप्पयोगपरिणए वि जाव असमारंभवयप्पयोगपरिणए वा ।

[५४ प्र.] भगवन् ! यदि एक द्रव्य, वचनप्रयोग-परिणत होता है तो, क्या वह सत्यवचन-प्रयोग-परिणत होता है, मृषावचन-प्रयोग-परिणत होता है, सत्यमृषा-वचन-प्रयोग-परिणत होता है अथवा असत्यामृषा-वचन-प्रयोग-परिणत होता है ?

[५४-उ] गौतम ! जिस प्रकार (पूर्वोक्त विशेषणो से युक्त) मन प्रयोगपरिणत के विषय मे कहा है, उसी प्रकार वचन-प्रयोग-परिणत (पूर्वोक्त-सर्व-विशेषणयुक्त) के विषय मे भी कहना चाहिए, यावत् वह असमारम्भ-वचन-प्रयोग-परिणत भी होता है, यहाँ तक कहना चाहिए ।

५५ जदि कायप्पयोगपरिणए किं ओरालियसरीरकायप्पयोगपरिणए १ ? ओरालियमीसासरीरकायप्पयो० २ ? वेउव्वियसरीरकायप्प० ३ ? वेउव्वियमीसासरीरकायप्पयोगपरिणए ४ ? आहारगसरीरकायप्पओगपरिणए ५ ? आहारकमीसासरीरकायप्पयोगपरिणए ६ ? कम्मासरीरकायप्पओगपरिणए ७ ?

गोयमा ! ओरालियसरीरकायप्पओगपरिणए वा जाव कम्मासरीरकायप्पओगपरिणए वा ।

[५५-प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य, कायप्रयोग-परिणत होता है, तो क्या वह औदारिक शरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, औदारिकमिश्रशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, वैक्रियशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, वैक्रियमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, आहारकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, आहारकमिश्र-कायप्रयोग-परिणत होता है अथवा कार्मणशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है ?

[५५-उ] गौतम ! वह एक द्रव्य, औदारिकशरीर-काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा यावत् वह कार्मणशरीर-काय-प्रयोग-परिणत होता है ।

५६. जदि ओरालियसरीरकायप्पओगपरिणए किं एगिंदियओरालियसरीरकायप्पओगपरिणए एवं जाव पंचिंदियओरालिय जाव परि० ?

गोयमा ! एगिंदियओरालियसरीरकायप्पओगपरिणए वा बेंदिय जाव परिणए वा जाव पंचिंदिय जाव परिणए वा ।

[५६-प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य, औदारिकशरीर-काय-प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या वह एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोगपरिणत होता है, या द्वीन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत होता है अथवा यावत् पचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत होता है ?

[५६-उ] गौतम ! वह एक द्रव्य, एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-काय-प्रयोग-परिणत होता है, या द्वीन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा यावत् पञ्चेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है ।

५७ जदि एगिंदियओरालियसरीरकायप्पओगपरिणए किं पुढविक्काइयएगिंदिय जाव परिणए जाव वणस्सइकाइयएगिंदियओरालियसरीरकायप्पओगपरिणए वा ?

गोयमा ! पुढविक्काइयएगिंदिय जाव पयोगपरिणए वा जाव वणस्सइकाइयएगिंदिय जाव परिणए वा ।

[५७-प्र] भगवन् ! जो एक द्रव्य, एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत होता है, क्या वह पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा यावत् वह वनस्पतिकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है ?

[५७-उ] हे गौतम ! वह पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा यावत् वनस्पतिकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है ।

५८. जदि पुढविकाइयएगिंदियओरालियसरीर जाव परिणए किं सुहुमपुढविकाइय जाव परिणए ? बादरपुढविक्काइयएगिंदिय जाव परिणए ?

गोयमा ! सुहुमपुढविक्काइयएगिंदिय जाव परिणए वा, बादरपुढविक्काइय जाव परिणए वा ।

[५८-प्र] भगवन् ! यदि वह एक द्रव्य, पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक शरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, तो क्या वह सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा बादरपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है ?

[५८-उ] गौतम ! वह सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है अथवा बादरपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है ।

५९ [१] जदि सुहुमपुढविकाइय जाव परिणए किं पज्जत्तसुहुमपुढवि जाव परिणए ? अपज्जत्तसुहुमपुढवी जाव परिणए ?

गोयमा ! पज्जत्तसुहुमपुढविकाइय जाव परिणए वा, अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइय जाव परिणए वा ।

[५९-१ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है तो क्या वह पर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा अपर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है ?

[५९-१ उ] गौतम ! यह पर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, या वह अपर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-कायप्रयोग-परिणत भी होता है ।

[२] एव बादरा वि ।

[५९-२] इसी प्रकार बादर-पृथ्वीकायिक (-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत एक द्रव्य) के विषय मे भी (पर्याप्त-अपर्याप्त-प्रकार) समझ लेना चाहिए ।

[३] एव जाव वणस्सइकाइयाण चउक्कओ भेदो ।

[५९-३] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक तक सभी के चार-चार भेद (सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त) के विषय मे (पूर्ववत्) कथन करना चाहिए ।

६० बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाण दुयओ भेदो—पज्जत्तगा य, अपज्जत्तगा य ।

[६०] इसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के दो-दो भेद—पर्याप्तक और अपर्याप्तक (से सम्बन्धित औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत एक द्रव्य) के विषय मे कहना चाहिए ।

६१. जदि पंचिंदियओरालियसरीरकायप्पओगपरिणए किं तिरिक्खजोणियपंचिंदियओरालिय-सरीरकायप्पओगपरिणए ? मणुस्सपंचिंदिय जाव परिणए ?

गोयमा ! तिरिक्खजोणिय जाव परिणए वा, मणुस्सपंचिंदिय जाव परिणए वा ।

[६१-प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य, पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, तो क्या वह तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा मनुष्य-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ?

[६१ उ] गौतम ! या तो वह तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय औदारिकशरीर-काय-प्रयोगपरिणत होता है, अथवा वह मनुष्य-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है ।

६२. जइ तिरिक्खजोणिय जाव परिणए किं जलचरतिरिक्खजोणिय जाव परिणए वा ? थलचर० ? खहचर० ?

एव चउक्कओ भेदो जाव खहचराण ।

[६२-प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य, तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय औदारिकशरीर-काय-प्रयोग-परिणत होता है तो क्या वह जलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-काय-प्रयोग-परिणत होता है, स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-काय-प्रयोगपरिणत होता है, अथवा खेचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है ?

[६२-उ] गौतम ! वह जलचर, स्थलचर और खेचर, तीनो प्रकार के तिर्यञ्चपचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग से परिणत होता है, अत यावत् खेचरो तक पूर्ववत् प्रत्येक के चार-चार भेदो (सम्मूर्च्छिम, गर्भज, पर्याप्तक और अपर्याप्तक) (के औदारिकशरीर कायप्रयोग-परिणत) के विषय मे कहना चाहिए ।

६३ जदि मणुस्सपंचिंदिय जाव परिणए किं सम्मुच्छिममणुस्सपंचिंदिय जाव परिणए ? गब्भवक्कतियमणुस्स जाव परिणए ?

गोयमा ! दोसु वि ।

[६३-प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य, मनुष्यपचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, तो क्या वह सम्मूर्च्छिममनुष्य-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा गर्भजमनुष्य-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है ?

[६३-उ] गौतम ! वह दोनो प्रकार के (सम्मूर्च्छिम अथवा गर्भज) मनुष्यो के औदारिक-शरीर-कायप्रयोग से परिणत होता है।

६४. जदि गब्भवक्कतियमणुस्स जाव परिणए किं पज्जत्तगब्भवक्कतिय जाव परिणए ? अपज्जत्तगब्भवक्कतियमणुस्सपंचिदियओरालियसरीरकायप्पयोगपरिणए ?

गोयमा ! पज्जत्तगब्भवक्कतिय जाव परिणए वा, अपज्जत्तगब्भवक्कतिय जाव परिणए ।१।

[६४-प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य, गर्भजमनुष्य-पचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है तो क्या वह पर्याप्त-गर्भजमनुष्य-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा अपर्याप्त-गर्भज-मनुष्य-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है ?

[६४-उ] गौतम ! वह पर्याप्त-गर्भजमनुष्य-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा अपर्याप्त-गर्भजमनुष्यपचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है।

६५ जदि ओरालियमीसासरीरकायप्पओगपरिणए किं एगिंदियओरालियमीसासरीरकायप्प-ओगपरिणए ? बेइदिय जाव परिणए जाव पचेंदियओरालिय जाव परिणए ?

गोयमा ! एगिंदियओरालिय एव जहा ओरालियसरीरकायप्पयोगपरिणएण आलावगो भणिओ तहा ओरालियमीसासरीरकायप्पओगपरिणएण वि आलावगो भाणियव्वो, नवर बायरवाउक्काइय-गब्भवक्कतियपंचिदियतिरिक्खजोणिय-गब्भवक्कतियमणुस्साण य एएसि ण पज्जत्तापज्जत्तगाण, सेसाण अपज्जत्तगाण । २ ।

[६५-प्र] यदि एक द्रव्य, औदारिकमिश्रशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, तो क्या वह एकेन्द्रिय-औदारिकमिश्र-शरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, द्वीन्द्रिय-औदारिकमिश्रशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा यावत् पचेन्द्रिय-औदारिक-मिश्रशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है ?

[६५ उ] गौतम ! वह एकेन्द्रिय-औदारिकमिश्रशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा द्वीन्द्रिय-औदारिकमिश्रशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा यावत् पचेन्द्रिय-औदारिकमिश्र-शरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है। जिस प्रकार पहले औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत के आलापक कहे है, उसी प्रकार औदारिकमिश्र-कायप्रयोग-परिणत के भी आलापक कहने चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि बादरवायुकायिक, गर्भज पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक और गर्भज मनुष्यो के पर्याप्तक और अपर्याप्तक के विषय मे और शेष सभी जीवो के अपर्याप्तक के विषय मे कहना चाहिए।

६६ जदि वेउव्वियसरीरकायप्पयोगपरिणए किं एगिंदियवेउव्वियसरीरकायप्पओगपरिणए जाव पंचिदियवेउव्वियसरीर जाव परिणए ?

गोयमा ! एगिंदिय जाव परिणए वा पंचिदिय जाव परिणए ।

[६६ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य, वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है तो क्या वह एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा यावत् पचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-प्रयोग-परिणत होता है ?

[६६ उ] गौतम ! वह, एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा यावत् पचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है।

६७ जइ एगिंदिय जाव परिणए किं वाउक्काइयएगिंदिय जाव परिणए ? अवाउक्काइय-एगिंदिय जाव परिणते ?

गोयमा ! वाउक्काइयएगिंदिय जाव परिणए, नो अवाउक्काइय जाव परिणते। एव एएण अभिलावेण जहा ओगाहणसठाणे[1] वेउव्वियसरीर भणिय तहा इह वि भाणियव्व जाव पज्जत्तसव्वट्ठ-सिद्धअणुत्तरोववातियकप्पातीयवेमाणियदेवपंचिदियवेउव्वियसरीरकायप्पओगपरिणए वा, अपज्जत्त-सव्वट्ठसिद्ध जाव कायप्पयोगपरिणए वा। ३।

[६७ प्र] भगवन् ! यदि वह एक द्रव्य, एकेन्द्रियवैक्रियशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, तो क्या वह वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा अवायुकायिक (वायुकायिक जीवो के अतिरिक्त) एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है?

[६७ उ] गौतम ! वह एक द्रव्य, वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, किन्तु अवायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोग-परिणत नही होता। (क्योकि वायु-काय के सिवाय अन्य किसी एकेन्द्रिय मे वैक्रियशरीर नही होता।) इसी प्रकार इस अभिलाप के द्वारा प्रज्ञापनासूत्र के 'अवगाहना सस्थान' नामक इक्कीसवे पद मे वैक्रियशरीर (-कायप्रयोग-परिणत) के विषय मे जैसा कहा है, (उसी के अनुसार) यहाँ भी कहना चाहिए, यावत् पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा वह अपर्याप्तक-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है।

६८. जदि वेउव्वियमीसासरीरकायप्पयोगपरिणए किं एगिंदियमीसासरीरकायप्पओगपरिणए वा जाव पंचिदियमीसासरीरकायप्पयोगपरिणए ?

एव जहा वेउव्विय तहा मीसग पि, नवर देव-नेरइयाण अपज्जत्तगाण, सेसाण पज्जत्तगाण तहेव, जाव नो पज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरो जाव प०, अपज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववातियदेवपंचिदियवे-उव्वियमीसासरीरकायप्पओगपरिणए। ४।

[६८ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य, वैक्रियमिश्रशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, तो क्या वह एकेन्द्रिय-वैक्रियमिश्रशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा यावत् पचेन्द्रिय-वैक्रियमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ?

[६८ उ] गौतम ! जिस प्रकार वैक्रियशरीर-कायप्रयोग-परिणत के विषय मे कहा है, उसी प्रकार वैक्रियमिश्रशरीर-कायप्रयोग-परिणत के विषय मे भी कहना चाहिए। परन्तु इतना विशेष है कि वैक्रियमिश्रशरीर-कायप्रयोग देवो और नैरयिको के अपर्याप्त के विषय मे कहना चाहिए। शेष

---

१ प्रज्ञापनासूत्र पद २१—अवगाहनासस्थानपद पृ ३०९ से ३४९ तक, सू १४७४-१५६५ (म वि)

सभी पर्याप्त जीवो के विषय मे कहना चाहिए, यावत् पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिक-देव-पचेन्द्रिय-वैक्रियमिश्रशरीरकाय-प्रयोग-परिणत नही होता, किन्तु अपर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिककल्पातीतवैमानिकदेव-पचेन्द्रिय-वैक्रियमिश्रशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, (यहाँ तक कहना चाहिए)।

६९. जदि आहारगसरीरकायप्पओगपरिणए किं मणुस्साहारगसरीरकायप्पओगपरिणए ? अमणुस्साहारग जाव प० ?

एव जहा ओगाहणसंठाणे जाव इड्ढिपत्तपमत्तसजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसखेज्जवासाउय जाव परिणए, नो अणिड्ढिपत्तपमत्तसजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसखेज्जवासाउय जाव प०। ५।

[६९ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य, आहारकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, तो क्या वह मनुष्याहारकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा अमनुष्य-आहारकशरीर- कायप्रयोग-परिणत होता है ?

[६९ उ] गौतम ! इस सम्बन्ध मे जिस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र के अवगाहनासस्थान नामक (इक्कीसवे) पद मे कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए, यावत् ऋद्धि-प्राप्त प्रमत्तसयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्येयवर्षायुष्क मनुष्य-आहारकशरीर कायप्रयोगपरिणत होता है, किन्तु अनृद्धि-प्राप्त (आहारकलब्धि को अप्राप्त)-प्रमत्तसयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-सख्येयवर्षायुष्क मनुष्याहारक-शरीर-कायप्रयोग-परिणत नही होता।

७० जदि आहारगमीसासरीरकायप्पयोगप० किं मणुस्साहारगमीसासरीर० ?

एव जहा आहारग तहेव मीसगं पि निरवसेस भाणियव्व। ६।

[७० प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य आहारकमिश्रशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, तो क्या वह मनुष्याहारकमिश्रशरीरकायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा अमनुष्याहारक-शरीर-काय-प्रयोग परिणत होता है ?

[७० उ०] गौतम ! जिस प्रकार आहारकशरीरकायप्रयोग-परिणत (एक द्रव्य) के विषय मे कहा गया है, उसी प्रकार आहारकमिश्रशरीर-काय-प्रयोग-परिणत के विषय मे भी कहना चाहिए।

७१. जदि कम्मासरीरकायप्पओगप० किं एगिदियकम्मासरीरकायप्पओगप० जाव पचिदिय-कम्मासरीर जाव प० ?

गोयमा ! एगिदियकम्मासरीरकायप्पओ० एव जहा ओगाहणसठाणे कम्मगस्स भेदो तहेव इहावि जाव पज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयदेवपचिदियकम्मासरीरकायप्पयोगपरिणए वा, अपज्जत्त-सव्वट्ठसिद्धअणु० जाव परिणए वा। ७।

[७१ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य, कार्मणशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, तो क्या वह एकेन्द्रिय-कार्मणशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा यावत् पचेन्द्रियकार्मणशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है ?

[७१ उ] हे गौतम ! वह एकेन्द्रियकार्मणशरीरकायप्रयोग-परिणत होता है, इस सम्बन्ध मे जिस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र के (इक्कीसवे) अवगाहनासस्थान-पद मे कार्मण के भेद कहे गए हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कहने चाहिए, यावत् पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिकदेव-पचेन्द्रिय-कार्मणशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा अपर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पचेन्द्रिय-कार्मणशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, (यहाँ तक कहना चाहिए) ।

७२ जइ मीसापरिणए किं मणमीसापरिणए ? वयमीसापरिणए ? कायमीसापरिणए ?

गोयमा ! मणमीसापरिणए वा, वयमीसापरिणते वा कायमीसापरिणए वा ।

[७२ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य, मिश्रपरिणत होता है, तो क्या वह मनोमिश्रपरिणत होता है, या वचनमिश्रपरिणत होता है, अथवा कायमिश्रपरिणत होता है ?

[७२ उ] गौतम ! वह मनोमिश्रपरिणत भी होता है, वचनमिश्रपरिणत भी होता है, या कायमिश्र-परिणत भी होता है ।

७३ जदि मणमीसापरिणए किं सच्चमणमीसापरिणए ? मोसमणमीसापरिणए ?

जहा पओगपरिणए तहा मीसापरिणए वि भाणियव्व निरवसेस जाव पज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव देवपंचिंदियकम्मासरीरगमीसापरिणए वा, अपज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणु० जाव कम्मासरीरमीसापरिणए वा ।

[७३ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य मनोमिश्रपरिणत होता है, तो क्या वह सत्यमनोमिश्र-परिणत होना है, मृषामनोमिश्र-परिणत होता है, सत्यमृषामनोमिश्रपरिणित होता है, अथवा असत्यामृषामनोमिश्रपरिणत होता है ?

[७३ उ] गौतम ! जिस प्रकार प्रयोग-परिणत एक द्रव्य के सम्बन्ध मे कहा गया है, उसी प्रकार मिश्रपरिणत एक द्रव्य के विषय मे कहना चाहिए यावत् पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिकदेव पचेन्द्रिय कार्मण-शरीर-कायमिश्र-परिणत होता है, अथवा अपर्याप्त-सर्वार्थ-सिद्ध—अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देवपचेन्द्रियकार्मणशरीर-कायमिश्र-परिणत होता है ।

७४ जदि वीससापरिणए किं वण्णपरिणए गधपरिणए रसपरिणए फासपरिणए सठाणपरिणए ?

गोयमा ! वण्णपरिणए वा गधपरिणए वा रसपरिणए वा फासपरिणए वा सठाणपरिणए वा ।

[७४ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य, विस्रसा (स्वभाव से) परिणत होता है, तो क्या वह वर्णपरिणत होता है, गन्धपरिणत होता है, रसपरिणत होता है, स्पर्शपरिणत होता है, अथवा सस्थान-परिणत होता है ?

[७४ उ] गौतम ! वह वर्णपरिणत होता है, या गन्धपरिणत होता है, अथवा रसपरिणत होता है, या स्पर्शपरिणत होता है, या वह सस्थानपरिणत होता है ।

७५ जदि वण्णपरिणए किं कालवण्णपरिणए नील जाव सुक्किलवण्णपरिणए ?

गोयमा ! कालवण्णपरिणए वा जाव सुक्किलवण्णपरिणए वा ।

[७५ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य, वर्णपरिणत होता है तो क्या वह काले वर्ण के रूप मे परिणत होता है, अथवा नीलवर्ण के रूप मे परिणत होता है, अथवा यावत् शुक्लवर्ण के रूप मे परिणत होता है ?

[७५ उ] गौतम ! वह काले वर्ण के रूप मे परिणत होता है, अथवा यावत् शुक्लवर्ण के रूप मे परिणत होता है।

७६ जदि गधपरिणए किं सुब्भिगधपरिणए ? दुब्भिगधपरिणए ?

गोयमा ! सुब्भिगधपरिणए वा, दुब्भिगधपरिणए वा ।

[७६ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य गन्ध-परिणत होता है तो क्या वह सुरभिगन्ध रूप मे परिणत होता है, अथवा दुरभिगन्धरूप मे परिणत होता है ?

[७६ उ] गौतम ! वह सुरभिगन्धरूप मे परिणत होता है, अथवा दुरभिगन्ध रूप मे परिणत होता है।

७७, जइ रसपरिणए किं तित्तरसपरिणए ५ पुच्छा ?

गोयमा ! तित्तरसपरिणए वा जाव महुररसपरिणए वा ।

[७७ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य, रसरूप मे परिणत होता है, तो क्या वह तीखे (चरपरे) रस के रूप मे परिणत होता है, अथवा यावत् मधुररस के रूप मे परिणत होता है ?

[७७ उ] गौतम ! वह तीखे रस के रूप मे परिणत होता है, अथवा यावत् मधुररस के रूप मे परिणत होता है ।

७८. जइ फासपरिणए किं कक्खडफासपरिणए जाव लुक्खफासपरिणए ?

गोयमा ! कक्खडफासपरिणए वा जाव लुक्खफासपरिणए वा ।

[७८ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य, स्पर्शपरिणत होता है तो क्या वह कर्कशस्पर्शरूप मे परिणत होता है, अथवा यावत् रूक्षस्पर्शरूप मे परिणत होता है ?

[७८ उ] गौतम ! वह कर्कशस्पर्शरूप मे परिणत होता है, अथवा यावत् रूक्षस्पर्शरूप मे परिणत होता है ।

७९ जइ सठाणपरिणए० पुच्छा ?

गोयमा ! परिमडलसठाणपरिणए वा जाव आययसंठाणपरिणए वा ।

[७९ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य, सस्थान-परिणत होता है, तो क्या वह परिमण्डल-सस्थानरूप मे परिणत होता है, अथवा यावत् आयत-सस्थानरूप मे परिणत होता है ?

[७९ उ] गौतम ! वह द्रव्य परिमण्डल-सस्थानरूप मे परिणत होता है, अथवा यावत् आयत-सस्थानरूप मे परिणत होता है ।

विवेचन—मन-वचन-काय की अपेक्षा विभिन्न प्रकार से, प्रयोग से, मिश्र से, और विस्रसा से एक द्रव्य के परिणमन की प्ररूपणा—प्रस्तुत ३१ सूत्रो (सू ४९ से ७९ तक) मे मन, वचन और काया के विभिन्न विशेषणो और प्रकारो के माध्यम से एक द्रव्य के प्रयोग-परिणाम की, फिर मिश्रपरिणाम की और अन्त मे वर्णादि की दृष्टि से विस्रसापरिणाम की अपेक्षा से प्ररूपणा की गई है ।

प्रयोग की परिभाषा—मन, वचन और काया के व्यापार को 'योग' कहते है अथवा वीर्यान्तरायकर्म के क्षय या क्षयोपशम से मनोवर्गणा, वचनवर्गणा और कायवर्गणा के पुद्गलो का आलम्बन लेकर आत्मप्रदेशो मे होने वाले परिस्पन्दन (कम्पन या हलचल) को भी योग कहते है, इसी योग को यहाँ 'प्रयोग' कहा गया है ।

योगो के भेद-प्रभेद और उनका स्वरूप—आलम्बन के भेद से प्रयोग के तीन भेद है—मनोयोग, वचनयोग और काययोग । ये ही मुख्य तीन योग है । फिर इनके अवान्तर भेद क्रमश इस प्रकार हैं—सत्यमनोयोग, असत्य (मृषा) मनोयोग, सत्यमृषा (मिश्र) मनोयोग और असत्यामृषा (व्यवहार) मनोयोग । इसी प्रकार—सत्यवचनयोग, असत्यवचनयोग, सत्यमृषा (मिश्र) वचनयोग, और असत्यामृषावचनयोग । इसी प्रकार—औदारिकयोग, औदारिकमिश्रयोग, वैक्रिययोग, वैक्रियमिश्रयोग, आहारकयोग, आहारकमिश्रयोग और कार्मणयोग । इस प्रकार ४ मनोयोग के, ४ वचनयोग के और ७ काययोग के यो कुल मिलाकर योग के १५ भेद हुए । इनका स्वरूप क्रमश इस प्रकार है—(१) **सत्यमनोयोग**—मन का जो व्यापार सत् (सज्जनपुरुषो या साधुओ या प्राणियो) के लिए हितकर हो, उन्हे मोक्ष की ओर ले जाना वाला हो, अथवा सत्पदार्थो या सत्तत्त्वो (जीवादि तत्त्वो) के प्रति यथार्थ विचार हो । (२) **असत्यमनोयोग**—सत्य से विपरीत अर्थात्—ससार की तरफ ले जाने रूप प्राणियो के लिए अहितकर विचार अथवा 'जीवादि तत्त्व नही है' इसका मिथ्याविचार । (३) **सत्यमृषामनोयोग**—व्यवहार से ठीक होने पर भी जो विचार निश्चय से पूर्ण सत्य न हो । (४) **असत्या-मृषामनोयोग**—जो विचार अपने आप मे सत्य और असत्य दोनो ही न हो, केवल वस्तुस्वरूपमात्र दिखाया जाए । (५) सत्यवचनयोग, (६) असत्यवचनयोग, (७) सत्यमृषावचनयोग और (८) असत्यामृषावचनयोग, इनका स्वरूप मनोयोग के समान ही समझना चाहिए । मनोयोग मे केवल विचारमात्र का ग्रहण है और वचनयोग मे वाणी का ग्रहण है । वाणी द्वारा भावो को प्रकट करना वचनयोग है ।

(१) **औदारिकशरीरकाययोग**—काय का अर्थ है—समूह । औदारिकशरीर, पुद्गलस्कन्धो का समूह होने से काय है । इससे होने वाले व्यापार को औदारिकशरीर-काययोग कहते है । यह योग मनुष्यो और तिर्यञ्चो मे होता है ।

(२) **औदारिकमिश्रशरीरकाययोग**—औदारिक के साथ कार्मण, वैक्रिय या आहारक की सहायता से होने वाले वीर्यशक्ति के व्यापार को औदारिकमिश्रकाययोग कहते है । यह योग उत्पत्ति के दूसरे समय से लेकर जब तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण न हो, तब तक सभी औदारिकशरीरधारी जीवो को होता है । वैक्रियलब्धिधारी मनुष्य और तिर्यञ्च जब वैक्रिय शरीर का त्याग करते हैं, तब भी औदारिकमिश्र शरीर होता है । इसी तरह लब्धिधारी मुनिराज जब आहारक

७५ जदि वण्णपरिणए किं कालवण्णपरिणए नील जाव सुक्किलवण्णपरिणए ?

गोयमा ! कालवण्णपरिणए वा जाव सुक्किलवण्णपरिणए वा ।

[७५ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य, वर्णपरिणत होता है तो क्या वह काले वर्ण के रूप मे परिणत होता है, अथवा नीलवर्ण के रूप मे परिणत होता है, अथवा यावत् शुक्लवर्ण के रूप मे परिणत होता है ?

[७५ उ] गौतम ! वह काले वर्ण के रूप मे परिणत होता है, अथवा यावत् शुक्लवर्ण के रूप मे परिणत होता है।

७६ जदि गधपरिणए किं सुब्भिगधपरिणए ? दुब्भिगधपरिणए ?

गोयमा ! सुब्भिगधपरिणए वा, दुब्भिगधपरिणए वा ।

[७६ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य गन्ध-परिणत होता है तो क्या वह सुरभिगन्ध रूप मे परिणत होता है, अथवा दुरभिगन्धरूप मे परिणत होता है ?

[७६ उ] गौतम ! वह सुरभिगन्धरूप मे परिणत होता है, अथवा दुरभिगन्ध रूप मे परिणत होता है ।

७७, जइ रसपरिणए किं तित्तरसपरिणए ५ पुच्छा ?

गोयमा ! तित्तरसपरिणए वा जाव महुररसपरिणए वा ।

[७७ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य, रसरूप मे परिणत होता है, तो क्या वह तीखे (चरपरे) रस के रूप मे परिणत होता है, अथवा यावत् मधुररस के रूप मे परिणत होता है ?

[७७ उ] गौतम ! वह तीखे रस के रूप मे परिणत होता है, अथवा यावत् मधुररस के रूप मे परिणत होता है ।

७८. जइ फासपरिणए किं कक्खडफासपरिणए जाव लुक्खफासपरिणए ?

गोयमा ! कक्खडफासपरिणए वा जाव लुक्खफासपरिणए वा ।

[७८ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य, स्पर्शपरिणत होता है तो क्या वह कर्कशस्पर्शरूप मे परिणत होता है, अथवा यावत् रूक्षस्पर्शरूप मे परिणत होता है ?

[७८ उ] गौतम ! वह कर्कशस्पर्शरूप मे परिणत होता है, अथवा यावत् रूक्षस्पर्शरूप मे परिणत होता है ।

७९ जइ सठाणपरिणए० पुच्छा ?

गोयमा ! परिमडलसठाणपरिणए वा जाव आययसंठाणपरिणए वा ।

[७९ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य, सस्थान-परिणत होता है, तो क्या वह परिमण्डल-सस्थानरूप मे परिणत होता है, अथवा यावत् आयत-सस्थानरूप मे परिणत होता है ?

[७९ उ] गौतम ! वह द्रव्य परिमण्डल-सस्थानरूप मे परिणत होता है, अथवा यावत् आयत-सस्थानरूप मे परिणत होता है ।

विवेचन—मन-वचन-काय की अपेक्षा विभिन्न प्रकार से, प्रयोग से, मिश्र से, और विस्रसा से एक द्रव्य के परिणमन की प्ररूपणा—प्रस्तुत ३१ सूत्रो (सू ४९ से ७९ तक) मे मन, वचन और काया के विभिन्न विशेषणो और प्रकारो के माध्यम से एक द्रव्य के प्रयोग-परिणाम की, फिर मिश्रपरिणाम की और अन्त मे वर्णादि की दृष्टि से विस्रसापरिणाम की अपेक्षा से प्ररूपणा की गई है ।

प्रयोग की परिभाषा—मन, वचन और काया के व्यापार को 'योग' कहते है अथवा वीर्यान्तरायकर्म के क्षय या क्षयोपशम से मनोवर्गणा, वचनवर्गणा और कायवर्गणा के पुद्गलों का आलम्बन लेकर आत्मप्रदेशो मे होने वाले परिस्पन्दन (कम्पन या हलचल) को भी योग कहते है, इसी योग को यहाँ 'प्रयोग' कहा गया है ।

योगो के भेद-प्रभेद और उनका स्वरूप—आलम्बन के भेद से प्रयोग के तीन भेद हैं—मनोयोग, वचनयोग और काययोग । ये ही मुख्य तीन योग है । फिर इनके अवान्तर भेद क्रमश इस प्रकार हैं—सत्यमनोयोग, असत्य (मृषा) मनोयोग, सत्यमृषा (मिश्र) मनोयोग और असत्यामृषा (व्यवहार) मनोयोग । इसी प्रकार—सत्यवचनयोग, असत्यवचनयोग, सत्यमृपा (मिश्र) वचनयोग, और असत्यामृषावचनयोग । इसी प्रकार—औदारिकयोग, औदारिकमिश्रयोग, वैक्रिययोग, वैक्रियमिश्रयोग, आहारकयोग, आहारकमिश्रयोग और कार्मणयोग । इस प्रकार ४ मनोयोग के, ४ वचनयोग के और ७ काययोग के यो कुल मिलाकर योग के १५ भेद हुए । इनका स्वरूप क्रमश इस प्रकार है—(१) **सत्यमनोयोग**—मन का जो व्यापार सत् (सज्जनपुरुषो या साधुओ या प्राणियो) के लिए हितकर हो, उन्हे मोक्ष की ओर ले जाना वाला हो, अथवा सत्यपदार्थों या सत्तत्त्वो (जीवादि तत्त्वो) के प्रति यथार्थ विचार हो । (२) **असत्यमनोयोग**—सत्य से विपरीत अर्थात्—ससार की तरफ ले जाने रूप प्राणियो के लिए अहितकर विचार अथवा 'जीवादि तत्त्व नही हैं' इसका मिथ्याविचार । (३) **सत्यमृषामनोयोग**—व्यवहार से ठीक होने पर भी जो विचार निश्चय से पूर्ण सत्य न हो । (४) **असत्या-मृषामनोयोग**—जो विचार अपने आप मे सत्य और असत्य दोनो ही न हो, केवल वस्तुस्वरूपमात्र दिखाया जाए । (५) सत्यवचनयोग, (६) असत्यवचनयोग, (७) सत्यमृषा-वचनयोग और (८) असत्यामृषावचनयोग, इनका स्वरूप मनोयोग के समान ही समझना चाहिए । मनोयोग मे केवल विचारमात्र का ग्रहण है और वचनयोग मे वाणी का ग्रहण है । वाणी द्वारा भावो को प्रकट करना वचनयोग है ।

(१) **औदारिकशरीरकाययोग**—काय का अर्थ है—समूह । औदारिकशरीर, पुद्गलस्कन्धो का समूह होने से काय है । इससे होने वाले व्यापार को औदारिकशरीर-काययोग कहते है । यह योग मनुष्यो और तिर्यञ्चो मे होता है ।

(२) **औदारिकमिश्रशरीरकाययोग**—औदारिक के साथ कार्मण, वैक्रिय या आहारक की सहायता से होने वाले वीर्यशक्ति के व्यापार को औदारिकमिश्रकाययोग कहते हैं । यह योग उत्पत्ति के दूसरे समय से लेकर जब तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण न हो, तब तक सभी औदारिकशरीर-धारी जीवो को होता है । वैक्रियलब्धिधारी मनुष्य और तिर्यञ्च जब वैक्रिय शरीर का त्याग करते हैं, तब भी औदारिकमिश्र शरीर होता है । इसी तरह लब्धिधारी मुनिराज जब आहारक

शरीर बनाते हैं, तब आहारकमिश्रकाययोग होता है, किन्तु जब वे आहारक शरीर से निवृत्त होकर मूल शरीरस्थ होते है, तब औदारिकमिश्रकाय योग का प्रयोग होता है। केवली भगवान् जब केवली समुद्घात करते हैं, तब दूसरे, छठे और सातवे समय मे औदारिकमिश्रकाययोग का प्रयोग होता है।

(३) **वैक्रियकाययोग**—वैक्रियशरीर द्वारा होने वाली वीर्यशक्ति का व्यापार। यह मनुष्यो और तिर्यञ्चो के वैक्रियलब्धिबल से वैक्रियशरीर धारण कर लेने पर होता है। देवो और नारको के वैक्रियकाययोग 'भवप्रत्यय' होता है।

(४) **वैक्रियमिश्रकाययोग**—वैक्रिय और कार्मण, अथवा वैक्रिय और औदारिक, इन दो शरीरो के द्वारा होने वाले वीर्यशक्ति के व्यापार को 'वैक्रियमिश्रकाययोग' कहते है। वैक्रिय और कार्मणसम्बन्धी वैक्रियमिश्रकाययोग, देवो तथा नारको को उत्पत्ति के दूसरे समय से लेकर जब तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण न हो, तब तक रहता है। वैक्रिय और औदारिक, इन दो शरीरो सम्बन्धी वैक्रियमिश्रकाययोग, मनुष्यो और तिर्यंचो मे तभी पाया जाता है, जब वे लब्धिबल से वैक्रिय शरीर का आरम्भ करते हैं। वैक्रियशरीर का त्याग करने मे वैक्रियमिश्र नही होता, किन्तु औदारिकमिश्र होता है।

(५) **आहारककाययोग**—केवल आहारक शरीर की सहायता से होने वाला वीर्यशक्ति का व्यापार 'आहारककाययोग' होता है।

(६) **आहारकमिश्रकाययोग**—आहारक और औदारिक, इन दो शरीरो के द्वारा होने वाले वीर्यशक्ति के व्यापार को आहारकमिश्रकाययोग कहते हैं। आहारक-शरीर को धारण करने के समय अर्थात्—उसे प्रारम्भ करने के समय तो आहारकमिश्रकाययोग होता है और उसके त्याग के समय औदारिकमिश्रकाययोग होता है।

(७) **कार्मणकाययोग**—केवल कार्मण शरीर की सहायता से वीर्यशक्ति की जो प्रवृत्ति होती है, उसे कार्मणकाययोग कहते है। यह योग विग्रहगति मे तथा उत्पत्ति के समय अनाहारक अवस्था मे सभी जीवो मे होता है। केवलीसमुद्घात के तीसरे, चौथे और पाचवे समय मे केवली भगवान् के होता है।

कार्मणकाययोग की तरह तैजसकाययोग, इसलिए पृथक् नही माना कि तैजस और कार्मण दोनो का सदैव साहचर्य रहता है। वीर्यशक्ति का व्यापार भी दोनो का साथ-साथ होता है, इसलिए कार्मणकाययोग मे ही तैजसकाययोग का समावेश हो जाता है।

प्रयोग-परिणत : तीनो योगो द्वारा—काययोग द्वारा मनोवर्गणा के द्रव्यो को ग्रहण करके मनोयोग द्वारा मनोरूप से परिणमाए हुए पुद्गल **'मन प्रयोगपरिणत'** कहलाते हैं। काययोग द्वारा भाषाद्रव्य को ग्रहण करके वचनयोग द्वारा भाषारूप मे परिणत करके बाहर निकाले जाने वाले पुद्गल **'वचन-प्रयोग-परिणत'** कहलाते हैं। औदारिक आदि काययोग द्वारा ग्रहण किये हुए औदारिकादि वर्गणाद्रव्यो को औदारिकादि शरीररूप मे परिणमाए हो, उन्हे **'कायप्रयोगपरिणत'** कहते है।

आरम्भ, सरम्भ और समारम्भ का स्वरूप—जीवो को प्राण से रहित कर देना 'आरम्भ' है, किसी जीव को मारने के लिए मानसिक सकल्प करना सरम्भ (सारम्भ) कहलाता है। जीवो को परिताप पहुँचाना समारम्भ कहलाता है। जीवहिंसा के अभाव को अनारम्भ कहते हैं।

आरम्भसत्यमनःप्रयोग आदि का अर्थ—आरम्भ कहते हैं, जीवोपघात को, तद्विषयक सत्य—

आरम्भसत्य है, और आरम्भसत्यविषयक मन प्रयोग को आरम्भसत्यमन प्रयोग कहते हैं। इसी प्रकार सरम्भ, समारम्भ और अनारम्भ को जोडकर तदनुसार अर्थ कर लेना चाहिए।[1]

दो द्रव्य सम्बन्धी प्रयोग-मिश्र-विस्रसापरिणत पदो के मनोयोग आदि के संयोग से निष्पन्न भंग—

८० दो भंते ! दव्वा किं पयोगपरिणया ? मीसापरिणया ? वीससापरिणया ?

गोयमा ! पओगपरिणया वा १। मीसापरिणया वा २। वीससापरिणया वा ३। अहवेगे पओगपरिणए, एगे मीसापरिणए ४। अहवेगे पओगप०, एगे वीससापरि० ५। अहवेगे मीसापरिणए, एगे वीससापरिणए, एवं ६।

[८०-प्र] भगवन् ! दो द्रव्य, क्या प्रयोगपरिणत होते है, मिश्रपरिणत होते है, अथवा विस्रसा-परिणत होते है ?

[८०-उ] गौतम ! वे प्रयोगपरिणत होते है, या मिश्रपरिणत होते हैं, अथवा विस्रसापरिणत होते है, अथवा एक द्रव्य प्रयोगपरिणत होता है और दूसरा मिश्रपरिणत होता है, या एक द्रव्य प्रयोग-परिणत होता है और दूसरा द्रव्य विस्रसापरिणत होता है, अथवा एक द्रव्य मिश्रपरिणत होता है और दूसरा विस्रसापरिणत होता है।

८१ जदि पओगपरिणया किं मणप्पयोगपरिणया ? वइप्पयोग० ? कायप्पयोगपरिणया ?

गोयमा ! मणप्पयोगपरिणता वा १। वइप्पयोगप० २। कायप्पयोगपरिणया वा ३। अहवेगे मणप्पयोगपरिणते, एगे वयप्पयोगपरिणते ४। अहवेगे मणप्पयोगपरिणए, एगे कायप्पओगपरिणए ५। अहवेगे वयप्पयोगपरिणते, एगे कायप्पओगपरिणते ६।

[८१-प्र] यदि वे दो द्रव्य प्रयोगपरिणत होते है, तो क्या मन प्रयोग-परिणत होते है, या वचनप्रयोग-परिणत होते है अथवा कायप्रयोग-परिणत होते है ?

[८१-उ] गौतम ! वे (दो द्रव्य) या तो (१) मन प्रयोगपरिणत होते है, या (२) वचन-प्रयोग-परिणत होते है, अथवा (३) काय-प्रयोगपरिणत होते हैं, अथवा (४) उनमे से एक द्रव्य मन -प्रयोगपरिणत होता है और दूसरा वचन-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा (५) एक द्रव्य मन प्रयोग-परिणत होता है और दूसरा काय-प्रयोगपरिणत होता है या (६) एक द्रव्य वचन-प्रयोगपरिणत होता है और दूसरा कायप्रयोग-परिणत होता है।

८२ जदि मणप्पयोगपरिणता किं सच्चमणप्पयोगपरिणता ? असच्चमणप्पयोगप० ? सच्चा-मोसमणप्पयोगप० ? असच्चाऽमोसमणप्पयोगप० ?

गोयमा ! सच्चमणप्पयोगपरिणया वा जाव असच्चामोसमणप्पयोगपरिणया वा। अहवेगे सच्चमणप्पयोगपरिणए, एगे मोसमणप्पओगपरिणए १। अहवेगे सच्चमणप्पओगपरिणते, एगे सच्चा-मोसमणप्पओगपरिणए २। अहवेगे सच्चमणप्पओगपरिणए, एगे असच्चामोसमणप्पओगपरिणए ३।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३३५-३३६

अहवेगे मोसमणप्पयोगपरिणते, एगे सच्चामोसमणप्पयोगपरिणते ४। अहवेगे मोसमणप्पयोगपरिणते, एगे असच्चामोसमणप्पयोगपरिणते ५। अहवेगे सच्चामोसमणप्पओगपरिणते, एगे असच्चामोसमणप्पओगपरिणते ६।

[८२-प्र] भगवन् ! यदि वे (दो द्रव्य) मन प्रयोगपरिणत होते है, तो क्या सत्यमन प्रयोग-परिणत होते है, या असत्य-मन प्रयोगपरिणत होते है, अथवा सत्यमृषामन प्रयोग-परिणत होते हैं, या असत्यामृषा-मन प्रयोगपरिणत होते हैं ?

[८२-उ] गौतम ! वे (दो द्रव्य) (१-४) सत्यमन प्रयोगपरिणत होते है, यावत् असत्यामृषा-मन प्रयोगपरिणत होते है, (५) या उनमे से एक द्रव्य सत्यमन प्रयोगपरिणत होता है और दूसरा मृषामन प्रयोगपरिणत होता है, अथवा (६) एक द्रव्य सत्यमन प्रयोग-परिणत होता है, और दूसरा सत्यमृषामन प्रयोग-परिणत होता है, या (७) एक द्रव्य सत्यमन प्रयोग-परिणत होता है और दूसरा असत्यामृषामन प्रयोगपरिणत होता है, अथवा (८) एक द्रव्य मृषामन प्रयोग-परिणत होता है, और दूसरा सत्यमृषामन प्रयोगपरिणत होता है, या (९) एक द्रव्य मृषामन प्रयोग-परिणत होता है और दूसरा असत्यामृषा-मन प्रयोगपरिणत होता है अथवा (१०) एक द्रव्य सत्यमृषामन प्रयोगपरिणत होता है, और दूसरा असत्यामृषामन प्रयोगपरिणत होता है।

८३ जइ सच्चमणप्पओगपरिणता किं आरंभसच्चमणप्पयोगपरिणया जाव असमारंभसच्च-मणप्पयोगपरिणता ?

गोयमा ! आरंभसच्चमणप्पयोगपरिणया वा जाव असमारंभसच्चमणप्पयोगपरिणया वा। अहवेगे आरंभसच्चमणप्पयोगपरिणते, एगे अणारंभसच्चमणप्पयोगपरिणते। एव एएण गमएण दुयसजो-एण नेयव्व। सव्वे सयोगा जत्थ जत्तिया उट्ठेंति ते भाणियव्वा जाव सव्वट्ठसिद्धग त्ति।

[८३-प्र] भगवन् ! यदि वे (दो द्रव्य) सत्यमन प्रयोग-परिणत होते हैं तो क्या वे आरम्भ-सत्यमन प्रयोगपरिणत होते हैं या अनारम्भसत्यमन प्रयोग-परिणत होते हैं, अथवा सरम्भ (सारम्भ) सत्यमन प्रयोगपरिणत होते है, या असरम्भ (असारम्भ) सत्यमन प्रयोगपरिणत होते हैं, अथवा समा-रम्भसत्यमन प्रयोगपरिणत होते है या असमारम्भसत्यमन प्रयोग परिणत होते है ?

[८३-उ] गौतम ! वे दो द्रव्य (१-६) आरम्भसत्यमन प्रयोग-परिणत होते है, अथवा यावत् असमारम्भसत्यमन प्रयोगपरिणत होते हैं, अथवा एक द्रव्य आरम्भसत्यमन प्रयोगपरिणत होता है और दूसरा अनारम्भसत्य-मन प्रयोग-परिणत होता है, इसी प्रकार इस गम (पाठ) के अनुसार द्विक-संयोगी भग करने चाहिए। जहाँ जितने भी द्विकसयोग हो सके, उतने सभी यहाँ कहने चाहिए यावत् सर्वार्थसिद्ध वैमानिक देव-पर्यन्त कहने चाहिए।

८४ जदि मीसापरिणता किं मणमीसापरिणता० ?

एव मीसापरिणया वि।

[८४-प्र] भगवन् ! यदि वे (दो द्रव्य) मिश्रपरिणत होते हैं तो मनोमिश्रपरिणत होते है (इत्यादि पूर्ववत् प्रयोगपरिणत वाले प्रश्नो की तरह यहाँ भी सभी प्रश्न उपस्थित करने चाहिए।)

[८४-उ] जिस प्रकार प्रयोग-परिणत के विषय मे कहा गया है, उसी प्रकार मिश्रपरिणत के सम्बन्ध मे भी कहना चाहिए।

८५. जदि वीससापरिणया किं वण्णपरिणया, गधपरिणता० ?।

एव वीससापरिणया वि जाव अहवेगे चउरससठाणपरिणते, एगे आययसंठाणपरिणए वा।

[८५-प्र] भगवन्! यदि दो द्रव्य विस्रसा-परिणत होते है, तो क्या वे वर्णरूप से परिणत होते है, गधरूप से परिणत होते है, (अथवा यावत् सस्थानरूप से परिणत होते है ?)

[८५-उ] गौतम! जिस प्रकार पहले कहा गया है, उसी प्रकार विस्रसापरिणत के विषय मे कहना चाहिए, यावत् एक द्रव्य, चतुरस्रसस्थानरूप से परिणत होता है, एक द्रव्य आयत सस्थान से परिणत होता है।

विवेचन—दो-द्रव्यसम्बन्धी प्रयोग-मिश्र-विस्रसापरिणत पदो के मनोयोग आदि के सयोग से निष्पन्न भग—प्रस्तुत छह सूत्रो (सू ८० से ८५ तक) मे दो द्रव्यो से सम्बन्धित विभिन्न विशेषणयुक्त मनोयोग आदि के सयोग से प्रयोगपरिणत, मिश्रपरिणत और विस्रसापरिणत पदो के विभिन्न भगो का निरूपण किया गया है।

प्रयोगादि तीन पदो के छह भग—दो द्रव्यो के सम्बन्ध मे प्रयोगादि तीन पदो के असयोगी ३ भग और द्विकसयोगी ३ भग, यो कुल छह भग होते है।

विशिष्ट-मनःप्रयोगपरिणत के पाच सौ चार भग—सर्वप्रथम सत्यमन प्रयोगपरिणत, असत्य-मन प्रयोगपरिणत आदि ४ पदो के असयोगी ४ भग और द्विकसयोगी ६ भग, इस प्रकार कुल १० भग होते हैं। फिर आरम्भ-सत्यमन प्रयोग आदि छह पदो के असयोगी ६ भग और द्विकसयोगी १५ भग होते हैं। इस प्रकार आरम्भसत्यमन प्रयोगपरिणत (द्रव्यद्वय) के ६+१५=२१ भग हुए। इसी प्रकार अनारम्भ सत्यमन प्रयोग आदि शेष ५ पदो के भी प्रत्येक के इक्कीस-इक्कीस भग होते है। यो सत्यमन प्रयोगपरिणत के आरम्भ, अनारम्भ, सरभ, असरभ, समारम्भ, असमारम्भ, इन ६ पदो के साथ कुल २१×६=१२६ भग हुए।

इसी प्रकार सत्यमन प्रयोगपरिणत की तरह असत्यमन प्रयोगपरिणत, सत्यमृषामन प्रयोग-परिणत, असत्यामृषामन प्रयोगपरिणत, इन तीन पदो के भी आरम्भ आदि ६ पदो के साथ प्रत्येक के पूर्ववत् एक सौ छब्वीस-एक सौ छब्वीस भग होते है। अत मन प्रयोगपरिणत के सत्यमन प्रयोग-परिणत, असत्यमन प्रयोगपरिणत आदि विशेषणयुक्त चारो पदो के कुल १२६×४=५०४ भग होते है।

पूर्वोक्त विशेषणयुक्त वचनप्रयोगपरिणत के भी ५०४ भंग—जिस प्रकार मन प्रयोगपरिणत के उपर्युक्त ५०४ भग होते है उसी प्रकार वचनप्रयोगपरिणत के भी ५०४ भग होते है। सर्वप्रथम सत्य-वचनप्रयोग के आरम्भसत्य आदि ६ पदो के प्रत्येक के २१-२१ भग होने से १२६ भग होते है। फिर असत्यवचनप्रयोग आदि शेष तीन पदो के भी आरम्भ आदि ६ पदो के साथ प्रत्येक के १२६-१२६ भग होने से कुल १२६×४=५०४ भग होते है।

औदारिक आदि कायप्रयोगपरिणत के १९६ भंग—औदारिकशरीरकायप्रयोग-परिणत आदि ७ पद है, इनके असयोगी ७ भग और द्विकसयोगी २१ भग, यो कुल ७+२१=२८ भग एक पद के होते हैं। सातो पदो के कुल २८×७=१९६ भग कायप्रयोगपरिणत के होते है।

दो द्रव्यों के त्रियोगसम्बन्धी मिश्रपरिणत भग—इस प्रकार मन प्रयोगपरिणत सम्बन्धी ५०४, वचनप्रयोगपरिणत सम्बन्धी ५०४ और कायप्रयोगपरिणत सम्बन्धी १९६, यो कुल १२०४ भग प्रयोग-परिणत के होते है। जिस प्रकार प्रयोगपरिणत दो द्रव्यो के कुल १२०४ भग कहे गए है, उसी प्रकार मिश्र-परिणत दो द्रव्यो के भी कुल १२०४ भग समझने चाहिए।

विस्रसा-परिणत द्रव्यो के भग—जिस रीति से प्रयोगपरिणत दो द्रव्यो के भग कहे गए है, उसी रीति से विस्रसापरिणत दो द्रव्यो के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान इन पाच पदो के विविध: विशेषणयुक्त पदो को लेकर असयोगी और द्विकसयोगी भग भी यथायोग्य समझ लेना चाहिए।[1]

तीन द्रव्यो के मन-वचन-काया की अपेक्षा प्रयोग-मिश्र-विस्रसापरिणत पदों के भंग—

८६ तिण्णि भते ! दव्वा किं पयोगपरिणता ? मीसापरिणता ? वीससापरिणता ?

गोयमा ! पयोगपरिणया वा, मीसापरिणया वा, वीससापरिणया वा १। अहवेगे पयोगपरिणए, दो मीसापरिणता १। अहवेगे पयोगपरिणए, दो वीससापरिणता २। अहवा दो पयोगपरिणया, एगे मीसापरिणए ३। अहवा दो पयोगपरिणता, एगे वीससापरिणते ४। अहवेगे मीसापरिणए, दो वीससा-परिणता ५। अहवा दो मीससापरिणता, एगे वीससापरिणते ६। अहवेगे पयोगपरिणते, एगे मीसा-परिणते, एगे वीससापरिणते ७।

[८६-प्र] भगवन् ! तीन द्रव्य क्या प्रयोगपरिणत होते है, मिश्रपरिणत होते है, अथवा विस्रसापरिणत होते है ?

[८६-उ] गौतम ! तीन द्रव्य या तो प्रयोगपरिणत होते है, या मिश्र-परिणत होते है, अथवा विस्रसापरिणत होते है, या एक द्रव्य प्रयोगपरिणत होता है, और दो द्रव्य मिश्रपरिणत होते हैं, या एक द्रव्य प्रयोगपरिणत होता है, और दो द्रव्य विस्रसा-परिणत होते है, अथवा दो द्रव्य प्रयोग-परिणत होते है और एक द्रव्य मिश्र-परिणत होता है, अथवा दो द्रव्य प्रयोग-परिणत होते है, और एक द्रव्य विस्रसापरिणत होता है, अथवा एक द्रव्य मिश्रपरिणत होता है और दो द्रव्य विस्रसा-परिणत होते है, अथवा दो द्रव्य मिश्रपरिणत होते है, और एक द्रव्य विस्रसा-परिणत होता है, या एक द्रव्य प्रयोग-परिणत होता है, एक द्रव्य मिश्रपरिणत होता है और एक द्रव्य विस्रसा-परिणत होता है।

८७ जदि पयोगपरिणता किं मणप्पयोगपरिणया ? वइप्पयोगपरिणता ? कायप्पयोग-परिणता ?

गोयमा ! मणप्पयोगपरिणया वा० एव एक्कगसयोगो, दुयसयोगो तियसयोगो य भाणियव्वो।

[८७-प्र] भगवन् ! यदि वे तीनो द्रव्य प्रयोगपरिणत होते है, तो क्या मन प्रयोगपरिणत होते हैं, या वचनप्रयोगपरिणत होते है अथवा वे कायप्रयोगपरिणत होते है ?

[८७-उ] गौतम ! वे (तीन द्रव्य) या तो मन प्रयोगपरिणत होते है, या वचनप्रयोगपरिणत होते है, अथवा कायप्रयोगपरिणत होते हैं। इस प्रकार एकसयोगी (असयोगी), द्विकसयोगी और त्रिकसयोगी भग कहने चाहिए।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३३७-३३८

८८. जदि मणप्पयोगपरिणता किं सच्चमणप्पयोगपरिणया ४ ?

गोयमा ! सच्चमणप्पयोगपरिणया वा जाव असच्चामोसमणप्पयोगपरिणया वा ४ । अहवेगे सच्चमणप्पयोगपरिणए, दो मोसमणप्पयोगपरिणया एवं दुयसयोगो, तियसयोगो भाणियव्वो । एत्थ वि तहेव जाव अहवा एगे तससठाणपरिणए वा एगे चउरससंठाणपरिणए वा एगे आययसठाणपरिणए वा ।

[८८ प्र] भगवन् ! यदि तीन द्रव्य मन·प्रयोग-परिणत होते है, तो क्या वे सत्यमन.प्रयोग-परिणत होते हैं, असत्यमन प्रयोगपरिणत होते हैं ? इत्यादि प्रश्न है ।

[८८ उ] गौतम ! वे (त्रिद्रव्य) सत्यमन प्रयोगपरिणत होते है, अथवा यावत् असत्यामृषा-मन.प्रयोगपरिणत होते हैं, अथवा उनमे से एक द्रव्य सत्यमन प्रयोगपरिणत होता है, और दो द्रव्य मृषामन प्रयोगपरिणत होते है, इत्यादि प्रकार से यहाँ भी द्विकसयोगी भग कहने चाहिए ।

तीन द्रव्यो के प्रयोग-परिणत की तरह ही मिश्रपरिणत और विस्रसा-परिणत के भग कहने चाहिए—यावत् अथवा एक त्र्यस (त्रिकोण) सस्थानरूप से परिणत हो, एक समचतुरस्र-सस्थानरूप से परिणत हो और एक आयत-सस्थानरूप से परिणत हो, यहाँ तक कहना चाहिए ।

विवेचन—तीन द्रव्यो के मन-वचन-काया की अपेक्षा प्रयोग-मिश्र-विस्रसापरिणत पदो के भग—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू ८६ से ८८ तक) मे तीन द्रव्यो के मन, वचन और काय की अपेक्षा, प्रयोगपरिणत, मिश्रपरिणत और विस्रसापरिणत इन तीन पदो के विविध भगो का अतिदेशपूर्वक कथन किया गया है ।

तीन पदो के त्रिद्रव्यसम्बन्धी भंग—प्रयोगपरिणत आदि तीन पदो के असयोगी तीन, द्विक-सयोगी छह, और त्रिकसयोगी एक भग होता है । कुल भग १० होते हैं ।

सत्यमन प्रयोगपरिणत आदि के भग—सत्यमन प्रयोगपरिणत आदि ४ पद है, इनके असयोगी (एक-एक) चार भग, द्विकसयोगी १२ भग, और त्रिकसयोगी ४ भग होते है । यो कुल ४+१२+४=२० भग हुए । इसी प्रकार मृषामन प्रयोगपरिणत के भी ४ भग समझने चाहिए । इसी रीति से वचनप्रयोगपरिणत और कायप्रयोगपरिणत के भग समझ लेने चाहिए ।

मिश्र और विस्रसापरिणत के भग—प्रयोगपरिणत की तरह मिश्रपरिणत के और विस्रसा-परिणत के भी (वर्णादि के भेदो को लेकर) भग कहने चाहिए ।[1]

चार आदि द्रव्यो के मन-वचन-काया की अपेक्षा प्रयोगादिपरिणत पदों के संयोग से निष्पन्न भंग—

८९ चत्तारि भंते ! दव्वा किं पयोगपरिणया ३ ?

गोयमा ! पयोगपरिणया वा, मीसापरिणया वा, वीससापरिणया वा । अहवेगे पओगपरिणए, तिण्णि मीसापरिणया १ । अहवा एगे पओगपरिणए, तिण्णि वीससापरिणया २ । अहवा दो पयोग-परिणया, दो मीसापरिणया ३ । अहवा दो पयोगपरिणया, दो वीससापरिणया ४ । अहवा तिण्णि

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३३९

पओगपरिणया, एगे मीससापरिणए ५ । अहवा तिण्णि पओगपरिणया, एगे वीससापरिणए ६ । अहवा एगे मीससापरिणए, तिण्णि वीससापरिणया ७ । अहवा दो मीसापरिणया, दो वीससापरिणया ८ । अहवा तिण्णि मीसापरिणया, एगे वीससापरिणए ९ । अहवेगे पओगपरिणए एगे मीसापरिणए, दो वीससापरिणया १; अहवेगे पयोगपरिणए, दो मीसापरिणया, एगे वीससापरिणए २; अहवा दो पयोगपरिणया, एगे मीसापरिणए, एगे वीससापरिणए ३ ।

[८९ प्र] भगवन् ! चार द्रव्य क्या प्रयोग-परिणत होते है, या मिश्रपरिणत होते है, अथवा विस्रसापरिणत होते है ?

[८९ उ] गौतम ! वे (चार द्रव्य) (१) या तो प्रयोगपरिणत होते है, (२) या मिश्र-परिणत होते हैं, (३) अथवा विस्रसापरिणत होते हैं, (४) अथवा एक द्रव्य प्रयोगपरिणत होता है, तीन मिश्रपरिणत होते हैं, या (५) एक द्रव्य प्रयोग-परिणत होता है और तीन विस्रसा-परिणत होते है, (६) अथवा दो द्रव्य प्रयोग-परिणत होते है और दो मिश्रपरिणत होते है, (७) या दो द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं और दो विस्रसापरिणत होते है, अथवा (८) तीन द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं और एक द्रव्य मिश्रपरिणत होना है, (९) अथवा तीन द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं और एक द्रव्य विस्रसा-परिणत होता है, अथवा (१०) एक द्रव्य मिश्र-परिणत होता है और तीन द्रव्य विस्रसापरिणत होते है, अथवा (११) दो द्रव्य मिश्रपरिणत होते हैं और दो द्रव्य विस्रसापरिणत होते है, अथवा (१२) तीन द्रव्य मिश्रपरिणत होते है और एक द्रव्य विस्रसापरिणत होता है, अथवा (१३) एक प्रयोगपरिणत होता है, एक मिश्रपरिणत होता है और दो विस्रसापरिणत होते हैं, अथवा (१४) एक प्रयोग-परिणत होता है, दो द्रव्य मिश्रपरिणत होते हैं और एक द्रव्य विस्रसापरिणत होता है, अथवा (१५) दो द्रव्य प्रयोगपरिणत होते हैं, एक मिश्रपरिणत होता है और एक विस्रसापरिणत होता है ।

९० जदि पयोगपरिणया किं मणप्पयोगपरिणया ३ ?

एवं एएणं कमेणं पंच छ सत्त जाव दस संखेज्जा असंखेज्जा अणंता य दव्वा भाणियव्वा । दुयासंजोएणं, तियासंजोगेणं जाव दससंजोएणं बारसंसंजोएणं उवजुंजिऊण जत्थ जत्तिया संजोगा उट्ठेति ते सव्वे भाणियव्वा । एए पुण जहा नवमसए पवेसणए भणीहामि तहा उवजुंजिऊण भाणियव्वा जाव असंखेज्जा । अणंता एवं चेव, नवरं एक्कं पदं अब्भहियं जाव अहवा अणंता परिमंडलसंठाण-परिणता जाव अणंता आययसंठाणपरिणया ।

[९० प्र] भगवन् ! यदि चार द्रव्य प्रयोग-परिणत होते है तो क्या वे मन प्रयोगपरिणत होते है, या वचनप्रयोगपरिणत होते हैं, अथवा कायप्रयोगपरिणत होते है ?

[९० उ] गौतम ! ये सब तथ्य पूर्ववत् कहने चाहिए । तथा इसी क्रम से पाच, छह, सात, आठ, नौ, दस, यावत् सख्यात, असख्यात और अनन्त द्रव्यो के विषय मे कहना चाहिए । द्विकसयोग से, त्रिकसयोग से, यावत् दस के सयोग से, बारह के सयोग से, जहाँ जिसके जितने सयोगी भग बनते हो, उतने सब भग उपयोगपूर्वक कहने चाहिए । ये सभी सयोगी भग आगे नौवे शतक के

बत्तीसवे प्रवेशनक नामक उद्देशक मे जिस प्रकार हम कहेगे, उसी प्रकार उपयोग लगाकर यहाँ भी कहने चाहिए, यावत् अथवा अनन्त द्रव्य परिमण्डल-सस्थानरूप से परिणत होते है, यावत् अनन्त द्रव्य आयत-सस्थानरूप से परिणत होते है।

विवेचन—चार आदि द्रव्यो के मन-वचन-काय की अपेक्षा प्रयोगादि परिणत के सयोग से होने वाले भग—प्रस्तुत सूत्रद्वय मे चार आदि द्रव्यो के प्रयोगादि परिणामो के निमित्त से होने वाले भगो का कथन किया गया है।

चार द्रव्यो सम्बन्धी प्रयोग-परिणत आदि तीन पदो के भंग—चार द्रव्यों के प्रयोगपरिणत, मिश्रपरिणत और विस्रसापरिणत आदि तीन पदो के असयोगी ३ भग, द्विकसयोगी ९ भग और त्रिकसयोगी ३ भग होते हैं। इस तरह ये सभी मिलकर ३+९+३=१५ भग होते है। पूर्वोक्त पद्धति के अनुसार इनसे आगे के भगो के लिए पूर्वोक्त क्रम से सस्थानपर्यन्त यथायोग्य भगो की योजना कर लेनी चाहिए।

पचद्रव्यसम्बन्धी और पांच से आगे के भग—पाच द्रव्यो के असयोगी तीन भग, द्विकसयोगी १२ भग और त्रिकसयोगी ६ भग, यो कुल ३+१२+६=२१ भग होते है। इस प्रकार पाच, छह, यावत् अनन्त द्रव्यो के भी यथायोग्य भग बना लेने चाहिए। सूत्र के मूलपाठ मे ११ सयोगी भग नही बतलाया गया है, क्योकि पूर्वोक्त पदो मे ११ सयोगी भग नही बनता।

नौवे शतक के ३२वें उद्देशक मे गागेय अनगार के प्रवेशनक सम्बन्धी भग बताए गए है, तदनुसार यहाँ भी उपयोग लगाकर भगो की योजना कर लेनी चाहिए।[1]

परिणामों की दृष्टि से पुद्गलो का अल्पबहुत्व—

९१ एएसि णं भंते! पोग्गलाण पयोगपरिणयाण मीसापरिणयाण वीससापरिणयाण य कतरे कतरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा पोग्गला पयोगपरिणया, मीसापरिणया अणतगुणा, वीससापरिणया अणतगुणा।

सेव भते! सेव भते! त्ति०।

॥ अट्ठम सए : पढमो उद्देसओ समत्तो ॥

[९१ प्र] भगवन्! प्रयोग-परिणत, मिश्र-परिणत और विस्रसा-परिणत, इन तीनो प्रकार के पुद्गलो मे कौन-से (पुद्गल), किन (पुद्गलो) से अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

[९१ उ] गौतम! प्रयोगपरिणत पुद्गल सबसे थोडे हैं, उनसे मिश्रपरिणत पुद्गल अनन्तगुणे हैं, और उनसे विस्रसापरिणत पुद्गल अनन्तगुणे हैं।

'हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है', ऐसा कह कर यावत् गौतमस्वामी विचरण करने लगे।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३३९

पश्रोगपरिणया, एगे मीससापरिणए ५। ग्रहवा तिण्णि पश्रोगपरिणया, एगे वीससापरिणए ६। ग्रहवा एगे मीससापरिणए, तिण्णि वीससापरिणया ७। अहवा दो मीसापरिणया, दो वीससापरिणया ८। ग्रहवा तिण्णि मीसापरिणया, एगे वीससापरिणए ९। ग्रहवेगे पश्रोगपरिणए एगे मीसापरिणए, दो वीससापरिणया १; ग्रहवेगे पयोगपरिणए, दो मीसापरिणया, एगे वीससापरिणए २; अहवा दो पयोगपरिणया, एगे मीसापरिणए, एगे वीससापरिणए ३।

[८९ प्र] भगवन्! चार द्रव्य क्या प्रयोग-परिणत होते है, या मिश्रपरिणत होते हैं, अथवा विस्रसापरिणत होते हैं ?

[८९ उ] गौतम! वे (चार द्रव्य) (१) या तो प्रयोगपरिणत होते है, (२) या मिश्र-परिणत होते हैं, (३) अथवा विस्रसापरिणत होते है, (४) अथवा एक द्रव्य प्रयोगपरिणत होता है, तीन मिश्रपरिणत होते हैं, या (५) एक द्रव्य प्रयोग-परिणत होता है और तीन विस्रसा-परिणत होते है, (६) अथवा दो द्रव्य प्रयोग-परिणत होते है और दो मिश्रपरिणत होते हैं, (७) या दो द्रव्य प्रयोग-परिणत होते है और दो विस्रसापरिणत होते है, अथवा (८) तीन द्रव्य प्रयोग-परिणत होते है और एक द्रव्य मिश्रपरिणत होना है, (९) अथवा तीन द्रव्य प्रयोग-परिणत होते है और एक द्रव्य विस्रसा-परिणत होता है, अथवा (१०) एक द्रव्य मिश्र-परिणत होता है और तीन द्रव्य विस्रसापरिणत होते है, अथवा (११) दो द्रव्य मिश्रपरिणत होते हैं और दो द्रव्य विस्रसापरिणत होते है, अथवा (१२) तीन द्रव्य मिश्रपरिणत होते है और एक द्रव्य विस्रसापरिणत होता है, अथवा (१३) एक प्रयोगपरिणत होता है, एक मिश्रपरिणत होता है और दो विस्रसापरिणत होते है, अथवा (१४) एक प्रयोग-परिणत होता है, दो द्रव्य मिश्रपरिणत होते है और एक द्रव्य विस्रसापरिणत होता है, अथवा (१५) दो द्रव्य प्रयोगपरिणत होते हैं, एक मिश्रपरिणत होता है और एक विस्रसापरिणत होता है।

९० जदि पयोगपरिणया किं मणप्पयोगपरिणया ३ ?

एव एएण कमेणं पंच छ सत्त जाव दस संखेज्जा असंखेज्जा अणता य दव्वा भाणियव्वा। दुयासजोएण, तियासजोगेण जाव दससजोएण बारसंसजोएण उवजु जिऊण जत्थ जत्तिया सजोगा उट्ठेंति ते सव्वे भाणियव्वा। एए पुण जहा नवमसए पवेसणए भणीहामि तहा उवजुंजिऊण भाणियव्वा जाव असखेज्जा। अणता एव चेव, नवर एक्क पदं अब्भहिय जाव अहवा अणता परिमडलसठाण-परिणता जाव अणता आययसठाणपरिणया।

[९० प्र] भगवन्! यदि चार द्रव्य प्रयोग-परिणत होते है तो क्या वे मन प्रयोगपरिणत होते हैं, या वचनप्रयोगपरिणत होते हैं, अथवा कायप्रयोगपरिणत होते हैं ?

[९० उ] गौतम! ये सब तथ्य पूर्ववत् कहने चाहिए। तथा इसी क्रम से पाच, छह, सात, आठ, नौ, दस, यावत् सख्यात, असख्यात और अनन्त द्रव्यो के विषय मे कहना चाहिए। द्विकसयोग से, त्रिकसयोग से, यावत् दस के सयोग से, बारह के सयोग से, जहाँ जिसके जितने सयोगी भग वनते हो, उतने सब भग उपयोगपूर्वक कहने चाहिए। ये सभी सयोगी भग आगे नौवे शतक के

बत्तीसवे प्रवेशनक नामक उद्देशक मे जिस प्रकार हम कहेगे, उसी प्रकार उपयोग लगाकर यहाँ भी कहने चाहिए, यावत् अथवा अनन्त द्रव्य परिमण्डल-सस्थानरूप से परिणत होते हैं, यावत् अनन्त द्रव्य आयत-सस्थानरूप से परिणत होते है ।

विवेचन—चार आदि द्रव्यों के मन-वचन-काय की अपेक्षा प्रयोगादि परिणत के संयोग से होने वाले भग—प्रस्तुत सूत्रद्वय मे चार आदि द्रव्यो के प्रयोगादि परिणामो के निमित्त से होने वाले भगो का कथन किया गया है ।

चार द्रव्यों सम्बन्धी प्रयोग-परिणत आदि तीन पदो के भग—चार द्रव्यो के प्रयोगपरिणत, मिश्रपरिणत और विस्रसापरिणत आदि तीन पदो के असयोगी ३ भग, द्विकसयोगी ९ भग और त्रिकसयोगी ३ भग होते है । इस तरह ये सभी मिलकर ३+९+३=१५ भग होते है । पूर्वोक्त पद्धति के अनुसार इनसे आगे के भगो के लिए पूर्वोक्त क्रम से सस्थानपर्यन्त यथायोग्य भगो की योजना कर लेनी चाहिए ।

पचद्रव्यसम्बन्धी और पांच से आगे के भग—पाच द्रव्यो के असयोगी तीन भग, द्विकसयोगी १२ भग और त्रिकसयोगी ६ भग, यो कुल ३+१२+६=२१ भग होते है । इस प्रकार पाच, छह, यावत् अनन्त द्रव्यो के भी यथायोग्य भग बना लेने चाहिए । सूत्र के मूलपाठ मे ११ सयोगी भग नही बतलाया गया है, क्योकि पूर्वोक्त पदो मे ११ सयोगी भग नही बनता ।

नौवे शतक के ३२वे उद्देशक मे गागेय अनगार के प्रवेशनक सम्बन्धी भग बताए गए है, तदनुसार यहाँ भी उपयोग लगाकर भगो की योजना कर लेनी चाहिए ।[1]

परिणामों की दृष्टि से पुद्गलो का अल्पबहुत्व—

९१ एएसि णं भते ! पोग्गलाण पयोगपरिणयाण मीसापरिणयाण वीससापरिणयाण य कतरे कतरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पोग्गला पयोगपरिणया, मीसापरिणया अणंतगुणा, वीससापरिणया अणतगुणा ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति० ।

॥ अट्ठम सए : पढमो उद्देसओ समत्तो ॥

[९१ प्र] भगवन् ! प्रयोग-परिणत, मिश्र-परिणत और विस्रसा-परिणत, इन तीनो प्रकार के पुद्गलो मे कौन-से (पुद्गल), किन (पुद्गलो) से अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

[९१ उ] गौतम ! प्रयोगपरिणत पुद्गल सबसे थोडे है, उनसे मिश्रपरिणत पुद्गल अनन्तगुणे है, और उनसे विस्रसापरिणत पुद्गल अनन्तगुणे हैं ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', ऐसा कह कर यावत् गौतमस्वामी विचरण करने लगे ।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३३९

विवेचन—परिणामो की दृष्टि से पुद्गलो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत अन्तिमसूत्र मे तीनो परिणामो की दृष्टि से पुद्गलो के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है।

सबसे कम और सबसे अधिक पुद्गल—मन-वचन-कायरूप योगो से परिणत पुद्गल सबसे थोडे है, क्योकि जीव और पुद्गल का सम्बन्ध अल्पकालिक है। प्रयोगपरिणत पुद्गलो से मिश्र-परिणतपुद्गल अनन्तगुणे है, क्योकि प्रयोगपरिणामकृत आकार को न छोडते हुए विस्रसापरिणाम द्वारा परिणामान्तर को प्राप्त हुए मृतकलेवरादि अवयवरूप पुद्गल अनन्तानन्त है और विस्रसा-परिणत तो उनसे भी अनन्तगुणे है, क्योकि जीव द्वारा ग्रहण न किये जा सकने योग्य परमाणु आदि पुद्गल अनन्तगुणे है।[1]

॥ अष्टम शतक : प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३४०

ाी ाी उद्दे ओ : 'आ ाीवि े'

द्वितीय उद्देशक : 'आशीविष'

आशीविष : दो मुख्य प्रकार और उनके अधिकारी तथा विष-सामर्थ्य—

१ कतिविहा ण भंते ! आसीविसा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा आसीविसा पन्नत्ता, त जहा—जातिआसीविसा य कम्मआसीविसा य ।

[१ प्र] भगवन् ! आशीविष कितने प्रकार के कहे गए है ?

[१ उ] गौतम ! आशीविष दो प्रकार के कहे गये है । वे इस प्रकार—जाति-आशीविष और कर्म-आशीविष ।

२. जातिआसीविसा ण भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—विच्छुयजातिआसीविसे, मंडुक्कजातिआसीविसे, उरगजातिआसीविसे, मणुस्सजातिआसीविसे ।

[२ प्र] भगवन् ! जाति-आशीविष कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

[२ उ] गौतम ! जाति-आशीविष चार प्रकार के कहे गये है । जैसे कि—(१) वृश्चिक-जाति-आशीविष, (२) मण्डूकजाति-आशीविष, (३) उरगजाति-आशीविष और (४) मनुष्यजाति-आशीविष ।

३. विच्छुयजातिआसीविसस्स ण भंते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?

गोयमा ! पभू णं विच्छुयजातिआसीविसे अद्धभरहप्पमाणमेत्त बोंदि विसेण विसपरिगयं विसट्टमाणिं पकरेत्तए । विसए से विसट्ठयाए, नो चेव णं संपत्तीए करेंसु वा, करेंति वा, करिस्सति वा १ ।

[३ प्र] भगवन् ! वृश्चिकजाति-आशीविष का कितना विषय कहा गया है ? (अर्थात् वृश्चिकजाति-आशीविष का सामर्थ्य कितना है ?)

[३ उ] गौतम ! वृश्चिकजाति-आशीविष, अर्द्धभरतक्षेत्र-प्रमाण शरीर को विषयुक्त-विषैला करने या विष से व्याप्त करने मे समर्थ है । इतना उसके विष का सामर्थ्य है, किन्तु सम्प्राप्ति द्वारा अर्थात् क्रियात्मक प्रयोग द्वारा उसने न ऐसा कभी किया है, न करता है और न कभी करेगा ।

४ मडुक्कजातिआसीविसपुच्छा ।

गोयमा ! पभू णं मंडुक्कजातिआसीविसे भरहप्पमाणमेत्तं बोंदि विसेण विसपरिगय० । सेसं तं चेव, नो चेव जाव करेस्संति वा २ ।

[४ प्र] भगवन् ! मण्डूकजाति-आशीविष का कितना विषय है ?

[४ उ] गौतम ! मण्डूकजाति-आशीविष अपने विष से भरतक्षेत्र-प्रमाण शरीर को विदलित करने एव व्याप्त करने मे समर्थ है। शेष सब पूर्ववत् जानना, यावत् (यह उसका सामर्थ्य मात्र है,) किन्तु सम्प्राप्ति से उसने कभी ऐसा किया नही, करता नही और करेगा भी नही ।

५ एव उरगजातिआसीविसस्स वि, नवर जंबुद्दीवप्पमाणमेत्त बोंदि विसेण विसपरिगय० । सेस तं चेव, नो चेव जाव करेस्सति वा ३ ।

[५] इसी प्रकार उरगजाति-आशीविष के सम्बन्ध मे जानना चाहिए । इतना विशेष है कि वह जम्बूद्वीप-प्रमाण शरीर को विष से युक्त एव व्याप्त करने मे समर्थ है । यह उसका सामर्थ्यमात्र है, किन्तु सम्प्राप्ति से उसने ऐसा कभी किया नही, करता नही और करेगा भी नही ।

६ मणुस्सजातिआसीविसस्स वि एव चेव, नवर समयखेत्तप्पमाणमेत्त बोंदि विसेण विसपरिगयं० । सेस त चेव जाव करेस्सति वा ४ ।

[६] इसी प्रकार मनुष्यजाति-आशीविष के सम्बन्ध मे भी जानना चाहिए । विशेष इतना ही है कि वह समयक्षेत्र (मनुष्यक्षेत्र=ढाई द्वीप) प्रमाण शरीर को विष से विदलित एव व्याप्त कर सकता है, किन्तु यह उसका सामर्थ्यमात्र है, सम्प्राप्ति द्वारा कभी ऐसा किया नही, करता नही और करेगा भी नही ।

७ जदि कम्मआसीविसे किं नेरइयकम्मआसीविसे, तिरिक्खजोणियकम्मआसीविसे, मणुस्स-कम्मआसीविसे, देवकम्मासीविसे ?

गोयमा ! नो नेरइयकम्मासीविसे, तिरिक्खजोणियकम्मासीविसे वि, मणुस्सकम्मासीविसे वि, देवकम्मासीविसे वि ।

[७ प्र] भगवन् ! यदि कर्म-आशीविष है तो क्या वह नैरयिक-कर्म-आशीविष है, या तिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविष है अथवा मनुष्य-कर्म-आशीविष है या देव-कर्म-आशीविष है ?

[७ उ] गौतम ! नैरयिक-कर्म-आशीविष नही, किन्तु तिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविष है, मनुष्य-कर्म-आशीविष है और देव-कर्म-आशीविष है ।

८ जदि तिरिक्खजोणियकम्मासीविसे किं एगिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे ? जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे ?

गोयमा ! नो एगिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे जाव नो चतुरिंदियतिरिक्खजोणिय-ासीविसे, पंचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे ।

[८ प्र] भगवन् ! यदि तिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविष है, तो क्या एकेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविष है अथवा पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविष है ?

[८ उ] गौतम ! एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविष नही, परन्तु पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविष है।

९ जदि पंचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे किं सम्मुच्छिमपचेंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे ? गब्भवक्कतियपंचिदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे ?

एव जहा वेउव्वियसरीरस्स भेदो जाव पज्जत्तासखेज्जवासाउयगब्भवक्कतियपंचिदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे, नो अपज्जत्तासखेज्जवासाउय जाव कम्मासीविसे।

[९ प्र] भगवन् ! यदि पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविष है तो क्या सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविष है या गर्भज पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविप है ?

[९ उ] गौतम ! प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवें शरीरपद मे वैक्रिय शरीर के सम्बन्ध मे जिस प्रकार कहा है, उसी प्रकार कहना चाहिए। यावत् पर्याप्त सख्यातवर्ष की आयुष्य वाला गर्भज कर्मभूमिज पचेन्द्रियतिर्यञ्जयोनिक-कर्म-आशीविष होता है, परन्तु अपर्याप्त असख्यात वर्ष की आयुष्य वाला यावत् कर्म-आशीविष नही होता।

१० जदि मणुस्सकम्मासीविसे किं सम्मुच्छिममणुस्सकम्मासीविसे ? गब्भवक्कतियमणुस्सकम्मासीविसे ?

गोयमा ! णो सम्मुच्छिममणुस्सकम्मासीविसे, गब्भवक्कतियमणुस्सकम्मासीविसे, एव जहा वेउव्वियसरीर जाव पज्जत्तसखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसकम्मासीविसे, नो अपज्जत्ता जाव कम्मासीविसे।

[१० प्र] भगवन् ! यदि मनुष्य-कर्म-आशीविष है, तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्य-कर्माशीविष है, या गर्भज मनुष्य-कर्म-आशीविष है ?

[१० उ] गौतम ! सम्मूर्च्छिम मनुष्य-कर्म-आशीविष नही होता, किन्तु गर्भज मनुष्य-कर्म-आशीविष होता है। प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवे शरीरपद मे वैक्रियशरीर के सम्बन्ध मे जिस प्रकार जीव-भेद कहे गए है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए, यावत् पर्याप्त सख्यात वर्ष के आयुष्य वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य-कर्म-आशीविष होता है, परन्तु अपर्याप्त सख्यात वर्ष की आयु वाले यावत् कर्म-आशीविष नही होता।

११ जदि देवकम्मासीविसे किं भवणवासीदेवकम्मासीविसे जाव वेमाणियदेवकम्मासीविसे ?

गोयमा ! भवणवासिदेवकम्मासीविसे, वाणमतरदेव०, जोतिसिय०, वेमाणियदेवकम्मासीविसे वि।

[११ प्र] भगवन् ! यदि देव-कर्माशीविष होता है, तो क्या भवनवासी देव-कर्माशीविष होता है, अथवा यावत् वैमानिकदेव-कर्म-आशीविष होता है ?

[११] गौतम ! भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक, ये चारो प्रकार के देव-कर्म-आशीविष होते है।

[४ प्र] भगवन् ! मण्डूकजाति-आशीविष का कितना विषय है ?

[४ उ.] गौतम ! मण्डूकजाति-आशीविष अपने विष से भरतक्षेत्र-प्रमाण शरीर को विदलित करने एव व्याप्त करने मे समर्थ है। शेष सब पूर्ववत् जानना, यावत् (यह उसका सामर्थ्य मात्र है,) किन्तु सम्प्राप्ति से उसने कभी ऐसा किया नही, करता नही और करेगा भी नही।

५ एवं उरगजातिआसीविसस्स वि, नवरं जबुद्दीवप्पमाणमेत्त बोंदि विसेण विसपरिगय०। सेस तं चेव, नो चेव जाव करेस्संति वा ३।

[५] इसी प्रकार उरगजाति-आशीविष के सम्बन्ध मे जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वह जम्बूद्वीप-प्रमाण शरीर को विष से युक्त एव व्याप्त करने मे समर्थ है। यह उसका सामर्थ्यमात्र है, किन्तु सम्प्राप्ति से उसने ऐसा कभी किया नही, करता नही और करेगा भी नही।

६ मणुस्सजातिआसीविसस्स वि एव चेव, नवरं समयखेत्तप्पमाणमेत्तं बोंदि विसेण विसपरिगय०। सेस त चेव जाव करेस्सति वा ४।

[६] इसी प्रकार मनुष्यजाति-आशीविष के सम्बन्ध मे भी जानना चाहिए। विशेष इतना ही है कि वह समयक्षेत्र (मनुष्यक्षेत्र=ढाई द्वीप) प्रमाण शरीर को विष से विदलित एव व्याप्त कर सकता है, किन्तु यह उसका सामर्थ्यमात्र है, सम्प्राप्ति द्वारा कभी ऐसा किया नही, करता नही और करेगा भी नही।

७ जदि कम्मआसीविसे किं नेरइयकम्मआसीविसे, तिरिक्खजोणियकम्मआसीविसे, मणुस्स-कम्मआसीविसे, देवकम्मासीविसे ?

गोयमा ! नो नेरइयकम्मासीविसे, तिरिक्खजोणियकम्मासीविसे वि, मणुस्सकम्मासीविसे वि, देवकम्मासीविसे वि।

[७ प्र] भगवन् ! यदि कर्म-आशीविष है तो क्या वह नैरयिक-कर्म-आशीविष है, या तिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविष है अथवा मनुष्य-कर्म-आशीविष है या देव-कर्म-आशीविष है ?

[७ उ] गौतम ! नैरयिक-कर्म-आशीविष नही, किन्तु तिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविष है, मनुष्य-कर्म-आशीविष है और देव-कर्म-आशीविष है।

८ जदि तिरिक्खजोणियकम्मासीविसे किं एगिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे ? जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे ?

गोयमा ! नो एगिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे जाव नो चतुरिंदियतिरिक्खजोणिय-कम्मासीविसे, पंचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे।

[८ प्र] भगवन् ! यदि तिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविष है, तो क्या एकेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविष है अथवा पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविष है ?

[१६ उ] गौतम ! कल्पोपपन्नक वैमानिकदेव कर्म-आशीविष होता है, किन्तु कल्पातीत वैमानिक देव कर्म-आशीविष नही होता ।

१७ जति कप्पोवगवेमाणियदेवकम्मासीविसे किं सोधम्मकप्पोव० जाव कम्मासीविसे जाव अच्चुयकप्पोवग जाव कम्मासीविसे ?

गोयमा ! सोधम्मकप्पोवगवेमाणियदेवकम्मासीविसे वि जाव सहस्सारकप्पोवगवेमाणियदेव-कम्मासीविसे वि, नो आणयकप्पोवग जाव नो अच्चुतकप्पोवगवेमाणियदेव० ।

[१७ प्र] भगवन् ! यदि कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष होता है तो क्या सौधर्म-कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष होता है, अथवा यावत् अच्युत कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष होता है ?

[१७ उ] गौतम ! सौधर्म-कल्पोपपन्नक वैमानिकदेव यावत् सहस्रार कल्पोपपन्नक वैमानिक देव-पर्यन्त कर्म-आशीविष होते है, परन्तु आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष नही होता ।

१८. जदि सोहम्मकप्पोवग जाव कम्मासीविसे किं पज्जत्तसोधम्मकप्पोवगवेमाणिय० अपज्जत्तगसोहम्मग० ?

गोयमा ! नो पज्जत्तसोहम्मकप्पोवगवेमाणिय०, अपज्जत्तसोधम्मकप्पोवगवेमाणियदेवकम्मा-सीविसे ।

[१८ प्र] भगवन् ! यदि सौधर्मकल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष है तो क्या पर्याप्त सौधर्मकल्पोपपन्न वैमानिकदेव कर्म-आशीविष है अथवा अपर्याप्त सौधर्मकल्पोपपन्न वैमानिकदेव कर्म-आशीविष है ?

[१८ उ] गौतम ! पर्याप्त सौधर्मकल्पोपपन्न वैमानिक देव कर्म-आशीविष नही, परन्तु अपर्याप्त सौधर्मकल्पोपपन्न वैमानिकदेव कर्म-आशीविष है ।

१९ एवं जाव नो पज्जत्तसहस्सारकप्पोवगवेमाणिय जाव कम्मासीविसे, अपज्जत्तसहस्सार-कप्पोवग जाव कम्मासीविसे ।

[१९] इसी प्रकार यावत् पर्याप्त सहस्रार-कल्पोपपन्न वैमानिक देव कर्म-आशीविष नही, किन्तु अपर्याप्त सहस्रार-कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष है ।

विवेचन—आशीविष, दो मुख्य प्रकार और उनके अधिकारी—प्रस्तुत १९ सूत्रो (सू १ से १९ तक) मे आशीविष, उसके मुख्य दो प्रकार, जाति-आशीविष और कर्म-आशीविष के अधिकारी जीवो का निरूपण किया गया है ।

आशीविष और उससे प्रकारो का स्वरूप—आशी का अर्थ है—दाढ (दष्ट्रा) । जिन जीवो की दाढ मे विष होता है, वे 'आशीविष' कहलाते है । आशीविष प्राणी दो प्रकार के होते हैं—जाति-आशीविष और कर्म-आशीविष । साप, बिच्छू, मेढक आदि जो प्राणी जन्म से ही आशीविष होते है,

१२ जइ भवणवासिदेवकम्मासीविसे किं असुरकुमारभवणवासिदेवकम्मासीविसे जाव थणियकुमार जाव कम्मासीविसे ?

गोयमा ! असुरकुमारभवणवासिदेवकम्मासीविसे वि जाव थणियकुमार जाव कम्मासीविसे वि ।

[१२ प्र] भगवन् ! यदि भवनवासी देव-कर्म-आशीविष होता है तो क्या असुरकुमार भवनवासी देव-कर्म-आशीविष होता है, अथवा यावत् स्तनितकुमार भवनवासी देव-कर्म-आशीविष होता है ?

[१२ उ] गौतम ! असुरकुमार भवनवासी देव-कर्म-आशीविष होता है, यावत् स्तनितकुमार भवनवासी देव भी कर्म-आशीविष होता है ।

१३. जइ असुरकुमार जाव कम्मासीविसे किं पज्जत्तअसुरकुमारभवणवासिदेवकम्मासीविसे ? अपज्जत्तअसुरकुमारभ ासिदेवकम्मासीविसे ?

गोयमा ! नो पज्जत्तअसुरकुमार जाव कम्मासीविसे, अपज्जत्तअसुरकुमारभवणवासिदेवकम्मासीविसे । एव जाव थणियकुमाराणं ।

[१३ प्र] भगवन् ! यदि असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार भवनवासी देव-कर्म-आशीविष है तो क्या पर्याप्त असुरकुमारादि भवनवासी देव-कर्म-आशीविष है या अपर्याप्त असुरकुमारादि भवनवासी देव-कर्म-आशीविष है ?

[१३ उ] गौतम ! पर्याप्त असुरकुमार भवनवासी देव-कर्म-आशीविष नही, परन्तु अपर्याप्त असुरकुमार भवनवासी देव-कर्म-आशीविष है । इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारो तक जानना चाहिए ।

१४. जदि वाणमतरदेवकम्मासीविसे किं पिसायवाणमंतर० ?

एव सव्वेसिं पि अपज्जत्तगाण ।

[१४ प्र] भगवन् ! यदि वाणव्यन्तरदेव-कर्म-आशीविष है, तो क्या पिशाच वाणव्यन्तरदेव-कर्माशीविष है, अथवा यावत् गन्धर्व वाणव्यन्तरदेव-कर्माशीविष है ?

[१४ उ] गौतम ! वे पिशाचादि सर्व वाणव्यन्तरदेव अपर्याप्तवस्था मे कर्माशीविष हैं ।

१५. जोतिसियाण सव्वेसिं अपज्जत्तगाणं ।

[१५] इसी प्रकार सभी ज्योतिष्कदेव भी अपर्याप्तावस्था मे कर्माशीविष होते है ।

१६. जदि वेमाणियदेवकम्मासीविसे किं कप्पोवगवेमाणियदेव ासीविसे ? कप्पातीतवेमाणियदेवकम्मासीविसे ?

गोयमा ! कप्पोवगवेमाणियदेवकम्मासीविसे, नो कप्पातीतवेमाणियदेवकम्मासीविसे ।

[१६ प्र] भगवन् ! यदि वैमानिकदेव कर्माशीविष हैं तो क्या कल्पोपपन्नक वैमानिक देव-कर्माशीविष है, अथवा कल्पातीत वैमानिक देव-कर्म-आशीविष है ?

[१६ उ] गौतम ! कल्पोपपन्नक वैमानिकदेव कर्म-आशीविष होता है, किन्तु कल्पातीत वैमानिक देव कर्म-आशीविष नही होता ।

१७ जति कप्पोवगवेमाणियदेवकम्मासीविसे किं सोधम्मकप्पोव० जाव कम्मासीविसे जाव अच्चुयकप्पोवग जाव कम्मासीविसे ?

गोयमा ! सोधम्मकप्पोवगवेमाणियदेवकम्मासीविसे वि जाव सहस्सारकप्पोवगवेमाणियदेव-कम्मासीविसे वि, नो आणयकप्पोवग जाव नो अच्चुतकप्पोवगवेमाणियदेव० ।

[१७ प्र] भगवन् ! यदि कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविप होता है तो क्या सौधर्म-कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष होता है, अथवा यावत् अच्युत कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष होता है ?

[१७ उ] गौतम ! सौधर्म-कल्पोपपन्नक वैमानिकदेव यावत् सहस्रार कल्पोपपन्नक वैमानिक देव-पर्यन्त कर्म-आशीविष होते हैं, परन्तु आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष नही होता ।

१८. जदि सोहम्मकप्पोवग जाव कम्मासीविसे किं पज्जत्तसोधम्मकप्पोवगवेमाणिय० अपज्जत्तगसोहम्मग० ?

गोयमा ! नो पज्जत्तसोहम्मकप्पोवगवेमाणिय०, अपज्जत्तसोधम्मकप्पोवगवेमाणियदेवकम्मा-सीविसे ।

[१८ प्र] भगवन् ! यदि सौधर्मकल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष है तो क्या पर्याप्त सौधर्मकल्पोपपन्न वैमानिकदेव कर्म-आशीविष है अथवा अपर्याप्त सौधर्मकल्पोपपन्न वैमानिकदेव कर्म-आशीविष है ?

[१८ उ] गौतम ! पर्याप्त सौधर्मकल्पोपपन्न वैमानिक देव कर्म-आशीविष नही, परन्तु अपर्याप्त सौधर्मकल्पोपपन्न वैमानिकदेव कर्म-आशीविष है ।

१९ एवं जाव नो पज्जत्तसहस्सारकप्पोवगवेमाणिय जाव कम्मासीविसे, अपज्जत्तसहस्सार-कप्पोवग जाव कम्मासीविसे ।

[१९] इसी प्रकार यावत् पर्याप्त सहस्रार-कल्पोपपन्न वैमानिक देव कर्म-आशीविष नही, किन्तु अपर्याप्त सहस्रार-कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष है ।

विवेचन—आशीविष, दो मुख्य प्रकार और उनके अधिकारी—प्रस्तुत १९ सूत्रो (सू १ से १९ तक) मे आशीविष, उसके मुख्य दो प्रकार, जाति-आशीविष और कर्म-आशीविष के अधिकारी जीवो का निरूपण किया गया है ।

आशीविष और उससे प्रकारो का स्वरूप—आशी का अर्थ है—दाढ (दंष्ट्रा) । जिन जीवो की दाढ मे विष होता है, वे 'आशीविष' कहलाते हैं । आशीविष प्राणी दो प्रकार के होते है—जाति-आशीविष और कर्म-आशीविष । साप, बिच्छू, मेढक आदि जो प्राणी जन्म से ही आशीविष होते हैं,

वे जाति-आशीविष कहलाते हैं और जो कर्म यानी शाप आदि क्रिया द्वारा प्राणियो का विनाश करते हैं, वे कर्म-आशीविष कहलाते है। पर्याप्तक तिर्यञ्च-पञ्चेन्द्रिय और मनुष्य को तपश्चर्या आदि से अथवा अन्य किसी गुण के कारण आशीविष-लब्धि प्राप्त हो जाती है। ये जीव आशीविष-लब्धि के स्वभाव से शाप दे कर दूसरे का नाश करने की शक्ति पा लेते है। आशीविषलब्धि वाले जीव से आठवें देवलोक से आगे उत्पन्न नही हो सकते। जिन्होने पूर्वभव मे आशीविपलब्धि का अनुभव किया था, अत पूर्वानुभूतभाव के कारण वे कर्म-आशीविष होते हैं। अपर्याप्त अवस्था मे ही वे आशीविषयुक्त होते हैं।

जाति-आशीविषयुक्त प्राणियो का विषसामर्थ्य—जाति-आशीविष-वाले प्राणियो के विष का जो सामर्थ्य बताया है, वह विषयमात्र है। उसका आशय यह है—जैसे किसी मनुष्य ने अपना शरीर अर्द्धभरतप्रमाण बनाया हो, उसके पैर मे यदि बिच्छू डक मारे तो उसके मस्तक तक उसका विष चढ जाता है।[1] इसी प्रकार भरतप्रमाण, जम्बूद्वीपप्रमाण और ढाईद्वीपप्रमाण का अर्थ समझना चाहिए।

छद्मस्थ द्वारा सर्वभावेन ज्ञान के अविषय और केवली द्वारा सर्वभावेन ज्ञान के विषयभूत दस स्थान—

२०. दस ठाणाइ छउमत्थे सव्वभावेण न जाणति न पासति, त जहा—धम्मत्थिकायं १ अधम्मत्थिकाय २ आगासत्थिकाय ३ जीव असरीरपडिबद्ध ४ परमाणुपोग्गलं ५ सद्दं ६ गध ७ वात ८ अय जिणे भविस्सति वा ण वा भविस्सइ ९ अयं सव्वदुक्खाण अंत करेस्सति वा न वा करेस्सइ १०।

[२०] छद्मस्थ पुरुष इन दस स्थानो (बातो) को सर्वभाव से नही जानता और नहीं देखता। वे इस प्रकार हैं—(१) धर्मास्तिकाय, (२) अधर्मास्तिकाय, (३) आकाशास्तिकाय, (४) शरीर से रहित (मुक्त) जीव, (५) परमाणुपुद्गल, (६) शब्द, (७) गन्ध, (८) वायु, (९) यह जीव जिन होगा या नही ? तथा (१०) यह जीव सभी दु खो का अन्त करेगा या नही ?

२१ एयाणि चेव उप्पन्ननाण-दसणधरे अरहा जिणे केवली सव्वभावेणं जाणति पासति, तं जहा—धम्मत्थिकाय १ जाव करेस्सति वा न वा करेस्सति १०।

[२१] इन्ही दस स्थानो (बातो) को उत्पन्न (केवल) ज्ञान-दर्शन के धारक अरिहन्त-जिन-केवली ही सर्वभाव से जानते और देखते है। यथा—धर्मास्तिकाय यावत्—'यह जीव समस्त दु खो का अन्त करेगा या नही ?'

विवेचन—सर्वभाव (पूर्णरूप) से छद्मस्थ के ज्ञान के अविषय और केवली के ज्ञान के विषयरूप दस स्थान—प्रस्तुत दो सूत्रो मे से प्रथम सूत्र (सू २०) मे उन दस स्थानो (पदार्थो) के नाम गिनाए गये है, जिन्हे छद्मस्थ सर्वभावेन जान और देख नही सकता, द्वितीय सूत्र मे उन्ही दस का उल्लेख किया गया है, जिन्हे केवलज्ञानी सर्वभावेन जान और देख सकते है।

छद्मस्थ का प्रसगवश विशेष अर्थ—यो तो छद्मस्थ का सामान्य अर्थ है—केवलज्ञानरहित,

१ भगवती अ वृत्ति, पत्राक ३४१-३४२

किन्तु यहाँ छद्मस्थ का विशेष अर्थ है—अवधिज्ञान आदि विशिष्ट ज्ञानरहित, क्योंकि विशिष्ट अवधिज्ञान धर्मास्तिकाय आदि को अमूर्त्त होने से नही जानता-देखता, किन्तु परमाणु आदि जो मूर्त्त हैं, उन्हे वह जान-देख सकता है, क्योकि विशिष्ट अवधिज्ञान का विषय सर्व मूर्त्तद्रव्य है।

यदि यह शका की जाए कि ऐसा छद्मस्थ भी परमाणु आदि को कथचित् जानता है, सर्वभाव से (समस्त पर्यायो से) नही जानता-देखता, जबकि मूलपाठ मे कहा गया है—सर्वभाव से नही जानता-देखता। इसका समाधान यह है कि यदि छद्मस्थ का ऐसा अर्थ किया जाएगा, तव तो छद्मस्थ के लिए सर्वभावेन अज्ञेय दस सख्या का नियम नही रहेगा, क्योकि ऐसा छद्मस्थ घटादि पदार्थो को भी अनन्त पर्यायरूप से जानने मे असमर्थ है। अत 'सव्वभावेण' (सर्वभाव से) का अर्थ साक्षात् (प्रत्यक्ष) करने से इस सूत्र का अर्थ सगत होगा कि अवधि आदि विशिष्टज्ञान-रहित छद्मस्थ, धर्मास्तिकाय आदि दस वस्तुओ को प्रत्यक्षरूप से नही जानता-देखता। उत्पन्नज्ञान-दर्शनधारक, अरिहन्त जिन-केवली, केवलज्ञान से इन दस को सर्वभावेन अर्थात्—साक्षात्‌रूप से जानते-देखते हैं।[1]

ज्ञान और अज्ञान के स्वरूप तथा भेद-प्रभेद का निरूपण—

२२ कतिविहे णं भते ! नाणे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पचविहे नाणे पण्णत्ते, त जहा—आभिणिबोहियनाणे सुयनाणे ओहिनाणे मणपज्जवनाणे केवलनाणे।

[२२ प्र] भगवन् ! ज्ञान कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२२ उ] गौतम ! ज्ञान पाच प्रकार का कहा गया है। यथा—(१) आभिनिबोधिकज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मन पर्यवज्ञान और (५) केवलज्ञान।

२३ [१] से किं त आभिणिबोहियनाणे ?

आभिणिबोहियनाणे चतुव्विहे पण्णत्ते, त जहा—उग्गहो ईहा अवाओ धारणा।

[२३-१ प्र] भगवन् ! आभिनिबोधिकज्ञान कितने प्रकार का (किस रूप का) कहा गया है ?

[२३-१ उ] गौतम ! आभिनिबोधिकज्ञान चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—(१) अवग्रह, (२) ईहा, (३) अवाय (अपाय) और (४) धारणा।

[२] एव जहा रायप्पसेणइए णाणाण भेदो तहेव इह वि भाणियव्वो जाव से त्त केवलनाणे।

[२३-२] जिस प्रकार राजप्रश्नीय सूत्र मे ज्ञानो के भेद कहे है, उसी प्रकार यहाँ भी कहने चाहिए, यावत् 'यह है वह केवलज्ञान', यहाँ तक कहना चाहिए।

२४ अण्णाणे ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, त जहा—मइअन्नाणे सुयअन्नाणे विभगनाणे।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३४२

[२४ प्र] भगवन् ! अज्ञान कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२४ उ] गौतम ! अज्ञान तीन प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है—(१) मति-अज्ञान, (२) श्रुत-अज्ञान और (३) विभगज्ञान।

२५ से किं त मइअण्णाणे ?

मइअण्णाणे चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—उग्गहो जाव धारणा।

[२५ प्र] भगवन् ! मति-अज्ञान कितने प्रकार का है ?

[२५ उ] गौतम ! मति-अज्ञान चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है—(१) अवग्रह, (२) ईहा, (३) अवाय और (४) धारणा।

२६. [१] से किं त उग्गहे ?

उग्गहे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—अत्थोग्गहे य वजणोग्गहे य।

[२६-१ प्र] भगवन् ! वह अवग्रह कितने प्रकार का है ?

[२६-१ उ] गौतम ! अवग्रह दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है—अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह।

[२] एव जहेव आभिणिबोहियनाण तहेव, नवर एगट्ठियवज्ज जाव नोइदियधारणा, से त्त धारणा। से त्त मतिअण्णाणे।

[२६-२] जिस प्रकार (नन्दीसूत्र मे) आभिनिबोधिकज्ञान के विषय मे कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी जान लेना चाहिए। विशेष इतना ही है कि वहाँ आभिनिबोधिकज्ञान के प्रकरण मे अवग्रह आदि के एकार्थिक (समानार्थक) शब्द कहे हैं, उन्हे छोडकर यावत्—'नोइन्द्रिय-धारणा है', यह हुआ धारणा का स्वरूप यहाँ तक कहना चाहिए। यह हुआ मति-अज्ञान का स्वरूप।

२७ से किं त सुयअण्णाणे ?

सुतअण्णाणे ज इमं अण्णाणिएहिं मिच्छद्दिट्ठिएहिं जहा नदीए जाव चत्तारि वेदा सगोवगा। से त्त सुयअन्नाणे।

[२७ प्र.] भगवन् ! श्रुत-अज्ञान किस प्रकार का कहा गया है ?

[२७ उ] गौतम ! जिस प्रकार नन्दीसूत्र मे कहा गया है—'जो अज्ञानी मिथ्यादृष्टियो द्वारा प्ररूपित है', इत्यादि यावत्—सागोपाग चार वेद तक श्रुत-अज्ञान है। इस प्रकार श्रुत-अज्ञान का वर्णन पूर्ण हुआ।

२८. से किं त विभंगनाणे ?

विभगनाणे अणेगविहे पण्णत्ते, त जहा—गामसठिए नगरसठिए जाव सन्निवेससठिए दीवसठिए

समुद्दसठिए वाससंठिए वासहरसठिए पव्वयसठिए रुक्खसठिए थूभसठिए हयसठिए गयसठिए नरसठिए किन्नरसठिए किंपुरिससठिए महोरगसठिते गधव्वसठिए उसभसठिए पसु-पसय-विहग-वानरणाणा-सठाणसठिते पण्णत्ते ।

[२८ प्र] भगवन् ! वह विभगज्ञान किस प्रकार का कहा गया है ?

[२८ उ] गौतम ! विभगज्ञान अनेक प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है— ग्रामसस्थित (ग्राम के आकार का), नगरसस्थित (नगराकार) यावत् सन्निवेशसस्थित, द्वीपसस्थित, समुद्रसस्थित, वर्ष-सस्थित (भरतादि क्षेत्र के आकार), वर्षधरसस्थित (क्षेत्र की सीमा करने वाले पर्वतो के आकार का), सामान्य पर्वत-सस्थित, वृक्षसस्थित, स्तूपसस्थित, हयसस्थित (अश्वाकार), गजसस्थित, नरसस्थित, किन्नरसस्थित, किम्पुरुषसस्थित, महोरगसस्थित, गन्धर्वसस्थित, वृषभसस्थित (बैल के आकार का), पशु, पशय (अर्थात्—दो खुरवाले जगली चौपाये जानवर), विहग (पक्षी), और वानर के आकार वाला है। इस प्रकार विभगज्ञान नाना सस्थानसस्थित (आकारो से युक्त) कहा गया है।

विवेचन—ज्ञान और अज्ञान के स्वरूप तथा भेद-प्रभेद का निरूपण—प्रस्तुत सात सूत्रो (सू २२ से २८ तक) मे ज्ञान और अज्ञान के स्वरूप तथा नन्दीसूत्र और राजप्रश्नीयसूत्र के अतिदेश-पूर्वक दोनो के भेद-प्रभेदो का निरूपण किया गया है।

पांच ज्ञानो का स्वरूप—(१) **आभिनिबोधिक**—इन्द्रिय और मन की सहायता से योग्य देश मे रहे हुए पदार्थ का अर्थाभिमुख (यथार्थ) निश्चित (सशयादि रहित) बोध (ज्ञान) आभिनिबोधिक है। इसका दूसरा नाम मतिज्ञान भी है। (२) **श्रुतज्ञान**—श्रुत अर्थात् श्रवण किये जाने वाले शब्द के द्वारा (वाच्यवाचक सम्बन्ध से) तत्सम्बद्ध अर्थ को इन्द्रिय और मन के निमित्त से ग्रहण कराने वाला भावश्रुतकारणरूप बोध श्रुतज्ञान कहलाता है। अथवा इन्द्रिय और मन की सहायता से श्रुत-ग्रन्थानुसारी एव मतिज्ञान के अनन्तर शब्द और अर्थ के पर्यालोचनपूर्वक होने वाला बोध श्रुतज्ञान है। (३) **अवधिज्ञान**—इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना मूर्तद्रव्यो को ही जानने वाला प्रत्यक्ष ज्ञान अथवा नीचे-नीचे विस्तृत वस्तु का अवधान—परिच्छेद जिससे हो उसे अवधिज्ञान कहते है। (४) **मन पर्यवज्ञान**—मनन किये जाते हुए मनोद्रव्यो के पर्याय-आकार विशेष को—सज्ञीजीवो के मनोगत भावो को इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना प्रत्यक्ष जानना। (५) **केवलज्ञान**—केवल=एक, मति आदि ज्ञानो से निरपेक्ष त्रिकाल-त्रिलोकवर्ती सर्वद्रव्य-पर्यायो का युगपत्, शुद्ध, सकल, असाधारण एव अनन्त हस्तामलकवत् प्रत्यक्षज्ञान।

आभिनिबोधिकज्ञान के चार प्रकारो का स्वरूप (१)**अवग्रह**—इन्द्रिय और पदार्थ के योग्य देश मे रहने पर दर्शन के बाद (विशेषरहित) सामान्य रूप से सर्वप्रथम होने वाला पदार्थ का ग्रहण (बोध)(२)। **ईहा**—अवग्रह से जाने गए पदार्थ के विषय मे सशय को दूर करते हुए उसके विशेष धर्म की विचारणा करना। (३) **अवाय**—ईहा से ज्ञात हुए पदार्थो मे यही है, अन्य नही, इस प्रकार से अर्थ का निश्चय करना। (४) **धारणा**—अवाय से निश्चित अर्थ को स्मृति आदि के रूप मे धारण कर लेना, ताकि उसकी विस्मृति न हो।

अर्थावग्रह-व्यंजनावग्रह का स्वरूप—अर्थावग्रह पदार्थ के अव्यक्त ज्ञान को कहते है। इसमे पदार्थ के वर्ण, गन्ध आदि का अस्पष्ट ज्ञान होता है। इसकी स्थिति एक समय की है। अर्थावग्रह से पहले उपकरणेन्द्रिय द्वारा इन्द्रियसम्बद्ध शब्दादि विषयो का अत्यन्त अव्यक्त ज्ञान व्यञ्जनावग्रह है। इसकी जघन्य स्थिति आवलिका के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट दो से नौ श्वासोच्छ्वास की है। व्यञ्जनावग्रह 'दर्शन' के बाद चक्षु और मन को छोडकर शेष चार इन्द्रियो से होता है। तत्पश्चात् इन्द्रियो का पदार्थ के साथ सम्बन्ध होने पर 'यह कुछ है', ऐसा अस्पष्ट ज्ञान होता है, वही अर्थावग्रह है।

अवग्रह आदि की स्थिति और एकार्थक नाम—अवग्रह की एक समय की, ईहा की अन्तर्मुहूर्त्त की, अवाय की अन्तर्मुहूर्त्त की और धारणा की स्थिति सख्यातवर्षीय आयु वालो की अपेक्षा सख्यात काल की और असख्यातवर्षीय आयुवालो की अपेक्षा असख्यातकाल की है। अवग्रह आदि चारो के प्रत्येक के पाच-पाच एकार्थक नाम नन्दीसूत्र मे दिये गए है। चारो के कुल मिलाकर बीस भेद है।

श्रुतादि ज्ञानो के भेद—नन्दीसूत्र के अनुसार श्रुतज्ञान के अक्षरश्रुत, अनक्षरश्रुत आदि १४ भेद हैं, अवधिज्ञान के भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय, ये दो भेद है, मन पर्यवज्ञान के ऋजुमति और विपुलमति, ये दो भेद है। केवलज्ञान एक ही है, उसका कोई भेद नही है।

मति-अज्ञान आदि का स्वरूप और भेद—मिथ्यादृष्टि के मतिज्ञान को मति-अज्ञान कहते है, अर्थात्—सामान्य मति सम्यग्दृष्टि के लिए मतिज्ञान है और मिथ्यादृष्टि के लिए मति-अज्ञान है। इसी तरह अविशेषित श्रुत, सम्यग्दृष्टि के लिए श्रुतज्ञान है और मिथ्यादृष्टि के लिए श्रुत-अज्ञान है। मिथ्या अवधिज्ञान को विभगज्ञान कहते है। ज्ञान मे अवग्रह आदि के जो एकार्थक नाम कहे गए हैं, उन्हे यहाँ अज्ञान के प्रकरण मे नही कहना चाहिए। विभगज्ञान का शब्दश अर्थ इस प्रकार भी होता है—जिसमे विरुद्ध भग—वस्तुविकल्प उठते हो, अथवा अवधिज्ञान से विरूप-विपरीत-मिथ्या-भग (विकल्प) वाला ज्ञान।

ग्रामसस्थित आदि का स्वरूप—ग्राम का अवलम्बन होने से वह विभगज्ञान ग्रामाकार (ग्रामसस्थित) कहलाता है, इसी प्रकार अन्यत्र भी ऊहापोह कर लेना चाहिए।[1]

औधिक, चौवीस दण्डकवर्ती तथा सिद्ध जीवो मे ज्ञान-अज्ञान-प्ररूपणा—

२६. जीवा ण भते ! किं नाणी, अन्नाणी ?

गोयमा ! जीवा नाणी वि, अन्नाणी वि। जे नाणी ते अत्थेगतिया दुन्नाणी, अत्थेगतिया तिन्नाणी, अत्थेगतिया चउनाणी, अत्थेगतिया एगनाणी। जे दुन्नाणी ते आभिणिबोहियनाणी य सुयनाणी य। जे तिन्नाणी ते आभिणिबोहियनाणी सुतनाणी ओहिनाणी, अहवा आभिणिबोहियणाणी सुतणाणी मणपज्जवनाणी। जे चउणाणी ते आभिणिबोहियणाणी सुतणाणी ओहिणाणी मणपज्ज-वणाणी। जे एगनाणी ते नियमा केवलनाणी। जे अण्णाणी ते अत्थेगतिया दुअण्णाणी, अत्थेगतिया

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३४४-३४५

(ख) भगवती (हिन्दी विवेचन युक्त) भाग ३, पृष्ठ १३०२ से १३०४ तक

तिअण्णाणी। जे दुअण्णाणी ते मइअण्णाणी य सुयअण्णाणी य। जे तिअण्णाणी ते मतिअण्णाणी सुयअण्णाणी विभंगनाणी।

[२९ प्र] भगवन्! जीव ज्ञानी है या अज्ञानी है ?

[२९ उ] गौतम! जीव ज्ञानी भी है और अज्ञानी भी है। जो जीव ज्ञानी है, उनमे से कुछ जीव दो ज्ञान वाले है, कुछ जीव तीन ज्ञान वाले है, कुछ जीव चार ज्ञान वाले है और कुछ जीव एक ज्ञान वाले है। जो दो ज्ञान वाले है, वे मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी होते हैं। जो तीन ज्ञान वाले है, वे आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी हैं, अथवा आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और मन पर्यवज्ञानी होते है। जो चार ज्ञान वाले है, वे आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मन पर्यवज्ञानी हैं। जो एक ज्ञान वाले है, वे नियमत केवलज्ञानी है। जो जीव अज्ञानी है, उनमे से कुछ जीव दो अज्ञान वाले हैं, कुछ तीन अज्ञान वाले होते है। जो जीव दो अज्ञान वाले है, वे मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी हैं, जो जीव तीन अज्ञान वाले है, वे मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी और विभंगज्ञानी हैं।

३० नेरइया ण भते! किं नाणी, अण्णाणी ?

गोयमा! नाणी वि अण्णाणी वि। जे नाणी ते नियमा तिन्नाणी, त जहा—आभिणिबोहि० सुयनाणी ओहिनाणी। जे अण्णाणी ते अत्थेगतिया दुअण्णाणी, अत्थेगतिया तिअण्णाणी। एवं तिण्णि अण्णाणाणि भयणाए।

[३० प्र] भगवन्! नैरयिक जीव ज्ञानी है या अज्ञानी है ?

[३० उ] गौतम! नैरयिक जीव ज्ञानी भी है और अज्ञानी भी है। उनमे जो ज्ञानी है, वे नियमत तीन ज्ञान वाले है, यथा—आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी। जो अज्ञानी है, उनमे से कुछ दो अज्ञानवाले है, और कुछ तीन अज्ञान वाले है। इस प्रकार तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से होते है।

३१ [१] असुरकुमारा ण भते किं नाणी अण्णाणी ?

जहेव नेरइया तहेव तिण्णि नाणाणि नियमा तिण्णि य अण्णाणाणि भयणाए।

[३१-१ प्र] भगवन्! असुरकुमार ज्ञानी है या अज्ञानी है ?

[३१-१ उ] गौतम! जैसे नैरयिको का कथन किया गया है, उसी प्रकार असुरकुमारो का भी कथन करना चाहिए। अर्थात्—जो ज्ञानी है, वे नियमत तीन ज्ञान वाले है और जो अज्ञानी है, वे भजना (विकल्प) से तीन अज्ञान वाले है।

[२] एव जाव थणियकुमारा।

[३१-२] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार तक कहना चाहिए।

३२ [१] पुढविक्काइया ण भते! किं नाणी अण्णाणी ?

गोयमा! नो नाणी, अण्णाणी—मतिअण्णाणी य, सुतअण्णाणी य।

[३२-१ प्र] भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव ज्ञानी है या अज्ञानी ?

[३२-१ उ] गौतम! वे ज्ञानी नही है, अज्ञानी हैं। वे नियमत दो अज्ञान वाले हैं, यथा—मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी।

[२] एवं जाव वणस्सइकाइया ।

[३२-२] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक पर्यन्त कहना चाहिए ।

३३ [१] बेइंदियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! णाणी वि, अण्णाणी वि । जे नाणी ते नियमा दुण्णाणी, त जहा— आभिणिबोहियनाणी य सुयणाणी य । जे अण्णाणी ते नियमा दुअण्णाणी—आभिणिबोहियअण्णाणी य सुयअण्णाणी य ।

[३३-१ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीव ज्ञानी है या अज्ञानी ?

[३३-१ उ] गौतम ! द्वीन्द्रिय जीव ज्ञानी भी है और अज्ञानी भी है । जो ज्ञानी हैं, वे नियमत दो ज्ञान वाले है, यथा—मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी । जो अज्ञानी है, नियमत दो अज्ञान वाले है, यथा—मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी ।

[२] एवं तेइंदिय-चउरिंदिया वि ।

[३३-२] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवो के विषय मे भी कहना चाहिए ।

३४ पंचिंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।

गोयमा ! नाणी वि अण्णाणी वि । जे नाणी ते अत्थेगतिया दुण्णाणी, अत्थेगतिया तिन्नाणी । एव तिण्णि नाणाणि तिण्णि अण्णाणाणि य भयणाए ।

[३४ प्र] भगवन् ! पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव ज्ञानी है या अज्ञानी है ?

[३४ उ] गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी है । जो ज्ञानी है, उनमे से कितने ही दो ज्ञान वाले हैं और कई तीन ज्ञान वाले है । इस प्रकार (पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवो के) तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं ।

३५. मणुस्सा जहा जीवा तहेव पच नाणाणि तिण्णि अण्णाणाणि य भयणाए ।

[३५] जिस प्रकार औघिक जीवो के विषय मे कहा गया है, उसी प्रकार मनुष्यो मे पाच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते है ।

३६ वाणमतरा जहा नेरइया ।

[३६] वाणव्यन्तर देवो का कथन नैरयिको के समान जानना चाहिए ।

३७ जोतिसिय-वेमाणियाणं तिण्णि नाणा तिण्णि अन्नाणा नियमा ।

[३७] ज्योतिष्क और वैमानिक देवो मे तीन ज्ञान अथवा तीन अज्ञान नियमत होते है ।

३८ सिद्धा ण भंते ! पुच्छा ।

गोयमा ! णाणी, नो अण्णाणी । नियमा एगनाणी—केवलनाणी ।

[३८ प्र.] भगवन् ! सिद्ध भगवान् ज्ञानी है या अज्ञानी है ?

[३८ उ.] गौतम ! सिद्ध भगवान् ज्ञानी है, अज्ञानी नहीं है । वे नियमतः एक—केवलज्ञान वाले हैं ।

विवेचन—औघिक जीवों, चौवीस दण्डकवर्ती जीवों एवं सिद्धों में ज्ञान और अज्ञान की प्ररूपणा—प्रस्तुत दस सूत्रों (सू-२९ से ३८ तक) में औघिक जीवों, नैरयिक से लेकर वैमानिकपर्यन्त चौवीस दण्डकवर्ती जीवों और सिद्धों में पाये जाने वाले ज्ञान और अज्ञान की प्ररूपणा की गई है ।

नैरयिकों में तीन ज्ञान नियमतः, तीन अज्ञान भजनात्—सम्यग्दृष्टि नैरयिकों में भवप्रत्यय अवधिज्ञान होता है, इसलिए वे नियमतः तीन ज्ञान वाले होते हैं । किन्तु जो अज्ञानी होते हैं, उनमें कितने ही दो अज्ञान वाले होते हैं, जब कोई असंज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च नरक में उत्पन्न होता है, तब उसके अपर्याप्त अवस्था में विभंगज्ञान नहीं होता, इस अपेक्षा से नारकों में दो अज्ञान कहे गए हैं । जो मिथ्यादृष्टि संज्ञी पंचेन्द्रिय नरक में उत्पन्न होता है, तो उसको अपर्याप्त अवस्था में भी विभंगज्ञान होता है । अतः इस अपेक्षा से नारकों में तीन अज्ञान कहे गए हैं ।

तीन विकलेन्द्रिय जीवों में दो ज्ञान—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों में जिस औपशमिक सम्यग्दृष्टि मनुष्य ने या तिर्यञ्च ने पहले आयुष्य बांध लिया है, वह उपशम-सम्यक्त्व का वमन करता हुआ उनमें (द्वी-त्रि-चतुरिन्द्रिय जीवों में) उत्पन्न होता है । उस जीव को अपर्याप्त दशा में सास्वादनसम्यग्दर्शन होता है, जो जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह आवलिका तक रहता है, तब तक सम्यग्दर्शन होने के कारण वह ज्ञानी रहता है, उस अपेक्षा से विकलेन्द्रियों में दो ज्ञान बतलाए हैं । इसके पश्चात् तो वह मिथ्यात्व को प्राप्त हो जाने से अज्ञानी हो जाता है ।[1]

गति आदि आठ द्वारों की अपेक्षा ज्ञानी-अज्ञानी-प्ररूपणा—

३९ निरयगतिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?

गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणी वि । तिण्णि नाणाइं नियमा, तिण्णि अन्नाणाइं भयणाए ।

[३९ प्र.] भगवन् ! निरयगतिक (नरकगति में जाते हुए) जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[३९ उ.] गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं । जो ज्ञानी हैं, वे नियमतः तीन ज्ञान वाले हैं, और जो अज्ञानी हैं, वे भजना से तीन अज्ञान वाले हैं ।

४० तिरियगतिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?

गोयमा ! दो नाणा, दो अन्नाणा नियमा ।

[४० प्र.] भगवन् ! तिर्यञ्चगतिक (तिर्यञ्चगति में जाते हुए) जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ।

---

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३४५

[२] एव जाव वणस्सइकाइया ।

[३२-२] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक पर्यन्त कहना चाहिए ।

३३ [१] बेइंदियाण पुच्छा ।

गोयमा ! णाणी वि, अण्णाणी वि । जे नाणी ते नियमा दुण्णाणी, तं जहा—आभिणिबोहियनाणी य सुयणाणी य । जे अण्णाणी ते नियमा दुअण्णाणी—आभिणिबोहियअण्णाणी य सुयअण्णाणी य ।

[३३-१ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीव ज्ञानी है या अज्ञानी ?

[३३-१ उ] गौतम ! द्वीन्द्रिय जीव ज्ञानी भी है और अज्ञानी भी है । जो ज्ञानी है, वे नियमत दो ज्ञान वाले है, यथा—मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी । जो अज्ञानी है, नियमत दो अज्ञान वाले है, यथा—मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी ।

[२] एव तेइंदिय-चउरिंदिया वि ।

[३३-२] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवो के विषय मे भी कहना चाहिए ।

३४ पंचिदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।

गोयमा ! नाणी वि अण्णाणी वि । जे नाणी ते अत्थेगतिया दुण्णाणी, अत्थेगतिया तिन्नाणी । एव तिण्णि नाणाणि तिण्णि अण्णाणाणि य भयणाए ।

[३४ प्र] भगवन् ! पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव ज्ञानी है या अज्ञानी है ?

[३४ उ] गौतम ! वे ज्ञानी भी है और अज्ञानी भी है । जो ज्ञानी है, उनमे से कितने ही दो ज्ञान वाले है और कई तीन ज्ञान वाले हैं । इस प्रकार (पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवो के) तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते है ।

३५. मणुस्सा जहा जीवा तहेव पच नाणाणि तिण्णि अण्णाणाणि य भयणाए ।

[३५] जिस प्रकार औघिक जीवो के विषय मे कहा गया है, उसी प्रकार मनुष्यो मे पाच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं ।

३६ वाणमतरा जहा नेरइया ।

[३६] वाणव्यन्तर देवो का कथन नैरयिको के समान जानना चाहिए ।

३७ जोतिसिय-वेमाणियाण तिण्णि नाणा तिण्णि अन्नाणा नियमा ।

[३७] ज्योतिष्क और वैमानिक देवो मे तीन ज्ञान अथवा तीन अज्ञान नियमत होते है ।

३८ सिद्धा ण भंते ! पुच्छा ।

गोयमा ! णाणी, नो अण्णाणी । नियमा एगनाणी—केवलनाणी ।

[३८ प्र] भगवन् ! सिद्ध भगवान् ज्ञानी हैं या अज्ञानी है ?

[३८ उ] गोतम ! सिद्ध भगवान् ज्ञानी हैं, अज्ञानी नही है । वे नियमत: एक—केवलज्ञान वाले हैं ।

विवेचन—औघिक जीवो, चौवीस दण्डकवर्ती जीवो एव सिद्धो मे ज्ञान और अज्ञान की प्ररूपणा—प्रस्तुत दस सूत्रो (सू-२९ से ३८ तक) मे औघिक जीवो, नैरयिक से लेकर वैमानिकपर्यन्त चौवीस दण्डकवर्ती जीवो और सिद्धो मे पाये जाने वाले ज्ञान और अज्ञान की प्ररूपणा की गई है ।

नैरयिको मे तीन ज्ञान नियमत, तीन अज्ञान भजनात—सम्यग्दृष्टि नैरयिको मे भवप्रत्यय अवधिज्ञान होता है, इसलिए वे नियमत तीन ज्ञान वाले होते है । किन्तु जो अज्ञानी होते हैं, उनमे कितने ही दो अज्ञान वाले होते है, जब कोई असज्ञी पचेन्द्रियतिर्यञ्च नरक मे उत्पन्न होता है, तब उसके अपर्याप्त अवस्था मे विभगज्ञान नही होता, इस अपेक्षा से नारको मे दो अज्ञान कहे गए है । जो मिथ्यादृष्टि सज्ञी पचेन्द्रिय नरक मे उत्पन्न होता है, तो उसको अपर्याप्त अवस्था मे भी विभगज्ञान होता है । अत इस अपेक्षा से नारको मे तीन अज्ञान कहे गए है ।

तीन विकलेन्द्रिय जीवो मे दो ज्ञान—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवो मे जिस औपशमिक सम्यग्दृष्टि मनुष्य ने या तिर्यञ्च ने पहले आयुष्य बाध लिया है, वह उपशम-सम्यक्त्व का वमन करता हुआ उनमे (द्वी-त्रि-चतुरिन्द्रिय जीवो मे) उत्पन्न होता है । उस जीव को अपर्याप्त दशा मे सास्वादनसम्यग्दर्शन होता है, जो जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह आवलिका तक रहता है, तब तक सम्यग्दर्शन होने के कारण वह ज्ञानी रहता है, उस अपेक्षा से विकलेन्द्रियो मे दो ज्ञान बतलाए है । इसके पश्चात् तो वह मिथ्यात्व को प्राप्त हो जाने से अज्ञानी हो जाता है ।[1]

गति आदि आठ द्वारो की अपेक्षा ज्ञानी-अज्ञानी-प्ररूपणा—

३९ निरयगतिया ण भंते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?

गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणी वि । तिण्णि नाणाइ नियमा, तिण्णि अन्नाणाइ भयणाए ।

[३९ प्र] भगवन् ! निरयगतिक (नरकगति मे जाते हुए) जीव ज्ञानी है या अज्ञानी है ?

[३९ उ] गौतम ! वे ज्ञानी भी है और अज्ञानी भी है । जो ज्ञानी हैं, वे नियमत तीन ज्ञान वाले है, और जो अज्ञानी है, वे भजना से तीन अज्ञान वाले है ।

४० तिरियगतिया ण भंते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?

गोयमा ! दो नाणा, दो अन्नाणा नियमा ।

[४० प्र] भगवन् ! तिर्यञ्चगतिक (तिर्यञ्चगति मे जाते हुए) जीव ज्ञानी है या अज्ञानी है ।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३४५

[४० उ] गौतम ! उनमे नियमत दो ज्ञान या दो अज्ञान होते है ।

४१ मणुस्सगतिया णं भते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

गोयमा ! तिण्णि नाणाइ भयणाए, दो अण्णाणाइ नियमा ।

[४१ प्र] भगवन् ! मनुष्यगतिक (मनुष्यगति मे जाते हुए) जीव ज्ञानी है या अज्ञानी है ?

[४१ उ] गौतम ! उनके भजना (विकल्प) से तीन ज्ञान होते है, और नियमत दो अज्ञान होते है ।

४२. देवगतिया जहा निरयगतिया ।

[४२] देवगतिक जीवो मे ज्ञान और अज्ञान का कथन निरयगतिक जीवो के समान समझना चाहिए ।

४३. सिद्धगतिया ण भते ! ० ।

जहा सिद्धा (सु. ३८) । १ ।

[४३ प्र] भगवन् ! सिद्धगतिक जीव ज्ञानी है या अज्ञानी है ?

[४३ उ] गौतम ! उनका कथन सिद्धो की तरह करना चाहिए । अर्थात्—वे नियमत एक केवलज्ञान वाले होते हैं । (प्रथमद्वार)

४४ सइंदिया ण भते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?

गोयमा ! चत्तारि नाणाइ, तिण्णि अण्णाणाइ भयणाए ।

[४४ प्र] भगवन् ! सेन्द्रिय (इन्द्रिय वाले) जीव ज्ञानी है या अज्ञानी ?

[४४ उ] गौतम ! उनके चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं ।

४५ एगिंदिया ण भते ! जीवा किं नाणी० ?

जहा पुढविक्काइया ।

[४५ प्र] भगवन् ! एक इन्द्रिय वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी है ?

[४५ उ] गौतम ! इनके विषय मे पृथ्वीकायिक जीवो (सू २७ मे कथित) की तरह कहना चाहिए ।

४६ बेइंदिय-तेइंदिय-चतुरिंदियाण दो नाणा, दो अण्णाणा नियमा ।

[४६] दो इन्द्रियो, तीन इन्द्रियो और चार इन्द्रियो वाले जीवो मे दो ज्ञान या दो अज्ञान नियमत होते हैं ।

४७ पंचिंदिया जहा सइंदिया ।

[४७] पाच इन्द्रियो वाले जीवो का कथन सेन्द्रिय जीवो की तरह करना चाहिए ।

४८ अणिंदिया ण भंते ! जीवा किं नाणी० ?

जहा सिद्धा (सु ३८)। २।

[४८ प्र] भगवन् ! अनिन्द्रिय (इन्द्रियरहित) जीव ज्ञानी हैं अथवा अज्ञानी है ?

[४८ उ] गौतम ! उनके विषय मे सिद्धो (सू ३८ मे कथित) की तरह जानना चाहिए।

(द्वितीय द्वार)

४९ सकाइया ण भंते ! जीवा किं नाणी अन्नाणी ?

गोयमा ! पंच नाणाणि तिण्णि अन्नाणाइ भयणाए।

[४९ प्र] भगवन् ! सकायिक (कायासहित) जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

[४९ उ] गौतम ! सकायिक जीवो के पाच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते है।

५० पुढविकाइया जाव वणस्सइकाइया नो नाणी, अण्णाणी। नियमा दुअण्णाणी, त जहा—मतिअण्णाणी य सुयअण्णाणी य।

[५०] पृथ्वीकायिक से यावत् वनस्पतिकायिक जीव तक ज्ञानी नही, अज्ञानी होते हैं। वे नियमत दो अज्ञान (मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान) वाले होते है।

५१ तसकाइया जहा सकाइया (सु ४९)।

[५१] त्रसकायिक जीवो का कथन सकायिक जीवो के समान [सू ४९] समझना चाहिए।

५२. अकाइया ण भंते ! जीवा किं नाणी० ?

जहा सिद्धा (सु. ३८)। ३।

[५२ प्र] भगवन् ! अकायिक (कायारहित) जीव ज्ञानी है अथवा अज्ञानी है ?

[५२ उ] गौतम ! इनके विषय मे सिद्धो की तरह जानना चाहिए। (तृतीयद्वार)

५३ सुहुमा ण भंते ! जीवा किं नाणी० ?

जहा पुढविकाइया (सु. ५०)।

[५३ प्र] भगवन् ! सूक्ष्म जीव ज्ञानी है या अज्ञानी हैं ?

[५३ उ.] गौतम ! इनके विषय मे पृथ्वीकायिक जीवो (सू ५० मे कथित) के समान कथन करना चाहिए।

५४ बादरा णं भंते ! जीवा किं नाणी० ?

जहा सकाइया (सु ४९)।

[५४ प्र] भगवन् ! बादर जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[५४ उ] गौतम ! इनके विषय मे सकायिक जीवो (सू ४९ मे कथित) के समान कहना चाहिए ।

५५ नोसुहुमानोबादरा ण भते ! जीवा० ?

जहा सिद्धा (सु. ३८) । ४ ।

[५५ प्र] भगवन् ! नो-सूक्ष्म-नो-बादर जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

[५५ उ] गौतम ! इनका कथन सिद्धो की तरह समझना चाहिए । (चतुर्थ-द्वार)

५६. पज्जत्ता ण भते ! जीवा किं नाणी० ?

जहा सकाइया (सु ४९) ।

[५६ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी है ?

[५६ उ] गौतम ! इनका कथन सकायिक (सू ४९ मे कथित) जीवो के समान जानना चाहिए ।

५७ पज्जत्ता ण भते ! नेरतिया किं नाणी० ?

तिण्णि नाणा, तिण्णि अण्णाणा नियमा ।

[५७ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक नैरियक जीव ज्ञानी है या अज्ञानी ?

[५७ उ] गौतम ! इनमे नियमत तीन ज्ञान या तीन अज्ञान होते हैं ।

५८ जहा नेरइया एव जाव थणियकुमारा ।

[५८] पर्याप्त नैरियक जीवो की तरह यावत् पर्याप्त स्तनितकुमार तक मे ज्ञान और अज्ञान का कथन करना चाहिए ।

५९ पुढविकाइया जहा एगिंदिया । एव जाव चतुरिंदिया ।

[५९] (पर्याप्त) पृथ्वीकायिक जीवो का कथन एकेन्द्रिय जीवों (सू ४५ मे कथित) की तरह करना चाहिए । इसी प्रकार यावत् (पर्याप्त) चतुरिन्द्रिय (अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय) तक समझना चाहिए ।

६० पज्जत्ता ण भते ! पंचिंदियतिरिक्खजोणिया किं नाणी, अण्णाणी ?

तिण्णि नाणा, तिण्णि अण्णाणा भयणाए ।

[६० प्र] भगवन् ! पर्याप्त पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव ज्ञानी है या अज्ञानी हैं ?

[६० उ] गौतम ! उनमे तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से होते हैं ।

६१ मणुस्सा जहा सकाइया (सु ४९) ।

[६१] पर्याप्त मनुष्यो के सम्बन्ध मे कथन सकायिक जीवो (सू ४६ मे कथित) की तरह करना चाहिए ।

६२ वाणमतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा नेरइया (सु ५७) ।

[६२] पर्याप्त वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिको का कथन नैरयिक जीवो (सू ५७) की तरह समझना चाहिए ।

६३ अपज्जत्ता ण भते ! जीवा किं नाणी २ ?

तिण्णि नाणा, तिण्णि अण्णाणा भयणाए ।

[६३ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तक जीव ज्ञानी है या अज्ञानी ?

[६३ उ] उनमे तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते है ।

६४ [१] अपज्जत्ता ण भते ! नेरतिया किं नाणी, अन्नाणी ?

तिण्णि नाणा नियमा, तिण्णि अण्णाणा भयणाए ।

[६४-१ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त नैरयिक जीव ज्ञानी है या अज्ञानी है ?

[६४-१ उ] गौतम ! उनमे तीन ज्ञान नियमत होते है अथवा तीन अज्ञान भजना मे होते है ।

[२] एव जाव थणियकुमारा ।

[६४-२] नैरयिक जीवो की तरह यावत् अपर्याप्त स्तनितकुमार देवो तक इसी प्रकार कथन करना चाहिए ।

६५ पुढविक्काइया जाव वणस्सतिकाइया जहा एगिंदिया ।

[६५] (अपर्याप्त) पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक जीवो तक का कथन एकेन्द्रिय जीवो की तरह करना चाहिए ।

६६ [१] बेंदिया ण० पुच्छा ।

दो नाणा, दो अण्णाणा णियमा ।

[६६-१ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त द्वीन्द्रिय ज्ञानी है या अज्ञानी है ?

[६६-१ उ] गौतम ! इनमे दो ज्ञान अथवा दो अज्ञान नियमत होते है ।

[२] एव जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणियाण ।

[६६-२] इसी प्रकार यावत् (अपर्याप्त) पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक तक जानना चाहिए ।

६७ अपज्जत्तगा ण भते ! मणुस्सा किं नाणी, अन्नाणी ?

तिण्णि नाणाइ भयणाए, दो अण्णाणाइ नियमा ।

[६७ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तक मनुष्य ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[६७ उ] गौतम ! उनमे तीन ज्ञान भजना से होते है और दो अज्ञान नियमत होते है।

६८ वाणमतरा जहा नेरतिया (सु ६४) ।

[६८] अपर्याप्त वाणव्यन्तर जीवो का कथन नैरयिक जीवो की तरह (सू ६४ के अनुसार) समझना चाहिए ।

६९ अपज्जत्तगा जोतिसिय-वेमाणिया ण० ?

तिण्णि नाणा, तिन्नि अण्णाणा नियमा ।

[६९ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त ज्योतिष्क और वैमानिक ज्ञानी है या अज्ञानी ?

[६९ उ] गौतम ! उनमे तीन ज्ञान या तीन अज्ञान नियमत होते है ।

७० नोपज्जत्तगनोअपज्जत्तगा ण भते ! जीवा किं नाणी० ?

जहा सिद्धा (सु ३८) । ५ ।

[७० प्र] भगवन् ! नो-पर्याप्त-नो-अपर्याप्त जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

[७० उ] गौतम ! इनका कथन सिद्ध जीवो (सू ३८) के समान जानना चाहिए ।

(पचम द्वार)

७१, निरयभवत्था ण भते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?

जहा निरयगतिया (सु ३९) ।

[७१ प्र] भगवन् ! निरय-भवस्थ (नारक-भव मे रहे हुए) जीव ज्ञानी है या अज्ञानी है ?

[७१ उ] गौतम ! इनके विषय मे निरयगतिक जीवो के समान (सू ३९ के अनुसार) कहना चाहिए ।

७२ तिरियभवत्था ण भते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?

तिण्णि नाणा, तिण्णि अण्णाणा भयणाए ।

[७२ प्र] भगवन् ! तिर्यञ्चभवस्थ जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी है ?

[७२ उ] गौतम ! उनमे तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते है ।

७३ मणुस्सभवत्था ण० ?

जहा सकाइया (सु. ४९) ।

[७३ प्र] भगवन् ! मनुष्यभवस्थ जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी है ?

[७३ उ] गौतम ! इनका कथन सकायिक जीवो की तरह (सू ४९ के अनुसार) करना चाहिए ।

७४ देवभवत्था ण भंते ! ० ?

जहा निरयभवत्था (सु ७१)।

[७४ प्र] भगवन् ! देवभवस्थ जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी है ?

[७४ उ] गौतम ! निरयभवस्थ जीवो के समान (सू ७१ के अनुसार) इनके विषय मे कहना चाहिए।

७५ अभवत्था जहा सिद्धा (सु ३८)। ६।

[७५] अभवस्थ जीवो के विषय मे सिद्धो की तरह (सू ३८ के अनुसार) जानना चाहिए।

(छठा द्वार)

७६ भवसिद्धिया ण भंते ! जीवा किं नाणी० ?

जहा सकाइया (सु ४९)।

[७६ प्र] भगवन् ! भवसिद्धिक (भव्य) जीव ज्ञानी है या अज्ञानी है ?

[७६ उ] गौतम ! इनका कथन सकायिक जीवो के समान (सू ४९ के अनुसार) जानना चाहिए।

७७ अभवसिद्धिया ण० पुच्छा।

गोयमा ! नो नाणी, अण्णाणी, तिण्णि अण्णाणाइ भयणाए।

[७७ प्र] भगवन् ! अभवसिद्धिक (अभव्य) जीव ज्ञानी है या अज्ञानी ?

[७७ उ] गौतम ! ये ज्ञानी नही, किन्तु अज्ञानी हैं। इनमे तीन अज्ञान भजना से होते है।

७८ नोभवसिद्धियनोअभवसिद्धिया ण भंते ! जीवा० ?

जहा सिद्धा (सु ३८)। ७।

[७८ प्र] भगवन् ! नोभवसिद्धिक-नो-अभवसिद्धिक जीव ज्ञानी है अथवा अज्ञानी है ?

[७८ उ] गौतम ! इनके सम्बन्ध मे सिद्ध जीवो के समान (सू ३८ के अनुसार) कहना चाहिए।

(सप्तम द्वार)

७९ सण्णी ण० पुच्छा।

जहा सइंदिया (सु ४४)।

[७९ प्र] भगवन् ! सज्ञीजीव ज्ञानी है या अज्ञानी हैं ?

[७९ उ] गौतम ! सेन्द्रिय जीवो के कथन के समान (सू ४४ के अनुसार) इनके विषय मे कहना चाहिए।

८० असण्णी जहा बेइंदिया (सु ४६)।

[८०] असज्ञी जीवो के विषय मे द्वीन्द्रिय जीवो के समान (सू ४६ के अनुसार) कहना चाहिए।

पृथ्वीकायिक आदि ६ कायसहित को। वे केवली भी होते है। अत सकायिक सम्यग्दृष्टि मे पाच ज्ञान भजना से होते है। जो मिथ्यादृष्टि सकायिक है, उनमे तीन अज्ञान भजना मे होते है। जो षट्कायो मे से किसी भी काय मे नही है, या जो औदारिक आदि कायो मे रहित है, ऐसे अकायिक जीव सिद्ध होते हैं, उनमे सिर्फ केवलज्ञान ही होता है। (४) सूक्ष्मद्वार—सूक्ष्म जीव पृथ्वीकायिकवत् मिथ्यादृष्टि होने से उन मे दो अज्ञान होते है। बादर जीवो मे केवलज्ञानी भी होते है, अत सकायिक की तरह उनमे पाच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते है। (५) पर्याप्तद्वार—पर्याप्तजीव केवलज्ञानी भी होते है, अत उनमे सकायिक जीवो के समान भजना से ५ ज्ञान और ३ अज्ञान पाए जाते है। पर्याप्त नारको मे तीन ज्ञान और तीन अज्ञान नियमत होते है, क्योकि असज्ञी जीवो मे से आए हुए अपर्याप्त नारको मे ही विभगज्ञान नही होता, मिथ्यात्वी पर्याप्तको मे तो होता ही है। इसी प्रकार भवनपति एव वाणव्यन्तर देवो मे समझना चाहिए। पर्याप्त विकलेन्द्रियो मे नियम से दो अज्ञान होते है। पर्याप्त पचेन्द्रियतिर्यंचो मे ३ ज्ञान और ३ अज्ञान भजना से होते है, उसका कारण है, कितने ही जीवो को अवधिज्ञान या विभगज्ञान होता है, कितनो को नही होता। अपर्याप्तक नैरयिको मे तीन ज्ञान नियम से और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं। अपर्याप्तक द्वीन्द्रिय आदि जीवो मे सास्वादन सम्यग्दर्शन सम्भव होने से उनमे दो ज्ञान और शेष मे दो अज्ञान पाए जाते है। अपर्याप्त सम्यग्दृष्टि मनुष्यो मे तीर्थंकर प्रकृति को बांधे हुए जीव भी होते है, उनमे अवधिज्ञान होना सम्भव है, अत उनमे तीन ज्ञान भजना से पाए जाते है। मिथ्यादृष्टि मनुष्यो को अपर्याप्त-अवस्था मे विभगज्ञान नही होता, इसलिए उनमे नियमत दो अज्ञान होते है। अपर्याप्त वाणव्यन्तर देवो मे जो असज्ञी जीवो मे से आकर उत्पन्न होता है, उसमे अपर्याप्त-अवस्था मे विभगज्ञान का अभाव होता है, शेष मे अवधिज्ञान या विभगज्ञान नियम से होता है, अत उनमे नैरयिको के समान तीन ज्ञान वाले, या दो अथवा तीन अज्ञान वाले होते है। ज्योतिष्क और वैमानिक देवो मे सज्ञी जीवो मे से ही आकर उत्पन्न होते है, इसलिए उनमे अपर्याप्त अवस्था मे भी भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान या विभगज्ञान अवश्य होता है। अत उनमे नियमत तीन ज्ञान या तीन अज्ञान होते हैं। नो-पर्याप्त-नो-अपर्याप्त जीव सिद्ध होते है, वे पर्याप्त-अपर्याप्त नामकर्म से रहित होते है। अत उनमे एकमात्र केवलज्ञान ही होता है। (६) भवस्थद्वार—निरयभवस्थ का अर्थ है—नरकगति मे उत्पत्तिस्थान को प्राप्त। इसी प्रकार तिर्यंचभवस्थ आदि पदो का अर्थ समझ लेना चाहिए। निरयभवस्थ का कथन निरयगतिकवत् समझ लेना चाहिए। (७) भवसिद्धिकद्वार—भवसिद्धिक यानी भव्य जीव जो सम्यग्दृष्टि है, उनमे सकायिक की तरह ५ ज्ञान भजना से होते है, जबकि मिथ्यादृष्टि मे तीन अज्ञान भजना से होते हैं। अभवसिद्धिक (अभव्य) जीव सदैव मिथ्यादृष्टि ही रहते हैं, अत उनमे तीन अज्ञान की भजना है। ज्ञान उनमे होता ही नही। (८) सज्ञीद्वार—सज्ञी जीवो का कथन सेन्द्रिय जीवो की तरह है, अर्थात्—उनमे चार ज्ञान अथवा तीन अज्ञान भजना से पाए जाते है। असज्ञी जीवो का कथन द्वीन्द्रिय जीवो के समान है, अर्थात्—अपर्याप्त अवस्था मे उनमे सास्वादन सम्यग्दर्शन की सम्भावना होने से दो ज्ञान भी पाए जाते है। अपर्याप्त अवस्था मे तो उनमे नियमत दो अज्ञान होते है।[1]

अन्यद्वार—इससे आगे लब्धि आदि बारह द्वार अभी शेष है। लब्धिद्वार मे लब्धियो के भेद-प्रभेद आदि का वर्णन विस्तृत होने से इस पाठ से अलग दे रहे हैं।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति

८१. नोसण्णीनोअसण्णी जहा सिद्धा (सु ३८) । ८ ।

[८१] नो-सञ्ज्ञी-नो-असञ्ज्ञी जीवो का कथन सिद्ध जीवो की तरह (सू ३८ के अनुसार) जानना चाहिए । (अष्टम द्वार)

विवेचन—गति आदि आठ द्वारो की अपेक्षा ज्ञानी-अज्ञानी प्ररूपणा—प्रस्तुत ४३ सूत्रो (सू ३९ से ८१ तक) मे गति, इन्द्रिय, काय, सूक्ष्म, पर्याप्त, भवस्थ, भवसिद्धिक एव सञ्ज्ञी, इन आठ द्वारो के माध्यम से उन-उन गति आदि वाले जीवो मे सम्भवित ज्ञान या अज्ञान की प्ररूपणा की गई है ।

गति आदि द्वारो के माध्यम से जीवो मे ज्ञान-अज्ञान की प्ररूपणा—(१) गतिद्वार—गति की अपेक्षा पाच प्रकार के जीव है—नरकगतिक, तिर्यंचगतिक, मनुष्यगतिक, देवगतिक और सिद्धगतिक । निरयगतिक जीव वे हैं, जो यहाँ से मर कर नरक मे जाने के लिए विग्रहगति (अन्तरालगति) मे चल रहे हैं । पचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य, जो नरक मे जाने वाले हैं, वे यदि सम्यग्दृष्टि हो तो ज्ञानी होते है, क्योकि उन्हे अवधिज्ञान भवप्रत्यय होने के कारण विग्रहगति मे भी होता है, और नरक मे नियमत उन्हे तीन ज्ञान होते हैं । यदि वे मिथ्यादृष्टि हो तो वे अज्ञानी होते है, उनमे से नरकगामी यदि असञ्ज्ञी पचेद्रियतिर्यंच हो तो विग्रहगति मे अपर्याप्त अवस्था तक उसे विभगज्ञान नही होता, उस समय तक उसे दो अज्ञान ही होते हैं, किन्तु मिथ्यादृष्टि सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय नरकगामी को विग्रहगति मे भी भवप्रत्ययिक विभगज्ञान होता है, इसलिए निरयगतिक मे तीन अज्ञान भजना से कहे गए है । तिर्यंचगतिक जीव वे है जो यहाँ से मर कर तिर्यंचगति मे जाने के लिए विग्रहगति मे चल रहे है । उनमे नियम से दो ज्ञान या दो अज्ञान इसलिए बताए हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव अवधिज्ञान से च्युत होने के बाद मति-श्रुतज्ञानसहित तिर्यंचगति मे जाता है । इसलिए उसमे नियमत दो ज्ञान होते हैं, तथा मिथ्यादृष्टि जीव विभगज्ञान से गिरने के बाद मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञानसहित तिर्यंचगति मे जाता है । इसलिए नियमत उसमे दो अज्ञान होते हैं । मनुष्यगति मे जाने के लिए जो विग्रहगति मे चल रहे है, वे मनुष्यगतिक कहलाते हैं । मनुष्यगति मे जाते हुए जो जीव ज्ञानी होते हैं, उनमे से कई तीर्थंकर की तरह अवधिज्ञानसहित मनुष्यगति मे जाते हैं, उनमे तीन ज्ञान होते हैं, जबकि अवधिज्ञानरहित मनुष्य-गति मे जाने वालो मे दो ज्ञान होते है । इसीलिए यहाँ तीन ज्ञान भजना से कहे गए हैं । जो मिथ्या-दृष्टि है, वे विभगज्ञानरहित ही मनुष्यगति मे उत्पन्न होते हैं, इसलिए उनमे दो अज्ञान नियम से कहे गए हैं । देवगति मे जाते हुए विग्रहगति मे चल रहे जीवो का कथन नैरयिको की तरह (नियमत तीन ज्ञान अथवा भजना से तीन अज्ञान वाले) समझना चाहिए । सिद्धगतिक जीवो मे तो केवल एक ही ज्ञान—केवलज्ञान होता है । **(२) इन्द्रियद्वार**—सेन्द्रिय का अर्थ है—इन्द्रिय वाले जीव—यानी इन्द्रियो से काम लेने वाले जीव । सेन्द्रिय ज्ञानी जीवो को २, ३, या ४ ज्ञान होते हैं, यह बात लब्धि की अपेक्षा से समझना चाहिए क्योकि उपयोग की अपेक्षा तो सभी जीवो को एक समय मे एक ही ज्ञान होता है । केवलज्ञान अतीन्द्रिय ज्ञान है, वह सेन्द्रिय नही है । अज्ञानी सेन्द्रिय जीवो को तीन अज्ञान भजना से होते है, किन्ही को दो और किन्ही को तीन अज्ञान होते है । एकेन्द्रिय जीव मिथ्या-दृष्टि होने से अज्ञानी ही होते हैं, उनमे नियमत दो अज्ञान होते हैं । तीन विकलेन्द्रियो मे दो अज्ञान तो नियमत होते है, किन्तु सास्वादनगुणस्थान होने की अवस्था मे दो ज्ञान भी होने सम्भव हैं । अनिन्द्रिय (इन्द्रियो के उपयोग से रहित) जीव तो केवलज्ञानी ही होते है । उनमे एकमात्र केवलज्ञान पाया जाता है । **(३) कायद्वार**—सकायिक कहते हैं—औदारिक आदि शरीरयुक्त जीव को अथवा

पृथ्वीकायिक आदि ६ कायसहित को। वे केवली भी होते हैं। अत सकायिक सम्यग्दृष्टि मे पाच ज्ञान भजना से होते है। जो मिथ्यादृष्टि सकायिक हैं, उनमे तीन अज्ञान भजना मे होते हैं। जो षट्कायो मे से किसी भी काय मे नही है, या जो औदारिक आदि कायो मे रहित है, ऐसे अकायिक जीव सिद्ध होते हैं, उनमे सिर्फ केवलज्ञान ही होता है। (४) सूक्ष्मद्वार—सूक्ष्म जीव पृथ्वीकायिकवत् मिथ्यादृष्टि होने से उन मे दो अज्ञान होते है। बादर जीवो मे केवलज्ञानी भी होते है, अत सकायिक की तरह उनमे पाच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं। (५) पर्याप्तद्वार—पर्याप्तजीव केवलज्ञानी भी होते है, अत उनमे सकायिक जीवो के समान भजना से ५ ज्ञान और ३ अज्ञान पाए जाते है। पर्याप्त नारको मे तीन ज्ञान और तीन अज्ञान नियमत होते हैं, क्योकि असज्ञी जीवो मे से आए हुए अपर्याप्त नारको मे ही विभगज्ञान नही होता, मिथ्यात्वी पर्याप्तको मे तो होता ही है। इसी प्रकार भवनपति एव वाणव्यन्तर देवो मे समझना चाहिए। पर्याप्त विकलेन्द्रियो मे नियम से दो अज्ञान होते है। पर्याप्त पचेन्द्रियतिर्यंचो मे ३ ज्ञान और ३ अज्ञान भजना से होने है, उसका कारण है, कितने ही जीवो को अवधिज्ञान या विभगज्ञान होता है, कितनो को नही होता। अपर्याप्तक नैरयिको मे तीन ज्ञान नियम से और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं। अपर्याप्तक द्वीन्द्रिय आदि जीवो मे सास्वादन सम्यग्दर्शन सम्भव होने से उनमे दो ज्ञान और शेप मे दो अज्ञान पाए जाते हैं। अपर्याप्त सम्यग्दृष्टि मनुष्यो मे तीर्थंकर प्रकृति को बांधे हुए जीव भी होते हैं, उनमे अवधिज्ञान होना सम्भव है, अत उनमे तीन ज्ञान भजना से पाए जाते है। मिथ्यादृष्टि मनुष्यो को अपर्याप्त-अवस्था मे विभगज्ञान नही होता, इसलिए उनमे नियमत दो अज्ञान होते हैं। अपर्याप्त वाणव्यन्तर देवो मे जो असज्ञी जीवो मे से आकर उत्पन्न होता है, उसमे अपर्याप्त-अवस्था मे विभगज्ञान का अभाव होता है, शेष मे अवधिज्ञान या विभगज्ञान नियम से होता है, अत उनमे नैरयिको के समान तीन ज्ञान वाले, या दो अथवा तीन अज्ञान वाले होते है। ज्योतिष्क और वैमानिक देवो मे सज्ञी जीवो मे से ही आकर उत्पन्न होते हैं, इसलिए उनमे अपर्याप्त अवस्था मे भी भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान या विभगज्ञान अवश्य होता है। अत उनमे नियमत तीन ज्ञान या तीन अज्ञान होते है। नो-पर्याप्त-नो-अपर्याप्त जीव सिद्ध होते है, वे पर्याप्त-अपर्याप्त नामकर्म से रहित होते है। अत उनमे एकमात्र केवलज्ञान ही होता है। (६) भवस्थद्वार—निरयभवस्थ का अर्थ है—नरकगति मे उत्पत्तिस्थान को प्राप्त। इसी प्रकार तिर्यंचभवस्थ आदि पदो का अर्थ समझ लेना चाहिए। निरयभवस्थ का कथन निरयगतिकवत् समझ लेना चाहिए। (७) भवसिद्धिकद्वार—भवसिद्धिक यानी भव्य जीव जो सम्यग्दृष्टि हैं, उनमे सकायिक की तरह ५ ज्ञान भजना से होते है, जबकि मिथ्यादृष्टि मे तीन अज्ञान भजना से होते है। अभवसिद्धिक (अभव्य) जीव सदैव मिथ्यादृष्टि ही रहते है, अत उनमे तीन अज्ञान की भजना है। ज्ञान उनमे होता ही नही। (८) सज्ञीद्वार—सज्ञी जीवो का कथन सेन्द्रिय जीवो की तरह है, अर्थात्—उनमे चार ज्ञान अथवा तीन अज्ञान भजना से पाए जाते है। असज्ञी जीवो का कथन द्वीन्द्रिय जीवो के समान है, अर्थात्—अपर्याप्त अवस्था मे उनमे सास्वादन सम्यग्दर्शन की सम्भावना होने से दो ज्ञान भी पाए जाते है। अपर्याप्त अवस्था मे तो उनमे नियमत दो अज्ञान होते है।[1]

अन्यद्वार—इससे आगे लब्धि आदि बारह द्वार अभी शेष है। लब्धिद्वार मे लब्धियो के भेद-प्रभेद आदि का वर्णन विस्तृत होने से इस पाठ से अलग दे रहे हैं।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति

नौवें लब्धिद्वार की अपेक्षा से ज्ञानी-अज्ञानी की प्ररूपणा—

८२ कतिविहा णं भंते ! लद्धी पण्णत्ता ?

गोयमा ! दसविहा लद्धी पण्णत्ता, तं जहा—नाणलद्धी १ दंसणलद्धि २ चरित्तलद्धी ३ चरित्ताचरित्तलद्धी ४ दाणलद्धी ५ लाभलद्धी ६ भोगलद्धी ७ उवभोगलद्धी ८ वीरियलद्धी ९ इंदियलद्धी १० ।

[८२ प्र] भगवन् ! लब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

[८२ उ] गौतम ! लब्धि दस प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—(१) ज्ञानलब्धि, (२) दर्शनलब्धि, (३) चारित्रलब्धि, (४) चारित्राचारित्रलब्धि, (५) दानलब्धि, (६) लाभलब्धि, (७) भोगलब्धि, (८) उपभोगलब्धि, (९) वीर्यलब्धि और (१०) इन्द्रियलब्धि ।

८३. णाणलद्धी णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—आभिणिबोहियणाणलद्धी जाव केवलणाणलद्धी ।

[८३ प्र] भगवन् ! ज्ञानलब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

[८३ उ] गौतम ! वह पांच प्रकार की कही गई है। यथा—आभिनिबोधिकज्ञानलब्धि यावत् केवलज्ञानलब्धि ।

८४ अण्णाणलद्धी णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—मइअण्णाणलद्धी सुतअण्णाणलद्धी विभंगनाणलद्धी ।

[८४ प्र] भगवन् ! अज्ञानलब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

[८४ उ] गौतम ! अज्ञानलब्धि तीन प्रकार की कही गई है। यथा—मति-अज्ञानलब्धि, श्रुत-अज्ञानलब्धि और विभंगज्ञानलब्धि ।

८५ दंसणलद्धी णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—सम्मद्दंसणलद्धी मिच्छादंसणलद्धी सम्मामिच्छादंसणलद्धी ।

[८५ प्र] भगवन् ! दर्शनलब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

[८५ उ] गौतम ! वह तीन प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—सम्यग्दर्शनलब्धि, मिथ्यादर्शनलब्धि और सम्यग्मिथ्यादर्शनलब्धि ।

८६ चरित्तलद्धी णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—सामाइयचरित्तलद्धी छेदोवट्ठावणियलद्धी परिहारविसुद्धलद्धी सुहुमसंपरायलद्धी अहक्खायचरित्तलद्धी ।

[८६ प्र] भगवन् ! चारित्रलब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

[८६ उ] गौतम ! चारित्रलब्धि पाच प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—सामायिकचारित्रलब्धि, छेदोपस्थापनिकलब्धि, परिहारविशुद्धलब्धि, सूक्ष्मसम्परायलब्धि और यथाख्यातचारित्रलब्धि ।

८७ चरित्ताचरित्तलद्धी ण भते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! एगागारा पण्णत्ता ।

[८७-प्र] भगवन् ! चारित्राचारित्रलब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

[८७-उ] गौतम ! वह एकाकार (एक प्रकार की) कही गई है ।

८८ एवं जाव उवभोगलद्धी एगागारा पण्णत्ता ।

[८८] इसी प्रकार दानलब्धि, लाभलब्धि, भोगलब्धि, उपभोगलब्धि, ये सब एक-एक प्रकार की कही गई हैं।

८९. वीरियलद्धी णं भते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, त जहा—बालवीरियलद्धी पडियवीरियलद्धी बालपडियवीरियलद्धी ।

[८९-प्र.] भगवन् ! वीर्यलब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

[८९-उ] गौतम ! वीर्यलब्धि तीन प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—बालवीर्यलब्धि, पण्डितवीर्यलब्धि और बाल-पण्डितवीर्यलब्धि ।

९० इदियलद्धी ण भते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पचविहा पण्णत्ता, त जहा—सोतिंदियलद्धी जाव फासिंदियलद्धी ।

[९० प्र] भगवन् ! इन्द्रियलब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

[९० उ] गौतम ! वह पाच प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—श्रोत्रेन्द्रियलब्धि यावत् स्पर्शेन्द्रियलब्धि ।

९१. [१] नाणलद्धिया ण भते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?

गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी. अत्थेगतिया दुनाणी । एव पच नाणाइ भयणाए ।

[९१-१ प्र] भगवन् ! ज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी है या अज्ञानी ?

[९१-१ उ] गौतम ! वे ज्ञानी है, अज्ञानी नही । उनमे से कितने ही दो ज्ञान वाले होते है। इस प्रकार उनमे पाच ज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते है।

[२] तस्स अलद्धीया ण भंते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?

गोयमा ! नो नाणी, अण्णाणी, अत्थेगतिया दुअण्णाणी, तिण्णि अण्णाणाणि भयणाए ।

[९१-२ प्र] भगवन् ! ज्ञानलब्धिरहित (अज्ञानलब्धि वाले) जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

[९१-२ उ] गौतम ! वे ज्ञानी नही अज्ञानी हैं। उनमे से कितने ही जीव दो अज्ञान वाले (और कितने ही तीन अज्ञान वाले) होते हैं। इस प्रकार उनमे तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं।

९२ [१] आभिणिबोहियणाणलद्धिया ण भते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?

गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी; अत्थेगतिया दुण्णाणी, चत्तारि नाणाइ भयणाए।

[९२-१ प्र] भगवन् ! आभिनिवोधिकज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[९२-१ उ] गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नही ! उनमे से कितने ही जीव दो ज्ञान वाले, कितने ही तीन ज्ञान वाले और कितने ही चार ज्ञान वाले होते हैं। इस तरह उनमे चार ज्ञान भजना मे पाए जाते हैं।

[२] तस्स अलद्धिया णं भते ! जीवा किं नाणी अण्णाणी ?

गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणी वि। जे नाणी ते नियमा एगनाणी-केवलनाणी। जे अण्णाणी ते अत्थेगतिया दुअन्नाणी, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

[९२-२ प्र] भगवन् ! आभिनिवोधिकज्ञानलब्धि-रहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[९२-२ उ] गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी। जो ज्ञानी हैं, वे नियमत एकमात्र केवलज्ञान वाले हैं, और जो अज्ञानी हैं, वे कितने ही दो अज्ञान वाले एव कितने ही तीन अज्ञान वाले हैं। अर्थात्—उनमे तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं।

९३ [१] एवं सुयनाणलद्धीया वि।

[९३-१] श्रुतज्ञानलब्धि वाले जीवो का कथन आभिनिवोधिक ज्ञानलब्धि वाले जीवो के समान करना चाहिए।

[२] तस्स अलद्धीया वि जहा आभिणिबोहियनाणस्स अलद्धीया।

[९३-२] एव श्रुतज्ञानलब्धिरहित जीवो का कथन आभिनिवोधिक ज्ञानलब्धिरहित जीवो की तरह जानना चाहिए।

९४ [१] ओहिनाणलद्धीया ण० पुच्छा ?

गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी, अत्थेगतिया तिणाणी, अत्थेगतिया चउनाणी। जे तिणाणी ते आभिणिवोहियनाणी सुयनाणी ओहिनाणी। जे चउनाणी ते आभिणिबोहियनाणी सुतणाणी ओहिणाणी मणपज्जवनाणी।

[९४-१ प्र] भगवन् ! अवधिज्ञानलब्धियुक्त जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी है ?

[९४-१ उ] गौतम ! अवधिज्ञानलब्धियुक्त जीव ज्ञानी हैं, अज्ञानी नही। उनमे से कतिपय तीन ज्ञान वाले है और कई चार ज्ञान वाले हैं। जो तीन ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिवोधि

श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान वाले है, और जो चार ज्ञान से युक्त हैं, वे आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान अवधिज्ञान और मन पर्यवज्ञान वाले है।

[२] तस्स अलद्धीया ण भंते ! जीवा किं नाणी० ?

गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणी वि। एव ओहिनाणवज्जाइ चत्तारि नाणाइ, तिण्णि अण्णाणाइ भयणाए।

[९४-२ प्र] भगवन् ! अवधिज्ञानलब्धि से रहित जीव ज्ञानी है या अज्ञानी ?

[९४-२ उ] गौतम ! वे ज्ञानी भी है और अज्ञानी भी हैं। इस तरह उनमे अवधिज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते है।

९५ [१] मणपज्जवनाणलद्धिया ण० पुच्छा।

गोयमा ! णाणी, णो अण्णाणी। अत्येगतिया तिणाणि, अत्येगतिया चउनाणी। जे तिणाणी ते आभिणिबोहियनाणी सुतणाणी मणपज्जवणाणी। जे चउनाणी ते आभिणिबोहियनाणी सुयनाणी ओहिनाणी मणपज्जवनाणी।

[९५-१ प्र] भगवन् ! मन पर्यवज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं अथवा अज्ञानी है ?

[९५-१ उ] गौतम ! वे ज्ञानी है, अज्ञानी नही। उनमे से कितने ही तीन ज्ञान वाले हैं और कितने ही चार ज्ञान वाले है। जो तीन ज्ञान वाले है, वे आभिनिवोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और मन पर्यायज्ञान वाले है, और जो चार ज्ञान वाले है, वे आभिनिवोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन पर्यायज्ञान वाले हैं।

[२] तस्स अलद्धीया ण० पुच्छा।

गोयमा ! णाणी वि, अण्णाणी वि, मणपज्जवणाणवज्जाइ चत्तारि णाणाइ, तिण्णि अण्णाणाइ भयणाए।

[९५-२ प्र] भगवन् ! मन पर्यवज्ञानलब्धि से रहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[९५-२ उ] गौतम ! वे ज्ञानी भी है और अज्ञानी भी है। उनमे मन पर्यवज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते है।

९६. [१] केवलनाणलद्धिया ण भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी। नियमा एगणाणी—केवलनाणी।

[९६-१ प्र] भगवन् ! केवलज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी है ?

[९६-१ उ] गौतम ! वे ज्ञानी है, अज्ञानी नही। वे नियमत एकमात्र केवलज्ञान वाले है।

[२] तस्स अलद्धिया ण० पुच्छा।

गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणि वि। केवलनाणवज्जाइ चत्तारि णाणाइ, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

[९६-२ प्र] भगवन् ! केवलज्ञानलब्धिरहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी है ?

[९६-२ उ] गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। उनमे या तो केवलज्ञान को छोड कर शेष ४ ज्ञान और ३ अज्ञान भजना से पाए जाते है।

९७ [१] अण्णाणलद्धिया णं० पुच्छा।

गोयमा ! नो नाणी, अण्णाणी, तिण्णि अण्णाणाइ भयणाए।

[९७-१ प्र] भगवन् ! अज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी है, या अज्ञानी है ?

[९७-१ उ] गौतम ! वे ज्ञानी नही, अज्ञानी हैं। उनमे तीन अज्ञान भजना से पाए जाते है।

[२] तस्स अलद्धिया णं० पुच्छा।

गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी। पच नाणाइं भयणाए।

[९७-२ प्र] भगवन् ! अज्ञानलब्धि से रहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी है ?

[९७-२ उ] गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नही। उनमे ५ ज्ञान भजना से पाए जाते है।

९८ जहा अण्णाणस्स लद्धिया अलद्धिया य भणिया एव मइअण्णाणस्स, सुयअण्णाणस्स य लद्धिया अलद्धिया य भाणियव्वा।

[९८] जिस प्रकार अज्ञानलब्धि और अज्ञानलब्धि से रहित जीवो का कथन किया है, उसी प्रकार मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञानलब्धि वाले तथा इन लब्धियो से रहित जीवो का कथन करना चाहिए।

९९ विभगनाणलद्धियाण तिण्णि अण्णाणाइ नियमा। तस्स अलद्धियाण पच नाणाइ भयणाए। दो अण्णाणाइं नियमा।

[९९] विभगज्ञान-लब्धि से युक्त जीवो मे नियमत तीन अज्ञान होते हैं और विभगज्ञान-लब्धिरहित जीवो मे पाच ज्ञान भजना से और दो अज्ञान नियमत होते है।

१०० [१] दसणलद्धिया ण भंते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?

गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणी वि। पंच नाणाइ, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

[१००-१ प्र] भगवन् ! दर्शनलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी है ?

[१००-१ उ] गौतम ! वे ज्ञानी भी होते है, अज्ञानी भी। उनमे पाच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

[२] तस्स अलद्धिया ण भते ! जीवा किं नाणी अन्नाणी ?

गोयमा ! तस्स अलद्धिया नत्थि।

[१००-२ प्र] भगवन् ! दर्शनलब्धिरहित जीव ज्ञानी है या अज्ञानी ?
[१००-२ उ] गौतम ! दर्शनलब्धिरहित जीव कोई भी नही होता ।

१०१. [१] सम्मद्दसणलद्धियाण पच नाणाइं भयणाए ।

[१०१-१] सम्यग्दर्शनलब्धि प्राप्त जीवो मे पाच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते है ।

[२] तस्स अलद्धियाण तिण्णि अण्णाणाइ भयणाए ।

[१०१-२] सम्यग्दर्शनलब्धिरहित जीवो मे तीन अज्ञान भजना से होते है ।

१०२ [१] मिच्छादंसणलद्धिया ण भते ! ० पुच्छा ।
तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए ।

[१०२-१ प्र] भगवन् ! मिथ्यादर्शनलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?
[१०२-१ उ] गौतम ! उनमे तीन अज्ञान भजना से होते है ।

[२] तस्स अलद्धियाणं पच नाणाइं, तिण्णि य अण्णाणाइ भयणाए ।

[१०२-२] मिथ्यादर्शनलब्धिरहित जीवो मे ५ ज्ञान और ३ अज्ञान भजना से होते हैं ।

१०३ सम्मामिच्छादसणलद्धिया अलद्धिया य जहा मिच्छादंसणलद्धी अलद्धी तहेव भाणियव्व ।

[१०३] सम्यग्मिथ्यादर्शन (मिश्रदर्शन) लब्धिप्राप्त जीवो का कथन मिथ्यादर्शनलब्धि-युक्त जीवो के समान जानना चाहिए, और सम्यग्मिथ्यादर्शनलब्धिरहित जीवो का कथन मिथ्या-दर्शनलब्धिरहित जीवो के समान समझना चाहिए ।

१०४ [१] चरित्तलद्धिया ण भते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?
गोयमा ! पच नाणाइं भयणाए ।

[१०४-१ प्र] भगवन् ! चारित्रलब्धियुक्त जीव ज्ञानी है या अज्ञानी ?
[१०४-१ उ] गौतम ! उनमे पाच ज्ञान भजना से होते है ।

[२] तस्स अलद्धियाण मणपज्जवनाणवज्जाइ चत्तारि नाणाइ, तिन्नि य अन्नाणाइ भयणाए ।

[१०४-२] चारित्रलब्धिरहित जीवो मे मन पर्यवज्ञान को छोडकर चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते है ।

१०५ [१] सामाइयचरित्तलद्धिया ण भते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?
गोयमा ! नाणी, केवलवज्जाइं चत्तारि नाणाइ भयणाए ।

[९६-२ प्र] भगवन् ! केवलज्ञानलब्धिरहित जीव ज्ञानी है या अज्ञानी है ?

[९६-२ उ] गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी है। उनमे या तो केवलज्ञान को छोड कर शेष ४ ज्ञान और ३ अज्ञान भजना से पाए जाते है।

९७. [१] अण्णाणलद्धिया ण० पुच्छा।

गोयमा ! नो नाणी, अण्णाणी, तिण्णि अण्णाणाइ भयणाए।

[९७-१ प्र] भगवन् ! अज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी है, या अज्ञानी है ?

[९७-१ उ] गौतम ! वे ज्ञानी नही, अज्ञानी है। उनमे तीन अज्ञान भजना से पाए जाते है।

[२] तस्स अलद्धिया ण० पुच्छा।

गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी। पच नाणाइ भयणाए।

[९७-२ प्र] भगवन् ! अज्ञानलब्धि से रहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी है ?

[९७-२ उ] गौतम ! वे ज्ञानी है, अज्ञानी नही। उनमे ५ ज्ञान भजना से पाए जाते है।

९८ जहा अण्णाणस्स लद्धिया अलद्धिया य भणिया एव मइअण्णाणस्स, सुयअण्णाणस्स य लद्धिया अलद्धिया य भाणियव्वा।

[९८] जिस प्रकार अज्ञानलब्धि और अज्ञानलब्धि से रहित जीवो का कथन किया है, उसी प्रकार मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञानलब्धि वाले तथा इन लब्धियो से रहित जीवो का कथन करना चाहिए।

९९. विभगनाणलद्धियाण तिण्णि अण्णाणाइ नियमा। तस्स अलद्धियाण पच नाणाइ भयणाए। दो अण्णाणाइं नियमा।

[९९] विभगज्ञान-लब्धि से युक्त जीवो मे नियमत तीन अज्ञान होते है और विभगज्ञान-लब्धिरहित जीवो मे पाच ज्ञान भजना से और दो अज्ञान नियमत होते है।

१०० [१] दसणलद्धिया ण भते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?

गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणी वि। पच नाणाइ, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

[१००-१ प्र] भगवन् ! दर्शनलब्धि वाले जीव ज्ञानी है या अज्ञानी है ?

[१००-१ उ] गौतम ! वे ज्ञानी भी होते हैं, अज्ञानी भी। उनमे पाच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

[२] तस्स अलद्धिया ण भते ! जीवा किं नाणी अन्नाणी ?

गोयमा ! तस्स अलद्धिया नत्थि।

[१००-२ प्र] भगवन् ! दर्शनलब्धिरहित जीव ज्ञानी है या अज्ञानी ?
[१००-२ उ] गौतम ! दर्शनलब्धिरहित जीव कोई भी नही होता ।

१०१. [१] सम्मद्दसणलद्धियाण पच नाणाइं भयणाए ।

[१०१-१] सम्यग्दर्शनलब्धि प्राप्त जीवो मे पाच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते है ।

[२] तस्स अलद्धियाण तिण्णि अण्णाणाइ भयणाए ।

[१०१-२] सम्यग्दर्शनलब्धिरहित जीवो मे तीन अज्ञान भजना से होते है ।

१०२ [१] मिच्छादंसणलद्धिया ण भते ! ० पुच्छा ।
तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए ।

[१०२-१ प्र] भगवन् ! मिथ्यादर्शनलब्धि वाले जीव ज्ञानी है या अज्ञानी ?
[१०२-१ उ] गौतम ! उनमे तीन अज्ञान भजना से होते है ।

[२] तस्स अलद्धियाण पच नाणाइं, तिण्णि य अण्णाणाइं भयणाए ।

[१०२-२] मिथ्यादर्शनलब्धिरहित जीवो मे ५ ज्ञान और ३ अज्ञान भजना से होते है ।

१०३ सम्मामिच्छादसणलद्धिया अलद्धिया य जहा मिच्छादसणलद्धी अलद्धी तहेव भाणियव्वं ।

[१०३] सम्यग्मिथ्यादर्शन (मिश्रदर्शन) लब्धिप्राप्त जीवो का कथन मिथ्यादर्शनलब्धि-युक्त जीवो के समान जानना चाहिए, और सम्यग्मिथ्यादर्शनलब्धिरहित जीवो का कथन मिथ्या-दर्शनलब्धिरहित जीवो के समान समझना चाहिए ।

१०४ [१] चरित्तलद्धिया ण भते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?
गोयमा ! पच नाणाइं भयणाए ।

[१०४-१ प्र] भगवन् ! चारित्रलब्धियुक्त जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?
[१०४-१ उ] गौतम ! उनमे पाच ज्ञान भजना से होते है ।

[२] तस्स अलद्धियाणं मणपज्जवनाणवज्जाइ चत्तारि नाणाइ, तिन्नि य अन्नाणाइ भयणाए ।

[१०४-२] चारित्रलब्धिरहित जीवो मे मन.पर्यवज्ञान को छोडकर चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते है ।

१०५ [१] सामाइयचरित्तलद्धिया ण भते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?
गोयमा ! नाणी, केवलवज्जाइं चत्तारि नाणाइ भयणाए ।

[१०५-१ प्र] भगवन् ! सामायिकचारित्रलब्धिमान् जीव ज्ञानी है या अज्ञानी है ?

[१०५-१ उ] गौतम ! वे ज्ञानी होते है। उनमे केवलज्ञान के सिवाय चार ज्ञान भजना से होते है।

[२] तस्स अलद्धियाण पच नाणाइ तिण्णि य अण्णाणाइ भयणाए।

[१०५-२] सामायिकचारित्रलब्धिरहित जीवो मे पाच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते है।

१०६. एव जहा सामाइयचरित्तलद्धिया अलद्धिया य भणिया एव जाव अहक्खायचरित्तलद्धिया अलद्धिया य भाणियव्वा, नवर अहक्खायचरित्तलद्धियाण पच नाणाइ भयणाए।

[१०६] इसी प्रकार यावत् यथाख्यातचारित्रलब्धि वाले जीवो तक का कथन सामायिकचारित्रलब्धियुक्त जीवो के समान करना चाहिए। इतना विशेष है कि यथाख्यातचारित्रलब्धिमान् जीवो मे पाच ज्ञान भजना से पाए जाते है। इसी तरह यावत् यथाख्यातचारित्रलब्धिरहित जीवो तक का कथन सामायिकचारित्रलब्धिरहित जीवो के समान करना चाहिए।

१०७ [१] चरित्ताचरित्तलद्धिया ण भते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?

गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी। अत्थेगतिया दुण्णाणी, अत्थेगतिया तिण्णाणी। जे दुन्नाणी ते आभिणिबोहियनाणी य, सुयनाणी य। जे तिन्नाणी ते आभि० सुतना० ओहिनाणी य।

[१०७-१ प्र] भगवन् ! चारित्राचारित्र (देशचारित्र) लब्धि वाले जीव ज्ञानी है अथवा अज्ञानी हैं ?

[१०७-१ उ] गौतम ! वे ज्ञानी होते है, अज्ञानी नही। उनमे से कई दो ज्ञान वाले, कई तीन ज्ञान वाले होते हैं। जो दो ज्ञान वाले होते हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी होते हैं, जो तीन ज्ञान वाले होते है, वे आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी होते हैं।

[२] तस्स अलद्धीयाण पंच नाणाइ, तिण्णि अण्णाणाइ भयणाए।

[१०७-२] चारित्राचारित्रलब्धिरहित जीवो मे पाच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

१०८ [१] दाणलद्धियाण पच नाणाइ, तिण्णि अण्णाणाइ भयणाए।

[१०८-१] दानलब्धिमान् जीवो मे पाच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

[२] तस्स अलद्धीया ण० पुच्छा।

गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी नियमा। एगनाणी—केवलनाणी।

[१०८-२ प्र] भगवन् ! दानलब्धिरहित जीव ज्ञानी है या अज्ञानी ?

[१०८-२ उ] गौतम ! वे ज्ञानी होते हैं, अज्ञानी नही। उनमे नियम से एकमात्र केवलज्ञान होता है।

१०९ एव जाव वीरियस्स लद्धी अलद्धी य भाणियव्वा ।

[१०९] इसी प्रकार यावत् वीर्यलब्धियुक्त और वीर्यलब्धिरहित जीवो का कथन करना चाहिए ।

११० [१] बालवीरियलद्धियाण तिण्णि नाणाइ तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए ।

[११०-१] बालवीर्यलब्धियुक्त जीवो मे तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते है ।

[२] तस्स अलद्धियाण पंच नाणाइ भयणाए ।

[११०-२] बालवीर्यलब्धिरहित जीवो मे पाच ज्ञान भजना से होते हैं ।

१११ [१] पडियवीरियलद्धियाणं पच नाणाइ भयणाए ।

[१११-१] पण्डितवीर्यलब्धिमान् जीवो मे पाच ज्ञान भजना से पाए जाते हैं ।

[२] तस्स अलद्धियाण मणपज्जवनाणवज्जाइं णाणाइ, अण्णाणाणि तिण्णि य भयणाए ।

[१११-२] पण्डितवीर्यलब्धिरहित जीवो मे मन पर्यवज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं ।

११२. [१] बालपडियवीरियलद्धिया ण भते ! जीवा० ?
तिण्णि नाणाइ भयणाए ।

[११२-१ प्र] भगवन् ! बाल-पण्डित-वीर्यलब्धि वाले जीव ज्ञानी है, या अज्ञानी ?
[११२-१ उ] गौतम ! उनमे तीन ज्ञान भजना से होते है ।

[२] तस्स अलद्धियाणं पच नाणाइ, तिण्णि य अण्णाणाइ भयणाए ।

[११२-२] बालपण्डितवीर्यलब्धि-रहित जीवो मे पाच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते है ।

११३ [१] इदियलद्धिया ण भते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?
गोयमा ! चत्तारि णाणाइ, तिण्णि य अन्नाणाइ भयणाए ।

[११३-१ प्र] भगवन् ! इन्द्रियलब्धिमान् जीव ज्ञानी होते हैं या अज्ञानी ?
[११३-१ उ] गौतम ! उनमे चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते है ।

[२] तस्स अलद्धिया ण० पुच्छा ।
गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी नियमा । एगनाणी—केवलनाणी ।

[११३-२ प्र] भगवन् ! इन्द्रियलब्धिरहित जीव ज्ञानी होते है या अज्ञानी ?
[११३-२ उ] गौतम ! वे ज्ञानी होते हैं, अज्ञानी नही । वे नियमत एकमात्र केवलज्ञानी होते हैं ।

११४ [१] सोइंदियलद्धियाण जहा इंदियलद्धिया (सु ११३)।

[११४-१] श्रोत्रेन्द्रियलब्धियुक्त जीवो का कथन इन्द्रियलब्धिवाले जीवो की तरह (सू ११३ के अनुसार) करना चाहिए।

[२] तस्स अलद्धिया णं० पुच्छा।

गोयमा ! नाणी वि अण्णाणी वि। जे नाणी ते अत्थेगतिया दुन्नाणी, अत्थेगतिया एगन्नाणी। जे दुन्नाणी ते आभिणिबोहियनाणी सुयनाणी। जे एगनाणी ते केवलनाणी। जे अण्णाणी ते नियमा दुअन्नाणी, तं जहा—मइअण्णाणी य, सुतअण्णाणी य।

[११४-२ प्र] भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रियलब्धिरहित जीव ज्ञानी होते है या अज्ञानी ?

[११४-२ उ] गौतम ! वे ज्ञानी भी होते है और अज्ञानी भी होते हैं। जो ज्ञानी होते है, उनमे से कई दो ज्ञान वाले होते है, और कई एक ज्ञान वाले होते हैं। जो दो ज्ञान वाले होते हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी होते है। जो एक ज्ञान वाले होते है, वे केवलज्ञानी होते है। जो अज्ञानी होते है, वे नियमत दो अज्ञानवाले होते है। यथा—मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान।

११५ चक्खिदिय-घाणिंदियाण लद्धियाण अलद्धियाण य जहेव सोइंदियस्स (सु ११४)।

[११५] चक्षुरिन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय-लब्धि वाले जीवो का कथन श्रोत्रेन्द्रियलब्धिमान् जीवो के समान (सू ११४ की तरह) करना चाहिए। चक्षुरिन्द्रिय-घ्राणेन्द्रियलब्धिरहित जीवो का कथन श्रोत्रेन्द्रियलब्धिरहित जीवो के समान करना चाहिए।

११६. [१] जिब्भिदियलद्धियाणं चत्तारि णाणाइं, तिण्णि य अण्णाणाणि भयणाए।

[११६-१] जिह्वेन्द्रियलब्धि वाले जीवो मे चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

[२] तस्स अलद्धिया णं० पुच्छा।

गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणी वि। जे नाणी ते नियमा एगनाणी-केवलनाणी। जे अण्णाणी ते नियमा दुअन्नाणी, तं जहा—मइअण्णाणी य, सुतअन्नाणी य।

[११६-२ प्र] भगवन् ! जिह्वेन्द्रियलब्धिरहित जीव ज्ञानी होते हैं या अज्ञानी ?

[११६-२ उ] गौतम वे ज्ञानी भी होते है, अज्ञानी भी होते हैं। जो ज्ञानी होते है, वे नियमत एकमात्र केवलज्ञान वाले होते हैं, और जो अज्ञानी होते है, वे नियमत दो अज्ञान वाले होते है, यथा—मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान।

११७ फासिंदियलद्धियाण अलद्धियाण जहा इंदियलद्धिया य अलद्धिया य (सु ११३)। ९।

[११७] स्पर्शेन्द्रियलब्धि-युक्त जीवो का कथन इन्द्रियलब्धि वाले जीवो के समान (सू ११३ के अनुसार) करना चाहिए। (अर्थात् उनमे चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं।)

स्पर्शेन्द्रियलब्धिरहित जीवो का कथन इन्द्रियलब्धिरहित जीवो के समान (सू ११३ के अनुसार) करना चाहिए। (अर्थात्—उनमे एकमात्र केवलज्ञान होता है।)

(नवम द्वार समाप्त)

विवेचन—लब्धिद्वार की अपेक्षा से ज्ञानी-अज्ञानी की प्ररूपणा—प्रस्तुत नवम द्वार मे लब्धिद्वार के प्रारम्भ से पूर्व लब्धि के दस प्रकार तथा उनके भेद-प्रभेद का कथन करके ज्ञानादिलब्धि मे ज्ञानी-अज्ञानी की सैद्धान्तिक प्ररूपणा की गई है।

लब्धि की परिभाषा—ज्ञानादि गुणो के प्रतिबन्धक उन ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के क्षय या क्षयोपशम से आत्मा मे ज्ञानादि गुणो की उपलब्धि (लाभ या प्रकट) होना लब्धि है। यह जैनदर्शन का पारिभाषिक शब्द भी है।

लब्धि के मुख्य भेद—ज्ञानादि दश है। (१) **ज्ञानलब्धि**—ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय या क्षयोपशम से आत्मा मे मतिज्ञानादि गुणो का लाभ होना। (२) **दर्शनलब्धि**—सम्यक्, मिथ्या या मिश्र-श्रद्धानरूप आत्मा का परिणाम प्राप्त होना दर्शनलब्धि है। (३) **चारित्रलब्धि**—चारित्र-मोहनीय कर्म के क्षयादि से होने वाला परिणाम चारित्रलब्धि है। (४) **चारित्राचारित्रलब्धि**—अप्रत्याख्यानी चारित्रमोहनीय कर्म के क्षयोपशम से होने वाला आत्मा का देशविरतिरूपपरिणाम चारित्राचारित्रलब्धि है। (५) **दानलब्धि**—दानान्तराय के क्षय या क्षयोपशम से होने वाली लब्धि। (६) **लाभलब्धि**—लाभान्तराय कर्म के क्षय अथवा क्षयोपशम से होने वाली लब्धि। (७) **भोग-लब्धि**—भोगान्तराय के क्षयादि से होने वाली लब्धि को भोगलब्धि कहते है। (८) **उपभोगलब्धि**—उपभोगान्तराय के क्षयादि से होने वाली लब्धि उपभोगलब्धि है। (९) **वीर्यलब्धि**—वीर्यान्तराय कर्म के क्षय या क्षयोपशम से होने वाली लब्धि। (१०) **इन्द्रियलब्धि**—मतिज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से तथा जातिनामकर्म एव पर्याप्तनामकर्म के उदय से होने वाली लब्धि।

ज्ञानलब्धि—ज्ञान के प्रतिबन्धक ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयादि से आत्मा मे ज्ञानगुण का लाभ प्रकट होना। ज्ञानलब्धि के ५ और इसके विपरीत अज्ञानलब्धि के तीन भेद बताये गए हैं।

दर्शनलब्धि के तीन भेद : उनका स्वरूप—(१) **सम्यग्दर्शनलब्धि**—मिथ्यात्वमोहनीय कर्म के क्षय, क्षयोपशम या उपशम से आत्मा मे होने वाला परिणाम। सम्यग्दर्शन हो जाने पर मति-अज्ञान आदि भी सम्यग्ज्ञान रूप मे परिणत हो जाते है। (२) **मिथ्यादर्शनलब्धि**—अदेव मे देव बुद्धि अधर्म मे धर्मबुद्धि और कुगुरु मे गुरुबुद्धिरूप आत्मा के विपरीत श्रद्धान—मिथ्यात्व के अशुद्ध पुद्गलो के वेदन से उत्पन्न विपर्यासरूप जीव-परिणाम को मिथ्यादर्शनलब्धि कहते है। (३) **सम्यग्मिथ्या (मिश्र) दर्शनलब्धि**—मिथ्यात्व के अर्धविशुद्ध पुद्गल के वेदन से एव मिश्रमोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न मिश्ररुचि—मिश्ररूप (किञ्चित् अयथार्थ तत्त्व श्रद्धानरूप) जीव के परिणाम को सम्यग्मिथ्या-दर्शनलब्धि कहते हैं।

चारित्रलब्धि स्वरूप और प्रकार—चारित्रमोहनीय कर्म के क्षयादि से होने वाले विरति-रूप परिणाम को, अथवा अन्य जन्म मे गृहीत कर्ममल के निवारणार्थ मुमुक्षु आत्मा के सर्वसावद्य-निवृत्ति-रूप परिणाम को चारित्रलब्धि कहते है। (१) **सामायिकचारित्रलब्धि**—सर्वसावद्यव्यापार के त्याग एव निरवद्यव्यापारसेवनरूप—रागद्वेषरहित आत्मा के क्रियानुष्ठान के लाभ को सामायिकचारित्र-लब्धि कहते हैं। सामायिक के दो भेद हैं—इत्वरकालिक और यावत्कथिक। इन दोनो के कारण

सामायिकचारित्रलब्धि के भी दो भेद हो जाते है। (२) **छेदोपस्थापनीयचारित्रलब्धि**—जिस चारित्र मे पूर्वपर्याय का छेद करके महाव्रतो का उपस्थापन—आरोपण होता है, तद्रूप अनुष्ठान-लाभ को छेदोपस्थापनीयचारित्रलब्धि कहते है। यह दो प्रकार का है—निरतिचार और सातिचार। इनके कारण छेदोपस्थापनीयचारित्रलब्धि के भी दो भेद हो जाते हैं। (३) **परिहारविशुद्धिचारित्रलब्धि**—जिस चारित्र मे परिहार (तपश्चर्या-विशेष) से आत्मशुद्धि होती है, अथवा अनेषणीय आहारादि के परित्याग से विशेषत आत्मशुद्धि होती है, उसे परिहारविशुद्धिचारित्र कहते है। इस चारित्र मे तपस्या का कल्प अठारह मास मे परिपूर्ण होता है। इसकी लम्बी प्रक्रिया है। निर्विश्यमानक और निर्विष्टकायिक के भेद से परिहारविशुद्धिचारित्र दो प्रकार का होने से परिहारविशुद्धिचारित्रलब्धि भी दो प्रकार की है। (४) **सूक्ष्मसम्परायचारित्रलब्धि**—जिस चारित्र मे सूक्ष्म सम्पराय अर्थात् सूक्ष्म (सज्वलन) लोभकषाय शेष रहता है, उसे सूक्ष्म-सम्परायचारित्र कहते है, ऐसे चारित्र के लाभ को सूक्ष्म-सम्परायचारित्रलब्धि कहते है। इस चारित्र के विशुद्धयमान और सक्लिश्यमान ये दो भेद होने से सूक्ष्म-सम्परायचारित्रलब्धि भी दो प्रकार की है। (५) **यथाख्यातचारित्रलब्धि**—कषाय का उदय न होने से, अकषायी साधु का प्रसिद्ध चारित्र '**यथाख्यातचारित्र**' कहलाता है। इसके स्वामियो के छद्मस्थ और केवली ऐसे दो भेद होने से यथाख्यातचारित्रलब्धि दो प्रकार की है।

चारित्राचारित्रलब्धि का अर्थ है—देशविरतिलब्धि। यहाँ मूलगुण, उत्तरगुण तथा उसके भेदो की विवक्षा नही की है, किन्तु अप्रत्याख्यानकषाय के क्षयोपशमजन्य परिणाममात्र की विवक्षा की गई है। इसलिए यह लब्धि एक ही प्रकार की है।

दानादिलब्धियाँ : एक-एक प्रकार की—दानलब्धि, लाभलब्धि, भोगलब्धि तथा उपभोग-लब्धि के भी भेदो की विवक्षा न करने से ये लब्धियाँ भी एक-एक प्रकार की कही गई हैं।

वीर्यलब्धि—वीर्यान्तरायकर्म के क्षय या क्षयोपशम से प्रकट होने वाली लब्धि वीर्यलब्धि है। उसके तीन प्रकार है—(१) **बालवीर्यलब्धि**—जिससे बाल अर्थात् सयमरहित जीव की असयमरूप प्रवृत्ति होती है, वह बालवीर्यलब्धि है। (२) **पण्डितवीर्यलब्धि**—जिससे सयम के विषय मे प्रवृत्ति होती हो। (३) **बाल-पण्डितवीर्यलब्धि**—जिससे देशविरति मे प्रवृत्ति होती हो, उसे बालपण्डितवीर्यलब्धि कहते हैं।

ज्ञानलब्धियुक्त जीवो मे ज्ञान और अज्ञान की प्ररूपणा—ज्ञानलब्धिमान् जीव सदा ज्ञानी और अज्ञानलब्धिवाले (ज्ञानलब्धिरहित) जीव सदा अज्ञानी होते हैं। आभिनिबोधिकज्ञानलब्धि वाले जीवो मे चार ज्ञान भजना से पाए जाते हैं, इसका कारण यह है कि केवली के आभिनिबोधिक ज्ञान नही होता। मतिज्ञान की अलब्धि वाले जो ज्ञानी हैं, वे एकमात्र केवलज्ञान वाले है और जो अज्ञानी है, वे दो अज्ञान वाले या तीन अज्ञानयुक्त होते हैं। इसी प्रकार श्रुतज्ञान की लब्धि और अलब्धि वाले जीवो के विषय मे समझना चाहिए। अवधिज्ञान वालो मे तीन ज्ञान (मति, श्रुत और अवधि) अथवा चार ज्ञान (केवलज्ञान को छोडकर) होते हैं। अवधिज्ञान की अलब्धिवाले जो ज्ञानी होते हैं, उनमे दो ज्ञान (मति और श्रुत) होते है, या तीन ज्ञान (मति, श्रुत, और मन पर्यव ज्ञान होते है, या फिर एक ज्ञान (केवलज्ञान) होता है। जो अज्ञानी है, उनमे दो अज्ञान (मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान) या तीनो अज्ञान होते है। मन पर्यायज्ञानलब्धिवाले जीवो मे या तो तीन ज्ञान (मति, श्रुत और मन पर्याय ज्ञान) या फिर ४ ज्ञान (केवलज्ञान को छोडकर) होते है। मन पर्यायज्ञान की अलब्धिवाले जीवो मे जो ज्ञानी है, उनमे दो ज्ञान (मति और श्रुत) वाले, या तीन ज्ञान (मति, श्रुत, अवधि) वाले है, या फिर

एक ज्ञान (केवलज्ञान) वाले है। इनमे जो अज्ञानी है, वे दो या तीन अज्ञान वाले है। केवलज्ञान-लब्धिवाले जीवो मे एकमात्र केवलज्ञान ही होता है, केवलज्ञान की अलब्धिवाले जीवो मे जो ज्ञानी हैं उनमे प्रथम के दो ज्ञान, या प्रथम के तीन ज्ञान अथवा मति, श्रुत और मन पर्यव ज्ञान, या प्रथम के चार ज्ञान होते है, जो अज्ञानी है, उनमे दो या तीन अज्ञान होते है।

अज्ञानलब्धियुक्त जीवो मे ज्ञान और अज्ञान की प्ररूपणा—अज्ञानलब्धिमान् जीवो मे भजना से तीन अज्ञान (कई प्रथम के दो अज्ञान वाले और कई तीन अज्ञान वाले) होते है। अज्ञानलब्धि-रहित जीवो मे भजना से ५ ज्ञान पाए जाते हैं। मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान की लब्धि वाले जीवो मे पूर्ववत् ३ अज्ञान भजना से पाए जाए है। तथा मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान की अलब्धि वाले जीवो मे पूर्ववत् ५ ज्ञान भजना से पाए जाते है। विभगज्ञान की लब्धि वाले अज्ञानी जीवो मे नियमत तीन अज्ञान होते हैं। विभगज्ञान की अलब्धि वाले ज्ञानी जीवो मे पाच ज्ञान भजना से और अज्ञानी जीवो मे नियमत प्रथम के दो अज्ञान पाए जाते हैं।

दर्शनलब्धि युक्त जीवो मे ज्ञान-अज्ञान-प्ररूपणा—कोई भी जीव दर्शनलब्धि से रहित नही होता। दर्शन के तीन प्रकारो (सम्यक्, मिथ्या और मिश्र) मे से कोई-न-कोई एक दर्शन जीव मे होता ही है। सम्यग्दर्शनलब्धि वाले जीवो मे ५ ज्ञान भजना से पाए जाते है। सम्यग्दर्शनलब्धि रहित (मिथ्यादृष्टि या मिश्रदृष्टि) जीवो मे तीन अज्ञान भजना से पाए जाते है। मिथ्यादर्शनलब्धि वाले जीव अज्ञानी ही होते है, उनमे तीन अज्ञान भजना से पाये जाते है। मिथ्यादर्शनलब्धिरहित जीव या तो सम्यग्दृष्टि होगे या मिश्रदृष्टि होगे। यदि वे सम्यग्दृष्टि होगे तो उनमे ५ ज्ञान भजना से होगे और मिश्रदृष्टि होगे तो उनमे तीन अज्ञान भजना से होगे। सम्यग्मिथ्यादर्शनलब्धि और अलब्धि वाले जीवो मे ज्ञान और अज्ञान की प्ररूपणा मिथ्यादर्शनलब्धि और अलब्धिवाले जीवो की तरह समझनी चाहिए।

चारित्रलब्धियुक्त जीवो मे ज्ञान-अज्ञान-प्ररूपणा—चारित्रलब्धि वाले जीव ज्ञानी ही होते है। अत उनमे ५ ज्ञान भजना से पाए जाते हैं, क्योकि केवली भगवान् भी चारित्री होते है। चारित्र अलब्धिवाले जीव ज्ञानी और अज्ञानी दोनो तरह के होते है। जो ज्ञानी हैं, उनमे भजना से ४ ज्ञान (मन पर्यायज्ञान को छोडकर) होते है, क्योकि असयती सम्यग्दृष्टि जीवो मे पहले के दो या तीन ज्ञान होते है, और सिद्धभगवान् मे केवलज्ञान होता है। सिद्धो मे चारित्रलब्धि या अलब्धि नही है, वे नो-चारित्री-नो-अचारित्री होते है। चारित्रलब्धिरहित, जो अज्ञानी हैं, उनमे तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं। सामायिक आदि चार प्रकार के चारित्रलब्धियुक्त जीव ज्ञानी और छद्मस्थ ही होते है, इसलिए उनमे चार ज्ञान (केवलज्ञान को छोड कर) भजना से पाये जाते है। यथाख्यातचारित्र ग्यारहवें से चौदहवें गुणस्थान तक के जीवो मे होता है। इनमे से ग्यारहवे और बारहवे गुणस्थानवर्ती जीव छद्मस्थ होने से उनमे आदि के ४ ज्ञान होते हैं और तेरहवे तथा चौदहवे गुणस्थानवर्ती जीव केवली होते है, अत उनमे केवल ५ वा ज्ञान (केवलज्ञान) होता है। इसलिए कहा गया है कि यथाख्यातचारित्रलब्धियुक्त जीवो मे ५ ज्ञान भजना से पाए जाते है।

चारित्राचारित्रलब्धियुक्त जीवो मे ज्ञान-अज्ञान प्ररूपणा—इस लब्धि वाले जीव सम्यग्दृष्टि ज्ञानी होते हैं, इसलिए उनमे तीन ज्ञान भजना से पाए जाते है, क्योकि तीर्थंकर आदि जीव जब तक पूर्ण चारित्र ग्रहण नही करते, तब तक वे जन्म से लेकर दीक्षाग्रहण करने तक मति, श्रुत और अवधि-ज्ञान से सम्पन्न होते है। चारित्राचारित्रलब्धिरहित जीव, जो असयत सम्यग्दृष्टि व ज्ञानी है, उनमे

सम्यग्ज्ञान होने से ५ ज्ञान भजना से पाए जाते हैं, इनमे जो अज्ञानी है, उनमे तीन अज्ञान भजना से पाये जाते है ।

दानादि चार लब्धियो वाले जीवो में ज्ञान-अज्ञान-प्ररूपणा—दानान्तराय कर्म के क्षय अथवा क्षयोपशम से प्राप्त होने वाली दानलब्धि से युक्त जो ज्ञानी जीव (सम्यग्दृष्टि, देशव्रती, महाव्रती एव केवली) है, उनमे पाच ज्ञान भजना से पाए जाते हैं । दानलब्धि वाले जो अज्ञानी जीव हैं, उनमे तीन अज्ञान पाए जाते है । दान आदि लब्धिरहित जीव सिद्ध होते हैं, यद्यपि उनके दानान्तराय आदि पाचो अन्तराय कर्मो का क्षय हो चुका होता है, तथापि वहाँ दातव्य आदि पदार्थ का अभाव होने से, तथा दानग्रहणकर्ता जीवो के न होने से और कृतकृत्य हो जाने के कारण किसी प्रकार का प्रयोजन न होने से उनमे दान आदि की लब्धि नही मानी गई है । उनमे नियम से एकमात्र केवलज्ञान होता है । अत दानलब्धि और अलब्धि वाले जीवो की तरह लाभलब्धि, भोगलब्धि, उपभोगलब्धि, और वीर्यलब्धि तथा इनकी अलब्धि वाले जीवो का कथन करना चाहिए ।

वीर्यलब्धि वाले जीवो मे ज्ञान-अज्ञान-प्ररूपणा—बालवीर्यलब्धि वाले जीव असयत अविरत होते हैं । उनमे से जो सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीव हैं, उनमे तीन ज्ञान भजना से और जो मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीव है, उनमे तीन अज्ञान भजना से पाए जाते है । बालवीर्यलब्धिरहित जीव सर्वविरत, देशविरत और सिद्ध होते हैं, अत उनमे पाच ज्ञान भजना से पाए जाते हैं । पण्डितवीर्यलब्धि-सम्पन्न जीव ज्ञानी ही होते है, उनमे पाच ज्ञान भजना से पाए जाते है । मन पर्यवज्ञान पण्डितवीर्यलब्धि वाले जीवो मे ही होता है । पण्डितवीर्यलब्धिरहित जीव असयत, देशसयत और सिद्ध होते है । इनमे से असयत जीवो मे पहले के तीन ज्ञान या तीन अज्ञान भजना से पाए जाते है, देशसयत मे प्रथम के तीन ज्ञान भजना से पाए जाते है और सिद्ध जीवो मे एकमात्र केवलज्ञान ही होता है । सिद्ध जीवो मे पण्डितवीर्यलब्धि नही होती, क्योकि अहिंसादि धर्मकार्यो मे सर्वथा प्रवृत्ति करना पण्डितवीर्य कहलाता है, और ऐसी प्रवृत्ति सिद्धो मे नही होती । बाल-पण्डितवीर्यलब्धि वाले देशसयत जीव होते हैं, उनमे प्रथम के तीन ज्ञान भजना से पाए जाते है । बाल-पण्डितवीर्यलब्धिरहित जीव असयत, सर्वविरत और सिद्ध होते हैं, इनमे पाच ज्ञान अथवा तीन अज्ञान भजना से पाए जाते है ।

इन्द्रियलब्धि वाले जीवो मे ज्ञान-अज्ञान-प्ररूपणा—इन्द्रियलब्धि वाले ज्ञानी जीवो मे प्रथम के चार ज्ञान भजना से होते है, इनमे केवलज्ञान नही होता, क्योकि केवलज्ञानी इन्द्रियो का उपयोग नही करते । इन्द्रियलब्धियुक्त अज्ञानी जीवो मे तीन अज्ञान भजना से पाए जाते है । इन्द्रियलब्धि-रहित जीव एकमात्र केवलज्ञानी होते हैं, उनमे सिर्फ एक केवलज्ञान पाया जाता है । श्रोत्रेन्द्रिय-लब्धि, चक्षुरिन्द्रियलब्धि और घ्राणेन्द्रियलब्धि वाले और अलब्धिवाले जीवो का कथन इन्द्रियलब्धि और अलब्धि वाले जीवो की तरह करना चाहिए । अर्थात्—श्रोत्रेन्द्रिय आदि लब्धिरहित जो ज्ञानी जीव है, उनमे दो या एक ज्ञान होता है । जो ज्ञानी हैं, उनमे सास्वादनसम्यग्दृष्टि अपर्याप्त अवस्था मे दो ज्ञान पाये जाते हैं, जो एक ज्ञान वाले हैं, उनमे सिर्फ केवलज्ञान होता है, क्योकि श्रोत्रादि इन्द्रियोपयोगरहित होने से श्रोत्रादि इन्द्रियलब्धिरहित है । श्रोत्रेन्द्रियलब्धिरहित अज्ञानी जीवो मे प्रथम के दो अज्ञान पाए जाते है । चक्षुरिन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय लब्धिमान् जो पचेन्द्रिय जीव है, उनमे चार ज्ञान (केवलज्ञान के अतिरिक्त) और तीन अज्ञान भजना से होते है । विकलेन्द्रियो मे श्रोत्रेन्द्रियलब्धिवत् दो ज्ञान व दो अज्ञान पाए जाते हैं । चक्षुरिन्द्रियलब्धिरहित जीव एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय तथा केवली होते है, एव घ्राणेन्द्रियलब्धिरहित जीव एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और केवली

होते है, उनमे से द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय जीवो मे सास्वादनसम्यग्दर्शन के सद्भाव मे पूर्व के दो ज्ञान, और उसके अभाव मे प्रथम के दो अज्ञान पाए जाते है। केवलियो मे सिर्फ एक केवलज्ञान होता है। जिह्वेन्द्रियलब्धिवाले जीवो मे चार ज्ञान या तीन अज्ञान भजना से पाए जाते है। जिह्वेन्द्रिय-लब्धिरहित जीव ज्ञानी भी होते है, अज्ञानी भी। जो ज्ञानी है, उनमे एकमात्र केवलज्ञान और जो अज्ञानी है, वे एकेन्द्रिय है, उनमे (विभगज्ञान के सिवाय) दो अज्ञान नियमत होते हैं। एकेन्द्रिय जीवो मे सास्वादनसम्यग्दर्शन का अभाव होने से उनमे ज्ञान नही होता। स्पर्शेन्द्रियलब्धि और अलब्धिवाले जीवो का कथन, इन्द्रियलब्धि और अलब्धिवाले जीवो की तरह करना चाहिए। अर्थात् लब्धिमान् जीवो मे चार ज्ञान (केवलज्ञान के सिवाय) और तीन अज्ञान भजना से होते हे और अलब्धिमान् जीव केवली होते है, उनमे एकमात्र केवलज्ञान होता है।[1]

दसवें उपयोगद्वार से लेकर पन्द्रहवें आहारकद्वार तक के जीवों में ज्ञान और अज्ञान की प्ररूपणा—

११८ सागारोवउत्ता णं भंते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?

पच नाणाइ, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

[११८ प्र] भगवन् ! साकारोपयोग-युक्त जीव ज्ञानी होते है या अज्ञानी ?

[११८ उ] गौतम ! वे ज्ञानी भी होते है, अज्ञानी भी होते है, जो ज्ञानी होते है, उनमे पाच ज्ञान भजना से पाए जाते है और जो अज्ञानी होते है, उनमे तीन अज्ञान भजना से पाए जाते है।

११९. आभिणिबोहियनाणसाकारोवउत्ता ण भते ! ० ?

चत्तारि णाणाइं भयणाए।

[११९ प्र] भगवन् ! आभिनिबोधिक-ज्ञानसाकारोपयोगयुक्त जीव ज्ञानी होते है या अज्ञानी ?

[११९ उ] गौतम ! उनमे चार ज्ञान भजना से पाए जाते हैं।

१२० एव सुतनाणसागारोवउत्ता वि।

[१२०] श्रुतज्ञान-साकारोपयोग-युक्त जीवो का कथन भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

१२१ ओहिनाणसागारोवउत्ता जहा ओहिनाणलद्धिया (सु ९४ [१])।

[१२१] अवधिज्ञान-साकारोपयोग-युक्त जीवो का कथन अवधिज्ञानलब्धिमान् जीवो के समान (सू ९४-१ के अनुसार) करना चाहिए।

१२२ मणपज्जवनाणसागारोवजुत्ता जहा मणपज्जवनाणलद्धिया (सु ९५ [१])।

[१२२] मन पर्यवज्ञान-साकारोपयोग-युक्त जीवो का कथन मन पर्यवज्ञानलब्धिमान् जीवो के समान (सू ९५-१ के अनुसार) करना चाहिए।

१२३ केवलनाणसागारोवजुत्ता जहा केवलनाणलद्धिया (सु ९६ [१])।

[१२३] केवलज्ञान-साकारोपयोगयुक्त जीवो का कथन केवलज्ञानलब्धिमान् जीवो के समान (सू ९६-१ के अनुसार) समझना चाहिए। (अर्थात्—उनमे एकमात्र केवलज्ञान ही पाया जाता है।)

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३५० से ३५४ तक

१२४. मइअण्णाणसागारोवउत्ताण तिण्णि अण्णाणाइ भयणाए।

[१२४] मति-अज्ञान-साकारोपयोगयुक्त जीवो मे तीन अज्ञान भजना से पाए जाते है।

१२५ एवं सुतअण्णाणसागारोवउत्ता वि।

[१२५] इसी प्रकार श्रुत-अज्ञान-साकारोपयोगयुक्त जीवो का कथन करना चाहिए।

१२६ विभंगनाणसागारोवजुत्ताण तिण्णि अण्णाणाइ नियमा।

[१२६] विभगज्ञान-साकारोपयोग-युक्त जीवो मे नियमत तीन अज्ञान पाए जाते है।

१२७ अणागारोवउत्ता ण भते! जीवा किं नाणी, अण्णाणी?

पच नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइ भयणाए।

[१२७ प्र] भगवन्! अनाकारोपयोग वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी?

[१२७ उ] गौतम! अनाकारोपयोग-युक्त जीव ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी है। उनमे पाच ज्ञान अथवा तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं।

१२८ एव चक्खुदसण-अचक्खुदसणअणागारोवजुत्ता वि, नवरं चत्तारि णाणाइ, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

[१२८] इसी प्रकार चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन-अनाकारोपयोग-युक्त जीवो के विषय मे समझ लेना चाहिए, किन्तु इतना विशेष है कि चार ज्ञान अथवा तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

१२९ ओहिदसणअणागारोवजुत्ता ण० पुच्छा।

गोयमा! नाणी वि अण्णाणी वि। जे नाणी ते अत्थेगतिया तिन्नाणी, अत्थेगतिया चउनाणी। जे तिन्नाणी ते आभिणिबोहिय० सुतनाणी ओहिनाणी। जे चउणाणी ते आभिणिबोहियनाणी जाव मणपज्जवनाणी। जे अन्नाणी ते नियमा तिअण्णाणी, त जहा—मइअण्णाणी सुतअण्णाणी विभगनाणी।

[१२९ प्र] भगवन्! अवधिदर्शन-अनाकारोपयोग-युक्त जीव ज्ञानी होते है अथवा अज्ञानी?

[१२९ उ] गौतम! वे ज्ञानी भी होते हैं और अज्ञानी भी। जो ज्ञानी होते है, उनमे कई तीन ज्ञान वाले होते हैं और कई चार ज्ञान वाले होते हैं। जो तीन ज्ञान वाले होते हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी होते हैं और जो चार ज्ञान वाले होते हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञान से लेकर यावत् मन पर्यवज्ञान तक वाले होते हैं। जो अज्ञानी होते हैं, उनमे नियमतः तीन अज्ञान पाए जाते हैं, यथा—मति-अज्ञान, श्रुत अज्ञान और विभगज्ञान।

१३० केवलदसणअणागारोवजुत्ता जहा केवलनाणलद्धिया (सु ९६ [१])। १०।

[१३०] केवलदर्शनअनाकारोपयोगयुक्त जीवो का कथन केवलज्ञानलब्धियुक्त जीवो के समान (सू ९६-१ के अनुसार) समझना चाहिए। (दशम द्वार)

१३१. सजोगी णं भंते ! जीवा किं नाणी० ?

जहा सकाइया (सु ४९)।

[१३१ प्र] भगवन् ! सयोगी जीव ज्ञानी होते है या अज्ञानी ?

[१३१ उ] गौतम ! सयोगी जीवो का कथन सकायिक जीवो के समान (सू ४९ के अनुसार) समझना चाहिए।

१३२. एवं मणजोगी, वइजोगी, कायजोगी वि।

[१३२] इसी प्रकार मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी जीवो का कथन भी समझना चाहिए।

१३३ अजोगी जहा सिद्धा (सु ३८)। ११।

[१३३] अयोगी (योग-रहित) जीवो का कथन सिद्धो के समान (सू ३८ के अनुसार) समझना चाहिए। (ग्यारहवा द्वार)

१३४. सलेस्सा णं भंते ! ० ?

जहा सकाइया (सु ४९)।

[१३४ प्र] भगवन् ! सलेश्य (लेश्या वाले) जीव ज्ञानी होते है या अज्ञानी ?

[१३४ उ] गौतम ! सलेश्य जीवो का कथन सकायिक जीवो के समान (सू ४९ के अनुसार) जानना चाहिए।

१३५ [१] कण्हलेस्सा णं भंते ! ० ?

जहा सइंदिया। (सु ४४)।

[१३५-१ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्यावान् जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

[१३५-१ उ] गौतम ! कृष्णलेश्या वाले जीवो का कथन सेन्द्रिय जीवो के समान (सू ४४ के अनुसार) जानना चाहिए।

[२] एव जाव पम्हलेसा।

[१३५-२] इसी प्रकार नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या और पद्मलेश्या वाले जीवो का कथन करना चाहिए।

१३६ सुक्कलेस्सा जहा सलेस्सा (सु १३४)।

[१३६] शुक्ललेश्या वाले जीवो का कथन सलेश्य जीवो के समान (सू १३४ के अनुसार) समझना चाहिए।

१३७. अलेस्सा जहा सिद्धा (सु. ३८)। १२।

[१३७] अलेश्य (लेश्यारहित) जीवो का कथन सिद्धो के समान (सू ३८ के अनुसार) जानना चाहिए। (बारहवा द्वार)

१३८. [१] सकसाई ण भते !० ?

जहा सइंदिया (सु ४४)।

[१३८-१ प्र] भगवन्! सकषायी जीव ज्ञानी है या अज्ञानी ?

[१३८-१ उ] गौतम! सकषायी जीवो का कथन सेन्द्रिय जीवो के समान (सू ४४ के अनुसार) जानना चाहिए।

[२] एव जाव लोहकसाई।

[१३८-२] इसी प्रकार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवो के विषय मे भी समझ लेना चाहिए।

१३९ अकसाई ण भते! किं णाणी० ?

पच नाणाइ, भयणाए। १३।

[१३९ प्र] भगवन्! अकषायी (कषायमुक्त) जीव ज्ञानी होते हैं, अथवा अज्ञानी ?

[१३९ उ] गौतम! वे ज्ञानी होते है, अज्ञानी नही। उनमे पाच ज्ञान भजना से पाए जाते हैं। (तेरहवा द्वार)

१४० [१] सवेदगा णं भते!० ?

जहा सइंदिया (सु. ४४)।

[१४०-१ प्र] भगवन्! सवेदक (वेदसहित) जीव ज्ञानी होते है, अथवा अज्ञानी ?

[१४०-१ उ] गौतम! सवेदक जीवो का कथन सेन्द्रिय जीवो के समान (सू ४४ के अनुसार) जानना चाहिए।

[२] एवं इत्थिवेदगा वि। एव पुरिसवेयगा। एव नपु सकवे०।

[१४०-२] इसी तरह स्त्रीवेदक, पुरुषवेदक और नपु सकवेदक जीवो के सम्बन्ध मे भी कहना चाहिए।

१४१ अवेदगा जहा अकसाई (सु १३९)। १४।

[१४१] अवेदक (वेदरहित) जीवो का कथन अकषायी जीवो के समान (सू १३९ के अनुसार) जानना चाहिए। (चौदहवाँ द्वार)

१४२. आहारगा णं भते! जीवा० ?

जहा सकसाई (सु १३८), नवर केवलनाण पि।

[१४२ प्र] भगवन्! आहारक जीव ज्ञानी होते हैं या अज्ञानी ?

[१४२ उ] गौतम! आहारक जीवो का कथन सकषायी जीवो के समान (सू १३८ के अनुसार) जानना चाहिए, किन्तु इतना विशेष है कि उनमे केवलज्ञान भी पाया जाता है।

१४३ अणाहारगा ण भते! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?

मणपज्जवनाणवज्जाइं नाणाइं, अन्नाणाणि य तिण्णि भयणाए। १५।

[१४३ प्र] भगवन् ! अनाहारक जीव ज्ञानी होते है या अज्ञानी ?

[१४३ उ] गौतम ! वे ज्ञानी भी होते है और अज्ञानी भी। जो ज्ञानी है, उनमे मन.-पर्यवज्ञान को छोड कर शेष चार ज्ञान पाए जाते है, और जो अज्ञानी है, उनमे तीन अज्ञान भजना से पाए जाते है। (पन्द्रहवा द्वार)

विवेचन—दसवें उपयोगद्वार से पन्द्रहवें आहारक द्वार तक के जीवो मे ज्ञान और अज्ञान की प्ररूपणा—प्रस्तुत २६ सूत्रो (सू ११८ से १४३ तक) मे उपयोग, योग, लेश्या, कषाय, वेद और आहार इन छह प्रकार के विषयो से सहित और रहित जीवो मे पाए जाने वाले ज्ञान और अज्ञान की प्ररूपणा की गई है।

१०. उपयोगद्वार—उपयोग एक तरह से ज्ञान ही है, जो जीव का लक्षण है, जीव मे अवश्य पाया जाता है। इसके दो प्रकार है—साकार-उपयोग और निराकार-उपयोग। साकार का अर्थ है—विशेषतासहित बोध। उसका उपयोग, अर्थात्—ग्रहण-व्यापार, साकारोपयोग (ज्ञानोपयोग) कहलाता है। साकारोपयोग-युक्त जीव ज्ञानी और अज्ञानी दोनो प्रकार के होते है। ज्ञानी जीवो मे से कुछ जीवो मे दो, कुछ जीवो मे तीन, कुछ जीवो मे चार और कुछ जीवो मे एकमात्र केवलज्ञान होता है, इस तरह ऐसे जीवो मे पाच ज्ञान भजना से होते हैं। इनका कथन यहाँ ज्ञानलब्धि की अपेक्षा से समझना चाहिए, उपयोग की अपेक्षा से तो एक समय मे एक ही ज्ञान अथवा एक ही अज्ञान होता है। इनमे जो जीव अज्ञानी हैं, उनमे तीन अज्ञान भजना से पाए जाते है। आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान आदि साकारोपयोग के भेद है। आभिनिबोधिक आदि से युक्त साकारोपयोग वाले जीवो मे ज्ञान-अज्ञान का कथन उपर्युक्त वर्णनानुसार उस-उस ज्ञान या अज्ञान की लब्धि वाले जीवो के समान जानना चाहिए।

अनाकारोपयोग—जिस ज्ञान मे आकार अर्थात्—जाति, गुण, क्रिया आदि स्वरूपविशेष का प्रतिभास (बोध) न हो, उसे अनाकारोपयोग (दर्शनोपयोग) कहते हैं। अनाकारोपयोगयुक्त जीव ज्ञानी और अज्ञानी दोनो तरह के होते है। ज्ञानी जीवो मे लब्धि की अपेक्षा पाच ज्ञान भजना से और अज्ञानी जीवो मे लब्धि की अपेक्षा तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं। चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन वाले जीव केवली नही होते, इसलिए चक्षुदर्शन-अचक्षुदर्शन-अनाकारोपयोग-युक्त जीवो का कथन अनाकारोपयोगयुक्त जीवो के समान जानना चाहिए। अर्थात् उनमे चार ज्ञान अथवा तीन अज्ञान भजना से पाए जाते है। अवधिदर्शन-अनाकारोपयोगयुक्त जीव ज्ञानी और अज्ञानी दो तरह के होते है, क्योकि दर्शन का विषय सामान्य है। सामान्य अभिन्नरूप होने से दर्शन मे ज्ञानी और अज्ञानी भेद नही होता। अत इसमे कई तीन या चार ज्ञान वाले होते है, अथवा नियमत तीन अज्ञान वाले होते है।

११-योगद्वार—सयोगी जीव अथवा मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी जीवो का कथन सकायिक जीवो के समान समझना चाहिए। चू कि केवली भगवान् मे भी मनोयोगादि होते है, इसलिए इनमे (सम्यग्दृष्टि आदि मे) पाच ज्ञान भजना से होते हैं। तथा मिथ्यादृष्टि सयोगी या पृथक्-पृथक् योग वाले जीवो मे तीन अज्ञान भजना से होते हैं। अयोगी (सिद्ध भगवान् और चतुर्दशगुण-स्थानवर्ती केवली) जीवो मे एकमात्र एक केवलज्ञान होता है।

१२-लेश्याद्वार—लेश्यायुक्त (सलेश्य) जीवो मे ज्ञान-अज्ञान की प्ररूपणा सकषायी जीवो के समान है, उनमे पाच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से समझने चाहिए। चू कि केवलीभगवान् भी शुक्ललेश्या होने से सलेश्य होते है, इसलिए उनमे पचम—केवलज्ञान होता है। कृष्ण, नील, कापोत, तेज और पद्मलेश्या वाले जीवो मे ज्ञान-अज्ञान की प्ररूपणा सेन्द्रिय जीवो के समान है, अर्थात्—

उनमे चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते है। शुक्ललेश्या वाले जीवो का कथन सलेश्य जीवो की तरह करना चाहिए। अलेश्य जीव सिद्ध होते है, उनमे एकमात्र केवलज्ञान ही होता है।

१३-कषायद्वार—सकषायी या क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवो मे ज्ञान-अज्ञानप्ररूपणा सेन्द्रिय के सदृश है, अर्थात्—उनमे केवलज्ञान के सिवाय चार ज्ञान एव तीन अज्ञान भजना से होते है। अकषायी छद्मस्थ-वीतराग और केवली दोनो होते हैं। छद्मस्थ वीतराग (११-१२ गुणस्थानवर्ती) मे प्रथम के चार ज्ञान भजना से पाए जाते हैं और केवली (१३-१४ गुणस्थानवर्ती) मे एकमात्र केवलज्ञान ही पाया जाता है। इसीलिये अकषायी जीवो मे पाच ज्ञान भजना से बताए गए हैं।

१४-वेदद्वार—सवेदक आठवे गुणस्थान तक के जीव होते है। उनका कथन सेन्द्रिय के समान है, अर्थात्—उनमे केवलज्ञान को छोड कर शेष चार ज्ञान अथवा तीन अज्ञान भजना से पाए जाते है। अवेदक (वेदरहित) जीवो मे ज्ञान ही होता है, अज्ञान नही। नौवे अनिवृत्तिबादर नामक गुण-स्थान से चौदहवे गुणस्थान तक के जीव अवेदक होते हैं। उनमे से बारहवे गुणस्थान तक के जीव छद्मस्थ होते हैं, अत उनमे चार ज्ञान (केवलज्ञान के सिवाय) भजना से पाए जाते हैं, तथा तेरहवे-चौदहवे गुणस्थानवर्ती जीव केवली होते हैं, इसलिए उनके सिर्फ एक पचम ज्ञान—केवलज्ञान होता है, इसी दृष्टि से कहा गया है कि 'अवेदक मे पाच ज्ञान पाए जाते है।'

१५-आहारकद्वार—यद्यपि आहारक जीव मे ज्ञान-अज्ञान का कथन कषायी जीवो के समान (चार ज्ञान एव तीन अज्ञान भजना से) बताया गया है, तथापि केवलज्ञानी भी आहारक होते हैं, इस-लिए आहारक जीवो मे भजना से पाच ज्ञान अथवा तीन अज्ञान कहने चाहिए। मन पर्यवज्ञान आहा-रक जीवो को ही होता है, इसलिए अनाहारक जीवो मे मन पर्यवज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते है। विग्रहगति, केवली-समुद्घात और अयोगीदशा मे जीव अनाहारक होते हैं। शेष अवस्था मे जीव आहारक होते हैं। अनाहारक जीवो को प्रथम के तीन ज्ञान अथवा तीन अज्ञान विग्रहगति मे होते है। अनाहारक केवली को केवलीसमुद्घातदशा मे या अयोगी दशा मे एकमात्र केवलज्ञान ही होता है। इसी दृष्टि से अनाहारक जीवो मे चार ज्ञान (मन पर्यवज्ञान को छोडकर) और तीन अज्ञान भजना से कहे गए हैं।[1]

सोलहवें विषयद्वार के माध्यम से द्रव्यादि की अपेक्षा ज्ञान और अज्ञान का निरूपण—

१४४ आभिणिबोहियनाणस्स ण भते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?

गोयमा ! से समासतो चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—दव्वतो खेत्ततो कालतो भावतो। दव्वतो ण आभिणिबोहियनाणी आदेसेण सव्वदव्वाइ जाणति पासति। खेत्ततो आभिणिबोहियणाणी आदेसेण सव्व खेत्त जाणति पासति। एव कालतो वि। एव भावश्रो वि।

[१४४ प्र] भगवन् ! आभिनिबोधिक ज्ञान का विषय कितना व्यापक कहा गया है ?

[११४ उ] गौतम ! वह (आभिनिबोधिक ज्ञान का विषय) सक्षेप मे चार प्रकार का बताया गया है। यथा—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से। द्रव्य से आभिनिबोधिक ज्ञानी आदेश (सामान्य) से सर्वद्रव्यो को जानता और देखता है, क्षेत्र से आभिनिबोधिकज्ञानी सामान्य-(रूप) से सभी क्षेत्र को जानता और देखता है, इसी प्रकार काल से भी और भाव से भी जानना चाहिए।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३५५, ३५६

१४५ सुतनाणस्स ण भते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?

गोयमा ! से समासओ चतुव्विहे पण्णत्ते, त जहा—दव्वतो खेत्ततो कालतो भावतो । दव्वतो ण सुतनाणी उवयुत्ते सव्वदव्वाइ जाणति पासति । एव खेत्ततो वि, कालतो वि । भावतो णं सुयनाणी उवजुत्ते सव्वभावे जाणति पासति ।

[१४५ प्र] भगवन् ! श्रुतज्ञान का विषय कितना कहा गया है ?

[१४५ उ] गौतम ! वह (श्रुतज्ञान का विषय) सक्षेप मे चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । द्रव्य से, उपयोगयुक्त (उपयुक्त) श्रुतज्ञानी सर्वद्रव्यो को जानता और देखता है । क्षेत्र से, श्रुतज्ञानी उपयोगसहित सर्वक्षेत्र को जानता-देखता है । इसी प्रकार काल से भी जानना चाहिए । भाव से उपयुक्त (उपयोगयुक्त) श्रुतज्ञानी सर्वभावो को जानता और देखता है ।

१४६ ओहिनाणस्स ण भते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?

गोयमा ! से समासओ चतुव्विहे पण्णत्ते, त जहा—दव्वतो खेत्ततो कालतो भावतो । दव्वतो ण ओहिनाणी रूविदव्वाइ जाणति पासति जहा नदीए जाव भावतो ।

[१४६ प्र] भगवन् ! अवधिज्ञान का विषय कितना कहा गया है ?

[१४६ उ] गौतम ! वह (अवधिज्ञान का विषय) सक्षेप मे चार प्रकार का है । वह इस प्रकार—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । द्रव्य से अवधिज्ञानी रूपीद्रव्यो को जानता और देखता है । (तत्पश्चात् क्षेत्र से, काल से और भाव से) इत्यादि वर्णन जिस प्रकार नन्दीसूत्र मे किया गया है, उसी प्रकार यावत् 'भाव' पर्यन्त वर्णन करना चाहिए ।

१४७ मणपज्जवनाणस्स ण भते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?

गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—दव्वतो खेत्ततो कालतो भावतो । दव्वतो ण उज्जुमती अणते अणतपदेसिए जहा नदीए जाव भावओ ।

[१४७ प्र] भगवन् ! मन पर्यवज्ञान का विषय कितना कहा गया है ?

[१४७ उ] गौतम ! वह (मन पर्यवज्ञान-विषय) सक्षेप मे चार प्रकार का है । वह इस प्रकार—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । द्रव्य से, ऋजुमति-मन पर्यवज्ञानी (मनरूप मे परिणत) अनन्तप्रादेशिक अनन्त (स्कन्धो) को जानता-देखता है, इत्यादि जिस प्रकार नन्दीसूत्र मे कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी यावत् 'भावत ' तक कहना चाहिए ।

१४८ केवलनाणस्स ण भते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?

गोयमा ! से समासओ चतुव्विहे पण्णत्ते, त जहा—दव्वतो खेत्ततो कालतो भावतो । दव्वतो ण केवलनाणी सव्वदव्वाइ जाणति पासति । एव जाव भावओ ।

[१४८ प्र] भगवन् ! केवलज्ञान का विषय कितना कहा गया है ?

[१४८ उ] गौतम ! वह (केवलज्ञान का विषय) सक्षेप मे चार प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । द्रव्य से केवलज्ञानी सर्वद्रव्यो को जानता और देखता है । इस प्रकार यावत् भाव से केवलज्ञानी सर्वभावो को जानता और देखता है ।

१४९ मइअन्नाणस्स ण भंते ! केवतिए विसए पन्नत्ते ?

गोयमा ! से समासतो चतुव्विहे पण्णत्ते, त जहा—दव्वतो खेत्ततो कालओ भावतो । दव्वतो ण मइअन्नाणी मइअन्नाणपरिगताइ दव्वाइ जाणति पासति । एव जाव भावतो मइअन्नाणी मइअन्नाण-परिगते भावे जाणति पासति ।

[१४९ प्र] भगवन् ! मति-अज्ञान (मिथ्यामतिज्ञान) का विषय कितना कहा गया है ?

[१४९ उ] गौतम ! वह (मति-अज्ञान का विषय) सक्षेप मे चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से। द्रव्य से, मति-अज्ञानी, मति-अज्ञान-परिगत (मति-अज्ञान के विषयभूत) द्रव्यो को जानता और देखता है। इसी प्रकार यावत् भाव से मति-अज्ञानी मति-अज्ञान के विषयभूत भावो को जानता और देखता है।

१५० सुतअन्नाणस्स ण भंते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?

गोयमा ! से समासतो चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वतो खेत्ततो कालतो भावतो। दव्वतो ण सुयअन्नाणी सुतअन्नाणपरिगयाइ दव्वाइं आघवेति पण्णवेति परूवेइ । एव खेत्ततो कालतो । भावतो णं सुयअन्नाणी सुतअन्नाणपरिगते भावे आघवेति त चेव ।

[१५० प्र] भगवन् ! श्रुत-अज्ञान (मिथ्याश्रुतज्ञान) का विषय कितना कहा गया है ?

[१५० उ] गौतम ! वह (श्रुत-अज्ञान का विषय) सक्षेप मे चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से। द्रव्य से, श्रुत-अज्ञानी श्रुत-अज्ञान के विषय-भूत द्रव्यो का कथन करता है, उन द्रव्यो को बतलाता है, उनकी प्ररूपणा करता है। इसी प्रकार क्षेत्र से और काल से भी जान लेना चाहिए। भाव की अपेक्षा श्रुत-अज्ञानी श्रुत-अज्ञान के विषयभूत भावो को कहता है, बतलाता है, प्ररूपित करता है।

१५१ विभगणाणस्स ण भंते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?

गोयमा ! से समासतो चतुव्विहे पण्णत्ते, त जहा—दव्वतो खेत्ततो कालतो भावतो । दव्वतो ण विभगनाणी विभगणाणपरिगयाइ दव्वाइ जाणति पासति । एव जाव भावतो ण विभंगनाणी विभग-नाणपरिगए भावे जाणति पासति ।१६।

[१५१ प्र] भगवन् ! विभगज्ञान का विषय कितना कहा गया है ?

[१५१ उ] गौतम ! वह (विभगज्ञान-विषय) सक्षेप मे चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से। द्रव्य की अपेक्षा विभगज्ञानी विभगज्ञान के विषयगत द्रव्यो को जानता और देखता है। इसी प्रकार यावत् भाव की अपेक्षा विभगज्ञानी विभग-ज्ञान के विषयगत भावो को जानता और देखता है। (विषयद्वार)

विवेचन—ज्ञान और अज्ञान के विषय की प्ररूपणा—प्रस्तुत आठ सूत्रो (सू १४४ से १५१ तक) मे विषयद्वार के माध्यम से पाच ज्ञानो और तीन अज्ञानो के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से विषय का निरूपण किया गया है।

ज्ञानो का विषय—(१) आभिनिवोधिक ज्ञान का विषय द्रव्यादि चारो अपेक्षा से कहाँ तक

व्याप्त है ? इस ज्ञान की सीमा द्रव्यादि की अपेक्षा कितनी है ? यही बताना यहाँ अभीष्ट है। द्रव्य का अर्थ है—धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य, क्षेत्र का अर्थ है—द्रव्यो का आधारभूत आकाश, काल का अर्थ है—द्रव्यो के पर्यायो की स्थिति और भाव का अर्थ है—औदयिक आदि भाव अथवा द्रव्य के पर्याय। इनमे से द्रव्य की अपेक्षा आभिनिबोधिक ज्ञानी धर्मास्तिकाय आदि सर्व द्रव्यो को आदेश से—ओघरूप (सामान्यरूप) से जानता है, उसका आशय यह है कि वह द्रव्यमात्र सामान्यतया जानता है, उसमे रही हुई सभी विशेषताओ से (विशेपरूप से) नही जानता। अथवा आदेश का अर्थ है—श्रुतज्ञानजनित सस्कार। इनके द्वारा अवाय और धारणा की अपेक्षा जानता है, क्योकि ये दोनो ज्ञानरूप है। तथा अवग्रह और ईहा दर्शनरूप है, इसलिए अवग्रह और ईहा से देखता है। श्रुतज्ञानजन्य सस्कार से लोकालोकरूप सर्वक्षेत्र को देखता है। काल से सर्वकाल को और भाव से औदयिक आदि पाच भावो को जानता है। (२) श्रुतज्ञानी (सम्पूर्ण दस पूर्वधर आदि श्रुतकेवली) उपयोगयुक्त हो कर धर्मास्तिकाय आदि सभी द्रव्यो को विशेषरूप से जानता है, तथा श्रुतानुसारी अचक्षु (मानस) दर्शन द्वारा सभी अभिलाप्य द्रव्यो को देखता है। इसी प्रकार क्षेत्रादि के विषय मे भी जानना चाहिए। भाव से उपयोगयुक्त श्रुतज्ञानी औदयिक आदि समस्त भावो को अथवा अभिलाप्य (वक्तव्य) भावो को जानता है। यद्यपि श्रुत द्वारा अभिलाप्य भावो का अनन्तवा भाग ही प्रतिपादित है, तथापि प्रसगानुप्रसग से अभिलाप्य भाव श्रुतज्ञान के विषय हैं। इसलिए उनकी अपेक्षा 'श्रुतज्ञानी सर्वभावो को (सामान्यतया) जानता है' ऐसा कहा गया है। (३) **अवधिज्ञान का विषय**—**द्रव्य से**—अवधिज्ञानी जघन्यत तैजस और भाषा द्रव्यो के अन्तरालवर्ती सूक्ष्म अनन्त पुद्गलद्रव्यो को जानता है, उत्कृष्टत बादर और सूक्ष्म सभी पुद्गल द्रव्यो को जानता है। अवधिदर्शन से देखता है। **क्षेत्र से**—अवधिज्ञानी जघन्यत अगुल के असख्यातवे भाग को जानता-देखता है, उत्कृष्टत समग्र लोक और लोक-सदृश असख्येय खण्ड अलोक मे हो तो उन्हे भी जान-देख सकता है। **काल से**—अवधिज्ञानी जघन्यत आवलिका के असख्यातवे भाग को तथा उत्कृष्टत असख्यात उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी अतीत, अनागत काल को जानता और देखता है। यहाँ क्षेत्र और काल को जानने का तात्पर्य यह है कि इतने क्षेत्र और काल मे रहे हुए रूपी द्रव्यो को जानता और देखता है। **भाव से**—अवधिज्ञानी जघन्यत आधार-द्रव्य अनन्त होने से अनन्त भावो को जानता-देखता है, किन्तु प्रत्येक द्रव्य के अनन्त भावो (पर्यायो) को नही जानता-देखता। उत्कृष्टत भी वह अनन्त भावो को जानता-देखता है। वे भाव भी समस्त पर्यायो के अनन्तवे भाग-रूप जानने चाहिए। (४) **मन पर्यवज्ञान का विषय**—मन पर्यवज्ञान प्रकार हैं—ऋजुमति और विपुलमति । सामान्यग्राही मनन-मति या सवेदन के दो को **ऋजुमति मन पर्यायज्ञान** कहते हैं। जैसे—'इसने घडे का चिन्तन किया है', इस प्रकार के अध्यवसाय का कारणभूत (सामान्य कतिपय पर्याय विशिष्ट) मनोद्रव्य का ज्ञान या ऋजु-सरलमति वाला ज्ञान। **द्रव्य से**—ऋजुमतिमन पर्यायज्ञानी ढाई द्वीप-समुद्रान्तवर्त्ती सज्ञीपचेन्द्रियपर्याप्तक जीवो द्वारा मनोरूप से परिणमित मनोवर्गणा के अनन्त परमाण्वात्मक (विशिष्ट एक परिणाम-परिणत) स्कन्धो को मन पर्यायज्ञानावरण की क्षयोपशमपटुता के कारण साक्षात् जानता-देखता है। परन्तु जीवो द्वारा चिन्तित घटादिरूप पदार्थो को मन पर्यायज्ञानी प्रत्यक्षत नही जानता किन्तु उसके मनोद्रव्य के परिणामो की अन्यथानुपपत्ति से (इस प्रकार के आकार वाला मनोद्रव्य का परिणाम, इस प्रकार के चिन्तन बिना घटित नही हो सकता, इस तरह के अन्यथानुपपत्तिरूप अनुमान मे) जानता है। इसीलिए यहाँ 'जाणइ' के बदले 'पासइ' (देखता है) कहा गया है। विपुल का अर्थ है—अनेक विशेषग्राही। अर्थात्—अनेक विशेषताओ से युक्त मनोद्रव्य के ज्ञान को

'विपुलमतिमनःपर्यायज्ञान' कहते हैं। जैसे— इसने घट का चिन्तन किया है, वह घट द्रव्य से—सोने का बना हुआ है, क्षेत्र से—पाटलिपुत्र का है, काल से—नया है या वसन्तऋतु का है, और भाव से—बडा है, अथवा पीले रग का है। इस प्रकार की विशेषताओ से युक्त मनोद्रव्यो को विपुलमति जानता है। अर्थात्—ऋजुमति द्वारा देखे हुए स्कन्धो की अपेक्षा विपुलमति अधिकतर, वर्णादि से विस्पष्ट, उज्ज्वलतर और विशुद्धतर रूप से जानता-देखता है। क्षेत्र से—ऋजुमति जघन्यत अगुल के असख्यातवे भाग तथा उत्कृष्टत मनुष्यलोक मे रहे हुए सज्ञीपचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवो के मनोगत भावो को जानता-देखता है, जबकि विपुलमति उससे ढाई अगुल अधिक क्षेत्र मे रहे हुए जीवो के मनोगत भावो को विशेष प्रकार से विशुद्धतर रूप से—स्पष्ट रूप से जानता-देखता है। तात्पर्य यह है कि ऋजुमतिमन पर्यायज्ञानी क्षेत्र से उत्कृष्टत अधोदिशा मे—रत्नप्रभा पृथ्वी के उपरितन तल के नीचे के क्षुल्लक प्रतरो, ऊर्ध्वदिशा मे—ज्योतिषी देवलोक के उपरितल को, तथा तिर्यग्दिशा मे मनुष्यक्षेत्र मे जो ढाई द्वीप-समुद्रक्षेत्र हैं, १५ कर्मभूमिया है, तथा छप्पन अन्तद्वीप हैं, उनमे रहे हुए सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवो के मनोगत भावो को जानता-देखता है। विपुलमति क्षेत्र से—समग्र ढाई द्वीप, व दो समुद्रो को विशुद्धरूप से जानता-देखता है। काल से—ऋजुमति जघन्यत पल्योपम के असख्यातवे भाग जितने अतीत-अनागत काल को जानता-देखता है, जबकि विपुलमति इसी को स्पष्टतररूप से निर्मलतर जानता-देखता है। भाव से—ऋजुमति समस्त भावो के अनन्तवे भाग को जानता-देखता है, जबकि विपुलमति इन्हे ही विशुद्धतर-स्पष्टतररूप से जानता-देखता है। (५) केवलज्ञान का विषय—केवलज्ञान के दो भेद हैं—भवस्थकेवलज्ञान और सिद्धकेवलज्ञान। केवलज्ञानी सर्वद्रव्य, सर्वक्षेत्र, सर्वकाल और सर्वभावो को युगपत् जानता-देखता है।

तीन अज्ञानो का विषय—मति-अज्ञानी मिथ्यादर्शनयुक्त अवग्रह आदि रूप तथा औत्पात्तिकी आदि बुद्धिरूप मति-अज्ञान के द्वारा गृहीत द्रव्यो को द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से जानता-देखता है। श्रुत-अज्ञानी श्रुत-अज्ञान (मिथ्यादृष्टि-परिगृहीत लौकिक श्रुत या कुप्रावचनिकश्रुत) से गृहीत (विषयीकृत) द्रव्यो को कहता है, बतलाता है, प्ररूपण करता है। विभगज्ञानी विभगज्ञान द्वारा गृहीत द्रव्यो को द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से जानता है और अवधिदर्शन से देखता है।[1]

ज्ञानी और [अज्ञा]नी के स्थितिकाल, अन्तर और अल्पबहुत्व का निरूपण—

१५२ णाणी णं भंते ! 'णाणि' त्ति कालतो केवच्चिर होती ?

गोयमा ! नाणी दुविहे पण्णत्ते, त जहा—सादीए वा अपज्जवसिते, सादीए वा सपज्जवसिए। तत्थ णं जे से सादीए सपज्जवसिए से जहन्नेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण छावट्ठि सागरोवमाइं सातिरेगाइ।

[१५२ प्र] भगवन् ! ज्ञानी 'ज्ञानी' के रूप मे कितने काल तक रहता है ?

[१५२ उ] गौतम ! ज्ञानी दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—सादि-अपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। इनमे से जो सादि-सपर्यवसित (सान्त) ज्ञानी हैं, वे जघन्यत अन्तर्मुहूर्त तक, और उत्कृष्टत कुछ अधिक छियासठ सागरोपम तक ज्ञानीरूप मे रहते हैं।

१५३ आभिणिबोहियणाणी ण भंते ! आभिणिबोहियणाणि त्ति० ? ।

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३५७ से ३६० तक
(ख) नन्दीसूत्र, ज्ञानप्ररूपणा

एव नाणी, आभिणिबोहियनाणी जाव केवलनाणी, अन्नाणी, मइअन्नाणी, सुतअन्नाणी, विभगनाणी; एएसिं दसण्ह वि संचिट्ठणा जहा कायठितीए ।१७।

[१५३ प्र] भगवन् ! आभिनिवोधिक ज्ञानी आभिनिवोधिक-ज्ञानी के रूप मे कितने काल तक रहता है ?

[१५३ उ] गौतम ! ज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी यावत् केवलज्ञानी, अज्ञानी, मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी और विभगज्ञानी, इन दस का अवस्थितिकाल (प्रज्ञापनासूत्र के अठारहवें) कायस्थिति-पद मे कहे अनुसार जानना चाहिए । (कालद्वार)

१५४. अतर सव्व जहा जीवाभिगमे ।१८।

[१५४] इन सब (दसो) का अन्तर जीवाभिगमसूत्र के अनुसार जानना चाहिए । (अन्तरद्वार)

१५५ अप्पाबहुगाणि तिण्णि जहा बहुवत्तव्वताए ।१९।

[१५५] इन सबका अल्पबहुत्व (प्रज्ञापनासूत्र के तृतीय—) बहुवक्तव्यता पद के अनुसार जानना चाहिए । (अल्पबहुत्वद्वार)

विवेचन—ज्ञानी और अज्ञानी के स्थितिकाल, अन्तर और अल्पबहुत्व का निरूपण—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू १५२ से १५५ तक) मे कालद्वार (१७) अन्तरद्वार (१८) और अल्पबहुत्वद्वार (१९) के माध्यम से ज्ञानी और अज्ञानी के स्थितिकाल, पारस्परिक अन्तर और उनके अल्पबहुत्व का अतिदेशपूर्वक निरूपण किया गया है ।

ज्ञानी का ज्ञानी के रूप मे अवस्थितिकाल—ज्ञानी के दो प्रकार यहाँ बताए गए है—सादि-अपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित । प्रथम ज्ञानी ऐसे है, जिनके ज्ञान की आदि तो है, पर अन्त नही । ऐसे ज्ञानी केवलज्ञानी होते है । केवलज्ञान का काल सादि—अनन्त है, अर्थात् केवलज्ञान उत्पन्न होकर फिर कभी नष्ट नही होता । द्वितीय ज्ञानी ऐसा है, जिसकी आदि भी है, अन्त भी है । ऐसा ज्ञानी मति आदि चार ज्ञान वाला होता है । मति आदि चार ज्ञानो का काल सादि-सपर्यवसित है । इनमे से मति और श्रुतज्ञान का जघन्य स्थितिकाल एक अन्तर्मुहूर्त्त है । अवधि और मन पर्यवज्ञान का जघन्य स्थितिकाल एक समय है । आदि के तीनो ज्ञानो का उत्कृष्ट स्थितिकाल कुछ अधिक ६६ सागरोपम है । मन पर्यवज्ञान का उत्कृष्ट स्थितिकाल देशोन करोडपूर्व का है । अवधिज्ञान का जघन्य स्थितिकाल एक समय का इसलिए बताया है कि जब किसी विभगज्ञानी को सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है, तब सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के प्रथम समय मे ही विभगज्ञान अवधिज्ञान के रूप मे परिणत हो जाता है । इसके पश्चात् शीघ्र ही दूसरे समय मे यदि वह अवधिज्ञान से गिर जाता है तब अवधि-ज्ञान केवल एक समय ही रहता है । मन पर्यायज्ञानी का भी अवस्थितिकाल जघन्य एक समय इसलिए बताया है कि अप्रमत्तगुणस्थान मे स्थित किसी सयत (मुनि) को मन पर्यायज्ञान उत्पन्न होता है, और तुरत ही दूसरे समय मे नष्ट हो जाता है । मन पर्यायज्ञानी का उत्कृष्ट अवस्थितिकाल देशोन पूर्वकोटि वर्ष का इसलिए बताया है कि किसी पूर्वकोटिवर्ष की आयु वाले मनुष्य ने चारित्र अगीकार किया । चारित्र अगीकार करते ही उसे मन पर्यायज्ञान उत्पन्न हो जाए और यावज्जीवन रहे, तो उसका उत्कृष्ट स्थितिकाल किञ्चित् न्यून कोटिवर्ष घटित हो जाता है ।

त्रिविध अज्ञानियो का तद्रूप अज्ञानी के रूप मे अवस्थितिकाल—अज्ञानी, मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी ये तीनो स्थितिकाल की दृष्टि से तीन प्रकार के है—(१) अनादि-अपर्यवसित (अनन्त), अभव्यो का होता है। (२) अनादि-सपर्यवसित (सान्त), जो भव्यजीवो का होता है। और (३) सादि-सपर्यवसित (सान्त), जो सम्यग्दर्शन से पतित जीवो का होता है। इनमे से जो सादि-सान्त हैं, उनका जघन्य अवस्थितिकाल अन्तर्मुहूर्त्त का है, क्योकि कोई जीव सम्यग्दर्शन से पतित होकर अन्तर्मुहूर्त्त के पश्चात् ही पुन सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है। इसका उत्कृष्ट स्थितिकाल अनन्तकाल है, क्योकि कोई जीव सम्यग्दर्शन से पतित होकर अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल व्यतीत कर अथवा वनस्पति आदि मे अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी व्यतीत करके अनन्तकाल के पश्चात् पुन सम्यग्दर्शन को प्राप्त करता है। विभगज्ञान का अवस्थितिकाल जघन्य एक समय है, क्योकि उत्पन्न होने के पश्चात् उसका दूसरे समय मे विनष्ट होना सम्भव है। इसका उत्कृष्ट स्थितिकाल किञ्चित् न्यून पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम का है, क्योकि कोई मनुष्य कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष तक विभगज्ञानी बना रह कर सातवे नरक मे उत्पन्न हो जाता है, उसकी अपेक्षा से यह कथन है।[1]

पाच ज्ञानो और तीन अज्ञानो का परस्पर अन्तरकाल—एक वार ज्ञान अथवा अज्ञान उत्पन्न होकर नष्ट हो जाए और फिर दूसरी वार उत्पन्न हो तो दोनो के बीच का काल अन्तरकाल कहलाता है। यहाँ पाच ज्ञान और तीन अज्ञान के अन्तर के लिए जीवाभिगमसूत्र का अतिदेश किया गया है। वहाँ इस प्रकार से अन्तर बताया गया है—आभिनिवोधिक ज्ञान का काल से पारस्परिक अन्तर जघन्यत अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टत अनन्तकाल तक का या कुछ कम अपार्द्ध पुद्गल परिवर्तन काल का है। इसी प्रकार श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन पर्यायज्ञान के विषय मे समझ लेना चाहिए। केवलज्ञान का अन्तर नही होता। मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान का अन्तरकाल जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक ६६ सागरोपम का है। विभगज्ञान का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल (वनस्पतिकाल जितना) है।[2]

पांच ज्ञानी और तीन अज्ञानी जीवो का अल्पबहुत्व—पाच ज्ञान और तीन अज्ञान से युक्त जीवो का अल्पबहुत्व प्रज्ञापनासूत्र मे बताया गया है। वह सक्षेप मे इस प्रकार है—सबसे अल्प मन पर्यायज्ञानी हैं। क्योकि मन पर्यायज्ञान केवल ऋद्धिप्राप्त सयतो को ही होता है। उनसे असख्यात गुणे अवधिज्ञानी हैं, क्योकि अवधिज्ञानी जीव चारो गतियो मे पाए जाते है। उनसे आभिनिबोधिक-ज्ञानी और श्रुतज्ञानी दोनो तुल्य और विशेषाधिक हैं। इसका कारण यह है कि अवधि आदि ज्ञान से रहित होने पर भी कई पंचेन्द्रिय और कितने ही विकलेन्द्रिय जीव (जिन्हे सास्वादन सम्यग्दर्शन हो) आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी होते हैं। आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान का परस्पर साहचर्य होने से दोनो ज्ञानी तुल्य हैं। इन सभी से सिद्ध अनन्तगुणे होने से केवलज्ञानी जीव अनन्त-गुणे हैं। तीन अज्ञानयुक्त जीवो मे सबसे थोडे विभगज्ञानी है, क्योकि विभगज्ञान पचेन्द्रियजीवो को ही होता है। उनसे मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी दोनो अनन्तगुणे है, क्योकि एकेन्द्रियजीव भी मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी होते हैं, और वे अनन्त है, परस्पर तुल्य भी है, क्योकि इन दोनो का परस्पर साहचर्य है।

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३६१
 (ख) प्रज्ञापनासूत्र १८ वा कायस्थितिपद (महावीर विद्यालय), पृ ३०४-३१७

२ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३६१
 (ख) जीवाभिगमसूत्र (अन्तरदर्शक पाठ) सू २६३, पृ ४५५ (आगमो)

ज्ञानी और अज्ञानी जीवो का परस्पर सम्मिलित अल्पबहुत्व—सबसे थोडे मन पर्यायज्ञानी हैं, उनसे अवधिज्ञानो असख्यातगुणे है। उनसे आभिनिबोधिक ज्ञानी और श्रुतज्ञानी विशेषाधिक और परस्पर तुल्य है। उनसे विभगज्ञानो असख्यातगुणे है, क्योकि सम्यग्दृष्टि देव और नारको से मिथ्या-दृष्टि देव-नारक असख्यातगुणे है। उनसे केवलज्ञानी अनन्तगुणे है, क्योकि एकेन्द्रिय जीवो के सिवाय शेष सभी जीवो से सिद्ध अनन्तगुणे है। उनसे मति-अज्ञानो और श्रुत-अज्ञानी अनन्तगुणे हैं, और वे परस्पर तुल्य है, क्योकि साधारण वनस्पतिकायिकजोव भी मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी होते हैं, और वे सिद्धो से अनन्तगुणे है।[1]

बीसवें पर्यायद्वार के माध्यम से ज्ञान और अज्ञान के पर्यायो की प्ररूपणा—

१५६, केवतिया ण भते ! आभिणिबोहियणाणपज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता आभिणिबोहियणाणपज्जवा पण्णत्ता।

[१५६ प्र] भगवन् ! आभिनिबोधिकज्ञान के पर्याय कितने कहे गए है ?

[१५६ उ] गौतम ! आभिनिबोधिक ज्ञान के अनन्त पर्याय कहे गए है।

१५७ [१] केवतिया ण भते ! सुतनाणपज्जवा पण्णत्ता ?

एव चेव।

[१५७-१ प्र] भगवन् ! श्रुतज्ञान के पर्याय कितने कहे गए है ?

[१७६-१ उ] गौतम ! श्रुतज्ञान के भी अनन्त पर्याय कहे गए है।

[२] एवं जाव केवलनाणस्स।

[१५७-२] इसी प्रकार अवधिज्ञान, मन पर्यायज्ञान और केवलज्ञान के भी अनन्त पर्याय कहे गए है।

१५८. एव मतिअन्नाणस्स सुतअन्नाणस्स।

[१५८] इसी प्रकार मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान के भी अनन्त पर्याय कहे गए है।

१५९ केवतिया णं भते ! विभगनाणपज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता विभगनाणपज्जवा पण्णत्ता। २०१

[१५९ प्र] भगवन् ! विभगज्ञान के कितने पर्याय कहे गए है ?

[१५९ उ] गौतम ! विभगज्ञान के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

(पर्यायद्वार)

ज्ञान और अज्ञान के पर्यायो का अल्पबहुत्व—

१६०. एतेसि ण भते ! आभिणिबोहियनाणपज्जवाण सुयनाणपज्जवाण ओहिनाणपज्जवाण मणपज्जवनाणपज्जवाण केवलनाणपज्जवाण य कतरे कतरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३६२

(ख) प्रज्ञापनासूत्र तृतीय बहुवक्तव्यपद, सू २१२, ३३४, पृ ८० से १११ तक

गोयमा ! सव्वत्थोवा मणपज्जवनाणपज्जवा, ओहिनाणपज्जवा अणतगुणा, सुतनाणपज्जवा अणतगुणा, आभिणिबोहियनाणपज्जवा अणतगुणा, केवलनाणपज्जवा अणंतगुणा ।

[१६० प्र] भगवन् ! इन (पूर्वोक्त) आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्याय-ज्ञान और केवलज्ञान के पर्यायो मे किनके पर्याय, किनके पर्यायो से अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

[१६० उ] गौतम ! मन पर्यायज्ञान के पर्याय सबसे थोडे हैं । उनसे अवधिज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे है। उनसे श्रुतज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे है । उनसे आभिनिबोधिकज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे है और उनसे केवलज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं ।

१६१. एएसि ण भते ! मइअन्नाणपज्जवाण सुतअन्नाणपज्जवाण विभगनाणपज्जवाण य कतरे कतरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा विभगनाणपज्जवा, सुतअन्नाणपज्जवा अणतगुणा, मतिअन्नाणपज्जवा अणतगुणा ।

[१६१ प्र] भगवन् ! इन (पूर्वोक्त) मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और विभगज्ञान के पर्यायो मे, किनके पर्याय, किनके पर्यायो से अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

[१६१ उ] गौतम ! सबसे थोडे विभगज्ञान के पर्याय हैं। उनसे श्रुत-अज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे है और उनसे मति-अज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे है ।

१६२ एएसि ण भते ! आभिणिबोहियणाणपज्जवाण जाव केवलनाणपज्जवाण मइअन्नाण-पज्जवाण सुयअन्नाणपज्जवाण विभगनाणपज्जवाण य कतरे कतरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा मणपज्जवनाणपज्जवा, विभगनाणपज्जवा अणतगुणा, ओहिणाण-पज्जवा अणतगुणा, सुतअन्नाणपज्जवा अणतगुणा, सुतनाणपज्जवा विसेसाहिया, मइअन्नाणपज्जवा अणतगुणा, आभिणिबोहियनाणपज्जवा विसेसाहिया, केवलनाणपज्जवा अणतगुणा ।

सेव भते ! सेवं भते ! त्ति० ।

।। अट्ठम सए बितिओ उद्देसओ समत्तो ।।

[१६२ प्र] भगवन् ! इन (पूर्वोक्त) आभिनिबोधिकज्ञान-पर्याय यावत् केवलज्ञान पर्यायो तक मे तथा मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और विभगज्ञान के पर्यायो मे किसके पर्याय, किसके पर्यायो से अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[१६२ उ] गौतम ! सबसे थोडे मन पर्यायज्ञान के पर्याय है । उनसे विभगज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं । उनसे अवधिज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं । उनसे श्रुत-अज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे है । उनसे श्रुतज्ञान के पर्याय विशेषाधिक है । उनसे मति-अज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे है । उनसे मति-ज्ञान के पर्याय विशेषाधिक हैं और केवलज्ञान के पर्याय उनसे अनन्तगुणे है ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कहकर यावत् गौतम-स्वामी विचरण करने लगे।

विवेचन—ज्ञान और अज्ञान के पर्यायो का तथा उनके अल्पबहुत्व का प्ररूपण—प्रस्तुत ७ सूत्रो (सू १५६ से १६२ तक) मे पर्यायद्वार के माध्यम से ज्ञान और अज्ञान की पर्यायो तथा उनके अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

पर्याय : स्वरूप, प्रकार एव परस्पर अल्पबहुत्व—भिन्न-भिन्न अवस्थाओ के विशेष भेदो को 'पर्याय' कहते है। पर्याय के दो भेद है—स्वपर्याय और पर-पर्याय। क्षयोपशम की विचित्रता से मति-ज्ञान के अवग्रह आदि अनन्त भेद होते है, जो स्वपर्याय कहलाते है। अथवा मतिज्ञान के विषयभूत ज्ञेयपदार्थ अनन्त होने से उन ज्ञेयो के भेद से ज्ञान के भी अनन्त भेद हो जाते है। इस अपेक्षा से भी मतिज्ञान के अनन्त पर्याय है। अथवा केवलज्ञान द्वारा मतिज्ञान के अश (टुकडे) किये जाएँ तो भी अनन्त अश होते है। इस अपेक्षा से भी मतिज्ञान के अनन्त पर्याय है। मतिज्ञान के सिवाय दूसरे पदार्थों के पर्याय 'परपर्याय' कहलाते है। मतिज्ञान के स्वपर्यायो का बोध कराने मे तथा परपर्यायो से उन्हे भिन्न बतलाने मे प्रतियोगी रूप से उनका उपयोग है। इसलिए वे मतिज्ञान के परपर्याय कहलाते हैं। श्रुतज्ञान के भी स्वपर्याय और परपर्याय अनन्त है। उनमे से श्रुतज्ञान के अक्षरश्रुत-अनक्षरश्रुत आदि भेद स्वपर्याय कहलाते है, जो अनन्त है। क्योकि श्रुतज्ञान के क्षयोपशम की विचित्रता के कारण तथा श्रुतज्ञान के विषयभूत ज्ञेय पदार्थ अनन्त होने से श्रुतज्ञान के (श्रुतानुसारी बोध के) भेद भी अनन्त हो जाते हैं। अथवा केवलज्ञान द्वारा श्रुतज्ञान के अनन्त अश होते है, वे भी उसके स्वपर्याय ही है। उनसे भिन्न पदार्थो के विशेष धर्म, श्रुतज्ञान के परपर्याय कहलाते हैं।

अवधिज्ञान के स्वपर्याय भी अनन्त है, क्योकि उसके भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय (क्षायोपशमिक), इन दो भेदो के कारण, उनके स्वामी देव और नारक तथा मनुष्य और तिर्यञ्च के, असख्येय क्षेत्र और काल के भेद से, अनन्त द्रव्य-पर्याय के भेद से एव केवलज्ञान द्वारा उसके अनन्त अश होने से अवधिज्ञान के अनन्त भेद होते है।

इसी प्रकार मन पर्याय और केवलज्ञान के विषयभूत ज्ञेय पदार्थ अनन्त होने से तथा उनके अनन्त अशो की कल्पना आदि से अनन्त स्वपर्याय होते हैं।

पर्यायो के अल्पबहुत्व की समीक्षा—यहाँ जो पर्यायो का अल्पबहुत्व बताया गया है, वह स्वपर्यायो की अपेक्षा से समझना चाहिए, क्योकि सभी ज्ञानो के स्वपर्याय और परपर्याय मिलकर समुदित रूप से परस्पर तुल्य हैं। सबसे अल्प मन पर्यायज्ञान के पर्याय इसलिए है कि उसका विषय केवल मन ही है। मन पर्यायज्ञान की अपेक्षा अवधिज्ञान का विषय द्रव्य और पर्यायो की अपेक्षा अनन्तगुण होने से अवधिज्ञान के पर्याय उससे अनन्तगुणे है। उनसे श्रुतज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे है। क्यो कि उसका विषय रूपी-अरूपीद्रव्य होने से वे अनन्तगुणे है। उनसे आभिनिबोधिक-ज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं, क्योकि उनका विषय अभिलाप्य और अनभिलाप्य पदार्थ होने से वे उनसे अनन्तगुणे है, और केवलज्ञान के पर्याय उनसे अनन्तगुणे इसलिए हैं कि उसका विषय सर्वद्रव्य और सर्वपर्याय है। इसी प्रकार अज्ञानो के भी अल्पबहुत्व की समीक्षा कर लेनी चाहिए।

ज्ञान और अज्ञान के पर्यायो के सम्मिलित अल्पबहुत्व मे सबसे अल्प मन पर्यायज्ञान के पर्याय है, उनसे विभगज्ञान के पर्याय अनन्तगुण है, क्योकि उपरिम (नवम) ग्रैवेयक से लेकर नीचे

सप्तम नरक तक मे और असंख्य द्वीप समुद्रो मे रहे हुए कितने ही रूपी द्रव्य और उनके कतिपय पर्याय विभगज्ञान के विषय हैं, और वे मन पर्यायज्ञान के विषयापेक्षया के अनन्तगुणे है। उनकी अपेक्षा अवधिज्ञानपर्याय अनन्तगुणे इसलिए हैं कि उसका विषय समस्त रूपी द्रव्य और प्रत्येक के द्रव्य असख्यपर्याय हैं। उनसे श्रुत-अज्ञान के पर्याय अनन्तगुणा यो है कि श्रुत-अज्ञान के विषय सभी मूर्त-अमूर्त द्रव्य एव सर्वपर्याय है। तदपेक्षा श्रुतज्ञानपर्याय विशेषाधिक यो हैं कि श्रुत-अज्ञान-अगोचर कतिपय पदार्थों को भी श्रुतज्ञान जानता है। तदपेक्षया मति-अज्ञानपर्याय अनन्तगुणे यो है कि उसका विषय अनभिलाप्यवस्तु भी है। उनसे मतिज्ञान के पर्याय विशेषाधिक यो है कि मति-अज्ञान के अगोचर कितने ही पदार्थो को मतिज्ञान जानता है और उनसे केवलज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे इसलिए है कि केवलज्ञान सर्वकालगत समस्त द्रव्यो और समस्त पर्यायो को जानता है।[1]

॥ अष्टम शतक : द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३६२ से ३६४ तक

तइओ उद्देसओ : 'रुक्खा'

तृतीय उद्देशक : 'वृक्ष'

संख्यातजीविक, असंख्यातजीविक और अनन्तजीविक वृक्षो का निरूपण—

१ कतिविहा ण भते ! रुक्खा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा रुक्खा पण्णत्ता, त जहा—सखेज्जजीविया असखेज्जजीविया अणतजीविया ।

[१ प्र] भगवन् ! वृक्ष कितने प्रकार के कहे गए है ?

[१ उ] गौतम ! वृक्ष तीन प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार—(१) सख्यात जीव वाले, (२) असख्यात जीव वाले और (३) अनन्त जीव वाले ।

२ से किं त सखेज्जजीविया ?

संखेज्जजीविया अणेगविहा पण्णत्ता, त जहा—ताले तमाले तक्कलि तेतलि जहा पण्णवणाए जाव नालिएरी, जे यावन्ने तहप्पगारा । से त्त सखेज्जजीविया ।

[२ प्र] भगवन् ! सख्यात जीव वाले वृक्ष कौन-से है ?

[२ उ] गौतम ! सख्यात जीव वाले वृक्ष अनेकविध कहे गए है । जैसे—ताड (ताल), तमाल, तक्कलि, तेतलि इत्यादि, प्रज्ञपनासूत्र (के पहले पद) मे कहे अनुसार यावत् नारिकेल (नारियल) पर्यन्त जानना चाहिए । ये और इनके अतिरिक्त इस प्रकार के जितने भी वृक्षविशेष है, वे सब सख्यात जीव वाले है । यह हुआ सख्यात जीव वाले वृक्षो का वर्णन ।

३ से किं त असखेज्जजीविया ?

असखेज्जजीविया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—एगट्ठिया य बहुबीयगा य ।

[३ प्र] भगवन् ! असख्यात जीव वाले वृक्ष कौन-से हैं ?

[३ उ] गौतम ! असख्यात जीव वाले वृक्ष दो प्रकार के कहे गये है । यथा—एकास्थिक (एक गुठली—बीज वाले) और बहुबीजक (बहुत बीजो वाले) ।

४ से किं त एगट्ठिया ?

एगट्ठिया अणेगविहा पण्णत्ता, त जहा—निबबजंबु एव जहा पण्णवणापए जाव फला बहुबीयगा । से त्त बहुबीयगा । से त्त असखेज्जजीविया ।

[४ प्र] भगवन् ! एकास्थिक वृक्ष कौन-से हैं ?

[४ उ] गौतम ! एकास्थिक (एक गुठली या बीज वाले) वृक्ष अनेक प्रकार के कहे गए है । जैसे कि—नीम, आम, जामुन आदि । इस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र (के प्रथम पद) मे कहे अनुसार यावत्

'बहुबीज वाले फलो' तक कहना चाहिए। इस प्रकार यह बहुबीजको का वर्णन हुआ। और (इसके साथ ही) असख्यात जीव वाले वृक्षो का वर्णन भी पूर्ण हुआ।

५ से किं तं अणंतजीविया ?

अणतजीविया अणेगविहा पण्णत्ता, त जहा—आलुए मूलए सिंगबेरे एव जहा सत्तमसए (स० ७ उ० ३ सु० ५) जाव सीउढी मुसु ढी, जे यावन्ने तहप्पकारा। से त्त अणतजीविया'।

[५ प्र] भगवन्! अनन्त जीव वाले वृक्ष कौन-से हैं?

[५ उ] गौतम! अनन्त जीव वाले वृक्ष अनेक प्रकार के कहे गए हैं। जैसे—आलू, मूला, शृ गबेर (अदरख) आदि। इस प्रकार भगवतीसूत्र के सप्तम शतक के तृतीय उद्देशक मे कहे अनुसार, यावत् 'सिउढी, मुसु ढी' तक जानना चाहिए। ये और इनके अतिरिक्त जितने भी इस प्रकार के अन्य वृक्ष हैं, उन्हे भी (अनन्त जीव वाले) जान लेना चाहिए। यह हुआ उन अनन्त जीव वाले वृक्षो का कथन।

विवेचन—सख्यातजीविक, असख्यातजीविक और अनन्तजीविक वृक्षो का निरूपण—प्रस्तुत तृतीय उद्देशक के प्रारम्भिक पाच सूत्रो मे वृक्षो के तीन प्रकार का और फिर उनमे से प्रत्येक प्रकार के वृक्षो का परिचय दिया गया है।

संख्यातजीविक, असख्यातजीविक और अनन्तजीविक का विश्लेषण—जिन मे सख्यात जीव हो उन्हे सख्यातजीविक कहते हैं, प्रज्ञापना मे दो गाथाओ द्वारा नालिकेरी तक, इनके नामो का उल्लेख किया गया है—

> **ताल तमाले तेतलि, साले य सारकल्लाणे।**
> **सरले जायइ केयइ कदलि तह चम्मरुक्खे य ॥१॥**
> **भुयरुक्खे हिंगु ` य लवगरुक्खे य होइ बोद्धव्वे।**
> **पूयफली खज्जूरी बोधव्वा नालियेरी य ॥२॥**

अर्थात्—ताड, तमाल, तेतलि (इमली), साल, सारकल्याण, सरल, जाई, केतकी, कदली (केला) तथा चर्मवृक्ष, भुर्जवृक्ष, हिंगुवृक्ष और लवगवृक्ष, पूगफली (पूगीफल—सुपारी), खजूर, और नारियल के वृक्ष सख्यातजीविक समझने चाहिए। असख्यात जीव वाले (असख्यातजीविक) मुख्यतया दो प्रकार के हैं—एकास्थिक और बहुबीजक। जिन फलो मे एक ही बीज (या गुठली) हो वे एकास्थिक और जिन फलो मे बहुत-से बीज हो, वे बहुबीजक-अनेकास्थिक कहलाते हैं। प्रज्ञापनासूत्र मे एकास्थिक के कुछ नाम इस प्रकार दिये गए है—

> **'निबब-जम्बुकोसब साल अकोल्लपीलु सल्लूया।**
> **सल्लइमोयइमालुय बउलपलासे करजे य ॥१॥**

अर्थात्—नीम, आम, जामुन, कोशाम्ब, साल, अकोल्ल, पीलू, सल्लूक, सल्लकी, मोदकी, मालुक, वकुल, पलाश और करज इत्यादि फल एकास्थिक जानने चाहिए।

वहुबीजक फलो के प्रज्ञापनासूत्र मे उल्लिखित नाम इस प्रकार है—

अत्थिय-तेंदु-कविट्ठे-अवाडग-माउलुंगबिल्ले य ।
आमलग-फणस-दाडिम आसोट्ठे उंबर-वडे य ॥

अस्थिक, तिन्दुक, कविट्ठ, आम्रातक, मातुलुंग (बिजौरा), बेल, आंवला, फणस (अनन्नास), दाडिम, अश्वत्थ, उदुम्बर और वट, ये बहुबीजक फल है ।

अनेकजीविक फलदार वृक्षो के भी प्रज्ञापना मे कुछ नाम इस प्रकार गिनाए है—

एएसि मूला वि असंखेज्जजीविया, कंदावि खंधावि तयावि, सालावि पवालावि, पत्ता पत्तेय-जीविया पुप्फा अणेगजीविया फला बहुबीयगा ।" इन (पूर्वोक्त) वृक्षो के मूल भी असख्यातजीविक है । कन्द, स्कन्ध, त्वचा (छाल), शाखा, प्रवाल (नये कोमल पत्ते), पत्ते प्रत्येकजीवी है, फूल अनेक-जीविक है, फल बहुबीज वाले हैं ।[1]

छिन्न कछुए आदि के टुकडो के बीच का जीवप्रदेश स्पृष्ट और शस्त्रादि के प्रभाव से रहित—

६. [१] अह भंते ! कुम्मे कुम्मावलिया, गोहे गोहावलिया, गोणे गोणावलिया, मणुस्से मणुस्सावलिया, महिसे महिसावलिया, एएसि णं दुहा वा तिहा वा संखेज्जहा वा छिन्नाणं जे अंतरा ते वि णं तेहिं जीवपदेसेहिं फुडा ?

हंता, फुडा ।

[६-१ प्र] भगवन् ! कछुआ, कछुओ की श्रेणी (कूर्मावली), गोधा (गोह), गोधा की पंक्ति (गोधावलिका), गाय, गायो की पंक्ति, मनुष्य, मनुष्यो की पंक्ति, भैसा, भैसो की पंक्ति, इन सबके दो या तीन अथवा संख्यात खण्ड (टुकडे) किये जाएँ तो उनके बीच का भाग (अन्तर) क्या जीवप्रदेशो से स्पृष्ट (व्याप्त—छूआ हुआ) होता है ?

[६-१ उ] हाँ, गौतम ! वह (बीच का भाग जीवप्रदेशो से) स्पृष्ट होता है ।

[२] पुरिसे णं भंते ! ते अंतरे हत्थेण वा पादेण वा अंगुलियाए वा, सलागाए वा कट्ठेण वा किलिंचेण वा आमुसमाणे वा सम्मुसमाणे वा आलिहमाणे वा विलिहमाणे वा अन्नयरेण वा तिक्खेण सत्थजातेण आच्छिंदमाणे वा विच्छिंदमाणे वा, अगणिकाएण वा समोडहमाणे तेसिं जीवपदेसाणं किंचि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पायइ ? छविच्छेदं वा करेइ ?

णो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं संकमति ।

[६-२ प्र] भगवन् ! कोई पुरुष उन कछुए आदि के खण्डो के बीच के भाग को हाथ से, पैर से अंगुलि से, शलाका (सलाई) से, काष्ठ से या लकडी के छोटे-से टुकडे से थोडा स्पर्श करे, विशेष स्पर्श करे, थोडा-सा खीचे या विशेष खीचे या किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात (शस्त्रसमूह) से थोडा

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्रांक ३६४-३६५
(ख) प्रज्ञापनासूत्र (महावीर विद्यालय०) पद १, सूत्र ४७, गाथा ३७-३८
(ग) प्रज्ञापनासूत्र (महावीर विद्यालय०) पद १, सूत्र ४०, गाथा १३-१४-१५

छेदे अथवा विशेष छेदे अथवा अग्निकाय से उसे जलाए तो क्या उन जीवप्रदेशो को थोडी या अधिक बाधा (पीडा) उत्पन्न कर पाता है अथवा उसके किसी भी अवयव का छेद कर पाता है ?

[६-२ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है, (अर्थात् वह जरा-सी भी पीडा नही पहुँचा सकता और न अगभग कर सकता है ।), क्योकि उन जीवप्रदेशो पर शस्त्र (आदि) का प्रभाव नही होता ।

विवेचन—छिन्न कछुए आदि के टुकडो के बीच का जीवप्रदेश स्पृष्ट और शस्त्रादि के प्रभाव से रहित—प्रस्तुत सूत्र (सू ६) मे दो तथ्यो का स्पष्ट निरूपण किया गया है—

(१) किसी भी जीव के शरीर के टुकडे-टुकडे कर देने पर भी उसके बीच के भाग कुछ काल तक जीवप्रदेशो से स्पृष्ट रहते हैं, तथा (२) कोई भी व्यक्ति जीवप्रदेशो को हाथ आदि से छुए, खीचे या शस्त्रादि से काटे तो उन पर उसका कोई असर नही होता ।[1]

रत्नप्रभादि पृथ्वियो के चरमत्व-अचरमत्व का निरूपण—

७ कति ण भते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ पुढवीओ पन्नत्ताओ, त जहा—रयणप्पभा जाव अहेसत्तमा पुढवी, ईसिपब्भारा ।

[७ प्र] भगवन् ! पृथ्वियाँ कितनी कही गई है ?

[७ उ] गौतम ! पृथ्वियाँ आठ कही गई है । वे इस प्रकार है—रत्नप्रभापृथ्वी यावत् अध सप्तमा (तमस्तमा) पृथ्वी और ईषत्प्राग्भारा (सिद्धशिला) ।

८ इमा ण भते ! रयणप्पभापुढवी किं चरिमा, अचरिमा ? चरिमपद निरवसेस भाणियव्व जाव वेमाणिया ण भते ! फासचरिमेण किं चरिमा अचरिमा ?

गोयमा ! चरिमा वि अचरिमा वि ।

सेवं भते ! सेव भते ! त्ति भगव गोतमे० ।

।। अट्ठमसए : तइओ उद्देसओ समत्तो ।।

[८ प्र] भगवन् ! क्या यह रत्नप्रभापृथ्वी चरम (प्रान्तवर्ती—अन्तिम) है अथवा अचरम (मध्यवर्ती) है ?

[८ उ] (गौतम !) यहाँ प्रज्ञापनासूत्र का समग्र चरमपद (१० वाँ) कहना चाहिए, यावत्-(प्र) भगवन् ! वैमानिक स्पर्शचरम से क्या चरम है, अथवा अचरम हैं ? (उ) गौतम ! वे चरम भी हैं और अचरम भी हैं । (यहाँ तक कहना चाहिए ।)

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', (यो कहकर भगवान् गौतम यावत् विचरण करते हैं ।)

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ–टिप्पणयुक्त) भा १, पृ ३५३

विवेचन—रत्नप्रभादि पृथ्वियो के चरमत्व-अचरमत्व का निरूपण—प्रस्तुत सूत्रद्वय (सू ७-८) मे दो तथ्यो का निरूपण किया गया है—आठ पृथ्वियो का और रत्नप्रभादि पृथ्वियो के चरमत्व—अचरमत्व का।

चरम-अचरम-परिभाषा—चरम का अर्थ यहाँ प्रान्त या पर्यन्तवर्ती (अन्तिम सिरे पर रहा हुआ) है। यह अन्तवर्तित्व अन्य द्रव्य की अपेक्षा से समझना चाहिए। जैसे—पूर्वशरीर की अपेक्षा से चरमशरीर कहा जाता है। अचरम का अर्थ है—अप्रान्त यानी मध्यवर्ती। यह भी आपेक्षिक है। जैसे कि कहा जाता है—अन्यद्रव्य की अपेक्षा यह अचरम द्रव्य है अथवा अन्तिम शरीर की अपेक्षा यह मध्य शरीर है।[1]

चरमादि छह प्रश्नोत्तरो का आशय—प्रज्ञापनासूत्र मे रत्नप्रभापृथ्वी के सम्बन्ध मे ६ प्रश्न और उनके उत्तर प्रस्तुत किये गए है। यथा—रत्नप्रभापृथ्वी चरम है, अचरम है, (एकवचन की अपेक्षा से) चरम है या अचरम है (बहुवचन की अपेक्षा से) अथवा चरमान्त प्रदेश है, या अचरमान्त प्रदेश है? इसके उत्तर मे कहा गया है—रत्नप्रभापृथ्वी न तो चरम है, न अचरम है, न वे (पृथ्वियाँ) चरम है, और न अचरम हैं, न ही चरमान्तप्रदेश (उसका भूभाग प्रान्तवर्ती) है, न ही अचरमान्तप्रदेश है। रत्नप्रभा मे चरमत्व (एकवचन-बहुवचन दोनो दृष्टियो से) इसलिए घटित नही हो सकता कि चरमत्व आपेक्षिक है, अन्यापेक्ष है और अन्य पृथ्वी का वहाँ अभाव होने से रत्नप्रभा चरम नही है। और अचरमत्व भी उसमे तब घटित हो, जब बीच मे कोई दूसरी पृथ्वी हो, वह भी नही है। इसलिए रत्नप्रभा अचरम भी नही है। रत्नप्रभापृथ्वी असख्यात प्रदेशावगाढ है किन्तु पास मे या मध्य मे दूसरी पृथ्वी के प्रदेश न होने से वह न तो चरमान्तप्रदेश है और न अचरमान्त।[2]

॥ अष्टम शतक : तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्राक ३६५

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ३६६,

(ख) प्रज्ञापना पद १०, (म विद्या) सू ७७४-८२९, पृ १९३-२०८

चउत्थो उद्देसओ : किरिया

चतुर्थ उद्देशक : 'क्रिया'

क्रियाएँ और उनसे सम्बन्धित भेद-प्रभेदो आदि का निर्देश—

१ रायगिहे जाव एव वदासी—

[१ उद्देशक का उपोद्घात] राजगृह नगर मे यावत् गौतमस्वामी ने इस प्रकार पूछा—

२ कति ण भते ! किरियाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—काइया अहिगरणिया, एवं किरियापद निरवसेस भाणियव्व जाव मायावत्तियाओ किरियाओ विसेसाहियाओ ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति भगव गोयमे० ।

।। अट्ठमसए : चउत्थो उद्देसओ समत्तो ।।

[२ प्र] भगवन् ! क्रियाएँ कितनी कही गई हैं ?

[२ उ] गौतम ! क्रियाएँ पाच कही गई हैं । वे इस प्रकार—

(१) कायिकी, (२) आधिकरणिकी, (३) प्राद्वेषिकी, (४) पारितापनिकी और (५) प्राणातिपातिकी ।

यहाँ प्रज्ञापनासूत्र का (बाईसवाँ) समग्र क्रियापद कहना चाहिए, यावत् 'मायाप्रत्ययिकी क्रियाएँ विशेषाधिक है,'—यहाँ तक कहना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करने लगे ।

विवेचन—क्रियाएँ और उनसे सम्बन्धित भेद-प्रभेदो आदि का निर्देश—प्रस्तुत उद्देशक के सूत्रद्वय मे मुख्य क्रियाओ और उनसे सम्बन्धित भेद-प्रभेद एव अल्पबहुत्व का प्रज्ञापनासूत्र के अतिदेश-पूर्वक निर्देश किया गया है ।

क्रिया की परिभाषा—कर्मबन्ध की कारणभूत चेष्टा को अथवा दुर्व्यापारविशेष को जैन-दर्शन मे क्रिया कहा गया है ।

कायिकी आदि क्रियाओ का स्वरूप और प्रकार—कायिकी के दो प्रकार—१ अनुपरतकायिकी (हिंसादि सावद्ययोग से देशत या सर्वत अनिवृत्त-अविरत जीवो को लगने वाली), **और २ दुष्प्रयुक्त-कायिकी**—कायादि के दुष्प्रयोग से प्रमत्तसयत को लगने वाली क्रिया) । **आधिकरणिकी के दो भेद— १ सयोजनाधिकरणिकी** (पहले से बने हुए अस्त्र-शस्त्रादि हिंसा के साधनो को एकत्रित कर तैयार

रखना) तथा २ निर्वर्तनाधिकरणिकी (नये अस्त्र-शस्त्रादि बनाना)। प्राद्वेषिकी—(स्वय का, दूसरो का, उभय का अशुभ-द्वेषयुक्त चिन्तन करना), पारितापनिकी (स्व, पर और उभय को परिताप उत्पन्न करना) और प्राणातिपातिकी (अपने आपके, दूसरो के या उभय के प्राणो का नाश करना)। कायिकी आदि पाच-पाच करके पच्चीस क्रियाओ का वर्णन भी मिलता है। इसके अतिरिक्त इन पाचो क्रियाओ का अल्प-बहुत्व भी विस्तृत रूप से प्रज्ञापना मे प्रतिपादित किया गया है।[1]

॥ अष्टम शतक : चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३६७ (ख) भगवती (हिन्दीविवेचनयुक्त) भा ३, पृ १३७४

पंचमो उद्देसओ : 'आजीव'

पंचम उद्देशक : 'आजीव'

सामायिकादि साधना मे उपविष्ट श्रावक का सामान या स्त्री आदि परकीय हो जाने पर भी उसके द्वारा स्वममत्ववश अन्वेषण—

१ रायगिहे जाव एव वदासी—

[१ उद्देशक का उपोद्घात] राजगृह नगर मे यावत् गौतमस्वामी ने (श्रमण भगवान् महावीर से) इस प्रकार पूछा—

२ आजीविया ण भते ! थेरे भगवते एव वदासि—

समणोवासगस्स ण भते ! सामाइयकडस्स समणोवस्सए अच्छमाणस्स केइ भडे अवहरेज्जा, से ण भते ! त भड अणुगवेसमाणे कि सभड अणुगवेसति ? परायग भड अणुगवेसइ ?

गोयमा ! सभड अणुगवेसति नो परायग भड अणुगवेसेति ।

[२ प्र] भगवन् ! आजीविको (गोशालक के शिष्यो) ने स्थविर भगवन्तो से इस प्रकार पूछा कि 'सामायिक करके श्रमणोपाश्रय मे बैठे हुए किसी श्रावक के भाण्ड-वस्त्र आदि सामान को कोई अपहरण कर ले जाए, (और सामायिक पूर्ण होने पर उसे पार कर) वह उस भाण्ड-वस्त्रादि सामान का अन्वेषण करे तो क्या वह (श्रावक) अपने सामान का अन्वेषण करता है या पराये (दूसरो के) सामान का अन्वेषण करता है ?

[२ प्र [गौतम ! वह (श्रावक) अपने ही सामान (भाण्ड) का अन्वेषण करता है, पराये सामान का अन्वेषण नही करता ।

३. [१] तस्स ण भंते ! तेहिं सीलव्वत-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं से भडे अभडे भवति ?

हता, भवति ।

[३-१ प्र] भगवन् ! उन शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, प्रत्याख्यान और पोषधोपवास को स्वीकार किये हुए श्रावक का वह अपहृत भाण्ड (सामान) उसके लिए तो अभाण्ड हो जाता है ? (अर्थात् सामायिक आदि की साधनावस्था मे वह सामान उसका अपना रह जाता है क्या ?)

[३-१ उ] हाँ, गौतम, (शीलव्रतादि के साधनाकाल मे) वह भाण्ड उसके लिए अभाण्ड हो जाता है ।

[२] से केण खाइ ण अट्ठेण भते ! एवं वच्चति 'सभडं अणुगवेसइ नो परायग भंडं अणुगवेसइ' ?

गोयमा ! तस्स ण एव भवति—णो मे हिरण्णे, नो मे सुवण्णे नो मे कसे, नो मे दूसे, नो मे विउलधण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय सख-सिल-प्पवाल-रत्तरयणमादीए सतसारसावदेज्जे, ममत्तभावे पुण से अपरिण्णाते भवति, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एव वुच्चइ—'सभड अणुगवेसइ नो परायग भड अणुगवेसइ ।

[३-२ प्र.] भगवन् ! (जब वह भाण्ड उसके लिए अभाण्ड हो जाता है,) तब आप ऐसा क्यो कहते है कि वह श्रावक अपने भाण्ड का अन्वेषण करता है, दूसरे के भाण्ड का अन्वेषण नही करता ?

[३-२ उ] गौतम ! सामायिक आदि करने वाले उस श्रावक के मन मे हिरण्य (चादी) मेरा नही है, सुवर्ण मेरा नही है, कास्य (कासी के बर्तन आदि सामान) मेरा नही है, वस्त्र मेरे नही है तथा विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शख, शिलाप्रवाल (मू गा) एव रक्तरत्न (पद्मरागादि मणि) इत्यादि विद्यमान सारभूत द्रव्य मेरा नही है । किन्तु (उन पर) ममत्वभाव का उसने प्रत्याख्यान नही किया है । इसी कारण से, हे गौतम ! मैं ऐसा कहता हूँ कि वह श्रावक अपने भाण्ड का अन्वेषण करता है, दूसरो के भाण्ड (सामान) का अन्वेषण नही करता ।

४ समणोवासगस्स ण भते ! सामाइयकडस्स समणोवस्सए अच्छमाणस्स केइ जाय चरेज्जा, से णं भते ! किं जाय चरइ, अजाय चरइ ?

गोयमा ! जाय चरइ, नो अजायं चरइ ।

[४ प्र] भगवन् ! सामायिक करके श्रमणोपाश्रय मे बैठे हुए श्रावक की पत्नी के साथ कोई लम्पट व्यभिचार करता (भोग भोगता) है, तो क्या वह (व्यभिचारी) जाया (श्रावक की पत्नी) को भोगता है, या अजाया (श्रावक की स्त्री को नही, दूसरे की स्त्री) को भोगता है ?

[४ उ] गौतम ! वह (व्यभिचारी पुरुष) उस श्रावक की जाया (पत्नी) को भोगता है, अजाया (श्रावक के सिवाय दूसरे की स्त्री को) नही भोगता ।

५ [१] तस्स ण भंते ! तेहिं सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं सा जाया अजाया भवइ ?

हता, भवइ ।

[५-१ प्र] भगवन् ! शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान और पोषधोपवास कर लेने से क्या उस श्रावक की वह जाया 'अजाया' हो जाती है ?

[५-१ उ] हाँ, गौतम ! (शीलव्रतादि की साधनावेला मे) श्रावक की जाया, अजाया हो जाती है ।

[२] से केण खाइ ण अट्ठेण भते ! एव वुच्चइ० 'जाय चरइ, नो अजाय चरइ' ?

गोयमा ! तस्स ण एव भवइ—णो मे माता, णो मे पिता, णो मे भाया, णो मे भगिणी, णो मे भज्जा, णो मे पुत्ता, णो मे धूता, नो मे सुण्हा, पेज्जबधणे पुण से अव्वोच्छिन्ने भवइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव नो अजाय चरइ ।

[५-२ प्र] भगवन्! (जब शीलव्रतादि-साधनाकाल मे श्रावक की जाया 'अजाया' हो जाती है,) तब आप ऐसा क्यो कहते है कि वह लम्पट उसकी जाया को भोगता है, अजाया को नही भोगता।

[५-२ उ] गौतम! शीलव्रतादि को अगीकार करने वाले उस श्रावक के मन मे ऐसे परिणाम होते है कि 'माता मेरी नही है, पिता मेरे नही है, भाई मेरा नही है, बहन मेरी नही है, भार्या मेरी नही है, पुत्र मेरे नहीं हैं, पुत्री मेरी नही है, पुत्रवधू (स्नुषा) मेरी नही है, किन्तु इन सबके प्रति उसका प्रेम (प्रेय) बन्धन टूटा नही (अव्यवच्छिन्न) है। इस कारण, हे गौतम! मैं कहता हूँ कि वह पुरुष उस श्रावक की जाया को भोगता है, अजाया को नही भोगता।

विवेचन—सामायिकादि साधना मे उपविष्ट श्रावक का सामान या स्त्री आदि स्वकीय हो न रहने पर भी उसके प्रति स्वममत्व—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे सामायिक आदि मे बैठे हुए श्रमणोपासक का सामान अपना न होते हुए भी अपहृत हो जाने पर ममत्ववश स्वकीय मान कर अन्वेषण करने की वृत्ति सूचित की गई है।

सामायिकादि साधना मे परकीय पदार्थ स्वकीय क्यो?—सामायिक, पौषधोपवास आदि अगीकार किये हुए श्रावक ने यद्यपि वस्त्रादि सामान का त्याग कर दिया है, यहाँ तक कि सोना, चादी, अन्य धन, घर, दूकान, माता-पिता, स्त्री, पुत्र आदि पदार्थो के प्रति भी उसके मन मे यही परिणाम होता है कि ये मेरे नही है, तथापि उसका उनके प्रति ममत्व का त्याग नही हुआ है, उनके प्रति प्रेमबन्धन रहा हुआ है, इसलिए वे वस्त्रादि तथा स्त्री आदि उसके कहलाते है।[1]

श्रावक के प्राणातिपात आदि पापो के प्रतिक्रमण,-संवर-प्रत्याख्यान-सम्बन्धी विस्तृत भंगो की प्ररूपणा—

६. [१] समणोवासगस्स ण भते! पुव्वामेव थूलए पाणातिवाते अपच्चक्खाए भवइ, से ण भते! पच्छा पच्चाइक्खमाणे किं करेति?

गोयमा! तीत पडिक्कमति, पडुप्पन्नं सवरेति, अणागत पच्चक्खाति।

[६-१ प्र] भगवन्! जिस श्रमणोपासक ने (पहले) स्थूल प्राणातिपात का प्रत्याख्यान नही किया, वह पीछे उसका प्रत्याख्यान करता हुआ क्या करता है?

[६-१ उ] गौतम! अतीत काल मे किये हुए प्राणातिपात का प्रतिक्रमण करता है (उक्त पाप की निन्दा, गर्हा, आलोचनादि करके उससे निवृत्त होता है) तथा वर्तमानकालीन प्राणातिपात का सवर (निरोध) करता है, एव अनागत (भविष्यत्कालीन) प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता (उसे न करने की प्रतिज्ञा लेता) है।

[२] तीत पडिक्कममाणे किं तिविह तिविहेण पडिक्कमति १, तिविह दुविहेण पडिक्कमति २, तिविह एगविहेण पडिक्कमति ३, दुविह तिविहेण पडिक्कमति ४, दुविह दुविहेण पडिक्कमति ५, दुविह एगविहेण पडिक्कमति ६, एक्कविह तिविहेण पडिक्कमति ७, एक्कविह दुविहेण पडिक्कमति ८, एक्कविह एगविहेण पडिक्कमति ९?

गोयमा! तिविह वा तिविहेण पडिक्कमति, तिविह वा दुविहेणं पडिक्कमति त चेव जाव

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३६८

एक्कविहं वा एक्कविहेण पडिक्कमति। तिविहं वा तिविहेण पडिक्कममाणे न करेति, न कारवेति, करेंतं णाणुजाणति, मणसा वयसा कायसा १। तिविहं दुविहेण पडिक्कममाणे न करेति, न कारवेति, करेंतं नाणुजाणति, मणसा वयसा २; अहवा न करेति, न कारवेति, करेंतं नाणुजाणति, मणसा कायसा ३; अहवा न करेइ, न कारवेति, करेंतं णाणुजाणति, वयसा कायसा ४। तिविहं एगविहेण पडिक्कममाणे न करेति, न कारवेति, करेंतं णाणुजाणति, मणसा ५; अहवा न करेइ, ण कारवेति, करेंतं णाणुजाणति, वयसा ६; अहवा न करेति, न कारवेति, करेंतं णाणुजाणति, कायसा ७। दुविहं तिविहेणं पडिक्कममाणे न करेइ, न कारवेति, मणसा वयसा कायसा ८; अहवा न करेति, करेंतं नाणुजाणइ, मणसा वयसा कायसा ९; अहवा न कारवेइ, करेंतं नाणुजाणइ; मणसा वयसा कायसा १०। दुविहं दुविहेण पडिक्कममाणे न करेति न कारवेति, मणसा वयसा ११; अहवा न करेति, न कारवेति, मणसा कायसा १२, अहवा न करेति, न कारवेति, वयसा कायसा १३, अहवा न करेति, करेंतं नाणुजाणइ, मणसा वयसा १४, अहवा न करेति, करेंतं नाणुजाणइ, मणसा कायसा १५, अहवा न करेति, करेंतं नाणुजाणति, वयसा कायसा १६, अहवा न कारवेति, करेंतं नाणुजाणति मणसा वयसा १७; अहवा न कारवेइ, करेंतं नाणुजाणइ, मणसा कायसा १८; अहवा न कारवेति, करेंतं नाणुजाणइ वयसा कायसा १९। दुविहं एक्कविहेण पडिक्कममाणे न करेति, न कारवेति, मणसा २०, अहवा न करेति, न कारवेति वयसा २१, अहवा न करेति, न कारवेति कायसा २२, अहवा न करेति, करेंतं नाणुजाणइ, मणसा २३; अहवा न करेइ, करेंतं नाणुजाणति, वयसा २४, अहवा न करेइ, करेंतं नाणुजाणइ, कायसा २५; अहवा न कारवेइ, करेंतं नाणुजाणइ, मणसा २६, अहवा न कारवेइ, करेंतं नाणुजाणइ, वयसा २७; अहवा न कारवेइ, करेंतं नाणुजाणइ, कायसा २८। एगविहं तिविहेण पडिक्कममाणे न करेति मणसा वयसा कायसा २९; अहवा न कारवेइ मणसा वयसा कायसा ३०, अहवा करेंतं नाणुजाणति मणसा वयसा कायसा ३१, एक्कविहं दुविहेणं पडिक्कममाणे न करेति मणसा वयसा ३२; अहवा न करेति मणसा कायसा ३३; अहवा न करेइ वयसा कायसा ३४; अहवा न कारवेति मणसा वयसा ३५; अहवा न कारवेति मणसा कायसा ३६; अहवा न कारवेइ वयसा कायसा ३७; अहवा करेंतं नाणुजाणति मणसा वयसा ३८, अहवा करेंतं नाणुजाणति मणसा कायसा ३९; अहवा करेंतं नाणुजाणइ वयसा कायसा ४०। एक्कविहं एगविहेण पडिक्कममाणे न करेति मणसा ४१; अहवा न करेति वयसा ४२, अहवा न करेति कायसा ४३; अहवा न कारवेति मणसा ४४, अहवा न कारवेति वयसा ४५; अहवा न कारवेइ कायसा ४६, अहवा करेंतं नाणुजाणइ मणसा ४७, अहवा करेंतं नाणुजाणति वयसा ४८; अहवा करेंतं नाणुजाणइ कायसा ४९।

[६-२ प्र] भगवन् ! अतीतकालीन प्राणातिपात आदि का प्रतिक्रमण करता हुआ श्रमणोपासक, क्या १ त्रिविध-त्रिविध (तीन करण, तीन योग से), २ त्रिविध-द्विविध (तीन करण, दो योग से), ३ त्रिविध-एकविध (तीन करण, एक योग से) ४ द्विविध-त्रिविध (दो करण, तीन योग से), ५ द्विविध-द्विविध (दो करण, दो योग से), ६ द्विविध-एकविध (दो करण, एक योग से), ७ एकविध-त्रिविध (एक करण, तीन योग से), ८ एकविध-द्विविध (एक करण, दो योग से) अथवा ९ एकविध-एकविध (एक करण, एक योग से) प्रतिक्रमण करता है ?

[६-२ उ] गौतम ! वह त्रिविध-त्रिविध प्रतिक्रमण करता है, अथवा त्रिविध-द्विविध प्रतिक्रमण करता है, अथवा यावत् एकविध-एकविध प्रतिक्रमण करता है।

१ जब वह त्रिविध-त्रिविध प्रतिक्रमण करता है, तब स्वय करता नही, दूसरे से करवाता नही और करते हुए का अनुमोदन करता नही मन से, वचन से और काया से। २ जब त्रिविध-द्विविध प्रतिक्रमण करता है, तब स्वय करता नही, दूसरे से करवाता नही, और करते हुए का अनुमोदन नही करता, मन से और वचन से, ३ अथवा वह स्वय करता नही, कराता नही और अनुमोदन नही करता, मन से और काया से, ४ या वह स्वय करता, कराता और अनुमोदन करता नही, वचन से और काया से।

५ जब त्रिविध-एकविध प्रतिक्रमण करता है, तब स्वयं नही करता, न दूसरे से करवाता है और न करते हुए का अनुमोदन करता है, मन से, ६ अथवा स्वय नही करता, दूसरे से नही करवाता और करते हुए का अनुमोदन नही करता, वचन से, अथवा ७—स्वय नही करता, दूसरे से नही कराता और करते हुए का अनुमोदन नही करता है, काया से।

८—जब द्विविध-त्रिविध प्रतिक्रमण करता है, तब स्वय करता नही, दूसरो से करवाता नही, मन, वचन और काया से, ९—अथवा स्वय करता नही, करते हुए का अनुमोदन करता नही, मन-वचन-काया से १०—अथवा दूसरो से करवाता नही, करते हुए का अनुमोदन करता नही, मन, वचन और काया से।

जब द्विविध—द्विविध प्रतिक्रमण करता है, तब-११—स्वय नही करता, दूसरो से करवाता नही, मन और वचन से, १२—अथवा स्वय करता नही, दूसरो से करवाता नही, मन और काया से, अथवा १३—स्वय करता नही, दूसरो से करवाता नही, वचन और काया से, अथवा १४—स्वय करता नही, करते हुए का अनुमोदन करता नही, मन और वचन से, अथवा १५—स्वय करता नही, करते हुए का अनुमोदन करता नही, मन और काया से, अथवा १६—स्वय करता नही, करते हुए का अनुमोदन करता नही, वचन और काया से। अथवा १७—दूसरो से करवाता नही, करते हुए का अनुमोदन करता नही, मन और वचन से, अथवा १८—दूसरो से करवाता नही, करते हुए का अनुमोदन करता नही, मन और काया से, अथवा १९—दूसरो से करवाता नही, करते हुए का अनुमोदन करता नही, वचन और काया से।

जब द्विविध—एकविध प्रतिक्रमण करता है, तब २०—स्वय करता नही, दूसरो से करवाता नही, मन से, अथवा २१—स्वय करता नही, दूसरो से करवाता नही, वचन से, अथवा २२—स्वय करता नही, दूसरो से करवाता नही, काया से। अथवा २३—स्वय करता नही, करते हुए का अनुमोदन करता नही, मन से, अथवा २४—स्वय करता नही, करते हुए का अनुमोदन करता नही, वचन से, अथवा २५—स्वय करता नही, करते हुए का अनुमोदन करता नही, काया से। अथवा २६—दूसरो से करवाता नही, करते हुए का अनुमोदन करता नही, मन से, अथवा २७—दूसरो से करवाता नही, करते हुए का अनुमोदन करता नही, वचन से, अथवा २८—दूसरो से करवाता नही, करते हुए का अनुमोदन करता नही, काया से।

जव एकविध—त्रिविध प्रतिक्रमण करता है, तब २९—स्वय करता नही, मन, वचन और काया से, अथवा ३०—दूसरो से करवाता नही, मन, वचन और काया से, अथवा ३१—करते हुए का अनुमोदन करता नही, मन, वचन और काया से।

जब एकविध-द्विविध प्रतिक्रमण करता है, तब ३२—स्वय करता नही, मन और वचन से, अथवा ३३—स्वय करता नही, मन और काया से, अथवा ३४—स्वय करता नही, वचन और काया से, अथवा ३५—दूसरो से करवाता नही, मन और वचन से, अथवा ३६—दूसरो से करवाता नही, मन और काया से, अथवा ३७—दूसरो से करवाता नही, वचन और काया से। अथवा ३८—करते हुए का अनुमोदन करता नही, मन और वचन से, अथवा ३९—करते हुए का अनुमोदन करता नही, मन और काया से, अथवा ४०—करते हुए का अनुमोदन करता नही, वचन और काया से।

जब एकविध—एकविध प्रतिक्रमण करता है, तब ४१—स्वय करता नही, मन से, अथवा ४२—स्वय करता नही, वचन से, अथवा ४३—स्वय करता नही, काया से, अथवा ४४—दूसरो से करवाता नही, मन से, अथवा ४५—दूसरो से करवाता नही, वचन से, अथवा ४६—दूसरो से करवाता नही, काया से, अथवा ४७—करते हुए का अनुमोदन करता नही, मन से, अथवा ४८—करते हुए का अनुमोदन करता नही, वचन से, अथवा ४९—करते हुए का अनुमोदन करता नही, काया से।

[३] पडुप्पन्न सवरमाणे किं तिविहं तिविहेण सवरेइ ?

एव जहा पडिक्कममाणेण एगूणपण्णं भगा भणिया एव सवरमाणेण वि एगूणपण्ण भगा भाणियव्वा।

[६-३ प्र] भगवन्! प्रत्युत्पन्न (वर्तमानकालीन) सवर करता हुआ श्रावक क्या त्रिविध-त्रिविध सवर करता है? इत्यादि समग्र प्रश्न पूर्ववत् यावत् एकविध-एकविध सवर करता है?

[६-३ उ] गौतम! प्रत्युत्पन्न का सवर करते हुए श्रावक के पहले कहे अनुसार (त्रिविध-त्रिविध से लेकर एकविध-एकविध तक) उनचास (४९) भग (जो प्रतिक्रमण के विषय मे कहे गए है, वे ही) सवर के विषय मे कहने चाहिए।

[४] अणागत पच्चक्खमाणे किं तिविहं तिविहेण पच्चक्खाइ ?

एव ते चेव भगा एगूणपण्ण भाणियव्वा जाव अहवा करेंत नाणुजाणइ कायसा।

[६-४ प्र] भगवन्! अनागत (भविष्यत्) काल (के प्राणातिपात) का प्रत्याख्यान करता हुआ श्रावक क्या त्रिविध-त्रिविध प्रत्याख्यान करता है? इत्यादि समग्र प्रश्न पूर्ववत्।

[६-४ उ] गौतम! पहले (प्रतिक्रमण के विषय मे) कहे अनुसार यहाँ भी उनचास (४९) भग कहने चाहिए, यावत् 'अथवा करते हुए का अनुमोदन नही करता, काया से,'—यहाँ तक कहना चाहिए।

७ समणोवासगस्स ण भते! पुव्वामेव थूलमुसावादे अपच्चक्खाए भवइ, से ण भते! पच्छा पच्चाइक्खमाणे ?

एवं जहा पाणाइवातस्स सीयाल भंगसत (१४७) भणित तहा मुसावादस्स वि भाणियव्व।

[७ प्र] भगवन्! जिस श्रमणोपासक ने पहले स्थूल मृषावाद का प्रत्याख्यान नही किया, किन्तु पीछे वह स्थूल मृषावाद (असत्य) का प्रत्याख्यान करता हुआ क्या करता है?

[७ उ] गौतम! जिस प्रकार प्राणातिपात के (अतीत के प्रतिक्रमण, वर्तमान के सवर और भविष्य के प्रत्याख्यान, यो त्रिकाल) के विषय मे कुल ४९ × ३ = १४७ (एक सौ सैतालीस) भग कहे गए है, उसी प्रकार मृषावाद के सम्बन्ध मे भी एक सौ सैतालीस भग कहने चाहिए।

८. एवं अदिण्णादाणस्स वि। एवं थूलगस्स मेहुणस्स वि। थूलगस्स परिग्गहस्स वि जाव अहवा करेंतं नाणुजाणइ कायसा।

[८] इसी प्रकार स्थूल अदत्तादान के विषय मे, स्थूल मैथुन के विषय मे एवं स्थूल परिग्रह के विषय मे भी पूर्ववत् प्रत्येक के एक सौ सैंतालीस-एक सौ सैंतालीस त्रैकालिक भंग कहने चाहिए, यावत्—'अथवा पाप करते हुए का अनुमोदन नहीं करता, काया से,' यहाँ तक कहना चाहिए।

विवेचन—श्रावक के प्राणातिपात आदि पापों के प्रतिक्रमण-संवर-प्रत्याख्यान सम्बन्धी भंगों की प्ररूपणा—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. ६ से ८ तक) मे प्राणातिपात आदि पापों के स्थूल रूप से प्रतिक्रमण करने, संवर करने और प्रत्याख्यान करने की विधि के रूप मे प्रत्येक के ४९-४९ भंग बताए गए है।

श्रावक को प्रतिक्रमण, संवर और प्रत्याख्यान करने के लिए प्रत्येक के ४९ भंग—तीन करण हैं—करना, कराना और अनुमोदन करना, तथा तीन योग है—मन, वचन और काया। इनके संयोग से विकल्प नौ और भंग उनंचास होते है। उनकी तालिका इस प्रकार है—

विकल्प	करण	योग	भंग	विवरण
१	तीन	तीन	१	कृत, कारित, अनुमोदित का मन, वचन, काया से निषेध
२	तीन	दो	३	कृत, कारित, अनुमोदित का मन-वचन से, मन-काय से, वचन-काया से निषेध
३	तीन	एक	३	कृत-कारित-अनुमोदित मन से, वचन से, काया से निषेध
४	दो	तीन	३	कृत-कारित का, कृत-अनुमोदित का और कारित-अनुमोदित का मन-वचन-काय से निषेध
५	दो	दो	९	कृत-कारित, कृत-अनुमोदित और कारित-अनुमोदित का मन-वचन से, मन-काया से और वचन-काया से निषेध
६	दो	एक	९	कृत-कारित का मन से, वचन से, काया से, कृत-अनुमोदित का मन-वचन-काया से, कारित-अनुमोदित का भी इसी प्रकार निषेध
७	एक	तीन	३	कृत का मन-वचन-काया से, कारित का मन-वचन-काया से और अनुमोदित का मन-वचन-काया से निषेध
८	एक	दो	९	कृत का मन-वचन से, मन-काया से, वचन-काया से। कारित का मन-वचन से, मन-काया से और वचन-काया से, इसी प्रकार अनुमोदित का निषेध
९	एक	एक	९	कृत का मन से, वचन से, काया से। कारित का भी इसी तरह और अनुमोदित का भी इसी तरह निषेध।

कुल भंग = ४९

भूतकाल के प्रतिक्रमण, वर्तमानकाल के सवर और भविष्य के लिए प्रत्याख्यान की प्रतिज्ञा, इस प्रकार तीनो काल की अपेक्षा ४९ भगो को ३ से गुणा करने पर १४७ भग होते है। ये स्थूल-प्राणातिपात-विषयक हुए। इसी प्रकार स्थूल मृषावाद, स्थूल अदत्तादान, स्थूल मैथुन और स्थूल परिग्रह, इन प्रत्येक के १४७-१४७ भग होते है। यो पाचो अणुव्रतो के कुल भग ७३५ होते है। श्रावक इन ४९ भगो मे से किसी भी भग से यथाशक्ति प्रतिक्रमण, सवर या प्रत्याख्यान कर सकता है। तीन करण तीन योग से सवर या प्रत्याख्यानादि श्रावकप्रतिमा स्वीकार किया हुआ श्रावक कर सकता है।[1]

आजीविकोपासको के सिद्धान्त, नाम, आचार-विचार और श्रमणोपासको की उनसे विशेषता—

९ एए खलु एरिसगा समणोवासगा भवति, नो खलु एरिसगा आजीवियोवासगा भवति।

[९] श्रमणोपासक ऐसे होते हैं, किन्तु आजीविकोपासक ऐसे नही होते।

१० आजीवियसमयस्स ण अयमट्ठे पण्णत्ते—अक्खीणपडिभोइणो सव्वे सत्ता, से हता छेत्ता भेत्ता लु पित्ता विलु पित्ता उद्दवइत्ता आहारमाहारेंति।

[१०] आजीविक (गोशालक) के सिद्धान्त का यह अर्थ (तत्त्व) है कि समस्त जीव अक्षीणपरिभोजी (सचित्ताहारी) होते है। इसलिए वे (लकडी आदि से) हनन (ताडन) करके, (तलवार आदि से) काट कर, (शूल आदि से) भेदन करके, (पख आदि को) कतर (लुप्त) कर, (चमडी आदि को) उतार कर (विलुप्त करके) और विनष्ट करके खाते (आहार करते) है।

११ तत्थ खलु इमे दुवालस आजीवियोवासगा भवति, त जहा—ताले १ तालपलबे २ उव्विहे ३ सविहे ४ अवविहे ५ उदए ६ नामुदए ७ णम्मुदए ८ अणुवालए ९ संखवालए १० अयबुले ११ कायरए १२।

[११] ऐसी स्थिति (ससार के समस्त जीव असयत और हिंसादिदोषपरायण है, ऐसी परिस्थिति) मे आजीविक मत मे ये बारह आजीविकोपासक हैं—(१) ताल, (२) तालप्रलम्ब, (३) उद्विध, (४) सविध, (५) अवविध (६) उदय, (७) नामोदय, (८) नर्मोदय, (९) अनुपालक, (१०) शखपालक, (११) अयम्बुल और (१२) कातरक।

१२ इच्चेते दुवालस आजीवियोवासगा अरहतदेवतागा अम्मा-पिउसुस्सूसगा; पचफल-पडिक्कता, त जहा—उबरेंहि, वडेंहि, बोरेंहि सतरेंहि पिलक्खूंहि, पलडु-ल्हसण-कद-मूलविवज्जगा अणिल्लछिएहिं अणक्कभिन्नेहिं गोणेहिं तसपाणविवज्जिएहिं चित्तेहिं वित्ति कप्पेमाणे विहरति।

[१२] इस प्रकार ये बारह आजीविकोपासक है। इनका देव अरहत (स्वमत-कल्पना से गोशालक अर्हत्) है। वे माता-पिता की सेवा-शुश्रूषा करते हैं। वे पाच प्रकार के फल नही खाते (पाच फलो से विरत है।)वे इस प्रकार—उदुम्बर(गुल्लर) के फल, वड के फल, बोर, सत्तर (शहतूत) के फल, पीपल (प्लक्ष) फल तथा प्याज (पलाण्डु), लहसुन, कन्दमूल के त्यागी होते हैं। तथा

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३७०—३७१

अनिर्लाञ्छित (खस्सी-वधिया न किये हुए), और नाक नही नाथे हुए बैलो से त्रस प्राणी की हिंसा से रहित व्यापार द्वारा आजीविका करते हुए विहरण (जीवनयापन) करते है।

१३ 'एए वि ताव एव इच्छति, किमग पुण जे इमे समणोवासगा भवति ?' जेसि नो कप्पति इमाइ पण्णरस कम्मादाणाइ सय करेत्तए वा, कारवेत्तए वा, करेंत वा अन्नं न समणुजाणेत्तए, त जहा—इगालकम्मे वणकम्मे साडीकम्मे भाडीकम्मे फोडीकम्मे दतवाणिज्जे लक्खवाणिज्जे केसवाणिज्जे रसवाणिज्जे विसवाणिज्जे जतपीलणकम्मे निल्लछणकम्मे दवग्गिदावणया सर-दह-तलायपरिसोसणया असतीपोसणया।

[१३] जब इन आजीविकोपासको को यह अभीष्ट है, तो फिर जो श्रमणोपासक है, उनका तो कहना ही क्या ?, (क्योकि उन्होने तो विशिष्टतर देव, गुरु और धर्म का आश्रय लिया है।)

जो श्रमणोपासक होते है, उनके लिए ये पन्द्रह कर्मादान स्वय करना, दूसरो से कराना, और करते हुए का अनुमोदन करना कल्पनीय (उचित) नही हैं। वे कर्मादान इस प्रकार हैं—(१) अगारकर्म (२) वनकर्म, (३) शाकटिक कर्म, (५) भाटीकर्म, (६) स्फोटक कर्म, (७) दन्तवाणिज्य, (८) लाक्षा-वाणिज्य, (९) रसवाणिज्य, (१०) विषवाणिज्य, (११) यन्त्रपीडन कर्म, (१२) निर्लाछनकर्म, (१३) दावाग्निदापनता, (१४) सरो—ह्रद—तडागशोषणता, (१५) असतीपोषणता।

१४ इच्चेते समणोवासगा सुक्का सुक्काभिजातीया भवित्ता कालमासे काल किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवति।

[१४] ये श्रमणोपासक शुक्ल (पवित्र), शुक्लाभिजात (पवित्र कुलोत्पन्न) हो कर काल (मरण) के समय मृत्यु प्राप्त करके किन्ही देवलोको मे देवरूप से उत्पन्न होते है।

विवेचन—आजीविकोपासको के सिद्धान्त, नाम, आचार-विचार और श्रमणोपासको की उनसे विशेषता—प्रस्तुत पाच सूत्रो मे आजीविकोपासको के सिद्धान्त, नाम, आचार-विचार आदि तथ्यो का निरूपण करके श्रमणोपासको की उनसे विशेषता बताई गई है।

आजीविकोपासको का आचार-विचार—गोशालक मखलीपुत्र के शिष्य आजीविक कहलाते है। गोशालक के समय मे उसके ताल, तालप्रलम्ब आदि बारह विशिष्ट उपासक थे। वे उदुम्बर आदि पाच प्रकार के फल तथा अन्य कुछ फल नही खाते थे। जिन बैलो को बधिया नही किया गया है, और नाक नाथा नही गया है, उनसे अहिंसक ढग से व्यापार करके वे जीविका चलाते थे।

श्रमणोपासको की विशेषता—पूर्वोक्त ४९ भगो मे से यथेच्छ भगो द्वारा श्रमणोपासक अपने व्रत, नियम, सवर, त्याग, प्रत्याख्यान आदि ग्रहण करते हैं, जबकि आजीविकोपासक इस प्रकार से हिंसा आदि का त्याग नही करते, न ही वे कर्मादान रूप पापजनक व्यवसायो का त्याग करते है, श्रमणोपासक तो इन १५ कर्मादानो को सर्वथा त्याग करता है, वह इन हिंसादिमूलक व्यवसायो को अपना ही नही सकता। यही कारण है कि ऐसा श्रमणोपासक चार प्रकार के देवलोको मे से किसी एक देवलोक मे उत्पन्न होता है, क्योकि वह जीवन और जीविका दोनो से पवित्र, शुद्ध और निष्पाप होता है, और उसे विशिष्ट देव, गुरु, धर्म की प्राप्ति होती है।[1]

कर्मादान और उसके प्रकारो की व्याख्या—जिन व्यवसायो या कर्मो (आजीविका के कार्यों)

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३७१-३७२, (ख) योगशास्त्र स्वोपज्ञवृत्तिप्रकाश ४

से ज्ञानावरणीय आदि अशुभकर्मों का विशेषरूप से वन्ध होता है, उन्हे अथवा कर्मवन्ध के हेतुओ को कर्मादान कहते है। श्रावक के लिए कर्मादानो का आचरण स्वय करना, दूसरो से कराना या करते हुए का अनुमोदन करना, निषिद्ध है। ऐसे कर्मादान पन्द्रह हैं—(१) **इंगालकम्मे (अगारकर्म)** अगार अर्थात् अग्निविषयक कर्म यानी अग्नि से कोयले वनाने और उसे बेचने-खरीदने का धधा करना। (२) **वणकम्मे (वनकर्म)** जगल को खरीद कर वृक्षो, पत्तो आदि को काट कर बेचना, (३) **साडीकम्मे (शाकटिककर्म)** गाडी, रथ, तागा, इक्का आदि तथा उसके अगो को बनाने और बेचने का धधा करना। (४) **भाडीकम्मे (भाटीकर्म)** वैलगाडी आदि से दूसरो का सामान एक जगह भाडे से ले जाना, किराये पर बैल, घोडा आदि देना, मकान आदि बना-बनाकर किराये पर देना, इत्यादि धधो से आजीविका चलाना। (५) **फोडीकम्मे (स्फोटकर्म)** सुरग आदि बिछाकर विस्फोट करके जमीन, खान आदि खोदने-फोडने का धधा करना। (६) **दतवाणिज्जे (दन्तवाणिज्य)** पेशगी देकर हाथीदात आदि खरीदने, वनाने व उनसे वनी हुई वस्तुएँ बेचने आदि का धधा करना। (७) **लक्खवाणिज्जे (लाक्षावाणिज्य)** लाख का क्रय-विक्रय करके आजीविका करना। (८) **केसवाणिज्जे (केशवाणिज्य)** केश वाले जीवो का अर्थात्—गाय, भैंस आदि को तथा दास-दासी आदि को खरीद-वेचकर व्यापार करना। (९) **रसवाणिज्जे (रस-वाणिज्य)**—मदिरा आदि नशीले रसो को बनाने-वेचने आदि का धधा करना। (१०) **विसवाणिज्जे (विषवाणिज्य)**—विष (अफीम, सखिया आदि जहर) बेचने का धधा करना। (११) **जतपीलणकम्मे (यत्रपीडनकर्म)**—तिल, ईख आदि पीलने के कोल्हू, चरखी आदि का धधा करना यत्रपीडनकर्म है। (१२) **निल्लछणकम्मे (निर्लाछनकर्म)**—बैल, घोडे आदि को खसी (वधिया) करने का धधा। (१३) **दवग्गिदावणया (दावाग्निदापनता)**—खेत आदि साफ करने के लिए जगल मे आग लगाना-लगवाना। (१४) **सर-दह-तलायसोसणया (सरोह्रद-तड़ाग-शोषणता)** सरोवर, ह्रद या तालाब आदि जलाशयो को सुखाना। और (१५) **असईजणपोसणया (असतीजनपोषणता)** कुलटा, व्यभिचारिणी या दुश्चरित्र स्त्रियो का अड्डा बनाकर उनसे कुकर्म करवा कर आजीविका चलाना अथवा दुश्चरित्र स्त्रियो का पोषण करना। अथवा पापबुद्धिपूर्वक मुर्गा-मुर्गी, साप, सिंह, बिल्ली आदि जानवरो को पालना-पोसना।

देवलोकों के चार प्रकार—

१५ कतिविहा णं भंते ! देवलोगा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चउव्विहा देवलोगा पण्णत्ता, त जहा—भवणवासि-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया।

सेव भते ! सेव भंते ! त्ति०।

॥ अट्ठमसए : पचमो उद्देसओ समत्तो ॥

[१५ प्र] भगवन् ! देवलोक कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[१५ उ] गौतम ! चार प्रकार के देवलोक कहे गए है। यथा—भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कहकर यावत् विचरते है।

॥ अष्टम शतक : पचम उद्देशक समाप्त ॥

छट्ठो उद्देसओ : 'फा ुगं'

छठा उद्देशक : 'प्रासुक'

तथारूप श्रमण, माहन या असंयत आदि को प्रासुक-अप्रासुक, एषणीय-अनेषणीय आहार देने का श्रमणोपासक को फल—

१. समणोवासगस्स ण भते ! तहारूव समण वा माहण वा फासुएसणिज्जेण असण-पाण-खाइम-साइमेण पडिलाभेमाणस्स किं कज्जति ?

गोयमा ! एगतसो से निज्जरा कज्जइ, नत्थि य से पावे कम्मे कज्जति ।

[१ प्र] भगवन् ! तथारूप (श्रमण के वेष तथा तदनुकूल गुणो से सम्पन्न) श्रमण अथवा माहन को प्रासुक एव एषणीय अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार द्वारा प्रतिलाभित करने वाले श्रमणोपासक को किस फल की प्राप्ति होती है ?

[१ उ] गौतम ! वह (ऐसा करके) एकान्त रूप से निर्जरा करता है, उसके पापकर्म नही होता ।

२. समणोवासगस्स ण भते ! तहारूव समणं वा माहण वा अफासुएण अणेसणिज्जेण असण-पाण जाव पडिलाभेमाणस्स कि कज्जइ ?

गोयमा ! बहुतरिया[१] से निज्जरा कज्जइ, अप्पतराए से पावे कम्मे कज्जइ ।

[२ प्र] भगवन् ! तथारूप श्रमण या माहन को अप्रासुक एव अनेषणीय आहार द्वारा प्रतिलाभित करते हुए श्रमणोपासक को किस फल की प्राप्ति होती है ?

[२ उ] गौतम ! उसके बहुत निर्जरा होती है, और अल्पतर पापकर्म होता है ।

३ समणोवासगस्स णं भते ! तहारूव अस्सजयअविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्म फासुएण वा अफासुएण वा एसणिज्जेण वा अणेसणिज्जेण वा असण-पाण जाव किं कज्जइ ?

गोयमा ! एगतसो से पावे कम्मे कज्जइ, नत्थि से काई निज्जरा कज्जइ ।

[३ प्र.] भगवन् ! तथारूप असयत, अविरत, पापकर्मो का जिसने निरोध और प्रत्याख्यान नही किया, उसे प्रासुक या अप्रासुक, एषणीय या अनेषणीय अशन-पानादि द्वारा प्रतिलाभित करते हुए श्रमणोपासक को क्या फल प्राप्त होता है ?

[३ उ] गौतम ! उसे एकान्त पापकर्म होता है, किसी प्रकार की निर्जरा नही होती ।

विवेचन—तथारूप श्रमण, माहन या असयत आदि को प्रासुक-अप्रासुक, एषणीय-अनेषणीय आहार देने का श्रमणोपासक को फल—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे क्रमश तीन तथ्यो का निरूपण किया गया है—(१) तथारूप श्रमण या ब्राह्मण को प्रासुक-एषणीय आहार देने वाले श्रमणोपासक को

एकान्त निर्जरा-लाभ, (२) तथारूप श्रमण या माहन को अप्रासुक-अनेषणीय आहार देने वाले श्रमणोपासक को बहुत निर्जरालाभ और अल्प पापकर्म, तथा (३) तथारूप असयत, अविरत, आदि विशेषणयुक्त व्यक्ति को प्रासुक-अप्रासुक, एषणीय-अनेषणीय आहार देने से एकान्त पापकर्म की प्राप्ति, निर्जरालाभ बिलकुल नही ।

'तथारूप' का आशय—पहले और दूसरे सूत्र मे 'तथारूप' का आशय है—जैनागमो मे वर्णित श्रमण के वेश और चारित्रादि श्रमणगुणो से युक्त । तथा तीसरे सूत्र मे असयत, अविरत आदि विशेषणो से युक्त जो 'तथारूप' शब्द है, उसका आशय यह है कि उस-उस अन्यतीर्थिक वेष से युक्त योगी, सन्यासी, बाबा आदि, जो असयत, अविरत, तथा पापकर्मों के निरोध और प्रत्याख्यान से रहित हैं, उन्हे गुरुबुद्धि से मोक्षार्थ आहार-दान देने का फल सूचित किया गया है ।[1]

मोक्षार्थ दान ही यहाँ विचारणीय—प्रस्तुत तीनो सूत्रो मे निर्जरा के सद्भाव और अभाव की दृष्टि से मोक्षार्थ दान का ही विचार किया गया है । यही कारण है कि तीनो ही सूत्रपाठो मे **'पडिलाभेमाणस्स'** शब्द है, जो कि गुरुबुद्धि से—मोक्षलाभ की दृष्टि से दान देने के फल का सूचक है, अभावग्रस्त, पीडित, दु खित, रोगग्रस्त या अनुकम्पनीय (दयनीय) व्यक्ति या अपने पारिवारिक, सामाजिक जनो को औचित्यादि रूप मे देने मे 'पडिलाभे' शब्द नही आता, अपितु वहाँ **'दलयइ'** या **'दलेज्जा'** शब्द आता है । प्राचीन आचार्यो का कथन भी इस सम्बन्ध मे प्रस्तुत है—

मोक्खत्थ ज दाण, त पइ एसो विही समक्खाओ ।
अणुकंपादाण पुण जिणेहिं, न कयाइ पडिसिद्ध ॥

अर्थात्—यह (उपर्युक्त) विधि (विधान) मोक्षार्थ जो दान है, उसके सम्बन्ध मे कही गई है, किन्तु अनुकम्पादान का जिनेन्द्र भगवन्तो ने कदापि निषेध नही किया है ।

तात्पर्य यह है कि अनुकम्पापात्र को दान देने या औचित्यदान आदि के सम्बन्ध मे निर्जरा की अपेक्षा यहाँ चिन्तन नही किया जाता अपितु पुण्यलाभ का विशेषरूप से विचार किया जाता है ।

'प्रासुक-अप्रासुक,' 'एषणीय-अनेषणीय' की व्याख्या—प्रासुक और अप्रासुक का अर्थ सामान्यतया निर्जीव (अचित्त) और सजीव (सचित्त) होता है तथा एषणीय का अर्थ होता है—आहार सम्बन्धी उद्गमादि दोषो से रहित—निर्दोष और अनेषणीय-दोषयुक्त—सदोष ।[2]

'बहुत निर्जरा, अल्पतर पाप' का आशय—वैसे तो श्रमणोपासक अकारण ही अपने उपास्य तथारूप श्रमण को अप्रासुक और अनेषणीय आहार नही देगा और न तथारूप श्रमण अप्रासुक और अनेषणीय आहार लेना चाहेगे, परन्तु किसी अत्यन्त गाढ कारण के उपस्थित होने पर यदि श्रमणोपासक अनुकम्पावश तथारूप श्रमण के प्राण बचाने या जीवनरक्षा की दृष्टि से अप्रासुक और अनेषणीय आहार या औषध आदि दे देता है, और साधु वैसी दु साध्य रोग या प्राणसकट की परिस्थिति मे अप्रासुक—अनेषणीय भी अपवादरूप मे ले लेता है, बाद मे प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध होने की उसकी भावना है, तो ऐसी परिस्थिति मे उक्त विवेकी श्रावक को 'बहुत निर्जरा और अल्प पाप'

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ३६०-३६१
(ख) भगवतीसूत्र (हिन्दी विवेचनयुक्त) भा , ३ पृ-१३९४

२ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३७३-३७४, (ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ३, पृ १३९५

छट्ठो उद्देसओ : 'फासुगं'

छठा उद्देशक : 'प्रासुक'

तथारूप श्रमण, माहन या असंयत आदि को प्रासुक-अप्रासुक, एषणीय-अनेषणीय आहार देने का श्रमणोपासक को फल—

१. समणोवासगस्स ण भते ! तहारूव समण वा माहण वा फासुएसणिज्जेण असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेमाणस्स किं कज्जति ?

गोयमा ! एगतसो से निज्जरा कज्जइ, नत्थि य से पावे कम्मे कज्जति ।

[१ प्र] भगवन् ! तथारूप (श्रमण के वेष तथा तदनुकूल गुणो से सम्पन्न) श्रमण अथवा माहन को प्रासुक एव एषणीय अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार द्वारा प्रतिलाभित करने वाले श्रमणोपासक को किस फल की प्राप्ति होती है ?

[१ उ] गौतम ! वह (ऐसा करके) एकान्त रूप से निर्जरा करता है, उसके पापकर्म नही होता ।

२. समणोवासगस्स ण भते ! तहारूव समण वा माहण वा अफासुएण अणेसणिज्जेण असण-पाण जाव पडिलाभेमाणस्स किं कज्जइ ?

गोयमा ! बहुतरिया[1] से निज्जरा कज्जइ, अप्पतराए से पावे कम्मे कज्जइ ।

[२ प्र] भगवन् ! तथारूप श्रमण या माहन को अप्रासुक एव अनेषणीय आहार द्वारा प्रतिलाभित करते हुए श्रमणोपासक को किस फल की प्राप्ति होती है ?

[२ उ] गौतम ! उसके बहुत निर्जरा होती है, और अल्पतर पापकर्म होता है ।

३ समणोवासगस्स ण भते ! तहारूव अस्सजयअविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्म फासुएण वा अफासुएण वा एसणिज्जेण वा अणेसणिज्जेण वा असण-पाण जाव किं कज्जइ ?

गोयमा ! एगतसो से पावे कम्मे कज्जइ, नत्थि से काई निज्जरा कज्जइ ।

[३ प्र.] भगवन् ! तथारूप असयत, अविरत, पापकर्मो का जिसने निरोध और प्रत्याख्यान नही किया, उसे प्रासुक या अप्रासुक, एषणीय या अनेषणीय अशन-पानादि द्वारा प्रतिलाभित करते हुए श्रमणोपासक को क्या फल प्राप्त होता है ?

[३ उ] गौतम ! उसे एकान्त पापकर्म होता है, किसी प्रकार की निर्जरा नही होती ।

विवेचन—तथारूप श्रमण, माहन या असयत आदि को प्रासुक-अप्रासुक, एषणीय-अनेषणीय आहार देने का श्रमणोपासक को फल—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे क्रमश तीन तथ्यो का निरूपण किया गया है—(१) तथारूप श्रमण या ब्राह्मण को प्रासुक-एषणीय आहार देने वाले श्रमणोपासक को

एकान्त निर्जरा-लाभ, (२) तथारूप श्रमण या माहन को अप्रासुक-अनेषणीय आहार देने वाले श्रमणोपासक को बहुत निर्जरालाभ और अल्प पापकर्म, तथा (३) तथारूप असंयत, अविरत आदि विशेषणयुक्त व्यक्ति को प्रासुक-अप्रासुक, एषणीय-अनेषणीय आहार देने से एकान्त पापकर्म की प्राप्ति, निर्जरालाभ बिलकुल नही ।

'तथारूप' का आशय—पहले और दूसरे सूत्र मे 'तथारूप' का आशय है—जैनागमों मे वर्णित श्रमण के वेश और चारित्रादि श्रमणगुणो से युक्त । तथा तीसरे सूत्र मे असंयत, अविरत आदि विशेषणो से युक्त जो 'तथारूप' शब्द है, उसका आशय यह है कि उस-उस अन्यतीर्थिक वेष से युक्त योगी, सन्यासी, बाबा आदि, जो असंयत, अविरत, तथा पापकर्मों के निरोध और प्रत्याख्यान से रहित हैं, उन्हे गुरुबुद्धि से मोक्षार्थ आहार-दान देने का फल सूचित किया गया है ।[1]

मोक्षार्थ दान ही यहाँ विचारणीय—प्रस्तुत तीनो सूत्रो मे निर्जरा के सद्भाव और अभाव की दृष्टि से मोक्षार्थ दान का ही विचार किया गया है । यही कारण है कि तीनों ही सूत्रपाठो मे **'पडिलाभेमाणस्स'** शब्द है, जो कि गुरुबुद्धि मे—मोक्षलाभ की दृष्टि मे दान देने के फल का सूचक है, अभावग्रस्त, पीडित, दुःखित, रोगग्रस्त या अनुकम्पनीय (दयनीय) व्यक्ति या अपने पारिवारिक, सामाजिक जनो को औचित्यादि रूप मे देने मे 'पडिलाभे' शब्द नही आता, अपितु वहाँ **'दलयइ'** या **'दलेज्जा'** शब्द आता है । प्राचीन आचार्यों का कथन भी इस सम्बन्ध मे प्रस्तुत है—

> **मोक्खत्थं जं दाणं, तं पइ एसो विही समक्खाओ ।**
> **अणुकंपादाणं पुण जिणेहिं, न कयाइ पडिसिद्धं ॥**

अर्थात्—यह (उपर्युक्त) विधि (विधान) मोक्षार्थ जो दान है, उसके सम्बन्ध मे कही गई है, किन्तु अनुकम्पादान का जिनेन्द्र भगवन्तो ने कदापि निषेध नही किया है ।

तात्पर्य यह है कि अनुकम्पापात्र को दान देने या औचित्यदान आदि के सम्बन्ध मे निर्जरा की अपेक्षा यहाँ चिन्तन नही किया जाता अपितु पुण्यलाभ का विशेषरूप से विचार किया जाता है ।

'प्रासुक-अप्रासुक,' 'एषणीय-अनेषणीय' की व्याख्या—प्रासुक और अप्रासुक का अर्थ सामान्यतया निर्जीव (अचित्त) और सजीव (सचित्त) होता है तथा एषणीय का अर्थ होता है—आहार सम्बन्धी उद्गमादि दोषो से रहित—निर्दोष और अनेषणीय-दोषयुक्त—सदोष ।[2]

'बहुत निर्जरा, अल्पतर पाप' का आशय—वैसे तो श्रमणोपासक अकारण ही अपने उपास्य तथारूप श्रमण को अप्रासुक और अनेषणीय आहार नही देगा और न तथारूप श्रमण अप्रासुक और अनेषणीय आहार लेना चाहेंगे, परन्तु किसी अत्यन्त गाढ कारण के उपस्थित होने पर यदि श्रमणोपासक अनुकम्पावश तथारूप श्रमण के प्राण बचाने या जीवनरक्षा की दृष्टि से अप्रासुक और अनेषणीय आहार या औषध आदि दे देता है, और साधु वैसी दुःसाध्य रोग या प्राणसंकट की परिस्थिति मे अप्रासुक—अनेषणीय भी अपवादरूप मे ले लेता है, बाद मे प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध होने की उसकी भावना है, तो ऐसी परिस्थिति मे उक्त विवेकी श्रावक को 'बहुत निर्जरा और अल्प पाप'

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ३६०-३६१

(ख) भगवतीसूत्र (हिन्दी विवेचनयुक्त) भा , ३ पृ-१३९४

२ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३७३-३७४, (ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ३, पृ १३९५

होता है। बिना ही कारण के यो ही अप्रासुक-अनेषणीय आहार साधु को देने वाले और लेने वाले दोनो का अहित है।[1]

गृहस्थ द्वारा स्वयं या स्थविर के निमित्त कह कर दिये गए पिण्ड, पात्र आदि की उपभोग-मर्यादा-प्ररूपणा—

४ [१] निग्गथ च ण गाहावइकुल पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठ केइ दोहि पिंडेहि उवनिमतेज्जा—एग आउसो ! अप्पणा भु जाहि, एग थेराण दलयाहि, से य त पिंड पडिग्गाहेज्जा, थेरा य से अणुगवेसियव्वा सिया, जत्थेव अणुगवेसमाणे थेरे पासिज्जा तत्थेवाऽणुप्पदायव्वे सिया, नो चेव ण अणुगवेसमाणे थेरे पासिज्जा त नो अप्पणा भु जेज्जा, नो अन्नेसिं दावए, एगते अणावाए अचित्ते बहुफासुए थडिले पडिलेहेत्ता, पमज्जित्ता परिट्ठावेतव्वे सिया।

[४-१] गृहस्थ के घर मे आहार ग्रहण करने की (बहरने) की बुद्धि से प्रविष्ट निर्ग्रन्थ को कोई गृहस्थ दो पिण्ड (खाद्य पदार्थ) ग्रहण करने के लिए उपनिमत्रण करे—'आयुष्मन् श्रमण ! इन दो पिण्डो (दो लड्डू, दो रोटी या दो अन्य खाद्य पदार्थो) मे से एक पिण्ड आप स्वय खाना और दूसरा पिण्ड स्थविर मुनियो को देना। (इस पर) वह निर्ग्रन्थ श्रमण उन दोनो पिण्डो को ग्रहण कर ले और (स्थान पर आ कर) स्थविरो की गवेषणा करे। गवेषणा करने पर उन स्थविर मुनियो को जहाँ देखे, वही वह पिण्ड उन्हे दे दे। यदि गवेषणा करने पर भी स्थविरमुनि कही न दिखाई दे (मिले) तो वह पिण्ड स्वय न खाए और न हीं दूसरे किसी श्रमण को दे, किन्तु एकान्त, अनापात (जहाँ आवागमन न हो), अचित्त या बहुप्रासुक स्थण्डिल भूमि का प्रतिलेखन एव प्रमार्जन करके वहाँ (उस पिण्ड को) परिष्ठापन करे (परठ दे)।

[२] निग्गंथं च ण गाहावइकुल पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठ केति तिहिं पिंडेहि उवनिमतेज्जा—एग आउसो ! अप्पणा भु जाहि, दो थेराण दलयाहि, से य ते पडिग्गाहेज्जा, थेरा य से अणुगवेसेयव्वा, सेसं त चेव जाव परिट्ठावेयव्वे सिया।

[४-२] गृहस्थ के घर मे आहार ग्रहण करने के विचार से प्रविष्ट निर्ग्रन्थ को कोई गृहस्थ तीन पिण्ड ग्रहण करने के लिए उपनिमत्रण करे—'आयुष्मन् श्रमण ! (इन तीनो मे से) एक पिण्ड आप स्वय खाना, और (शेष) दो पिण्ड स्थविर श्रमणो को देना।' (इस पर) वह निर्ग्रन्थ उन तीनो पिण्डो को ग्रहण कर ले। तत्पश्चात् वह स्थविरो की गवेषणा करे। गवेषणा करने पर जहाँ उन स्थविरो को देखे, वही उन्हे वे दोनो पिण्ड दे दे। गवेषणा करने पर भी वे कही दिखाई न दे तो शेष वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए, यावत् स्वय न खाए, परिष्ठापन करे (परठ दे)।

[३] एव जाव दसहिं पिंडेहिं उवनिमतेज्जा, नवरं एग आउसो ! अप्पणा भुंजाहि, नव थेराण दलयाहि, सेसं तं चेव जाव परिट्ठावेतव्वे सिया।

[४-३] इसी प्रकार गृहस्थ के घर मे प्रविष्ट निर्ग्रन्थ को यावत् दस पिण्डो को ग्रहण करने

---

१ "सयरणम्मि असुद्ध दोण्ह वि गेण्हतदितयाणऽहिय।
आउरदिट्ठ तेण त चेव हिय असंथरणे॥" —भगवती अ वृत्ति, पत्राक ३७३

के लिए कोई गृहस्थ उपनिमन्त्रण दे—'आयुष्मन् श्रमण ! इनमें से एक पिण्ड आप स्वयं खाना और शेष नौ पिण्ड स्थविरों को देना,' इत्यादि सब वर्णन पूर्ववत् जानना, यावत् परिष्ठापन करे (परठ दे)।

५ [१] निग्गंथं च णं गाहावइ जाव केइ दोहिं पडिग्गहेहिं उवनिमंतेज्जा—एगं आउसो ! अप्पणा परिभुंजाहि, एगं थेराणं दलयाहि, से य तं पडिग्गाहेज्जा, तहेव जाव तं नो अप्पणा परिभुंजेज्जा, नो अन्नेसिं दावए। सेसं तं चेव जाव परिट्ठावेयव्वे सिया।

[५-१] निर्ग्रन्थ यावत् गृहपति-कुल में प्रवेश करे और कोई गृहस्थ उसे दो पात्र (पतद्ग्रह) ग्रहण करने (वहरने) के लिए उपनिमन्त्रण करे—'आयुष्मन् श्रमण ! (उन दोनों में से) एक पात्र का आप स्वयं उपयोग करना और दूसरा पात्र स्थविरों को दे देना।' उस पर वह निर्ग्रन्थ उन दोनों पात्रों को ग्रहण कर ले। शेष सारा वर्णन उसी प्रकार कहना चाहिए, यावत् उस पात्र का न तो स्वयं उपयोग करे, और न दूसरे साधुओं को दे, शेष सारा वर्णन पूर्ववत् समझना, यावत् उसे परठ दे।

[२] एवं जाव दसहिं पडिग्गहेहिं।

[५-२] इसी प्रकार तीन, चार यावत् दस पात्र तक का कथन पूर्वोक्त पिण्ड के समान कहना चाहिए।

६. एवं जहा पडिग्गहवत्तव्वया भणिया एवं गोच्छग-रयहरण-चोलपट्टग-कंबल-लट्ठी-संथारग-वत्तव्वया य भाणियव्वा जाव दसहिं संथारएहिं उवनिमंतेज्जा जाव परिट्ठावेयव्वे सिया।

[६] जिस प्रकार पात्र के सम्बन्ध में वक्तव्यता कही, उसी प्रकार गुच्छक (पूंजनी), रजोहरण, चोलपट्टक, कम्बल, लाठी, (दण्ड) और संस्तारक (बिछौना या बिछाने का लम्बा आसन—संथारिया) की वक्तव्यता कहनी चाहिए, यावत् दस संस्तारक ग्रहण करने के लिए उपनिमन्त्रण करे, यावत् परठ दे, (यहाँ तक सारा पाठ कहना चाहिए)।

विवेचन—गृहस्थ द्वारा दिये गए पिण्ड, पात्र आदि की उपभोग-मर्यादा-प्ररूपणा—प्रस्तुत तीन सूत्रों में गृहस्थ द्वारा साधु को दिये गए पिण्ड, पात्र आदि के उपभोग करने की विधि बताई गई है।

निष्कर्ष—गृहस्थ ने जो पिण्ड, पात्र, गुच्छक, रजोहरण आदि जितनी संख्या में जिसको उपभोग करने के लिए दिए हैं, उसे ग्रहण करने वाला साधु उसी प्रकार स्थविरों को वितरित कर दे, किन्तु यदि वे स्थविर ढूंढने पर भी न मिले तो उस वस्तु का उपयोग न स्वयं करे और न ही दूसरे साधु को दे, अपितु उसे विधिपूर्वक परठ दे।

परिष्ठापनविधि—किसी भी वस्तु को स्थण्डिल भूमि पर परिष्ठापन करने के लिए मूलपाठ में स्थण्डिल के ४ विशेषण दिये गए हैं—एकान्त, अनापात, अचित्त और बहुप्रासुक। तथा उस पर परिष्ठापनविधि मुख्यतया दो प्रकार से बताई है—प्रतिलेखन और प्रमार्जन।[1]

स्थण्डिल-प्रतिलेखन-विवेक—परिष्ठापन के लिए स्थण्डिल कैसा होना चाहिए ? इसके लिए शास्त्र में १० विशेषण बताए गए हैं—(१) **अनापात-असंलोक** (जहाँ स्वपक्ष-परपक्ष वाले लोगों में से

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ. ३६१-३६२

किसी का भी आवागमन न हो, न ही दृष्टिपात हो), (२) अनुपघातक (जहाँ सयम की, किसी जीव की एव आत्मा की विराधना न हो), (३) सम (भूमि ऊबडखाबड न होकर समतल हो), (४) अशुषिर (पोली या थोथी भूमि न हो), (५) अचिरकालकृत (जो भूमि थोडे ही समय पूर्व दाह आदि से अचित्त हुई हो), (६) विस्तीर्ण (जो भूमि कम से कम एक हाथ लम्बी-चौडी हो), (७) दूरावगाढ (जहाँ कम से कम चार अगुल नीचे तक भूमि अचित्त हो), (८) अनासन्न (जहाँ गाँव या वागबीचा आदि निकट मे न हो) (९) बिलवर्जित (जहाँ चूहे आदि के बिल न हो), (१०) त्रस-प्राण-बीजरहित (जहाँ द्वीन्द्रियादि त्रसप्राणी तथा गेहूँ आदि के बीज न हो)। इन दस विशेषणो से युक्त स्थण्डिल भूमि मे साधु उच्चार-प्रस्रवण (मल-मूत्र) आदि वस्तु परठे।[1]

विशिष्ट शब्दो की व्याख्या—'पिंडवायपडिवाए'—पिण्ड=भोजन का पात—निपतन मेरे पात्र मे हो, इसकी प्रतिज्ञा=बुद्धि से। **'उवनिमतेज्ज'**=भिक्षो! ये दो पिण्ड ग्रहण कीजिए, इस प्रकार कहे। **नो अन्नेसिं दावए**=दूसरो को न दे या दिलाये, क्योकि गृहस्थ ने वह पिण्ड आदि विवक्षित स्थविर को देने के लिए दिया है, अन्य किसी को देने के लिए नही। अन्य साधु को देने या स्वय उसका उपभोग करने से अदत्तादानदोष लगने की सम्भावना है।[2]

अकृत्यसेवी, किन्तु आराधनातत्पर निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी की आराधकता की विभिन्न पहलुओ से सयुक्तिक प्ररूपणा—

७ [१] निग्गथेण य गाहावइकुल पिंडवायपडियाए पविट्ठेण अन्नयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए, तस्स ण एव भवति—इहेव ताव अह एयस्स ठाणस्स आलोएमि पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि विउट्टामि विसोहेमि अकरणयाए अब्भुट्ठेमि, अहारिह पायच्छित्त तवोकम्म पडिवज्जामि, तओ पच्छा थेराण अतियं आलोएस्सामि जाव तवोकम्म पडिवज्जिस्सामि। से य सपट्ठिए, असपत्ते, थेरा य अमुहा सिया, से ण भते! किं आराहए विराहए ?

गोयमा! आराहए, नो विराहए।

[७-१ प्र] गृहस्थ के घर आहार ग्रहण करने की बुद्धि से प्रविष्ट निर्ग्रन्थ द्वारा किसी अकृत्य (मूलगुण मे दोषरूप किसी अकार्य) स्थान (बात) का प्रतिसेवन हो गया हो और तत्क्षण उसके मन मे ऐसा विचार हो कि प्रथम मैं यही इस अकृत्यस्थान की आलोचना, प्रतिक्रमण, (आत्म-) निन्दा (पश्चात्ताप) और गर्हा करू, (उसके अनुबन्ध का) छेदन करू, इस (पाप-दोष से) विशुद्ध बनूँ,

---

१ (क) अणावायमसलोए, अणावाए चेव होइ सलोए।
आवायमसलोए, आवाए चेव होइ सलोए॥ १॥
अणावायमसलोए १ परस्सऽणुवघाइए २।
समे ३ अझुसिरे ४ यावि अचिरकालकयम्मि ५ य॥ २॥
वित्थिण्णे ६ दूरमोगाढे ७ णासण्णे ८ बिलवज्जिए ९।
तसपाण-बीयरहिए, १० उच्चाराईणि वोसिरे॥ ३॥ —उत्तराध्ययन सूत्र, अ २४

(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्राक ३७५

२ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३७४-३७५

पुन ऐसा अकृत्य न करने के लिए अभ्युद्यत (प्रतिज्ञाबद्ध) होऊं, और यथोचित प्रायश्चित्तरूप तप कर्म स्वीकार कर लूं। तत्पश्चात् स्थविरो के पास जाकर आलोचना करूंगा, यावत् प्रायश्चित्त-रूप तप कर्म स्वीकार कर लूंगा। (ऐसा विचार कर) वह निर्ग्रन्थ, स्थविरमुनियो के पास जाने के लिए रवाना हुआ, किन्तु स्थविरमुनियो के पास पहुँचने से पहले ही वे स्थविर (वातादिदोष के प्रकोप से) मूक हो जाएँ (बोल न सकें अर्थात् प्रायश्चित्त न दे सकें) तो हे भगवन्! वह निर्ग्रन्थ आराधक है या विराधक है?

[७-१ उ] गौतम! वह (निर्ग्रन्थ) आराधक है, विराधक नहीं।

[२] से य संपट्ठिए असंपत्ते अप्पणा य पुव्वामेव अमुहे सिया, से णं भंते! किं आराहए, विराहए?

गोयमा! आराहए, नो विराहए।

[७-२ प्र] (उपर्युक्त अकृत्यसेवी निर्ग्रन्थ ने तत्काल स्वयं आलोचनादि कर लिया, यावत् यथायोग्य प्रायश्चित्तरूप तप कर्म भी स्वीकार कर लिया,) तत्पश्चात् स्थविरमुनियो के पास (आलोचनादि करके यावत् तप कर्म स्वीकार करने हेतु) निकला किन्तु उनके पास पहुँचने से पूर्व ही वह निर्ग्रन्थ स्वयं (वातादि दोषवश) मूक हो जाए, तो हे भगवन्! वह निर्ग्रन्थ आराधक है या विराधक?

[७-२ उ] गौतम! वह (निर्ग्रन्थ) आराधक है, विराधक नही।

[३] से य संपट्ठिए, असंपत्ते थेरा य कालं करेज्जा, से णं भंते! किं आराहए विराहए?

गोयमा! आराहए, नो विराहए।

[७-३ प्र] (उपर्युक्त अकृत्यसेवी निर्ग्रन्थ स्वयं आलोचनादि करके यथोचित प्रायश्चित्त रूप तप स्वीकार करके) स्थविर मुनिवरो के पास आलोचनादि के लिए रवाना हुआ, किन्तु उसके पहुँचने से पूर्व ही वे स्थविर मुनि काल कर (दिवगत हो) जाएँ, तो हे भगवन्! वह निर्ग्रन्थ आराधक है विराधक?

[७-३ उ] गौतम! वह निर्ग्रन्थ आराधक है, विराधक नही।

[४] से य संपट्ठिए असंपत्ते अप्पणा य पुव्वामेव कालं करेज्जा, से णं भंते! किं आराहए विराहए?

गोयमा! आराहए, नो विराहए।

[७-४ प्र] भगवन्! (उपर्युक्त अकृत्य-सेवन करके तत्काल स्वयं आलोचनादि करके) वह निर्ग्रन्थ स्थविरो के पास आलोचनादि करने के लिए निकला, किन्तु वहाँ पहुँचा नही, उससे पूर्व ही स्वयं काल कर जाए तो हे भगवन्! वह निर्ग्रन्थ आराधक है या विराधक?

[७-४ उ] गौतम! वह (निर्ग्रन्थ) आराधक है, विराधक नही।

किसी का भी आवागमन न हो, न ही दृष्टिपात हो), (२) अनुपघातक (जहाँ सयम की, किसी जीव की एव आत्मा की विराधना न हो), (३) सम (भूमि ऊबडखाबड न होकर समतल हो), (४) अशुषिर (पोली या थोथी भूमि न हो), (५) अचिरकालकृत (जो भूमि थोडे ही समय पूर्व दाह आदि से अचित्त हुई हो), (६) विस्तीर्ण (जो भूमि कम से कम एक हाथ लम्बी-चौडी हो), (७) दूरावगाढ (जहाँ कम से कम चार अगुल नीचे तक भूमि अचित्त हो), (८) अनासन्न (जहाँ गाँव या बागबीचा आदि निकट मे न हो) (९) बिलवर्जित (जहाँ चूहे आदि के बिल न हो), (१०) त्रस-प्राण-बीजरहित (जहाँ द्वीन्द्रियादि त्रसप्राणी तथा गेहूँ आदि के वीज न हो)। इन दस विशेषणो से युक्त स्थण्डिल भूमि मे साधु उच्चार-प्रस्रवण (मल-मूत्र) आदि वस्तु परठे।[1]

विशिष्ट शब्दो की व्याख्या—'पिंडवायपडिवाए'—पिण्ड=भोजन का पात—निपतन मेरे पात्र मे हो, इसकी प्रतिज्ञा=बुद्धि से। **'उवनिमतेज्ज'**=भिक्षो! ये दो पिण्ड ग्रहण कीजिए, इस प्रकार कहे। **नो अन्नेसिं दावए**=दूसरो को न दे या दिलाये, क्योकि गृहस्थ ने वह पिण्ड आदि विवक्षित स्थविर को देने के लिए दिया है, अन्य किसी को देने के लिए नही। अन्य साधु को देने या स्वय उसका उपभोग करने से अदत्तादानदोष लगने की सम्भावना है।[2]

अकृत्यसेवी, किन्तु आराधनातत्पर निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी की आराधकता की विभिन्न पहलुओ से सयुक्तिक प्ररूपणा—

७. [१] निग्गथेण य गाहावइकुल पिंडवायपडियाए पविट्ठेण अन्नयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए, तस्स ण एव भवति—इहेव ताव अह एयस्स ठाणस्स आलोएमि पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि विउट्टामि विसोहेमि अकरणयाए अब्भुट्ठेमि, अहारिह पायच्छित्तं तवोकम्म पडिवज्जामि, तओ पच्छा थेराण अतियं आलोएस्सामि जाव तवोकम्म पडिवज्जिस्सामि। से य सपट्ठिए, असपत्ते, थेरा य अमुहा सिया, से ण भते! किं आराहए विराहए?

गोयमा! आराहए, नो विराहए।

[७-१ प्र] गृहस्थ के घर आहार ग्रहण करने की बुद्धि से प्रविष्ट निर्ग्रन्थ द्वारा किसी अकृत्य (मूलगुण मे दोषरूप किसी अकार्य) स्थान (बात) का प्रतिसेवन हो गया हो और तत्क्षण उसके मन मे ऐसा विचार हो कि प्रथम मैं यही इस अकृत्यस्थान की आलोचना, प्रतिक्रमण, (आत्म-) निन्दा (पश्चात्ताप) और गर्हा करू, (उसके अनुबन्ध का) छेदन करू, इस (पाप-दोष से) विशुद्ध बनूँ,

१ (क) अणावायमसलोए, अणावाए चेव होइ सलोए।
आवायमसलोए, आवाए चेव होइ सलोए॥ १॥
अणावायमसलोए १ परस्सऽणुवघाइए २।
समे ३ अझुसिरे ४ यावि अचिरकालकयम्मि ५ य॥ २॥
वित्थिण्णे ६ दूरमोगाढे ७ णासण्णे ८ बिलवज्जिए ९।
तसपाण-बीयरहिए, १० उच्चाराईणि वोसिरे॥ ३॥ —उत्तराध्ययन सूत्र, अ २४
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्राक ३७५

२ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३७४-३७५

पुन ऐसा अकृत्य न करने के लिए अभ्युद्यत (प्रतिज्ञाबद्ध) होऊँ, और यथोचित प्रायश्चित्तरूप तप कर्म स्वीकार कर लूँ । तत्पश्चात् स्थविरो के पास जाकर आलोचना करू गा, यावत् प्रायश्चित्त-रूप तप कर्म स्वीकार कर लू गा । (ऐसा विचार कर) वह निर्ग्रन्थ, स्थविरमुनियो के पास जाने के लिए रवाना हुआ, किन्तु स्थविरमुनियो के पास पहुँचने से पहले ही वे स्थविर (वातादिदोष के प्रकोप से) मूक हो जाएँ (बोल न सके अर्थात् प्रायश्चित्त न दे सके) तो हे भगवन् ! वह निर्ग्रन्थ आराधक है या विराधक है ?

[७-१ उ] गौतम ! वह (निर्ग्रन्थ) आराधक है, विराधक नही ।

[२] से य सपट्ठिए असपत्ते अप्पणा य पुव्वामेव अमुहे सिया, से ण भते ! कि आराहए, विराहए ?

गोयमा ! आराहए, नो विराहए ।

[७-२ प्र] (उपर्युक्त अकृत्यसेवी निर्ग्रन्थ ने तत्काल स्वय आलोचनादि कर लिया, यावत् यथायोग्य प्रायश्चित्तरूप तप कर्म भी स्वीकार कर लिया,) तत्पश्चात् स्थविरमुनियो के पास (आलोचनादि करके यावत् तप कर्म स्वीकार करने हेतु) निकला, किन्तु उनके पास पहुँचने से पूर्व ही वह निर्ग्रन्थ स्वय (वातादि दोषवश) मूक हो जाए, तो हे भगवन् ! वह निर्ग्रन्थ आराधक है या विराधक ?

[७-२ उ] गौतम ! वह (निर्ग्रन्थ) आराधक है, विराधक नही ।

[३] से य सपट्ठिए, असपत्ते थेरा य काल करेज्जा, से ण भते ! कि आराहए विराहए ?

गोयमा ! आराहए, नो विराहए ।

[७-३ प्र] (उपर्युक्त अकृत्यसेवी निर्ग्रन्थ स्वय आलोचनादि करके यथोचित प्रायश्चित्त रूप तप स्वीकार करके) स्थविर मुनिवरो के पास आलोचनादि के लिए रवाना हुआ, किन्तु उसके पहुँचने से पूर्व ही वे स्थविर मुनि काल कर (दिवगत हो) जाएँ, तो हे भगवन् ! वह निर्ग्रन्थ आराधक है विराधक ?

[७-३ उ] गौतम ! वह निर्ग्रन्थ आराधक है, विराधक नही ।

[४] से य सपट्ठिए असपत्ते अप्पणा य पुव्वामेव काल करेज्जा, से ण भते ! कि आराहए विराहए ?

गोयमा ! आराहए, नो विराहए ।

[७-४ प्र] भगवन् ! (उपर्युक्त अकृत्य-सेवन करके तत्काल स्वय आलोचनादि करके) वह निर्ग्रन्थ स्थविरो के पास आलोचनादि करने के लिए निकला, किन्तु वहाँ पहुँचा नही, उससे पूर्व ही स्वय काल कर जाए तो हे भगवन् ! वह निर्ग्रन्थ आराधक है या विराधक ?

[७-४ उ] गौतम ! वह (निर्ग्रन्थ) आराधक है, विराधक नही ।

[५] से य सपट्ठिए सपत्ते, थेरा य अमुहा सिया, से ण भते ! किं आराहए विराहए ?

गोयमा ! आराहए, नो विराहए।

[७-५ प्र] उपर्युक्त अकृत्यसेवी निर्ग्रन्थ ने तत्क्षण आलोचनादि करके स्थविर मुनिवरो के पास आलोचनादि करने हेतु प्रस्थान किया, वह स्थविरो के पास पहुँच गया, तत्पश्चात् वे स्थविर मुनि (वातादिदोषवश) मूक हो जाएँ, तो हे भगवन् ! वह निर्ग्रन्थ आराधक है या विराधक ?

[७-५ उ] गौतम ! वह (निर्ग्रन्थ) आराधक है, विराधक नही।

[६-८] से य सपट्ठिए सपत्ते अप्पणा य०।

एव सपत्तेण वि चत्तारि आलावगा भाणियव्वा जहेव असपत्तेण।

[७-६।७।८] (उपर्युक्त अकृत्यसेवी मुनि स्वय आलोचनादि करके स्थविरो की सेवा मे पहुँचते ही स्वय मूक हो जाए, (इसी तरह शेष दो विकल्प है—स्थविरो के पास पहुँचते ही वे स्थविर काल कर जाएँ, या स्थविरो के पास पहुँचते ही स्वय निर्ग्रन्थ काल कर जाए,) जिस प्रकार असप्राप्त (स्थविरो के पास न पहुँचे हुए) निर्ग्रन्थ के चार आलापक कहे गए है, उसी प्रकार सम्प्राप्त निर्ग्रन्थ के भी चार आलापक कहने चाहिए। यावत् (चारो आलापको मे) वह निर्ग्रन्थ आराधक है, विराधक नही।

८ निग्गथेण य बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा निक्खतेण अन्नयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए, तस्स ण एव भवति—इहेव ताव अह०। एव एत्थ वि, ते चेव अट्ठ आलावगा भाणियव्वा जाव नो विराहए।

[८] (उपाश्रय से) बाहर विचारभूमि (नीहारार्थ स्थण्डिलभूमि) अथवा विहारभूमि (स्वाध्यायभूमि) की ओर निकले हुए निर्ग्रन्थ द्वारा किसी अकृत्यस्थान का प्रतिसेवन हो गया हो, तत्क्षण उसके मन मे ऐसा विचार हो कि 'पहले मैं स्वय यही इस अकृत्य की आलोचनादि करू, यावत् यथार्ह प्रायश्चित्तरूप तप कर्म स्वीकार कर लूँ', इत्यादि पूर्ववत् सारा वर्णन यहाँ कहना चाहिए। यहाँ भी पूर्वोक्त प्रकार से असम्प्राप्त और सम्प्राप्त दोनो के (प्रत्येक के स्थविरमूकत्व, स्वमूकत्व, स्थविरकालप्राप्ति और स्वकालप्राप्ति, यो चार-चार आलापक होने से) आठ आलापक कहने चाहिए। यावत् वह निर्ग्रन्थ आराधक है, विराधक नही, यहाँ तक सारा पाठ कहना चाहिए।

९ निग्गथेण य गामाणुगाम दूइज्जमाणेण अन्नयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए, तस्स ण एव भवति—इहेव ताव अह०। एत्थ वि ते चेव अट्ठ आलावगा भाणियव्वा जाव नो विराहए।

[९] ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए किसी निर्ग्रन्थ द्वारा किसी अकृत्यस्थान का प्रतिसेवन हो गया हो और तत्काल उसके मन मे यह विचार स्फुरित हो कि 'पहले मैं यही इस अकृत्य की आलोचनादि करू, यावत् यथायोग्य प्रायश्चित्तरूप तप कर्म स्वीकार करू, इत्यादि सारा वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए। यहाँ भी पूर्ववत् आठ आलापक कहने चाहिए, यावत् वह निर्ग्रन्थ आराधक है, विराधक नही, यहाँ तक समग्र पाठ कहना चाहिए।

१० [१] निग्गंथीए य गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठाए अन्नयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए, तीसे णं एवं भवइ—इहेव ताव अहं एयस्स ठाणस्स आलोएमि जाव तवोकम्मं पडिवज्जामि तओ पच्छा पवत्तिणीए अंतियं आलोएस्सामि जाव पडिवज्जिस्सामि, सा य संपट्ठिया असंपत्ता, पवत्तिणी य अमुहा सिया, सा णं भंते! किं आराहिया, विराहिया ?

गोयमा! आराहिया, नो विराहिया।

[१०-१ प्र] गृहस्थ के घर में आहार ग्रहण करने (पिण्डपात) की बुद्धि से प्रविष्ट किसी निर्ग्रन्थी (साध्वी) ने किसी अकृत्यस्थान का प्रतिसेवन कर लिया, किन्तु तत्काल उसको ऐसा विचार स्फुरित हुआ कि मैं स्वयमेव पहले यहीं इस अकृत्यस्थान की आलोचना कर लूं, यावत् प्रायश्चित्तरूप तप कर्म स्वीकार कर लूं। तत्पश्चात् प्रवर्तिनी के पास आलोचना कर लूंगी यावत् तप कर्म स्वीकार कर लूंगी। ऐसा विचार कर उस साध्वी ने प्रवर्तिनी के पास जाने के लिए प्रस्थान किया, प्रवर्तिनी के पास पहुँचने से पूर्व ही वह प्रवर्तिनी (वातादिदोष के कारण) मूक हो गई, (उसकी जिह्वा बंद हो गई—बोल न सकी), तो हे भगवन्! वह साध्वी आराधक है या विराधक ?

[१०-१ उ] गौतम! वह साध्वी आराधिका है, विराधिका नहीं।

[२] सा य संपट्ठिया जहा निग्गंथस्स तिण्णि गमा भणिया एवं निग्गंथीए वि तिण्णि आलावगा भाणियव्वा जाव आराहिया, नो विराहिया।

[१०-२] जिस प्रकार सम्प्रस्थित (आलोचनादि के हेतु स्थविरों के पास जाने के लिए रवाना हुए) निर्ग्रन्थ के तीन गम (पाठ) उसी प्रकार सम्प्रस्थित (प्रवर्तिनी के पास आलोचनादि हेतु रवाना हुई) साध्वी के भी तीन गम (पाठ) कहने चाहिए, यावत् वह साध्वी आराधिका है, विराधिका नहीं, यहाँ तक सारा पाठ कहना चाहिए।

११. [१] से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—आराहए, नो विराहए ?

"गोयमा! से जहानामए केइ पुरिसे एगं महं उण्णालोमं वा गयलोमं वा सणलोमं वा कप्पासलोमं वा तणसूयं वा दुहा वा तिहा वा संखेज्जहा वा छिंदित्ता अगणिकायंसि पक्खिवेज्जा, से नूणं गोयमा! छिज्जमाणे छिन्ने, पक्खिप्पमाणे पक्खित्ते, डज्झमाणे दड्ढे त्ति वत्तव्वं सिया ?

हंता भगवं! छिज्जमाणे छिन्ने जाव दड्ढे त्ति वत्तव्वं सिया।

[११-१ प्र] भगवन्! किस कारण से आप कहते हैं, कि वे (पूर्वोक्त प्रकार के साधु और साध्वी) आराधक हैं, विराधक नहीं ?

[११-१ उ] गौतम! जैसे कोई पुरुष एक बड़े ऊन (भेड) के बाल के या हाथी के रोम के अथवा सण के रेशे के या कपास के रेशे के अथवा तृण (घास) के अग्रभाग के दो, तीन या संख्यात टुकडे करके अग्निकाय (आग) में डाले तो हे गौतम! काटे जाते हुए वे (टुकडे) काटे गए, अग्नि में ले जाते हुए को डाले गए, या जलते हुए को जल गए, इस प्रकार कहा जा सकता है ?

(गौतम स्वामी—) हाँ भगवन्! काटते हुए काटे गए, अग्नि में डालते हुए डाले गए और जलते हुए जल गए, यों कहा जा सकता है।

"[२] से जहा वा केइ पुरिसे वत्थं अहतं वा धोतं वा तंतुग्गयं वा मंजिट्ठादोणीए पक्खिवेज्जा, से नूणं गोयमा ! उक्खिप्पमाणे उक्खित्ते, पक्खिप्पमाणे पक्खित्ते, रज्जमाणे रत्ते त्ति वत्तव्वं सिया ?

हंता, भगवं ! उक्खिप्पमाणे उक्खित्ते जाव रत्ते त्ति वत्तव्वं सिया।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—आराहए, नो विराहए"।

[११-२] भगवान् का कथन—अथवा जैसे कोई पुरुष बिलकुल नये (नही पहने हुए), या धोये हुए, अथवा तंत्र (करघे) से तुरंत उतरे हुए वस्त्र को मजीठ के द्रोण (पात्र) मे डाले तो हे गौतम ! उठाते हुए वह वस्त्र उठाया गया, डालते हुए डाला गया, अथवा रंगते हुए रंगा गया, यो कहा जा सकता है ?

[गौतम स्वामी—] हाँ, भगवन् उठाते हुए वह वस्त्र उठाया गया, यावत् रंगते हुए रंगा गया, इस प्रकार कहा जा सकता है।

[भगवान्—] इसी कारण से हे गौतम ! यो कहा जाता है कि (आराधना के लिए उद्यत हुए साधु या साध्वी) आराधक हैं, विराधक नही।

विवेचन—अकृत्यसेवी किन्तु आराधनातत्पर निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी की विभिन्न पहलुओ से आराधकता की सयुक्तिक प्ररूपणा—प्रस्तुत पाच सूत्रो मे अकृत्यसेवी किन्तु सावधान तथा क्रमश स्थविरो व प्रवर्तिनी के समीप आलोचनादि के लिए प्रस्थित साधु या साध्वी की आराधकता का सदृष्टान्त प्ररूपण किया गया है।

निष्कर्ष—किसी साधु या साध्वी से भिक्षाचरी जाते, स्थंडिल भूमि या विहारभूमि (स्वाध्यायभूमि) जाते या ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए कही भी मूलगुणादि मे दोषरूप किसी अकृत्य का सेवन हो गया हो, किन्तु तत्काल वह विचारपूर्वक स्वय आलोचनादि करके प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हो जाता है, और अपने गुरुजनो के पास आलोचनादि करके प्रायश्चित्त लेने हेतु प्रस्थान कर देता है, किन्तु सयोगवश पहुँचने से पूर्व ही गुरुजन मूक हो जाते हैं, या काल कर जाते हैं, अथवा स्वय साधु या साध्वी मूक हो जाते हैं या काल कर जाते हैं, इसी तरह पहुँचने के बाद भी इन चार अवस्थाओ मे से कोई एक अवस्था प्राप्त होती है तो वह साधु या साध्वी आराधक है, विराधक नही। कारण यह है कि उस साधु या साध्वी के परिणाम गुरुजनो के पास आलोचनादि करने के थे, और वे इसके लिए उद्यत भी हो गए थे, किन्तु उपर्युक्त ८ प्रकार की परिस्थितियो मे से किसी भी परिस्थितिवश वे आलोचनादि न कर सके, ऐसी स्थिति मे **'चलमाणे चलिए'** इत्यादि पूर्वोक्त भगवत्सिद्धान्तानुसार वे आराधक ही हैं, विराधक नही।[1]

दृष्टान्तो द्वारा आराधकता की पुष्टि—भगवान् ने **"चलमाणे चलिए"** के सिद्धान्तानुसार ऊन, सण, कपास आदि तन्तुओ को काटने, आग मे डालने और जलाने का तथा नये धोए हुए वस्त्र को मजीठ के रंग मे डालने और रंगने का सयुक्तिक दृष्टान्त देकर आराधना के लिए उद्यत साधक को आराधक सिद्ध किया है।

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, ३७६ (ख) भगवती हिन्दीविवेचनयुक्त भा ३, पृ १४०५

आराधक विराधक की व्याख्या—आराधक का अर्थ यहाँ मोक्षमार्ग का आराधक तथा भाव शुद्ध होने से शुद्ध है। जैसे कि मृत्यु को लेकर कहा गया है—आलोचना के सम्यक् परिणामसहित कोई साधु गुरु के पास आलोचनादि करने के लिए चल दिया है, किन्तु यदि बीच मे ही वह साधु (आलोचना करने से पूर्व ही) रास्ते मे काल कर गया, तो भी वह भाव से शुद्ध है।[1] स्वय आलोचनादि करने वाला वह साधु गीतार्थ होना सम्भव है।

तीन पाठ (गम)—(१) आहारग्रहणार्थ गृहस्थगृह-प्रविष्ट, (२) विचारभूमि आदि मे तथा (३) ग्रामानुग्राम-विचरण मे।

जलते हुए दीपक और घर मे, जलने वाली वस्तु का निरूपण—

१२ पईवस्स ण भते ! झियायमाणस्स किं पदीवे झियाति, लट्ठी झियाइ, वत्ती झियाइ, तेल्ले झियाइ, दीवचपए झियाइ, जोती झियाइ ?

गोयमा ! नो पदीवे झियाइ, जाव नो दीवचपए झियाइ, जोती झियाइ।

[१२ प्र] भगवन् ! जलते हुए दीपक मे क्या जलता है ? क्या दीपक जलता है ? दीपयष्टि (दीवट) जलती है ? बत्ती जलती है ? तेल जलता है ? दीपचम्पक (दीपक का ढक्कन) जलता है, या ज्योति (दीपशिखा) जलती है ?

[१२ उ] गौतम ! दीपक नही जलता, यावत् दीपक का ढक्कन भी नही जलता, किन्तु ज्योति (दीपशिखा) जलती है।

१३ अगारस्स णं भते ! झियायमाणस्स किं अगारे झियाइ, कुड्डा झियायति, कडणा झियायति, धारणा झियायति, बलहरणे झियाइ, वंसा झियायति, मल्ला झियायति, वग्गा झियायति, छित्तरा झियायति, छाणे झियाति, जोती झियाति ?

गोयमा ! नो अगारे झियाति, नो कुड्डा झियाति, जाव नो छाणे झियाति, जोती झियाति।

[१३ प्र] भगवन् ! जलते हुए घर (आगार) मे क्या जलता है ? क्या घर जलता है ? भीतें जलती हैं ? टाटी (खसखस आदि की टाटी या पतली दीवार) जलती है ? धारण (नीचे के मुख्य स्तम्भ) जलते है ? बलहरण (मुख्य स्तम्भ—धारण पर रहने वाली आडी लम्बी लकडी—बल्ली) जलता है ? बास जलते हैं ? मल्ल (भीतो के आधारभूत स्तम्भ) जलते है ? वर्ग (बास आदि को बाधने वाली छाल) जलते हैं ? छित्वर (बास आदि को ढकने के लिए डाली हुई चटाई या छप्पर) जलते है ? छादन (छाण-दर्भादियुक्त पटल) जलता है अथवा ज्योति (अग्नि) जलती है ?

[१३ उ] गौतम ! घर नही जलता, भीतें नही जलती, यावत् छादन नही जलता, किन्तु ज्योति (अग्नि) जलती है।

विवेचन—जलते हुए दीपक और घर मे, जलने वाली वस्तु का विश्लेषण—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू १२-१३) मे दीपक और घर का उदाहरण दे कर इनमे वास्तविक रूप मे जलने वाली वस्तु—दीपशिखा और अग्नि बताई गई है।

अगार का विशेषार्थ—अगार से यहाँ घर ऐसा समझना चाहिए—जो कुटी या झोपडीनुमा हो।

---

१ "आलोयणा-परिणओ सम्म सपट्ठिओ गुरुसगासे।
जइ मरइ अतरे च्चिय तहावि सुद्धोत्ति भावाओ॥"—भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३७६

एक जीव या बहुत जीवों को परकीय (एक या बहुत-से शरीरो की अपेक्षा होने वाली) क्रियाओ का निरूपण—

१४ जीवे ण भते ! ओरालियसरीराओ कतिकिरिए ?

गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिए पंचकिरिए, सिय अकिरिए।

[१४ प्र] भगवन् ! एक जीव (स्वकीय औदारिक शरीर से, परकीय) एक औदारिक शरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ?

[१४ उ] गौतम ! वह कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला, कदाचित् पाच क्रिया वाला होता है और कदाचित् अक्रिय भी होता है।

१५. नेरइए ण भते ! ओरालियसरीराओ कतिकिरिए ?

गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए सिए पचकिरिए।

[१५ प्र] भगवन् ! एक नैरयिक जीव, दूसरे के एक औदारिक शरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ?

[१५ उ] गौतम ! वह कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पाच क्रिया वाला होता है।

१६. असुरकुमारे ण भते ! ओरालियसरीराओ कतिकिरिए ?

एव चेव।

[१६ प्र] भगवन् ! एक असुरकुमार, (दूसरे के) एक औदारिक शरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ?

[१६ उ] गौतम ! पहले कहे अनुसार (कदाचित् तीन, कदाचित् चार और कदाचित् पाच क्रियाओ वाला) होता है।

१७. एव जाव वेमाणिय, नवर मणुस्से जहा जीवे (सु १४)।

[१७] इसी प्रकार यावत् वैमानिक देवो तक कहना चाहिए। परन्तु मनुष्य का कथन औधिक जीव की तरह जानना चाहिए।

१८ जीवे ण भते ! ओरालियसरीरेहितो कतिकिरिए ?

गोयमा ! सिय तिकिरिए जाव सिय अकिरिए।

[१८ प्र] भगवन् ! एक जीव (दूसरे जीवो के) औदारिक शरीरो की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ?

[१८ उ] गौतम ! वह कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पाच क्रिया वाला, तथा कदाचित् अक्रिय (क्रियारहित) भी होता है।

१९. नेरइए ण भंते ! ओरालियसरीरेहिंतो कतिकिरिए ?

एवं एसो जहा पढमो दंडओ (सु १५-१७) तहा इमो वि अपरिसेसो भाणियव्वो जाव वेमाणिए, नवरं मणुस्से जहा जीवे (सु. १८)।

[१९ प्र] भगवन् ! एक नैरयिक जीव, (दूसरे जीवो के) औदारिक शरीरो की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ?

[१९ उ] गौतम ! जिस प्रकार प्रथम दण्डक (सू १५ से १७) मे कहा गया है उसी प्रकार यह दण्डक भी सारा का सारा यावत् वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए, परन्तु मनुष्य का कथन सामान्य (औघिक) जीवो की तरह (सू १८ मे कहे अनुसार) जानना चाहिए।

२० जीवा ण भंते ! ओरालियसरीराओ कतिकिरिया ?

गोयमा ! सिय तिकिरिया जाव सिय अकिरिया।

[२० प्र] भगवन् ! बहुत-से जीव, दूसरे के एक औदारिक शरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाले होते है ?

[२० उ] गौतम ! वे कदाचित् तीन क्रिया वाले, कदाचित् चार क्रिया वाले और कदाचित् पाच क्रिया वाले होते है, तथा कदाचित् अक्रिय भी होते है।

२१ नेरइया णं भंते ! ओरालियसरीराओ कतिकिरिया ?

एवं एसो वि जहा पढमो दंडओ (सु १५-१७) तहा भाणियव्वो जाव वेमाणिया, नवरं मणुस्सा जहा जीवा (सु २०)।

[२१ प्र] भगवन् ! बहुत-से नैरयिक जीव, दूसरे के एक औदारिक शरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाले होते है ?

[२१ उ] गौतम ! जिस प्रकार प्रथम दण्डक (सू १५ से १७ तक) मे कहा गया है, उसी प्रकार यह (दण्डक) भी यावत् वैमानिकपर्यन्त कहना चाहिए। विशेष यह है कि मनुष्यो का कथन औघिक जीवो की तरह (सू १८ के अनुसार) जानना चाहिए।

२२ जीवा ण भंते ! ओरालियसरीरेहिंतो कतिकिरिया ?

गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पचकिरिया वि, अकिरिया वि।

[२२ प्र] भगवन् ! बहुत-से जीव, दूसरे जीवो के औदारिक शरीरो की अपेक्षा कितनी क्रिया वाले होते है ?

[२२ उ] गौतम ! वे कदाचित् तीन क्रिया वाले, कदाचित् चार क्रिया वाले और कदाचित् पाच क्रिया वाले और कदाचित् अक्रिय भी होते है।

२३. नेरइया ण भंते ! ओरालियसरीरेहिंतो कइकिरिया ?

गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पचकिरिया वि।

[२३ प्र] भगवन् ! बहुत-से नैरयिक जीव, दूसरे जीवो के औदारिक शरीरो की अपेक्षा कितनी क्रिया वाले होते है ?

[२३ उ] गौतम ! वे तीन क्रिया वाले भी, चार क्रिया वाले भी और पाच क्रिया वाले भी होते हैं।

२४ एव जाव वेमाणिया, नवरं मणुस्सा जहा जीवा (सु २२) ।

[२४] इसी तरह यावत् वैमानिक-पर्यन्त समझना चाहिए। विशेष इतना ही है कि मनुष्यो का कथन औघिक जीवो की तरह (सू २२ मे कहे अनुसार) जानना चाहिए।

२५ जीवे ण भते ! वेउव्वियसरीराओ कतिकिरिए ?

गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय अकिरिए ।

[२५ प्र] भगवन् ! एक जीव, (दूसरे एक जीव के) वैक्रियशरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ?

[२५ उ.] गौतम ! वह कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् क्रियारहित होता है।

२६ नेरइए ण भते ! वेउव्वियसरीराओ कतिकिरिए ?

गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए ।

[२६ प्र] 'भगवन् ! एक नैरयिक जीव, (दूसरे एक जीव के) वैक्रिय शरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ?

[२६ उ] गौतम ! वह कदाचित् तीन क्रिया वाला और कदाचित् चार क्रिया वाला होता है।

२७ एव जाव वेमाणिए, नवर मणुस्से जहा जीवे (सु २५) ।

[२७] इस प्रकार यावत् वैमानिकपर्यन्त कहना चाहिए। किन्तु मनुष्य का कथन औघिक जीव की तरह (सू २५) कहना चाहिए।

२८ एव जहा ओरालियसरीरेण चत्तारि दडगा भणिया तहा वेउव्वियसरीरेण वि चत्तारि दडगा भाणियव्वा, नवर पचमकिरिया न भण्णइ, सेस त चेव ।

[२८] जिस प्रकार औदारिकशरीर की अपेक्षा चार दण्डक कहे गए, उसी प्रकार वैक्रिय-शरीर की अपेक्षा भी चार दण्डक कहने चाहिए। विशेषता इतनी है कि इसमे पचम क्रिया का कथन नही करना चाहिए। शेष सभी कथन पूर्ववत् समझना चाहिए।

२९. एव जहा वेउव्विय तहा आहारग पि, तेयग पि, कम्मग पि भाणियव्व । एक्केक्के चत्तारि दडगा भाणियव्वा जाव वेमाणिया ण भते ! कम्मगसरीरेहिंतो कइकिरिया ?

गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ अट्ठमसए : छट्ठो उद्देसओ समत्तो ॥

[२९] जिस प्रकार वैक्रियशरीर का कथन किया गया है, उसी प्रकार आहारक, तैजस और कार्मण शरीर का भी कथन करना चाहिए। इन तीनो के प्रत्येक के चार-चार दण्डक कहने चाहिए, यावत्—(प्रश्न-) 'भगवन् ! बहुत-से वैमानिक देव (परकीय) कार्मण शरीरो की अपेक्षा कितनी क्रिया वाले होते है ?' (उत्तर) 'गौतम ! तीन क्रिया वाले भी और चार क्रिया वाले भी होते हैं', यहाँ तक कहना चाहिए।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', (यो कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरण करते है।)

विवेचन—एक जीव या बहुत जीवो को परकीय एक या बहुत—से शरीरो की अपेक्षा होने वाली क्रियाओ का निरूपण—प्रस्तुत १६ सूत्रो (सू १४ से २९ तक) मे औधिक एक या बहुत जीवो तथा नैरयिक से लेकर वैमानिक तक एक या बहुत जीवो को, परकीय एक या बहुत-से औदारिकादि शरीरो की अपेक्षा से होने वाली क्रियाओ का निरूपण किया गया है।

अन्य जीव के औदारिकादि शरीर की अपेक्षा होने वाली क्रिया का आशय—कायिकी आदि पाच क्रियाएँ है, जिनका स्वरूप पहले बताया जा चुका है। जब एक जीव, दूसरे पृथ्वीकायादि जीव के शरीर की अपेक्षा काया का व्यापार करता है, तब उसे तीन क्रियाएँ होती है—कायिकी, आधिकारणिकी और प्राद्वेषिकी। क्योकि सराग जीव को कायिकक्रिया के सद्भाव मे आधिकरणिकी तथा प्राद्वेषिकी क्रिया अवश्य होती है, क्योकि सराग जीव की काया अधिकरण रूप और प्रद्वेषयुक्त होती है। आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी और कायिकी, इन तीनो क्रियाओ का अविनाभावसम्बन्ध है। जिस जीव के कायिकी क्रिया होती है, उसके आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी क्रिया अवश्य होती हैं, जिस जीव के ये दो क्रियाएँ होती है, उसके कायिकी क्रिया भी अवश्य होती है। पारितापनिकी और प्राणातिपातिकी क्रिया मे भजना (विकल्प) है, जब जीव, दूसरे जीव को परिताप पहुँचाता है अथवा दूसरे के प्राणो का घात करता है, तभी क्रमश पारितापनिकी अथवा प्राणातिपातिकी क्रिया होती है। अत जब जीव, दूसरे जीव को परिताप उत्पन्न करता है, तब जीव को चार क्रियाएँ होती हैं, क्योकि पारितापनिकी क्रिया मे पहले की तीन क्रियाओ का सद्भाव अवश्य रहता है। जब जीव, दूसरे जीव के प्राणो का घात करता है, तब उसे पाच क्रियाएँ होती है, क्योकि प्राणातिपातिकी क्रिया मे पूर्व की चार क्रियाओ का सद्भाव अवश्य होता है। इसीलिए मूलपाठ मे जीव को कदाचित् तीन, कदाचित् चार और कदाचित् पाच क्रिया वाला कहा गया है। जीव कदाचित् अक्रिय भी होता है, यह बात वीतराग अवस्था की अपेक्षा से कही गई है, क्योकि उस अवस्था मे पाचो मे से एक भी क्रिया नही होती।[1]

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३७७

(ख) "जस्स ण जीवस्स काइया किरिया कज्जइ, तस्स अहिगरणिया किरिया नियमा कज्जइ, जस्स अहिगरणिया किरिया कज्जइ, तस्स वि काइया किरिया नियमा कज्जइ।"
"जस्स ण जीवस्स काइया किरिया कज्जइ, तस्स पारियावणिया किरिया सिय कज्जइ, सिय नो कज्जइ"
इत्यादि। —प्रज्ञापनासूत्र क्रियापद

नैरयिक जीव, जब औदारिकशरीरधारी पृथ्वीकायादि जीवो का स्पर्श करता है, तब उसके तीन क्रियाएँ होती है, जब उन्हे परिताप उत्पन्न करता है, तब चार और जब उनका प्राणघात करता है, तब पाच क्रियाएँ होती हैं। नैरयिक जीव अक्रिय नही होता, क्योकि वह वीतराग नही हो सकता। मनुष्य के सिवाय शेष २३ दण्डको के जीव अक्रिय नही होते।

किस शरीर की अपेक्षा कितने आलापक ?—औदारिक शरीर की अपेक्षा चार दण्डक (आलापक)—(१) एक जीव को, परकीय एक शरीर की अपेक्षा, (२) एक जीव को बहुत जीवो के शरीरो की अपेक्षा, (३) बहुत जीवो को परकीय एक शरीर की अपेक्षा और (४) बहुत जीवो को, बहुत जीवो के शरीर की अपेक्षा। इसी तरह शेष चार शरीरो के भी प्रत्येक के चार-चार दण्डक—आलापक कहने चाहिए। औदारिक शरीर के अतिरिक्त शेष चार शरीरो का विनाश नही हो सकता। इसलिए वैक्रिय, तैजस, कार्मण और आहारक इन चार शरीरो की अपेक्षा जीव कदाचित् तीन क्रिया वाला और कदाचित् चार क्रिया वाला होता है। किन्तु पाच क्रिया वाला नही होता। अत वैक्रिय आदि चार शरीरो की अपेक्षा प्रत्येक के चौथे दण्डक मे, 'कदाचित्' शब्द नही कहना चाहिए।

नरकस्थित नैरयिक जीव को मनुष्यलोकस्थित आहारक शरीर की अपेक्षा तीन या चार क्रिया वाला बताया गया है, उसका रहस्य यह है कि नैरयिकजीव ने अपने पूर्वभव के शरीर का विवेक (विरति) के अभाव मे व्युत्सृजन नही किया (त्याग नही किया), इसलिए उस जीव द्वारा बनाया हुआ वह (भूतपूर्व) शरीर जब तक शरीरपरिणाम का सर्वथा त्याग नही कर देता, तब तक अशरूप मे भी शरीर परिणाम को प्राप्त वह शरीर, पूर्वभाव-प्रज्ञापना की अपेक्षा 'घृतघट' न्याय से (घी निकालने पर भी उसे भूतपूर्व घट की अपेक्षा 'घी का घडा' कहा जाता है, तद्वत्) उसी का कहलाता है। अत उस मनुष्यलोकवर्ती (भूतपूर्व) शरीर के अशरूप अस्थि (हड्डी) आदि से आहारकशरीर का स्पर्श होता है, अथवा उसे परिताप उत्पन्न होता है, इस अपेक्षा से नैरयिक जीव आहारकशरीर की अपेक्षा तीन या चार क्रिया वाला होता है। इसी प्रकार देव आदि तथा द्वीन्द्रिय आदि जीवो के विषय मे भी जान लेना चाहिए।

तैजस, कार्मण शरीर की अपेक्षा जीवो को तीन या चार क्रिया वाला बताया है। वह औदारिकादि शरीराश्रित तैजस-कार्मण शरीर की अपेक्षा समझना चाहिए, क्योकि केवल तैजस या कार्मण शरीर को परिताप नही पहुँचाया जा सकता।

॥ अष्टम शतक छठा उद्देशक समाप्त ॥

सत्तमो उद्देसओ : 'अदत्ते'

सप्तम उद्देशक : 'श्रदत्त'

अन्यतीर्थिकों के साथ अदत्तादान को लेकर स्थविरो के वाद-विवाद का वर्णन—

१ तेण कालेण तेण समएण रायगिहे नगरे। वण्णश्रो। गुणसिलए चेइए। वण्णश्रो, जाव पुढविसिलावट्टश्रो। तस्स णं गुणसिलयस्स चेइयस्स श्रदूरसामते वहवे श्रन्नउत्थिया परिवसति।

[१] उस काल और उस समय मे राजगृह नामक नगर था। उसका वर्णन औपपातिकसूत्र के नगरीवर्णन के समान जान लेना चाहिए। वहाँ गुणशीलक नामक चैत्य था। उसका वर्णक। यावत् पृथ्वी शिलापट्टक था। उस गुणशीलक चैत्य के आसपास (न वहुत दूर, न वहुत निकट) बहुत-से अन्यतीर्थिक रहते थे।

२. तेण कालेण तेण समएण समणे भगव महावीरे श्रादिगरे जाव समोसढे जाव परिसा पडिगया।

[२] उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर धर्मतीर्थ की आदि (स्थापना) करने वाले यावत् समवसृत हुए (पधारे) यावत् धर्मोपदेश सुनकर परिषद् वापिस चली गई।

३. तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवश्रो महावीरस्स बहवे श्रतेवासी थेरा भगवतो जातिसपन्ना कुलसपन्ना जहा बितियसए (स २ उ ५ सु १२) जाव जीवियासामरणभयविप्पमुक्का समणस्स भगवश्रो महावीरस्स श्रदूरसामते उड्ढजाणू अहोसिरा झाणकोट्ठोवगया संजमेण तवसा श्रप्पाण भावेमाणा जाव विहरति।

[३] उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के बहुत-से शिष्य स्थविर भगवन्त जातिसम्पन्न, कुलसम्पन्न इत्यादि दूसरे शतक मे वर्णित गुणो से युक्त यावत् जीवन की आशा और मरण के भय से विमुक्त थे। वे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के न अतिदूर, न अतिनिकट ऊर्ध्व जानु (घुटने खडे रख कर), अधोशिरस्क (नीचे मस्तक नमा कर) ध्यानरूप कोष्ठ को प्राप्त होकर सयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करते थे।

४ तए ण ते श्रन्नउत्थिया जेणेव थेरा भगवतो तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता ते थेरे भगवते एव वयासी—तुब्भे ण श्रज्जो! तिविह तिविहेण श्रस्सजयश्रविरयश्रप्पडिहय जहा सत्तमसए बितिए उद्देसए (स ७ उ २ सु १ [२]) जाव एगतबाला यावि भवह।

[४] एक वार वे अन्यतीर्थिक, जहाँ स्थविर भगवन्त थे, वहाँ आए। उनके निकट आकर वे स्थविर भगवन्तो से यो कहने लगे—'हे आर्यो! तुम त्रिविध-त्रिविध (तीन करण, तीन योग से) असयत, अविरत, अप्रतिहतपापकर्म (पापकर्म के अनिरोधक) तथा पापकर्म का प्रत्याख्यान नही किये

हुए हो', इत्यादि जैसे सातवे शतक के द्वितीय उद्देशक (सू १-२) मे कहा गया है, तदनुसार कहा, यावत् तुम एकान्त बाल (अज्ञानी) भी हो।

५ तए ण ते थेरा भगवंतो ते अन्नउत्थिए एव वयासी—केण कारणेण अज्जो ! अम्हे तिविह तिविहेणं अस्सजयअविरय जाव एगतबाला यावि भवामो ?

[५ प्र] इस पर उन स्थविर भगवन्तो ने उन अन्यतीर्थिको से इस प्रकार पूछा—'आर्यो ! किस कारण से हम त्रिविध-त्रिविध असयत, अविरत, यावत् एकान्तबाल है ?

६ तए ण ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवते एव वयासी—तुब्भे णं अज्जो ! अदिन्न गेण्हह, अदिन्न भुजह, अदिन्न सातिज्जह। तए ण तुब्भे अदिन्न गेण्हमाणा, अदिन्न भुजमाणा, अदिन्न सातिज्जमाणा तिविह तिविहेण अस्सजयअविरय जाव एगतबाला यावि भवह।

[६ उ] तदनन्तर उन अन्यतीर्थिको ने स्थविर भगवन्तो से इस प्रकार कहा—हे आर्यो ! तुम अदत्त (किसी के द्वारा नही दिया हुआ) पदार्थ ग्रहण करते हो, अदत्त का भोजन करते हो और अदत्त का स्वाद लेते हो, अर्थात्—अदत्त (ग्रहणादि) की अनुमति देते हो। इस प्रकार अदत्त का ग्रहण करते हुए, अदत्त का भोजन करते हुए, और अदत्त की अनुमति देते हुए तुम त्रिविध-त्रिविध असयत, अविरत यावत् एकान्तबाल हो।

७ तए ण ते थेरा भगवतो ते अन्नउत्थिए एव वयासी—केण कारणेण अज्जो ! अम्हे अदिन्न गेण्हामो, अदिन्न भुंजामो, अदिन्न सातिज्जामो, तए ण अम्हे अदिन्न गेण्हमाणा, जाव अदिन्न सातिज्जमाणा तिविह तिविहेण अस्सजय जाव एगंतबाला यावि भवामो ?

[७ प्र] तदनन्तर उन स्थविर भगवन्तो ने उन अन्यतीर्थिको से इस प्रकार पूछा—'आर्यो ! हम किस कारण से (क्योकर या कैसे) अदत्त का ग्रहण करते हैं, अदत्त का भोजन करते है, और अदत्त की अनुमति देते है, जिससे कि हम अदत्त का ग्रहण करते हुए यावत् अदत्त की अनुमति देते हुए त्रिविध-त्रिविध असयत, अविरत यावत् एकान्तबाल है ?

८ तए णं ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवते एव वयासी—तुम्हाण अज्जो ! दिज्जमाणे अदिन्ने, पडिग्गहेज्जमाणे अपडिग्गहिए, निसिरिज्जमाणे अणिसट्ठे, तुब्भे णं अज्जो ! दिज्जमाण पडिग्गहग असपत्त एत्थ ण अतरा केइ अवहरिज्जा, गाहावइस्स णं तं, नो खलु त तुब्भ, तए ण तुब्भे अदिन्न गेण्हह जाव अदिन्न सातिज्जह, तए ण तुब्भे अदिन्नं गेण्हमाणा जाव एगंतबाला यावि भवह।

[८ उ] इस पर उन अन्यतीर्थिको ने स्थविर भगवन्तो से इस प्रकार कहा—हे आर्यो ! तुम्हारे मत मे दिया जाता हुआ पदार्थ, 'नही दिया गया', ग्रहण किया जाता हुआ, 'ग्रहण नही किया गया', तथा (पात्र मे) डाला जाता हुआ पदार्थ, 'नही डाला गया,' ऐसा कथन है, इसलिए हे आर्यो ! तुमको दिया जाता हुआ पदार्थ, जब तक पात्र मे नही पडा, तब तक बीच मे से ही कोई उसका अपहरण कर ले तो तुम कहते हो—'वह उस गृहपति के पदार्थ का अपहरण हुआ,' 'तुम्हारे पदार्थ का अपहरण हुआ,' ऐसा तुम नही कहते। इस कारण से तुम अदत्त का ग्रहण करते हो, यावत् अदत्त की अनुमति देते हो, अत तुम अदत्त का ग्रहण करते हुए यावत् एकान्तबाल हो।

९ तए णं ते थेरा भगवंतो ते अन्नउत्थिए एवं वयासी—नो खलु अज्जो ! अम्हे अदिन्नं गिण्हामो, अदिन्नं भुंजामो, अदिन्नं सातिज्जामो, अम्हे णं अज्जो ! दिन्नं गेण्हामो, दिन्नं भुंजामो, दिन्नं सातिज्जामो, तए णं अम्हे दिन्नं गेण्हमाणा दिन्नं भुंजमाणा दिन्नं सातिज्जमाणा तिविहं तिविहेणं संजयविरयपडिहय जहा सत्तमसए (स ७ उ २ सु १ [२]) जाव एगंतपंडिया यावि भवामो।

[९ प्रतिवाद]—यह सुनकर उन स्थविर भगवन्तो ने उन अन्यतीर्थिको से इस प्रकार कहा—'आर्यो ! हम अदत्त का ग्रहण नही करते, न अदत्त को खाते है और न ही अदत्त की अनुमति देते हैं। हे आर्यो ! हम तो दत्त (स्वामी द्वारा दिये गए) पदार्थ को ग्रहण करते है, दत्त भोजन को खाते है और दत्त की अनुमति देते है। इसलिए हम दत्त का ग्रहण करते हुए, दत्त का भोजन करते हुए और दत्त की अनुमति देते हुए त्रिविध-त्रिविध सयत, विरत, पापकर्म के प्रतिनिरोधक, पापकर्म का प्रत्याख्यान किये हुए है। जिस प्रकार सप्तमशतक (द्वितीय उद्देशक सू १) मे कहा है, तदनुसार हम यावत् एकान्तपण्डित है।'

१० तए णं ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—केण कारणेणं अज्जो ! तुम्हे दिन्नं गेण्हह जाव दिन्नं सातिज्जह, तए णं तुब्भे दिन्नं गेण्हमाणा जाव एगंतपंडिया यावि भवह ?

[१० वाद]—तब उन अन्यतीर्थिको ने उन स्थविर भगवन्तो से इस प्रकार कहा—'तुम किस कारण (कैसे या किस प्रकार) दत्त का ग्रहण करते हो, यावत् दत्त की अनुमति देते हो, जिससे दत्त का ग्रहण करते हुए यावत् तुम एकान्तपण्डित हो ?'

११ तए णं ते थेरा भगवंतो ते अन्नउत्थिए एवं वयासी—अम्हे णं अज्जो ! दिज्जमाणे दिन्ने, पडिग्गहेज्जमाणे पडिग्गहिए, निसिरिज्जमाणे निसट्ठे। अम्हं णं अज्जो ! दिज्जमाणं पडिग्गहगं असंपत्तं एत्थ णं अंतरा केइ अवहरेज्जा, अम्हं णं तं, णो खलु तं गाहावइस्स, तए णं अम्हे दिन्नं गेण्हामो दिन्नं भुंजामो, दिन्नं सातिज्जामो, तए णं अम्हे दिन्नं गेण्हमाणा जाव दिन्नं सातिज्जमाणा तिविहं तिविहेणं संजय जाव एगंतपंडिया यावि भवामो। तुब्भे णं अज्जो ! अप्पणा चेव तिविहं तिविहेणं अस्संजय जाव एगंतबाला यावि भवह।

[११ प्रतिवाद]—इस पर उन स्थविर भगवन्तो ने उन अन्यतीर्थिको से इस प्रकार कहा—'आर्यो ! हमारे सिद्धान्तानुसार—दिया जाता हुआ पदार्थ, 'दिया गया', ग्रहण किया जाता हुआ पदार्थ 'ग्रहण किया' और पात्र मे डाला जाता हुआ पदार्थ 'डाला गया' कहलाता है। इसीलिए हे आर्यो ! हमे दिया जाता हुआ पदार्थ हमारे पात्र मे नही पहुँचा (पडा) है, इसी बीच मे कोई व्यक्ति उसका अपहरण कर ले तो 'वह पदार्थ हमारा अपहृत हुआ' कहलाता है, किन्तु 'वह पदार्थ गृहस्थ का अपहृत हुआ,' ऐसा नही कहलाता। इस कारण से हम दत्त का ग्रहण करते है, दत्त आहार करते है और दत्त की ही अनुमति देते है। इस प्रकार हम दत्त का ग्रहण करते हुए यावत् दत्त की अनुमति देते हुए हम त्रिविध-त्रिविध सयत, विरत यावत् एकान्तपण्डित है, प्रत्युत, हे आर्यो ! तुम स्वय त्रिविध-त्रिविध असयत, अविरत, यावत् एकान्तबाल हो।

१२ तए ण ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवते एव वयासी—केण कारणेण अज्जो ! अम्हे तिविह जाव एगतबाला यावि भवामो ?

[१२ प्र]—तत्पश्चात् उन अन्यतीर्थिको ने स्थविर भगवन्तो से इस प्रकार पूछा—आर्यो ! हम किस कारण से (कैसे) त्रिविध-त्रिविध यावत् एकान्तबाल हैं ?

१३ तए ण ते थेरा भगवंतो ते अन्नउत्थिए एव वयासी—तुब्भे ण अज्जो ! अदिन्न गेण्हह, अदिन्न भुजह, अदिन्न साइज्जह, तए ण अज्जो ! तुब्भे अदिन्न गे० जाव एगतबाला यावि भवह ।

[१३ उ]—इस पर उन स्थविर भगवन्तो ने उन अन्यतीर्थिको से यो कहा—आर्यो ! तुम लोग अदत्त का ग्रहण करते हो, अदत्त भोजन करते हो, और अदत्त की अनुमति देते हो, इसलिए हे आर्यो ! तुम अदत्त का ग्रहण करते हुए यावत् एकान्तबाल हो ।

१४. तए ण ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवते एवं वयासी—केण कारणेणं अज्जो ! अम्हे अदिन्न गेण्हामो जाव एगतबाला यावि भवामो ?

[१४ प्रतिवाद] तब उन अन्यतीर्थिको ने उन स्थविर भगवन्तो से इस प्रकार पूछा—आर्यो ! हम क्योकर अदत्त का ग्रहण करते हैं यावत् जिससे कि हम एकान्तबाल है ?

१५ तए ण ते थेरा भगवतो ते अन्नउत्थिए एव वयासी—तुब्भे ण अज्जो ! दिज्जमाणे अदिन्ने त चेव जाव गाहावइस्स ण तं, णो खलु त तुब्भ, तए णं तुब्भे अदिन्न गेण्हह, त चेव जाव एगतबाला यावि भवह ।

[१५ प्रत्युत्तर]—यह सुन कर उन स्थविर भगवन्तो ने उन अन्यतीर्थिको से इस प्रकार कहा—आर्यो ! तुम्हारे मत मे दिया जाता हुआ पदार्थ 'नही दिया गया' इत्यादि कहलाता है, यह सारा वर्णन पहले कहे अनुसार यहाँ करना चाहिए, यावत् वह पदार्थ गृहस्थ का है, तुम्हारा नही, इसलिए तुम अदत्त का ग्रहण करते हो, यावत् पूर्वोक्त प्रकार से तुम एकान्तबाल हो ।

विवेचन—अन्यतीर्थिको के साथ अदत्तादान को लेकर स्थविरो के वाद-विवाद का वर्णन—प्रस्तुत १५ सूत्रो मे अन्यतीर्थिको द्वारा स्थविरो पर अदत्तादान को लेकर एकान्तबाल के आक्षेप से प्रारम्भ हुआ विवाद स्थविरो द्वारा अन्यतीर्थिको को दिये गए प्रत्युत्तर तक समाप्त किया गया है ।[1]

अन्यतीर्थिको की भ्रान्ति—अन्यतीर्थिको ने इस भ्रान्ति से स्थविर मुनियो पर आक्षेप किया था कि श्रमणो का ऐसा मत है कि दिया जाता हुआ पदार्थ नही दिया गया, ग्रहण किया जाता हुआ, नही ग्रहण किया गया और पात्र मे डाला जाता हुआ पदार्थ, नही डाला गया, माना गया है । किन्तु जब स्थविरो ने इसका प्रतिवाद किया और उनकी इस भ्रान्ति का निराकरण 'चलमाणे चलिए' के सिद्धान्तानुसार किया, तब वे अन्यतीर्थिक निरुत्तर हो गए, उलटे उनके द्वारा किया गया आक्षेप उन्ही के गले पड गया ।

१ वियाहपण्णत्ति सुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भाग १

'दिया जाता हुआ' वर्तमानकालिक व्यापार है, और 'दत्त' भूतकालिक है, अत वर्तमान और भूत दोनो अत्यन्त भिन्न होने से दीयमान (दिया जाता हुआ) दत्त नही हो सकता, दत्त ही 'दत्त' कहा जा सकता है, यह अन्यतीर्थिको की भ्रान्ति थी। इसी का निराकरण करते हुए स्थविरो ने कहा—'हमारे मत से क्रियाकाल और निष्ठाकाल, इन दोनो मे भिन्नता नही है। जो 'दिया जा रहा है,' वह 'दिया ही गया' समझना चाहिए। 'दीयमान' 'अदत्त' है, यह मत तो अन्यतीर्थिको का है, जिसे स्थविरो ने उनके समक्ष प्रस्तुत किया था।'[1]

स्थविरो पर अन्यतीर्थिको द्वारा पुनः आक्षेप और स्थविरो द्वारा प्रतिवाद—

१६ तए ण ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवते एव वयासी—तुब्भे ण अज्जो ! तिविह तिविहेण अस्सजय जाव एगतबाला यावि भवह।

[१६ अन्य आक्षेप]—तत्पश्चात् उन अन्यतीर्थिको ने उन स्थविर भगवन्तो से कहा—आर्यो ! (हम कहते है कि) तुम ही त्रिविध-त्रिविध असयत, अविरत यावत् एकान्तबाल हो !

१७ तए ण ते थेरा भगवतो ते अन्नउत्थिए एव वयासी—केण कारणेण अम्हे तिविह तिविहेण जाव एगतबाला यावि भवामो ?

[१७ प्रतिप्रश्न]—इस पर उन स्थविर भगवन्तो ने उन अन्यतीर्थिको से (पुन) पूछा—आर्यो ! किस कारण से हम त्रिविध-त्रिविध यावत् एकान्तबाल है ?

१८. तए ण ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवते एव वयासी—तुब्भे ण अज्जो ! रीय रीयमाणा पुढवि पेच्चेह अभिहणह वत्तेह लेसेह संघाएह सघट्टेह परितावेह किलामेह उवद्दवेह, तए ण तुब्भे पुढवि पेच्चेमाणा जाव उवद्दवेमाणा तिविह तिविहेणं असजयअविरय जाव एगतबाला यावि भवह।

[१८ आक्षेप]—तब उन अन्यतीर्थिको ने स्थविर भगवन्तो से यो कहा—"आर्यो ! तुम गमन करते हुए पृथ्वीकायिक जीवो को दबाते (आक्रान्त करते) हो, हनन करते हो, पादाभिघात करते हो, उन्हे भूमि के साथ श्लिष्ट (सघर्षित) करते (टकराते) हो, उन्हे एक दूसरे के ऊपर इकट्ठे करते हो, जोर से स्पर्श करते हो, उन्हे परितापित करते हो, उन्हे मारणान्तिक कष्ट देते हो, और उपद्रवित करते-मारते हो। इस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवो को दबाते हुए यावत् मारते हुए तुम त्रिविध-त्रिविध असयत, अविरत यावत् एकान्तबाल हो।"

१६ तए ण ते थेरा भगवतो ते अन्नउत्थिए एव वयासी—नो खलु अज्जो ! अम्हे रीय रीयमाणा पुढवि पेच्चेमो अभिहणामो जाव उवद्दवेमो, अम्हे ण अज्जो ! रीय रीयमाणा काय वा जोग वा रियं वा पडुच्च देस देसेण वयामो, पएसं पएसेण वयामो, तेण अम्हे देस देसेण वयमाणा पएस पएसेण वयमाणा नो पुढवि पेच्चेमो अभिहणामो जाव उवद्दवेमो, तए ण अम्हे पुढवि अपेच्चेमाणा अणभिहणेमाणा जाव अणुवद्दवेमाणा तिविह तिविहेण सजय जाव एगतपडिया यावि भवामो, तुब्भे ण अज्जो ! अप्पणा चेव तिविह तिविहेण अस्सजय जाव बाला यावि भवह।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३८१

[१९ प्रतिवाद]—तब उन स्थविरों ने उन अन्यतीर्थिको से यो कहा—"आर्यो ! हम गमन करते हुए पृथ्वीकायिक जीवो को दबाते (कुचलते) नही, हनते नही, यावत् मारते नही। हे आर्यो ! हम गमन करते हुए काय (अर्थात्—शरीर के लघुनीति-बडीनीति आदि कार्य) के लिए, योग (अर्थात्—ग्लान आदि की सेवा) के लिए, ऋत (अर्थात्—सत्य अप्कायादि-जीवसरक्षणरूप सयम) के लिए एक देश (स्थल) से दूसरे देश (स्थल) मे और एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश मे जाते है। इस प्रकार एक स्थल से दूसरे स्थल मे और एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश मे जाते हुए हम पृथ्वीकायिक जीवो को दबाते नही, उनका हनन नही करते, यावत् उनको मारते नही। इसलिए पृथ्वीकायिक जीवो को नही दबाते हुए, हनन न करते हुए यावत् नही मारते हुए हम त्रिविध-त्रिविध सयत, विरत, यावत् एकान्त-पण्डित है। किन्तु हे आर्यो ! तुम स्वय त्रिविध-त्रिविध असयत, अविरत, यावत् एकान्तबाल हो।"

२० तए ण ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवते एव वयासी—केण कारणेण अज्जो ! अम्हे तिविह तिविहेण जाव एगतबाला यावि भवामो ?

[२० प्रतिप्रश्न]—इस पर उन अन्यतीर्थिको ने उन स्थविर भगवन्तो से इस प्रकार पूछा—"आर्यो ! हम किस कारण त्रिविध-त्रिविध असयत, अविरत यावत् एकान्तबाल है ?"

२१. तए ण ते थेरा भगवतो ते अन्नउत्थिए एव वयासी—तुब्भे ण अज्जो ! रीय रीयमाणा पुढवि पेच्चेह जाव उवद्दवेह, तए ण तुब्भे पुढवि पेच्चेमाणा जाव उवद्दवेमाणा तिविह तिविहेण जाव एगतबाला यावि भवह।

[२१ प्रत्युत्तर] तब स्थविर भगवन्तो ने उन अन्यतीर्थिको से यो कहा—"आर्यो ! तुम गमन करते हुए पृथ्वीकायिक जीवो को दबाते हो, यावत् मार देते हो। इसलिए पृथ्वीकायिक जीवो को दबाते हुए, यावत् मारते हुए तुम त्रिविध-त्रिविध असयत, अविरत यावत् एकान्तबाल हो।"

२२ तए ण ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवते एव वयासी—तुब्भे ण अज्जो ! गम्ममाणे अगते, वीतिक्कमिज्जमाणे अवीतिक्कते रायगिहं नगर संपाविउकामे असंपत्ते ?

[२२ प्रत्याक्षेप]—इस पर वे अन्यतीर्थिक उन स्थविर भगवन्तो से यो बोले—हे आर्यो! तुम्हारे मत मे गच्छन् (जाता हुआ), अगत (नही गया) कहलाता है, जो लाघा जा रहा है, वह नही लाघा गया, कहलाता है, और राजगृह को प्राप्त करने (पहुँचने) की इच्छा वाला पुरुष असम्प्राप्त (नही पहुँचा हुआ) कहलाता है।

२३ तए ण ते थेरा भगवतो ते अन्नउत्थिए एव वयासी—नो खलु अज्जो ! अम्हं गम्ममाणे अगए, वीइक्कमिज्जमाणे अवीतिक्कते रायगिह नगर जाव असपत्ते, अम्ह ण अज्जो ! गम्ममाणे गए, वीतिक्कमिज्जमाणे वीतिक्कते रायगिह नगर सपाविउकामे सपत्ते, तुब्भ ण अप्पणा चेव गम्ममाणे अगए वीतिक्कमिज्जमाणे अवीतिक्कते रायगिह नगर जाव असपत्ते।

[२३ प्रतिवाद]—तत्पश्चात् उन स्थविर भगवन्तो ने उन अन्यतीर्थिको से इस प्रकार कहा—आर्यो ! हमारे मत मे जाता हुआ (गच्छन्), अगत (नही गया), नही कहलाता, व्यतिक्रम्यमाण (उल्लघन किया जाता हुआ), अव्यतिक्रान्त (उल्लघन नही किया) नही कहलाता। इसी प्रकार

राजगृह नगर को प्राप्त करने की इच्छा वाला व्यक्ति असम्प्राप्त नही कहलाता। हमारे मत मे तो, आर्यो! 'गच्छन्' 'गत', 'व्यतिक्रम्यमाण' 'व्यतिक्रान्त', और राजगृह नगर को प्राप्त करने की इच्छा वाला व्यक्ति सम्प्राप्त कहलाता है। हे आर्यो! तुम्हारे ही मत मे 'गच्छन्' 'अगत', 'व्यतिक्रम्यमाण' 'अव्यतिक्रान्त' और राजगृह नगर को प्राप्त करने की इच्छा वाला असम्प्राप्त कहलाता है।

२४. तए ण ते थेरा भगवतो ते अन्नउत्थिए एव पडिहणेंति, पडिहणित्ता गइप्पवाय नाम-मज्झयण पन्नवइसु।

[२४] तदनन्तर उन स्थविर भगवन्तो ने उन अन्यतीर्थिको को प्रतिहत (निरुत्तर) किया और निरुत्तर करके उन्होने गतिप्रपात नामक अध्ययन प्ररूपित किया।

विवेचन—स्थविरो पर अन्यतीर्थिको द्वारा पुन आक्षेप और स्थविरो द्वारा प्रतिवाद—प्रस्तुत ९ सूत्रो (सू १६ से २४) मे अन्यतीर्थिको द्वारा पुन प्रत्याक्षेप से प्रारम्भ होकर यह चर्चा स्थविरो द्वारा भ्रान्तिनिवारणपूर्वक प्रतिवाद मे समाप्त होती है।

अन्यतीर्थिको की भ्रान्ति—पूर्व चर्चा मे निरुत्तर अन्यतीर्थिको ने पुन भ्रान्तिवश स्थविरो पर आक्षेप किया कि आप लोग ही असयत यावत् एकान्तबाल हैं, क्योकि आप गमनागमन करते समय पृथ्वीकायिक जीवो की विविधरूप से हिंसा करते हैं, किन्तु सुलझे हुए विचारो के निर्ग्रन्थ स्थविरो ने धैर्यपूर्वक उनकी इस भ्रान्ति का निराकरण किया कि हम लोग काय, योग और ऋत के लिए बहुत ही यतनापूर्वक गमनागमन करते हैं, किसी भी जीव की किसी भी रूप मे हिंसा नही करते।

इस पर पुन अन्यतीर्थिको ने आक्षेप किया कि आपके मत से गच्छन् अगत, व्यतिक्रम्यमाण अव्यतिक्रान्त और राजगृह को सम्प्राप्त करना चाहने वाला असम्प्राप्त कहलाता है। इसका प्रतिवाद स्थविरो ने किया और आक्षेपक अन्यतीर्थिको को ही उनकी भ्रान्ति समझा कर निरुत्तर कर दिया।

'देश' और 'प्रदेश' का अर्थ—भूमि का बृहत् खण्ड देश है और लघुतर खण्ड प्रदेश है।[1]

गतिप्रवाद और उसके पांच भेदो का निरूपण—

२५- कइविहे णं भते! गइप्पवाए पण्णत्ते?

गोयमा! पचविहे गइप्पवाए पण्णत्ते, त जहा—पयोगगती ततगती बधणछेयणगती उववाय-गती विहायगती। एत्तो आरब्भ पयोगपय निरवसेस भाणियव्व, जाव से त्त विहायगई।

सेव भते! सेव भते! त्ति०।

॥ अट्ठमसए सत्तमो उद्देसओ समत्तो ॥

[२५ प्र]—भगवन्! गतिप्रपात कितने प्रकार का कहा गया है?

[२५ उ]—गौतम! गतिप्रपात पाच प्रकार का कहा गया है। यथा—प्रयोगगति, ततगति, बन्धन-छेदनगति, उपपातगति और विहायोगति।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३८१

यहाँ से प्रारम्भ करके प्रज्ञापनासूत्र का सोलहवाँ समग्र प्रयोगपद कहना चाहिए, यावत् 'यह विहायोगति का वर्णन हुआ', यहाँ तक कथन करना चाहिए।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर यावत् गौतमस्वामी विचरण करने लगे।

विवेचन—गतिप्रपात और उसके पांच प्रकारो का निरूपण—प्रस्तुत सूत्र मे गतिप्रपात या गतिप्रवात और उसके ५ प्रकारो का प्रज्ञापनासूत्र के अतिदेशपूर्वक निरूपण किया गया है।

गतिप्रपात के पाच भेदो का स्वरूप—गतिप्रपात या गतिप्रवाद एक अध्ययन है, जिसका प्रज्ञापनासूत्र के सोलहवे प्रयोगपद मे विस्तृत वर्णन है। वहाँ इन पाचो गतियो के भेद-प्रभेद और उनके स्वरूप का निरूपण किया गया है। सक्षेप मे पाचो गतियो का स्वरूप इस प्रकार है—

(१) **प्रयोगगति**—जीव के व्यापार से अर्थात्—१५ प्रकार के योगो से जो गति होती है, उसे प्रयोगगति कहते है। यह गति यहाँ क्षेत्रान्तरप्राप्तिरूप या पर्यायान्तरप्राप्तिरूप समझनी चाहिए।

(२) **ततगति**—विस्तृत गति या विस्तार वाली गति को ततगति कहते है। जैसे कोई व्यक्ति ग्रामान्तर जाने के लिए रवाना हुआ, परन्तु ग्राम बहुत दूर निकला, वह अभी उसमे पहुँचा नही, उसकी एक-एक पैर रखते हुए जो क्षेत्रान्तरप्राप्तिरूप गति होती है, वह ततगति कहलाती है। इस गति का विषय विस्तृत होने से इसे 'ततगति' कहा जाता है।

(३) **बन्धन-छेदनगति**—बन्धन के छेदन से होने वाली गति। जैसे शरीर से मुक्त जीव की गति होती है।

(४) **उपपातगति**—उत्पन्न होने रूप गति को उपपातगति कहते है। इसके तीन प्रकार हैं—क्षेत्र-उपपात, भवोपपात, और नो-भवोपपात। नारकादिजीव और सिद्धजीव जहाँ रहते है, वह आकाश क्षेत्रोपपात है, कर्मो के वश जीव नारकादि भवो (पर्यायो) मे उत्पन्न होते है, वह भवोपपात है। कर्मसम्बन्ध से रहित अर्थात् नारकादिपर्याय से रहित उत्पन्न होने रूप गति को नो-भवोपपात कहते है। इस प्रकार की गति सिद्ध जीव और पुद्गलो मे पाई जाती है।

(५) **विहायोगति**—आकाश मे होने वाली गति को विहायोगति कहते हैं।[1]

॥ अष्टम शतक सप्तम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवती सूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३८१

(ख) प्रज्ञापनासूत्र पद १६ (प्रयोगपद), पत्राक ३२५

अट्ठमो उद्देसओ : 'पडिणीए'

अष्टम उद्देशक : 'प्रत्यनीक'

गुरु-गति-समूह-अनुकम्पा-श्रुत भाव-प्रत्यनीक-भेद-प्ररूपणा—

१ रायगिहे नयरे जाव एव वयासी—

[१] राजगृह नगर मे (गौतम स्वामी ने) यावत् (श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से) इस प्रकार पूछा—

२ गुरू ण भते ! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?

गोयमा ! तम्रो पडिणीया पण्णत्ता, त जहा—आयरियपडिणीए उवज्झायपडिणीए थेर-पडिणीए।

[२ प्र] भगवन् ! गुरुदेव की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक (द्वेषी या विरोधी) कहे गए है ?

[२ उ] गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) आचार्य-प्रत्यनीक, (२) उपाध्याय-प्रत्यनीक और (३) स्थविर-प्रत्यनीक।

३. गइ ण भते ! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?

गोयमा ! तम्रो पडिणीया पण्णत्ता, त जहा—इहलोगपडिणीए परलोगपडिणीए दुहम्रोलोग-पडिणीए।

[३ प्र] भगवन् ! गति की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गए है ?

[३ उ] गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) इहलोक-प्रत्यनीक, (२) परलोक-प्रत्यनीक, और (३) उभयलोक-प्रत्यनीक।

४ समूह णं भते ! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?

गोयमा ! तम्रो पडिणीया पण्णत्ता, त जहा—कुलपडिणीए गणपडिणीए सघपडिणीए।

[४ प्र] भगवन् ! समूह (श्रमणसघ) की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गए है ?

[४ उ] गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गए है। वे इस प्रकार—(१) कुल-प्रत्यनीक, (२) गण-प्रत्यनीक और (३) सघ-प्रत्यनीक।

५ अणुकप पडुच्च० पुच्छा।

गोयमा ! तम्रो पडिणीया पण्णत्ता, त जहा—तवस्सिपडिणीए गिलाणपडिणीए सेहपडिणीए।

[५ प्र] भगवन् ! अनुकम्प्य (साधुओ) की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गए हैं ?

यहाँ से प्रारम्भ करके प्रज्ञापनासूत्र का सोलहवाँ समग्र प्रयोगपद कहना चाहिए, यावत् 'यह विहायोगति का वर्णन हुआ', यहाँ तक कथन करना चाहिए।

हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है, यो कह कर यावत् गौतमस्वामी विचरण करने लगे।

विवेचन—गतिप्रपात और उसके पाच प्रकारो का निरूपण—प्रस्तुत सूत्र मे गतिप्रपात या गतिप्रवात और उसके ५ प्रकारो का प्रज्ञापनासूत्र के अतिदेशपूर्वक निरूपण किया गया है।

गतिप्रपात के पांच भेदो का स्वरूप—गतिप्रपात या गतिप्रवाद एक अध्ययन है, जिसका प्रज्ञापनासूत्र के सोलहवे प्रयोगपद मे विस्तृत वर्णन है। वहाँ इन पाचो गतियो के भेद-प्रभेद और उनके स्वरूप का निरूपण किया गया है। सक्षेप मे पाचो गतियो का स्वरूप इस प्रकार है—

(१) **प्रयोगगति**—जीव के व्यापार से अर्थात्—१५ प्रकार के योगो से जो गति होती है, उसे प्रयोगगति कहते हैं। यह गति यहाँ क्षेत्रान्तरप्राप्तिरूप या पर्यायान्तरप्राप्तिरूप समझनी चाहिए।

(२) **ततगति**—विस्तृत गति या विस्तार वाली गति को ततगति कहते है। जैसे कोई व्यक्ति ग्रामान्तर जाने के लिए रवाना हुआ, परन्तु ग्राम बहुत दूर निकला, वह अभी उसमे पहुँचा नही, उसकी एक-एक पैर रखते हुए जो क्षेत्रान्तरप्राप्तिरूप गति होती है, वह ततगति कहलाती है। इस गति का विषय विस्तृत होने से इसे 'ततगति' कहा जाता है।

(३) **बन्धन-छेदनगति**—बन्धन के छेदन से होने वाली गति। जैसे शरीर से मुक्त जीव की गति होती है।

(४) **उपपातगति**—उत्पन्न होने रूप गति को उपपातगति कहते है। इसके तीन प्रकार है—क्षेत्र-उपपात, भवोपपात, और नो-भवोपपात। नारकादिजीव और सिद्धजीव जहाँ रहते है, वह आकाश क्षेत्रोपपात है, कर्मो के वश जीव नारकादि भवो (पर्यायो) मे उत्पन्न होते है, वह भवोपपात है। कर्मसम्बन्ध से रहित अर्थात् नारकादिपर्याय से रहित उत्पन्न होने रूप गति को नो-भवोपपात कहते हैं। इस प्रकार की गति सिद्ध जीव और पुद्गलो मे पाई जाती है।

(५) **विहायोगति**—आकाश मे होने वाली गति को विहायोगति कहते है।[1]

॥ अष्टम शतक सप्तम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवती सूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३८१

(ख) प्रज्ञापनासूत्र पद १६ (प्रयोगपद), पत्राक ३२५

अट्ठमो उद्देसओ : 'पडिणीए'

अष्टम उद्देशक : 'प्रत्यनीक'

गुरु-गति-समूह-अनुकम्पा-श्रुत भाव-प्रत्यनीक-भेद-प्ररूपणा—

१ रायगिहे नयरे जाव एवं वयासी—

[१] राजगृह नगर मे (गौतम स्वामी ने) यावत् (श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से) इस प्रकार पूछा—

२ गुरू ण भते ! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?

गोयमा ! तश्रो पडिणीया पण्णत्ता, त जहा—आयरियपडिणीए उवज्झायपडिणीए थेर-पडिणीए ।

[२ प्र] भगवन् ! गुरुदेव की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक (द्वेषी या विरोधी) कहे गए है ?

[२ उ] गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) आचार्य-प्रत्यनीक, (२) उपाध्याय-प्रत्यनीक और (३) स्थविर-प्रत्यनीक ।

३. गइ ण भते ! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?

गोयमा ! तश्रो पडिणीया पण्णत्ता, त जहा—इहलोगपडिणीए परलोगपडिणीए दुहओलोग-पडिणीए ।

[३ प्र] भगवन् ! गति की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गए हैं ?

[३ उ] गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गए है। वे इस प्रकार—(१) इहलोक-प्रत्यनीक, (२) परलोक-प्रत्यनीक, और (३) उभयलोक-प्रत्यनीक ।

४ समूह ण भते ! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?

गोयमा ! तश्रो पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—कुलपडिणीए गणपडिणीए सघपडिणीए ।

[४ प्र] भगवन् ! समूह (श्रमणसघ) की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गए है ?

[४ उ] गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गए है । वे इस प्रकार—(१) कुल-प्रत्यनीक, (२) गण-प्रत्यनीक और (३) सघ-प्रत्यनीक ।

५ अणुकप पडुच्च० पुच्छा ।

गोयमा ! तश्रो पडिणीया पण्णत्ता, त जहा—तवस्सिपडिणीए गिलाणपडिणीए सेहपडिणीए ।

[५ प्र] भगवन् ! अनुकम्प्य (साधुओ) की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गए हैं ?

[५ उ] गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गए है। वे इस प्रकार—(१) तपस्वी-प्रत्यनीक, (२) ग्लान-प्रत्यनीक और (३) शैक्ष (नवदीक्षित)-प्रत्यनीक।

६. सुय णं भंते ! पडुच्च० पुच्छा।

गोयमा ! तम्रो पडिणीया पण्णत्ता, त जहा—सुत्तपडिणीए अत्थपडिणीए तदुभयपडिणीए।

[६ प्र] भगवन् ! श्रुत की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गए है ?

[६ उ] गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गए है। वे इस प्रकार—(१) सूत्रप्रत्यनीक, (२) अर्थ-प्रत्यनीक और (३) तदुभयप्रत्यनीक।

७. भाव णं भंते ! पडुच्च० पुच्छा।

गोयमा ! तम्रो पडिणीया पण्णत्ता, त जहा—नाणपडिणीए दसणपडिणीए चरित्तपडिणीए।

[७ प्र] भगवन् ! भाव की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गए हैं ?

[७ उ] गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गए है ? वे इस प्रकार—(१) ज्ञान-प्रत्यनीक, (२) दर्शन-प्रत्यनीक और (३) चारित्र-प्रत्यनीक।

विवेचन—गुरु-गति-समूह-अनुकम्पा-श्रुत-भाव की अपेक्षा प्रत्यनीक के भेदो की प्ररूपणा— प्रस्तुत सात सूत्रो मे क्रमश गुरु आदि को लेकर प्रत्येक के तीन-तीन प्रकारो का निरूपण किया गया है।

प्रत्यनीक—प्रतिकूल आचरण करने वाला विरोधी या द्वेषी प्रत्यनीक कहलाता है।

गुरु-प्रत्यनीक का स्वरूप—गुरुपद पर आसीन तीन महानुभाव होते हैं—आचार्य, उपाध्याय और स्थविर। अर्थ के व्याख्याता आचार्य, सूत्र के दाता उपाध्याय तथा वय, श्रुत और दीक्षापर्याय की अपेक्षा वृद्ध व गीतार्थ साधु स्थविर कहलाते है। आचार्य, उपाध्याय और स्थविर मुनियो के जाति आदि से दोष देखने, अहित करने, उनके वचनो का अपमान करने, उनके समीप रहने, उनके उपदेश का उपहास करने, उनकी वैयावृत्य न करने आदि प्रतिकूल व्यवहार करने वाले इनके 'प्रत्यनीक' कहलाने हैं।

गति-प्रत्यनीक का स्वरूप—मनुष्य आदि गति की अपेक्षा प्रतिकूल आचरण करने वाले गति-प्रत्यनीक कहलाते हैं। **इहलोक**—मनुष्य पर्याय का प्रत्यनीक वह होता है, जो पचाग्नि तप करने वाले की तरह अज्ञानतापूर्वक इन्द्रिय-विषयो के प्रतिकूल आचरण करता है। **परलोक**—जन्मान्तर-प्रत्यनीक वह होता है, जो परलोक सुधारने के बजाय केवल इन्द्रियविषयासक्त रहता है। **उभयलोकप्रत्यनीक** वह होता है, जो दोनो लोक सुधारने के बदले चोरी आदि कुकर्म करके दोनो लोक बिगाडता है, केवल भोगविलासतत्पर रहता है। ऐसा व्यक्ति अपने कुकृत्यो से इहलोक मे भी दण्डित होता है, परभव मे भी दुर्गति पाता है।

समूह-प्रत्यनीक का स्वरूप—यहाँ साधुसमुदाय की अपेक्षा तीन प्रकार के समूह बताए है—कुल, गण और सघ। एक आचार्य की सन्तति 'कुल', परस्पर धर्मस्नेह सम्बन्ध रखने वाले तीन कुलो का समूह 'गण' और ज्ञान-दर्शन-चारित्रगुणो से विभूषित समस्त श्रमणो का समुदाय 'सघ' कहलाता

है। कुल गण या सघ के विपरीत आचरण करने वाले क्रमश कुलप्रत्यनीक, गण-प्रत्यनीक और सघ-प्रत्यनीक कहलाते है।

अनुकम्प्य-प्रत्यनीक का स्वरूप—अनुकम्पा करने योग्य—अनुकम्प्य साधु तीन है—तपस्वी, ग्लान (रुग्ण) और शैक्ष। इन तीन अनुकम्प्य साधुओ की आहारादि द्वारा सेवा नही करके उनके प्रतिकूल आचरण या व्यवहार करने वाले साधु क्रमश तपस्वी-प्रत्यनीक, ग्लान-प्रत्यनीक और शैक्ष-प्रत्यनीक कहलाते है।

श्रुतप्रत्यनीक का स्वरूप—श्रुत (शास्त्र) के विरुद्ध कथन, प्रचार, अवर्णवाद आदि करने वाला, शास्त्रज्ञान को निष्प्रयोजन अथवा शास्त्र को दोषयुक्त बताने वाला श्रुतप्रत्यनीक है। श्रुत तीन प्रकार का होने के कारण श्रुतप्रत्यनीक के भी क्रमश सूत्रप्रत्यनीक अर्थप्रत्यनीक और तदुभय-प्रत्यनीक, ये तीन भेद है।

भाव-प्रत्यनीक का स्वरूप—क्षायिकादि भावो के प्रतिकूल आचरणकर्ता भावप्रत्यनीक है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र, ये तीन भाव है। इन तीनो के विरुद्ध आचरण, दोषदर्शन, अवर्णवाद आदि करना क्रमश ज्ञानप्रत्यनीक, दर्शनप्रत्यनीक और चारित्रप्रत्यनीक है[1]

निर्ग्रन्थ के लिए आचरणीय पंचविध व्यवहार, उनकी मर्यादा और व्यवहारानुसार प्रवृत्ति का फल—

८ कइविहे ण भते! ववहारे पण्णत्ते?

गोयमा! पचविहे ववहारे पण्णत्ते, त जहा—आगम-सुत-आणा-धारणा-जीए। जहा से तत्थ आगमे सिया, आगमेण ववहार पट्ठवेज्जा। णो य से तत्थ आगमे सिया, जहा से तत्थ सुते सिया, सुएण ववहार पट्ठवेज्जा। णो वा से तत्थ सुए सिया; जहा से तत्थ आणा सिया, आणाए ववहार पट्ठवेज्जा। णो य से तत्थ आणा सिया; जहा से तत्थ धारणा सिया, धारणाए ववहार पट्ठवेज्जा। णो य से तत्थ धारणा सिया; जहा से तत्थ जीए सिया जीएण ववहार पट्ठवेज्जा। इच्चेएहिं पचहिं ववहार पट्ठवेज्जा, त जहा—आगमेणं सुएणं आणाए धारणाए जीएण। जहा जहा से आगमे सुए आणा धारणा जीए तहा तहा ववहार पट्ठवेज्जा।

[८ प्र] भगवन्! व्यवहार कितने प्रकार का कहा गया है?

[८ उ] गौतम! व्यवहार पाच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—(१) आगम-व्यवहार, (२) श्रुतव्यवहार, (३) आज्ञाव्यवहार, (४) धारणाव्यवहार और (५) जीतव्यवहार। इन पाच प्रकार के व्यवहारो मे से जिस साधु के पास आगम (केवलज्ञान, मन पर्ययज्ञान, अवधिज्ञान, चौदह पूर्व, दस पूर्व अथवा नौ पूर्व का ज्ञान) हो, उसे उस आगम से व्यवहार (प्रवृत्ति-निवृत्ति) करना चाहिए। जिसके पास आगम न हो, उसे श्रुत से व्यवहार चलाना चाहिए। जहाँ श्रुत न हो वहाँ आज्ञा से उसे व्यवहार चलाना चाहिए। यदि आज्ञा भी न हो तो जिस प्रकार की धारणा हो, उस धारणा से व्यवहार चलाना चाहिए। कदाचित् धारणा न हो तो जिस प्रकार का जीत हो, उस

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३८२

जीत से व्यवहार चलाना चाहिए। इस प्रकार इन पाचो आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत से (साधु-साध्वी को) व्यवहार चलाना चाहिए। जिसके पास जिस-जिस प्रकार से आगम, श्रुत, आज्ञा धारणा और जीत, इन पाच व्यवहारो मे से जो व्यवहार हो, उसे उस उस प्रकार से व्यवहार चलाना (प्रवृत्ति-निवृत्ति करना) चाहिए।

९ से किमाहु भते! आगमबलिया समणा निग्गथा ?

इच्चेय पचविहं ववहारं जया जया जहिं जहिं तया तया तहिं तहिं अणिस्सिओवस्सित सम्म ववहरमाणे समणे निग्गथे आणाए आराहए भवइ।

[९ प्र] भगवन्! आगमबलिक श्रमण निर्ग्रन्थ (पूर्वोक्त पचविध व्यवहार के विषय मे) क्या कहते हैं ?

[९ उ] (गौतम!) इस प्रकार इन पचविध व्यवहारो मे से जब-जब और जहाँ-जहाँ जो व्यवहार सभव हो, तब-तब और वहा-वहाँ उससे, अनिश्रितोपाश्रित (राग और द्वेष से रहित) हो कर सम्यक् प्रकार से व्यवहार (प्रवृत्ति-निवृत्ति) करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ (तीर्थंकरो की) आज्ञा का आराधक होता है।

विवेचन—निर्ग्रन्थ के लिए आचरणीय पचविध व्यवहार एव उनकी मर्यादा—प्रस्तुत दो सूत्रो मे साधु-साध्वी के लिए साधुजीवन मे उपयोगी पचविध व्यवहारो तथा उनकी मर्यादा का निरूपण किया गया है।

व्यवहार का विशेषार्थ—यहाँ आध्यात्मिक जगत् मे व्यवहार का अर्थ मुमुक्षुओ की यथोचित सम्यक् प्रवृत्ति-निवृत्ति है, अथवा उसका कारणभूत जो ज्ञानविशेष है, उसे भी व्यवहार कह सकते है।

आगम आदि पंचविध व्यवहार का स्वरूप—(१) **आगमव्यवहार**—जिससे वस्तुतत्त्व का यथार्थ ज्ञान हो, उसे 'आगम' कहते है। केवलज्ञान, मन पर्यायज्ञान, अवधिज्ञान, चौदह पूर्व, दस पूर्व और नौ पूर्व का ज्ञान 'आगम' कहलाता है। आगमज्ञान से प्रवर्तित प्रवृत्ति-निवृत्तिरूप व्यवहार—**आगमव्यवहार** कहलाता है। (२) **श्रुत-व्यवहार**—शेष आचारप्रकल्प आदि ज्ञान 'श्रुत' कहलाता है। श्रुत से प्रवर्तित व्यवहार श्रुतव्यवहार है। यद्यपि पूर्वो का ज्ञान भी श्रुतरूप है, तथापि अतीन्द्रियार्थ-विषयक विशिष्ट ज्ञान का कारण एव सातिशय ज्ञान होने से उसे 'आगम' की कोटि मे रखा गया है। (३) **आज्ञा-व्यवहार**—दो गीतार्थ साधु अलग-अलग दूर देश मे विचरते है, उनमे से एक का जघाबल क्षीण हो जाने से विहार करने मे असमर्थ हो जाए, वह अपने दूरस्थ गीतार्थसाधु के पास अगीतार्थसाधु के माध्यम से अपने अतिचार या दोष आगम की साकेतिक गूढ भाषा मे कहकर या लिखकर भेजता है, और गूढभाषा मे कही हुई या लिखी हुई आलोचना सुन-जान कर वे गीतार्थमुनि भी सदेशवाहक मुनि के माध्यम से उक्त अतिचार के प्रायश्चित्त द्वारा की जाने वाली शुद्धि का सदेश आगम की गूढभाषा मे ही कह या लिखकर देते हैं। यह आज्ञाव्यवहार का स्वरूप है। (४) **धारणा-व्यवहार**—किसी गीतार्थ मुनि ने या गुरुदेव ने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा जिस अपराध मे जो प्रायश्चित्त दिया है, उसकी धारणा से वैसे अपराध मे उसी प्रायश्चित्त का प्रयोग करना धारणाव्यवहार है। धारणाव्यवहार प्राय आचार्य-परम्परागत होता है। (५) **जीतव्यवहार**—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, पात्र (पुरुष) और प्रतिसेवना का तथा सहनन, और धैर्य आदि की हानि का विचार करके जो प्रायश्चित्त दिया जाए वह जीतव्यवहार है। अथवा अनेक गीतार्थ मुनियो द्वारा आचरित,

असावद्य, आगम मे अबाधित एव निर्धारित मर्यादा को भी जीतव्यवहार कहते है। कारणवश किसी गच्छ मे शास्त्रोक्त से अधिक प्रायश्चित्त प्रवृत्त हो गया हो, उसका अनुसरण करना भी जीतव्यवहार है।

पूर्व-पूर्व व्यवहार के अभाव मे उत्तरोत्तर व्यवहार आचरणीय—मूलपाठ मे स्पष्ट बता दिया है कि ५ व्यवहारो मे से व्यवहर्ता मुमुक्षु के पास यदि आगम हो तो उसे आगम से, उसमे भी केवलज्ञानादि पूर्व-पूर्व के अभाव मे उत्तरोत्तर से व्यवहार चलाना चाहिए। आगम के अभाव मे श्रुत से, श्रुत के अभाव मे आज्ञा से, आज्ञा के अभाव मे धारणा से और धारणा के अभाव मे जीतव्यवहार से प्रवृत्ति-निवृत्तिरूप व्यवहार करना चाहिए।[1]

अन्त मे फलश्रुति के साथ स्पष्ट निर्देश—जब-जब, जिस-जिस अवसर मे, जिस-जिस प्रयोजन या क्षेत्र मे, जो-जो व्यवहार उचित हो, तब-तब उस-उस अवसर मे, उस-उस प्रयोजन या क्षेत्र मे उस-उस व्यवहार का प्रयोग अनिश्रित—समस्त आशसा—यश कीर्ति, आहारादिलिप्सा से रहित तथा अनुपाश्रित—वैयावृत्य करने वाले शिष्यादि के प्रति सर्वथा पक्षपातरहित हो कर (अथवा राग-आसक्ति और द्वेष से रहित होकर) करना चाहिए। तभी वह भगवदाज्ञाराधक होगा।[2]

विविध पहलुओ से ऐर्यापथिक और साम्परायिक कर्मबन्ध से सम्बन्धित प्ररूपणा—

१०. कइविहे णं भंते ! बंधे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे बंधे पन्नत्ते, त जहा—इरियावहियाबंधे य संपराइयबंधे य।

[१० प्र] भगवन् ! बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१० उ] गौतम ! बन्ध दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—ईर्यापथिकबन्ध और साम्परायिकबन्ध।

११. इरियावहियं णं भंते ! कम्मं किं नेरइओ बंधइ, तिरिक्खजोणिओ बंधइ, तिरिक्खजोणिणी बंधइ, मणुस्सो बंधइ, मणुस्सी बंधइ, देवो बंधइ, देवी बंधइ ?

गोयमा ! नो नेरइओ बंधइ, नो तिरिक्खजोणिओ बंधइ, नो तिरिक्खजोणिणी बंधइ, नो देवो बंधइ, नो देवी बंधइ, पुव्वपडिवन्नए पडुच्च मणुस्सा य, मणुस्सीओ य बंधंति, पडिवज्जमाणए पडुच्च मणुस्सो वा बंधइ १, मणुस्सी वा बंधइ २, मणुस्सा वा बंधंति ३, मणुस्सीओ वा बंधंति ४, अहवा मणुस्सो य मणुस्सी य बंधइ ५, अहवा मणुस्सो य मणुस्सीओ य बंधंति ६, अहवा मणुस्सा य मणुस्सी य बंधंति ७, अहवा मणुस्सा य मणुस्सीओ य बंधंति ८।

[११ प्र] भगवन् ! ईर्यापथिककर्म क्या नैरयिक बाधता है, या तिर्यञ्चयोनिक बाधता है, या तिर्यञ्चयोनिक स्त्री बाधती है, अथवा मनुष्य बाधता है, या मनुष्य-स्त्री (नारी) बाधती है, अथवा देव बाधता है या देवी बाधती है ?

[११ उ] गौतम ! ईर्यापथिककर्म न नैरयिक बाधता है, न तिर्यञ्चयोनिक बाधता है, न तिर्यञ्चयोनिक स्त्री बाधती है, न देव बाधता है और न ही देवी बाधती है, किन्तु पूर्वप्रतिपन्नक की

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३८४

२ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३८५

अपेक्षा इसे मनुष्य पुरुष और मनुष्य स्त्रियाँ बांधती है, प्रतिपद्यमान की अपेक्षा मनुष्य-पुरुष बाधता है अथवा मनुष्य स्त्री बाधती है, अथवा बहुत-से मनुष्य-पुरुष बाधते है या बहुत-सी मनुष्य स्त्रियाँ बाधती है, अथवा एक मनुष्य और एक मनुष्य-स्त्री बाधती है, या एक मनुष्य-पुरुष और बहुत-सी मनुष्य-स्त्रियाँ बाधती है, अथवा बहुत-से मनुष्य पुरुष और एक मनुष्य-स्त्री बाधती है, अथवा बहुत-से मनुष्य-नर और बहुत-सी मनुष्य-नारियाँ बाधती है ।

१२. त भते ! किं इत्थी बधइ, पुरिसो बधइ, नपु सगो बधति, इत्थीओ बधति, पुरिसा बधति, नपु सगा बधति ? नोइत्थी-नोपुरिसो-नोनपु सगो बधइ ?

गोयमा ! नो इत्थी बधइ, नो पुरिसो बधइ जाव नो नपु सओ बधइ । पुव्वपडिवन्नए पडुच्च अवगयवेदा बधति, पडिवज्जमाणए य पडुच्च अवगयवेदो वा बधति, अवगयवेदा वा बधति ।

[१२ प्र] भगवन् ! ऐर्यापथिक (कर्म) बन्ध क्या स्त्री बाधती है, पुरुष बाधता है, नपु सक बाधता है, स्त्रियाँ बाधती है, पुरुष बाधते हैं या नपु सक बाधते है, अथवा नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपु सक बाधता है ?

[१२ उ] गौतम ! इसे स्त्री नही बाधती, पुरुष नही बाधता, नपु सक नही बाधता, स्त्रियाँ नही बाधती, पुरुष नही बाधते और नपु सक भी नही बाधते, किन्तु पूर्वप्रतिपन्न की अपेक्षा वेदरहित (बहु) जीव बाधते है, अथवा प्रतिपद्यमान की अपेक्षा वेदरहित (एक) जीव बाधता है या (बहु) वेद-रहित जीव बाधते हैं ।

१३ जइ भते ! अवगयवेदो वा बधइ, अवगयवेदा वा बंधति त भते ! किं इत्थीपच्छाकडो बधइ १, पुरिसपच्छाकडो बधइ २, नपु सकपच्छाकडो बधइ ३, इत्थीपच्छाकडा बधति ४, पुरिसपच्छा-कडा वि बधति ५, नपु सगपच्छाकडा वि बधति ६, उदाहु इत्थिपच्छाकडो य पुरिसपच्छाकडो य बधति ४, उदाहु इत्थीपच्छाकडो य णपु सगपच्छाकडो य बधइ ४, उदाहु पुरिसपच्छाकडो य णपु सगपच्छा-कडो य बधइ ४, उदाहु इत्थिपच्छाकडो य पुरिसपच्छाकडो य णपु सगपच्छाकडो य भाणियव्व ८, एव एते छव्वीस भगा २६ जाव उदाहु इत्थीपच्छाकडा य पुरिसपच्छाकडा य नपु सकपच्छाकडा य बधति ?

गोयमा ! इत्थिपच्छाकडो वि बधइ १, पुरिसपच्छाकडो वि बंधइ २, नपुंसगपच्छाकडो वि बधइ ३, इत्थीपच्छाकडा वि बधति ४, पुरिसपच्छकडा वि बंधति ५, नपुंसकपच्छाकडा वि बधति ६, अहवा इत्थीपच्छाकडो य पुरिसपच्छाकडो य बधइ ७, एव एए चेव छव्वीस भगा भाणियव्वा जाव अहवा इत्थिपच्छाकडा य पुरिसपच्छाकडा य नपु सगपच्छाकडा य बधति ।

[१३ प्र] भगवन् ! यदि वेदरहित एक जीव अथवा वेदरहित बहुत जीव ऐर्यापथिक (कर्म) वन्ध बाधते हैं तो क्या १—स्त्री-पश्चात्कृत जीव (जो जीव भूतकाल मे स्त्रीवेदी था, अब वर्त्तमान काल मे अवेदी हो गया है) बाधता है, अथवा २—पुरुष-पश्चात्कृत जीव (जो जीव पहले पुरुषवेदी था, अब अवेदी हो गया है) बाधता है, या ३—नपु सक-पश्चात्कृत जीव (जो पहले नपु सकवेदी था, अब अवेदी हो गया है) बाधता है ? अथवा ४—स्त्रीपश्चात्कृत जीव बाधते है, या ५—पुरुष-पश्चात्कृत जीव बाधते हैं, या ६—नपु सकपश्चात्कृत जीव बाधते है ? अथवा ७—एक स्त्री-पश्चात्कृत जीव और एक पुरुषपश्चात्कृत जीव बाधता है, या ८—एक स्त्री-पश्चात्कृत जीव

बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव बाधते हैं, या ९—बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव और एक पुरुषपश्चात्कृत जीव बाधता है, अथवा १०—बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव और बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव बाधते है, या ११—एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव और एक नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधता है या १२—एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधते है, अथवा १३—बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव और एक नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधता है, या १४—बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधते है, अथवा १५—एक पुरुषपश्चात्कृत जीव और एक नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधता है, या १६—एक पुरुष-पश्चात्कृत जीव और बहुत नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधते है, अथवा १७—बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और एक नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधता है, अथवा १८—बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधते है ? या फिर १९—एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव, एक पुरुषपश्चात्कृत जीव और एक नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधता है, अथवा २०—एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव, एक पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधते है, या २१—एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और एक नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधता है ? अथवा २२—एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधते है, या २३—बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव, एक पुरुषपश्चात्कृत जीव और एक नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधता है, अथवा २४—बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव, एक पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधते है, या २५—बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और एक नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधता है, अथवा २६—बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधते है ?

[१३ उ] गौतम ! ऐर्यापथिक कर्म (१) स्त्रीपश्चात्कृत जीव भी बाधता है, (२) पुरुषपश्चात्कृत जीव भी बाधता है, (३) नपुसकपश्चात्कृत जीव भी बाधता है, (४) स्त्री पश्चात्कृत जीव भी बाधते है, (५) पुरुषपश्चात्कृत जीव भी बाधते है, (६) नपुसकपश्चात्कृत जीव भी बाधते हैं, अथवा (७) एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव और एक पुरुषपश्चात्कृत जीव भी बाधता है अथवा यावत् (२६) बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुसकपश्चात्कृत जीव भी बाधते है। इस प्रकार (प्रश्न मे कथित) छव्वीस भग यहाँ (उत्तर मे ज्यो के त्यो) कह देने चाहिए।

१४ त भते ! किं बंधी बधइ बधिस्सइ १, बधी बधइ न बधिस्सइ २, बधी न बधइ बधिस्सइ ३, बधी न बधइ न बधिस्सइ ४, न बधी बधइ बधिस्सइ ५, न बंधी बंधइ न बंधिस्सइ ६, न बधी न बधइ बधिस्सइ ७, न बधी न बधइ न बधिस्सइ ८ ?

गोयमा ! भवागरिस पडुच्च अत्थेगतिए बधी बधइ बधिस्सइ। अत्थेगतिए बधी बधइ न बधिस्सइ। एव त चेव सव्व जाव अत्थेगतिए न बधी न बधइ न बधिस्सइ। गहणागरिस पडुच्च अत्थेगतिए बधी, बंधइ, बधिस्सइ, एव जाव अत्थेगतिए न बधी, बधइ, बधिस्सइ। णो चेव ण न बधी, बंधइ, न बधिस्सइ। अत्थेगतिए न बधी, न बधइ, बधिस्सइ। अत्थेगतिए न बधी, न बधइ, न बधिस्सइ।

[१४ प्र] भगवन् ! क्या जीव ने (ऐर्यापथिक कर्म) १—बाधा है, बाधता है और बाधेगा,

अथवा २—बाधा है, बाधता है, नही बाधेगा, या ३—बाधा है, नही बाधता है, बाधेगा, अथवा ४—बाधा है, नही बाधता है, नही बाधेगा, या ५—नही बाधा, बाधता है, बाधेगा, अथवा ६—नही बाधा, बाधता है, नही बाधेगा, या ७—नही बाधा, नही बाधता, बाधेगा ८—न बाधा, न बाधता है, न बाधेगा ?

[१४ उ] गौतम ! भवाकर्ष की अपेक्षा किसी एक जीव ने बाधा है, बाधता है और बाधेगा, किसी एक जीव ने बाधा है, बाधता है और नही बाधेगा, यावत् किसी एक जीव ने नही बाधा, नही बाधता है, नही बाधेगा। इस प्रकार (प्रश्न मे कथित) सभी (आठो) भग यहाँ कहने चाहिए। ग्रहणाकर्ष की अपेक्षा (१) किसी एक जीव ने बाधा, बाधता है, बाधेगा, (२) किसी एक जीव ने बाधा, बाधता है, नही बाधेगा, (३) बाधा, नही बाधता है, बाधेगा, (४) बाधा, नही बाधता, नही बाधेगा, (५) किसी एक जीव ने नही बाधा, बाधता है, यहाँ तक (यावत्) कहना चाहिए। इसके पश्चात् छठा भंग—नही बाधा, बाधता नही है, बाधेगा, नही कहना चाहिए। (तदनन्तर सातवा भग)—किसी एक जीव ने नही बाधा, नही बाधता है, बाधेगा और आठवा भग एक जीव ने नही बाधा, नही बाधता, नही बाधेगा, (कहना चाहिए।)

१५ त भते ! किं साईय सपज्जवसिय बधइ, साईय अपज्जवसिय बंधइ, अणाईय सपज्जवसिय बधइ, अणाईयं अपज्जवसिय बंधइ ?

गोयमा ! साईय सपज्जवसिय बधइ, नो साईय अपज्जवसियं बंधइ, नो अणाईय सपज्जवसिय बधइ, नो अणाईय अपज्जवसिय बधइ।

[१५ प्र] भगवन् ! जीव ऐर्यापथिक कर्म क्या सादि-सपर्यवसित बाधता है या सादि-अपर्यवसित बाधता है, अथवा अनादि-सपर्यवसित बाधता है या अनादि-अपर्यवसित बाधता है ?

[१५ उ] गौतम ! जीव ऐर्यापथिक कर्म सादि-सपर्यवसित बाधता है, किन्तु सादि-अपर्यवसित नही बाधता, अनादि-सपर्यवसित नही बाधता और न अनादि-अपर्यवसित बाधता है।

१६. त भंते ! किं देसेण देसं बंधइ, देसेण सव्व बधइ, सव्वेणं देस बधइ, सव्वेण सव्व बंधइ ?

गोयमा ! नो देसेण देस बधइ, णो देसेणं सव्व बंधइ, नो सव्वेण देसं बधइ, सव्वेण सव्व बधइ।

[१६ प्र] भगवन् ! जीव ऐर्यापथिक कर्म देश से आत्मा के देश को बाधता है, देश से सर्व को बाधता है, सर्व से देश को बाधता है या सर्व से सर्व को बाधता है ?

[१६ उ] गौतम ! वह ऐर्यापथिक कर्म देश से देश को नही बाँधता, देश से सर्व को नही बाधता, सर्व से देश को नही बाधता, किन्तु सर्व से सर्व को बाधता है।

१७ सपराइय ण भते ! कम्मं किं नेरइयो बधइ, तिरिक्खजोणीओ बधइ, जाव देवी बधइ ?

गोयमा ! नेरइओ वि बधइ, तिरिक्खजोणीओ वि बंधइ, तिरिक्खजोणिणी वि बधइ, मणुस्सो वि बधइ, मणुस्सी वि बधइ, देवो वि बधइ, देवी वि बंधइ।

[१७ प्र] भगवन् ! साम्परायिक कर्म नैरयिक बाधता है, तिर्यञ्च बाधता है, तिर्यञ्च-स्त्री (मादा) बाधती है, मनुष्य बाधता है, मनुष्य-स्त्री बाधती है देव बाधता है या देवी बाधती है ?

[१७ उ] गौतम ! नैरयिक भी बाधता है, तिर्यञ्च भी बाधता है, तिर्यञ्च-स्त्री (मादा) भी बाधती है, मनुष्य भी बाधता है, मानुषी भी बाधती है, देव भी बाधता है और देवी भी बाधती है।

१८ तं भंते ! किं इत्थी बंधइ, पुरिसो बंधइ, तहेव जाव नोइत्थीनो-पुरिसोनो-नपुंसओ बंधइ ?

गोयमा ! इत्थी वि बंधइ, पुरिसो वि बंधइ, जाव नपुंसगो वि बंधइ। अहवेए य अवगयवेदो य बंधइ, अहवेए य अवगयवेया य बंधंति।

[१८ प्र] भगवन् ! साम्परायिक कर्म क्या स्त्री बाधती है, पुरुष बाधता है, यावत् नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक बाधता है ?

[१८ उ] गौतम ! स्त्री भी बाधती है, पुरुष भी बाधता है, नपुंसक भी बाधता है, अथवा बहुत स्त्रिया भी बाधती है, बहुत पुरुष भी बाधते है और बहुत नपुंसक भी बाधते है, अथवा ये सब और अवेदी एक जीव भी बाधता है, अथवा ये सब और बहुत अवेदी जीव भी बाधते हैं।

१९ जइ भंते ! अवगयवेदो य बंधइ अवगयवेदा य बंधंति तं भंते ! किं इत्थीपच्छाकडो बंधइ, पुरिसपच्छाकडो ?

एवं जहेव इरियावहियाबंधगस्स तहेव निरवसेसं जाव अहवा इत्थीपच्छाकडा य, पुरिसपच्छाकडा य, नपुंसगपच्छाकडा य बंधंति।

[१९ प्र] भगवन् ! यदि वेदरहित एक जीव और वेदरहित बहुत जीव साम्परायिक कर्म बाधते है तो क्या स्त्रीपश्चात्कृत जीव बाधता है या पुरुषपश्चात्कृत जीव बाधता है ? इत्यादि प्रश्न (सू. १३ के अनुसार) पूर्ववत् कहना चाहिए।

[१९ उ] गौतम ! जिस प्रकार ऐर्यापथिक कर्मबन्ध के सम्बन्ध मे छब्बीस भंग कहे है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए, यावत् (२६) बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसकपश्चात्कृत जीव बाधते हैं,—यहाँ तक कहना चाहिए।

२० तं भंते ! किं बंधी बंधइ बंधिस्सइ १, बंधी बंधइ न बंधिस्सइ २, बंधी न बंधइ, बंधिस्सइ ३, बंधी न बंधइ, न बंधिस्सइ ४ ?

गोयमा ! अत्थेगतिए बंधी बंधइ बंधिस्सइ १, अत्थेगतिए बंधी बंधइ, न बंधिस्सइ २, अत्थेगतिए बंधी न बंधइ, बंधिस्सइ ३, अत्थेगतिए बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ ४।

[२० प्र] भगवन् ! साम्परायिक कर्म (१) किसी जीव ने बाधा, बाधता है, और बाधेगा ? (२) बाधा, बाधता है और नही बाधेगा ? (३) बाधा, नही बाधता है और बाधेगा ? तथा (४) बाधा, नही बाधता है, और नही बाधेगा ?

[२० उ] गौतम ! (१) कई जीवो ने बाधा, बाधते हैं, और बाधेंगे, (२) कितने ही जीवो ने बाधा, बाधते है, और नही बाधेंगे, (३) कितने ही जीवो बाधा है, नही बाधते है, और बाधेंगे, (४) कितने ही जीवो ने बाधा है, नही बाधते है, और नही बाधेंगे।

२१ तं भंते ! किं साईयं सपज्जवसियं बंधइ ? पुच्छा तहेव ।

गोयमा ! साईयं वा सपज्जवसियं बंधइ, अणाईयं वा सपज्जवसियं बंधइ, अणाईयं वा अपज्जवसियं बंधइ णो चेव णं साईयं अपज्जवसियं बंधइ ।

[२१ प्र] भगवन् ! साम्परायिक कर्म सादि-सपर्यवसित बाधते हैं ? इत्यादि (सू १५ के अनुसार) प्रश्न पूर्ववत् करना चाहिए ।

[२१ उ] गौतम ! साम्परायिक कर्म सादि-सपर्यवसित बाधते है, अनादि-सपर्यवसित बाधते हैं, अनादि-अपर्यवसित बाधते हैं, किन्तु सादि-अपर्यवसित नही बाधते ।

२२ त भते ! किं देसेण देस बंधइ ?

एव जहेव इरियावहियाबंधगस्स जाव सव्वेणं सव्व बंधइ ।

[२२ प्र] भगवन् ! साम्परायिक कर्म देश से आत्मदेश को बाधते हैं ? इत्यादि प्रश्न, (सू १६ के अनुसार) पूर्ववत् करना चाहिए ।

[२२ उ] गौतम ! जिस प्रकार ऐर्यापथिक कर्मबन्ध के सम्बन्ध मे कहा गया है, उसी प्रकार साम्परायिक कर्मबन्ध के सम्बन्ध मे भी जान लेना चाहिए, यावत् सर्व से सर्व को बाधते हैं ।

विवेचन—विविध पहलुओ से ऐर्यापथिक और साम्परायिक कर्मबन्ध से सम्बन्धित निरूपण— प्रस्तुत तेरह सूत्रो (सू १० से २२ तक) मे ऐर्यापथिक और साम्परायिक कर्मबन्ध के सम्बन्ध मे निम्नोक्त छह पहलुओ से विचारणा की गई है—

१ ऐर्यापथिक या साम्परायिक कर्म चार गतियो मे से किस गति का प्राणी, बाधता है ?

२ स्त्री, पुरुष, नपु सक आदि मे से कौन बाधता है ?

३ स्त्रीपश्चात्कृत, पुरुषपश्चात्कृत, नपु सकपश्चात्कृत, एक या अनेक अवेदी मे से कौन अवेदी बाधता है ?

४ दोनो कर्मो के बाधने की त्रिकाल सम्बन्धी चर्चा ।

५ सादिसपर्यवसित आदि चार विकल्पो मे से कैसे इन्हे बाधता है ?

६ ये कर्म देश से आत्मदेश को बाधते हैं ? इत्यादि प्रश्नोत्तर ।

बन्ध : स्वरूप एव विवक्षित दो प्रकार—जैसे शरीर मे तेल आदि लगाकर धूल मे लोटने पर उस व्यक्ति के शरीर पर धूल चिपक जाती है, वैसे ही मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग से जीव के प्रदेशो मे जब हलचल होती है, तब जिस आकाश मे आत्मप्रदेश होते है, वही के अनन्त-अनन्त तद्-तद्-योग्य कर्मपुद्गल जीव के प्रत्येक प्रदेश के साथ बद्ध हो जाते हैं । दूध-पानी की तरह कर्म और आत्मप्रदेशो का एकमेक होकर मिल जाना बन्ध है । बेडी आदि का बन्धन द्रव्यबन्ध है, जबकि कर्मो का बन्ध भावबन्ध है । विवक्षाविशेष से यहाँ कर्मबन्ध के दो प्रकार कहे गए है—ऐर्यापथिक और साम्परायिक । केवल योगो के निमित्त से होने वाले सातावेदनीयरूप बन्ध को ऐर्यापथिककर्मबन्ध कहते हैं । जिनसे चतुर्गतिकससार मे परिभ्रमण हो, उन्हे सम्पराय—कषाय कहते है, सम्परायो (कषायो) के निमित्त से होने वाले कर्मबन्ध को साम्परायिककर्मबन्ध कहते है । यह प्रथम से दशम गुणस्थान तक होता है ।

ऐर्यापथिककर्मबन्ध : स्वामी, कर्त्ता, बन्धकाल, बन्धविकल्प तथा बन्धांश—(१) स्वामी—ऐर्यापथिककर्म का बन्ध नारक, तिर्यञ्च, और देवों को नहीं होता, यह केवल मनुष्यों को ही होता है। मनुष्यों में भी ग्यारहवें (उपशान्तमोह), बारहवें (क्षीणमोह) और तेरहवें (सयोगीकेवली) गुणस्थानवर्ती मनुष्यों को ही होता है। ऐसे मनुष्य पुरुष और स्त्री दोनों ही होते हैं। जिसने पहले ऐर्यापथिककर्म का बन्ध किया हो, अर्थात्—जो ऐर्यापथिक कर्मबन्ध के द्वितीय-तृतीय आदि समयवर्ती हो, उसे **पूर्वप्रतिपन्न** कहते हैं। पूर्वप्रतिपन्न की अपेक्षा इसे बहुत-से मनुष्य नर और बहुत-सी मनुष्य नारियाँ बाँधती हैं, क्योंकि ऐसे पूर्वप्रतिपन्न स्त्री और पुरुष बहुत होते हैं। और दोनों प्रकार के केवली (स्त्रीकेवली और पुरुषकेवली) सदा पाए जाते हैं। इसलिए इसका भंग नहीं होता। जो जीव ऐर्यापथिक कर्मबन्ध के प्रथम समयवर्ती होते हैं, वे **'प्रतिपद्यमान'** कहलाते हैं। इनका विरह सम्भव है। इसलिए एकत्व और बहुत्व को लेकर इनके (स्त्री और पुरुष के) असंयोगी ४ भंग और द्विकसंयोगी ४ भंग, यों कुल ८ भंग बनते हैं।

ऐर्यापथिक कर्मबन्ध के सम्बन्ध में जो स्त्री, पुरुष, नपुंसक आदि को लेकर प्रश्न किया गया है, वह लिंग की अपेक्षा समझना चाहिए, वेद की अपेक्षा नहीं, क्योंकि ऐर्यापथिक कर्मबन्धकर्त्ता जीव उपशान्तवेदी या क्षीणवेदी ही होते हैं। इसीलिए इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है—**अपगतवेद**-वेद के उदय से रहित जीव ही इसे बांधते हैं। पूर्वप्रतिपन्नक अवेदी जीव सदा बहुत होते हैं, इसलिए उनके विषय में बहुवचन ही दिया गया है, जबकि प्रतिपद्यमान अवेदी जीव में विरह होने से एकत्व आदि की सम्भावना के कारण एकवचन और बहुवचन दोनों विकल्प कहे गए हैं।

जो जीव गतकाल में स्त्री था, किन्तु अब वर्तमानकाल में अवेदी हो गया है, उसे **स्त्रीपश्चात्कृत** कहते हैं, इसी तरह **'पुरुषपश्चात्कृत'** और **'नपुंसकपश्चात्कृत'** का अर्थ भी समझ लेना चाहिए। इन तीनों की अपेक्षा से यहाँ वेदरहित एक जीव या अनेक जीवों के द्वारा ऐर्यापथिक-कर्मबन्धसम्बन्धी २६ भंगों को प्रस्तुत करके प्रश्न किया है। इनमें असंयोगी ६ भंग, द्विकसंयोगी १२ भंग और त्रिकसंयोगी ८ भंग हैं। इस प्रश्न का उत्तर भी २६ भंगों द्वारा दिया गया है।

त्रैकालिक ऐर्यापथिक कर्मबन्ध-विचार—इसके पश्चात् ऐर्यापथिक कर्मबन्ध के सम्बन्ध में भूत, वर्तमान और भविष्य काल-सम्बन्धी आठ भंगों द्वारा प्रश्न किया गया है, जिसका उत्तर **'भवाकर्ष'** और **'ग्रहणाकर्ष'** की अपेक्षा दिया गया है। अनेक भवों में उपशमश्रेणी की प्राप्ति द्वारा ऐर्यापथिक कर्मपुद्गलों का आकर्ष-ग्रहण करना **'भवाकर्ष'** है और एक भव में ऐर्यापथिक कर्मपुद्गलों का ग्रहण करना, **'ग्रहणाकर्ष'** है। भवाकर्ष की अपेक्षा यहाँ ८ भंग उत्पन्न होते हैं—उनका आशय क्रमशः इस प्रकार है—१ **प्रथम भंग—बांधा था, बांधता है, बांधेगा**, यह भवाकर्षापेक्षया उस जीव में पाया जाता है, जिसने गतकाल (किसी पूर्वभव) में उपशमश्रेणी की थी, उस समय ऐर्यापथिक कर्म बांधा था; वर्तमान में उपशम श्रेणी करता है, उस समय इसे बांधता है और आगामी भव में उपशमश्रेणी करेगा, उस समय इसे बांधेगा। २ **द्वितीय भंग—बांधा था, बांधता है, नहीं बांधेगा**—यह उस जीव में पाया जाता है, जिसने पूर्वभव में उपशमश्रेणी की थी और ऐर्यापथिक कर्म बांधा था, वर्तमान में क्षपक श्रेणी में इसे बांधता है और फिर इसी भव में मोक्ष चला जाएगा, इसलिए आगामी काल में नहीं बांधेगा। ३ **तृतीय भंग—'बांधा था, नहीं बांधता है, बांधेगा'**—यह भंग उस जीव में पाया जाता है, जिसने पूर्वभव में उपशमश्रेणी की थी, उसमें बांधा था, वर्तमान भव में श्रेणी नहीं

२१ त भंते ! किं साईयं सपज्जवसियं बंधइ ? पुच्छा तहेव ।

गोयमा ! साईयं वा सपज्जवसियं बंधइ, अणाईयं वा सपज्जवसियं बंधइ, अणाईयं वा अपज्जवसियं बंधइ णो चेव णं साईयं अपज्जवसियं बंधइ ।

[२१ प्र] भगवन् ! साम्परायिक कर्म सादि-सपर्यवसित बाधते है ? इत्यादि (सू १५ के अनुसार) प्रश्न पूर्ववत् करना चाहिए ।

[२१ उ] गौतम ! साम्परायिक कर्म सादि-सपर्यवसित बाधते है, अनादि-सपर्यवसित बाधते है, अनादि-अपर्यवसित बाधते हैं, किन्तु सादि-अपर्यवसित नही बाधते ।

२२ त भंते ! किं देसेण देसं बंधइ ?

एव जहेव इरियावहियाबंधगस्स जाव सव्वेणं सव्वं बंधइ ।

[२२ प्र] भगवन् ! साम्परायिक कर्म देश से आत्मदेश को बाधते हैं ? इत्यादि प्रश्न, (सू १६ के अनुसार) पूर्ववत् करना चाहिए ।

[२२ उ] गौतम ! जिस प्रकार ऐर्यापथिक कर्मबन्ध के सम्बन्ध मे कहा गया है, उसी प्रकार साम्परायिक कर्मबन्ध के सम्बन्ध मे भी जान लेना चाहिए, यावत् सर्व से सर्व को बाधते हैं ।

विवेचन—विविध पहलुओ से ऐर्यापथिक और साम्परायिक कर्मबन्ध से सम्बन्धित निरूपण— प्रस्तुत तेरह सूत्रो (सू १० से २२ तक) मे ऐर्यापथिक और साम्परायिक कर्मबन्ध के सम्बन्ध मे निम्नोक्त छह पहलुओ से विचारणा की गई है—

१ ऐर्यापथिक या साम्परायिक कर्म चार गतियो मे से किस गति का प्राणी, बाधता है ?

२ स्त्री, पुरुष, नपु सक आदि मे से कौन बाधता है ?

३ स्त्रीपश्चात्कृत, पुरुषपश्चात्कृत, नपु सकपश्चात्कृत, एक या अनेक अवेदी मे से कौन अवेदी बाधता है ?

४ दोनो कर्मो के बाधने की त्रिकाल सम्बन्धी चर्चा ।

५ सादिसपर्यवसित आदि चार विकल्पो मे से कैसे इन्हे बाधता है ?

६ ये कर्म देश से आत्मदेश को बाधते हैं ? इत्यादि प्रश्नोत्तर ।

बन्ध . स्वरूप एव विवक्षित दो प्रकार—जैसे शरीर मे तेल आदि लगाकर धूल मे लोटने पर उस व्यक्ति के शरीर पर धूल चिपक जाती है, वैसे ही मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग से जीव के प्रदेशो मे जब हलचल होती है, तब जिस आकाश मे आत्मप्रदेश होते हैं, वही के अनन्त-अनन्त तद्-तद्-योग्य कर्मपुद्गल जीव के प्रत्येक प्रदेश के साथ बद्ध हो जाते हैं । दूध-पानी की तरह कर्म और आत्मप्रदेशो का एकमेक होकर मिल जाना बन्ध है । बेडी आदि का बन्धन द्रव्यबन्ध है, जबकि कर्मो का बन्ध भावबन्ध है । विवक्षाविशेष से यहाँ कर्मबन्ध के दो प्रकार कहे गए हैं—ऐर्यापथिक और साम्परायिक । केवल योगो के निमित्त से होने वाले सातावेदनीयरूप बन्ध को ऐर्यापथिककर्मबन्ध कहते है । जिनसे चतुर्गतिकससार मे परिभ्रमण हो, उन्हे सम्पराय—कषाय कहते है, सम्परायो (कषायो) के निमित्त से होने वाले कर्मबन्ध को साम्परायिककर्मबन्ध कहते है । यह प्रथम से दशम गुणस्थान तक होता है ।

ऐर्यापथिककर्मबन्ध स्वामी, कर्त्ता, बन्धकाल, बन्धविकल्प तथा बन्धाश—(१) **स्वामी**—ऐर्यापथिककर्म का बन्ध नारक, तिर्यञ्च, और देवो को नही होता, यह केवल मनुष्यो को ही होता है। मनुष्यो मे भी ग्यारहवे (उपशान्तमोह), बारहवे (क्षीणमोह) और तेरहवे (सयोगीकेवली) गुणस्थानवर्ती मनुष्यो को ही होता है। ऐसे मनुष्य पुरुष और स्त्री दोनो ही होते है। जिसने पहले ऐर्यापथिककर्म का बन्ध किया हो, अर्थात्—जो ऐर्यापथिक कर्मबन्ध के द्वितीय-तृतीय आदि समयवर्ती हो, उसे **पूर्वप्रतिपन्न** कहते है। पूर्वप्रतिपन्न की अपेक्षा इसे बहुत-से मनुष्य नर और बहुत-सी मनुष्य नारियाँ बाधती है, क्योकि ऐसे पूर्वप्रतिपन्न स्त्री और पुरुष बहुत होते है। और दोनो प्रकार के केवली (स्त्रीकेवली और पुरुषकेवली) सदा पाए जाते है। इसलिए इसका भग नही होता। जो जीव ऐर्यापथिक कर्मबन्ध के प्रथम समयवर्ती होते है, वे 'प्रतिपद्यमान' कहलाते है। इनका विरह सम्भव है। इसलिए एकत्व और बहुत्व को लेकर इनके (स्त्री और पुरुष के) असयोगी ४ भग और द्विकसयोगी ४ भग, यो कुल ८ भग बनते है।

ऐर्यापथिक कर्मबन्ध के सम्बन्ध मे जो स्त्री, पुरुष, नपु सक आदि को लेकर प्रश्न किया गया है, वह लिग की अपेक्षा समझना चाहिए, वेद की अपेक्षा नही, क्योकि ऐर्यापथिक कर्मबन्ध-कर्ता जीव उपशान्तवेदी या क्षीणवेदी ही होते है। इसीलिए इस प्रश्न के उत्तर मे कहा गया है—**अपगतवेद**-वेद के उदय से रहित जीव ही इसे बाधते है। पूर्वप्रतिपन्नक अवेदी जीव सदा बहुत होते है, इसलिए उनके विषय मे बहुवचन ही दिया गया है, जबकि प्रतिपद्यमान अवेदी जीव मे विरह होने से एकत्व आदि की सम्भावना के कारण एकवचन और बहुवचन दोनो विकल्प कहे गए है।

जो जीव गतकाल मे स्त्री था, किन्तु अब वर्तमानकाल मे अवेदी हो गया है, उसे **स्त्रीपश्चात्कृत** कहते हैं, इसी तरह **'पुरुषपश्चात्कृत'** और **'नपु सकपश्चात्कृत'** का अर्थ भी समझ लेना चाहिए। इन तीनो की अपेक्षा से यहाँ वेदरहित एक जीव या अनेक जीवो के द्वारा ऐर्यापथिक-कर्मबन्धसम्बन्धी २६ भगो को प्रस्तुत करके प्रश्न किया है। इनमे असयोगी ६ भग, द्विकसयोगी १२ भग और त्रिकसयोगी ८ भग है। इस प्रश्न का उत्तर भी २६ भगो द्वारा दिया गया है।

त्रैकालिक ऐर्यापथिक कर्मबन्ध-विचार—इसके पश्चात् ऐर्यापथिक कर्मबन्ध के सम्बन्ध मे भूत, वर्तमान और भविष्य काल-सम्बन्धी **आठ भगो द्वारा प्रश्न** किया गया है, जिसका उत्तर **'भवाकर्ष'** और **'ग्रहणाकर्ष'** की अपेक्षा दिया गया है। अनेक भवो मे उपशमश्रेणी की प्राप्ति द्वारा ऐर्यापथिक कर्मपुद्गलो का आकर्ष-ग्रहण करना **'भवाकर्ष'** है और एक भव मे ऐर्यापथिक कर्मपुद्गलो का ग्रहण करना, **'ग्रहणाकर्ष'** है। भवाकर्ष की अपेक्षा यहाँ ८ भग उत्पन्न होते है—उनका आशय क्रमश इस प्रकार है—१ **प्रथम भग —बाधा था, बांधता है, बाधेगा**, यह भवाकर्षापेक्षया उस जीव मे पाया जाता है, जिसने गतकाल (किसी पूर्वभव) मे उपशमश्रेणी की थी, उस समय ऐर्यापथिक कर्म बाधा था, वर्तमान मे उपशम श्रेणी करता है, उस समय इसे बाधता है और आगामी भव मे उपशमश्रेणी करेगा, उस समय इसे बाधेगा। २ **द्वितीय भग—बांधा था, बाधता है, नहीं बाधेगा**—यह उस जीव मे पाया जाता है, जिसने पूर्वभव मे उपशमश्रेणी की थी और ऐर्यापथिक कर्म बाधा था, वर्तमान मे क्षपक श्रेणी मे इसे बाधता है और फिर इसी भव मे मोक्ष चला जाएगा, इसलिए आगामी काल मे नही बाधेगा। ३ **तृतीय भग—'बाधा था, नहीं बाधता है, बाधेगा'**—यह भग उस जीव मे पाया जाता है, जिसने पूर्वभव मे उपशमश्रेणी की थी, उसमे बाधा था, वर्तमान भव मे श्रेणी नही

करता, अत यह कर्म नही बाधता और भविष्य मे उपशम श्रेणी या क्षपक श्रेणी करेगा, तब बाधेगा। ४ **चौथा भग—'बाधा था, नहीं बांधता है, नहीं बांधेगा'**, यह उस जीव मे पाया जाता है, जो वर्तमान मे चौदहवे गुणस्थान मे विद्यमान है। उसने गतकाल (पूर्वकाल) मे बाधा था, वर्तमान मे नही बाधता और भविष्यकाल मे भी नही बाधेगा। ५ **पचम भंग—'नहीं बाधा, बांधता है, बांधेगा**—यह उस जीव मे पाया जाता है, जिसने पूर्वभव मे उपशमश्रेणी नही की थी, अत ऐर्यापथिक कर्म नही बाधा था, वर्तमान भव मे उपशमश्रेणी मे बाधता है, आगामी भव मे उपशमश्रेणी या क्षपक-श्रेणी मे बाधेगा। ६ **छठा भग—'नहीं बाधा था, बाधता है, नहीं बांधेगा'** यह भग उस जीव मे पाया जाता है, जिसने पूर्वभव मे उपशमश्रेणी नही की थी, अत नही बाधा था, वर्तमानभव मे क्षपकश्रेणी मे बाधता है, इसी भव मे मोक्ष चला जाएगा, इसलिए आगामी काल (भव) मे नही बाधेगा। ७ **सप्तम भग—'नहीं बाधा था, नहीं बाधता है, बाधेगा'**—यह भग उस जीव मे पाया जाता है, जो जीव भव्य है, किन्तु भूतकाल मे उपशमश्रेणी नही की, इसलिए नही बाधा था, वर्तमानकाल मे भी उपशमश्रेणी नही करता, इसलिए नही बाधता, किन्तु आगामीकाल मे उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणी करेगा, तब बाधेगा। ८ **अष्टमभग-'नहीं बांधा था, नहीं बांधता, नही बांधेगा**—यह भग अभव्यजीव मे पाया जाता है, जिसने पूर्वभव मे ऐर्यापथिककर्म नही बाधा था, वर्तमान मे नही बाधता और भविष्य मे भी नही बाधेगा, क्योकि अभव्य जीव ने उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणी नही की, न करता है, और न ही करेगा। एक ही भव मे ऐर्यापथिक कर्म पुद्गलो के ग्रहणरूप 'ग्रहणाकर्ष' की दृष्टि से—१ **प्रथमभंग**—उस जीव मे पाया जाता है, जिसने इसी भव मे भूतकाल मे उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणी के समय ऐर्यापथिककर्म बाधा था, वर्तमान मे बाधता है, भविष्य मे बाधेगा। २ **द्वितीयभग**—तेरहवे गुणस्थान मे एक समय शेष रहता है, उस समय पाया जाता है, क्योकि उसने भूतकाल मे बाधा था, वर्तमानकाल मे बाधता है, और आगामीकाल मे शैलेशी अवस्था मे नही बाधेगा। ३ **तृतीयभग**—का स्वामी वह जीव है, जो उपशमश्रेणी करके उससे गिर गया है। उसने उपशमश्रेणी के समय ऐर्यापथिक कर्म बाधा था, अब वर्तमान मे नही बाधता और उसी भव मे फिर उपशमश्रेणी करने पर बाधेगा, क्योकि एक भव मे एक जीव दो बार उपशमश्रेणी कर सकता है। ४ **चौथाभग**—चौदहवे गुणस्थान के प्रथम समय मे पाया जाता है। सयोगीअवस्था मे उसने ऐर्यापथिक कर्म बाधा था, किन्तु एक समय पश्चात् ही चौदहवे गुणस्थान की प्राप्ति हो जाने पर शैलेशी अवस्था मे नही बाधता, तथा आगामीकाल मे नही बाधेगा। ५ **पाचवाभग**—उस जीव मे पाया जाता है, जिसने आयुष्य के पूर्वभाग मे उपशमश्रेणी आदि नही की, इसलिए नही बाधा, वर्तमान मे श्रेणी प्राप्त की है, इसलिए बाधता है और भविष्य मे भी बाधेगा। ६ **छठाभग**—शून्य है। यह किसी भी जीव मे नही पाया जाता, क्योकि छठाभग है—नही बाधा, बाधता है, नही बाधेगा। प्रथम की दो बाते तो किसी जीव मे सम्भव है, लेकिन 'नही बाधेगा' यह बात एक ही भव मे नही पाई जा सकती। ७ **सप्तमभग**—भव्यविशेष की अपेक्षा से है। ८ **अष्टमभग**—अभव्य की अपेक्षा से है।

ऐर्यापथिक कर्म-बन्ध-विकल्प चतुष्टय—यहाँ सादि-सान्त, सादि-अनन्त, अनादि-सान्त और अनादि-अनन्त इन चार विकल्पो को लेकर ऐर्यापथिक कर्म-बधकर्ता के सम्बन्ध मे प्रश्न किया गया है, जिसके उत्तर मे कहा गया है—प्रथम विकल्प—सादि-सान्त मे ही ऐर्यापथिक कर्मबन्ध होता है, शेष तीन विकल्पो मे नही।

जीव के साथ ऐर्यापथिक कर्मबन्धाश सम्बन्धी चार विकल्प—इसके पश्चात् चार-विकल्पो द्वारा ऐर्यापथिक कर्मबन्धाश सम्बन्धी प्रश्न उठाया गया है। उसका आशय यह है—(१) देश से देश-बन्ध—जीव-आत्मा के एक देश से, कर्म के एक देश का बन्ध, (२) देश से सर्वबन्ध—जीव के एक देश से सम्पूर्ण कर्म का बन्ध, (३) सर्व से देशबन्ध—सम्पूर्ण जीव प्रदेशो से कर्म के एक देश का बन्ध, और (४) सर्व से सर्वबन्ध —सम्पूर्ण-जीव प्रदेशो से सम्पूर्ण कर्म का बन्ध—इनमे से चौथे विकल्प मे ऐर्यापथिककर्म का बन्ध होता है, क्योकि जीव का ऐसा ही स्वभाव है, शेष तीन विकल्पो से जीव के साथ कर्म का बन्ध नही होता।

साम्परायिक कर्मबन्ध स्वामी, कर्ता, बन्धकाल, बन्धविकल्प तथा बन्धाश-बन्धस्वामी—कषाय निमित्तक कर्मबन्धरूप साम्परायिक कर्मबन्ध के स्वामी के विषय मे प्रथम प्रश्न मे सात विकल्प उठाए गए है, उनमे से (१) नैरयिक, (२) तिर्यंच, (३) तिर्यंची, (४) देव और (५) देवी, ये पाच तो सकषायी होने से सदा साम्परायिकबन्धक होते है, (६) मनुष्य-नर और (७) मनुष्य-नारी ये दो सकषायी अवस्था मे साम्परायिक-कर्मबन्धक होते है, अकषायी हो जाने पर साम्परायिकबन्धक नही होते।

बन्धकर्ता—द्वितीय प्रश्न मे साम्परायिक कर्मबन्धकर्ता के विषय मे एकत्वविवक्षित और बहुत्वविवक्षित स्त्री, पुरुष, नपुसक आदि को लेकर सात विकल्प उठाए गए है, जिसके उत्तर मे कहा गया है—एकत्वविवक्षित और बहुत्वविवक्षित स्त्री, पुरुष और नपुसक, ये ६ सदैव साम्परायिक कर्मबन्धकर्ता होते हैं, क्योकि ये सब सवेदी हैं। अवेदी कादाचित्क (कभी-कभी) पाया जाता है, इसलिए वह कदाचित् साम्परायिक कर्म बाधता है। तात्पर्य यह है—स्त्री आदि पूर्वोक्त छह साम्परायिक कर्म बाधते है, अथवा स्त्री आदि ६ और वेदरहित एक जीव (क्योकि वेदरहित एक जीव भी पाया जाता है, इसलिए) साम्परायिक कर्म बाधते है, अथवा पूर्वोक्त स्त्री आदि छह और वेदरहित बहुत जीव (क्योकि वेदरहित जीव बहुत भी पाए जा सकते है, इसलिए) साम्परायिक कर्म बाधते है। तीनो वेदो का उपशम या क्षय हो जाने पर भी जीव जब तक यथाख्यातचारित्र को प्राप्त नही करता, तब तक वह वेदरहित जीव साम्परायिकबन्धक होता है। यहाँ पूर्वप्रतिपन्न और प्रति-पद्यमान की विवक्षा इसलिए नही की गई है कि दोनो मे एकत्व और बहुत्व पाया जाता है, तथा वेदरहित हो जाने पर साम्परायिक बन्ध भी अल्पकालिक हो जाता है। साम्परायिक कर्मबन्धक के भी ऐर्यापथिक कर्मबन्धक की तरह २६ भग होते है। वे पूर्ववत् समझ लेने चाहिए।

साम्परायिक कर्मबन्ध-सम्बन्धी त्रैकालिक विचार—काल की अपेक्षा ऐर्यापथिक कर्मबन्ध सम्बन्धी ८ भग प्रस्तुत किये गए थे, लेकिन साम्परायिक कर्मबन्ध अनादि काल से है। इसलिए भूत-काल सम्बन्धी जो 'ण बन्धी—नही बाधा' इस प्रकार के ४ भग हैं, वे इसमे नही बन सकते। जो ४ भग बन सकते है, उनका आशय इस प्रकार है—१—**'प्रथम भग—बाधा था, बाधता है, बाधेगा'**—यह भग यथाख्यातचारित्र-प्राप्ति से दो समय पहले तक सर्वससारी जीवो मे पाया जाता है, क्योकि भूतकाल मे उन्होने साम्परायिक कर्म बाधा था, वर्तमान मे बाधते है और भविष्य मे भी यथाख्यात-चारित्र-प्राप्ति के पहले तक बाधेंगे। यह प्रथम भग अभव्यजीव की अपेक्षा भी घटित हो सकता है। २—**द्वितीय भग—बांधा था, बाधता है, नहीं बांधेगा**—यह भग भव्य जीव की अपेक्षा से है। मोहनीय-कर्म के क्षय से पहले उसने साम्परायिक कर्म बाधा था, वर्तमान मे बाधता है, और आगामीकाल मे मोहक्षय की अपेक्षा नही बाधेगा। ३—**तृतीय भग—बांधा था, नहीं बांधता, बाधेगा**—यह भग उपशम-

श्रेणी प्राप्त जीव की अपेक्षा है। उपशमश्रेणी करने के पूर्व उसने साम्परायिक कर्म बाधा था, वर्तमान मे उपशान्तमोह होने से नही बाधता और उपशम श्रेणी से गिर जाने पर आगामीकाल मे पुन बाधेगा। ४—चतुर्थ भग—'बांधा था, नहीं बांधता, नहीं बाधेगा'—यह भग क्षपकश्रेणी-प्राप्त क्षीण-मोह जीव की अपेक्षा से है। मोहनीयकर्मक्षय के पूर्व उसने साम्परायिक कर्म बाधा था, वर्तमान मे मोहनीयकर्म का क्षय हो जाने से नही बाधता और तत्पश्चात् मोक्ष प्राप्त हो जाने से आगामी काल मे नही बाधेगा।[1]

साम्परायिक कर्मबन्धक के विषय मे सादि-सान्त आदि ४ विकल्प—पूर्ववत् सादि-सपर्यवसित (सान्त) आदि ४ विकल्पो को लेकर साम्परायिक कर्मबन्ध के विषय मे प्रश्न उठाया गया है। इन चार भगो मे से सादि-अपर्यवसित-(अनन्त) को छोड कर शेष प्रथम, तृतीय और चतुर्थ भगो से जीव साम्परायिक कर्म बाधता है। जो जीव उपशम श्रेणी से गिर गया है और आगामी काल मे पुन उपशम श्रेणी या क्षपकश्रेणी को अगीकार करेगा, उसकी अपेक्षा **प्रथम भग** घटित होता है। जो जीव प्रारम्भ मे ही क्षपकश्रेणी करने वाला है, उसकी अपेक्षा **अनादि-सपर्यवसित** नामक **तृतीय भग** घटित होता है, तथा अभव्य जीव की अपेक्षा **अनादि-अपर्यवसित** नामक **चतुर्थ भग** घटित होता है। **सादि-अपर्यवसित** नामक दूसरा भग किसी भी जीव मे घटित नही होता। यद्यपि उपशमश्रेणी से भ्रष्ट जीव सादिसाम्परायिकबन्धक होता है, किन्तु वह कालान्तर मे अवश्य मोक्षगामी होता है, उस समय उसमे साम्परायिक कर्म का व्यवच्छेद हो जाता है, इसलिए अन्तरहितता उसमे घटित नही होती।[2]

बावीस परीषहो का अष्टविध कर्मो मे समवतार तथा सप्तविधबन्धकादि के परीषहो की प्ररूपणा—

२३ कइ ण भते ! कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा— णाणावरणिज्ज जाव अतराइय।

[२३ प्र] भगवन् ! कर्मप्रकृतिया कितनी कही गई हैं ?

[२३ उ] गौतम ! कर्मप्रकृतिया आठ कही गई है। यथा—ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय।

२४ कइ ण भते ? परीसहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! बावीस परीसहा पण्णत्ता, त जहा—दिगिछापरीसहे १, पिवासापरीसहे २, जाव दसणपरीसहे २२।

[२४ प्र] भगवन् ! परीषह कितने कहे गए है ?

[२४ उ] गौतम ! परीषह बावीस कहे गए है। वे इस प्रकार—१ क्षुधा-परीषह, २ पिपासा-परीषह यावत् २२—दर्शन-परीषह।

२५ एए ण भते ! बावीस परीसहा कतिसु कम्मपगडीसु समोयरति ?

गोयमा ! चउसु कम्मपयडीसु समोयरति, त जहा—नाणावरणिज्जे, वेयणिज्जे, मोहणिज्जे, अतराइए।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३८५ मे ३८७ तक

२ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३८८

[२५ प्र] भगवन् ! इन बावीस परीषहों का किन कर्मप्रकृतियों मे समवतार (समावेश) हो जाता है ?

[२५ उ] गौतम ! चार कर्मप्रकृतियों मे इन २२ परीषहों का समवतार होता है। वे इस प्रकार हैं—ज्ञानावरणीय, वेदनीय, मोहनीय और अन्तराय।

२६. नाणावरणिज्जे णं भंते ! कम्मे कति परीसहा समोयरंति ?

गोयमा ! दो परीसहा समोयरंति, त जहा—पण्णापरीसहे नाणपरीसहे (अन्नाण परीसहे) य।

[२६ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म मे कितने परीषहों का समवतार होता है ?

[२६ उ] गौतम ! ज्ञानावरणीय कर्म मे दो परीषहों का समवतार होता है। यथा—प्रज्ञा-परीषह और ज्ञानपरीषह (अज्ञानपरीषह)।

२७ वेयणिज्जे ण भंते ! कम्मे कति परीसहा समोयरंति ?

गोयमा ! एक्कारस परीसहा समोयरंति, त जहा—

पंचेव आणुपुव्वी, चरिया, सेज्जा, वहे य, रोगे य।
तणफास जल्लमेव य एक्कारस वेदणिज्जम्मि ॥१॥

[२७ प्र] भगवन् ! वेदनीय कर्म मे कितने परीषहों का समवतार होता है ?

[२७ उ] गौतम ! वेदनीय कर्म मे ग्यारह परीषहों का समवतार होता है। वे इस प्रकार है—अनुक्रम से पहले के पाच परीषह (क्षुधापरीषह, पिपासापरीषह, शीतपरीषह, उष्णपरीषह और दश-मशकपरीषह), चर्यापरीषह, शय्यापरीषह, वधपरीषह, रोगपरीषह, तृणस्पर्शपरीषह और जल्ल (मल) परीषह। इन ग्यारह परीषहों का समवतार वेदनीय कर्म मे होता है।

२८ [१] दसणमोहणिज्जे ण भंते ! कम्मे कति परीसहा समोयरंति ?

गोयमा ! एगे दंसणपरीसहे समोयरइ।

[२८-१ प्र] भगवन् ! दर्शन-मोहनीय कर्म मे कितने परीषहों का समवतार होता है ?

[२८-१ उ] गौतम ! दर्शनमोहनीय कर्म मे एक दर्शनपरीषह का समवतार होता है।

[२] चरित्तमोहणिज्जे ण भंते ! कम्मे कति परीसहा समोयरंति ?

गोयमा ! सत्त परीसहा समोयरंति, त जहा—

अरती अचेल इत्थी निसीहिया जायणा य अक्कोसे।
सक्कारपुरक्कारे चरित्तमोहम्मि सत्तेते ॥२॥

[२८-२ प्र] भगवन् ! चारित्रमोहनीय कर्म मे कितने परीषहों का समवतार होता है ?

[२८-२ उ] गौतम ! चारित्रमोहनीय कर्म मे सात परीषहों का समवतार होता है। वह इस प्रकार—अरतिपरीषह, अचेलपरीषह, स्त्रीपरीषह, निषद्यापरीषह, याचनापरीषह, आक्रोश-परीषह और सत्कार-पुरस्कारपरीषह। इन सात परीषहों का समवतार चारित्रमोहनीय कर्म मे होता है।

२९. अंतराइए णं भंते ! कम्मे कति परीसहा समोयरंति ?

गोयमा ! एगे अलाभपरीसहे समोयरइ ।

[२९ प्र] भगवन् ! अन्तरायकर्म मे कितने परीषहो का समवतार होता है ?

[२९ उ] गौतम ! अन्तरायकर्म मे एक अलाभपरीषह का समवतार होता है ।

३० सत्तविहबंधगस्स णं भंते ! कति परीसहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! बावीसं परीसहा पण्णत्ता, वीसं पुण वेदेइ—जं समयं सीयपरीसहं वेदेति णो तं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ, जं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ णो तं समयं सीयपरीसहं वेदेइ । जं समयं चरियापरीसहं वेदेति णो तं समयं निसीहियापरीसहं वेदेति, जं समयं निसीहियापरीसहं वेदेइ णो तं समयं चरियापरीसहं वेदेइ ।

[३० प्र] भगवन् ! सप्तविधबन्धक (सात प्रकार के कर्मो को बाधने वाले) जीव के कितने परीषह बताए गए है ?

[३० उ] गौतम ! उसके बावीस परीषह कहे गए है। परन्तु वह जीव एक साथ बीस परीषहो का वेदन करता है, क्योकि जिस समय वह शीतपरीषह वेदता है, उस समय उष्णपरीषह का वेदन नही करता, और जिस समय उष्णपरीषह का वेदन करता है, उस समय शीतपरीषह का वेदन नही करता । तथा जिस समय चर्यापरीषह का वेदन करता है, उस समय निषद्यापरीषह का वेदन नही करता और जिस समय निषद्यापरीषह का वेदन करता है, उस समय चर्यापरीषह का वेदन नही करता ।

३१ अट्ठविहबंधगस्स णं भंते ! कति परीसहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! बावीसं परीसहा पण्णत्ता० एवं (सु ३०) अट्ठविहबंधगस्स ।

[३१ प्र] भगवन् ! आठ प्रकार कर्म बांधने वाले जीव के कितने परीषह कहे गए है ?

[३१ उ] गौतम ! उसके बावीस परीषह कहे गए है। यथा—क्षुधापरीषह, पिपासापरीषह, शीतपरीषह, दशमशक-परीषह यावत् अलाभपरीषह । किन्तु वह एक साथ बीस परीषहो को वेदता है। जिस प्रकार सप्तविधबन्धक के विषय मे कहा गया है, उसी प्रकार (सू. ३० के अनुसार) अष्टविधबन्धक के विषय मे भी कहना चाहिए ।

३२. छव्विहबंधगस्स णं भंते ! सरागछउमत्थस्स कति परीसहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चोद्दस परीसहा पण्णत्ता, बारस पुण वेदेइ—जं समयं सीयपरीसहं वेदेइ णो तं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ, जं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ नो तं समयं सीयपरीसहं वेदेइ । जं समयं चरियापरीसहं वेदेति णो तं समयं सेज्जापरीसहं वेदेइ, जं समयं सेज्जापरीसहं वेदेति णो तं समयं चरियापरीसहं वेदेइ ।

[३२ प्र] भगवन् ! छह प्रकार के कर्म बाधने वाले सराग छद्मस्थ जीव के कितने परीषह कहे गए है ?

[३२ उ] गौतम ! उसके चौदह परीषह कहे गए है, किन्तु वह एक साथ बारह परीषह वेदता है। जिस समय शीतपरीषह वेदता है, उस समय उष्णपरीषह का वेदन नही करता, और जिस समय उष्णपरीषह का वेदन करता है, उस समय शीतपरीषह का वेदन नही करता। जिस समय चर्यापरीषह का वेदन करता है, उस समय शय्यापरीषह का वेदन नही करता, और जिस समय शय्यापरीषह का वेदन करता है, उस समय चर्यापरीषह का वेदन नही करता।

३३ [१] एक्कविहबधगस्स ण भते ! वीयरागछउमत्थस्स कति परीसहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! एव चेव जहेव छव्विहबधगस्स।

[३३-१ प्र] भगवन् ! एकविधबन्धक वीतराग-छद्मस्थ जीव के कितने परीषह कहे गए है ?

[३३-१ उ] गौतम ! षड्विधबन्धक के समान इसके भी चौदह परीषह कहे गए है, किन्तु वह एक साथ बारह परीषहो का वेदन करता है। जिस प्रकार षड्विधबन्धक के विषय मे कहा है, उसी प्रकार एकविधबन्धक के विषय मे समझना चाहिए।

[२] एगविहबधगस्स ण भते ! सजोगिभवत्थकेवलिस्स कति परीसहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! एक्कारस परीसहा पण्णत्ता, नव पुण वेदेइ। सेस जहा छव्विहबधगस्स।

[३३-२ प्र] भगवन् ! एकविधबन्धक सयोगी-भवस्थ केवली के कितने परीषह कहे गए है ?

[३३-२ उ] गौतम ! इसके ग्यारह परीषह कहे गए है, किन्तु वह एक साथ नौ परीषहो का वेदन करता है। शेष समग्र कथन षड्विधबन्धक के समान समझ लेना चाहिए।

३४. अबधगस्स ण भते ! अजोगिभवत्थकेवलिस्स कति परीसहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! एक्कारस परीसहा पण्णत्ता, नव पुण वेदेइ, ज समय सीयपरीसह वेदेति नो त समय उसिणपरीसह वेदेइ, ज समय उसिणपरीसह वेदेति नो त समय सीयपरीसह वेदेइ। ज समय चरिया-परीसह वेदेइ नो त समय सेज्जापरीसह वेदेति, ज समय सेज्जापरीसह वेदेइ नो त समय चरियापरीसह वेदेइ।

[३४-प्र] भगवन् ! अबन्धक अयोगी-भवस्थ-केवली के कितने परीषह कहे गए है ?

[३४ उ] गौतम ! उसके ग्यारह परीषह कहे गए हैं। किन्तु वह एक साथ नौ परीषहो का वेदन करता है। क्योकि जिस समय शीतपरीषह का वेदन करता है, उस समय उष्णपरीषह का वेदन नही करता, और जिस समय उष्णपरीषह का वेदन करता है, उस समय शीतपरीषह का वेदन नही करता। जिस समय चर्या-परीषह का वेदन करता है, उस समय शय्या-परीषह का वेदन नही करता और जिस समय शय्या-परीषह का वेदन करता है, उस समय चर्या-परीषह का वेदन नही करता।

विवेचन—बावीस परीषहों की अष्टकर्मों मे समावेश की तथा सप्तविधबन्धक आदि के परीषहो की प्ररूपणा—प्रस्तुत १२ सूत्रो (सू २३ से ३४ तक) मे बावीस परीषहो के सम्बन्ध मे दो तथ्यो का निरूपण किया गया है—(१) किस कर्म मे कितने परीषहो का समावेश होता है ? अर्थात् किस-किस

कर्म के उदय से कौन-कौन से परीषह उत्पन्न होते है ? तथा (२) सप्तविधबन्धक, षड्विधबन्धक, अष्टविधबन्धक, एकविधबन्धक और अबन्धक आदि मे कितने-कितने परीषहो की सम्भावना है ।

परीषह स्वरूप और प्रकार—आपत्ति आने पर भी सयममार्ग से भ्रष्ट न होने, तथा उसमे स्थिर रहने के लिए एव कर्मों की निर्जरा के लिए जो शारीरिक, मानसिक कष्ट साधु, साध्वियो को सहन करने चाहिए, वे **'परीषह'** कहलाते है। ऐसे परीषह २२ है । यथा—(१) **क्षुधापरीषह**—भूख का कष्ट सहना, सयममर्यादानुसार एषणीय, कल्पनीय निर्दोष आहार न मिलने पर जो क्षुधा का कष्ट सहना होता है, उसे क्षुधापरीषह कहते है। (२) **पिपासापरीषह**—प्यास का परीषह, (३) **शीतपरीषह**—ठड का परीषह, (४) **उष्णपरीषह**—गर्मी का परीषह (५) **दश-मशक-परीषह**—डास, मच्छर, खटमल, जू, चीटी आदि का परीषह, (६) **अचेलपरीषह**—वस्त्राभाव, वस्त्र की अल्पता या जीर्णशीर्ण, मलिन आदि अपर्याप्त वस्त्रो के सद्भाव मे होने वाला परीषह, (७) **अरतिपरीषह**—सयममार्ग मे कठिनाइयाँ, असुविधाएँ, एव कष्ट आने पर अरति-अरुचि या उदासी या उद्विग्नता से होने वाला कष्ट, (८) **स्त्रीपरीषह**—स्त्रियो से होने वाला कष्ट, साध्वियो के लिए पुरुषो से होने वाला कष्ट, (यह अनुकूल परीषह है।) (९) **चर्यापरीषह**—ग्राम, नगर आदि के विहार से या पैदल चलने से होने वाला कष्ट, (१०) **निषद्या या निशीथिका परीषह**—स्वाध्याय आदि करने की भूमि मे तथा सूने घर आदि मे ठहरने से होने वाले उपद्रव का कष्ट, (११) **शय्या-परीषह**—रहने के (आवास-) स्थान की प्रतिकूलता से होने वाला कष्ट, (१२) **आक्रोशपरीषह**—कठोर, धमकीभरे वचन, या डाट-फटकार से होने वाला, (१३) **वधपरीषह**—मारने-पीटने आदि से होने वाला कष्ट, (१४) **याचनापरीषह**—भिक्षा माँग कर लाने मे होने वाला मानसिक कष्ट, (१५) **अलाभ-परीषह**—भिक्षा आदि न मिलने पर होने वाला कष्ट, (१६) **रोगपरीषह**—रोग के कारण होने वाला कष्ट, (१७) **तृणस्पर्शपरीषह**—घास के बिछौने पर सोने से शरीर मे चुभने से या मार्ग मे चलते समय तृणादि पैर मे चुभने से होने वाला कष्ट, (१८) **जल्लपरीषह**—कपडो या तन पर मैल, पसीना आदि जम जाने से होने वाली ग्लानि, (१९) **सत्कार-पुरस्कारपरीषह**—जनता द्वारा सम्मान-सत्कार, प्रतिष्ठा, यश, प्रसिद्धि आदि न मिलने से होने वाला मानसिक खेद अथवा सत्कार-सम्मान मिलने पर गर्व अनुभव करना, (२०) **प्रज्ञापरीषह**—प्रखर अथवा विशिष्टबुद्धि का गर्व करना, (२१) **ज्ञान या अज्ञान परीषह**—विशिष्ट ज्ञान होने पर उसका अहकार करना, ज्ञान (बुद्धि) की मन्दता होने से मन मे दैन्यभाव आना, और (२२) **अदर्शन या दर्शन परीषह**—दूसरे मत वालो की ऋद्धि-वृद्धि एव चमत्कार-आडम्बर आदि देख कर सर्वज्ञोक्त सिद्धान्त से विचलित होना या सर्वज्ञोक्त तत्त्वो के प्रति शकाग्रस्त होना। **चार कर्मो मे बावीस परीषहो का समावेश**—कर्म प्रकृतिया मूलत आठ है। उनमे से ४ कर्मो—ज्ञानावरणीय, वेदनीय, मोहनीय और अन्तराय मे २२ परीषहो का समावेश होता है। इसका तात्पर्य यह है कि इन चार कर्मों के उदय से पूर्वोक्त २२ परीषह उत्पन्न होते है। प्रज्ञापरीषह और ज्ञान या अज्ञान परीषह ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से होते हैं। वेदनीय कर्म के उदय से क्षुधा आदि ११ परीषह होते है। इन परीषहो के कारण पीडा उत्पन्न होना—वेदनीय कर्म का उदय है। मोहनीय कर्म के उदय से ८ परीषह होते हैं। दर्शनमोहनीय कर्म के उदय से अदर्शन या दर्शन परीषह और चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से अरति, अचेल आदि ७ परीषह होते हैं और अन्तरायकर्म के उदय से अलाभ परीषह होता है।

सप्तविध आदि बन्धक के साथ परीषहो का साहचर्य—आयुकर्म को छोडकर शेष ७ अथवा आयुबधकाल मे ८ कर्मों को बाधने वाले जीव के सभी २२ परीषह हो सकते हैं, किन्तु ये वेदते है—

अधिक-से-अधिक एक साथ बीस परीषह, क्योकि शीत और उष्ण, चर्या और निषद्या अथवा चर्या और शय्या ये दोनो परस्पर विरुद्ध होने से एक का ही एक समय मे अनुभव होना है। षड्विधबन्धक सराग छद्मस्थ के १४ परीषह बताए गए है। वे मोहनीय कर्मजन्य ८ परीषहो के सिवाय समझने चाहिए। किन्तु उनमे वेदन हो सकता है १२ परीषहो का ही। पूर्वोक्त रीति से चर्या और शय्या, या चर्या और निषद्या अथवा शीत और उष्ण दोनो का एक साथ वेदन नही होता। एक वेदनीय कर्म के बन्धक छद्मस्थ वीतराग (ग्यारहवे-बारहवे गुणस्थानवर्ती) जीव के भी १४ परीषह मोहनीयकर्म के ८ परीषहो को छोड कर) होते है, किन्तु वे वेदते हैं अधिक-से-अधिक १२ परीषह ही। तेरहवे गुणस्थानवर्ती सयोगी भवस्थ केवली एकविध बन्धक के और चौदहवे गुणस्थानवर्ती अबन्धक अयोगी भवस्थ केवली के एकमात्र वेदनीय कर्म के उदय से होने वाले ११ परीषह (जो कि पहले बताए गए है) होते हैं, किन्तु उनमे से एक साथ ९ का ही वेदन पूर्वोक्त रीत्या सभव हे।[१]

उदय, अस्त और मध्याह्न के समय मे सूर्यो की दूरी और निकटता के प्रतिभास आदि की प्ररूपणा—

३५ जबुद्दीवे ण भंते! दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसति, मज्झतिय-मुहुत्तसि मूले य दूरे य दीसति, अत्थमणमुहुत्तसि दूरे य मूले य दीसति ?

हता, गोयमा! जबुद्दीवे ण दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तसि दूरे य त चेव जाव अत्थमणमुहुत्तसि दूरे य मूले य दीसति।

[३५ प्र] भगवन्! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे क्या दो सूर्य, उदय के मुहूर्त्त (समय) मे दूर होते हुए भी निकट (मूल मे) दिखाई देते है, मध्याह्न के मुहूर्त्त (समय) मे निकट (मूल) मे होते हुए दूर दिखाई देते है और अस्त होने के मुहूर्त्त (समय) मे दूर होते हुए भी निकट (मूल मे) दिखाई भी देते है ?

[३५ उ] हाँ, गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे दो सूर्य, उदय के समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं, इत्यादि यावत् अस्त होने के समय मे दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं।

३६. जंबुद्दीवे ण भते! दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तसि य मज्झतियमुहुत्तसि य, अत्थमण-मुहुत्तसि य सव्वत्थ समा उच्चत्तेण ?

हता, गोयमा! जबुद्दीवे णं दीवे सूरिया उग्गमण जाव उच्चत्तेण।

[३६ प्र] भगवन्! जम्बूद्वीप मे दो सूर्य, उदय के समय मे, मध्याह्न के समय मे और अस्त होने के समय मे क्या सभी स्थानो पर (सर्वत्र) ऊँचाई मे सम हैं ?

[३६ उ] हाँ, गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे रहे हुए दो सूर्य यावत् सर्वत्र ऊँचाई मे सम है।

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३८९ से ३९२ तक
(ख) तत्त्वार्थसूत्र अ ९

कर्म के उदय से कौन-कौन से परीषह उत्पन्न होते है ? तथा (२) सप्तविधवन्धक, षड्विधवन्धक, अष्टविधबन्धक, एकविधबन्धक और अबन्धक आदि मे कितने-कितने परीषहो की सम्भावना है ।

परीषह स्वरूप और प्रकार—आपत्ति आने पर भी सयममार्ग से भ्रष्ट न होने, तथा उसमे स्थिर रहने के लिए एव कर्मो की निर्जरा के लिए जो शारीरिक, मानसिक कष्ट साधु, साध्वियो को सहन करने चाहिए, वे **'परीषह'** कहलाते है । ऐसे परीषह २२ है । यथा—(१) **क्षुधापरीषह**—भूख का कष्ट सहना सयममर्यादानुसार एषणीय, कल्पनीय निर्दोष आहार न मिलने पर जो क्षुधा का कष्ट सहना होता है, उसे क्षुधापरीषह कहते है । (२) **पिपासापरीषह**—प्यास का परीषह, (३) **शीतपरीषह**—ठड का परीषह, (४) **उष्णपरीषह**—गर्मी का परीषह (५) **दश-मशक-परीषह**—डास, मच्छर, खटमल, जू, चीटी आदि का परीषह, (६) **अचेलपरीषह**—वस्त्राभाव, वस्त्र की अल्पता या जीर्णशीर्ण, मलिन आदि अपर्याप्त वस्त्रो के सद्भाव मे होने वाला परीषह, (७) **अरतिपरीषह**—सयममार्ग मे कठिनाइयाँ, असुविधाएँ, एव कष्ट आने पर अरति-अरुचि या उदासी या उद्विग्नता से होने वाला कष्ट, (८) **स्त्रीपरीषह**—स्त्रियो से होने वाला कष्ट, साध्वियो के लिए पुरुषो से होने वाला कष्ट, (यह अनुकूल परीषह है ।) (९) **चर्यापरीषह**—ग्राम, नगर आदि के विहार से या पैदल चलने से होने वाला कष्ट, (१०) **निषद्या या निशीथिका परीषह**—स्वाध्याय आदि करने की भूमि मे तथा सूने घर आदि मे ठहरने से होने वाले उपद्रव का कष्ट, (११) **शय्या-परीषह**—रहने के (आवास-) स्थान की प्रतिकूलता से होने वाला कष्ट, (१२) **आक्रोशपरीषह**—कठोर, धमकीभरे वचन, या डाट-फटकार से होने वाला, (१३) **वधपरीषह**—मारने-पीटने आदि से होने वाला कष्ट, (१४) **याचनापरीषह**—भिक्षा माँग कर लाने मे होने वाला मानसिक कष्ट, (१५) **अलाभ-परीषह**—भिक्षा आदि न मिलने पर होने वाला कष्ट, (१६) **रोगपरीषह**—रोग के कारण होने वाला कष्ट, (१७) **तृणस्पर्शपरीषह**—घास के बिछौने पर सोने से शरीर मे चुभने से या मार्ग मे चलते समय तृणादि पैर मे चुभने से होने वाला कष्ट, (१८) **जल्लपरीषह**—कपडो या तन पर मैल, पसीना आदि जम जाने से होने वाली ग्लानि, (१९) **सत्कार-पुरस्कारपरीषह**—जनता द्वारा सम्मान-सत्कार, प्रतिष्ठा, यश, प्रसिद्धि आदि न मिलने से होने वाला मानसिक खेद अथवा सत्कार-सम्मान मिलने पर गर्व अनुभव करना, (२०) **प्रज्ञापरीषह**—प्रखर अथवा विशिष्टबुद्धि का गर्व करना, (२१) **ज्ञान या अज्ञान परीषह**—विशिष्ट ज्ञान होने पर उसका अहकार करना, ज्ञान (बुद्धि) की मन्दता होने से मन मे दैन्यभाव आना, और (२२) **अदर्शन या दर्शन परीषह**—दूसरे मत वालो की ऋद्धि-वृद्धि एव चमत्कार-आडम्बर आदि देख कर सर्वज्ञोक्त सिद्धान्त से विचलित होना या सर्वज्ञोक्त तत्त्वो के प्रति शकाग्रस्त होना । **चार कर्मों मे बावीस परीषहो का समावेश**—कर्म प्रकृतिया मूलत आठ है । उनमे से ४ कर्मो—ज्ञानावरणीय, वेदनीय, मोहनीय और अन्तराय मे २२ परीषहो का समावेश होता है । इसका तात्पर्य यह है कि इन चार कर्मो के उदय से पूर्वोक्त २२ परीषह उत्पन्न होते हैं । प्रज्ञापरीषह और ज्ञान या अज्ञान परीषह ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से होते हैं । वेदनीय कर्म के उदय से क्षुधा आदि ११ परीषह होते है । इन परीषहो के कारण पीडा उत्पन्न होना—वेदनीय कर्म का उदय है । मोहनीय कर्म के उदय से ८ परीषह होते है । दर्शनमोहनीय कर्म के उदय से अदर्शन या दर्शन परीषह और चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से अरति, अचेल आदि ७ परीषह होते हैं और अन्तरायकर्म के उदय से अलाभ परीषह होता है ।

सप्तविध आदि बन्धक के साथ परीषहो का साहचर्य—आयुकर्म को छोडकर शेष ७ अथवा आयुलघकाल मे ८ कर्मों को बाधने वाले जीव के सभी २२ परीषह हो सकते है, किन्तु ये वेदते है—

अधिक-से-अधिक एक साथ बीस परीषह, क्योकि शीत और उष्ण, चर्या और निषद्या अथवा चर्या और शय्या ये दोनो परस्पर विरुद्ध होने से एक का ही एक समय मे अनुभव होता है। षड्विधबन्धक सराग छद्मस्थ के १४ परीषह बताए गए है। वे मोहनीय कर्मजन्य ८ परीषहो के सिवाय समझने चाहिए। किन्तु उनमे वेदन हो सकता है १२ परीषहो का ही। पूर्वोक्त रीति से चर्या और शय्या, या चर्या और निषद्या अथवा शीत और उष्ण दोनो का एक साथ वेदन नही होता। एक वेदनीय कर्म के बन्धक छद्मस्थ वीतराग (ग्यारहवे-बारहवे गुणस्थानवर्ती) जीव के भी १४ परीषह मोहनीयकर्म के ८ परीषहो को छोड कर) होते है, किन्तु वे वेदते है अधिक-से-अधिक १२ परीषह ही। तेरहवे गुणस्थानवर्ती सयोगी भवस्थ केवली एकविध बन्धक के और चौदहवे गुणस्थानवर्ती अबन्धक अयोगी भवस्थ केवली के एकमात्र वेदनीय कर्म के उदय से होने वाले ११ परीषह (जो कि पहले बताए गए है) होते हैं, किन्तु उनमे से एक साथ ९ का ही वेदन पूर्वोक्त रीत्या सभव है।[1]

उदय, अस्त और मध्याह्न के समय मे सूर्यो की दूरी और निकटता के प्रतिभास आदि की प्ररूपणा—

३५ जबुद्दीवे ण भते ! दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तसि दूरे य मूले य दीसति, मज्झतियमुहुत्तसि मूले य दूरे य दीसति, अत्थमणमुहुत्तसि दूरे य मूले य दीसति ?

हता, गोयमा ! जबुद्दीवे ण दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तसि दूरे य त चेव जाव अत्थमणमुहुत्तसि दूरे य मूले य दीसति।

[३५ प्र] भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे क्या दो सूर्य, उदय के मुहूर्त्त (समय) मे दूर होते हुए भी निकट (मूल मे) दिखाई देते है, मध्याह्न के मुहूर्त्त (समय) मे निकट (मूल) मे होते हुए दूर दिखाई देते है और अस्त होने के मुहूर्त्त (समय) मे दूर होते हुए भी निकट (मूल मे) दिखाई भी देते है ?

[३५ उ] हाँ, गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे दो सूर्य, उदय के समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं, इत्यादि यावत् अस्त होने के समय मे दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं।

३६. जबुद्दीवे ण भते ! दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तसि य मज्झतियमुहुत्तसि य, अत्थमणमुहुत्तसि य सव्वत्थ समा उच्चत्तेण ?

हता, गोयमा ! जबुद्दीवे ण दीवे सूरिया उग्गमण जाव उच्चत्तेण।

[३६ प्र] भगवन् ! जम्बूद्वीप मे दो सूर्य, उदय के समय मे, मध्याह्न के समय मे और अस्त होने के समय मे क्या सभी स्थानो पर (सर्वत्र) ऊँचाई मे सम हैं ?

[३६ उ] हाँ, गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे रहे हुए दो सूर्य यावत् सर्वत्र ऊँचाई मे सम है।

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३८९ से ३९२ तक
(ख) तत्त्वार्थसूत्र अ ९

३७ जइ ण भते ! जबुद्दीवे दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तसि य मज्झतियमुहुत्तसि य अत्थमण-मुहुत्तसि जाव उच्चत्तेणं से केण खाइ अट्ठेण भते ! एवं वुच्चइ 'जबुद्दीवे ण दीवे सूरिया उग्गमण-मुहुत्तसि दूरे य मूले य दीसति जाव अत्थमणमुहुत्तसि दूरे य मूले य दीसति ?

गोयमा ! लेसापडिघाएण उग्गमणमुहुत्तसि दूरे य मूले य दीसति, लेसाभितावेण मज्झतिय-मुहुत्तसि मूले य दूरे य दीसति, लेस्सापडिघाएण अत्थमणमुहुत्तसि दूरे य मूले य दीसति, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ—जबुद्दीवे ण दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तसि दूरे य मूले य दीसंति जाव अत्थमण जाव दीसति ।

[३७ प्र] भगवन् ! यदि जम्बूद्वीप मे दो सूर्य, उदय के समय, मध्याह्न के समय और अस्त के समय सभी स्थानो पर (सर्वत्र) ऊँचाई मे समान है तो ऐसा क्यो कहते है, कि जम्बूद्वीप मे दो सूर्य उदय के समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते है, यावत् अस्त के समय मे दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते है ?

[३७ उ] गौतम ! लेश्या (तेज) के प्रतिघात से सूर्य उदय के समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं । मध्याह्न मे लेश्या (तेज) के अभिताप से पास होते हुए भी दूर दिखाई देते है और अस्त के समय तेज के प्रतिघात से दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते है । इस कारण से, हे गौतम ! मै कहता हूँ कि जम्बूद्वीप मे दो सूर्य, उदय के समय दूर होते हुए भी पास मे दिखाई देते है, यावत् अस्त के समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते है ।

३८. जबुद्दीवे ण भते ! दीवे सूरिया किं तीयं खेत्त गच्छति, पडुप्पन्नं खेत्त गच्छति, अणागय खेत्त गच्छति ?

गोयमा ! णो तीयं खेत्तं गच्छति, पडुप्पन्नं खेत्त गच्छति, णो अणागयं खेत्तं गच्छति ।

[३८ प्र] भगवन् ! जम्बूद्वीप मे दो सूर्य, क्या अतीत क्षेत्र की ओर जाते हैं, वर्तमान क्षेत्र की ओर जाते हैं, अथवा अनागत क्षेत्र की ओर जाते है ?

[३८ उ] गौतम ! वे अतीत क्षेत्र की ओर नही जाते, अनागत क्षेत्र की ओर भी नही जाते, वर्तमान क्षेत्र की ओर जाते है ।

३९ जबुद्दीवे ण दीवे सूरिया किं तीय खेत्त ओभासति, पडुप्पन्न खेत्त ओभासति, अणागय खेत्त ओभासति ?

गोयमा ! नो तीय खेत्त ओभासति, पडुप्पन्न खेत्त ओभासति, नो अणागय खेत्त ओभासति ।

[३९ प्र] भगवन् ! जम्बूद्वीप मे दो सूर्य, क्या अतीत क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं, वर्तमान क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं या अनागत क्षेत्र को प्रकाशित करते है ?

[३९ उ] गौतम ! वे अतीत क्षेत्र को प्रकाशित नही करते, और न अनागत क्षेत्र को ही प्रकाशित करते हैं, किन्तु वर्तमान क्षेत्र को प्रकाशित करते है ।

४० त भते ! किं पुट्ठ ओभासति, अपुट्ठ ओभासति ?

गोयमा ! पुट्ठं ओभासति, नो अपुट्ठं ओभासति जाव नियमा छद्दिसिं ।

[४० प्र] भगवन् ! जम्बूद्वीप मे दो सूर्य, स्पृष्ट क्षेत्र को प्रकाशित करते है, अथवा अस्पृष्ट क्षेत्र को प्रकाशित करते है ?

[४० उ] गौतम ! वे स्पृष्ट क्षेत्र को प्रकाशित करते है, अस्पृष्ट क्षेत्र को प्रकाशित नही करते, यावत् नियमत छहो दिशाओ को प्रकाशित करते है।

४१. जबुद्दीवे ण भते ! दीवे सूरिया किं तीय खेत्त उज्जोवेंति ?

एव चेव जाव नियमा छद्दिसिं ।

[४१ प्र] भगवन् ! जम्बूद्वीप मे दो सूर्य, क्या अतीत क्षेत्र को उद्योतित करते है ? इत्यादि प्रश्न पूर्ववत् करना चाहिए।

[४१ उ] गौतम ! इस विषय मे पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिए, यावत् नियमत छह दिशाओ को उद्योतित करते हैं।

४२ एव तवेंति, एवं भासति जाव नियमा छद्दिसि ।

[४२] इसी प्रकार तपाते हैं, यावत् छह दिशा को नियमत प्रकाशित करते है।

४३. जबुद्दीवे ण भते ! दीवे सूरियाण किं तीए खेत्ते किरिया कज्जइ, पडुप्पन्ने खित्ते किरिया कज्जइ, अणागए खेत्ते किरिया कज्जइ ?

गोयमा ! नो तीए खेत्ते किरिया कज्जइ, पडुप्पन्ने खेत्ते किरिया कज्जइ, णो अणागए खेत्ते किरिया कज्जइ।

[४३ प्र] भगवन् ! जम्बूद्वीप मे सूर्यों की क्रिया क्या अतीत क्षेत्र मे की जाती है ? वर्तमान क्षेत्र मे ही की जाती है अथवा अनागत क्षेत्र मे की जाती है ?

[४३ उ] गौतम ! अतीत क्षेत्र मे क्रिया नही की जाती, और न अनागत क्षेत्र मे क्रिया की जाती है, किन्तु वर्तमान क्षेत्र मे क्रिया की जाती है।

४४ सा भते ! किं पुट्ठा कज्जति, अपुट्ठा कज्जइ ?

गोयमा ! पुट्ठा कज्जइ, नो अपुट्ठा कज्जति जाव नियमा छद्दिसिं ।

[४४ प्र] भगवन् ! वे सूर्य स्पृष्ट क्रिया करते है या अस्पृष्ट ?

[४४ उ] गौतम ! वे स्पृष्ट क्रिया करते हैं, अस्पृष्ट क्रिया नही करते, यावत् नियमत छहो दिशाओ मे स्पृष्ट क्रिया करते है।

४५ जबुद्दीवे ण भते ! दीवे सूरिया केवतिय खेत्त उड्ढ तवति, केवतिय खेत्तं अहे तवति, केवतिय खेत्त तिरिय तवति ?

गोयमा ! एग जोयणसय उड्ढ तवति, अट्ठारस जोयणसयाइ अहे तवति, सीयालीस जोयण-सहस्साइ दोण्णि तेवट्ठे जोयणसए एक्कवीस च सट्ठिभाए जोयणस्स तिरियं तवति।

[४५ प्र] भगवन् ! जम्बूद्वीप मे सूर्य कितने ऊँचे क्षेत्र को तपाते है, कितने नीचे क्षेत्र को तपाते है, और कितने तिरछे क्षेत्र को तपाते है ?

[४५ उ] गौतम ! वे सौ योजन ऊँचे क्षेत्र को तप्त करते हैं, अठारह सौ योजन नीचे के क्षेत्र को तप्त करते है, और सैंतालीस हजार दो सौ तिरसठ योजन तथा एक योजन के साठिया इक्कीस भाग ($४७२६३\frac{२१}{६०}$) तिरछे क्षेत्र को तप्त करते है ।

विवेचन—उदय, अस्त और मध्याह्न के समय मे सूर्यो की दूरी और निकटता के प्रतिभास आदि की प्ररूपणा—प्रस्तुत ग्यारह सूत्रो (सू ३५ से ४५ तक) मे जम्बूद्वीपस्थ सूर्य-सम्बन्धी दूरी और निकटता आदि निम्नोक्त तथ्यो का निरूपण किया गया है—

१—सूर्य उदय और अस्त के समय दूर होते हुए भी निकट तथा मध्याह्न मे निकट होते हुए भी दूर दिखाई देते है ।

२—उदय, अस्त और मध्याह्न के समय सूर्य ऊँचाई मे सर्वत्र समान होते हुए भी लेश्या (तेज) के अभिताप से उदय-अस्त के समय दूर होते हुए भी निकट तथा मध्याह्न मे निकट होते हुए भी दूर दिखाई देते है ।

३—दो सूर्य, अतीत-अनागत क्षेत्र को नही, किन्तु वर्तमान क्षेत्र को प्रकाशित और उद्योतित करते है । वे अतीत-अनागत क्षेत्र की ओर नही, वर्तमान क्षेत्र की ओर जाते है ।

४—वे स्पृष्ट क्षेत्र को प्रकाशित करते है, अस्पृष्ट क्षेत्र को नही, यावत् नियमत छहो दिशाओ को प्रकाशित तथा उद्योतित करते हैं ।

५—सूर्यो की क्रिया अतीत-अनागत क्षेत्र मे नही, वर्तमान क्षेत्र मे की जाती है ।

६—वे स्पृष्ट क्रिया करते है, अस्पृष्ट नही, यावत् छहो दिशाओ मे स्पृष्ट क्रिया करते है ।

७—वे सूर्य सौ योजन ऊँचे क्षेत्र को, १८०० योजन नीचे के क्षेत्र को, तथा $४७२६३\frac{२१}{६०}$ योजन तिरछे क्षेत्र को तप्त करते है ।

सूर्य के दूर और निकट दिखाई देने के कारण का स्पष्टीकरण—सूर्य समतल भूमि से ८०० योजन ऊँचा है, किन्तु उदय और अस्त के समय देखने वालो को अपने स्थान की अपेक्षा निकट दृष्टिगोचर होता है, इसका कारण यह है कि उस समय उसका तेज मन्द होता है । मध्याह्न के समय देखने वालो को अपने स्थान की अपेक्षा दूर मालूम होता है, इसका कारण यह है कि उस समय उसका तीव्र तेज होता है । इन्ही कारणो से सूर्य निकट और दूर दिखाई देता है । अन्यथा उदय, अस्त और मध्याह्न के समय सूर्य तो समतलभूमि से ८०० योजन ही दूर रहता है ।

सूर्य की गति अतीत, अनागत या वर्तमान क्षेत्र मे ?—यहाँ क्षेत्र के साथ अतीत, अनागत और वर्तमान विशेषण लगाए गए है । जो क्षेत्र अतिक्रान्त हो गया है, अर्थात्—जिस क्षेत्र को सूर्य पार कर गया है, उसे 'अतीतक्षेत्र' कहते हैं । जिस क्षेत्र मे सूर्य अभी गति कर रहा है, उसे 'वर्तमानक्षेत्र' कहते हैं, और जिस क्षेत्र मे सूर्य गमन करेगा, उसे 'अनागतक्षेत्र' कहते है । सूर्य न अतीत क्षेत्र मे गमन करता है, न ही अनागतक्षेत्र मे गमन करता है, क्योकि अतीत क्षेत्र अतिक्रान्त हो चुका है और अनागतक्षेत्र अभी आया नही है, इसलिए वह वर्तमान क्षेत्र मे ही गति करता है ।

सूर्य किस क्षेत्र को प्रकाशित, उद्योतित और तप्त करता है ?—सूर्य अतीत और अनागत तथा अस्पृष्ट और अनवगाढ क्षेत्र को प्रकाशित, उद्योतित और तप्त नही करता, परन्तु वर्तमान, स्पृष्ट और अवगाढ क्षेत्र को प्रकाशित, उद्योतित और तप्त करता है, अर्थात्—इसी क्षेत्र मे क्रिया करता है, अतीत, अनागत आदि मे नही।

सूर्य की ऊपर, नीचे और तिरछे प्रकाशित आदि करने की सीमा—सूर्य अपने विमान से सौ योजन ऊपर (ऊर्ध्व) क्षेत्र को तथा ८०० योजन नीचे के समतल भूभाग से भी हजार योजन नीचे अधोलोक ग्राम तक नीचे के क्षेत्र को और सर्वोत्कृष्ट (सबसे बडे) दिन मे चक्षु स्पर्श की अपेक्षा ४७२६३$\frac{२१}{६०}$ योजन तक तिरछे क्षेत्र को उद्योतित, प्रकाशित और तप्त करते है।[1]

मानुषोत्तरपर्वत के अन्दर-बाहर के ज्योतिष्क देवो और इन्द्रो का उपपात-विरहकाल—

४६. अतो ण भंते ! माणुसुत्तरस्स पव्वयस्स जे चंदिम-सूरिय-गहगण-णक्खत्त-ताराख्वा ते ण भंते ! देवा किं उड्ढोववन्नगा ?

जहा जीवाभिगमे तहेव निरवसेस जाव उक्कोसेण छम्मासा।

[४६ प्र] भगवन् ! मानुषोत्तरपर्वत के अन्दर जो चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारारूप देव है, वे क्या ऊर्ध्वलोक मे उत्पन्न हुए है ?

[४६ उ] गौतम ! जिस प्रकार जीवाभिगम सूत्र मे कहा गया है, उसी प्रकार यावत्—'उनका उपपात-विरहकाल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास है', यहाँ तक कहना चाहिए।

४७ बहिया ण भंते ! माणुसुत्तरस्स० जहा—जीवाभिगमे जाव इदट्ठाणे ण भंते ! केवतियं काल उववाएण विरहिए पन्नत्ते ?

गोयमा ! जहन्नेण एक्क समय, उक्कोसेण छम्मासा।

सेव भंते ! सेव भंते ! त्ति०।

।। अट्ठमसए : अट्ठमो उद्देसो समत्तो ।।

[४७ प्र] भगवन् ! मानुषोत्तरपर्वत के बाहर जो चन्द्रादि देव हैं, वे ऊर्ध्वलोक मे उत्पन्न हुए है ?

[४७ उ] गौतम ! जिस प्रकार जीवाभिगमसूत्र मे कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी यावत्—'[प्र] भगवन् ! इन्द्रस्थान कितने काल तक उपपात-विरहित कहा गया है ? [उ] गौतम ! जघन्यत एक समय, उत्कृष्टत छह मास बाद दूसरा इन्द्र उस स्थान पर उत्पन्न होता है। इतने काल तक इन्द्रस्थान उपपात-विरहित होता है', —यहाँ तक कहना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करते हैं।

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३९३

(ख) वियाहपण्णत्तिसुत्त, (मूलपाठ टिप्पणयुक्त), पृ ३७७-३७८

विवेचन—मानुषोत्तरपर्वत के अन्दर-बाहर के ज्योतिष्क देवों एव इन्द्रो का उपपातविरह-काल—प्रस्तुत दो सूत्रो मे से प्रथम सूत्र मे मानुषोत्तर-पर्वत के अन्दर के ज्योतिष्क देवो एव इन्द्रो के उपपातविरहकाल का और द्वितीयसूत्र मे मानुषोत्तरपर्वत के बाहर के ज्योतिष्कदेवो एव इन्द्रो के उपपातविरहकाल का जीवाभिगमसूत्र के अतिदेशपूर्वक निरूपण है।[1]

।। अष्टमशतक : अष्टम उद्देशक समाप्त ।।

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त, (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ३७८-३७९

(ख) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३९३-३९४

(ग) जीवाभिगमसूत्र, प्रतिपत्ति ३, पत्राक ३४५-३४६ (आगमोदय)

(I) '(प्र) कप्पोववन्नगा विमाणोववन्नगा चारोववन्नगा चारट्ठिइया गइरइया गइसमावन्नगा ? (उ.) गोयमा ! ते ण देवा नो उड्ढोववन्नगा, नो कप्पोववन्नगा, विमाणोववन्नगा, चारोववन्नगा, नो चारट्ठिइया, गइरइया गइसमावन्नगा' इत्यादि।

(II) (प्र) इदट्ठाणे ण भंते ! केवइय काल विरहिए उववाएण ?, (उ) गोयमा ! जहन्नेण एक्क समयं उक्कोसेण छम्मास त्ति।'

(III) ' (प्र) जे चन्दिम तेण भते ! किं उड्ढोववन्नगा ? (उ) गोयमा ! ते ण देवा नो उड्ढोववन्नगा, नो कप्पोववन्नगा, विमाणोववन्नगा, नो चारोववन्नगा चारट्ठिइया, नो गइरइया, नो गइसमावन्नगा' इत्यादि।

नवमो उद्देसओ : 'बंध'

नवम उद्देशक : 'बन्ध'

बन्ध के दो प्रकार : प्रयोगबन्ध और विस्रसाबन्ध—

१ कइविहे ण भंते ! बधे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे बंधे पण्णत्ते, त जहा—पयोगबधे य, वीससीबधे य ।

[१ प्र] भगवन् ! बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१ उ] गौतम ! बन्ध दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—(१) प्रयोगबन्ध और विस्रसाबन्ध ।

विवेचन—बन्ध के दो प्रकार · प्रयोगबन्ध और विस्रसाबन्ध—प्रयोगबन्ध—जो जीव के प्रयोग से अर्थात् मन, वचन और कायारूप योगो की प्रवृत्ति से बन्धता है। **विस्रसाबन्ध**—जो स्वाभाविक रूप से बन्धता है। बन्ध का अर्थ यहाँ पुद्गलादिविषयक सम्बन्ध है।[1]

विस्रसाबन्ध के भेद-प्रभेद और स्वरूप—

२ वीससाबंधे ण भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—साईयवीससाबधे य अणाईयवीससाबधे य ।

[२ प्र] भगवन् ! विस्रसाबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२ उ] गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है। यथा—(१)सादिक विस्रसाबन्ध और (२) अनादिक विस्रसाबन्ध ।

३ अणाईयवीससाबधे णं भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, त जहा—धम्मत्थिकायअन्नमन्नअणादीयवीससाबधे, अधम्मत्थिकाय-अन्नमन्नअणादीयवीससाबंधे, आगासत्थिकायअन्नमन्नअणादीयवीससाबधे ।

[३ प्र] भगवन् ! अनादिक विस्रसाबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[३ उ] गौतम ! वह तीन प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—(१) धर्मास्तिकाय का अन्योन्य अनादिक विस्रसाबन्ध (२) अधर्मास्तिकाय का अन्योन्य-अनादि-विस्रसाबन्ध, और (३) आकाशास्तिकाय का अन्योन्य अनादिक विस्रसाबन्ध ।

४ धम्मत्थिकायअन्नमन्नअणादीयवीससाबधे ण भते ! किं देसबधे सव्वबधे ?

गोयमा ! देसबंधे, नो सव्वबधे ।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३९४

विवेचन—मानुषोत्तरपर्वत के अन्दर-बाहर के ज्योतिष्क देवो एव इन्द्रो का उपपातविरह-काल—प्रस्तुत दो सूत्रो मे से प्रथम सूत्र मे मानुषोत्तर-पर्वत के अन्दर के ज्योतिष्क देवो एव इन्द्रो के उपपातविरहकाल का और द्वितीयसूत्र मे मानुषोत्तरपर्वत के बाहर के ज्योतिष्कदेवो एव इन्द्रो के उपपातविरहकाल का जीवाभिगमसूत्र के अतिदेशपूर्वक निरूपण है।[1]

॥ अष्टमशतक : अष्टम उद्देशक समाप्त ॥

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त, (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ३७८-३७९

(ख) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३९३-३९४

(ग) जीवाभिगमसूत्र, प्रतिपत्ति ३, पत्राक ३४५-३४६ (आगमोदय)

(I) '(प्र) कप्पोववन्नगा विमाणोववन्नगा चारोववन्नगा चारट्ठिइया गइरइया गइसमावन्नगा ? (उ) गोयमा ! ते ण देवा नो उड्ढोववन्नगा, नो कप्पोववन्नगा, विमाणोववन्नगा, चारोववन्नगा, नो चारट्ठिइया, गइरइया गइसमावन्नगा' इत्यादि।

(II) (प्र) इदट्ठाणे ण भते ! केवइय काल विरहिए उववाएण ?, (उ) गोयमा ! जहन्नेण एक्क समयं उक्कोसेण छम्मास त्ति।'

(III) ' (प्र) जे चन्दिम तेण भते ! किं उड्ढोववन्नगा ? (उ) गोयमा ! ते ण देवा नो उड्ढोववन्नगा, नो कप्पोववन्नगा, विमाणोववन्नगा, नो चारोववन्नगा चारट्ठिइया, नो गइरइया, नो गइसमावन्नगा' इत्यादि।

नवमो उद्देसओ : 'बंध'

नवम उद्देशक : 'बन्ध'

बन्ध के दो प्रकार : प्रयोगबन्ध और विस्रसाबन्ध—

१ कइविहे ण भंते ! बंधे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे बंधे पण्णत्ते, त जहा—पयोगबधे य, वीससीबधे य ।

[१ प्र] भगवन् ! बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१ उ] गौतम ! बन्ध दो प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार—(१) प्रयोगबन्ध और विस्रसाबन्ध ।

विवेचन—बन्ध के दो प्रकार : प्रयोगबन्ध और विस्रसाबन्ध—प्रयोगबन्ध—जो जीव के प्रयोग से अर्थात् मन, वचन और कायारूप योगो की प्रवृत्ति से बन्धता है। विस्रसाबन्ध—जो स्वाभाविक रूप से बन्धता है । बन्ध का अर्थ यहाँ पुद्गलादिविषयक सम्बन्ध है ।[1]

विस्रसाबन्ध के भेद-प्रभेद और स्वरूप—

२ वीससाबंधे ण भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, त जहा—साईयवीससाबधे य अणाईयवीससाबधे य ।

[२ प्र] भगवन् ! विस्रसाबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२ उ] गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है । यथा—(१) सादिक विस्रसाबन्ध और (२) अनादिक विस्रसाबन्ध ।

३ अणाईयवीससाबधे ण भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, त जहा—धम्मत्थिकायअन्नमन्नअणादीयवीससाबधे, अधम्मत्थिकाय-अन्नमन्नअणादीयवीससाबधे, आगासत्थिकायअन्नमन्नअणादीयवीससाबधे ।

[३ प्र] भगवन् ! अनादिक विस्रसाबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[३ उ] गौतम ! वह तीन प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार—(१) धर्मास्तिकाय का अन्योन्य अनादिक विस्रसाबन्ध (२) अधर्मास्तिकाय का अन्योन्य-अनादि-विस्रसाबन्ध, और (३) आकाशास्तिकाय का अन्योन्य अनादिक विस्रसाबन्ध ।

४ धम्मत्थिकायअन्नमन्नअणादीयवीससाबधे ण भंते ! किं देसबधे सव्वबधे ?

गोयमा ! देसबधे, नो सव्वबधे ।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३९४

[४ प्र] भगवन् ! धर्मास्तिकाय का अन्योन्य-अनादि-विस्रसाबन्ध क्या देशबन्ध है या सर्वबन्ध है ?

[४ उ] गौतम ! वह देशबन्ध है, सर्वबन्ध नही ।

५ एव अधम्मत्थिकायअन्नमन्नअणादीयवीससाबधे वि, एव आगासत्थिकायअन्नमन्नअणादीयवीससाबधे वि ।

[५] इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के अन्योन्य-अनादि-विस्रसाबन्ध एव आकाशास्तिकाय के अन्योन्य-अनादि-विस्रसाबन्ध के विषय मे भी समझ लेना चाहिए। (अर्थात्—ये भी देशबन्ध हैं, सर्वबन्ध नही ।)

६. धम्मत्थिकायअन्नमन्नअणाईयवीससाबधे ण भते ! कालओ केवच्चिर होइ ?

गोयमा ! सव्वद्ध ।

[६ प्र] भगवन् ! धर्मास्तिकाय का अन्योन्य-अनादि-विस्रसाबन्ध कितने काल तक रहता है ?

[६ उ] गौतम ! सर्वाद्धा (सर्वकाल=सर्वदा) रहता है ।

७. एव अधम्मत्थिकाए, एव आगासत्थिकाये ।

[७] इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय का अन्योन्य-अनादि-विस्रसाबन्ध एव आकाशास्तिकाय का अन्योन्य-अनादि-विस्रसाबन्ध भी सर्वकाल रहता है ।

८. सादीयवीससाबधे ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, त जहा—बधणपच्चइए भायणपच्चइए परिणामपच्चइए ।

[८ प्र] भगवन् ! सादिक-विस्रसाबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[८ उ] गौतम ! वह तीन प्रकार का कहा गया है। जैसे—(१) बन्धन-प्रत्ययिक, (२) भाजनप्रत्ययिक और (३) परिणामप्रत्ययिक ।

९ से किं तं बधणपच्चइए ?

बधणपच्चइए, ज ण परमाणुपुग्गला दुपएसिय-तिपएसिय-जाव-दसपएसिय-सखेज्जपएसिय-असखेज्जपएसिय-अणतपएसियाण खधाण वेमायनिद्धयाए वेमायलुक्खयाए वेमायनिद्ध-लुक्खयाए बधणपच्चइएण बधे समुप्पज्जइ जहन्नेण एक्क समयं, उक्कोसेण असखेज्ज काल । से त बधणपच्चइए ।

[९ प्र] भगवन् ! बन्धन-प्रत्ययिक-सादि-विस्रसाबन्ध किसे कहते है ?

[९ उ] गौतम ! परमाणु, द्विप्रदेशिक, त्रिप्रदेशिक, यावत् दशप्रदेशिक, सख्यातप्रदेशिक, असख्यातप्रदेशिक और अनन्तप्रदेशिक पुद्गल-स्कन्धो का विमात्रा (विषममात्रा) मे स्निग्धता से, विमात्रा मे रूक्षता से तथा विमात्रा मे स्निग्धता-रूक्षता से बन्धन-प्रत्ययिक बन्ध समुत्पन्न होता है । वह जघन्यत एक समय तक और उत्कृष्टत असख्येय काल तक रहता है । यह हुआ बन्धन-प्रत्ययिक सादि-विस्रसाबन्ध का स्वरूप ।

१० से किं तं भायणपच्चइए ?

भायणपच्चइए, ज ण जुण्णसुरा-जुण्णगुल-जुण्णतदुलाण भायणपच्चइएण बधे समुप्पज्जइ जहन्नेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण सखेज्ज काल। से त्त भायणपच्चइए।

[१० प्र] भगवन् ! भाजन-प्रत्ययिक-सादि-विस्रसाबन्ध किसे कहते है ?

[१० उ] गौतम ! पुरानी सुरा (मदिरा), पुराने गुड, और पुराने चावलो का भाजन-प्रत्ययिक-सादि-विस्रसाबन्ध समुत्पन्न होता है। वह जघन्यत अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्टत सख्यात काल तक रहता है। यह है भाजन-प्रत्ययिक-सादि-विस्रसाबन्ध का स्वरूप।

११ से किं त परिणामपच्चइए ?

परिणामपच्चइए, जं णं अब्भाण अब्भरुक्खाण जहा ततियसए (स. ३ उ ७ सु. ४ [५]) जाव अमोहाण परिणामपच्चइएण बधे समुप्पज्जइ जहन्नेण एक्क समय, उक्कोसेण छम्मासा। से त्त परिणामपच्चइए। से त्त सादीयवीससाबधे। से त्त वीससाबधे।

[११ प्र] भगवन् ! परिणामप्रत्ययिक-सादि-विस्रसाबन्ध किसे कहते है ?

[११ उ] गौतम ! (इसी शास्त्र के तृतीय शतक उद्देशक ७ सू ४-५) मे जो बादलो (अभ्रो) का, अभ्रवृक्षो का यावत् अमोघो आदि के नाम कहे गए है, उन सबका, परिणाम-प्रत्ययिक (सादि-विस्रसा) बन्ध समुत्पन्न होता है। वह बन्ध जघन्यत एक समय तक और उत्कृष्टत छह मास तक रहता है। यह हुआ परिणाम-प्रत्ययिक-सादि-विस्रसाबन्ध का स्वरूप। और यह हुआ विस्रसा-बन्ध का कथन।

विवेचन—विस्रसाबन्ध के भेद-प्रभेद और उनका स्वरूप—प्रस्तुत दस सूत्रो (सू २ से ११ तक) मे विस्रसाबन्ध के सादि-अनादिरूप दो भेद, तत्पश्चात् अनादिविस्रसाबन्ध के तीन और सादि विस्रसाबन्ध के तीन भेदो के प्रकार और स्वरूप का निरूपण किया गया है।

त्रिविध अनादि विस्रसाबन्ध का स्वरूप—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय की अपेक्षा से अनादि विस्रसाबन्ध तीन प्रकार का कहा गया है। धर्मास्तिकाय के प्रदेशो का उसी के दूसरे प्रदेशो के साथ साकल और कडी की तरह जो परस्पर एक देश से सम्बन्ध होता है, वह धर्मास्तिकाय-अन्योन्य-अनादिविस्रसाबन्ध कहलाता है। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के विस्रसाबन्ध के विषय मे समझना चाहिए। धर्मास्तिकाय के प्रदेशो का परस्पर जो सम्बन्ध होता है, वह देशबन्ध होता है, नीरक्षीरवत् सर्वबन्ध नही, क्योकि यदि सर्वबन्ध माना जाएगा तो एक प्रदेश मे दूसरे समस्त प्रदेशो का समावेश हो जाने से धर्मास्तिकाय एक प्रदेशरूप ही रह जाएगा, असख्यप्रदेशरूप नही रहेगा, जो कि सिद्धान्त से असगत है। अत धर्मास्तिकाय आदि तीनो का परस्पर देशबन्ध ही होता है, सर्वबन्ध नही।

त्रिविध-सादिविस्रसाबन्ध का स्वरूप—सादिविस्रसाबन्ध के बन्धनप्रत्ययिक, भाजन-प्रत्ययिक और परिणामप्रत्ययिक, ये तीन भेद कहे गए है। बन्धन अर्थात् विवक्षित स्निग्धता आदि गुणो के निमित्त से परमाणुओ का जो बन्ध सम्पन्न होता है, उसे बन्धनप्रत्ययिक बन्ध कहते है, भाजन का अर्थ है—आधार। उसके निमित्त से जो बन्ध सम्पन्न होता है, वह भाजनप्रत्ययिक है। जैसे—घडे मे

रखी हुई पुरानी मदिरा गाढी हो जाती है, पुराने गुड और पुराने चावलो का पिण्ड बध जाता है, वह भाजनप्रत्ययिकबन्ध कहलाता है। परिणाम अर्थात् रूपान्तर (हो जाने) के निमित्त से जो बन्ध होता है, उसे परिणाम-प्रत्ययिक बन्ध कहते है।[1]

अमोघ शब्द का अर्थ—सूर्य के उदय और अस्त के समय उसकी किरणो का एक प्रकार का आकार 'अमोघ' कहलाता है।

बन्धन-प्रत्ययिकबन्ध का नियम—सामान्यतया स्निग्धता और रूक्षता से परमाणुओ का बन्ध होता है। किस प्रकार होता है ? इसका नियम क्या है ? यह समझ लेना आवश्यक है। एक आचार्य ने इस विषय मे नियम बतलाते हुए कहा है—समान स्निग्धता या समान रूक्षता वाले स्कन्धो का बन्ध नही होता, विषम स्निग्धता या विषम रूक्षता मे बन्धन होता है। स्निग्ध का द्विगुणादि अधिक स्निग्ध के साथ तथा रूक्ष का द्विगुणादि अधिक रूक्ष के साथ बन्ध होता है। स्निग्ध का रूक्ष के साथ जघन्यगुण को छोड कर सम या विषम बन्ध होता है। अर्थात् एकगुण स्निग्ध या एकगुण रूक्षरूप जघन्य गुण को छोड कर शेष सम या विषम गुण वाले स्निग्ध या रूक्ष का परस्पर बन्ध होता है। सम स्निग्ध का सम स्निग्ध के साथ तथा सम रूक्ष का सम रूक्ष के साथ बन्ध नही होता। उदाहरणार्थ—एकगुण स्निग्ध का एकगुण स्निग्ध के साथ अथवा एकगुण स्निग्ध का दोगुण स्निग्ध के साथ बन्ध नही होता है। दोगुण स्निग्ध का दोगुण स्निग्ध के साथ या तीनगुण स्निग्ध के साथ बन्ध नही होता, किन्तु चारगुण स्निग्ध के साथ बन्ध होता है। जिस प्रकार स्निग्ध के सम्बन्ध मे कहा, उसी प्रकार रूक्ष के विषय मे समझ लेना चाहिए। एकगुण को छोड कर परस्थान मे स्निग्ध और रूक्ष के परस्पर सम या विषम मे दोनो प्रकार के बन्ध होते है। यथा—एकगुण स्निग्ध का एकगुण रूक्ष के साथ बन्ध नही होता, किन्तु द्व्यादि गुणयुक्त रूक्ष के साथ बन्ध होता है, इसी तरह द्विगुण स्निग्ध का द्विगुण रूक्ष अथवा त्रिगुणरूक्ष के साथ बन्ध होता है। इस प्रकार सम और विषम दोनो प्रकार के बन्ध होते है।[2]

प्रयोगबन्ध : प्रकार, भेद-प्रभेद तथा उनका स्वरूप—

१२ से किं तं पयोगबंधे ?

पयोगबधे तिविहे पण्णत्ते, त जहा—अणाईए वा अपज्जवसिए १, सादीए वा अपज्जवसिए २, सादीए वा सपज्जवसिए ३। तत्थ ण जे से अणाईए अपज्जवसिए से ण अट्ठण्ह जीवमज्झपएसाण।

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३९५ (ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ३, पृ १४७३

२ (क) वही, पत्राक ३९५

(ख) समनिद्धयाए बन्धो न होई, समलुक्खयाए वि ण होइ।
वेमायनिद्धलुक्खत्तणेण बन्धो उ खधाण ॥ १ ॥
निद्धस्स निद्धेण दुयाहिएण, लुक्खस्स लुक्खेण दुयाहिएण।
निद्धस्स लुक्खेण उवेइ बन्धो, जहन्नवज्जो विसमो समो वा ॥ २ ॥

—भगवती अ वृत्ति, पत्र ३९५ मे उद्धृत

[ग] स्निग्धरूक्षत्वाद् बन्ध । न जघन्यगुणानाम्। गुणसाम्ये सदृशानाम्। बन्धे समाधिकौ पारिणामिकौ च।

—तत्त्वार्थसूत्र, अ ५ सू

तत्थ वि ण तिण्ह तिण्ह अणाईए अपज्जवसिए, सेसाण साईए। तत्थ ण जे से सादीए अपज्जवसिए से ण सिद्धाण। तत्थ ण जे से साईए सपज्जवसिए से ण चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—आलावणबधे अल्लियावणबधे सरीरबधे सरीरप्पयोगबधे।

[१२ प्र] भगवन् ! प्रयोगबन्ध किस प्रकार का है ?

[१२ उ] गौतम ! प्रयोगबन्ध तीन प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—(१) अनादि-अपर्यवसित, (२) सादि-अपर्यवसित अथवा (३) सादि-सपर्यवसित। इनमे से जो अनादि-अपर्यवसित है, वह जीव के आठ मध्यप्रदेशो का होता है। उन आठ प्रदेशो मे भी तीन-तीन प्रदेशो का जो वन्ध होता है, वह अनादि-अपर्यवसित बन्ध है। शेष सभी प्रदेशो का सादि (-अपर्यवसित) वन्ध है। इन तीनो मे से जो सादि-अपर्यवसित बन्ध है, तथा इनमे से जो सादि-सपर्यवसित वन्ध है, वह चार प्रकार-का कहा गया है। यथा—(१) आलापनबन्ध, (२) अल्लिकापन—(आलीन) बन्ध, (३) शरीर-बन्ध और (४) शरीर-प्रयोग-बन्ध।

१३ से किं त आलावणबधे ?

आलावणबधे, ज ण तणभाराण वा कट्ठभाराण वा पत्तभाराण वा पलालभाराण वा वेल्ल-भाराण वा वेत्तलया-वाग-वरत्त-रज्जु-वल्लि-कुस-दब्भमादिएहि आलावणबधे समुप्पज्जइ, जहन्नेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण सखेज्ज काल। से त्त आलावणबधे।

[१३ प्र] भगवन् ! आलापनबन्ध किसे कहते हैं ?

[१३ उ] गौतम ! तृण (घास) के भार, काष्ठ के भार, पत्तो के भार, पलाल के भार और बेल के भार, इन भारो को बेत की लता, छाल, वरत्रा (चमडे की बनी मोटी रस्सी = बरत), रज्जु (रस्सी) बेल, कुश और डाभ (नारियल की जटा) आदि से बाधने से आलापनबन्ध समुत्पन्न होता है। यह बन्ध जघन्यत अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्टत सख्येय काल तक रहता है। यह आलापनबन्ध का स्वरूप है।

१४ से किं तं अल्लियावणबधे ?

अल्लियावणबधे चउव्विहे पन्नत्ते, त जहा—लेसणाबधे उच्चयबधे समुच्चयबधे साहणणाबधे।

[१४ प्र] भगवन् ! अल्लिकापन (आलीन) बन्ध किसे कहते है ?

[१४ उ] गौतम ! आलीनबन्ध चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—श्लेषणा-बन्ध, उच्चयबन्ध, समुच्चयबन्ध और सहननबन्ध।

१५. से किं त लेसणाबधे ?

लेसणाबधे, ज ण कुड्डाण कुट्टिमाण खभाण पासायाण कट्ठाण चम्माण घडाण पडाण कडाण छुहा-चिक्खल्ल-सिलेस-लक्ख-महुसित्थमाइएहिं लेसणएहिं बधे समुप्पज्जइ, जहन्नेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण संखेज्जं काल। से त्त लेसणाबधे।

[१५ प्र] भगवन् ! श्लेषणाबन्ध किसे कहते है ?

[१५ उ] गौतम ! श्लेषणाबन्ध इस प्रकार का है—जो कुडचो (भित्तियो) का, कुट्टिमो (आगन के फर्शो) का, स्तम्भो का, प्रासादो का, काष्ठो का, चर्मो (चमडो) का, घडो का, वस्त्रो का, और चटाइयो (कटो) का, चूना, कीचड, श्लेष(गोद आदि चिपकाने वाले द्रव्य, अथवा वज्रलेप), लाख, मोम आदि श्लेषण द्रव्यो से बन्ध सम्पन्न होता है, वह श्लेषणाबन्ध कहलाता है।

यह बन्ध जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट सख्यातकाल तक रहता है। यह श्लेषणाबन्ध का कथन हुआ।

१६ से किं तं उच्चयबधे ?

उच्चयबधे, ज ण तणरासीण वा कट्ठरासीण वा पत्तरासीण वा तुसरासीण वा भुसरासीण वा गोमयरासीण वा अवगररासीण वा उच्चएण बधे समुप्पज्जइ, जहन्नेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण सखेज्ज काल। से त्त उच्चयबधे।

[१६ प्र] भगवन् ! उच्चयबन्ध किसे कहते है ?

[१६ उ] गौतम ! तृणराशि, काष्ठराशि, पत्रराशि, तुषराशि, भूसे का ढेर, गोबर (या उपलो) का ढेर अथवा कूडे-कचरे का ढेर, इन का ऊँचे ढेर (पुज=सचय) रूप से जो बन्ध सम्पन्न होता है, उसे 'उच्चयबन्ध' कहते है। यह बन्ध जघन्यत अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्टतः सख्यातकाल तक रहता है। इस प्रकार उच्चयबन्ध का कथन किया गया है।

१७ से किं त समुच्चयबधे ?

समुच्चयबधे, ज ण अगड-तडाग-नदी-दह-वावी-पुक्खरणी-दीहियाण गुजालियाण सराणं सरपतिआण सरसरपतियाण बिलपतियाण देवकुल-सभा-पवा-थूभ-खाइयाण फरिहाण पागार-ऽट्टालग-चरिय-दार-गोपुर-तोरणाण पासाय-घर-सरण-लेण-आवणाण सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहमादीण छुहा-चिक्खल्ल-सिलेससमुच्चएण बधे समुप्पज्जइ, जहन्नेणं अतोमुहुत्त, उक्कोसेण संखेज्ज काल। से त्त समुच्चयबधे।

[१७ प्र] भगवन् ! समुच्चयबन्ध किसे कहते है ?

[१७ उ] गौतम ! कुआ, तालाब, नदी, द्रह, वापी (बावडी), पुष्करिणी (कमलो से युक्त वापी), दीर्घिका, गुजालिका, सरोवर, सरोवरो की पक्ति, बडे सरोवरो की पक्ति, बिलो की पक्ति, देवकुल (मन्दिर), सभा, प्रपा (प्याऊ), स्तूप, खाई, परिखा (परिघा), प्राकार (किला या कोट), अट्टालक (अटारी, किले पर का कमरा या गढ), चरक (गढ और नगर के मध्य का मार्ग), द्वार, गोपुर, तोरण, प्रासाद (महल), घर, शरणस्थान, लयन (गृहविशेष), आपण (दूकान), शृगाटक (सिंघाडे के आकार का मार्ग), त्रिक (तिराहा), चतुष्क (चौराहा), चत्वरमार्ग, (चौपड—बाजार का मार्ग), चतुर्मुख मार्ग और राजमार्ग (बडी और चौडी सडक) आदि का चूना, (गीली) मिट्टी, कीचड, एव श्लेष (वज्रलेप आदि)के द्वारा समुच्चयरूप से जो बन्ध समुत्पन्न होता है, उसे 'समुच्चयबन्ध' कहते है। उसकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट सख्येयकाल की है। इस प्रकार समुच्चयबन्ध का कथन पूर्ण हुआ।

१८ से किं तं साहणणाबंधे ?

साहणणाबंधे दुविहे पन्नत्ते, तं जहा—देससाहणणाबंधे य सव्वसाहणणाबंधे य ।

[१८ प्र] भगवन् ! संहननबन्ध किसे कहते हैं ?

[१८ उ] गौतम ! संहननबन्ध दो प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार—(१) देश-संहननबन्ध और (२) सर्वसंहननबन्ध ।

१९ से किं तं देससाहणणाबंधे ?

देससाहणणाबंधे, जं णं सगड-रह-जाण-जुग्ग-गिल्लि-थिल्लि-सीय-संदमाणिया-लोही-लोहक-डाह-कडच्छुग्र-ग्रासण सयण-खंभ-भंड-मत्त-उवगरणमाईणं देससाहणणाबंधे समुप्पज्जइ, जहन्नेणं अंतो-मुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं । से त्तं देससाहणणाबंधे ।

[१९ प्र] भगवन् ! देशसंहननबन्ध किसे कहते हैं ?

[१९ उ] गौतम ! शकट (गाडी), रथ, यान (छोटी गाडी), युग्य वाहन (दो हाथ प्रमाण वेदिका से उपशोभित जम्पान=पालखी), गिल्लि (हाथी की अम्बाडी), थिल्लि (पलाण), शिविका (पालखी), स्यन्दमानी पुरुष प्रमाण वाहन विशेष, म्याना), लोढो, लोहे की कडाही, कुडछी, (चमचा बडा या छोटा), आसन, शयन, स्तम्भ, भाण्ड (मिट्टी के बर्तन), पात्र, नाना उपकरण आदि पदार्थों के साथ जो सम्बन्ध सम्पन्न होता है, वह देशसंहननबन्ध है । वह जघन्यत अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्टत संख्येय काल तक रहता है । यह है देशसंहननबन्ध का स्वरूप ।

२० से किं तं सव्वसाहणणाबंधे ?

सव्वसाहणणाबंधे, से णं खीरोदगमाईणं । से त्तं सव्वसाहणणाबंधे । से त्तं साहणणाबंधे । से त्तं अल्लियावणबंधे ।

[२० प्र] भगवन् ! सर्वसंहननबन्ध किसे कहते हैं ?

[२० उ] गौतम ! दूध और पानी आदि की तरह एकमेक हो जाना सर्वसंहननबन्ध कहलाता है । इस प्रकार सर्वसंहननबन्ध का स्वरूप है । यह आलीनबन्ध का कथन हुआ ।

२१ से किं तं सरीरबंधे ?

सरीरबंधे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पुव्वप्पओगपच्चइए य पडुप्पन्नप्पओगपच्चइए य ।

[२१ प्र] भगवन् ! शरीरबन्ध किस प्रकार का है ?

[२१ उ] गौतम ! शरीरबन्ध दो प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार—(१) पूर्वप्रयोग-प्रत्ययिक और (२) प्रत्युत्पन्न-प्रयोग-प्रत्ययिक ।

२२ से किं तं पुव्वप्पओगपच्चइए ?

पुव्वप्पओगपच्चइए, जं णं नेरइयाणं संसारत्थाणं सव्वजीवाणं तत्थ तत्थ तेसु तेसु कारणेसु समोहन्नमाणाणं जीवप्पदेसाणं बंधे समुप्पज्जइ । से त्तं पुव्वप्पओगपच्चइए ।

[२२ प्र] भगवन् ! पूर्वप्रयोग-प्रत्ययिक-शरीरबन्ध किसे कहते है ?

[२२ उ] गौतम ! जहाँ-जहाँ जिन-जिन कारणो से समुद्घात करते हुए नैरयिक जीवो और ससारस्थ सर्वजीवो के जीवप्रदेशो का जो बन्ध सम्पन्न होता है, वह पूर्वप्रयोगबन्ध कहलाता है। यह है पूर्वप्रयोग-प्रत्ययिकबन्ध ।

२३. से किं तं पडुप्पन्नप्पयोगपच्चइए ?

पडुप्पन्नप्पयोगपच्चइए, ज ण केवलनाणिस्स अणगारस्स केवलिसमुग्घाएण समोहयस्स, ताओ समुग्घायाओ पडिनियत्तमाणस्स, अतरा मथे वट्टमाणस्स तेया-कम्माण बधे समुप्पज्जइ । किं कारण ?

ताहे से पएसा एगत्तीगया भवति त्ति । से त्त पडुप्पन्नप्पयोगपच्चइए । से त्त सरीरबधे ।

[२३ प्र] भगवन् ! प्रत्युत्पन्न-प्रयोग-प्रत्ययिक किसे कहते हैं ?

[२३ उ] गौतम ! केवलीसमुद्घात द्वारा समुद्घात करते हुए और उस समुद्घात से प्रतिनिवृत्त होते (वापस लौटते) हुए बीच के मार्ग (मन्थानावस्था) मे रहे हुए केवलज्ञानी अनगार के तैजस और कार्मण शरीर का जो बन्ध सम्पन्न होता है, उसे प्रत्युत्पन्न-प्रयोग-प्रत्ययिक-बन्ध कहते है । [प्र] (तैजस और कार्मण शरीर के बन्ध का) क्या कारण है ? [उ] उस समय (आत्म) प्रदेश एकत्रीकृत (सघातरूप) होते हैं, जिससे (तैजस-कार्मण-शरीर का) बन्ध होता है। यह हुआ, उस प्रत्युत्पन्न-प्रयोगप्रत्ययिकबन्ध का स्वरूप । यह शरीरबन्ध का कथन हुआ ।

विवेचन—प्रयोगबन्ध प्रकार और भेद-प्रभेद तथा उनका स्वरूप—प्रस्तुत १२ सूत्रो (सू १२ से २३ तक) मे प्रयोगबन्ध के तीन भग तथा सादि-सपर्यवसित बन्ध के चार भेद एव उनके प्रभेद और स्वरूप का वर्णन किया गया है।

प्रयोगबन्ध · स्वरूप और जीवो की दृष्टि से प्रकार—जीव के व्यापार से जो बन्ध होता है, वह प्रयोगबन्ध कहलाता है। प्रयोगबन्ध के तीन विकल्प हैं—(१) अनादि-अपर्यवसित—जीव के असख्यात प्रदेशो मे से मध्य के आठ (रुचक) प्रदेशो का बन्ध अनादि-अपर्यवसित है। जब केवली समुद्घात करते हैं, तब उनके प्रदेश समग्रलोकव्यापी हो जाते हैं, उस समय भी वे आठ प्रदेश तो अपनी स्थिति मे ही रहते हैं। उनमे किसी प्रकार का परिवर्तन नही होता। उनकी स्थापना इस प्रकार है— [⁘] नीचे ये चार प्रदेश हैं, और इनके ऊपर चार प्रदेश है। इस प्रकार समुदायरूप से ८ प्रदेशो का बन्ध है। पूर्वोक्त ८ प्रदेशो मे भी प्रत्येक प्रदेश का अपने पास रहे हुए दो प्रदेशो के साथ तथा ऊपर या नीचे रहे हुए एक प्रदेश के साथ, इस प्रकार तीन-तीन प्रदेशो के साथ भी अनादि-अपर्यवसित बन्ध है। शेष सभी प्रदेशो का सयोगी अवस्था तक सादि-सपर्यवसित नामक तीसरा विकल्प है, तथा सिद्ध जीवो के प्रदेशो का सादि-अपर्यवसित बन्ध है। प्रस्तुत चार भगो (विकल्पो) मे से दूसरे भग (अनादि-सपर्यवसित) मे बन्ध नही होता ।

सादि-सपर्यवसित बन्ध के चार भेद है—(१) **आलापनबन्ध**—(रस्सी आदि से घास आदि को बाधना), (२) **आलीनबन्ध**—(लाख आदि एक श्लेष्य पदार्थ का दूसरे पदार्थ के साथ बन्ध होना), (३) **शरीरबन्ध** -(समुद्घात करते समय विस्तारित और सकोचित जीव-प्रदेशो के सम्बन्ध से तैजसादि शरीर-प्रदेशो का सम्बन्ध होना), और (४) **शरीरप्रयोगबन्ध**—(औदारिकादि शरीर की

प्रवृत्ति से शरीर के पुद्गलो को ग्रहण करने रूप बन्ध)। इसके पश्चात् आलीनबन्ध के श्लेषणादिबन्ध के रूप मे ४ भेद तथा उनका स्वरूप मूलपाठ मे बतला दिया गया है।

सहननबन्ध : दो रूप—विभिन्न पदार्थों के मिलने से एक आकार का पदार्थ बन जाना, सहननबन्ध है। पहिया, जुआ आदि विभिन्न अवयव मिलकर जैसे गाडी का रूप धारण कर लेते हैं, वैसे ही किसी वस्तु के एक अश के साथ, किसी अन्य वस्तु के अश रूप से सम्बन्ध होना—जुड जाना, देश-सहननबन्ध है और दूध-पानी की तरह एकमेक हो जाना, सर्व-सहननबन्ध है।

शरीरबन्ध दो भेद—वेदना, कषाय-आदि समुद्घातरूप जीवव्यापार से होने वाला जीव-प्रदेशो का बन्ध, अथवा जीवप्रदेशाश्रित तैजस-कार्मणशरीर का बन्ध पूर्वप्रयोग-प्रत्ययिक शरीरबन्ध है, तथा वर्तमानकाल मे केवली समुद्घात रूप जीवव्यापार से होने वाला तैजस-कार्मणशरीर का बन्ध, प्रत्युत्पन्न-प्रयोग-प्रत्ययिकबन्ध है।[1]

शरीरप्रयोगबन्ध के प्रकार एवं औदारिकशरीरप्रयोगबन्ध के सम्बन्ध में विभिन्न पहलुओ से निरूपण—

२४ से किं त सरीरप्रयोगबधे ?

सरीरप्पयोगबधे पंचविहे पन्नत्ते, त जहा—ओरालियसरीरप्पओगबधे वेउव्वियसरीरप्पओग-बधे आहारगसरीरप्पओगबधे तेयासरीरप्पयोगबंधे कम्मासरीरप्पयोगबधे।

[२४ प्र] भगवन्! शरीरप्रयोगबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२४ उ] गौतम! शरीरप्रयोगबन्ध पाच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है—(१) औदारिकशरीरप्रयोगबन्ध, (२) वैक्रियशरीरप्रयोगबन्ध, (३) आहारकशरीरप्रयोगबन्ध, (४) तैजसशरीरप्रयोगबन्ध और (५) कार्मणशरीरप्रयोगबन्ध।

२५ ओरालियसरीरप्पयोगबधे ण भंते! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा! पचविहे पन्नत्ते, तं जहा—एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबधे बेइंदियओरालिय-सरीरप्पयोगबधे जाव पंचिंदियओरालियसरीरप्पयोगबधे।

[२५ प्र] भगवन्! औदारिक शरीरप्रयोगबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२५ उ] गौतम! वह पाच प्रकार का कहा गया है। यथा—(१) एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीरप्रयोगबन्ध, (२) द्वीन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध, (३) त्रीन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोग-बन्ध, (४) चतुरिन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध और (५) पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोग-बन्ध।

२६ एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबधे ण भते! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा! पचविहे पण्णत्ते, त जहा—पुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबधे, एव एएण अभिलावेण भेदा जहा ओगाहणसठाणे ओरालियसरीरस्स तहा भाणियव्वा जाव पज्जत्तगब्भ-

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३९४

वक्कतियमणुस्सपंचिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे य अपज्जत्तगब्भवक्कतियमणूसपंचिदियओरालिय-सरीरप्पयोगबंधे य।

[२६ प्र] भगवन्! एकेन्द्रिय औदारिक-शरीरप्रयोगबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है?

[२६ उ] गौतम! एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध पाच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध इत्यादि। इस प्रकार इस अभिलाप द्वारा जैसे प्रज्ञापनासूत्र के (इक्कीसवे) 'अवगाहना-सस्थान-पद' मे औदारिक शरीर के भेद कहे गए है, वैसे यहाँ भी यावत्—'पर्याप्त-गर्भज-मनुष्य-पञ्चेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध और अपर्याप्त गर्भज-मनुष्य-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध' तक कहना चाहिए।

२७ ओरालियसरीरप्पयोगबंधे ण भते! कस्स कम्मस्स उदएण?

गोयमा! वीरियसजोगसद्दव्वयाए पमादपच्चया कम्म च जोग च भव च आउय च पडुच्च ओरालियसरीरप्पयोगनामकम्मस्स उदएण ओरालियसरीरप्पयोगबधे।

[२७ प्र] भगवन्! औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

[२७ उ] गौतम! सवीर्यता, सयोगता और सद्द्रव्यता से, प्रमाद के कारण, कर्म, योग, भव और आयुष्य आदि हेतुओ की अपेक्षा से औदारिक-शरीर-प्रयोग-नामकर्म के उदय से औदारिक-शरीर-प्रयोगबन्ध होता है।

२८. एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबधे ण भते! कस्स कम्मस्स उदएण?

एव चेव।

[२८ प्र] भगवन्! एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

[२८ उ] गौतम! पूर्वोक्त-कथनानुसार यहाँ भी जानना चाहिए।

२९. पुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे एव चेव।

[२९ प्र] इसी प्रकार पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध के विषय मे कहना चाहिए।

३० एवं जाव वणस्सइकाइया। एव बेइंदिया। एव तेइंदिया। एव चउरिंदिया।

[३०] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध तथा द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध तक कहना चाहिए।

३१. तिरिक्खजोणियपंचिंदियओरालियसरीरप्पयोगबधे ण भते! कस्स कम्मस्स उदएण?

एव चेव।

[३१ प्र] भगवन्! तिर्यञ्च-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

[३१ उ] गौतम! (इस विषय मे भी) पूर्वोक्त कथनानुसार जानना चाहिए।

३२. मणुस्सपंचिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

गोयमा ! वीरियसजोगसद्दव्वयाए पमादपच्चया जाव आउयं च पडुच्च मणुस्सपंचिंदिय-ओरालियसरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं मणुस्सपंचिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे ।

[३२ प्र] भगवन् ! मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[३२ उ] गौतम ! सवीर्यता, सयोगता और सद्द्रव्यता से, तथा प्रमाद के कारण यावत् आयुष्य की अपेक्षा से एवं मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-नामकर्म के उदय से 'मनुष्यपंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध' होता है ।

३३. ओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! किं देसबंधे, सव्वबंधे ?

गोयमा ! देसबंधे वि सव्वबंधे वि ।

[३३ प्र] भगवन् ! औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध क्या देशबन्ध या सर्वबन्ध है ?

[३३ उ] गौतम ! वह देशबन्ध भी है, और सर्वबन्ध भी है ।

३४. एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! किं देसबंधे सव्वबंधे ?

एवं चेव ।

[३४ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध क्या देशबन्ध है या सर्वबन्ध है ?

[३४ उ] गौतम ! पूर्वोक्त कथनानुसार यहाँ भी जानना चाहिए ।

३५. एवं पुढविकाइया ।

[३५] इसी प्रकार पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध के विषय में समझना चाहिए ।

३६. एवं जाव मणुस्सपंचिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! किं देसबंधे, सव्वबंधे ?

गोयमा ! देसबंधे वि, सव्वबंधे वि ।

[३६] इसी प्रकार यावत्—'[प्र] भगवन् ! मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध क्या देशबन्ध है या सर्वबन्ध है ? [उ] गौतम ! वह देशबन्ध भी है और सर्वबन्ध भी है'—यहाँ तक कहना चाहिए ।

३७. ओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

गोयमा ! सव्वबंधे एक्कं समयं; देसबंधे जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं समयूणाइं ।

[३७ प्र] भगवन् ! औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध काल की अपेक्षा, कितने काल तक रहता है ?

[३७ उ] गौतम ! सर्वबन्ध एक समय तक रहता है और देशबन्ध जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः एक समय कम तीन पल्योपम तक रहता है ।

३८ एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

गोयमा ! सव्वबंधे एक्कं समयं; देसबंधे जहन्नेण एक्कं समयं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं समऊणाइं।

[३८ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध कालतः कितने काल तक रहता है ?

[३८ उ] गौतम ! सर्वबन्ध एक समय तक रहता है और देशबन्ध जघन्यतः एक समय तक और उत्कृष्टतः एक समय कम २२ हजार वर्ष तक रहता है।

३९. पुढविकाइयएगिंदिय० पुच्छा।

गोयमा ! सव्वबंधे एक्कं समयं, देसबंधे जहन्नेणं खुड्डागभवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं समऊणाइं।

[३९ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध कालतः कितने काल तक रहता है ?

[३९ उ] गौतम ! (वह) सर्वबन्ध एक समय तक रहता है और देशबन्ध जघन्यतः तीन समय कम क्षुल्लक भव-ग्रहण पर्यन्त तथा उत्कृष्टतः एक समय कम २२ हजार वर्ष तक रहता है।

४० एवं सव्वेसिं सव्वबंधो एक्कं समयं, देसबंधो जेसिं नत्थि वेउव्वियसरीरं तेसिं जहन्नेणं खुड्डागं भवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं जा जस्स उक्कोसिया ठिती सा समऊणा कायव्वा। जेसिं पुण अत्थि वेउव्वियसरीरं तेसिं देसबंधो जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं जा जस्स ठिती सा समऊणा कायव्वा जाव मणुस्साणं देसबंधे जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं समयूणाइं।

[४०] इस प्रकार सभी जीवों का सर्वबन्ध एक समय तक रहता है। जिनके वैक्रियशरीर नहीं है, उनका देशबन्ध जघन्यतः तीन समय कम क्षुल्लकभवग्रहण-पर्यन्त और उत्कृष्टतः जिस जीव की जितनी उत्कृष्ट आयुष्य-स्थिति है, उससे एक समय कम तक रहता है। जिनके वैक्रियशरीर है, उनके देशबन्ध जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः जिसकी जितनी (आयुष्य) स्थिति है, उसमें से एक समय कम तक रहता है। इस प्रकार यावत् मनुष्यों का देशबन्ध जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः एक समय कम तीन पल्योपम तक जानना चाहिए।

४१ ओरालियसरीरबंधंतरं णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ।

गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहन्नेणं खुड्डागं भवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं पुव्वकोडिसमयाहियाइं। देसबंधंतरं जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं तिसमयाहियाइं।

[४१ प्र] भगवन् ! औदारिक शरीर के बन्ध का अन्तर कितने काल का होता है ?

[४१ उ] गौतम ! इसके सर्वबन्ध का अन्तर जघन्यतः तीन समय कम क्षुल्लकभव-ग्रहण-पर्यन्त है और उत्कृष्टतः समयाधिक पूर्वकोटि तथा तेतीस सागरोपम है। देशबन्ध का अन्तर जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः तीन समय अधिक तेतीस सागरोपम है।

४२. एगिंदियओरालिय० पुच्छा।

गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहन्नेणं खुड्डागं भवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं समयाहियाइं। देसबंधंतरं जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

[४२ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-बन्ध का अन्तर कितने काल का है ?

[४२ उ] गौतम ! इसके सर्वबन्ध का अन्तर जघन्यतः तीन समय कम क्षुल्लक भव-ग्रहण-पर्यन्त है और उत्कृष्टतः एक समय अधिक बाईस हजार वर्ष है। देशबन्ध का अन्तर जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त का है।

४३. पुढविक्काइयएगिंदिय० पुच्छा।

गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहेव एगिंदियस्स तहेव भाणियव्वं; देसबंधंतरं जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तिण्णि समया।

[४३ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीरबन्ध का अन्तर कितने काल का है ?

[४३ उ] गौतम ! इसके सर्वबन्ध का अन्तर जिस प्रकार एकेन्द्रिय का कहा गया है, उसी प्रकार कहना चाहिए। देशबन्ध का अन्तर जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः तीन समय का है।

४४. जहा पुढविक्काइयाणं एवं जाव चउरिंदियाणं वाउक्काइयवज्जाणं, नवरं सव्वबंधंतरं उक्कोसेणं जा जस्स ठिती सा समयाहिया कायव्वा। वाउक्काइयाणं सव्वबंधंतरं जहन्नेणं खुड्डागभवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं समयाहियाइं। देसबंधंतरं जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

[४४] जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों का शरीरबन्धान्तर कहा गया है, उसी प्रकार वायुकायिक जीवों को छोड़ कर चतुरिन्द्रिय तक सभी जीवों का शरीरबन्धान्तर कहना चाहिए, किन्तु विशेषतः उत्कृष्ट सर्वबन्धान्तर जिस जीव की जितनी (आयुष्य) स्थिति हो, उससे एक समय अधिक कहना चाहिए। (अर्थात्—सर्वबन्ध का अन्तर समयाधिक आयुष्यस्थिति-प्रमाण जानना चाहिए।) वायुकायिक जीवों के सर्वबन्ध का अन्तर जघन्यतः तीन समय कम क्षुल्लकभव-ग्रहण और उत्कृष्टतः समयाधिक तीन हजार वर्ष का है। इनके देशबन्ध का अन्तर जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त का है।

४५. पंचिंदियतिरिक्खजोणियओरालिय० पुच्छा। सव्वबंधंतरं जहन्नेणं खुड्डागभवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी समयाहिया, देसबंधंतरं जहा एगिंदियाणं तहा पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं।

[४५ प्र] भगवन् ! पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-औदारिकशरीरबन्ध का अन्तर कितने काल का कहा गया है ?

[४५ उ] गौतम ! इनके सर्वबन्ध का अन्तर जघन्यतः तीन समय कम क्षुल्लकभव-ग्रहण है

और उत्कृष्टत समयाधिक पूर्वकोटि का है। देशबन्ध का अन्तर जिस प्रकार एकेन्द्रिय जीवो का कहा गया, उसी प्रकार सभी पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको का कहना चाहिए।

४६ एवं मणुस्साण वि निरवसेस भाणियव्व जाव उक्कोसेण अंतोमुहुत्त।

[४६] इसी प्रकार मनुष्यो के शरीरबन्धान्तर के विषय मे भी पूर्ववत् यावत्—'उत्कृष्टत अन्तर्मुहूर्त्त का है'—यहाँ तक सारा कथन करना चाहिए।

४७ जीवस्स ण भते ! एगिंदियत्ते णोएगिंदियत्ते पुणरवि एगिंदियत्ते एगिंदियओरालिय-सरीरप्पओगबंधंतर कालओ केवच्चिर होइ ?

गोयमा ! सव्वबंधंतर जहन्नेण दो खुड्डागभवग्गहणाइ तिसमयूणाइं, उक्कोसेणं दो सागरो-वमसहस्साइं सखेज्जवासमब्भहियाइ, देसबंधंतर जहन्नेण खुड्डाग भवग्गहण समयाहियं, उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइ।

[४७ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रियावस्थागत जीव (एकेन्द्रियत्व को छोड कर) नो-एकेन्द्रियावस्था (किसी दूसरी जाति) मे रह कर पुन एकेन्द्रियरूप (एकेन्द्रियजाति) मे आए तो एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोगबन्ध का अन्तर कितने काल का होता है ?

[४७ उ] गौतम ! (ऐसे जीव का) सर्वबन्धान्तर जघन्यत तीन समय कम दो क्षुल्लक भव-ग्रहण काल और उत्कृष्टत सख्यात वर्ष-अधिक दो हजार सागरोपम का होता है।

४८ जीवस्स ण भते ! पुढविकाइयत्ते नोपुढविकाइयत्ते पुणरवि पुढविकाइयत्ते पुढविकाइय-एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबधतर कालओ केवच्चिर होइ ?

गोयमा ! सव्वबधंतरं जहन्नेण दो खुड्डाइं भवग्गहणाइं तिसमयऊणाइ, उक्कोसेण अणंतं काल, अणता उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा, असखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, ते ण पोग्गलपरियट्टा आवलियाए असखेज्जइभागो। देसबधतरं जहन्नेण खुड्डागभवग्गहण समयाहिय, उक्कोसेण अणत काल जाव आवलियाए असखेज्जइभागो।

[४८ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक-अवस्थागत जीव नो-पृथ्वीकायिक-अवस्था मे (पृथ्वीकाय को छोड कर अन्य किसी काय मे) उत्पन्न हो (वहाँ रह) कर, पुन पृथ्वीकायिकरूप (पृथ्वीकाय) मे आए, तो पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध का अन्तर कितने काल का होता है ?

[४८ उ] गौतम ! (ऐसे जीव का) सर्वबन्धान्तर जघन्यत तीन समय कम दो क्षुल्लकभव-ग्रहण काल और उत्कृष्टत अनन्तकाल होता है। कालत अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल है, क्षेत्रत अनन्त लोक, असख्येय पुद्गल-परावर्तन हैं। वे पुद्गल-परावर्तन आवलिका के असख्यातवें भाग-प्रमाण हैं। (अर्थात्—आवलिका के असख्यातवे भाग मे जितने समय हैं, उतने पुद्गल परावर्तन है।) देशबन्ध का अन्तर जघन्यत समयाधिक क्षुल्लकभव-ग्रहण-काल और उत्कृष्टत अनन्तकाल, यावत्—'आवलिका के असख्यातवें भाग-प्रमाण पुद्गल-परावर्तन है', यहाँ तक जानना चाहिए।

४९ जहा पुढविक्काइयाण एव वणस्सइकाइयवज्जाण जाव मणुस्साण। वणस्सइकाइयाण दोण्णि खुड्डाइ एव चेव; उक्कोसेण असखिज्ज काल, असखिज्जाओ उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असंखेज्जा लोगा। एव देसव ध तर पि उक्कोसेण पुढवीकालो।

[४९] जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवो का प्रयोगबन्धान्तर कहा गया है, उसी प्रकार वनस्पतिकायिक जीवो को छोड कर यावत् मनुष्यो के प्रयोगबन्धान्तर तक (सभी जीवो के विषय मे) समझना चाहिए। वनस्पतिकायिक जीवो के सर्वबन्ध का अन्तर जघन्यत काल की अपेक्षा से तीन समय कम दो क्षुल्लकभव-ग्रहणकाल, और उत्कृष्टत असख्येयकाल है, अथवा असख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी है, क्षेत्रत असख्येय लोक है। इसी प्रकार देशबन्ध का अन्तर भी जघन्यत समयाधिक क्षुल्लकभवग्रहण तक का है, और उत्कृष्टत पृथ्वीकायिक स्थितिकाल तक है, (अर्थात्—असख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल यावत् असख्येय लोक है।)

५० एएसि ण भते! जीवाण ओरालियसरीरस्स देसव धगाण सव्वब धगाण अब धगाण य कयरे कयरेहितो जाव विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा ओरालियसरीरस्स सव्वब धगा अब धगा विसेसाहिया, देसब धगा असंखेज्जगुणा।

[५० प्र] भगवन्! औदारिक शरीर के इन देशबन्धक, सर्वबन्धक और अबन्धक जीवो मे कौन किनसे अल्प, बहुत (अधिक), तुल्य और विशेषाधिक है?

[५० उ] गौतम! सबसे थोडे (अल्प) औदारिक शरीर के सर्वबन्धक जीव है, उनसे अबन्धक जीव विशेषाधिक है, और उनसे असख्यात गुणे देशबन्धक जीव है।

विवेचन—शरीरप्रयोगबन्ध के प्रकार एव औदारिकशरीरप्रयोगबन्ध के सम्बन्ध मे विभिन्न पहलुओ से निरूपण—प्रस्तुत २७ सूत्रो (सू २४ से ५० तक) मे शरीरप्रयोगबन्ध के विषय मे निम्नोक्त तथ्यो का निरूपण किया गया है—

१ औदारिक आदि के भेद से शरीरप्रयोगबन्ध ५ प्रकार का है।

२ एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक औदारिक शरीरप्रयोगबन्ध पाच प्रकार का है।

३ एकेन्द्रिय-औदारिकशरीरप्रयोगबन्ध पृथ्वीकाय से लेकर वनस्पतिकाय तक ५ प्रकार के है।

४ द्वीन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय पर्याप्त, अपर्याप्त गर्भज मनुष्य तक औदारिकशरीरप्रयोग-बन्ध समझना चाहिए।

५ समस्त जीवो के औदारिकशरीरप्रयोगबन्ध वीर्य, योग, सद्द्रव्य एव प्रमाद के कारण कर्म, योग, भव और आयुष्य की अपेक्षा औदारिकशरीरप्रयोग—नामकर्म के उदय से होता है।

६ समस्त जीवो के औदारिकशरीरप्रयोगबन्ध देशबन्ध भी है, सर्वबन्ध भी।

७ समस्त जीवो के औदारिकशरीरप्रयोगबन्ध की कालत स्थिति की सीमा।

८ समस्त जीवो के सर्व-देशबन्ध की अपेक्षा कालत औदारिकशरीरबन्ध के अन्तर-काल की सीमा।

९ समस्त जीवो द्वारा अपने एकेन्द्रियादि पूर्वरूप को छोड कर अन्य रूपो मे उत्पन्न हो या रह कर, पुन उसी अवस्था (रूप) मे आने पर औदारिकशरीर-प्रयोगबन्धान्तर-काल की सीमा।

१० औदारिकशरीर के देशबन्धक, सर्वबन्धक और अबन्धक जीवो का अल्प-बहुत्व।

औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध के आठ कारण—जिस प्रकार प्रासादनिर्माण मे द्रव्य, वीर्य, सयोग, योग, (मन-वचन-काया का व्यापार), शुभकर्म (का उदय), आयुष्य, भव (तिर्यंच-मनुष्यभव) और काल (तृतीय-चतुर्थ-पचम आरा), इन कारणो की अपेक्षा होती है, उसी प्रकार औदारिकशरीर-बन्ध मे भी निम्नोक्त ८ कारण अपेक्षित है—(१) **सवीर्यता**—वीर्यान्तरायकर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न शक्ति, (२) **सयोगता**—योगायुक्तता (३) **सद्द्रव्यता**—जीव के तथारूप औदारिकशरीरयोग्य तथाविध पुद्गलो—(द्रव्यो) की विद्यमानता (४) **प्रमाद**—शरीरोत्पत्तियोग्य विषय-कषायादि प्रमाद, (५) **कर्म**—तिर्यञ्चमनुष्यादि जातिनामकर्म, (६) **योग**—काययोगादि, (७) **भव**—तिर्यञ्च एव मनुष्य का अनुभूयमान भव, और (८) **आयुष्य**—तिर्यञ्च और मनुष्य का आयुष्य। इन ८ कारणो से उदयप्राप्त औदारिकशरीरप्रयोग-नामकर्म से औदारिकशरीर-प्रयोग-बन्ध होता है। प्रस्तुत प्रसग मे मूल प्रश्न है—औदारिकशरीरप्रयोगबन्ध के कारणभूत कर्मोदय के सम्बन्ध मे, अत इस प्रश्न का उत्तर तो यही होना चाहिए—औदारिकशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से यह होता है, किन्तु मूलपाठ मे जो ८ कारण बताए हैं, वे इस मुख्य कारण—नामकर्म के सहकारी कारण हैं, जो औदारिक शरीर-प्रयोगबन्ध मे आवश्यक हैं, यही इस सूत्र का आशय है।

औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध के दो रूप : सर्वबन्ध, देशबन्ध—जिस प्रकार घृतादि से भरी हुई एव अग्नि से तपी हुई कडाही मे जब मालपूआ डाला जाता है, तो प्रथम समय मे वह घृतादि को केवल ग्रहण करता (खीचता) है, तत्पश्चात् शेष समयो मे वह घृतादि को ग्रहण भी करता है और छोडता भी है, उसी प्रकार यह जीव जब पूर्वशरीर को छोड कर अन्य शरीर को धारण करता है, तब प्रथम समय मे उत्पत्तिस्थान मे रहे हुए उस शरीर के योग्य पुद्गलो को केवल ग्रहण करता है। इस प्रकार का यह बन्ध—'सर्वबन्ध' है। तत्पश्चात् द्वितीय आदि समयो मे शरीरयोग्य पुद्गलो को ग्रहण भी करता है और छोडता भी है, अत यह बन्ध देशबन्ध है। इसलिए यहाँ कहा गया है कि औदारिकशरीरप्रयोगबन्ध सर्वबन्ध भी होता है, देशबन्ध भी। जो सर्वबन्ध होता है, वह केवल एक समय का होता है। मालपूए के पूर्वोक्त दृष्टान्तानुसार जब वायुकायिक या मनुष्यादि जीव वैक्रिय-शरीर करके उसे छोड देता है, तब छोडने के बाद औदारिकशरीर का एक समय तक सर्वबन्ध करता है, तत्पश्चात् दूसरे समय मे वह देशबन्ध करता है। दूसरे समय मे यदि उसका मरण हो जाए तो इस अपेक्षा से देशबन्ध जघन्य एक समय का होता है। औदारिकशरीरधारी जीवो की उत्कृष्ट आयुष्यस्थिति तीन पल्योपम की है। उसमे से जीव प्रथम समय मे सर्वबन्धक और उसके बाद एक समय कम तीन पल्योपम तक देशबन्धक रहता है। इस दृष्टि से समस्त जीवो की अपनी-अपनी उत्कृष्ट आयुष्यस्थिति के अनुसार एक समय तक वे सर्वबन्धक और फिर देशबन्धक रहते हैं। जैसे—एकेन्द्रिय जीवो की उत्कृष्ट आयुस्थिति २२ हजार वर्ष की है। उसमे से १ समय तक वे सर्वबन्धक और फिर १ समय कम २२ हजार वर्ष तक वे देशबन्धक रहते है।

उत्कृष्ट देशबन्ध—जिसकी जितनी उत्कृष्ट आयुष्यस्थिति होती है, उसका देशबन्ध उसमे एक समय कम होता है। जैसे—अप्काय की ७००० वर्ष, तेजस्काय की ३ अहोरात्र, वनस्पतिकाय की

१०००० वर्ष, द्वीन्द्रिय की १२ वर्ष, त्रीन्द्रिय की ४९ दिन चतुरिन्द्रिय की ६ मास की उत्कृष्ट आयु-स्थिति होती है।

क्षुल्लक-भवग्रहण का आशय—अपनी-अपनी काय और जाति मे जो छोटे-से-छोटा भव हो, उसे क्षुल्लकभव कहते है। एक अन्तर्मुहूर्त्त मे सूक्ष्मनिगोद के ६५५३६ क्षुल्लकभव होते हैं, एक-श्वासोच्छ्वास मे १७ से कुछ अधिक क्षुल्लकभव होते है। पृथ्वीकाय के एक मुहूर्त्त मे १२८२४ क्षुल्लकभव होते है। अप्काय से चतुरिन्द्रिय जीवो तक का देशवन्ध जघन्य ३ ममय कम क्षुल्लकभव ग्रहण तक है। क्योकि उनमे भी वैक्रियशरीर नही होता।

औदारिक शरीर के सर्ववन्ध और देशवन्ध का अन्तर-काल—समुच्चय जीवो की अपेक्षा औदारिक शरीरबन्ध का सामान्य अन्तर—सर्वबन्ध का अन्तर—तीन समय कम क्षुल्लकभव ग्रहण पर्यन्त बताया है, उसका आशय यह है कि कोई जीव तीन समय की विग्रहगति से औदारिकशरीर-धारी जीवो मे उत्पन्न हुआ तो वह विग्रहगति के दो समय मे अनाहारक रहता है, और तीसरे समय मे सर्वबन्धक होता है। यदि क्षुल्लकभव तक जीवित रह कर मृत्यु को प्राप्त हो गया और औदारिक शरीरधारी जीवो मे उत्पन्न हुआ तो वहाँ पहले समय मे वह सर्वबन्धक होता है। इस प्रकार सर्ववन्ध का सर्वबन्ध के साथ जघन्य अन्तर तीन समय कम क्षुल्लकभवग्रहण होता है। उत्कृष्ट अन्तर समयाधिक पूर्वकोटि और तेतीस सागरोपम का बताया है, उसका आशय यह है कि कोई जीव मनुष्य आदि गति मे अविग्रहगति से आकर उत्पन्न हुआ। वहाँ प्रथम समय मे वह सर्ववन्धक रहा। तत्पश्चात् पूर्वकोटि तक जीवित रहकर मृत्यु को प्राप्त हुआ, वहाँ से वह ३३ सागरोपम की स्थितिवाला नैरयिक हुआ, अथवा अनुत्तरविमानवासी सर्वार्थसिद्ध देव हुआ। वहाँ से च्यव (या मर) कर वह तीन समय की विग्रहगति द्वारा आकर औदारिकशरीरधारी जीव हुआ। वह जीव विग्रहगति मे दो समय तक अनाहारक रहा और तीसरे समय मे औदारिकशरीर का सर्वबन्धक रहा। विग्रहगति मे जो वह अनाहारक दो समय तक रहा था, उनमे से एक समय पूर्वकोटि के सर्वबन्धक के स्थान मे डाल दिया जाए तो वह पूर्वकोटि पूर्ण हो जाती है, उस पर एक समय अधिक बचा हुआ रहता है। यो सर्वबन्ध का परस्पर उत्कृष्ट अन्तर एक समयाधिक पूर्वकोटि और तेतीस सागरोपम होता है।

औदारिक शरीर के देशबन्ध का अन्तर—जघन्य एक समय है, क्योकि देशबन्धक मर कर अविग्रह से प्रथम समय मे सर्वबन्धक होकर पुन द्वितीयादि समयो मे देशबन्धक हो जाता है। इस प्रकार देशबन्धक का देशबन्धक के साथ अन्तर जघन्यत एक समय का होता है। उत्कृष्टत अन्तर तीन समय अधिक ३३ सागरोपम का है। क्योकि देशबन्धक मर कर ३३ सागरोपम की स्थिति के नैरयिको या देवो मे उत्पन्न हो गया। वहाँ से च्यवकर तीन समय की विग्रहगति से औदारिक शरीर-धारी जीवो मे उत्पन्न हुआ। इस प्रकार विग्रहगति मे दो समय तक अनाहारक रहा, तीसरे समय मे सर्वबन्धक हुआ और फिर देशबन्धक हो गया। इस प्रकार देशबन्धक का उत्कृष्ट अन्तर ३ समय अधिक ३३ सागरोपम का घटित होता है।

आगे के तीन सूत्रो मे एकेन्द्रियादि का कथन करते हुए औदारिकशरीरबन्ध का अन्तर विशेषरूप से बताया गया है।

प्रकारान्तर से औदारिकशरीरबन्ध का अन्तर—कोई एकेन्द्रिय जीव तीन समय की विग्रह-गति से उत्पन्न हुआ, तो वह विग्रहगति मे दो समय तक अनाहारक रहा और तीसरे समय मे सर्व-बन्धक हुआ। फिर तीन समय कम क्षुल्लकभव-प्रमाण आयुष्य पूर्ण करके एकेन्द्रिय के सिवाय

द्वीन्द्रियादि जाति मे उत्पन्न हो जाय तो वहाँ भी क्षुल्लकभव की स्थिति पूर्ण करके अविग्रहगति द्वारा पुन एकेन्द्रिय जाति मे उत्पन्न हो तो प्रथम समय मे वह सर्वबन्धक रहता है। इस प्रकार सर्वबन्ध का जघन्य अन्तर तीन समय कम दो क्षुल्लकभव होता है। कोई पृथ्वीकायिक जीव, अविग्रहगति द्वारा उत्पन्न हो तो प्रथम समय मे वह सर्वबन्धक होता है। वहाँ २२,००० वर्ष की उत्कृष्ट स्थिति पूर्ण करके मर कर त्रसकायिक जीवो मे उत्पन्न हो, और वहाँ भी सख्यातवर्षाधिक दो हजार सागरोपम की उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्ण करके पुन एकेन्द्रिय जीवो मे उत्पन्न हो तो वहाँ प्रथम समय मे वह सर्वबन्धक होता है। इस प्रकार सर्वबन्ध का उत्कृष्ट अन्तर सख्यातवर्षाधिक दो हजार सागरोपम होता है।

कोई पृथ्वीकायिक जीव मर कर पृथ्वीकायिक जीवो के सिवाय दूसरे जीवो मे उत्पन्न हो जाए और वहाँ से मर कर पुन पृथ्वीकाय मे उत्पन्न हो तो उसके सर्वबन्ध का अन्तर जघन्य तीन समय कम दो क्षुल्लकभव होता है। उत्कृष्टकाल की अपेक्षा अनन्तकाल—अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी-प्रमाण काल होता है। अर्थात्—अनन्तकाल के समयो मे उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल के समयो का अपहार किया (भाग दिया) जाए तो अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल होता है। क्षेत्र की अपेक्षा अनन्तलोक है, इसका तात्पर्य है—अनन्त काल के समयो मे लोकाकाश के प्रदेशो द्वारा अपहार किया जाए, तो अनन्तलोक होते हैं। वनस्पतिकाय की कायस्थिति अनन्तकाल की है, इस अपेक्षा से सर्वबन्ध का उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है। यह अनन्तकाल असख्य पुद्‌गलपरावर्तन-प्रमाण है।

पुद्‌गलपरावर्तन आदि की व्याख्या—दस कोटाकोटि अद्धा पल्योपमो का एक सागरोपम होता है। दस कोटाकोटि सागरोपमो का एक अवसर्पिणीकाल होता है, और इतने ही काल का एक उत्सर्पिणीकाल होता है। ऐसी अनन्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी का एक पुद्‌गलपरावर्तन होता है। असख्यात समयो की एक आवलिका होती है। उस आवलिका के असख्यात समयो का जो असख्यातवा भाग है उसमे जितने समय होते हैं, उतने पुद्‌गलपरावर्तन यहाँ लिये गए है। इनकी सख्या भी असख्यात हो जाती है, क्योकि असख्यात के असख्यात भेद है।

औदारिकशरीर के बन्धकों का अल्पबहुत्व—सबसे थोडे सर्वबन्धक जीव इसलिए हैं कि वे उत्पत्ति के समय ही पाए जाते हैं। उनसे अबन्धक जीव विशेषाधिक है, क्योकि विग्रहगति मे और सिद्धगति मे जीव अबन्धक होते है। उनसे देशबन्धक इसलिए असख्यातगुणे हैं कि देशबन्ध का काल असख्यातगुणा है।[1]

वैक्रियशरीरप्रयोगबन्ध के भेद-प्रभेद एवं विभिन्न पहलुओं से तत्सम्बन्धित विचारणा—

५१. वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कतिविहे पन्नत्ते?

गोयमा! दुविहे पन्नत्ते, तं जहा—एगिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे य, पंचिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे य।

[५१ प्र] भगवन्! वैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है?

[५१ उ] गौतम! वह दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—(१) एकेन्द्रिय वैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध और (२) पचेन्द्रिय वैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्राक ४०० से ४०३ तक

५२ जइ एगिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे किं वाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे, अवाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे ?

एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओगाहणसंठाणे वेउव्वियसरीरभेदो तहा भाणियव्वो जाव पज्जत्त-सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयकप्पातीयवेमाणियदेवपंचिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे य अपज्जत्तसव्वट्ठ-सिद्धअणुत्तरोववाइय जाव पयोगबंधे य।

[५२ प्र] भगवन् ! यदि एकेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर प्रयोगबन्ध है, तो क्या वायुकायिक एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगबन्ध है अथवा अवायुकायिक एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगबन्ध है ?

[५२ उ] गौतम ! इस प्रकार के अभिलाप द्वारा (प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवें) अवगाहना संस्थानपद में वैक्रियशरीर के जिस प्रकार भेद कहे गए हैं, उसी प्रकार यहाँ भी यावत्—'पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध और अपर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध' तक कहना चाहिए।

५३. वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

गोयमा ! वीरियसजोगसद्दव्वयाए जाव आउयं वा लद्धिं वा पडुच्च वेउव्वियसरीरप्पयोग-नामाए कम्मस्स उदएणं वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे।

[५३ प्र] भगवन् ! वैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[५३ उ] गौतम ! सवीर्यता, सयोगता, सद्द्रव्यता, यावत् आयुष्य अथवा लब्धि की अपेक्षा तथा वैक्रियशरीर-प्रयोग-नामकर्म के उदय से वैक्रियशरीरप्रयोग-बन्ध होता है।

५४ वाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

गोयमा ! वीरियसजोगसद्दव्वयाए तं चेव जाव लद्धिं वा पडुच्च वाउक्काइयएगिंदियवेउव्विय जाव बंधे।

[५४ प्र] भगवन् ! वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[५४ उ] गौतम ! सवीर्यता, सयोगता, सद्द्रव्यता यावत्—आयुष्य और लब्धि की अपेक्षा से तथा वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-प्रयोग-नामकर्म के उदय से वायुकायिक एकेन्द्रियवैक्रिय-शरीरप्रयोगबन्ध होता है।

५५ [१] रयणप्पभापुढविनेरइयपंचिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

गोयमा ! वीरियसजोगसद्दव्वयाए जाव आउयं वा पडुच्च रयणप्पभापुढवि० जाव बंधे।

[५५-१ प्र] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक-पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[५५-१ उ] गौतम ! सवीर्यता, सयोगता, सद्द्रव्यता यावत्—आयुष्य की अपेक्षा से तथा रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक-पचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-प्रयोग-नामकर्म के उदय से रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक पचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध होता है।

[२] एव जाव अहेसत्तमाए।

[५५-२] इसी प्रकार यावत्-अध सप्तम नरक-पृथ्वी तक कहना चाहिए।

५६ तिरिक्खजोणियपचिंदियवेउव्वियसरीर० पुच्छा।

गोयमा ! वीरिय० जहा वाउक्काइयाण।

[५६ प्र] भगवन् ! तिर्यञ्चयोनिकपचेन्द्रियवैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[५६ उ] गौतम ! सवीर्यता यावत्—आयुष्य और लब्धि को लेकर तथा तिर्यचयोनिक पचेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीरप्रयोग-नामकर्म के उदय से वह होता है।

५७ मणुस्सपचिंदियवेउव्विय० ?

एव चेव।

[५७ प्र] भगवन् ! मनुष्य-पचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[५७ उ] गौतम ! मनुष्य-पचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध के विषय मे भी इसी प्रकार (पूर्ववत्) जान लेना चाहिए।

५८. [१] असुरकुमारभवणवासिदेवपचिंदियवेउव्विय० ?

जहा रयणप्पभापुढविनेरइया।

[५८-१ प्र] भगवन् ! असुरकुमार-भवनवासी-देव-पचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[५८-१ उ] गौतम ! इसका कथन भी रत्नप्रभापृथ्वीनैरयिको की तरह समझना चाहिए।

[२] एव जाव थणियकुमारा।

[५८-२] इसी प्रकार यावत्—स्तनितकुमार-भवनवासी देवो तक कहना चाहिए।

५९ एव वाणमतरा।

[५९] इसी प्रकार वाण-व्यन्तर देवो के विषय मे भी रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिको के समान जानना चाहिए।

६० एव जोइसिया।

[६०] इसी प्रकार ज्योतिष्कदेवो के विषय मे जानना चाहिए।

६१ [१] एव सोहम्मकप्पोवगया वेमाणिया । एव जाव अच्चुय० ।

[६१-१] इसी प्रकार (रत्नप्रभापृथ्वीनैरयिको के समान) सौधर्मकल्पोपपन्नक वैमानिक देवो यावत्—अच्युत-कल्पोपपन्नक वैमानिक देवो तक के विषय मे जानना चाहिए ।

[२] गेवेज्जकप्पातीया वेमाणिया एव चेव ।

[६१-२] ग्रैवेयक-कल्पातीत वैमानिक देवो के विषय मे भी इसी प्रकार जान लेना चाहिए ।

[३] अणुत्तरोववाइयकप्पातीया वेमाणिया एवं चेव ।

[६१-३] अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिक देवो के विषय मे भी पूर्ववत् जान लेना चाहिए ।

६२ वेउव्वियसरीरप्पयोगबधे णं भते ! किं देशबधे, सव्वबधे ?
गोयमा ! देसबधे वि, सव्वबधे वि ।

[६२ प्र] भगवन् ! वैक्रियशरीरप्रयोगबन्ध क्या देशबन्ध है अथवा सर्वबन्ध है ?
[६२ उ] गौतम ! वह देशबन्ध भी है, सर्वबन्ध भी है ।

६३ वाउक्काइयएगिंदिय० ?
एव चेव ।

[६३ प्र] भगवन् ! वायुकायिक एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध क्या देशबन्ध है अथवा सर्वबन्ध है ?
[६३ उ] गौतम ! इसी प्रकार (पूर्ववत्) जानना चाहिए ।

६४ रयणप्पभापुढविनेरइय० ?
एव चेव ।

[६४ प्र] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक-वैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध देशबन्ध है या सर्वबन्ध ?
[६४ उ] गौतम ! इसी प्रकार (पूर्ववत्) जानना चाहिए ।

६५ एव जाव अणुत्तरोववाइया ।

[६५] इसी प्रकार यावत्—अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देवो तक समझना चाहिए ।

६६ वेउव्वियसरीरप्पयोगबधे ण भते ! कालओ केवच्चिर होइ ?
गोयमा ! सव्वबंधे जहन्नेण एक्कं समयं, उक्कोसेणं दो समया । देसबधे जहन्नेण एक्कं समय, उक्कोसेण तेत्तीस सागरोवमाइ समयूणाइ ।

[६६ प्र] भगवन् ! वैक्रियशरीरप्रयोगबन्ध, कालत कितने काल तक रहता है ?
[६६ उ] गौतम ! इसका सर्वबन्ध जघन्यत एक समय तक और उत्कृष्टत दो समय तक

रहता है और देशबन्ध जघन्यत एक समय तक और उत्कृष्टत एक समय कम तेतीस सागरोपम तक रहता है।

६७ वाउक्काइयएगिंदियवेउव्विय० पुच्छा। ३३४।११८

गोयमा! सव्वबधे एक्क समय, देसबंधे जहन्नेण एक्कं समय, उक्कोसेण अतोमुहुत्तं।

[६७ प्र] भगवन्! वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगबन्ध कितने काल तक रहता है?

[६७ उ] गौतम! इसका सर्वबन्ध जघन्यत एक समय और उत्कृष्टत दो समय तक रहता है, तथा देशबन्ध जघन्यत एक समय और उत्कृष्टत अन्तर्मुहूर्त तक रहता है।

६८ [१] रयणप्पभापुढविनेरइय० पुच्छा।

गोयमा! सव्वबधे एक्कं समयं; देसबधे जहन्नेण दसवाससहस्साइ तिसमयऊणाइ, उक्कोसेणं सागरोवम समऊणं।

[६८-१ प्र] भगवन्! रत्नप्रभापृथ्वीनैरयिक-वैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध कितने काल तक रहता है?

[६८-१ उ] गौतम! इसका सर्वबन्ध एक समय तक रहता है, और देशबन्ध, जघन्यत तीन समय कम दस हजार वर्ष तक तथा उत्कृष्टत एक समय कम एक सागरोपम तक रहता है।

[२] एव जाव अहेसत्तमा। नवरं देसबधे जस्स जा जहन्निया ठिती सा तिसमयूणा कायव्वा, जा च उक्कोसिया सा समयूणा।

[६८-२] इसी प्रकार यावत् अध सप्तम नरकपृथ्वी तक जानना चाहिए, किन्तु इतना विशेष है कि जिसकी जितनी जघन्य (आयु-) स्थिति हो, उसमे तीन समय कम जघन्य देशबन्ध तथा जिसकी जितनी उत्कृष्ट (आयु-) स्थिति हो, उसमे एक समय कम उत्कृष्ट देशबन्ध जानना चाहिए।

६९ पंचिदियतिरिक्खजोणियाण मणुस्साण य जहा वाउक्काइयाण।

[६९] पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य का कथन वायुकायिक के समान जानना चाहिए।

७० असुरकुमार-नागकुमार० जाव अणुत्तरोववाइयाण जहा नेरइयाण, नवर जस्स जा ठिई सा भाणियव्वा जाव अणुत्तरोववाइयाण सव्वबंधे एक्कं समय, देसबधे जहन्नेण एक्कत्तीस सागरोवमाइ तिसमयूणाइ, उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइ समयूणाइं।

[७०] असुरकुमार, नागकुमार, यावत्—अनुत्तरोपपातिक देवो का कथन नैरयिको के समान जानना चाहिए। परन्तु इतना विशेष है कि जिसकी जितनी स्थिति हो, उतनी कहनी चाहिए, यावत्—अनुत्तरौपपातिक देवो का सर्वबन्ध एक समय तक रहता है तथा देशबन्ध जघन्य तीन समय कम इकतीस सागरोपम और उत्कृष्ट एकसमय कम तेतीस सागरोपम तक का होता है।

७१ वेउव्वियसरीरप्पयोगबधतर ण भते! कालओ केवच्चिर होइ?

गोयमा! सव्वबधतर जहन्नेणं एक्कं समय, उक्कोसेण अणतं काल, अणताओ जाव आवलियाए असखेज्जइभागो। एव देसबंधतरं पि।

[७१ प्र] भगवन् ! वैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध का अन्तर कालत कितने काल का होता है ?

[७१ उ] गौतम ! इसके सर्वबन्ध का अन्तर जघन्यत एक समय और उत्कृष्टत अनन्तकाल है—अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी यावत्—आवलिका के असख्यातवे भाग के समयो के बराबर पुद्गलपरावर्तन तक रहता है। इसी प्रकार देशबन्ध का अन्तर भी जान लेना चाहिए।

७२. वाउक्काइयवेउव्वियसरीर० पुच्छा।

गोयमा ! सव्वबधतर जहन्नेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण पलिओवमस्स असखेज्जइभाग। एव देसबधतरं पि।

[७२ प्र] भगवन् ! वायुकायिक वैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध का अन्तर कितने काल का होता है ?

[७२ उ] गौतम ! इसके सर्वबन्ध का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पल्योपम का असख्यातवा भाग होता है। इसी प्रकार देशबन्ध का अन्तर भी जान लेना चाहिए।

७३ तिरिक्खजोणियपंचिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबधतर० पुच्छा।

गोयमा ! सव्वबधतर जहन्नेण अतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडीपुहत्त। एव देसबधंतरं पि।

[७३ प्र] भगवन् ! तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध का अन्तर कितने काल का होता है ?

[७३ उ] गौतम ! इसके सर्वबन्ध का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि-पृथक्त्व का होता है। इसी प्रकार देशबन्ध का अन्तर भी जान लेना चाहिए।

७४. एव मणूसस्स वि।

[७४] इसी प्रकार मनुष्य के विषय मे भी (पूर्ववत्) जान लेना चाहिए।

७५ जीवस्स णं भते ! वाउकाइयत्ते नोवाउकाइयत्ते पुणरवि वाउकाइयत्ते वाउकाइय-एगिंदियवेउव्विय० पुच्छा।

गोयमा ! सव्वबधतर जहन्नेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण अणत कालं, वणस्सइकालो। एवं देसबंधंतर पि।

[७५ प्र] भगवन् ! वायुकायिक अवस्थागत जीव (वहाँ से मर कर) वायुकायिक के सिवाय अन्य काय मे उत्पन्न हो कर रहे, और फिर वह वहाँ से मर कर पुन वायुकायिक जीवो मे उत्पन्न हो तो उसके वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध का अन्तर कितने काल का होता है ?

[७५ उ] गौतम ! उसके सर्वबन्ध का अन्तर जघन्यत अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टत अनन्तकाल—वनस्पतिकाल तक होता है। इसी प्रकार देशबन्ध का अन्तर भी जान लेना चाहिए।

७६. [१] जीवस्स णं भते ! रयणप्पभापुढविनेरइयत्ते णोरयणप्पभापुढवि० पुच्छा।

गोयमा ! सव्वबंधतरं जहन्नेणं दस वाससहस्साइं अतोमुहुत्तमब्भहियाइ, उक्कोसेण वणस्सइ-कालो। देसबंधंतर जहन्नेणं अतोमुहुत्त, उक्कोसेण अणतं कालं, वणस्सइकालो।

[७६-१ प्र] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी नैरयिकरूप मे रहा हुआ जीव, (वहाँ से मर कर) रत्नप्रभापृथ्वी के सिवाय अन्य स्थानो मे उत्पन्न हो, और (वहाँ से मर कर) पुन रत्नप्रभापृथ्वी मे नैरयिकरूप से उत्पन्न हो तो उस रत्नप्रभानैरयिक-वैक्रियशरीरप्रयोगवन्ध का अन्तर कितने काल का होता है ?

[७६-१ उ] गौतम ! (ऐसे जीव के वैक्रियशरीरप्रयोगवन्ध के) सर्वबन्ध का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त अधिक दस हजार वर्ष का और उत्कृष्ट अनन्तकाल—वनस्पतिकाल का होता है। देशबन्ध का अन्तर जघन्यत अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टत अनन्तकाल—वनस्पतिकाल का होता है।

[२] एव जाव अहेसत्तमाए, नवर जा जस्स ठिती जहन्निया सा सव्वबंधंतरे जहन्नेणं अंतोमुहुत्तमब्भहिया कायव्वा, सेस त चेव।

[७६-२] इसी प्रकार यावत् अध सप्तम नरकपृथ्वी तक जानना चाहिए। विशेष इतना है कि सर्वबन्ध का जघन्य अन्तर जिस नैरयिक की जितनी जघन्य (आयु-) स्थिति हो, उससे अन्तर्मुहूर्त्त अधिक जानना चाहिए। शेष सर्वकथन पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

७७ पंचिंदियतिरिक्खजोणिय-मणुस्साण जहा वाउक्काइयाण।

[७७] पचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवो और मनुष्यो के सर्वबन्ध का अन्तर वायुकायिक के समान जानना चाहिए।

७८. असुरकुमार-नागकुमार जाव सहस्सारदेवाण एएसिं जहा रयणप्पभागाणं, नवर सव्वबधंतरे जस्स जा ठिती जहन्निया सा अंतोमुहुत्तमब्भहिया कायव्वा, सेसं त चेव।

[७८] [इसी प्रकार] असुरकुमार, नागकुमार यावत् सहस्रारदेवो तक के वैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध का अन्तर रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिको के समान जानना चाहिए। विशेष इतना है कि जिसकी जो जघन्य (आयु-) स्थिति हो, उसके सर्वबन्ध का अन्तर, उससे अन्तर्मुहूर्त्त अधिक जानना चाहिए। शेष सारा कथन पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

७९ जीवस्स ण भते ! आणयदेवत्ते नोआणय० पुच्छा।

गोयमा ! सव्वबधतर जहन्नेण अट्ठारससागरोवमाइ वासपुहत्तमब्भहियाइ; उक्कोसेण अणतं काल, वणस्सइकालो। देसबधतर जहन्नेणं वासपुहुत्त; उक्कोसेणं अणत काल, वणस्सइकालो। एव जाव अच्चुए; नवर जस्स जा ठिती सा सव्वबंधतरे जहन्नेण वासपुहत्तमब्भहिया कायव्वा, सेस तं चेव।

[७९ प्र] भगवन् ! आनत देवलोक मे देवरूप से उत्पन्न कोई देव, (वहाँ से च्यव कर) आनत देवलोक के सिवाय दूसरे जीवो मे उत्पन्न हो जाए, (फिर वहाँ से मर कर) पुन आनत देवलोक मे देवरूप से उत्पन्न हो, तो उस आनतदेव के वैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध का अन्तर कितने काल का होता है ?

[७९ उ] गौतम ! उसके सर्वबन्ध का अन्तर जघन्य वर्ष-पृथक्त्वअधिक अठारह सागरोपम का और उत्कृष्ट अनन्तकाल—वनस्पतिकाल का होता है। देशबन्ध के अंतर का काल जघन्य वर्षपृथक्त्व और उत्कृष्ट अनंतकाल—वनस्पतिकाल का होता है। इसी प्रकार यावत् अच्युत देवलोक तक के वैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध का अन्तर जानना चाहिए। विशेष इतना ही है कि जिसकी जितनी जघन्य (आयु-) स्थिति हो, सर्वबंधान्तर मे उससे वर्षपृथक्त्व-अधिक समझना चाहिए। शेष सारा कथन पूर्ववत् जान लेना चाहिए।

८०. गेवेज्जकप्पातीय० पुच्छा।

गोयमा ! सव्वबंधतरं जहन्नेण बावीसं सागरोवमाइं वासपुहत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं अणंत कालं, वणस्सइकालो। देसबंधतरं जहन्नेणं वासपुहत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

[८० प्र] भगवन् ! ग्रैवेयककल्पातीत वैक्रिय-शरीर-प्रयोगबंध का अंतर कितने काल का होता है ?

[८० उ] गौतम ! सर्वबंध का अंतर जघन्यत वर्षपृथक्त्व-अधिक २२ सागरोपम का है और उत्कृष्टत अनंतकाल—वनस्पतिकाल का होता है। देशबन्ध का अन्तर जघन्यत वर्षपृथक्त्व और उत्कृष्टत वनस्पतिकाल का होता है।

८१. जीवस्स णं भंते ! अणुत्तरोववातिय० पुच्छा।

गोयमा ! सव्वबंधतरं जहन्नेणं एक्कत्तीसं सागरोवमाइं वासपुहत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं सागरोवमाइं। देसबंधतरं जहन्नेणं वासपुहत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं सागरोवमाइं।

[८१ प्र] भगवन् ! कोई अनुत्तरौपपातिकदेवरूप मे रहा हुआ जीव वहाँ से च्यव कर, अनुत्तरौपपातिकदेवो के अतिरिक्त किन्ही अन्य स्थानो मे उत्पन्न हो, और वहाँ से मरकर पुन अनुत्तरौपपातिक देवरूप मे उत्पन्न हो, तो उसके वैक्रियशरीर-प्रयोगबंध का अंतर कितने काल का होता है ?

[८१ उ] गौतम ! उसके सर्वबंध का अंतर जघन्यत. वर्षपृथक्त्व-अधिक इकतीस सागरोपम का और उत्कृष्टत संख्यातसागरोपम का होता है। उसके देशबंध का अंतर जघन्यत वर्षपृथक्त्व का और उत्कृष्टत संख्यात सागरोपम का होता है।

८२. एएसि णं भंते ! जीवाणं वेउव्वियसरीरस्स देसबंधगाणं सव्वबंधगाणं, अबंधगाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा वेउव्वियसरीरस्स सव्वबंधगा, देसबंधगा असंखेज्जगुणा, अबंधगा अणंतगुणा।

[८२ प्र] भगवन् ! वैक्रियशरीर के इन देशबन्धक, सर्वबन्धक और अबन्धक जीवो मे, कौन किनसे कम, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक है ?

[८२ उ] गौतम ! इनमे सबसे थोडे वैक्रियशरीर के सर्वबन्धक जीव है, उनसे देशबन्धक जीव असंख्यातगुणे है और उनसे अबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं।

विवेचन—वैक्रियशरीरप्रयोगबन्ध के भेद-प्रभेद एव विभिन्न पहलुओ से उससे सम्बन्धित विचारणा—प्रस्तुत ३१ सूत्रो (सू ५२ से ८२ तक) मे वैक्रियशरीरप्रयोगबन्ध के भेद-प्रभेद, इसके कारणभूत कर्मोदयादि, इसका देशबन्धत्व-सर्वबन्धत्व-विचार, इसके प्रयोगबन्धकाल की सीमा, प्रयोग-बन्ध का अन्तरकाल, प्रकारान्तर से प्रयोगबन्धान्तर, तथा इनके देश-सर्वबन्धक के अल्पबहुत्व की विचारणा की गई है।

वैक्रियशरीरप्रयोगबन्ध के नौ कारण—औदारिकशरीरबन्ध के सवीर्यता, सयोगता आदि आठ कारण तो पहले बतला दिये गए है, वे ही ८ कारण वैक्रियशरीरबन्ध के है, नौवा कारण है—लब्धि। वैक्रियकरणलब्धि वायुकाय, पचेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्यो की अपेक्षा से कारण बताई गई है। अर्थात्—इन तीनो के वैक्रियशरीरप्रयोगबन्ध नौ कारणो से होता है, जबकि देवो और नारको के आठ कारणो से ही वैक्रियशरीरप्रयोगबन्ध होता है, क्योकि उनका वैक्रियशरीर भवप्रत्ययिक होता है।

वैक्रियशरीरप्रयोगबन्ध के रहने की कालसीमा—वैक्रियशरीरप्रयोगबन्ध भी दो प्रकार से होता है—देशबन्ध और सर्वबन्ध। वैक्रियशरीरी जीवो मे उत्पन्न होता हुआ या लब्धि से वैक्रियशरीर बनाता हुआ कोई जीव प्रथम एक समय तक सर्वबन्धक रहता है। इसलिए सर्वबन्ध जघन्य एक समय तक रहता है। किन्तु कोई औदारिक शरीर वाला जीव वैक्रियशरीर धारण करते समय सर्वबन्धक होकर फिर मर कर देव या नारक हो तो प्रथम समय मे वह सर्वबन्ध करता है, इस दृष्टि से वैक्रियशरीर के 'सर्वबन्ध' का उत्कृष्टकाल दो समय का है। औदारिक शरीरी कोई जीव, वैक्रियशरीर करते हुए प्रथम समय मे सर्वबन्धक होकर द्वितीय समय मे देशबन्धक होता है और तुरत ही मरण को प्राप्त हो जाए तो देशबन्ध जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट एक समय कम ३३ सागरोपम का है, क्योकि देवो और नारको मे उत्कृष्टस्थिति मे उत्पद्यमान जीव प्रथम समय मे सर्वबन्धक होकर शेष समयो (३३ सागरोपम मे एक समय कम तक) मे वह देशबन्धक ही रहता है।

वायुकाय, तिर्यञ्चपचेन्द्रिय और मनुष्य के वैक्रियशरीरीय देशबन्ध की स्थिति जघन्य एक समय की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की होती है। नैरयिको और देवो के वैक्रियशरीरीय देशबन्ध की स्थिति जघन्य तीन समय कम १० हजार वर्ष की और उत्कृष्ट एक समय कम तेतीस सागरोपम की होती है।

वैक्रियशरीरप्रयोगबन्ध का अन्तर—औदारिकशरीरी वायुकायिक कोई जीव वैक्रियशरीर का प्रारम्भ करे तथा प्रथम समय मे सर्वबन्धक होकर मृत्यु प्राप्त करे, उसके पश्चात् वायुकायिको मे उत्पन्न हो तो उसे अपर्याप्त अवस्था मे वैक्रियशक्ति उत्पन्न नही होती। इसलिए वह अन्तर्मुहूर्त्त मे पर्याप्त होकर वैक्रियशरीर करता है, तब सर्वबन्धक होता है। इसलिए सर्वबन्ध का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त्त होता है। औदारिकशरीरी कोई वायुकायिक जीव वैक्रियशरीर करे, तो उसके प्रथम-समय मे वह सर्वबन्धक होता है। इसके बाद देशबन्धक होकर मरण को प्राप्त करे तथा औदारिक-शरीरी वायुकायिक मे पल्योपम का असख्यातवा भाग काल बिता कर अवश्य वैक्रियशरीर करता है। उस समय प्रथम समय मे सर्वबन्धक होता है, इसलिए सर्वबन्धक का उत्कृष्ट अन्तर पल्योपम का असख्यातवा भाग होता है।

रत्नप्रभापृथ्वी का दस हजार वर्ष की स्थितिवाला नैरयिक उत्पत्ति के प्रथम समय मे सर्वबन्धक होता है। वहाँ से काल करके गर्भजपचेन्द्रिय मे अन्तर्मुहूर्त्त रह कर पुन रत्नप्रभापृथ्वी मे

उत्पन्न होता है, तब प्रथम समय मे सर्वबन्धक होता है। इसीलिए इसके सर्वबन्धक का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त्त अधिक १० हजार वर्ष होता है।

आनतकल्प का अठारह सागरोपम की स्थिति वाला कोई देव, उत्पत्ति के प्रथम समय मे सर्वबन्धक होता है। वहाँ से च्यव कर वर्षपृथक्त्व (दो वर्ष से नौ वर्ष तक) आयुष्यपर्यंत मनुष्य में रह कर पुन उसी आनतकल्प मे देव होकर प्रथम समय मे सर्वबन्धक होता है। इसलिए सर्वबन्ध का जघन्य अन्तर वर्षपृथक्त्व-अधिक १८ सागरोपम का होता है।

अनुत्तरौपपातिक देवो मे सर्वबन्ध और देशबन्ध का अन्तर सख्यात सागरोपम है, क्योंकि वहाँ से च्यवकर जीव अनन्तकाल तक ससार मे परिभ्रमण नही करता।

इसके अतिरिक्त वैक्रियशरीरप्रयोगबन्ध के देशबन्ध और सर्वबन्ध का अन्तर मूलपाठ मे बतलाया गया है, वह सुगम है। उसकी घटना स्वयमेव कर लेनी चाहिए।

वैक्रियशरीर के देश-सर्वबन्धको का अल्पबहुत्व—वैक्रियशरीरप्रयोग के सर्वबन्धक जीव सबसे अल्प है, क्योकि उनका काल अल्प है। उनसे देशबन्धक असख्यातगुणे है, क्योकि सर्वबन्धको की अपेक्षा देशबन्धको का काल असख्यातगुणा है। उनसे वैक्रियशरीर के अबन्धक जीव अनन्तगुणे इसलिए हैं कि सिद्धजीव और वनस्पतिकायिक आदि जीव, जो वैक्रियशरीर के अबन्धक है, उनसे अनन्तगुणे है।[1]

आहारकशरीरप्रयोगबन्ध का विभिन्न पहलुओ से निरूपण—

८३ आहारगसरीरप्पयोगबधे ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! एगागारे पण्णत्ते।

[८३ प्र] भगवन् ! आहारकशरीर-प्रयोगबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[८३ उ] गौतम ! आहारकशरीर-प्रयोगबन्ध एक प्रकार का (एकाकार) कहा गया है।

८४ [१] जइ एगागारे पण्णत्ते किं मणुस्साहारगसरीरप्पयोगबधे ? किं अमणुस्साहारगसरीरप्पयोगबंधे ?

गोयमा ! मणुस्साहारगसरीरप्पयोगबधे, नो अमणुस्साहारगसरीरप्पयोगबधे।

[८४-१ प्र] भगवन् ! आहारकशरीर-प्रयोगबन्ध एक प्रकार का कहा गया है, तो वह मनुष्यो के होता है अथवा अमनुष्यो (मनुष्यो के सिवाय अन्य जीवो) के होता है ?

[८४-१ उ] गौतम ! मनुष्यो के आहारकशरीरप्रयोगबन्ध होता है, अमनुष्यो के नही होता।

[२] एव एएणं अभिलावेण जहा ओगाहणसंठाणे जाव इड्ढिपत्तपमत्तसजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तसखेज्जवासाउयकम्मभूमिगगब्भवक्कतियमणुस्साहारगसरीरप्पयोगबधे, णो अणिड्ढिपत्तपमत्त जाव आहारगसरीरप्पयोगबधे।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ४०६ से ४०९ तक।

[८४-२] इस प्रकार इस अभिलाप द्वारा (प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवे) 'अवगाहना-सस्थान-पद' मे कहे अनुसार, यावत्—ऋद्धिप्राप्त-प्रमत्तसयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्त-सख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भज-मनुष्य के आहारकशरीरप्रयोगबन्ध होता है, परन्तु अनृद्धिप्राप्त (ऋद्धि को अप्राप्त), प्रमत्त-सयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्त-सख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भज-मनुष्य के नही होता है।

८५. आहारगसरीरप्पयोगबधे ण भते ! कस्स कम्मस्स उदएण ?

गोयमा ! वीरियसजोगसद्दव्वयाए जाव लद्धि पडुच्च आहारगसरीरप्पयोगणामाए कम्मस्स उदएण आहारगसरीरप्पयोगबधे।

[८५ प्र] भगवन् ! आहारकशरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[८५ उ] गौतम ! सवीर्यता, सयोगता और सद्द्रव्यता, यावत् (आहारक-) लब्धि के निमित्त से, आहारकशरीरप्रयोग-नामकर्म के उदय से आहारकशरीरप्रयोगबन्ध होता है।

८६ आहारगसरीरप्पयोगबधे ण भते ! किं देसबधे, सव्वबधे ?

गोयमा ! देसबधे वि, सव्वबधे वि।

[८६ प्र] भगवन् ! आहारकशरीरप्रयोगबन्ध क्या देशबन्ध होता है, अथवा सर्वबन्ध होता है ?

[८६ उ] गौतम ! वह देशबन्ध भी होता है, सर्वबन्ध भी होता है।

८७ आहारगसरीरप्पओगबधे ण भते ! कालओ केवचिर होइ ?

गोयमा ! सव्वबधे एक्क समय देसबधे जहन्नेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त।

[८७ प्र] भगवन् ! आहारकशरीर-प्रयोगबन्ध, कालत कितने काल तक रहता है ?

[८७ उ] गौतम ! आहारकशरीरप्रयोगबन्ध का सर्वबन्ध एक समय तक रहता है, देशबन्ध जघन्यत अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टत भी अन्तर्मुहूर्त्त तक रहता है।

८८ आहारगसरीरप्पयोगबधतर ण भते ! कालओ केवचिर होइ ?

गोयमा ! सव्वबधतर जहन्नेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण अणत कालं—अणताओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अणता लोया; अवड्ढपोग्गलपरियट्ट देसूण। एव देसबधतर पि।

[८८ प्र] भगवन् ! आहारक-शरीर-प्रयोगबन्ध का अन्तर कितने काल का होता है ?

[८८ उ] गौतम ! इसके सर्वबन्ध का अन्तर जघन्यत अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टत अनन्त-काल, कालत अनन्त-उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीकाल होता है, क्षेत्रत अनन्तलोक देशोन (कुछ कम) अपार्ध (अर्द्ध) पुद्गलपरावर्तन होता है। इसी प्रकार देशबन्ध का अन्तर भी जानना चाहिए।

८९ एएसि ण भते ! जीवाण आहारगसरीरस्स देसबधगाणं, सव्वबधगाण, अबधगाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा आहारगसरीरस्स सव्वबंधगा, देसबंधगा संखेज्जगुणा, अबंधगा अणंतगुणा ।

[८९ प्र] भगवन् ! आहारकशरीर के इन देशबन्धक, सर्वबन्धक और अबन्धक जीवों में कौन किनसे कम, अधिक, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[८९ उ] गौतम ! सबसे थोडे आहारकशरीर के सर्वबन्धक जीव हैं, उनसे देशबन्धक संख्यातगुणे है और उनसे अबन्धक जीव अनन्तगुणे है ।

विवेचन—आहारकशरीरप्रयोगबन्ध का विभिन्न पहलुओं से निरूपण—प्रस्तुत सात सूत्रों (सू ८३ से ८९ तक) मे आहारकशरीरप्रयोगबन्ध, उसका प्रकार, उसकी कालावधि, उसका अन्तर-काल, उसके देश-सर्वबन्धको के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है ।

आहारकशरीरप्रयोगबन्ध के अधिकारी—केवल मनुष्य ही है । उनमे भी ऋद्धि (लब्धि)-प्राप्त, प्रमत्त-सयत, सम्यग्दृष्टि, पर्याप्त, सख्यातवर्ष की आयु वाले, कर्मभूमि मे उत्पन्न, गर्भज मनुष्य ही होते है ।

आहारकशरीरप्रयोगबन्ध की कालावधि—इसका सर्वबन्ध एक समय का ही होता है, और देशबन्ध जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त मात्र ही है, क्योकि इसके पश्चात् आहारकशरीर रहता ही नही है । उस अन्तर्मुहूर्त्त के प्रथम समय मे सर्वबन्ध होता है, तदनन्तर देशबन्ध ।

आहारकशरीरप्रयोगबन्ध का अन्तर—आहारकशरीर को प्राप्त हुआ जीव, प्रथम समय मे सर्वबन्धक होता है, तदनन्तर अन्तर्मुहूर्त्त तक आहारकशरीरी रहकर पुन अपने मूल औदारिक-शरीर को प्राप्त हो जाता है । वहाँ अन्तर्मुहूर्त्त रहने के बाद पुन सशयादि-निवारण के लिए उसे आहारकशरीर बनाने का कारण उत्पन्न होने पर पुन आहारकशरीर बनाता है, और उसके प्रथम समय मे वह सर्वबन्धक ही होता है । इस प्रकार सर्वबन्ध का अन्तर अन्तर्मुहूर्त्त का होता है । यहाँ इन दोनो अन्तर्मुहूर्त्तों को एक अन्तर्मुहूर्त्त की विवक्षा करके एक अन्तर्मुहूर्त्त बताया गया है, तथा उत्कृष्ट अन्तर काल की अपेक्षा अनन्तकाल का—अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल का है और क्षेत्र की अपेक्षा अनन्तलोक-अपार्धपुद्गलपरावर्तन का होता है । देशबन्ध के अन्तर के विषय मे भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिए ।

आहारकशरीर-प्रयोगबन्ध के देश-सर्वबन्धको का अल्पबहुत्व—आहारकशरीर के सर्वबन्धक इसलिए सबसे कम बताए हैं कि उनका समय अल्प ही होता है । उनसे देशबन्धक सख्यातगुणे इसलिए बताए हैं कि देशबन्ध का काल बहुत है । वे सख्यातगुणे ही होते है, असख्यातगुणे नही, क्योकि मनुष्य ही सख्यात है । इस कारण आहारकशरीर के देशबन्धक भी असख्यातगुणे नही हो सकते । उनसे अबन्धक अनन्तगुणे इसलिए बताए हैं कि आहारकशरीर केवल मनुष्यो के, उनमे भी किन्ही सयतजीवो के और उनके भी कदाचित् ही होता है, सर्वदा नही । शेष काल मे वे जीव (स्वय) तथा सिद्ध जीव तथा वनस्पतिकायिक आदि शेष सभी मनुष्येतर जीव आहारकशरीर के अबधक होते है और वे उनसे अनन्तगुणे है ।[1]

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ४०९

तैजसशरीरप्रयोगबन्ध के सम्बन्ध मे विभिन्न पहलुओ से निरूपण—

९०. तेयासरीरप्पयोगबधे ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पचविहे पण्णत्ते, त जहा—एगिंदियतेयासरीरप्पयोगबधे, बेइदिय०, तेइदिय०, जाव पचिदियतेयासरीरप्पयोगबधे ।

[९० प्र] भगवन् ! तैजसशरीर-प्रयोगबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९० उ] गौतम ! वह पाच प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार—एकेन्द्रिय-तैजसशरीरप्रयोगबन्ध, द्वीन्द्रिय-तैजसशरीर-प्रयोगबन्ध, त्रीन्द्रिय-तैजसशरीरप्रयोगबन्ध, चतुरिन्द्रिय-तैजसशरीरप्रयोगबन्ध और पचेन्द्रिय-तैजसशरीर-प्रयोगबन्ध ।

९१ एगिंदियतेयासरीरप्पयोगबधे ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

एव एएण अभिलावेण भेदो जहा ओगाहणसठाणे जाव पज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय-कप्पातीयवेमाणियदेवपचिंदियतेयासरीरप्पयोगबधे य अपज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय० जाव बधे य ।

[९१ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय-तैजसशरीर-प्रयोगबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९१ उ] गौतम ! इस प्रकार इस अभिलाप द्वारा जैसे—(प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवे) अवगाहनासस्थानपद मे भेद कहे है, वैसे यहाँ भी यावत्—पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पचेन्द्रिय-तैजसशरीर-प्रयोगबन्ध और अपर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पचेन्द्रिय-तैजसशरीर-प्रयोगबन्ध, यहाँ तक कहना चाहिए ।

९२ तेयासरीरप्पयोगबधे ण भते ! कस्स कम्मस्स उदएण ?

गोयमा ! वीरियसजोगसद्दव्वयाए जाव आउय वा पडुच्च तेयासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएण तेयासरीरप्पयोगबधे ।

[९२ प्र] भगवन् ! तैजसशरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[९२-उ] गौतम ! सवीर्यता, सयोगता और सद्द्रव्यता, यावत् आयुष्य के निमित्त से, तथा तैजसशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से तैजसशरीर-प्रयोगबन्ध होता है ।

९३ तेयासरीरप्पयोगबधे ण भते ! किं देसबंधे सव्वबधे ?

गोयमा ! देसबधे, नो सव्वबधे ।

[९३ प्र] भगवन् ! तैजसशरीर-प्रयोगबन्ध क्या देशबन्ध होता है, अथवा सर्वबन्ध होता है ?

[९३ उ] गौतम ! देशबन्ध होता है, सर्वबन्ध नही होता ।

९४ तेयासरीरप्पयोगबंधे ण भते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अणाईए वा अपज्जवसिए, अणाईए वा सपज्जवसिए ।

[९४ प्र] भगवन् ! तैजसशरीरप्रयोगबन्ध कालत कितने काल तक रहता है ?

[९४ उ] गौतम ! तैजसशरीरप्रयोगबन्ध (कालत) दो प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार—(१) अनादि-अपर्यवसित और (२) अनादि-सपर्यवसित ।

९५ तेयासरीरप्पयोगबधतर णं भते ! कालओ केवच्चिर होइ ?

गोयमा ! अणाईयस्स अपज्जवसियस्स नत्थि अतर, अणाईयस्स सपज्जवसियस्स नत्थि अतरं ।

[९५ प्र] भगवन् ! तैजसशरीरप्रयोगबन्ध का अन्तर, कालत कितने काल का होता है ?

[९५ उ] गौतम ! (इसके कालत दो प्रकारो मे से) न तो अनादि-अपर्यवसित तैजसशरीर-प्रयोगबन्ध का अन्तर है और न ही अनादि सपर्यवसित तैजसशरीरप्रयोगबन्ध का अन्तर है ।

९६ एएसि ण भते ! जीवाण तेयासरीरस्स देसबधगाण अबधगाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा तेयासरीरस्स अबधगा, देसबधगा अणतगुणा ।

[९६ प्र] भगवन् ! तैजसशरीर के इन देशबन्धक और अबन्धक जीवो मे कौन, किससे कम, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[९६ उ] गौतम ! तैजस-शरीर के अबन्धक जीव सबसे थोडे है, उनसे देशबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं ।

विवेचन—तैजसशरीरप्रयोगबन्ध के सम्बन्ध मे विभिन्न पहलुओ से विचारणा—प्रस्तुत सात सूत्रो (सू. ९० से ९६ तक) मे पूर्ववत् विभिन्न पहलुओ से तैजसशरीरप्रयोगबन्ध से सम्बन्धित विचारणा की गई है ।

तैजसशरीरप्रयोगबन्ध का स्वरूप—तैजसशरीर अनादि है, इसलिए इसका सर्वबन्ध नही होता । तैजसशरीरप्रयोगबन्ध अभव्यजीवो के अनादि-अपर्यवसित (अन्तरहित) होता है, जबकि भव्य जीवो के अनादि-सपर्यवसित (सान्त) होता है । तैजसशरीर सर्व ससारी जीवो के सदैव रहता है, इसलिए तैजसशरीरप्रयोगबन्ध का अन्तर नही होता । तैजसशरीर के अबन्धक केवल सिद्धजीव ही होते है, शेष सभी ससारी जीव इसके देशबन्धक है, इस दृष्टि से सबसे अल्प इसके अबन्धक बतलाए गए हैं, उनसे अनन्तगुणे देशबन्धक इसलिए बताए गए है, कि शेष समस्त ससारी जीव सिद्धजीवो से अनन्तगुणे हैं ।[1]

कार्मणशरीरप्रयोगबन्ध के भेद-प्रभेदो की अपेक्षा विभिन्न दृष्टियो से निरूपण—

९७ कम्मासरीरप्पयोगबधे ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! अट्ठविहे पण्णत्ते, त जहा—नाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबधे जाव अतराइय-कम्मासरीरप्पयोगबंधे ।

[९७ प्र] भगवन् ! कार्मणशरीरप्रयोगबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ४१०

तैजसशरीरप्रयोगबन्ध के सम्बन्ध मे विभिन्न पहलुओं से निरूपण—

९०. तेयासरीरप्पयोगबधे ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पचविहे पण्णत्ते, तं जहा—एगिंदियतेयासरीरप्पयोगबधे, बेइंदिय०, तेइंदिय०, जाव पंचिंदियतेयासरीरप्पयोगबधे ।

[९० प्र] भगवन् ! तैजसशरीर-प्रयोगबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९० उ] गौतम ! वह पाच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—एकेन्द्रिय-तैजसशरीरप्रयोगबन्ध, द्वीन्द्रिय-तैजसशरीर-प्रयोगबन्ध, त्रीन्द्रिय-तैजसशरीरप्रयोगबन्ध, चतुरिन्द्रिय-तैजसशरीरप्रयोगबन्ध और पचेन्द्रिय-तैजसशरीर-प्रयोगबन्ध ।

९१ एगिंदियतेयासरीरप्पयोगबधे ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

एव एएण अभिलावेण भेदो जहा ओगाहणसठाणे जाव पज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय-कप्पातीयवेमाणियदेवपंचिंदियतेयासरीरप्पयोगबधे य अपज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय० जाव बंधे य ।

[९१ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय-तैजसशरीर-प्रयोगबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९१ उ] गौतम ! इस प्रकार इस अभिलाप द्वारा जैसे—(प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवें) अवगाहनासस्थानपद मे भेद कहे है, वैसे यहाँ भी यावत्—पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पचेन्द्रिय-तैजसशरीर-प्रयोगबन्ध और अपर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पचेन्द्रिय-तैजसशरीर-प्रयोगबन्ध, यहाँ तक कहना चाहिए ।

९२. तेयासरीरप्पयोगबधे ण भते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ? ६६४।०।१२

गोयमा ! वीरियसजोगसद्दव्वयाए जाव आउय वा पडुच्च तेयासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएण तेयासरीरप्पयोगबधे ।

[९२ प्र] भगवन् ! तैजसशरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[९२-उ] गौतम ! सवीर्यता, सयोगता और सद्द्रव्यता, यावत् आयुष्य के निमित्त से, तथा तैजसशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से तैजसशरीर-प्रयोगबन्ध होता है ।

९३ तेयासरीरप्पयोगबधे ण भते ! किं देसबधे सव्वबधे ?

गोयमा ! देसबधे, नो सव्वबधे ।

[९३ प्र] भगवन् ! तैजसशरीर-प्रयोगबन्ध क्या देशबन्ध होता है, अथवा सर्वबन्ध होता है ?

[९३ उ] गौतम ! देशबन्ध होता है, सर्वबन्ध नही होता ।

९४. तेयासरीरप्पयोगबंधे णं भते ! कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अणाईए वा अपज्जवसिए, अणाईए वा सपज्जवसिए ।

[९४ प्र] भगवन् ! तैजसशरीरप्रयोगबन्ध कालतः कितने काल तक रहता है ?

[९४ उ] गौतम ! तैजसशरीरप्रयोगबन्ध (कालतः) दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—(१) अनादि-अपर्यवसित और (२) अनादि-सपर्यवसित।

९५. तेयासरीरप्पयोगबंधंतरं णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

गोयमा ! अणाईयस्स अपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं, अणाईयस्स सपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं।

[९५ प्र] भगवन् ! तैजसशरीरप्रयोगबन्ध का अन्तर, कालतः कितने काल का होता है ?

[९५ उ] गौतम ! (इसके कालतः दो प्रकारों में से) न तो अनादि-अपर्यवसित तैजसशरीर-प्रयोगबन्ध का अन्तर है और न ही अनादि सपर्यवसित तैजसशरीरप्रयोगबन्ध का अन्तर है।

९६. एएसि णं भंते ! जीवाणं तेयासरीरस्स देसबंधगाणं अबंधगाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा तेयासरीरस्स अबंधगा, देसबंधगा अणंतगुणा।

[९६ प्र] भगवन् ! तैजसशरीर के इन देशबन्धक और अबन्धक जीवों में कौन, किससे कम, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[९६ उ] गौतम ! तैजस-शरीर के अबन्धक जीव सबसे थोड़े हैं, उनसे देशबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं।

विवेचन—तैजसशरीरप्रयोगबन्ध के सम्बन्ध में विभिन्न पहलुओं से विचारणा—प्रस्तुत सात सूत्रों (सू. ९० से ९६ तक) में पूर्ववत् विभिन्न पहलुओं से तैजसशरीरप्रयोगबन्ध से सम्बन्धित विचारणा की गई है।

तैजसशरीरप्रयोगबन्ध का स्वरूप—तैजसशरीर अनादि है, इसलिए इसका सर्वबन्ध नहीं होता। तैजसशरीरप्रयोगबन्ध अभव्यजीवों के अनादि-अपर्यवसित (अन्तरहित) होता है, जबकि भव्य जीवों के अनादि-सपर्यवसित (सान्त) होता है। तैजसशरीर सर्व संसारी जीवों के सदैव रहता है, इसलिए तैजसशरीरप्रयोगबन्ध का अन्तर नहीं होता। तैजसशरीर के अबन्धक केवल सिद्धजीव ही होते हैं, शेष सभी संसारी जीव इसके देशबन्धक हैं, इस दृष्टि से सबसे अल्प इसके अबन्धक बतलाए गए हैं, उनसे अनन्तगुणे देशबन्धक इसलिए बताए गए हैं, कि शेष समस्त संसारी जीव सिद्धजीवों से अनन्तगुणे हैं।[1]

कार्मणशरीरप्रयोगबन्ध के भेद-प्रभेदों की अपेक्षा विभिन्न दृष्टियों से निरूपण—

९७. कम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! अट्ठविहे पण्णत्ते, तं जहा—नाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे जाव अंतराइय-कम्मासरीरप्पयोगबंधे।

[९७ प्र] भगवन् ! कार्मणशरीरप्रयोगबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

---

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ४१०

[९७ उ] गौतम ! वह आठ प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है—ज्ञानावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध, यावत्—अन्तराय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध।

९८ णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

गोयमा ! नाणपडिणीययाए णाणणिण्हवणयाए णाणंतराएणं णाणप्पदोसेणं णाणच्चासादणाए णाणविसंवादणाजोगेणं णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे।

[९८ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीय-कार्मण-शरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[९८ उ] गौतम ! ज्ञान की प्रत्यनीकता (विपरीतता या विरोध) करने से, ज्ञान का निह्नव (अपलाप) करने से, ज्ञान मे अन्तराय देने से, ज्ञान से प्रद्वेष करने (ज्ञान के दोष निकालने) से, ज्ञान की अत्यन्त आशातना करने से, ज्ञान के विसंवादन-योग से, तथा ज्ञानावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोग नामकर्म के उदय से ज्ञानावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध होता है।

९९ दरिसणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

गोयमा ! दंसणपडिणीययाए एवं जहा णाणावरणिज्जं, नवरं 'दंसण' नामं घेत्तव्वं जाव दंसणविसंवादणाजोगेणं दरिसणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं जाव प्पओगबंधे।

[९९ प्र] भगवन् ! दर्शनावरणीय-कार्मण-शरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[९९-उ] गौतम ! दर्शन की प्रत्यनीकता से, इत्यादि जिस प्रकार ज्ञानावरणीय-कार्मण-शरीर-प्रयोगबन्ध के कारण कहे गए हैं, उसी प्रकार दर्शनावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध के भी कारण जानने चाहिए। विशेष अन्तर इतना ही है कि यहाँ ('ज्ञान' के स्थान मे) 'दर्शन' शब्द कहना चाहिए, यावत्—'दर्शन-विसंवादन-योग से, तथा दर्शनावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोग-नामकर्म के उदय से दर्शनावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध होता है', यहाँ तक कहना चाहिए।

१०० सायावेयणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

गोयमा ! पाणाणुकंपयाए भूयाणुकंपयाए, एवं जहा सत्तमसए दुस्समा-उ (छट्ठु) द्देसए जाव अपरियावणयाए (स ७ उ ६ सु २४) सायावेयणिज्जकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं सायावेयणिज्जकम्मा जाव पयोगबंधे।

[१०० प्र] भगवन् ! सातावेदनीयकर्मशरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[१०० उ.] गौतम ! प्राणियो पर अनुकम्पा करने से, भूतो (चार स्थावर जीवो) पर अनुकम्पा करने से इत्यादि, जिस प्रकार (भगवतीसूत्र के) सातवे शतक के दु षम नामक छठे उद्देशक (सू २४) मे कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी, यावत्—प्राणो, भूतो, जीवो और सत्त्वो को परिताप उत्पन्न न करने से तथा सातावेदनीय-कर्मशरीर-प्रयोग-नामकर्म के उदय से सातावेदनीय-कर्मशरीर-प्रयोगबन्ध होता है, यहाँ तक कहना चाहिए।

१०१ असायावेयणिज्ज० पुच्छा।

गोयमा! परदुक्खणयाए परसोयणयाए जहा सत्तमसए दुस्समा-उ (छट्ठ)द्देसए जाव परियावणयाए (स ७ उ ६ सु. २८) असायावेयणिज्जकम्मा जाव पयोगबधे।

[१०१ प्र] भगवन्! असातावेदनीय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

[१०१ उ] गौतम! दूसरे जीवो को दुःख पहुँचाने से, उन्हे शोक उत्पन्न करने से इत्यादि, जिस प्रकार (भगवतीसूत्र के) सातवे शतक के 'दुःपम' नामक छठे उद्देशक (के सूत्र २८) मे कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी, यावत्—उन्हे परिताप उत्पन्न करने से तथा असातावेदनीय-कर्म-शरीरप्रयोग-नामकर्म के उदय से असातावेदनीय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध होता है, यहाँ तक कहना चाहिए।

१०२ मोहणिज्जकम्मासरीरप्पयोग० पुच्छा।

गोयमा! तिव्वकोहयाए तिव्वमाणयाए तिव्वमायाए तिव्वलोभाए तिव्वदसणमोहणिज्जयाए तिव्वचरित्तमोहणिज्जयाए मोहणिज्जकम्मासरीर० जाव पयोगबधे।

[१०२ प्र] भगवन्! मोहनीय-कर्मशरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

[१०२ उ] गौतम! तीव्र क्रोध से, तीव्र मान से, तीव्र माया से, तीव्र लोभ से, तीव्र दर्शन-मोहनीय से और तीव्र चारित्रमोहनीय से तथा मोहनीय-कार्मणशरीरप्रयोग-नामकर्म के उदय से, मोहनीय-कार्मण-शरीर-प्रयोगबन्ध होता है।

१०३ नेरइयाउयकम्मासरीरप्पयोगबधे ण भते! पुच्छा०।

गोयमा! महारभयाए महापरिग्गहयाए पचिंदियवहेण कुणिमाहारेण नेरइयाउयकम्मासरीर-प्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं नेरइयाउयकम्मासरीर० जाव पयोगबधे।

[१०३ प्र] भगवन्! नैरयिकायुष्य-कार्मणशरीरप्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

[१०३-उ] गौतम! महारम्भ करने से, महापरिग्रह से, पञ्चेन्द्रिय जीवो का वध करने से और मासाहार करने मे, तथा नैरयिकायुष्य-कार्मणशरीरप्रयोग-नामकर्म के उदय से, नैरयिकायुष्य-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध होता है।

१०४ तिरिक्खजोणियाउयकम्मासरीरप्पयोग० पुच्छा।

गोयमा! माइल्लयाए नियडिल्लयाए अलियवयणेण कूडतुल-कूडमाणेण तिरिक्खजोणिय-कम्मासरीर जाव पयोगबधे।

[१०४ प्र] भगवन्! तिर्यञ्चयोनिक-आयुष्य-कार्मणशरीरप्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

[१०४ उ] गौतम! माया करने से, निकृति (परवचनार्थ चेष्टा या माया को छिपाने हेतु दूसरी गूढ माया) करने से, मिथ्या बोलने से, खोटा तौल और खोटा माप करने से, तथा तिर्यञ्च-योनिक-आयुष्य-कार्मणशरीरप्रयोग-नामकर्म के उदय से तिर्यञ्चयोनिक-आयुष्य-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध होता है।

[९७ उ] गौतम ! वह आठ प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है—ज्ञानावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध, यावत्—अन्तराय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध ।

९८ णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबधे ण भते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

गोयमा ! नाणपडिणीययाए णाणणिण्हवणयाए णाणतराएण णाणप्पदोसेण णाणच्चासादणाए णाणविसंवादणाजोगेण णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएण णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबधे ।

[९८ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीय-कार्मण-शरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[९८ उ] गौतम ! ज्ञान की प्रत्यनीकता (विपरीतता या विरोध) करने से, ज्ञान का निह्नव (अपलाप) करने से, ज्ञान मे अन्तराय देने से, ज्ञान से प्रद्वेष करने (ज्ञान के दोष निकालने) से, ज्ञान की अत्यन्त आशातना करने से, ज्ञान के विसवादन-योग से, तथा ज्ञानावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोग नामकर्म के उदय से ज्ञानावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध होता है ।

९९ दरिसणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबधे ण भते ! कस्स कम्मस्स उदएण ?

गोयमा ! दसणपडिणीययाए एव जहा णाणावरणिज्ज, नवर 'दसण' नाम घेत्तव्व जाव दसणविसवादणाजोगेण दरिसणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएण जाव प्पओगबधे ।

[९९ प्र] भगवन् ! दर्शनावरणीय-कार्मण-शरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[९९-उ] गौतम ! दर्शन की प्रत्यनीकता से, इत्यादि जिस प्रकार ज्ञानावरणीय-कार्मण-शरीर-प्रयोगबन्ध के कारण कहे गए हैं, उसी प्रकार दर्शनावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध के भी कारण जानने चाहिए। विशेष अन्तर इतना ही है कि यहाँ ('ज्ञान' के स्थान मे) 'दर्शन' शब्द कहना चाहिए, यावत्—'दर्शन-विसवादन-योग से, तथा दर्शनावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोग-नामकर्म के उदय से दर्शनावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध होता है', यहाँ तक कहना चाहिए ।

१०० सायावेयणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबधे ण भते ! कस्स कम्मस्स उदएण ?

गोयमा ! पाणाणुकपयाए भूयाणुकपयाए, एव जहा सत्तमसए दुस्समा-उ (छट्ठ) द्देसए जाव अपरियावणयाए (स ७ उ. ६ सु २४) सायावेयणिज्जकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएण सायावेयणिज्जकम्मा जाव पयोगबधे ।

[१०० प्र] भगवन् ! सातावेदनीयकर्मशरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[१०० उ.] गौतम ! प्राणियो पर अनुकम्पा करने से, भूतो (चार स्थावर जीवो) पर अनुकम्पा करने से इत्यादि, जिस प्रकार (भगवतीसूत्र के) सातवें शतक के दुषम नामक छठे उद्देशक (सू २४) मे कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी, यावत्—प्राणो, भूतो, जीवो और सत्त्वो को परिताप उत्पन्न न करने से तथा सातावेदनीय-कर्मशरीर-प्रयोग-नामकर्म के उदय से सातावेदनीय-कर्मशरीर-प्रयोगबन्ध होता है, यहाँ तक कहना चाहिए ।

१०१ असायावेयणिज्ज० पुच्छा।

गोयमा! परदुक्खणयाए परसोयणयाए जहा सत्तमसए दुस्समा-उ (छट्ठ)द्देसए जाव परियावणयाए (स ७ उ ६ सु. २८) अस्सायावेयणिज्जकम्मा जाव पयोगबधे।

[१०१ प्र] भगवन्! असातावेदनीय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

[१०१ उ] गौतम! दूसरे जीवों को दुःख पहुँचाने से, उन्हें शोक उत्पन्न करने से इत्यादि, जिस प्रकार (भगवतीसूत्र के) सातवें शतक के 'दुःषम' नामक छठे उद्देशक (के सूत्र २८) में कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी, यावत्—उन्हें परिताप उत्पन्न करने से तथा असातावेदनीय-कर्म-शरीरप्रयोग-नामकर्म के उदय से असातावेदनीय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध होता है, यहाँ तक कहना चाहिए।

१०२ मोहणिज्जकम्मासरीरप्पयोग० पुच्छा।

गोयमा! तिव्वकोहयाए तिव्वमाणयाए तिव्वमायाए तिव्वलोभाए तिव्वदसणमोहणिज्जयाए तिव्वचरित्तमोहणिज्जयाए मोहणिज्जकम्मासरीर० जाव पयोगबधे।

[१०२ प्र] भगवन्! मोहनीय-कर्मशरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

[१०२ उ] गौतम! तीव्र क्रोध से, तीव्र मान से, तीव्र माया से, तीव्र लोभ से, तीव्र दर्शन-मोहनीय से और तीव्र चारित्रमोहनीय से तथा मोहनीय-कार्मणशरीरप्रयोग-नामकर्म के उदय से, मोहनीय-कार्मण-शरीर-प्रयोगबन्ध होता है।

१०३ नेरइयाउयकम्मासरीरप्पयोगबधे ण भते! पुच्छा०।

गोयमा! महारभयाए महापरिग्गहयाए पचिदियवहेण कुणिमाहारेण नेरइयाउयकम्मासरीर-प्पयोगनामाए कम्मस्स उदएण नेरइयाउयकम्मासरीर० जाव पयोगबधे।

[१०३ प्र] भगवन्! नैरयिकायुष्य-कार्मणशरीरप्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

[१०३-उ] गौतम! महारम्भ करने से, महापरिग्रह से, पञ्चेन्द्रिय जीवों का वध करने से और मासाहार करने से, तथा नैरयिकायुष्य-कार्मणशरीरप्रयोग-नामकर्म के उदय से, नैरयिकायुष्य-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध होता है।

१०४ तिरिक्खजोणियाउयकम्मासरीरप्पयोग० पुच्छा।

गोयमा! माइल्लयाए नियडिल्लयाए अलियवयणेण कूडतूल-कूडमाणेण तिरिक्खजोणिय-कम्मासरीर जाव पयोगबधे।

[१०४ प्र] भगवन्! तिर्यञ्चयोनिक-आयुष्य-कार्मणशरीरप्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

[१०४ उ] गौतम! माया करने से, निकृति (परवचनार्थ चेष्टा या माया को छिपाने हेतु दूसरी गूढ माया) करने से, मिथ्या बोलने से, खोटा तौल और खोटा माप करने से, तथा तिर्यञ्च-योनिक-आयुष्य-कार्मणशरीरप्रयोग-नामकर्म के उदय से तिर्यञ्चयोनिक-आयुष्य-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध होता है।

[९७ उ] गौतम ! वह आठ प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है—ज्ञानावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध, यावत्—अन्तराय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध।

९८ णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबधे ण भते ! कस्स कम्मस्स उदएण ?

गोयमा ! नाणपडिणीययाए णाणणिण्हवणयाए णाणतराएणं णाणप्पदोसेणं णाणच्चासादणाए णाणविसवादणाजोगेण णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएण णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबधे।

[९८ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीय-कार्मण-शरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[९८ उ] गौतम ! ज्ञान की प्रत्यनीकता (विपरीतता या विरोध) करने से, ज्ञान का निह्नव (अपलाप) करने से, ज्ञान मे अन्तराय देने से, ज्ञान से प्रद्वेष करने (ज्ञान के दोष निकालने) से, ज्ञान की अत्यन्त आशातना करने से, ज्ञान के विसवादन-योग से, तथा ज्ञानावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोग नामकर्म के उदय से ज्ञानावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध होता है।

९९ दरिसणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबधे ण भते ! कस्स कम्मस्स उदएण ?

गोयमा ! दसणपडिणीययाए एव जहा णाणावरणिज्ज, नवर 'दसण' नाम घेत्तव्व जाव दसणविसवादणाजोगेण दरिसणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएण जाव प्पओगबधे।

[९९ प्र] भगवन् ! दर्शनावरणीय-कार्मण-शरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[९९-उ] गौतम ! दर्शन की प्रत्यनीकता से, इत्यादि जिस प्रकार ज्ञानावरणीय-कार्मण-शरीर-प्रयोगबन्ध के कारण कहे गए हैं, उसी प्रकार दर्शनावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध के भी कारण जानने चाहिए। विशेष अन्तर इतना ही है कि यहाँ ('ज्ञान' के स्थान मे) 'दर्शन' शब्द कहना चाहिए, यावत्—'दर्शन-विसवादन-योग से, तथा दर्शनावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोग-नामकर्म के उदय से दर्शनावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध होता है', यहाँ तक कहना चाहिए।

१०० सायावेयणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबधे ण भते ! कस्स कम्मस्स उदएण ?

गोयमा ! पाणाणुकपयाए भूयाणुकपयाए, एव जहा सत्तमसए दुस्समा-उ (छट्ठ) द्देसए जाव अपरियावणयाए (स ७ उ. ६ सु २४) सायावेयणिज्जकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएण सायावेयणिज्जकम्मा जाव पयोगबधे।

[१०० प्र] भगवन् ! सातावेदनीयकर्मशरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[१०० उ.] गौतम ! प्राणियो पर अनुकम्पा करने से, भूतो (चार स्थावर जीवो) पर अनुकम्पा करने से इत्यादि, जिस प्रकार (भगवतीसूत्र के) सातवें शतक के दुषम नामक छठे उद्देशक (सू २४) मे कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी, यावत्—प्राणो, भूतो, जीवो और सत्त्वो को परिताप उत्पन्न न करने से तथा सातावेदनीय-कर्मशरीर-प्रयोग-नामकर्म के उदय से सातावेदनीय-कर्मशरीर-प्रयोगबन्ध होता है, यहाँ तक कहना चाहिए।

१०१ अस्सायावेयणिज्ज० पुच्छा ।

गोयमा ! परदुक्खणयाए परसोयणयाए जहा सत्तमसए दुस्समा-उ (छट्ठु)द्देसए जाव परियावणयाए (स ७ उ ६ सु. २८) अस्सायावेयणिज्जकम्मा जाव पयोगबधे ।

[१०१ प्र] भगवन् ! असातावेदनीय-कार्मणशरीर-प्रयोगवन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[१०१ उ] गौतम ! दूसरे जीवो को दु ख पहुँचाने से, उन्हे शोक उत्पन्न करने मे इत्यादि, जिस प्रकार (भगवतीसूत्र के) सातवे शतक के 'दु पम' नामक छठे उद्देशक (के सूत्र २८) मे कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी, यावत्—उन्हे परिताप उत्पन्न करने से तथा असातावेदनीय-कर्म-शरीरप्रयोग-नामकर्म के उदय से असातावेदनीय-कार्मणशरीर-प्रयोगवन्ध होता है, यहाँ तक कहना चाहिए ।

१०२ मोहणिज्जकम्मासरीरप्पयोग० पुच्छा ।

गोयमा ! तिव्वकोहयाए तिव्वमाणयाए तिव्वमायाए तिव्वलोभाए तिव्वदसणमोहणिज्जयाए तिव्वचरित्तमोहणिज्जयाए मोहणिज्जकम्मासरीर० जाव पयोगबधे ।

[१०२ प्र] भगवन् ! मोहनीय-कर्मशरीर-प्रयोगवन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[१०२ उ] गौतम ! तीव्र क्रोध से, तीव्र मान से, तीव्र माया से, तीव्र लोभ से, तीव्र दर्शन-मोहनीय से और तीव्र चारित्रमोहनीय से तथा मोहनीय-कार्मणशरीरप्रयोग-नामकर्म के उदय से, मोहनीय-कार्मण-शरीर-प्रयोगवन्ध होता है ।

१०३ नेरइयाउयकम्मासरीरप्पयोगबधे ण भते ! पुच्छा० ।

गोयमा ! महारभयाए महापरिग्गहयाए पचिंदियवहेण कुणिमाहारेण नेरइयाउयकम्मासरीर-प्पयोगनामाए कम्मस्स उदएण नेरइयाउयकम्मासरीर० जाव पयोगब धे ।

[१०३ प्र] भगवन् ! नैरयिकायुष्य-कार्मणशरीरप्रयोगवन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[१०३-उ] गौतम ! महारम्भ करने से, महापरिग्रह से, पञ्चेन्द्रिय जीवो का वध करने से और मासाहार करने से, तथा नैरयिकायुष्य-कार्मणशरीरप्रयोग-नामकर्म के उदय से, नैरयिकायुष्य-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध होता है ।

१०४ तिरिक्खजोणियाउयकम्मासरीरप्पयोग० पुच्छा ।

गोयमा ! माइल्लयाए नियडिल्लयाए अलियवयणेण कूडतूल-कूडमाणेण तिरिक्खजोणिय-कम्मासरीर जाव पयोगबधे ।

[१०४ प्र] भगवन् ! तिर्यञ्चयोनिक-आयुष्य-कार्मणशरीरप्रयोगवन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[१०४ उ] गौतम ! माया करने से, निकृति (परवचनार्थ चेष्टा या माया को छिपाने हेतु दूसरी गूढ माया) करने से, मिथ्या बोलने से, खोटा तौल और खोटा माप करने से, तथा तिर्यञ्च-योनिक-आयुष्य-कार्मणशरीरप्रयोग-नामकर्म के उदय से तिर्यञ्चयोनिक-आयुष्य-कार्मणशरीर-प्रयोगवन्ध होता है ।

१०५. मणुस्सआउयकम्मासरीर० पुच्छा ।

गोयमा ! पगइभद्दयाए पगइविणीययाए साणक्कोसयाए अमच्छरिययाए मणुस्साउयकम्मा० जाव पयोगबंधे ।

[१०५ प्र] भगवन् ! मनुष्यायुष्य-कार्मणशरीरप्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[१०५ उ] गौतम ! प्रकृति की भद्रता से, प्रकृति की विनीतता (नम्रता) से, दयालुता से, अमत्सरभाव से तथा मनुष्यायुष्य-कार्मणशरीरप्रयोग-नामकर्म के उदय से, मनुष्यायुष्य-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध होता है ।

१०६. देवाउयकम्मासरीर० पुच्छा ।

गोयमा ! सरागसजमेण सजमासजमेण बालतवोकम्मेण अकामनिज्जराए देवाउयकम्मासरीर० जाव पयोगबंधे ।

[१०६-प्र] भगवन् ! देवायुष्य-कार्मणशरीरप्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[१०६-उ] गौतम ! सराग-सयम से, सयमासयम (देशविरति) से, बाल (अज्ञानपूर्वक) तपस्या से तथा अकामनिर्जरा से, एव देवायुष्य-कार्मणशरीरप्रयोग-नामकर्म के उदय से, देवायुष्य-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध होता है ।

१०७. सुभनामकम्मासरीर० पुच्छा ।

गोयमा ! कायउज्जुययाए भावुज्जुययाए भासुज्जुययाए अविसवादणजोगेण सुभनामकम्मा-सरीर० जाव पयोगबंधे ।

[१०७ प्र] भगवन् ! शुभनाम-कार्मणशरीरप्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[१०७ उ] गौतम ! काया की ऋजुता (सरलता) से, भावो की ऋजुता से, भाषा की ऋजुता (सरलता) से तथा अविसवादनयोग से एव शुभनाम-कार्मणशरीर-प्रयोग-नामकर्म के उदय से शुभनाम-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध होता है ।

१०८. असुभनामकम्मासरीर० पुच्छा ।

गोयमा ! कायअणुज्जुययाए भावअणुज्जुययाए भासअणुज्जुययाए विसवायणाजोगेण असुभ-नामकम्मा० जाव पयोगबंधे ।

[१०८ प्र] भगवन् ! अशुभनाम-कार्मणशरीरप्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[१०८ उ] गौतम ! काया की वक्रता से, भावो की वक्रता से, भाषा की वक्रता (अनृजुता) से तथा विसवादन-योग से एव अशुभनाम-कार्मणशरीर-प्रयोग-नामकर्म के उदय से अशुभनामकार्मण-शरीर-प्रयोगबन्ध होता है ।

१०९ उच्चागोयकम्मासरीर० पुच्छा ।

गोयमा ! जातिअमदेण कुलअमदेण बलअमदेण रूवअमदेण तवअमदेणं सुयअमदेण लाभअमदेणं इस्सरियअमदेण उच्चागोयकम्मासरीर० जाव पयोगबंधे ।

[१०९ प्र] भगवन्! उच्चगोत्र-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[१०९ उ] गौतम! जातिमद न करने से, कुलमद न करने से, बलमद न करने से, रूपमद न करने से, तपोमद न करने से, श्रुतमद (ज्ञान का मद) न करने से, लाभमद न करने से और ऐश्वर्यमद न करने से तथा उच्चगोत्र-कार्मण-शरीरप्रयोग-नामकर्म के उदय से उच्चगोत्रकार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध होता है।

११० नीयागोयकम्मासरीर० पुच्छा।

गोयमा! जातिमदेण कुलमदेण बलमदेण जाव इस्सरियमदेण णीयागोयकम्मासरीर० जाव पयोगबंधे।

[११० प्र] भगवन्! नीचगोत्र-कार्मण-शरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[११० उ] गौतम! जातिमद करने से, कुलमद करने से, बलमद करने से, रूपमद करने से, तपोमद करने से, श्रुतमद करने से, लाभमद करने से और ऐश्वर्यमद करने से तथा नीचगोत्र-कार्मण-शरीर-प्रयोग नामकर्म के उदय से नीचगोत्र-कार्मणशरीरप्रयोगबन्ध होता है।

१११ अंतराइयकम्मासरीर० पुच्छा।

गोयमा! दाणंतराएणं लाभंतराएणं भोगंतराएणं उवभोगंतराएणं वीरियंतराएणं अंतराइयकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं अंतराइयकम्मासरीरप्पयोगबंधे।

[१११] भगवन्! अन्तराय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[१११] गौतम! दानान्तराय से, लाभान्तराय से, भोगान्तराय से, उपभोगान्तराय से और वीर्यान्तराय से, तथा अन्तराय-कार्मणशरीर-प्रयोगनामकर्म के उदय से अन्तराय-कार्मणशरीर-प्रयोग-बन्ध होता है।

११२ [१] णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते! किं देसबंधे सव्वबंधे ?

गोयमा! देसबंधे, णो सव्वबंधे।

[११२-१ प्र] भगवन्! ज्ञानावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध क्या देशबन्ध है अथवा सर्वबन्ध है ?

[११२-१ उ] गौतम! वह देशबन्ध है, सर्वबन्ध नहीं है।

[२] एवं जाव अंतराइयकम्मासरीरप्पओगबंधे।

[११२-२] इसी प्रकार यावत् अन्तराय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध तक जानना चाहिए।

११३ णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कालओ केवच्चिरं होइ ?

गोयमा! णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अणाईए सपज्जवसिए, अणाईए अपज्जवसिए वा, एवं जहा तेयगसरीरसंचिट्ठणा तहेव।

[११३ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध कालत कितने काल तक रहता है ?

[११३ उ] गौतम ! ज्ञानावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध (काल की अपेक्षा से) दो प्रकार का कहा गया है। यथा—अनादि-सपर्यवसित और अनादि-अपर्यवसित। जिस प्रकार तैजसशरीर प्रयोगबन्ध का स्थितिकाल (सू ९४ मे) कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।

११४ एव जाव अतराइयकम्मस्स।

[११४] इसी प्रकार यावत्—अन्तराय-कर्म-(कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध के स्थितिकाल) तक कहना चाहिए।

११५. णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबधतर ण भते ! कालओ केवच्चिर होइ ?

गोयमा ! अणाईयस्स० एव जहा तेयगसरीरस्स अंतर तहेव।

[११५ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध का अन्तर कितने काल का होता है ?

[११५ उ] गौतम ! (ज्ञानावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध के कालत) अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित (इन दोनो रूपो) का अन्तर नही होता। जिस प्रकार तैजसशरीर-प्रयोगबन्ध के अन्तर के विषय मे कहा गया था, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।

११६. एवं जाव अतराइयस्स।

[११६] इसी प्रकार यावत्—अन्तराय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध के अन्तर तक समझना चाहिए।

११७ एएसि ण भते ! जीवाण नाणावरणिज्जस्स देसबधगाण, अबधगाण य कयरे कयरे-हिंतो० ?

जाव अप्पाबहुग जहा तेयगस्स।

[११७ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीय-कार्मणशरीर के इन देशबन्धक और अबन्धक जीवो मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[११७ उ] गौतम ! जिस प्रकार तैजसशरीरप्रयोगबध के देशबन्धको एव अबन्धको के अल्प-बहुत्व के विषय मे कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।

११८ एव आउयवज्ज जाव अंतराइयस्स।

[११८] इसी प्रकार आयुष्य को छोड कर यावत् अन्तराय-कार्मणशरीर-प्रयोगबध के देशबन्धको और अबन्धको के अल्पबहुत्व के विषय मे कहना चाहिए।

११९ आउयस्स पुच्छा।

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा आउयस्स कम्मस्स देसबधगा, अबधगा संखेज्जगुणा।

[११९ प्र] भगवन् ! आयुष्यकार्मणशरीर-प्रयोगबध के देशबन्धक और अबन्धक जीवो मे कौन किससे कम, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक है ?

[११९ उ] गौतम ! आयुष्यकर्म के देशबन्धक जीव सबसे थोडे है, उनमे अबन्धक जीव सख्यातगुणे है।

विवेचन—कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध का भेद-प्रभेदो की अपेक्षा विभिन्न दृष्टियो से निरूपण—प्रस्तुत २३ सूत्रो (सू ९७ से ११९ तक) मे कार्मणशरीर के ज्ञानावरणीयादि आठ भेदो को लेकर उस-उस कर्म के भेद की अपेक्षा प्रयोगबन्ध की पूर्ववत् विचारणा की गई है।

कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध स्वरूप, भेद-प्रभेदादि एव कारण—आठ प्रकार के कर्मो के पिण्ड को कार्मणशरीर कहते है। ज्ञानावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध आदि आठो के वे ही कारण बताए हैं जो उन-उन कर्मो के कारण है। जैसे—ज्ञानावरणीय के ६ कारण है, वे ही ज्ञानावरणीय कार्मण-शरीरप्रयोगबन्ध के है। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझ लेना चाहिए।

ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्मबन्ध के कारण—इन दोनो कर्मो के कारण समान है, सिर्फ ज्ञान और दर्शन शब्द का अन्तर है। ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्मबन्ध के जो कारण बताए गए है, उनमे ज्ञानप्रत्यनीकता, दर्शनप्रत्यनीकता आदि का ज्ञान और ज्ञानीपुरुष, तथा दर्शन और दर्शनीपुरुष की प्रत्यनीकता आदि अर्थ समझना चाहिए।

ज्ञानावरणीयादि अष्ट-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध देशबन्ध होता है, सर्वबन्ध नही—देशबन्ध के ही तैजसशरीरप्रयोगबन्ध की तरह अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित ये दो भेद है। इन दोनो का अन्तर नही है।

आयुकर्म के देशबन्धक—आयुष्यकर्म के देशबन्धक सबसे थोडे है और अबन्धक उनसे सख्यात-गुण है, क्योकि आयुष्यबन्ध का समय बहुत ही थोडा है, और अबन्ध का समय उससे बहुत अधिक है। यह सूत्र अनन्तकायिक जीवो की अपेक्षा से है। वहाँ अनन्तकायिक जीव सख्यातजीवित ही है। उनमे आयुष्य के अबन्धक देशबन्धको से सख्यातगुण ही होते है। यद्यपि सिद्धजीव, जो आयुष्य के अबन्धक हैं, उन्हे भी इसमे सम्मिलित कर लिया जाए तो भी वे देशबन्धको से सख्यातगुण ही होते हैं, क्योकि सिद्ध आदि अबन्धक अनन्त जीव भी अनन्तकायिक आयुष्यबन्धक जीवो के अनन्तवें भाग ही होते हैं।

जीव जिस समय आयुष्यकर्म के बन्धक होते है, उस समय उन्हे सर्वबन्धक इसलिए नही कहा गया है कि जिस प्रकार औदारिकशरीर को बाधते समय जीव प्रथम समय मे शरीरयोग्य सब पुद्‌गलो को एक साथ खीचता है, उस प्रकार अविद्यमान समग्र आयु प्रकृति को नही बाधता, इसलिए आयुकर्म का सर्वबन्ध नही होता।[1]

कठिन शब्दो की व्याख्या—णाणनिह्नवणयाए=ज्ञान की—श्रुत की या श्रुतगुरुओ की निह्नवता (अपलाप) से। **णाणंतराएण**=ज्ञान-श्रुत मे अन्तराय—शास्त्र-ज्ञान के ग्रहण करने आदि मे विघ्न डालना। **नाणपओसेण**=ज्ञान-श्रुतादि या ज्ञानवानो के प्रति प्रद्वेष-अप्रीति से। **नाणऽच्चासायणाए**—ज्ञान या ज्ञानियो की अत्यन्त आशातना—हीलना से। **नाणविसंवायणाजोगेण**=विसवादन का अर्थ है—अतिशय ज्ञानियो द्वारा और रूप मे प्रतिपादित तथ्य को अन्यथा कहना या विपरीत प्ररूपणा करना। ज्ञान या ज्ञानियो के प्रतिपादित तथ्यो मे दोषदर्शन रूप अन्यथा व्यापार। तद्‌रूप योग-ज्ञान-विसंवादन योग से। **दसणपडिणीययाए**=दर्शन—चक्षुदर्शनादि की प्रत्यनीकता से। **तिव्वदंसण-**

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ४११-४१२

मोहणिज्जयाए=तीव्र मिथ्यात्व—तीव्र दर्शनमोहनीय के कारण से। तिव्वचरित्तमोहणिज्जयाए=यहाँ कषाय से अतिरिक्त नोकषायरूप चारित्रमोहनीय का ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि तीव्रक्रोधादिवश कषायचारित्रमोहनीय के सम्बन्ध मे पहले कहा जा चुका है। साणुक्कोसयाए=अनुकम्पायुक्तता से।[1]

पांच शरीरों के एक दूसरे के साथ बन्धक-अबन्धक की चर्चा-विचारणा—

१२० [१] जस्स णं भंते ! ओरालियसरीरस्स सव्वबंधे से णं भंते ! वेउव्वियसरीरस्स किं बंधए, अबंधए ?

गोयमा ! नो बंधए, अबंधए।

[१२०-१ प्र] भगवन् ! जिस जीव के औदारिकशरीर का सर्वबन्ध है, क्या वह जीव वैक्रियशरीर का बन्धक है या अबन्धक ?

[१२०-१ उ] गौतम ! वह बन्धक नही, अबन्धक है।

[२] आहारगसरीरस्स किं बंधए, अबंधए ?

गोयमा ! नो बंधए, अबंधए।

[१२०-२ प्र] भगवन् ! (जिस जीव के औदारिकशरीर का सर्वबन्ध है) क्या वह जीव आहारकशरीर का बन्धक है या अबन्धक ?

[१२०-२ उ] गौतम ! वह बन्धक नही, अबन्धक है।

[३] तेयासरीरस्स किं बंधए, अबंधए ?

गोयमा ! बंधए, नो अबंधए।

[१२०-३ प्र] भगवन् ! जिस जीव के औदारिक शरीर का सर्वबन्ध है, क्या वह जीव तैजसशरीर का बन्धक है या अबन्धक ?

[१२०-३ उ] गौतम ! वह बन्धक है, अबन्धक नही।

[४] जइ बंधए किं देसबंधए, सव्वबंधए ?

गोयमा ! देसबंधए, नो सव्वबंधए।

[१२०-४ प्र] भगवन् ! यदि वह तैजसशरीर का बन्धक है, तो क्या वह देशबन्धक है या सर्वबन्धक ?

[१२०-४ उ] गौतम ! वह देशबन्धक है, सर्वबन्धक नही।

[५] कम्मासरीरस्स किं बंधए, अबंधए ?

जहेव तेयगस्स जाव देसबंधए, नो सव्वबंधए।

[१२०-५ प्र] भगवन् ! औदारिकशरीर का सर्वबन्धक जीव कार्मणशरीर का बन्धक है या अबन्धक ?

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्रांक ४११-४१२

[१२०-५ उ] गौतम ! जैसे तैजसशरीर के विषय मे कहा है, वैसे यहाँ भी, यावत्-देश-बन्धक है, सर्वबन्धक नही, यहाँ तक कहना चाहिए ।

१२१ जस्स ण भते ! ओरालियसरीरस्स देसबधे से ण भते ! वेउव्वियसरीरस्स किं बधए, अबंधए ?

गोयमा ! नो बधए, अबधए ।

[१२१ प्र] भगवन् ! जिस जीव के औदारिकशरीर का देशबन्ध है, भगवन् ! क्या वह वैक्रियशरीर का बन्धक है या अबन्धक ?

१२२ एव जहेव सव्वबधेण भणिय तहेव देसबधेण वि भाणियव्व जाव कम्मगस्स ।

[१२२] जिस प्रकार सर्वबन्धक के विषय मे (उपर्युक्त) कथन किया, उसी प्रकार देशबन्ध के विषय मे भी यावत्—कर्मणशरीर तक कहना चाहिए ।

१२३ [१] जस्स ण भते ! वेउव्वियसरीरस्स सव्वबधे से ण भते ! ओरालियसरीरस्स किं बधए, अबधए ?

गोयमा ! नो बधए, अबधए ।

[१२३-१ प्र] भगवन् ! जिस जीव के वैक्रियशरीर का सर्वबन्ध है, क्या वह औदारिक-शरीर का बन्धक है या अबन्धक ?

[१२३-१ उ] गौतम ! वह बन्धक नही, अबन्धक है ।

[२] आहारगसरीरस्स एवं चेव ।

[१२३-२] इसी प्रकार आहारकशरीर के विषय मे कहना चाहिए ।

[३] तेयगस्स कम्मगस्स य जहेव ओरालिएण समं भणिय तहेव भाणियव्व जाव देसबधए, नो सव्वबधए ।

[१२३-३] तैजस और कार्मणशरीर के विषय मे जैसे औदारिकशरीर के साथ कथन किया है, वैसा ही कहना चाहिए, यावत्—वह देशबन्धक है, सर्वबन्धक नही, यहाँ तक कहना चाहिए ।

१२४ [१] जस्स ण भते ! वेउव्वियसरीरस्स देसबधे से ण भते ! ओरालियसरीरस्स किं बधए, अबधए ?

गोयमा ! नो बंधए, अबधए ।

[१२४-१ प्र] भगवन् ! जिस जीव के वैक्रियशरीर का देशबन्ध है, क्या वह औदारिक-शरीर का बन्धक है, अथवा अबन्धक है ?

[१२४-१ उ] गौतम ! वह बन्धक नही, अबन्धक है ।

[२] एवं जहा सव्वबंधेणं भणियं तहेव देसबंधेण वि भाणियव्व जाव कम्मगस्स ।

[१२४-२] इसी प्रकार जैसे वैक्रियशरीर के सर्वबन्ध के विषय मे कहा गया, वैसे ही यहाँ भी देशबन्ध के विषय मे यावत्—कार्मणशरीर तक कहना चाहिए।

१२५. [१] जस्स ण भंते ! आहारगसरीरस्स सव्वबधे से ण भते ! ओरालियसरीरस्स किं बधए, अबंधए ?

गोयमा ! नो बधए, अबधए।

[१२५-१ प्र] भगवन् ! जिस जीव के आहारकशरीर का सर्वबन्ध है, वह जीव औदारिक-शरीर का बन्धक है या अबन्धक ?

[१२५-१ उ.] गौतम ! वह बन्धक है, अबन्धक नही।

[२] एव वेउव्वियस्स वि।

[१२५-२] इसी प्रकार वैक्रियशरीर के विषय मे कहना चाहिए।

[३] तेया-कम्माण जहेव ओरालिएण सम भणिय तहेव भाणियव्व।

[१२५-३] तैजस और कार्मणशरीर के विषय मे जैसे औदारिकशरीर के साथ कहा, वैसे यहाँ (आहारकशरीर के साथ) भी कहना चाहिए।

१२६ जस्स ण भते आहारगसरीरस्स देसबधे से ण भते ! ओरालियसरीरस्स० ?

एव जहा आहारगसरीरस्स सव्वबधेणं भणियं तहा देसबंधेण वि भाणियव्व जाव कम्मगस्स।

[१२६ प्र] भगवन् ! जिस जीव के आहारकशरीर का देशबन्ध है, वह औदारिकशरीर का बन्धक है या अबन्धक ?

[१२६ उ] गौतम ! जिस प्रकार आहारकशरीर के सर्वबन्ध के विषय मे कहा, उसी प्रकार उसके देशबन्ध के विषय मे भी यावत्—कार्मणशरीर तक कहना चाहिए।

१२७ [१] जस्स ण भते ! तेयासरीरस्स देसबंधे से ण भते ! ओरालियसरीरस्स किं बंधए, अबधए ?

गोयमा ! बधए वा अबधए वा।

[१२७-१ प्र] भगवन् ! जिस जीव के तैजसशरीर का देशबन्ध है, वह औदारिकशरीर का बन्धक है या अबन्धक ?

[१२७-१ उ] गौतम ! वह बन्धक भी है, अबन्धक भी है।

[२] जइ बंधए किं देसबधए, सव्वबधए ?

गोयमा ! देसबधए वा, सव्वबधए वा।

[१२७-२ प्र] भगवन् ! यदि वह औदारिकशरीर का बन्धक है, तो वह क्या देशबन्धक है अथवा सर्वबन्धक है ?

[१२७-२ उ] गौतम ! वह देशबन्धक भी है, सर्वबन्धक भी है ।

[३] वेउव्वियसरीरस्स किं बधए, अबधए ?

एवं चेव ।

[१२७-३ प्र] भगवन् ! तैजसशरीर का बन्धक जीव वैक्रियशरीर का बन्धक है अथवा अबन्धक ?

[१२७-३ उ] गौतम ! पूर्ववक्तव्यानुसार समझना चाहिए ।

[४] एव आहारगसरीरस्स वि ।

[१२७-४] इसी प्रकार आहारकशरीर के विषय मे भी जानना चाहिए ।

[५] कम्मगसरीरस्स किं बधए, अबधए ?

गोयमा ! बधए, नो अबंधए ।

[१२७-५ प्र] भगवन् ! तैजसशरीर का बन्धक जीव कार्मणशरीर का बन्धक है या अबन्धक ?

[१२७-५ उ] गौतम ! वह बन्धक है, अबन्धक नही ।

[६] जइ बंधए किं देसबंधए, सव्वबधए ?

गोयमा ! देसबंधए, नो सव्वबधए ।

[१२७-६ प्र] भगवन् ! यदि वह कार्मणशरीर का बन्धक है तो देशबन्धक है या सर्वबन्धक ?

[१२७-६ उ] गौतम ! वह देशबन्धक है, सर्वबन्धक नही ।

१२८ जस्स णं भंते ! कम्मगसरीरस्स देसबधए से ण भते ! ओरालियसरीरस्स ?

जहा तेयगस्स वत्तव्वया भणिया तहा कम्मगस्स वि भाणियव्वा जाव तेयासरीरस्स जाव देसबधए, नो सव्वबधए ।

[१२८ प्र] भगवन् ! जिस जीव के कार्मणशरीर का देशबन्ध है, वह औदारिकशरीर का बन्धक है या अबन्धक ?

[१२८ उ] गौतम ! जिस प्रकार तैजसशरीर की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार कार्मणशरीर की भी, यावत्—'तैजसशरीर' तक यावत्—देशबन्धक है, सर्वबन्धक नही, यहाँ तक कहना चाहिए ।

विवेचन—पांचो शरीरो के एक-दूसरे के साथ बन्धक-अबन्धक की चर्चा-विचारणा—प्रस्तुत ९ सूत्रो (सू १२० से १२८ तक) मे औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण, इन पाचो शरीरो के परस्पर एक दूसरे के साथ बन्धक-अबन्धक तथा देशबन्ध-सर्वबन्ध की चर्चा-विचारणा की गई है ।

पाच शरीरो मे परस्पर बन्धक-अबन्धक—औदारिक और वैक्रिय, इन दो शरीरो का परस्पर एक साथ बन्ध नही होता, इसी प्रकार औदारिक और आहारकशरीर का भी एक साथ बन्ध नही होता। अतएव औदारिकशरीरबन्धक जीव वैक्रिय और आहारक का अबन्धक होता है, किन्तु तैजस और कार्मणशरीर का औदारिकशरीर के साथ कभी विरह नही होता। इसीलिए वह इनका देशबन्धक होता है। इन दोनो शरीरो का सर्वबन्ध तो कभी होता ही नही।

तैजस कार्मणशरीर का देशबन्धक औदारिकशरीर का बन्धक और अबन्धक कैसे ?—तैजसशरीर और कार्मणशरीर का देशबन्धक जीव औदारिकशरीर का बन्धक भी होता है, अबन्धक भी, इसका आशय यह है कि विग्रहगति मे वह अबन्धक होता है तथा वैक्रिय मे हो या आहारक मे, तब भी वह औदारिकशरीर का अबन्धक ही रहता है, और शेष समय मे बन्धक होता है। उत्पत्ति के प्रथम समय मे वह सर्वबन्धक होता है, जबकि द्वितीय आदि समयो मे वह देशबन्धक हो जाता है। इसी प्रकार कार्मणशरीर के विषय मे भी समझना चाहिए।

शेष शरीरो के साथ बन्धक-अबन्धक आदि का कथन सुगम है, स्वयमेव घटित कर लेना चाहिए।[1]

औदारिक आदि पाच शरीरो के देश-सर्वबन्धको एवं अबन्धकों के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा—

१२९ एएसि ण भते ! जीवाण ओरालिय-वेउव्विय-आहारग-तेया-कम्मासरीरगाण देसबधगाण सव्वबधगाण अबधगाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा आहारगसरीरस्स सव्वबधगा १। तस्स चेव देसबधगा सखेज्जगुणा २। वेउव्वियसरीरस्स सव्वबधगा असखेज्जगुणा ३। तस्स चेव देसबधगा असखेज्जगुणा ४। तेया-कम्मगाण दुण्ह वि तुल्ला अबधगा अणतगुणा ५। ओरालियसरीरस्स सव्वबधगा अणतगुणा ६। तस्स चेव अबधगा विसेसाहिया ७। तस्स चेव देसबधगा असखेज्जगुणा ८। तेया-कम्मगाण देसबधगा विसेसाहिया ९। वेउव्वियसरीरस्स अबधगा विसेसाहिया १०। आहारगसरीरस्स अबधगा विसेसाहिया ११।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति०।

॥ अट्ठमसए : नवमो उद्देसओ समत्तो ॥

[१२९ प्र] भगवन् ! इन औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर के देशबन्धक, सर्वबन्धक और अबन्धक जीवो मे कौन किनसे कम, अधिक, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[१२९ उ] गौतम ! (१) सबसे थोडे आहारकशरीर के सर्वबन्धक जीव है, (२) उनसे उसी (आहारकशरीर) के देशबन्धक जीव सख्यातगुणे हैं, (३) उनसे वैक्रियशरीर के सर्वबन्धक असख्यातगुणे हैं, (४) उनसे वैक्रियशरीर के देशबन्धक जीव असख्यातगुणे है, (५) उनसे तैजस और कार्मण, इन दोनो शरीरो के अबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं, ये दोनो परस्पर तुल्य है। (६) उनसे औदारिकशरीर के सर्वबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं, (७) उनसे औदारिकशरीर के अबन्धक जीव

१ भगवतीसूत्र, अ वृत्ति, पत्राक ४२३

विशेषाधिक है, (८) उनसे उसी (औदारिकशरीर) के देशबन्धक असख्यातगुणे हैं, (९) उनसे तैजस और कार्मणशरीर के देशबन्धक जीव विशेषाधिक है। (१०) उनसे वैक्रियशरीर के अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं और (११) उनसे आहारकशरीर के अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरण करते हैं।

विवेचन—औदारिकादि शरीरो के देश-सर्वबन्धको और अबन्धको के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा— प्रस्तुत सूत्र मे पाचो शरीरो के बन्धको-अबन्धको मे जो जिससे अल्प, अधिक, तुल्य अथवा विशेषाधिक है, उनकी प्ररूपणा की गई है।

अल्पबहुत्व का कारण—(१) आहारकशरीर चौदहपूर्वधर मुनि के ही होता है, वे भी विशेष प्रयोजन होने पर ही आहारकशरीर धारण करते है। फिर सर्वबन्ध का काल भी सिर्फ एक समय का है, अतएव आहारकशरीर के सर्वबन्धक सबसे अल्प है। (२) उनसे आहारकशरीर के देशबन्धक सख्यातगुणे है, क्योकि देशबन्ध का काल अन्तर्मुहूर्त्त है। (३) उनसे वैक्रियशरीर के सर्वबन्धक असख्यातगुणे है, क्योकि आहारकशरीरधारी जीवो से वैक्रियशरीरी असखयातगुणे अधिक हैं। (४) उनसे वैक्रियशरीरधारी देशबन्धक जीव असख्यातगुणे अधिक है, क्योकि सर्वबन्ध से देशबन्ध का काल असख्यातगुणा है। अथवा प्रतिपद्यमान सर्वबन्धक होते हैं, और पूर्वप्रतिपन्न देशबन्धक, अत प्रतिपद्यमान की अपेक्षा पूर्वप्रतिपन्न असख्यातगुणे हैं। (५) उनसे तैजस और कार्मणशरीर के अबन्धक अनन्तगुणे हैं, क्योकि इन दोनो शरीरो के अबन्धक सिद्ध भगवान् हैं, जो वनस्पतिकायिक जीवो के सिवाय शेष सर्व ससारी जीवो से अनन्तगुणे हैं। (६) उनसे औदारिकशरीर के सर्वबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं, क्योकि वनस्पतिकायिक जीव भी औदारिकशरीरधारियो मे है, जो कि अनन्त हैं। (७) उनसे औदारिकशरीर के अबन्धक जीव इसलिए विशेषाधिक हैं, कि विग्रहगतिसमापन्नक जीव तथा सिद्ध जीव सर्वबन्धको से बहुत हैं। (८) उनसे औदारिकशरीर के देशबन्धक असख्यातगुणे हैं, क्योकि विग्रहगति के काल की अपेक्षा देशबन्धक का काल असख्यातगुणा है। (९) उनसे तैजस-कार्मणशरीर के देशबन्धक विशेषाधिक है, क्योकि सारे ससारी जीव तैजस और कार्मण शरीर के देशबन्धक होते हैं। इनमे विग्रहगतिसमापन्नक, औदारिक सर्वबन्धक और वैक्रियादि-बन्धक जीव भी आ जाते है। अत औदारिक देशबन्धको से ये विशेषाधिक बताए गए है। (१०) उनसे वैक्रियशरीर के अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं, क्योकि वैक्रियशरीर के बन्धक प्राय देव और नारक हैं। शेष सभी ससारी जीव और सिद्ध भगवान् वैक्रिय के अबन्धक ही हैं, इस अपेक्षा से वे तैजसादि देशबन्धको से विशेषाधिक बताए गए हैं। (११) उनसे आहारकशरीर के अबन्धक विशेषाधिक है, क्योकि वैक्रिय तो देव-नारको के भी होता है, किन्तु आहारकशरीर सिर्फ चतुर्दश पूर्वधर मुनियो के होता है। इस अपेक्षा से आहारकशरीर के अबन्धक विशेषाधिक कहे गए हैं।[1]

॥ अष्टम शतक नवम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ४१४

द ।। उद्दे ओ : 'आराहणा'

दशम उद्देशक : 'आराधना'

श्रुत और शील की आराधना-विराधना की दृष्टि से भगवान् द्वारा अन्यतीर्थिकमत-निराकरणपूर्वक स्वसिद्धान्तनिरूपण—

१. रायगिहे नगरे जाव एव वयासी—

१ [उद्देशक का उपोद्घात] राजगृह नगर मे यावत् गौतमस्वामी ने (श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से) इस प्रकार पूछा—

२. अन्नउत्थिया णं भते ! एवमाइक्खति जाव एव परूवेंति—एव खलु सील सेय १, सुय सेय २, सुय सेय सील सेय ३, से कहमेय भते ! एव ?

गोयमा ! ज ण ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खति जाव जे ते एवमाहंसु मिच्छा ते एवमाहसु, अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि—एवं खलु मए चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सीलसंपन्ने णाम एगे, णो सुयसंपन्ने १; सुयसपन्ने नाम एगे, नो सीलसपन्ने २; एगे सीलसपन्ने वि सुयसपन्ने वि ३, एगे णो सीलसंपन्ने नो सुयसपन्ने ४। तत्थ ण जे से पढमे पुरिसजाए से णं पुरिसे सीलव, असुयव, उवरए, अविण्णायधम्मे, एस ण गोयमा ! मए पुरिसे देसाराहए पण्णत्ते। तत्थ णं जे से दोच्चे पुरिसजाए से ण पुरिसे असीलव, सुयवं अणुवरए, विण्णायधम्मे, एस णं गोयमा ! मए पुरिसे देसविराहए पण्णत्ते। तत्थ ण जे से तच्चे पुरिसजाए से णं पुरिसे सीलवं, सुयवं, उवरए, विण्णायधम्मे, एस ण गोयमा ! मए पुरिसे सव्वाराहए पण्णत्ते। तत्थ ण जे से चउत्थे पुरिसजाए से ण पुरिसे असीलव, असुतव अणुवरए, अविण्णायधम्मे एस णं गोयमा ! मए पुरिसे सव्वविराहए पण्णत्ते।

[२ प्र] भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते है, यावत् प्ररूपणा करते है—(१) शील ही श्रेयस्कर है, (२) श्रुत ही श्रेयस्कर है, (३) (शीलनिरपेक्ष ही) श्रुत श्रेयस्कर है, अथवा (श्रुत-निरपेक्ष ही) शील श्रेयस्कर है, अत हे भगवन् ! यह किस प्रकार सम्भव है ?

[२ उ] गौतम ! अन्यतीर्थिक, जो इस प्रकार कहते है, यावत् उन्होने जो ऐसा कहा है वह मिथ्या कहा है। गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ, यावत् प्ररूपणा करता हूँ। मैंने चार प्रकार के पुरुष कहे है। वे इस प्रकार—

१—एक व्यक्ति शीलसम्पन्न है, किन्तु श्रुतसम्पन्न नही है।

२—एक व्यक्ति श्रुतसम्पन्न है, किन्तु शीलसम्पन्न नही है ।

३—एक व्यक्ति शीलसम्पन्न भी है और श्रुतसम्पन्न भी है ।

४—एक व्यक्ति न शीलसम्पन्न है और न श्रुतसम्पन्न है ।

(१) इनमे से जो प्रथम प्रकार का पुरुष है, वह शीलवान् है, परन्तु श्रुतवान् नही । वह (पापादि से) उपरत (निवृत्त) है, किन्तु धर्म को विशेषरूप से नही जानता । हे गौतम ! इस पुरुष को मैंने देश-आराधक कहा है ।

(२) इनमे से जो दूसरा पुरुष है, वह पुरुष शीलवान् नही, परन्तु श्रुतवान् है । वह (पापादि से) अनुपरत (अनिवृत्त) है, परन्तु धर्म को विशेषरूप से जानता है । हे गौतम ! इस पुरुष को मैंने देश-विराधक कहा है ।

(३) इनमे से जो तृतीय पुरुष है, वह पुरुष शीलवान् भी है और श्रुतवान् भी है । वह (पापादि से) उपरत है और धर्म का भी विज्ञाता है । हे गौतम ! इस पुरुष को मैंने सर्व-आराधक कहा है ।

(४) इनमे से जो चौथा पुरुष है, वह न तो शीलवान् है और न श्रुतवान् है । वह (पापादि से) अनुपरत है, धर्म का भी विज्ञाता नही है । गौतम ! इस पुरुष को मैंने सर्व-विराधक कहा है ।

विवेचन—श्रुत और शील की आराधना एव विराधना की दृष्टि से भगवान् द्वारा अन्य-तीर्थिकमत निराकरणपूर्वक स्वसिद्धान्तप्ररूपण—प्रस्तुत द्वितीय सूत्र मे अन्यतीर्थिको की श्रुत-शील सम्बन्धी एकान्त मान्यता का निराकरण करते हुए भगवान् द्वारा प्रतिपादित श्रुत-शील की आराधना-विराधना-सम्बन्धी चतुर्भंगी रूप स्वसिद्धान्त प्रस्तुत किया गया है ।

अन्यतीर्थिको का श्रुत-शीलसम्बन्धी मत मिथ्या क्यो ?—(१) कुछ अन्यतीर्थिक यो मानते हैं कि शील अर्थात् क्रियामात्र ही श्रेयस्कर है, श्रुत अर्थात्—ज्ञान से कोई प्रयोजन नही, क्योकि वह आकाशवत् निश्चेष्ट है । वे कहते है—पुरुषो के लिए क्रिया ही फलदायिनी है, ज्ञान फलदायक नही है । खाद्यपदार्थो के उपयोग के ज्ञान मात्र से ही कोई सुखी नही होता । (२) कुछ अन्यतीर्थिको का कहना है कि ज्ञान (श्रुत) ही श्रेयस्कर है । ज्ञान से ही अभीष्ट अर्थ की सिद्धि होती है । क्रिया से नही । ज्ञानरहित क्रियावान् पुरुष को अभीष्ट फलसिद्धि के दर्शन नही होते । जैसा कि वे कहते हैं—पुरुषो के लिए ज्ञान ही फलदायक है, क्रिया फलदायिनी नही होती, क्योकि मिथ्याज्ञानपूर्वक क्रिया करने वाले को अनिष्टफल की ही प्राप्ति होती है । (३) कितने ही अन्यतीर्थिक परस्पर निरपेक्ष श्रुत और शील को श्रेयस्कर मानते हैं । उनका कहना है कि ज्ञान क्रियारहित भी फलदायक है, क्योकि क्रिया उसमे गौणरूप से रहती है, अथवा क्रिया ज्ञानरहित हो तो भी फलदायिनी है, क्योकि उसमे ज्ञान गौणरूप से रहता है । इन दोनो मे से कोई भी एक, पुरुष की पवित्रता का कारण है । उनका आशय यह है कि मुख्य-वृत्ति से शील श्रेयस्कर है, किन्तु श्रुत भी उसका उपकारी होने से गौणवृत्ति से श्रेयस्कर है । अथवा श्रुत मुख्यवृत्ति से और शील गौणवृत्ति से श्रेयस्कर है । प्रथम के दोनो मत एकान्त होने से मिथ्या हैं और तीसरे मत मे मुख्य-गौणवृत्ति का आश्रय ले कर जो प्रतिपादन किया गया है, वह भी युक्तिसगत और सिद्धान्तसम्मत नही है क्योकि श्रुत और शील दोनो पृथक्-पृथक् या गौण-मुख्य न रह कर समुदित रूप मे साथ-साथ रहने पर ही मोक्षफलदायक होते है । इस सम्बन्ध मे

दोनो पहियो के एक साथ जुडने पर ही रथ चलता है तथा अन्धा और पगु दोनो मिल कर ही अभीष्ट नगर मे प्रविष्ट हो सकते हैं। ये दो दृष्टान्त दे कर वृत्तिकार श्रुत और शील दोनो के एक साथ समायोग को ही अभीष्ट फलदायक मानते हैं।[1]

श्रुत-शील की चतुर्भंगी का आशय—(१) प्रथम भग का स्वामी शीलसम्पन्न है, श्रुतसम्पन्न नही, उसका आशय यह है कि वह भावत शास्त्रज्ञान प्राप्त किया हुआ या तत्त्वो का विशेष ज्ञाता नही है, अत स्वबुद्धि से ही पापो से निवृत्त है। मूलपाठ मे उक्त 'अविण्णायधम्मे' पद से यह स्पष्ट होता है, कि जिसने धर्म को विशेष रूप नही जाना, वह (अविज्ञातधर्मा) साधक मोक्ष-मार्ग की देशत—अशत आराधना करने वाला है। अर्थात्—जो चारित्र की आराधना करता है, किन्तु विशेषरूप से ज्ञानवान् नही है (उससे ज्ञान की आराधना विशेषरूप से नही होती।) अथवा स्वय अगीतार्थ है, इसलिए गीतार्थ के निश्राय मे रहकर तपश्चर्यारत रहता है। इस भग का स्वामी मिथ्यादृष्टि नही, किन्तु सम्यग्दृष्टि है। (२) दूसरे भग का स्वामी शीलसम्पन्न नही, किन्तु श्रुतसम्पन्न है, वह पापादि से अनिवृत्त है, किन्तु धर्म का विशेष ज्ञाता है। इसलिए उसे यहाँ देशविराधक कहा गया है, क्योकि वह ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप रत्न-त्रय जो मोक्षमार्ग है, उसमे से तृतीय भागरूप चारित्र की विराधना करता है, अर्थात्—प्राप्त हुए चारित्र का पालन नही करता, अथवा चारित्र को प्राप्त ही नही करता। इस भग का स्वामी अविरतिसम्यग्दृष्टि है, अथवा प्राप्त चारित्र का अपालक श्रुतसम्पन्नसाधक है। (३) तृतीय भग का स्वामी शीलसम्पन्न भी है और श्रुतसम्पन्न भी। वह उपरत है तथा धर्म का भी विशिष्ट ज्ञाता है। अत वह सर्वाराधक है, क्योकि वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रय-मोक्षमार्ग की सर्वथा आराधना करता है। (४) चतुर्थ भग का स्वामी शील और श्रुत दोनो से रहित है। वह अनुपरत है और धर्म का विज्ञाता भी नही, क्योकि श्रुत (सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन) से रहित पुरुष न तो विज्ञातधर्मा हो सकता है और न ही सम्यक्चारित्र की आराधना कर सकता है। इसलिए रत्नत्रय का विराधक होने से वह सर्वविराधक माना गया है।[2]

१ (क) भगवती सूत्र अ वृत्ति, पत्राक ४१७-४१८
(ख) क्रियैव फलदा पुसा न ज्ञान फलद मतम्।
स्त्रीभक्ष्यभोगज्ञो, न ज्ञानात् सुखितो भवेत् ॥ १ ॥
विज्ञप्ति फलदा पुसा, न क्रिया फलदा मता।
मिथ्याज्ञानात्प्रवृत्तस्य, फलासवाददर्शनात् ॥ २ ॥
(ग) 'ज्ञानक्रियाभ्या मोक्ष।'
'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग' —तत्त्वार्थसूत्र अ १, सू १
(घ) नाण पयासय, सोहओ तवो, सजमो य गुत्तिकरो।
तिण्हपि समाओगे मोक्खो जिणसासणे भणिओ ॥
(ङ) सजोगसिद्धीइ फल वयति, न हु एगचक्केण रहो पयाइ।
अधो य पगू य वणे समिच्चा, ते सपउत्ता नगर पविट्ठा ॥
२ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ४१८
(ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ३, पृ १५४१-१५४२

ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना, इनका परस्पर सम्बन्ध एवं इनकी उत्कृष्ट-मध्यम-जघन्याराधना का फल—

३ कतिविहा णं भंते ! आराहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा आराहणा पण्णत्ता, तं जहा—नाणाराहणा दंसणाराहणा चरित्ताराहणा।

[३ प्र.] भगवन् ! आराधना कितने प्रकार की कही गई है ?

[३ उ.] गौतम ! आराधना तीन प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—(१) ज्ञानाराधना, (२) दर्शनाराधना और (३) चारित्राराधना।

४ णाणाराहणा णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—उक्कोसिया मज्झिमिया जहन्ना।

[४ प्र.] भगवन् ! ज्ञानाराधना तीन प्रकार की कही गई है ?

[४ उ.] गौतम ! ज्ञानाराधना तीन प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—(१) उत्कृष्ट, (२) मध्यम और (३) जघन्य।

५ दंसणाराहणा णं भंते ! ० ?

एवं चेव तिविहा वि।

[५ प्र.] भगवन् ! दर्शनाराधना कितने प्रकार की कही गई है ?

[५ उ.] गौतम ! दर्शनाराधना भी इसी प्रकार तीन प्रकार की कही गई है।

६. एवं चरित्ताराहणा वि।

[६] इसी प्रकार चारित्राराधना भी तीन प्रकार की कही गई है।

७ जस्स णं भंते ! उक्कोसिया णाणाराहणा तस्स उक्कोसिया दंसणाराहणा ? जस्स उक्कोसिया दंसणाराहणा तस्स उक्कोसिया णाणाराहणा ?

गोयमा ! जस्स उक्कोसिया णाणाराहणा तस्स दंसणाराहणा उक्कोसिया वा अजहन्न-उक्कोसिया वा, जस्स पुण उक्कोसिया दंसणाराहणा तस्स नाणाराहणा उक्कोसा वा जहन्ना वा अजहन्नमणुक्कोसा वा।

[७ प्र.] भगवन् ! जिस जीव के उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है, क्या उसके उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है, और जिस जीव के उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है, क्या उसके उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है ?

[७ उ.] गौतम ! जिस जीव के उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है, उसके दर्शनाराधना उत्कृष्ट या मध्यम (अजघन्य-अनुत्कृष्ट) होती है। जिस जीव के उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है, उसके उत्कृष्ट, जघन्य या मध्यम ज्ञानाराधना होती है।

८ जस्स ण भंते ! उक्कोसिया णाणाराहणा तस्स उक्कोसिया चरित्ताराहणा ? जस्सुक्कोसिया चरित्ताराहणा तस्सुक्कोसिया णाणाराहणा ?

जहा उक्कोसिया णाणाराहणा य दसणाराहणा य भणिया तहा उक्कोसिया णाणाराहणा य चरित्ताराहणा य भाणियव्वा ।

[८ प्र] भगवन् ! जिस जीव के उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है, क्या उसके उत्कृष्ट चारित्राराधना होती है और जिस जीव के उत्कृष्ट चारित्राराधना होती है, क्या उसके उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है ?

[८ उ] गौतम ! जिस प्रकार उत्कृष्ट ज्ञानाराधना और दर्शनाराधना के विषय मे कहा, उसी प्रकार उत्कृष्ट ज्ञानाराधना और उत्कृष्ट चारित्राराधना के विषय मे भी कहना चाहिए ।

९ जस्स ण भंते ! उक्कोसिया दसणाराहणा तस्सुक्कोसिया चरित्ताराहणा ? जस्सुक्कोसिया चरित्ताराहणा तस्सुक्कोसिया दसणाराहणा ?

गोयमा ! जस्स उक्कोसिया दसणाराहणा तस्स चरित्ताराहणा उक्कोसा वा जहन्ना वा अजहन्नमणुक्कोसा वा, जस्स पुण उक्कोसिया चरित्ताराहणा तस्स दंसणाराहणा नियमा उक्कोसा ।

[९ प्र] भगवन् ! जिसके उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है, क्या उसके उत्कृष्ट चारित्राराधना होती है, और जिसके उत्कृष्ट चारित्राराधना होती है, उसके उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है ?

[९ उ] गौतम ! जिसके उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है, उसके उत्कृष्ट, मध्यम या जघन्य चारित्राराधना होती है और जिसके उत्कृष्ट चारित्राराधना होती है, उसके नियमत (अवश्यमेव) उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है ।

१० उक्कोसियं ण भंते ! णाणाराहण आराहेत्ता कतिहि भवग्गहणेहि सिज्झति जाव अत करेति ?

गोयमा ! अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेण सिज्झति जाव अंत करेति । अत्थेगतिए दोच्चेणं भवग्गहणेण सिज्झति जाव अतं करेति । अत्थेगतिए कप्पोवएसु वा कप्पातीएसु वा उववज्जति ।

[१० प्र] भगवन् ! ज्ञान की उत्कृष्ट आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सभी दु खो का अन्त करता है ?

[१० उ] गौतम ! कितने ही जीव उसी भव मे सिद्ध हो जाते हैं, यावत् सभी दु खो का अन्त कर देते हैं, कितने ही जीव दो भव ग्रहण करके सिद्ध होते हैं, यावत् सभी दु खो का अन्त करते हैं, कितने ही जीव कल्पोपपन्न देवलोको मे अथवा कल्पातीत देवलोको मे उत्पन्न होते हैं ।

११. उक्कोसिय ण भंते ! दसणाराहण आराहेत्ता कतिहि भवग्गहणेहि० ?

एव चेव ।

[११ प्र] भगवन् ! दर्शन की उत्कृष्ट आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सभी दु खो का अन्त करता है ?

[११ उ] गौतम ! (जिस प्रकार उत्कृष्ट ज्ञानाराधना के फल के विषय मे कहा है,) उसी प्रकार उत्कृष्ट दर्शनाराधना के (फल के) विषय मे समझना चाहिए।

१२ उक्कोसिय णं भंते ! चरित्ताराहण आराहेत्ता० ?

एवं चेव। नवरं अत्थेगतिए कप्पातीएसु उववज्जति।

[१२ प्र] भगवन् ! चारित्र की उत्कृष्ट आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सभी दु खो का अन्त करता है ?

[१२ उ] गौतम ! उत्कृष्ट ज्ञानाराधना के (फल के) विषय मे जिस प्रकार कहा था उसी प्रकार उत्कृष्ट चारित्राराधना के (फल के) विषय मे कहना चाहिए। विशेष यह है कि कितने ही जीव (इसके फलस्वरूप) कल्पातीत देवलोको मे उत्पन्न होते है।

१३. मज्झिमिय ण भंते ! णाणाराहण आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झति जाव अंत करेति ?

गोयमा ! अत्थेगतिए दोच्चेण भवग्गहणेण सिज्झइ जाव अंतं करेति, तच्च पुण भवग्गहणं नाइक्कमइ।

[१३ प्र] भगवन् ! ज्ञान की मध्यम-आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सभी दु खो का अन्त कर देता है ?

[१३ उ] गौतम ! कितने ही जीव दो भव ग्रहण करके सिद्ध होते है, यावत् सभी दु खो का अन्त करते है, वे तीसरे भव का अतिक्रमण नही करते।

१४ मज्झिमिय ण भंते ! दसणाराहण आराहेत्ता० ?

एव चेव।

[१४ प्र] भगवन् ! दर्शन की मध्यम आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सब दु खो का अन्त करता है ?

[१४ उ.] गौतम ! जिस प्रकार ज्ञान की मध्यम आराधना के (फल के) विषय मे कहा, उसी प्रकार दर्शन की मध्यम आराधना के (फल के) विषय मे कहना चाहिए।

१५ एव मज्झिमिय चरित्ताराहण पि।

[१५] इसी (पूर्वोक्त) प्रकार से चारित्र की मध्यम आराधना के (फल के) विषय मे कहना चाहिए।

१६ जहन्निय ण भंते ! नाणाराहण आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झति जाव अतं करेति ?

गोयमा ! अत्थेगतिए तच्चेण भवग्गहणेण सिज्झइ जाव अंत करेइ, सत्त-ऽट्ठभवग्गहणाइ पुण नाइक्कमइ।

[१६ प्र] भगवन् ! ज्ञान की जघन्य आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सब दु खो का अन्त करता है ?

[१६ उ] गौतम ! कितने ही जीव तीसरा भव ग्रहण करके सिद्ध होते हैं, यावत् सर्व दु खो का अन्त करते है, परन्तु सात-आठ भव का अतिक्रमण नही करते ।

१७ एव दसणाराहण पि ।

[१७] इसी प्रकार जघन्य दर्शनाराधना के (फल के) विषय मे समझना चाहिए ।

१८. एव चरित्ताराहण पि ।

[१८] इसी प्रकार जघन्य चारित्राराधना के (फल के) विषय मे भी कहना चाहिए ।

विवेचन—ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना, इनका परस्पर सम्बन्ध एव इनकी उत्कृष्ट-मध्यम-जघन्याराधना का फल—प्रस्तुत १६ सूत्रो (सू ३ से १८ तक) मे रत्नत्रय की आराधना और उनके पारस्परिक सम्बन्ध तथा उनके जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट फल के विषय मे निरूपण किया गया है ।

आराधना : परिभाषा, प्रकार और स्वरूप—ज्ञानादि की निरतिचार रूप से अनुपालना करना आराधना है । आराधना के तीन प्रकार है—ज्ञानाराधना, दर्शनाराधना और चारित्राराधना । पाच प्रकार के ज्ञान या ज्ञानाधार श्रुत (शास्त्रादि) की, काल, विनय, बहुमान आदि आठ ज्ञानाचार-सहित निर्दोष रीति से पालना करना ज्ञानाराधना है । शका, काक्षा आदि अतिचारो को न लगाते हुए, नि-शकित, निष्काक्षित आदि आठ दर्शनाचारो का शुद्धतापूर्वक पालन करते हुए दर्शन अर्थात् सम्यक्त्व की आराधना करना, दर्शनाराधना है । सामायिक आदि चारित्रो अथवा समिति-गुप्ति, व्रत-महाव्रतादि रूप चारित्र का निरतिचार-विशुद्ध पालन करना चारित्राराधना है । ज्ञानकृत्य एव ज्ञानानुष्ठानो मे उत्कृष्ट प्रयत्न करना उत्कृष्ट ज्ञानाराधना है । इसमे चौदह पूर्व का ज्ञान आ जाता है । मध्यम प्रयत्न करना मध्यम ज्ञानाराधना है, इसमे ग्यारह अगो का ज्ञान आ जाता है । और जघन्य (अल्पतम) प्रयत्न करना जघन्य ज्ञानाराधना है । इसमे अष्टप्रवचनमाता का ज्ञान आ जाता है । इसी प्रकार दर्शन और चारित्र की आराधना मे उत्कृष्ट, मध्यम एव जघन्य प्रयत्न करना उनकी उत्कृष्ट, मध्यम एव जघन्य आराधना है । उत्कृष्ट दर्शनाराधना मे क्षायिकसम्यक्त्व, मध्यम दर्शनाराधना मे उत्कृष्ट क्षायोपशमिक या औपशमिक सम्यक्त्व और जघन्य दर्शनाराधना मे जघन्य क्षायोपशमिक सम्यक्त्व पाया जाता है । उत्कृष्ट चारित्राराधना मे यथाख्यात चारित्र, मध्यम चारित्राराधना मे सूक्ष्मसम्पराय और परिहारविशुद्धि चारित्र तथा जघन्य चारित्राराधना मे सामायिकचारित्र और छेदोपस्थापनिक चारित्र पाया जाता है ।

आराधना के पूर्वोक्त प्रकारो का परस्पर सम्बन्ध—उत्कृष्ट ज्ञानाराधक मे उत्कृष्ट और मध्यम दर्शनाराधना होती है, किन्तु जघन्य दर्शनाराधना नही होती, क्योकि उसका वैसा ही स्वभाव है । उत्कृष्ट दर्शनाराधक मे ज्ञान के प्रति तीनो प्रकार का प्रयत्न सम्भव है, अत पूर्वोक्त तीनो प्रकार की ज्ञानाराधना भजना से होती है । जिसमे उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है, उसमे चारित्राराधना उत्कृष्ट या मध्यम होती है, क्योकि उत्कृष्ट ज्ञानाराधक मे चारित्र के प्रति तीनो प्रकार का प्रयत्न भजना से होता है । जिसकी उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है, उसमे तीनो प्रकार की चारित्राराधना भजना से

होती है, क्योकि उत्कृष्ट दर्शनाराधक मे चारित्र के प्रति तीनो प्रकार का प्रयत्न अविरुद्ध है। जहाँ उत्कृष्ट चारित्राराधना होती है, वहाँ उत्कृष्ट दर्शनाराधना अवश्य होती है, क्योंकि उत्कृष्ट चारित्र उत्कृष्ट दर्शनानुगामी होता है।

रत्नत्रय की त्रिविध आराधनाओ का उत्कृष्ट फल—उत्कृष्ट ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना वाले कतिपय साधक उसी भव मे तथा कतिपय दो (बीच मे एक देव और एक मनुष्य का) भव ग्रहण करके मोक्ष जाते है। कई जीव कल्पोपपन्न या कल्पातीत देवलोको मे, विशेषत उत्कृष्ट चारित्राराधना वाले एकमात्र कल्पातीत देवलोको मे उत्पन्न होते है। मध्यम ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना वाले कई जीव जघन्य दो भव ग्रहण करके उत्कृष्टत तीसरे भव मे (बीच मे दो भव देवो के करके) अवश्य मोक्ष जाते है। इसी तरह जघन्यत ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना करने वाले कतिपय जीव जघन्य तीसरे भव मे, उत्कृष्टत सात या आठ भवो मे अवश्यमेव मोक्ष जाते है। ये सात भव देवसम्बन्धी और आठ भव चारित्रसम्बन्धी, मनुष्य के समझने चाहिए।[1]

पुद्गल-परिणाम के भेद-प्रभेदो का निरूपण—

१९ कतिविहे णं भंते ! पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पंचविहे पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते, त जहा—वण्णपरिणामे १ गंधपरिणामे २ रसपरिणामे ३ फासपरिणामे ४ संठाणपरिणामे ५।

[१९ प्र] भगवन् ! पुद्गलपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१९ उ] गौतम ! पुद्गलपरिणाम पाच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—(१) वर्ण-परिणाम, (२) गन्ध-परिणाम, (३) रस-परिणाम, (४) स्पर्श-परिणाम और (५) सस्थान-परिणाम।

२० वण्णपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पचविहे पण्णत्ते, त जहा—कालवण्णपरिणामे जाव सुक्किल्लवण्णपरिणामे।

[२० प्र] भगवन् ! वर्णपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२० उ] गौतम ! वह पाच प्रकार का कहा गया है। यथा—कृष्ण (काला) वर्ण-परिणाम यावत् शुक्ल (श्वेत) वर्ण-परिणाम।

२१ एएणं अभिलावेण गंधपरिणामे दुविहे, रसपरिणामे पचविहे, फासपरिणामे अट्ठविहे।

[२१] इसी प्रकार के अभिलाप द्वारा गन्धपरिणाम दो प्रकार का, रसपरिणाम पाच प्रकार का और स्पर्शपरिणाम आठ प्रकार का जानना चाहिए।

२२ सठाणपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पचविहे पण्णत्ते, तं जहा—परिमडलसठाणपरिणामे जाव आययसठाणपरिणामे।

[२२ प्र] भगवन् ! सस्थान-परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ४१९-४२०

[१६ प्र] भगवन् ! ज्ञान की जघन्य आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सब दु खो का अन्त करता है ?

[१६ उ] गौतम ! कितने ही जीव तीसरा भव ग्रहण करके सिद्ध होते है, यावत् सर्व दु खो का अन्त करते है, परन्तु सात-आठ भव का अतिक्रमण नही करते ।

१७ एव दसणाराहणं पि ।

[१७] इसी प्रकार जघन्य दर्शनाराधना के (फल के) विषय मे समझना चाहिए ।

१८. एव चरित्ताराहण पि ।

[१८] इसी प्रकार जघन्य चारित्राराधना के (फल के) विषय मे भी कहना चाहिए ।

विवेचन—ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना, इनका परस्पर सम्बन्ध एव इनकी उत्कृष्ट-मध्यम-जघन्याराधना का फल—प्रस्तुत १६ सूत्रो (सू ३ से १८ तक) मे रत्नत्रय की आराधना और उनके पारस्परिक सम्बन्ध तथा उनके जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट फल के विषय मे निरूपण किया गया है ।

आराधना : परिभाषा, प्रकार और स्वरूप—ज्ञानादि की निरतिचार रूप से अनुपालना करना आराधना है । आराधना के तीन प्रकार हैं—ज्ञानाराधना, दर्शनाराधना और चारित्राराधना । पाच प्रकार के ज्ञान या ज्ञानाधार श्रुत (शास्त्रादि) की, काल, विनय, बहुमान आदि आठ ज्ञानाचार-सहित निर्दोष रीति से पालना करना ज्ञानाराधना है । शका, काक्षा आदि अतिचारो को न लगाते हुए, नि॰-शकित, निष्काक्षित आदि आठ दर्शनाचारो का शुद्धतापूर्वक पालन करते हुए दर्शन अर्थात् सम्यक्त्व की आराधना करना, दर्शनाराधना है । सामायिक आदि चारित्रो अथवा समिति-गुप्ति, व्रत-महाव्रतादि रूप चारित्र का निरतिचार-विशुद्ध पालन करना चारित्राराधना है । ज्ञानकृत्य एव ज्ञानानुष्ठानो मे उत्कृष्ट प्रयत्न करना उत्कृष्ट ज्ञानाराधना है । इसमे चौदह पूर्व का ज्ञान आ जाता है । मध्यम प्रयत्न करना मध्यम ज्ञानाराधना है, इसमे ग्यारह अगो का ज्ञान आ जाता है । और जघन्य (अल्पतम) प्रयत्न करना जघन्य ज्ञानाराधना है । इसमे अष्टप्रवचनमाता का ज्ञान आ जाता है । इसी प्रकार दर्शन और चारित्र की आराधना मे उत्कृष्ट, मध्यम एव जघन्य प्रयत्न करना उनकी उत्कृष्ट, मध्यम एव जघन्य आराधना है । उत्कृष्ट दर्शनाराधना मे क्षायिकसम्यक्त्व, मध्यम दर्शनाराधना मे उत्कृष्ट क्षायोपशमिक या औपशमिक सम्यक्त्व और जघन्य दर्शनाराधना मे जघन्य क्षायोपशमिक सम्यक्त्व पाया जाता है । उत्कृष्ट चारित्राराधना मे यथाख्यात चारित्र, मध्यम चारित्राराधना मे सूक्ष्मसम्पराय और परिहारविशुद्धि चारित्र तथा जघन्य चारित्राराधना मे सामायिकचारित्र और छेदोपस्थापनिक चारित्र पाया जाता है ।

आराधना के पूर्वोक्त प्रकारो का परस्पर सम्बन्ध—उत्कृष्ट ज्ञानाराधक मे उत्कृष्ट और मध्यम दर्शनाराधना होती है, किन्तु जघन्य दर्शनाराधना नही होती, क्योकि उसका वैसा ही स्वभाव है । उत्कृष्ट दर्शनाराधक मे ज्ञान के प्रति तीनो प्रकार का प्रयत्न सम्भव है, अत पूर्वोक्त तीनो प्रकार की ज्ञानाराधना भजना से होती है । जिसमे उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है, उसमे चारित्राराधना उत्कृष्ट या मध्यम होती है, क्योकि उत्कृष्ट ज्ञानाराधक मे चारित्र के प्रति तीनो प्रकार का प्रयत्न भजना से होता है । जिसकी उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है, उसमे तीनो प्रकार की चारित्राराधना भजना से

होती है, क्योंकि उत्कृष्ट दर्शनाराधक मे चारित्र के प्रति तीनो प्रकार का प्रयत्न अविरुद्ध है। जहाँ उत्कृष्ट चारित्राराधना होती है, वहाँ उत्कृष्ट दर्शनाराधना अवश्य होती है, क्योंकि उत्कृष्ट चारित्र उत्कृष्ट दर्शनानुगामी होता है।

रत्नत्रय की त्रिविध आराधनाओ का उत्कृष्ट फल—उत्कृष्ट ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना वाले कतिपय साधक उसी भव मे तथा कतिपय दो (बीच मे एक देव और एक मनुष्य का) भव ग्रहण करके मोक्ष जाते है। कई जीव कल्पोपपन्न या कल्पातीत देवलोको मे, विशेषत उत्कृष्ट चारित्राराधना वाले एकमात्र कल्पातीत देवलोको मे उत्पन्न होते है। मध्यम ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना वाले कई जीव जघन्य दो भव ग्रहण करके उत्कृष्टत तीसरे भव मे (बीच मे दो भव देवो के करके) अवश्य मोक्ष जाते है। इसी तरह जघन्यत ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना करने वाले कतिपय जीव जघन्य तीसरे भव मे, उत्कृष्टत सात या आठ भवो मे अवश्यमेव मोक्ष जाते हैं। ये सात भव देवसम्बन्धी और आठ भव चारित्रसम्बन्धी, मनुष्य के समझने चाहिए।[1]

पुद्गल-परिणाम के भेद-प्रभेदो का निरूपण—

१९ कतिविहे णं भंते ! पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पंचविहे पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते, त जहा—वण्णपरिणामे १ गंधपरिणामे २ रसपरिणामे ३ फासपरिणामे ४ संठाणपरिणामे ५।

[१९ प्र] भगवन् ! पुद्गलपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१९ उ] गौतम ! पुद्गलपरिणाम पाच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—(१) वर्ण-परिणाम, (२) गन्ध-परिणाम, (३) रस-परिणाम, (४) स्पर्श-परिणाम और (५) सस्थान-परिणाम।

२० वण्णपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पचविहे पण्णत्ते, त जहा—कालवण्णपरिणामे जाव सुक्किल्लवण्णपरिणामे।

[२० प्र] भगवन् ! वर्णपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२० उ] गौतम ! वह पाच प्रकार का कहा गया है। यथा—कृष्ण (काला) वर्ण-परिणाम यावत् शुक्ल (श्वेत) वर्ण-परिणाम।

२१ एएणं अभिलावेणं गधपरिणामे दुविहे, रसपरिणामे पचविहे, फासपरिणामे अट्ठविहे।

[२१] इसी प्रकार के अभिलाप द्वारा गन्धपरिणाम दो प्रकार का, रसपरिणाम पाच प्रकार का और स्पर्शपरिणाम आठ प्रकार का जानना चाहिए।

२२ सठाणपरिणामे ण भते ! कइविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पचविहे पण्णत्ते, तं जहा—परिमडलसठाणपरिणामे जाव आययसठाणपरिणामे।

[२२ प्र] भगवन् ! सस्थान-परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ४१९-४२०

[२२ उ] गौतम ! वह पाच प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार—परिमण्डलसस्थान-परिणाम, यावत् आयतसस्थान-परिणाम ।

विवेचन—पुद्गल-परिणाम के भेद-प्रभेदो का निरूपण—प्रस्तुत चार सूत्रो मे पुद्गल-परिणाम के वर्णादि पाच प्रकार एव उनके भेदो का निरूपण किया गया है ।

पुद्गल-परिणाम की व्याख्या—पुद्गल का एक अवस्था से दूसरी अवस्था मे रूपान्तर होना पुद्गलपरिणाम है । इसके मूल भेद पाच और उत्तरभेद पच्चीस हैं ।[1]

पुद्गलास्तिकाय के एकप्रदेश से लेकर अनन्तप्रदेश तक अष्टविकल्पात्मक प्रश्नोत्तर—

२३ एगे भते ! पोग्गलत्थिकायपएसे किं दव्व १, दव्वदेसे २, दव्वाइ ३, दव्वदेसा ४, उदाहु दव्व च दव्वदेसे य ५, उदाहु दव्वं च दव्वदेसा य ६, उदाहु दव्वाइ च दव्वदेसे य ७ उदाहु दव्वाइं च दव्वदेसा य ८ ?

गोयमा ! सिय दव्वं, सिय दव्वदेसे, नो दव्वाइ, नो दव्वदेसा, नो दव्व च दव्वदेसे य, जाव नो दव्वाइं च दव्वदेसा य ।

[२३ प्र] भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय का एक प्रदेश (१) द्रव्य है, (२) द्रव्य-देश है (३) बहुत द्रव्य है, अथवा (४) बहुत द्रव्य-देश हैं ? अथवा (५) एक द्रव्य और एक द्रव्यदेश है, या (६) एक द्रव्य और बहुत द्रव्य-देश हैं, अथवा (७) बहुत द्रव्य और एक द्रव्यदेश है, या (८) बहुत द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश हैं ?

[२३ उ] गौतम ! वह कथञ्चित् एक द्रव्य है, कथञ्चित् एक द्रव्यदेश है, किन्तु वह बहुत द्रव्य नही, न बहुत द्रव्यदेश है, एक द्रव्य और एक द्रव्यदेश भी नही, यावत् बहुत द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश भी नही ।

२४ दो भते ! पोग्गलत्थिकायपएसा किं दव्वं दव्वदेसे० पुच्छा तहेव ?

गोयमा ! सिय दव्वं १, सिय दव्वदेसे २, सिय दव्वाइं ३, सिय दव्वदेसा ४, सिय दव्व च दव्वदेसे य ५, नो दव्व च दव्वदेसा य ६, सेसा पडिसेहेयव्वा ।

[२४ प्र] भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेश क्या एक द्रव्य है, अथवा एक द्रव्यदेश हैं ? इत्यादि (पूर्वोक्त अष्टविकल्पात्मक) प्रश्न ।

[२४ उ] गौतम ! १ कथचित् [द्रव्य हैं, २ कथञ्चित् द्रव्यदेश है, ३ कथचित् बहुत द्रव्य हैं, ४ कथचित् बहुत द्रव्यदेश है, और ५ कथचित् एक द्रव्य और एक द्रव्यदेश हैं, परन्तु ६. एक द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश नही, ७ बहुत द्रव्य और एक द्रव्यदेश नही तथा ८ बहुत द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश नही हैं । (अर्थात्—प्रथम के ५ भगो के अतिरिक्त शेष भगो का निषेध करना चाहिए ।)

२५. तिण्णि भते ! पोग्गलत्थिकायपएसा किं दव्व, दव्वदेसे० पुच्छा ।

गोयमा ! सिय दव्वं १, सिय दव्वदेसे २, एव सत्त भगा भाणियव्वा, जाव सिय दव्वाइ च दव्वदेसे य: नो दव्वाइ च दव्वदेसा य ।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्राक ४२०

[२५ प्र] भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के तीन प्रदेश, क्या एक द्रव्य हैं अथवा एक द्रव्यदेश है ? इत्यादि पूर्वोक्त प्रश्न ।

[२५ उ] गौतम ! १. कथञ्चित् एक द्रव्य है, २ कथञ्चित् एक द्रव्यदेश है, इस प्रकार यावत्—'कथञ्चित् बहुत द्रव्य और एक द्रव्यदेश है, किन्तु बहुत द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश नही हैं', यहा तक (पूर्वोक्त) सात भग कहने चाहिए ।

२६ चत्तारि भते ! पोग्गलत्थिकायपएसा किं दव्व० पुच्छा ।

गोयमा ! सिय दव्व १, सिय दव्वदेसे २, अट्ठ वि भगा भाणियव्वा जाव सिय दव्वाइ च दव्वदेसा य ८ ।

[२६ प्र] भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के चार प्रदेश क्या एक द्रव्य है या एक द्रव्यदेश है ? इत्यादि पूर्वोक्त प्रश्न ।

[२६ उ.] गौतम ! कथञ्चित् एक द्रव्य है, कथञ्चित् एक द्रव्यदेश है, इत्यादि आठो ही भग, यावत् 'कथञ्चित् बहुत द्रव्य है और बहुत द्रव्यदेश है,' यहाँ तक कहने चाहिए ।

२७ जहा चत्तारि भणिया एव पच छ सत्त जाव असखेज्जा ।

[२७] जिस प्रकार चार प्रदेशो के विषय मे कहा, उसी प्रकार पाच, छह, सात यावत् असख्यप्रदेशो तक के विषय मे कहना चाहिए ।

२८. अणंता भते ! पोग्गलत्थिकायपएसा किं दव्व ?

एव चेव जाव सिय दव्वाइ च दव्वदेसा य ।

[२८ प्र] भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के अनन्तप्रदेश क्या एक द्रव्य है या एक द्रव्यदेश है ? इत्यादि (पूर्वोक्त अष्टविकल्पात्मक) प्रश्न ।

[२८ उ] गौतम ! पहले कहे अनुसार यहाँ भी यावत्—'कथचित् बहुत द्रव्य है, और बहुत द्रव्यदेश हैं', यहाँ तक आठो ही भग कहने चाहिए ।

विवेचन—पुद्गलास्तिकाय के एक प्रदेश से लेकर अनन्त प्रदेश तक के विषय मे अष्टविकल्पीय प्रश्नोत्तर—प्रस्तुत छह सूत्रो (सू २३ से २८ तक) मे पुद्गलास्तिकाय के एकप्रदेश से लेकर अनन्त प्रदेश तक के विषय मे अष्टविकल्पात्मक प्रश्नोत्तर प्ररूपित हैं ।

किसमे कितने भग ?—प्रस्तुत सूत्रो मे पुद्गलास्तिकाय के विषय मे ८ भग उपस्थित किये गए है, जिनमे द्रव्य और द्रव्यदेश के एकवचन और बहुवचन-सम्बन्धी असयोगी चार भग हैं और द्विकसयोगी ४ भग है । जब दूसरे द्रव्य के साथ उसका सम्बन्ध नही होता, तब वह द्रव्य (गुणपर्याययोगी) है और जब दूसरे द्रव्य के साथ उसका सम्बन्ध होता है, तब वह द्रव्यदेश (द्रव्यावयव) है । पुद्गलास्तिकाय के एक प्रदेश मे प्रदेश एक ही है, इसलिए उसमे बहुवचनसम्बन्धी दो भग और द्विकसयोगी चार भग, ये ६ भग नही पाए जाते । पुद्गलास्तिकाय के द्विप्रदेशिकस्कन्धरूप से परिणत दो प्रदेशो मे उपर्युक्त ८ भगो मे से पहले-पहले के पाच भग पाए जाते हैं और पुद्गलास्तिकाय के त्रिप्रदेशिकस्कन्धरूप से परिणत तीन प्रदेशो मे पहले-पहले के सात भग पाए जाते है । चार प्रदेशो

मे आठो ही भग पाए जाते है। चारप्रदेशी से लेकर यावत् अनन्तप्रदेशी पुद्गलास्तिकाय तक मे प्रत्येक मे आठ-आठ भग पाए जाते है।[1]

लोकाकाश के और प्रत्येक जीव के प्रदेश—

२९. केवतिया ण भते ! लोयागासपएसा पण्णत्ता ?

गोयमा ! असखेज्जा लोयागासपएसा पण्णत्ता।

[२९ प्र] भगवन् ! लोकाकाश के प्रदेश कितने कहे गए है ?

[२९ उ] गौतम ! लोकाकाश के असख्येय प्रदेश कहे गए है।

३० एगमेगस्स णं भते ! जीवस्स केवइया जीवपएसा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जावतिया लोगागासपएसा एगमेगस्स ण जीवस्स एवतिया जीवपएसा पण्णत्ता।

[३० प्र] भगवन् ! एक-एक जीव के कितने-कितने जीवप्रदेश कहे गए है ?

[३० उ] गौतम ! लोकाकाश के जितने प्रदेश कहे गए है, उतने ही एक-एक जीव के जीव-प्रदेश कहे गए है।

विवेचन—लोकाकाश के और प्रत्येक जीव के प्रदेश—प्रस्तुत दो सूत्रो मे से प्रथम (सू २९) सूत्र मे लोकाकाश के प्रदेशो का तथा द्वितीय (सू ३०) सूत्र मे एक-एक जीव के प्रदेशो का निरूपण किया गया है।

लोकाकाशप्रदेश और जीवप्रदेश की तुल्यता—लोक असख्यातप्रदेशी है, इसलिए उसके प्रदेश असख्याता है। जितने लोक के प्रदेश है, उतने ही एक जीव के प्रदेश हैं। जब जीव, केवली-समुद्घात करता है, तब वह आत्मप्रदेशो से सम्पूर्ण लोक को व्याप्त कर देता है, अर्थात्—लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक जीवप्रदेश अवस्थित हो जाता है।[2]

आठ कर्मप्रकृतियां, उनके अविभागपरिच्छेद और आवेष्टित-परिवेष्टित समस्त संसारी जीव—

३१ कति ण भते ! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ, त जहा—नाणावरणिज्ज जाव अतराइय।

[३१ प्र] भगवन् ! कर्मप्रकृतिया कितनी कही गई है ?

[३१ उ] गौतम ! कर्मप्रकृतिया आठ कही गई है। यथा—ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय।

३२ [१] नेरइयाण भते ! कइ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ।

[३२-१ प्र] भगवन् ! नैरयिको के कितनी कर्मप्रकृतिया कही गई है ?

[३२-१ उ] गौतम ! (उनके) आठ कर्मप्रकृतिया (कही गई है।)

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ४२१

२ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २१

[२] एव सव्वजीवाणं अट्ठ कम्मपगडीओ ठावेयव्वाओ जाव वेमाणियाण ।

[३२-२] इसी प्रकार वैमानिकपर्यन्त सभी जीवो के आठ कर्मप्रकृतियो की प्ररूपणा करनी चाहिए ।

३३ नाणावरणिज्जस्स ण भते ! कम्मस्स केवतिया अविभागपलिच्छेदा पण्णत्ता ?
गोयमा ! अणता अविभागपलिच्छेदा पण्णत्ता ।

[३३ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म के कितने अविभाग-परिच्छेद कहे गए हैं ?
[३३ उ] गौतम ! उसके अनन्त अविभाग-परिच्छेद कहे गए है ।

३४ नेरइयाण भते ! णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवतिया अविभागपलिच्छेया पण्णत्ता ?
गोयमा ! अणंता अविभागपलिच्छेदा पण्णत्ता ।

[३४ प्र] भगवन् ! नैरयिको के ज्ञानावरणीयकर्म के कितने अविभाग-परिच्छेद कहे गए हैं ?

[३४ उ] गौतम ! उनके अनन्त अविभाग-परिच्छेद कहे गए है ।

३५ एव सव्वजीवाणं जाव वेमाणियाण पुच्छा ।
गोयमा ! अणता अविभागपलिच्छेदा पण्णत्ता ।

[३५ प्र] भगवन् ! इसी प्रकार वैमानिकपर्यन्त सभी जीवो के ज्ञानावरणीय कर्म के कितने अविभाग-परिच्छेद कहे गए है ?

[३५ उ] गौतम ! अनन्त अविभाग-परिच्छेद कहे गए है ।

३६ एव जहा णाणावरणिज्जस्स अविभागपलिच्छेदा भणिया तहा अट्ठण्ह वि कम्मपगडीण भाणियव्वा जाव वेमाणियाण अंतराइयस्स ।

[३६] जिस प्रकार (सभी जीवो के) ज्ञानावरणीय कर्म के (अनन्त) अविभाग-परिच्छेद कहे है, उसी प्रकार वैमानिक-पर्यन्त सभी जीवो के यावत् अन्तराय कर्म तक आठो कर्मप्रकृतियो के [प्रत्येक के अनन्त-अनन्त) अविभाग-परिच्छेद कहने चाहिए ।

३७ एगमेगस्स ण भते ! जीवस्स एगमेगे जीवपएसे णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवइएहिं अविभागपलिच्छेदेहिं आवेढियपरिवेढिए सिया ?

गोयमा ! सिय आवेढियपरिवेढिए, सिय नो आवेढियपरिवेढिए । जइ आवेढियपरिवेढिए नियमा अणतेहिं ।

[३७ प्र] भगवन् ! प्रत्येक जीव का प्रत्येक जीवप्रदेश ज्ञानावरणीय कर्म के कितने अविभाग-परिच्छेदो से आवेष्टित-परिवेष्टित है ?

[३७ उ] हे गौतम ! वह कदाचित् आवेष्टित-परिवेष्टित होता है, कदाचित् आवेष्टित-परिवेष्टित नही होता । यदि आवेष्टित-परिवेष्टित होता है तो वह नियमत अनन्त अविभाग-परिच्छेदो से होता है ।

३८ एगमेगस्स ण भंते ! नेरइयस्स एगमेगे जीवपएसे णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवइएहिं अविभागपलिच्छेदेहिं आवेढियपरिवेढिते ?

गोयमा ! नियमा अणतेहिं ।

[३८ प्र] भगवन् ! प्रत्येक नैरयिक जीव का प्रत्येक जीवप्रदेश ज्ञानावरणीय कर्म के कितने अविभाग-परिच्छेदो से आवेष्टित-परिवेष्टित होता है ?

[३८ उ] गौतम ! वह नियमत अनन्त अविभाग-परिच्छेदो से आवेष्टित-परिवेष्टित होता है ।

३९ जहा नेरइयस्स एव जाव वेमाणियस्स । नवर मणूसस्स जहा जीवस्स ।

[३९] जिस प्रकार नैरयिक जीवो के विषय मे कहा, उसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए, परन्तु विशेष इतना है कि मनुष्य का कथन (औघिक-सामान्य) जीव की तरह करना चाहिए ।

४० एगमेगस्स ण भंते ! जीवस्स एगमेगे जीवपएसे दरिसणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवतिएहिं० ?

एव जहेव नाणावरणिज्जस्स तहेव दंडगो भाणियव्वो जाव वेमाणियस्स ।

[४० प्र] भगवन् ! प्रत्येक जीव का प्रत्येक जीव-प्रदेश दर्शनावरणीयकर्म के कितने अविभाग-परिच्छेदों से आवेष्टित-परिवेष्टित है ?

[४० उ] गौतम ! जैसे ज्ञानावरणीय कर्म के विषय मे दण्डक कहा गया है, वैसे यहाँ भी उसी प्रकार वैमानिक-पर्यन्त कहना चाहिए ।

४१ एव जाव अंतराइयस्स भाणियव्व, नवर वेयणिज्जस्स आउयस्स नामस्स गोयस्स, एएसिं चउण्ह वि कम्माणं मणूसस्स जहा नेरइयस्स तहा भाणियव्व, सेसं त चेव ।

[४१] इसी प्रकार यावत् अन्तराय कर्म-पर्यन्त कहना चाहिए । विशेष इतना ही है कि वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र इन चार कर्मो के विषय मे जिस प्रकार नैरयिक जीवो के लिए कथन किया गया है, उसी प्रकार मनुष्यो के लिए भी कहना चाहिए । शेष सब वर्णन पूर्वोक्त कथनानुसार कहना चाहिए ।

विवेचन—आठ कर्मप्रकृतिया, उनके अविभागपरिच्छेद और उनसे आवेष्टित-परिवेष्टित समस्त ससारी जीव—प्रस्तुत ग्यारह सूत्रो (सू ३१ से ४१ तक) मे क्रमश आठ कर्मप्रकृतियो, उनसे बद्ध समस्त ससारी जीव, तथा उनके अष्टकर्मप्रकृतियो के अनन्त-अनन्त अविभागपरिच्छेद, तथा उन अविभागपरिच्छेदो से आवेष्टित-परिवेष्टित समस्त ससारी जीव का निरूपण किया गया है ।

अविभाग-परिच्छेद की व्याख्या—परिच्छेद का अर्थ है—अश और अविभाग का अर्थ है—जिसका विभाग न हो सके । अर्थात्—केवलज्ञानी की प्रज्ञा द्वारा भी जिसके विभाग—अश न किये जा सकें, ऐसे सूक्ष्म (निरश) अश को अविभाग-परिच्छेद कहते है । दूसरे शब्दो मे (कर्म-) दलिको की अपेक्षा से परमाणुरूप निरश अश को अविभाग-परिच्छेद कहा जा सकता है । ज्ञानावरणीय कर्म के

अनन्त अविभाग-परिच्छेद कहने का अर्थ है—ज्ञानावरणीय कर्म ज्ञान के जितने अंशों—भेदों को आवृत करता है, उतने ही उसके अविभाग-परिच्छेद होते हैं, और ज्ञानावरणीयकर्मदलिकों की अपेक्षा वे उसके कर्म परमाणुरूप अनन्त होते हैं। प्रत्येक संसारी जीव (मनुष्य के सिवाय) ८ कर्मों में से प्रत्येक कर्म के अनन्त-अनन्त परमाणुओं (अविभाग-परिच्छेदों) से युक्त होता है, तथा उनसे आवेष्टित-परिवेष्टित (अर्थात् गाढरूप से—चारों ओर से लिपटा हुआ—बद्ध) होता है।

आवेष्टित-परिवेष्टित के विषय में विकल्प—औधिक(सामान्य) जीव—सूत्र में कदाचित् ज्ञानावरणीय कर्म के अविभाग-परिच्छेदों से आवेष्टित-परिवेष्टित न होने की जो बात कही गई है, वह केवली की अपेक्षा से कही गई है, क्योंकि उनके ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय हो चुका है। इसी प्रकार केवलियों के दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्म का भी क्षय हो चुका है, अतः इन घातीकर्मों द्वारा केवलज्ञानियों की आत्मा को ये कर्म आवेष्टित-परिवेष्टित नहीं करते। वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र, ये चारों कर्म अघातिक हैं, अतः इनके विषय में मनुष्यपद में कोई अन्तर नहीं पड़ता। क्योंकि ये चारों जैसे छद्मस्थों के होते हैं, वैसे केवलियों के भी होते हैं। सिद्ध भगवान् में नहीं होते, इसलिए जीव-पद में इस विषयक भजना है, किन्तु मनुष्यपद में नहीं, क्योंकि केवली भी मनुष्यगति और मनुष्यायु का उदय होने से मनुष्य ही हैं।[1]

आठ कर्मों के परस्पर सहभाव की वक्तव्यता—

४२. जस्स णं भंते ! नाणावरणिज्जं तस्स दरिसणावरणिज्जं, जस्स दंसणावरणिज्जं तस्स नाणावरणिज्जं ?

गोयमा ! जस्स णं नाणावरणिज्जं तस्स दंसणावरणिज्जं नियमा अत्थि, जस्स णं दरिसणावरणिज्जं तस्स वि नाणावरणिज्जं नियमा अत्थि।

[४२ प्र.] भगवन् ! जिस जीव के ज्ञानावरणीय कर्म है, उसके क्या दर्शनावरणीय कर्म भी है और जिस जीव के दर्शनावरणीय कर्म है, उसके ज्ञानावरणीय कर्म भी है ?

[४२ उ.] हाँ गौतम ! जिस जीव के ज्ञानावरणीय कर्म है, उसके नियमतः दर्शनावरणीय कर्म है और जिस जीव के दर्शनावरणीय कर्म है, उनके नियमतः ज्ञानावरणीय कर्म भी है।

४३. जस्स णं भंते ! णाणावरणिज्जं तस्स वेयणिज्जं, जस्स वेयणिज्जं तस्स णाणावरणिज्जं ?

गोयमा ! जस्स नाणावरणिज्जं तस्स वेयणिज्जं नियमा अत्थि, जस्स पुण वेयणिज्जं तस्स णाणावरणिज्जं सिय अत्थि, सिय नत्थि।

[४३ प्र.] भगवन् ! जिस जीव के ज्ञानावरणीय कर्म है, क्या उसके वेदनीय कर्म है; और जिस जीव के वेदनीय कर्म है, क्या उसके ज्ञानावरणीय कर्म भी है ?

[४३ उ.] गौतम ! जिस जीव के ज्ञानावरणीय कर्म है, उसके नियमतः वेदनीय कर्म है, किन्तु जिस जीव के वेदनीय कर्म है, उसके ज्ञानावरणीय कर्म कदाचित् होता है, कदाचित् नहीं होता।

---

१. भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ४२२

३८ एगमेगस्स ण भंते ! नेरइयस्स एगमेगे जीवपएसे णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवइएहिं अविभागपलिच्छेदेहिं आवेढियपरिवेढिते ?

गोयमा ! नियमा अणतेहिं ।

[३८ प्र] भगवन् ! प्रत्येक नैरयिक जीव का प्रत्येक जीवप्रदेश ज्ञानावरणीय कर्म के कितने अविभाग-परिच्छेदो से आवेष्टित-परिवेष्टित होता है ?

[३८ उ] गौतम ! वह नियमत अनन्त अविभाग-परिच्छेदो से आवेष्टित-परिवेष्टित होता है ।

३९ जहा नेरइयस्स एव जाव वेमाणियस्स । नवर मणूसस्स जहा जीवस्स ।

[३९] जिस प्रकार नैरयिक जीवो के विषय मे कहा, उसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए, परन्तु विशेष इतना है कि मनुष्य का कथन (औधिक-सामान्य) जीव की तरह करना चाहिए ।

४० एगमेगस्स ण भंते ! जीवस्स एगमेगे जीवपएसे दरिसणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवतिएहिं० ?

एव जहेव नाणावरणिज्जस्स तहेव दडगो भाणियव्वो जाव वेमाणियस्स ।

[४० प्र] भगवन् ! प्रत्येक जीव का प्रत्येक जीव-प्रदेश दर्शनावरणीयकर्म के कितने अविभाग-परिच्छेदो से आवेष्टित-परिवेष्टित है ?

[४० उ] गौतम ! जैसे ज्ञानावरणीय कर्म के विषय मे दण्डक कहा गया है, वैसे यहाँ भी उसी प्रकार वैमानिक-पर्यन्त कहना चाहिए ।

४१ एव जाव अतराइयस्स भाणियव्व, नवर वेयणिज्जस्स आउयस्स नामस्स गोयस्स, एएसिं चउण्ह वि कम्माणं मणूसस्स जहा नेरइयस्स तहा भाणियव्व, सेस त चेव ।

[४१] इसी प्रकार यावत् अन्तराय कर्म-पर्यन्त कहना चाहिए । विशेष इतना ही है कि वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र इन चार कर्मो के विषय मे जिस प्रकार नैरयिक जीवो के लिए कथन किया गया है, उसी प्रकार मनुष्यो के लिए भी कहना चाहिए । शेष सब वर्णन पूर्वोक्त कथनानुसार कहना चाहिए ।

विवेचन—आठ कर्मप्रकृतियां, उनके अविभागपरिच्छेद और उनसे आवेष्टित-परिवेष्टित समस्त ससारी जीव—प्रस्तुत ग्यारह सूत्रो (सू ३१ से ४१ तक) मे क्रमश आठ कर्मप्रकृतियो, उनसे बद्ध समस्त ससारी जीव, तथा उनके अष्टकर्मप्रकृतियो के अनन्त-अनन्त अविभागपरिच्छेद, तथा उन अविभागपरिच्छेदो से आवेष्टित-परिवेष्टित समस्त ससारी जीव का निरूपण किया गया है ।

अविभाग-परिच्छेद की व्याख्या—परिच्छेद का अर्थ है—अश और अविभाग का अर्थ है—जिसका विभाग न हो सके । अर्थात्—केवलज्ञानी की प्रज्ञा द्वारा भी जिसके विभाग—अश न किये जा सके, ऐसे सूक्ष्म (निरश) अश को अविभाग-परिच्छेद कहते हैं । दूसरे शब्दो मे (कर्म-) दलिको की अपेक्षा से परमाणुरूप निरश अश को अविभाग-परिच्छेद कहा जा सकता है । ज्ञानावरणीय कर्म के

अनन्त अविभाग-परिच्छेद कहने का अर्थ है—ज्ञानावरणीय कर्म ज्ञान के जितने अशो—भेदो को आवृत करता है, उतने ही उसके अविभाग-परिच्छेद होते हैं, और ज्ञानावरणीयकर्मदलिको की अपेक्षा वे उसके कर्म परमाणुरूप अनन्त होते है। प्रत्येक ससारी जीव (मनुष्य के सिवाय) ८ कर्मो मे से प्रत्येक कर्म के अनन्त-अनन्त परमाणुओ (अविभाग-परिच्छेदो) से युक्त होता है, तथा उनसे आवेष्टित-परिवेष्टित (अर्थात् गाढरूप से—चारो ओर से लिपटा हुआ—बद्ध) होता है।

आवेष्टित-परिवेष्टित के विषय मे विकल्प—औघिक(सामान्य) जीव—सूत्र मे कदाचित् ज्ञानावरणीय कर्म के अविभाग-परिच्छेदो से आवेष्टित-परिवेष्टित न होने की जो बात कही गई है, वह केवली की अपेक्षा से कही गई है, क्योकि उनके ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय हो चुका है। इसी प्रकार केवलियो के दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्म का भी क्षय हो चुका है, अत इन घाती-कर्मो द्वारा केवलज्ञानियो की आत्मा को ये कर्म आवेष्टित-परिवेष्टित नही करते। वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र, ये चारो कर्म अघातिक है, अत इनके विषय मे मनुष्यपद मे कोई अन्तर नही पडता। क्योकि ये चारो जैसे छद्मस्थो के होते है, वैसे केवलियो के भी होते है। सिद्ध भगवान् मे नही होते, इसलिए जीव-पद मे इस विषयक भजना है, किन्तु मनुष्यपद मे नही, क्योकि केवली भी मनुष्यगति और मनुष्यायु का उदय होने से मनुष्य ही हैं।[1]

आठ कर्मों के परस्पर सहभाव की वक्तव्यता—

४२ जस्स णं भते ! नाणावरणिज्ज तस्स दरिसणावरणिज्ज, जस्स दसणावरणिज्ज तस्स नाणावरणिज्ज ?

गोयमा ! जस्स ण नाणावरणिज्जं तस्स दसणावरणिज्ज नियमा अत्थि, जस्स णं दरिसणावरणिज्ज तस्स वि नाणावरणिज्ज नियमा अत्थि।

[४२ प्र] भगवन् ! जिस जीव के ज्ञानावरणीय कर्म है, उसके क्या दर्शनावरणीय कर्म भी है और जिस जीव के दर्शनावरणीय कर्म है, उसके ज्ञानावरणीय कर्म भी है ?

[४२ उ] हाँ गौतम ! जिस जीव के ज्ञानावरणीय कर्म है, उसके नियमत दर्शनावरणीय कर्म है और जिस जीव के दर्शनावरणीय कर्म है, उनके नियमत ज्ञानावरणीय कर्म भी है।

४३ जस्स ण भते ! णाणावरणिज्ज तस्स वेयणिज्ज, जस्स वेयणिज्ज तस्स णाणावरणिज्ज ?

गोयमा ! जस्स नाणावरणिज्ज तस्स वेयणिज्जं नियमा अत्थि, जस्स पुण वेयणिज्ज तस्स णाणावरणिज्ज सिय अत्थि, सिय नत्थि।

[४३ प्र] भगवन् ! जिस जीव के ज्ञानावरणीय कर्म है, क्या उसके वेदनीय कर्म है, और जिस जीव के वेदनीय कर्म है, क्या उसके ज्ञानावरणीय कर्म भी है ?

[४३ उ] गौतम ! जिस जीव के ज्ञानावरणीय कर्म है, उसके नियमत वेदनीय कर्म है, किन्तु जिस जीव के वेदनीय कर्म है, उसके ज्ञानावरणीय कर्म कदाचित् होता है, कदाचित् नही होता।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ४२२

४४. जस्स ण भंते ! नाणावरणिज्ज तस्स मोहणिज्ज, जस्स मोहणिज्जं तस्स नाणावरणिज्ज ?

गोयमा ! जस्स नाणावरणिज्ज तस्स मोहणिज्ज सिय अत्थि सिय नत्थि, जस्स पुण मोहणिज्ज तस्स नाणावरणिज्जं नियमा अत्थि ।

[४४ प्र] भगवन् ! जिसके ज्ञानावरणीय कर्म है, क्या उसके मोहनीय कर्म है, और जिसके मोहनीय कर्म है, क्या उसके ज्ञानावरणीय कर्म है ?

[४४ उ] गौतम ! जिसके ज्ञानावरणीय कर्म है, उसके मोहनीय कर्म कदाचित् होता है, कदाचित् नही भी होता, किन्तु जिसके मोहनीय कर्म है, उसके ज्ञानावरणीय कर्म नियमत होता है ।

४५ [१] जस्स ण भंते ! णाणावरणिज्ज तस्स आउयं० ?

एव जहा वेयणिज्जेण सम भणिय तहा आउएण वि सम भाणियव्व ।

[४५-१ प्र] भगवन् ! जिसके ज्ञानावरणीय कर्म है, क्या उसके आयुष्यकर्म होता है, और जिसके आयुष्यकर्म है, क्या उसके ज्ञानावरणीय कर्म है ?

[४५-१ उ] गौतम ! जिस प्रकार वेदनीय कर्म के साथ (ज्ञानावरणीय के विषय मे) कहा गया, उसी प्रकार आयुष्यकर्म के साथ (ज्ञानावरणीय के विषय मे) कहना चाहिए ।

[२] एव नामेंण वि, एव गोएण वि सम ।

[४५-२] इसी प्रकार नामकर्म और गोत्रकर्म के साथ (ज्ञानावरणीय के विषय मे) भी कहना चाहिए ।

[३] अंतराइएण वि जहा दरिसणावरणिज्जेण सम तहेव नियमा परोप्परं भाणियव्वाणि १ ।

[४५-३] जिस प्रकार दर्शनावरणीय के साथ (ज्ञानावरणीयकर्म के विषय मे) कहा, उसी प्रकार अन्तराय कर्म के साथ (ज्ञानावरणीय के विषय मे) भी नियमत परस्पर सहभाव कहना चाहिए ।

४६ जस्स ण भंते ! दरिसणावरणिज्ज तस्स वेयणिज्ज, जस्स वेयणिज्जं तस्स दरिसणावरणिज्जं ?

जहा नाणावरणिज्ज उवरिमेहिं सत्तहिं कम्मेहिं समं भणिय तहा दरिसणावरणिज्ज पि उवरिमेहिं छहिं कम्मेहिं सम भाणियव्वं जाव अतराइएण २ ।

[४६ प्र] भगवन् ! जिसके दर्शनावरणीय कर्म है, क्या उसके वेदनीय कर्म होता है, और जिस जीव के वेदनीय कर्म है, क्या उसके दर्शनावरणीय कर्म होता है ?

[४६ उ] गौतम ! जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म का कथन ऊपर के सात कर्मो के साथ किया गया उसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म का भी ऊपर के छह कर्मो के साथ यावत् अन्तराय कर्म तक कथन करना चाहिए ।

४७ जस्स ण भंते ! वेयणिज्जं तस्स मोहणिज्जं, जस्स मोहणिज्जं तस्स वेयणिज्जं ?

गोयमा ! जस्स वेयणिज्जं तस्स मोहणिज्जं सिय अत्थि सिय नत्थि, जस्स पुण मोहणिज्जं तस्स वेयणिज्जं नियमा अत्थि ।

[४७ प्र] भगवन् ! जिस जीव के वेदनीयकर्म है, क्या उसके मोहनीयकर्म है, और जिस जीव के मोहनीयकर्म है, क्या उसके वेदनीयकर्म है ?

[४७ उ] गौतम ! जिस जीव के वेदनीयकर्म है, उसके मोहनीयकर्म कदाचित् होता है, कदाचित् नहीं भी होता, किन्तु जिस जीव के मोहनीयकर्म है, उसके वेदनीयकर्म नियमत होता है ।

४८ जस्स ण भंते ! वेयणिज्जं तस्स आउयं० ?

एवं एयाणि परोप्पर नियमा ।

[४८ प्र] भगवन् ! जिस जीव के वेदनीयकर्म है, क्या उसके आयुष्यकर्म है, और जिसके आयुष्यकर्म है क्या उसके वेदनीयकर्म है ?

[४८ उ] गौतम ! ये दोनो कर्म नियमत परस्पर साथ-साथ होते है ।

४९ जहा आउएण सम एव नामेण वि, गोएण वि सम भाणियव्व ।

[४९] जिस प्रकार आयुष्यकर्म के साथ (वेदनीय कर्म के विषय मे) कहा, उसी प्रकार नाम और गोत्रकर्म के साथ भी (वेदनीयकर्म के विषय मे) कहना चाहिए ।

५० जस्स ण भंते ! वेयणिज्जं तस्स अंतराइयं० ? पुच्छा ।

गोयमा ! जस्स वेयणिज्जं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि सिय नत्थि, जस्स पुण अंतराइयं तस्स वेयणिज्जं नियमा अत्थि ३ ।

[५० प्र] भगवन् ! जिस जीव के वेदनीयकर्म है, क्या उसके अन्तरायकर्म है, और जिसके अन्तरायकर्म है, क्या उसके वेदनीयकर्म है ?

[५० उ] गौतम ! जिस जीव के वेदनीयकर्म है, उसके अन्तरायकर्म कदाचित् होता है, कदाचित् नही भी होता, परन्तु जिसके अन्तरायकर्म होता है उसके वेदनीयकर्म नियमत होता है ।

५१ जस्स ण भंते ! मोहणिज्जं तस्स आउयं, जस्स आउयं तस्स मोहणिज्जं ?

गोयमा ! जस्स मोहणिज्जं तस्स आउयं नियमा अत्थि, जस्स पुण आउयं तस्स पुण मोहणिज्जं सिय अत्थि सिय नत्थि ।

[५१ प्र] भगवन् ! जिस जीव के मोहनीयकर्म होता है, क्या उसके आयुष्यकर्म होता है, और जिसके आयुष्यकर्म होता है, क्या उसके मोहनीयकर्म होता है ?

[५१ उ] गौतम ! जिस जीव के मोहनीयकर्म है, उसके आयुष्यकर्म अवश्य होता है, जिसके आयुष्यकर्म है, उसके मोहनीयकर्म कदाचित् होता है, कदाचित् नही भी होता ।

५२ एव नाम गोय अतराइय च भाणियव्व ४ ।

[५२] इसी प्रकार नाम, गोत्र और अन्तराय कर्म के विषय मे भी कहना चाहिए ।

५३ जस्स ण भते ! आउय तस्स नाम० ? पुच्छा ।

गोयमा ! दो वि परोप्पर नियम ।

[५३ प्र] भगवन् ! जिस जीव के आयुष्यकर्म होता है, क्या उसके नामकर्म होता है, और जिसके नामकर्म होता है, क्या उसके आयुष्यकर्म होता है ?

[५३ उ] गौतम ! ये दोनो कर्म परस्पर नियमत होते है ।

५४ एव गोत्तेण वि सम भाणियव्व ।

[५४] (आयुष्यकर्म के विषय मे) गोत्रकर्म के साथ भी इसी प्रकार कहना चाहिए ।

५५ जस्स ण भते ! आउय तस्स अतराइय ? पुच्छा ।

गोयमा ! जस्स आउय तस्स अतराइय सिय अत्थि सिय नत्थि जस्स पुण अतराइय तस्स आउय नियमा ५ ।

[५५] भगवन् ! जिस जीव के आयुष्यकर्म होता है, क्या उसके अन्तरायकर्म होता है, और जिसके अन्तरायकर्म है, उसके आयुष्यकर्म होता है ?

[५५ उ] गौतम ! जिसके आयुष्यकर्म होता है, उसके अन्तरायकर्म कदाचित् होता है, कदाचित् नही होता, किन्तु जिस जीव के अन्तरायकर्म होता है, उसके आयुष्यकर्म अवश्य होता है ।

५६ जस्स ण भते ! नाम तस्स गोय, जस्स ण गोय तस्स ण नाम ?

गोयमा ! जस्स णं णाम तस्स ण नियमा गोय, जस्स ण गोय तस्स ण नियमा नाम—गोयमा ! दो वि एए परोप्परं नियमा ।

[५६ प्र] भगवन् ! जिस जीव के नामकर्म होता है, क्या उसके गोत्रकर्म होता है, और जिसके गोत्रकर्म होता है, उसके नामकर्म होता है ?

[५६ उ] गौतम ! जिसके नामकर्म होता है, उसके गोत्रकर्म अवश्य होता है, और जिसके गोत्रकर्म होता है, उसके नामकर्म भी अवश्य होता है । ये दोनो कर्म सहभावी है ।

५७ जस्स ण भते ! णामं तस्स अतराइय० ? पुच्छा ।

गोयमा ! जस्स नाम तस्स अतराइय सिय अत्थि सिय नत्थि, जस्स पुण अतराइय तस्स नाम नियमा अत्थि ६ ।

[५७ प्र] भगवन् ! जिसके नामकर्म होता है, क्या उसके अन्तरायकर्म होता है, और जिसके अन्तरायकर्म होता है, उसके नामकर्म होता है ?

[५७ उ] गौतम ! जिस जीव के नामकर्म होता है, उसके अन्तराय कर्म होता भी है, नही भी होता किन्तु जिसके अन्तरायकर्म होता है, उसके नामकर्म नियमत होता है ।

५८ जस्स णं भंते ! गोयं तस्स अंतराइयं० ? पुच्छा।

गोयमा ! जस्स णं गोयं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि सिय नत्थि, जस्स पुण अंतराइयं तस्स गोयं नियमा अत्थि ७।

[५८ प्र] भगवन् ! जिसके गोत्रकर्म होता है, क्या उसके अन्तरायकर्म होता है, और जिस जीव के अन्तराय कर्म होता है, क्या उसके गोत्रकर्म होता है ?

[५८ उ] गौतम ! जिसके गोत्रकर्म है, उसके अन्तरायकर्म होता भी है, और नही भी होता, किन्तु जिसके अन्तरायकर्म है, उसके गोत्रकर्म अवश्य होता है।

विवेचन—कर्मों के परस्पर सहभाव की वक्तव्यता—प्रस्तुत १७ सूत्रो (सू ४२ से ५८ तक) मे ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का अपने से उत्तरोत्तर कर्मों के साथ नियम से होने अथवा न होने का विचार किया गया है।

'नियमा' और 'भजना' का अर्थ—ये दोनो जैनागमीय पारिभाषिक शब्द है। नियमा का अर्थ है—नियम से, अवश्य, और 'भजना' का अर्थ है—विकल्प से, कदाचित् होना, कदाचित् न होना। प्रस्तुत प्रकरण मे चौबीस दण्डकवर्ती जीवो की अपेक्षा से ८ कर्मों की नियमा और भजना समझना चाहिए।

किसमे किन-किन कर्मों की नियमा और भजना—मनुष्य मे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय, इन चार घातीकर्मों की भजना है (क्योकि केवली के ये चार घातीकर्म नष्ट हो जाते है), जबकि वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्रकर्म की नियमा है। शेष २३ दण्डको मे आठ कर्मों की नियमा है। सिद्ध भगवान् मे कर्म होते ही नही। इस प्रकार आठ कर्मों की नियमा और भजना के कुल २८ भग समुत्पन्न होते है। यथा—ज्ञानावरणीय से ७, दर्शनावरणीय से ६, वेदनीय से ५, मोहनीय से ४, आयुष्य से ३, नामकर्म से २, और गोत्रकर्म से १।[1]

ज्ञानावरणीय से ७ भग—(१) ज्ञानावरणीय मे दर्शनावरणीय की नियमा और दर्शनावरणीय मे ज्ञानावरणीय की नियमा, (२) ज्ञानावरणीय मे वेदनीय की नियमा, किन्तु वेदनीय मे ज्ञानावरणीय की भजना, (३) ज्ञानावरणीय मे मोहनीय की भजना, किन्तु मोहनीय मे ज्ञानावरणीय की नियमा, (४) ज्ञानावरणीय मे आयुष्यकर्म की नियमा, किन्तु आयुष्यकर्म मे ज्ञानावरणीय की भजना, (५) ज्ञानावरणीय मे नामकर्म की नियमा, किन्तु नामकर्म मे ज्ञानावरणीय की भजना, (६) ज्ञानावरणीय मे गोत्रकर्म की नियमा, किन्तु गोत्रकर्म मे ज्ञानावरणीय की भजना तथा (७) ज्ञानावरणीय मे अन्तरायकर्म की नियमा।

दर्शनावरणीय से ६ भग—(८) दर्शनावरणीय मे वेदनीय की नियमा, किन्तु वेदनीय मे दर्शनावरणीय की भजना, (९) दर्शनावरणीय मे मोहनीय की भजना, किन्तु मोहनीय मे दर्शनावरणीय की नियमा, (१०) दर्शनावरणीय मे आयुष्यकर्म की नियमा, किन्तु आयुष्यकर्म मे दर्शनावरणीय की भजना, (११) दर्शनावरणीय मे नामकर्म की नियमा किन्तु नामकर्म मे दर्शनावरणीय मे की भजना, (१२) दर्शनावरणीय मे गोत्रकर्म की नियमा, किन्तु गोत्रकर्म मे दर्शनावरणीय की भजना और (१३) दर्शनावरणीय मे अन्तरायकर्म की नियमा, तथैव अन्तरायकर्म मे दर्शनावरणीय की नियमा।

वेदनीय से ५ भंग—(१४) वेदनीय मे मोहनीय की भजना, किन्तु मोहनीय मे वेदनीय की नियमा, (१५) वेदनीय मे आयुष्य की नियमा, तथैव आयुष्यकर्म मे वेदनीय की नियमा, (१६) वेदनीय मे नामकर्म की नियमा, तथैव नामकर्म मे वेदनीय की नियम, (१७) वेदनीय मे गोत्रकर्म की नियमा, तथैव गोत्रकर्म मे वेदनीय की नियमा, (१८) वेदनीय मे अन्तरायकम की भजना, किन्तु अन्तरायकर्म मे वेदनीय की नियमा।

मोहनीय से ४ भग—(१९) मोहनीय मे आयुष्य की नियमा, किन्तु आयुष्यकर्म मे मोहनीय की भजना, (२०) मोहनीय मे नामकर्म को नियमा, किन्तु नामकर्म मे मोहनीय की भजना, (२१) मोहनीय मे गोत्रकर्म की नियमा, किन्तु गोत्रकर्म मे मोहनीय की भजना, (२२) मोहनीय मे अन्तरायकर्म की नियमा, किन्तु अन्तराय कर्म मे मोहनीय की भजना।

आयुष्यकर्म से ३ भग—(२३) आयुष्यकर्म मे नामकर्म की नियमा, तथैव नामकर्म मे आयुष्यकर्म की नियमा, (२४) आयुष्यकर्म मे गोत्रकर्म की नियमा तथैव गोत्रकर्म मे आयुष्यकर्म की नियमा, (२५) आयुष्यकर्म मे अन्तरायकर्म की भजना, किन्तु अन्तरायकर्म मे आयुष्यकर्म की नियमा।

नामकर्म से दो भग—(२६) नामकर्म मे गोत्रकर्म की नियमा तथैव गोत्रकर्म मे नामकर्म की नियमा, (२७) नामकर्म मे अन्तरायकर्म की भजना, किन्तु अन्तराय कर्म मे नामकर्म की भजना।

गोत्रकर्म से एक भग—(२८) गोत्रकर्म मे अन्तरायकर्म की भजना, किन्तु अन्तरायकर्म मे गोत्रकर्म की नियमा।

इस प्रकार आठ कर्मो के नियमा और भजना से परस्पर सहभाव की घटना कर लेनी चाहिए।[1]

संसारी और सिद्ध जीव के पुद्गली और पुद्गल होने का विचार—

५९ [१] जीवे ण भते ! किं पोग्गली, पोग्गले ?

गोयमा ! जीवे पोग्गली वि, पोग्गले वि।

[५९-१ प्र] भगवन् ! जीव पुद्गली है अथवा पुद्गल है।

[५९-१ उ] गौतम ! जीव पुद्गली भी है और पुद्गल भी।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ 'जीवे पोग्गली वि पोग्गले वि' ?

गोयमा ! से जहानामए छत्तेण छत्ती, दडेण दडी, घडेण घडी, पडेण पडी, करेण करी एवामेव—

गोयमा ! जीवे वि सोइदिय-चक्खिदिय-घाणिदिय-जिब्भिदिय-फासिदियाइ पडुच्च पोग्गली, जीव पडुच्च पोग्गले, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ 'जीवे पोग्गली वि पोग्गले वि'।

[५९-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते है कि जीव पुद्गली भी है और पुद्गल भी है ?

[५९-२ उ] गौतम ! जैसे किसी पुरुष के पास छत्र हो उसे छत्री, दण्ड हो उसे दण्डी,

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ४२४

घट होने से घटी, पट होने से पटी, एव कर होने मे करी कहा जाता है, इसी तरह, हे गौतम ! जीव श्रोत्रेन्द्रिय-चक्षुरिन्द्रिय-घ्राणेन्द्रिय-जिह्वेन्द्रिय-स्पर्शेन्द्रिय-(स्वरूप पुद्गल वाला होने से) की अपेक्षा से 'पुद्गली' कहलाता है, तथा स्वय जीव की अपेक्षा 'पुद्गल' कहलाता है । इस कारण से हे गौतम ! मैं कहता हूँ कि जीव पुद्गली भी है और पुद्गल भी ह ।

६० [१] नेरइए ण भते ! किं पोग्गली० ? एव चेव ।

[६०-१ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव पुद्गली है, अथवा पुद्गल है ?

[६०-१ उ] गौतम ! उपर्युक्त सूत्रानुसार यहाँ भी कथन करना चाहिए ।

[२] एव जाव वेमाणिए । नवर जस्स जइ इदियाइ तस्स तइ वि भाणियव्वाइ ।

[६०-२] इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक कहना चाहिए, किन्तु साथ ही, जिस जीव के जितनी इन्द्रिया हो, उसके उतनी इन्द्रिया कहनी चाहिए ।

६१, [१] सिद्धे ण भते ! किं पोग्गली, पोग्गले ?

गोयमा ! नो पोग्गली, पोग्गले ।

[६१-१ प्र] भगवन् ! सिद्धजीव पुद्गली है या पुद्गल है ?

[६१-१ उ] गौतम ! सिद्धजीव पुद्गली नही किन्तु पुद्गल हैं ।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ जाव पोग्गले ?

गोयमा ! जीव पडुच्च, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ 'सिद्धे नो पोग्गली, पोग्गले' ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति० ।

।। अट्ठमसए : दसमो उद्देसओ समत्तो ।।

।। समत्त अट्ठम सयं ।।

[६१-२ प्र] भगवन् ! आप ऐसा किस कारण से कहते हैं, कि सिद्धजीव पुद्गली नही, किन्तु पुद्गल है ?

[६२-२ उ] गौतम ! जीव की अपेक्षा सिद्धजीव पुद्गल हैं, (किन्तु उनके इन्द्रिया न होने से वे पुद्गली नही है,) इस कारण से मैं कहता हूँ कि सिद्धजीव पुद्गली नही, किन्तु पुद्गल हैं ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर श्री गौतम-स्वामी यावत् विचरण करते हैं ।

विवेचन—ससारी एव सिद्ध जीव के पुद्गली तथा पुद्गल होने का विचार—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे क्रमश जीव, चतुर्विशति दण्डकवर्ती जीव एव सिद्ध भगवान् के पुद्गली या पुद्गल होने के सम्वन्ध मे सापेक्ष विचार किया गया है ।

पुद्गली एवं पुद्गल की व्याख्या—प्रस्तुत प्रकरण मे 'पुद्गली' उसे कहते है, जिसके श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय आदि पुद्गल हो। जैसे—घट, पट, दण्ड, छत्र आदि के सयोग से पुरुष को घटी, पटी, दण्डी एव छत्री कहा जाता है, वैसे ही इन्द्रियोरूपी पुद्गलो के सयोग से औधिक जीव तथा चौबीस दण्डकवर्ती जीवो को 'पुद्गली' कहा गया है। सिद्ध जीवो के इन्द्रियरूपी पुद्गल नही होते, इसलिए वे 'पुद्गली' नही कहलाते। जीव को यहाँ जो 'पुद्गल' कहा गया है, वह जीव की सज्ञा मात्र है। यहाँ 'पुद्गल' शब्द से 'रूपी अजीव द्रव्य' ऐसा अर्थ नही समझना चाहिए। वृत्तिकार ने जीव के लिए 'पुद्गल' शब्द को सज्ञावाची बताया है।[1]

॥ अष्टम शतक दशम उद्देशक समाप्त ॥

॥ अष्टम शतक सम्पूर्ण ॥

---

१ भगवती सूत्र अ वृत्ति, पत्राक ४०४

नवमं सयं : नवम शतक

प्राथमिक

* व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र का यह नौवाँ शतक है ।

* इसमे जम्बूद्वीप, चन्द्रमा आदि, अन्तर्द्वीपज असोच्चा केवली, गागेय-प्रश्नोत्तर, ऋषभदत्त-देवानन्दाप्रकरण, जमालि अनगार, एव पुरुषहन्ता आदि से सम्बद्ध प्रश्नोत्तर आदि विषयो के प्रतिपादक चौतीस उद्देशक है ।

* प्रथम उद्देशक मे जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र का अतिदेश करके जम्बूद्वीप का स्वरूप, उसका आकार, लम्बाई-चौडाई, उसमे स्थित भरत-ऐरावत, हैमवत-ऐरण्यवत, हरिवर्ष-रम्यकवर्ष एव महाविदेहक्षेत्र तथा इनमे बहने वाली हजारो छोटी-बडी नदियो का सक्षेप मे उल्लेख किया गया है ।

* द्वितीय उद्देशक मे जम्बूद्वीप मे स्थित विविध द्वीप-समुद्रो तथा चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि का जीवाभिगमसूत्र के अनुसार सक्षिप्त वर्णन किया गया है ।

* तृतीय से तीसवे उद्देशक तक मे जम्बूद्वीप के अन्तर्गत मेरुगिरि के दक्षिण मे स्थित 'एकोरुक' अन्तद्वीप का स्वरूप, लम्बाई-चौडाई, परिधि का वर्णन है, तथा इसी क्रम से शेष २७ अन्तर्द्वीपो के नाम, स्वरूप, अवस्थिति, लम्बाई-चौडाई एव परिधि आदि के वर्णन के लिए जीवाभिगमसूत्र का अतिदेश किया गया है । एकोरुक से लेकर शुद्धदन्त तक इन २८ अन्तर्द्वीपो के प्रत्येक के नाम से एक-एक उद्देशक है । उसमे रहने वाले मनुष्यो का वर्णन है ।

* इकतीसवे उद्देशक मे केवली आदि दशविध साधको से सुने बिना (असोच्चा) ही धर्मश्रवण, बोधिलाभ, अनगारधर्म मे प्रव्रज्या, शुद्ध ब्रह्मचर्यवास, शुद्ध सयम, शुद्ध सवर, पचविध ज्ञान की प्राप्ति-अप्राप्ति, तदनन्तर असोच्चाकेवली द्वारा उपदेश, प्रव्रज्या-प्रदान, अवस्थिति, निवास, सख्या, योग, उपयोग आदि का वर्णन है । अन्त मे, सोच्चा केवली के विषय मे भी इसी प्रकार के तथ्य बतलाए गए है ।

* बत्तीसवे उद्देशक मे पार्श्वनाथ-सतानीय गागेय अनगार के द्वारा भगवान् से चौबीसदण्डकवर्ती जीवो के सान्तर-निरन्तर उत्पाद, उद्वर्त्तन, तथा प्रवेशनको के विविधसयोगी भगो का विस्तृत रूप से वर्णन है । तत्पश्चात्, इन्ही जीवो के सत् से, सत् मे तथा सत् मे से उत्पाद तथा उद्वर्त्तन का, तथा स्वय उत्पन्न होने का वर्णन है । अन्त मे, गागेय अनगार को भगवान् महावीर की सर्वज्ञता और सर्वदर्शिता पर पूर्णश्रद्धा और विनयभक्तिपूर्वक अपने पूर्वस्वीकृत चातुर्यामधर्म के बदले पचमहाव्रतयुक्त धर्म स्वीकार करके सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो जाने का वर्णन है ।

* तेतीसवे उद्देशक के दो विभाग है,—इसके पूर्वार्द्ध मे ब्राह्मणकुण्ड निवासी ऋषभदत्त ब्राह्मण और देवानन्दा ब्राह्मणी का वर्णन है । सर्वप्रथम ऋषभदत्त ब्राह्मण के गुणो का परिचय दिया गया है ।

तदनन्तर देवानन्दा के भी गुणो का सक्षिप्त वर्णन है। तत्पश्चात् ऋषभदत्त ने ब्राह्मणकुण्ड मे भगवान् महावीर के पदार्पण की बात सुनकर उनका वन्दन—नमन, पर्युपासना एव प्रवचनश्रवण करने का विचार किया। सेवको से रथ तैयार करवा कर पति-पत्नी दोनो पृथक्-पृथक् रथ मे बैठ कर भगवान् की सेवा मे पहुँचे। भगवान् को देख कर देवानन्दा ब्राह्मणी के स्तनो से दूध की धारा बहने लगी आदि घटना से गौतम स्वामी के मन मे उठे हुए प्रश्न का समाधान भगवान् ने कर दिया कि "देवानन्दा मेरी माता है।" तत्पश्चात् ऋषभदत्त ब्राह्मण और देवानन्दा ब्राह्मणी के भगवान् से प्रव्रज्या लेने, शास्त्राध्ययन एव तपश्चर्या करने तथा अन्त मे दोनो के मोक्ष प्राप्त करने का वर्णन किया गया है।

तत्पश्चात् उत्तरार्द्ध मे जमालि के चरित का वर्णन है। क्षत्रियकुण्ड निवासी क्षत्रियकुमार जमालि की शरीरसम्पदा, वैभव, सुखभोग के साधनो से परितृप्ति आदि के वर्णन के पश्चात् एक दिन भगवान् महावीर का पदार्पण सुन कर उनके दर्शन-वन्दनादि के लिए प्रस्थान का, प्रवचनश्रवण के अनन्तर ससार से विरक्ति का, फिर माता-पिता से दीक्षा की आज्ञा प्रदान करने के अनुरोध का एव माता-पिता के साथ विरक्त जमाली के लम्बे आलाप-सलाप का, फिर अनुमति प्राप्त होने पर प्रव्रज्याग्रहण का विस्तृत वर्णन है। तत्पश्चात् भगवान् की बिना आज्ञा के जमालि के पृथक् विहार, शरीर मे महारोग उत्पन्न होने का, शय्यासस्तारक बिछाने के निमित्त से स्फुरित सिद्धान्तविरुद्ध प्ररूपणा का, सर्वज्ञता का मिथ्या दावा, गौतम के दो प्रश्नो का उत्तर देने मे असमर्थ जमालि की विराधना का एव किल्विषिक देवो मे उत्पत्ति का सविस्तार वर्णन है। दोनो के निवास के पीछे 'कुण्डग्राम' नाम होने से इस उद्देशक का नाम कुण्डग्राम दिया गया है।

* चौतीसवे उद्देशक मे पुरुष के द्वारा अश्वादि घात सम्बन्धी, तथा घातक को वैरस्पर्श सम्बन्धी प्ररूपणा की गई है। इसके पश्चात् एकेन्द्रिय जीवो के परस्पर श्वासोच्छ्‌वास सम्बन्धी क्रिया सम्बन्धी तथा वायुकाय को वृक्षमूलादि कपाने—गिराने की क्रिया सम्बन्धी प्ररूपणा की गई है।

* कुल मिलाकर प्रस्तुत शतक मे भगवान् के अनेकान्तात्मक अनेक सिद्धान्तो का सुन्दर ढग से निरूपण किया गया है। ☐☐

यं : नव शतक

नौवें शतक की संग्रहणी गाथा—

> १ जबुद्दीवे १ जोइस २ अतरदीवा ३० असोच्च ३१ गगेय ३२।
> कुंडग्गामे ३३ पुरिसे ३४ नवमम्मि सयम्मि चोत्तीसा ॥१॥

[१ गाथार्थ—] १ जम्बूद्वीप, २ ज्योतिष, ३ से ३० तक (अट्ठाईस) अन्तर्द्वीप, ३१ अश्रुत्वा (-केवली इत्यादि), ३२ गागेय (अनगार), ३३ (ब्राह्मण-) कुण्डग्राम और ३४ पुरुष (पुरुषहन्ता इत्यादि)।

(इस प्रकार) नौवे शतक मे चौतीस उद्देशक है।

विवेचन—जम्बूद्वीप—जिसमे जम्बूद्वीप-विषयक वक्तव्यता है।

अन्तरदीवा—तीसरे उद्देशक से लेकर तीसवे उद्देशक तक, अट्ठाईस उद्देशको मे २८ अन्तर्द्वीपो के मनुष्यो का वर्णन एक साथ ही किया गया है।

अश्रुत्वा—इस उद्देशक मे बिना ही धर्म सुने हुए एव सुने हुए केवली तथा उनसे सम्बन्धित साधको का निरूपण है।

पुरुष—इस चौतीसवे उद्देशक मे पुरुष को मारने वाले इत्यादि के विषय मे वक्तव्यता है।[1]

पढमो उद्देसओ : 'जंबुद्दीवे'

प्रथम उद्देशक : जम्बूद्वीप

मिथिला मे भगवान् का पदार्पण : अतिदेशपूर्वक जम्बूद्वीपनिरूपण—

२. तेण कालेण तेण समएण मिहिला नाम नगरी होत्था। वण्णओ। माणिभद्दे चेइए। वण्णओ। सामी समोसढे। परिसा निग्गया। धम्मो कहिओ। जाव भगव गोयमे पज्जुवासमाणे एव वयासी—

[२ उपोद्घात] उस काल और उस समय मे मिथिला नाम की नगरी थी। (उसका) वर्णन (यहाँ समझ लेना चाहिए)। वहाँ माणिभद्र नाम का चैत्य था। उसका भी वर्णन औपपातिकसूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए। स्वामी (श्रमण भगवान् महावीर) का समवसरण हुआ। (उनके दर्शन-वन्दन आदि करने के लिए) परिषद् निकली। (भगवान् ने) धर्म कहा—धर्मोपदेश दिया, यावत् भगवान् गौतम ने पर्युपासना करते हुए (भगवान् महावीर से) इस प्रकार पूछा—

---

१ भगवतीसूत्र वृत्ति, पत्र ४३५

३. कहि ण भते ! जबुद्दीवे दीवे ? किसठिए ण भते ! जबुद्दीवे दीवे ?

एव जबुद्दीवपण्णत्ती[1] भाणियव्वा जाव एवामेव सपुव्वावरेण जबुद्दीवे दीवे चोद्दस सलिलासय-सहस्सा छप्पन्न च सहस्सा भवतीति मक्खाया ।

सेव भते ! सेव भते त्ति० ।

॥ नवम सए पढमो उद्देसओ समत्तो ॥

[३ प्र] भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप कहाँ है ? (उसका) सस्थान (आकार) किस प्रकार का है ?

[३ उ] गौतम ! इस विषय मे जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति मे कहे अनुसार यावत्—इसी तरह जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे पूर्वसहित अपर (समुद्रगामी) चौदह लाख छप्पन हजार नदियाँ है, ऐसा कहा गया है, (यहाँ तक) कहना चाहिए ।

विवेचन—सपुव्वावरेणं व्याख्या—पूर्वसमुद्र और अपर (पश्चिम) समुद्र की ओर जा कर उनमे गिरने वाली नदियाँ ।[2]

चौदह लाख छप्पन हजार नदियाँ—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के अनुसार इस प्रकार है—

१ भरत और ऐरवत मे—गगा, सिन्धु, रक्ता और रक्तवती, इन चार नदियो की प्रत्येक की चौदह-चौदह हजार सहायक नदियाँ है ।

२ हैमवत और ऐरण्यवत मे—रोहित, रोहिताशा, सुवर्णकूला और रूप्यकूला इन चारो की, प्रत्येक की अट्ठाईस-अट्ठाईस हजार नदियाँ है ।

३ हरिवर्ष और रम्यकवर्ष मे—हरि, हरिकान्ता, नरकान्ता, नारीकान्ता, इन चारो की, प्रत्येक की छप्पन-छप्पन हजार नदियाँ है ।

४ महाविदेह मे—शीता और शीतोदा की प्रत्येक की ५ लाख ३२ हजार नदियाँ है । ये कुल मिला कर १४५६००० नदियाँ होती है ।[3]

जम्बूद्वीप का आकार—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के अनुसार—जम्बूद्वीप सब द्वीपो के मध्य मे सबसे छोटा द्वीप है । इसकी आकृति तेल का मालपूआ, रथचक्र, पुष्करकर्णिका, तथा पूर्ण चन्द्र की-सी गोल है । यह एक लाख योजन लम्बा चौडा है ।[4]

॥ नवम शतक : प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

१ पाठान्तर—'जहा जबुद्दीवपन्नत्तीए तहा णेयव्व जोइसविहूण ।
जाव—"खडा जोयण वासा पव्वय कूडा य तित्थ सेढीओ ।
विजय द्दह सलिलाओ य पिंडए होति सगहणी ॥"
—भगवती अ वृत्ति मे इसकी व्याख्या भी मिलती है ।—स

२ भगवती वृत्ति, पत्र ४२५

३ वही, पत्र ४२५

४ "अय ण जबुद्दीवे दीवे वट्टे तेल्लपूयसठाणसठिए, वट्टे रहचक्कवालसठाणसठिए, वट्टे पुक्खरकण्णिया सठाणसठिए वट्टे पडिपुण्णचदसठाणसठिए पन्नत्ते ।" —जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति प १५-१-३०८ ।

बीओ उद्देसओ : जोइस

द्वितीय उद्देशक : ज्योतिष

१ रायगिहे जाव एव वयासी—

[१] राजगृह नगर मे यावत् गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा—

जम्बूद्वीप आदि द्वीप-समुद्रो मे चन्द्र आदि की संख्या—

२ जबुद्दीवे ण भते ! दीवे केवइया चदा पभासिसु वा पभासेंति वा पभासिस्सति वा ? एव जहा[1] जीवाभिगमे जाव—'नव य सया पण्णासा तारागणकोडिकोडीण' ।। सोभ सोभिसु सोभिति सोभिस्सति ।

[२ प्र] भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे कितने चन्द्रो ने प्रकाश किया, प्रकाश करते है और प्रकाश करेंगे ?

[२ उ] गौतम ! जिस प्रकार जीवाभिगमसूत्र मे कहा है, उसी प्रकार जानना चाहिए, यावत्—'एक लाख तेतीम हजार नौ सौ पचास कोडाकोडी तारो के समूह शोभित हुए, शोभित होते है और शोभित होगे', यहाँ तक जानना चाहिए ।

३ लवणे ण भते ! समुद्दे केवतिया चंदा पभासिसु वा पभासिति वा पभासिस्सति वा ? एव जहा जीवाभिगमे[2] जाव ताराओ ।

[३ प्र] भगवन् ! लवणसमुद्र मे कितने चन्द्रो ने प्रकाश किया, प्रकाश करते है और प्रकाश करेंगे ?

[३ उ] गौतम ! जिस प्रकार जीवाभिगमसूत्र मे कहा है, उसी प्रकार तारो के वर्णन तक जानना चाहिए ।

४ धायइसडे कालोवे पुक्खरवरे अब्भिंतरपुक्खरद्धे मणुस्सखेत्ते, एएसु सव्वेसु जहा[3] जीवाभिगमे जाव—'एग ससीपरिवारो तारागणकोडिकोडीण ।'

---

१ जीवाभिगम-मूलपाठ—जाव—एग च सयसहस्स तेत्तीस खलु भवे सहस्साइ —जीवाभिगम सू १५३, पत्र ३०३

२ देखिये—जीवाभिगमसूत्र पत्र ३०३, सू १५५ मे ।

पचम प्रश्न के उत्तर मे—सखेज्जा चदा पभासिसु वा पभासति वा पभासिस्सति वा इत्यादि ।

३ देखिये—जीवाभिगम मे—सू १७५-१७७ पत्र ३२७-३५ ।

जीवाभिग०

[४] धातकीखण्ड, कालोदधि, पुष्करवरद्वीप आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध और मनुष्यक्षेत्र, इन सब मे जीवाभिगमसूत्र के अनुसार, यावत्—"एक चन्द्र का परिवार कोटाकोटी तारागण (सहित) होता है" (यहाँ तक जानना चाहिए)।

५. पुक्खरद्धे ण भते ! समुद्दे केवइया चदा पभासिसु वा पभासति वा पभासिस्सति वा ? एव सव्वेसु दीव-समुद्देसु जोतिसियाण भाणियव्व जाव सयभूरमणे जाव सोभं सोभिसु वा सोभति वा सोभिस्सति वा ।

सेव भते ! सेव भते त्ति० ।

।। नवम सए · बीओ उद्देसओ समत्तो ।।९-२।।

[५ प्र] भगवन् ! पुष्करार्द्ध समुद्र मे कितने चन्द्रो ने प्रकाश किया, प्रकाश करते है और प्रकाश करेंगे ?

[५ उ] (जीवाभिगमसूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति के दूसरे उद्देशक मे) समस्त द्वीपो और समुद्रो मे ज्योतिष्क देवो का जो वर्णन किया गया है, उसी प्रकार, यावत्—स्वयम्भूरमण समुद्र मे यावत् शोभित हुए, शोभित होते है और शोभित होगे, (वहाँ तक कहना चाहिए।)

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, (यो कह कर यावत् भगवान् गौतम विचरते है।)

विवेचन—जीवाभिगमसूत्र का अतिदेश—प्रस्तुत द्वितीय उद्देशक मे जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, धातकीखण्डद्वीप, कालोदसमुद्र, पुष्करवरद्वीप आदि सभी द्वीप-समुद्रो मे मुख्यतया चन्द्रमा की सख्या के विषय मे तथा गौणरूप से सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और ताराओ की सख्या के विषय मे प्रश्न किये है। उनके उत्तर मे जीवाभिगमसूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति के द्वितीय उद्देशक का अतिदेश किया गया है। जीवाभिगमसूत्र के अनुसार—मुख्यतया चन्द्रमा की सख्या—जम्बूद्वीप मे २, लवणसमुद्र मे ४, धातकीखण्डद्वीप मे १२, कालोदसमुद्र मे ४२, पुष्करवरद्वीप मे १४४, आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध मे ७२ तथा मनुष्यक्षेत्र मे १३२, एव पुष्करोदसमुद्र मे सख्यात है। इसके अनन्तर मनुष्यक्षेत्र के बाहर के वरुणवरद्वीप एव वरुणोदसमुद्र आदि असख्यात द्वीप-समुद्रो मे यथासम्भव सख्यात एव असख्यात चन्द्रमा हैं। इसी प्रकार इन सब मे सूर्य, नक्षत्र, ग्रह तथा ताराओ की सख्या भी जीवाभिगम सूत्र से जान लेनी चाहिए। इतना विशेष है कि मनुष्यक्षेत्र मे जो भी चन्द्र, सूर्य आदि ज्योतिष्कदेव हैं, वे सब चर है, जब कि मनुष्यक्षेत्र के बाहर के सब अचर (स्थिर) है।[1]

कुछ कठिन शब्दो के अर्थ—पभासिसु=प्रकाश किया। **सोभसोभिसु**=शोभा की या सुशोभित हुए।[2]

---

१ जीवाभिगमसूत्र प्रतिपत्ति ३, उद्देशक २, वृत्ति, सू १५३, १५५, १७५-७७, पत्र ३००, ३०३, ३२७-३३५

२ (क) भगवती खण्ड ३, (भगवानदास दोशी) पृ १२६

(ख) भगवती वृत्ति, पत्र ४२७

नव य सया पण्णासा० इत्यादि पंक्ति का आशय—सू २ मे 'जाव' शब्द से आगे और 'नव, शब्द से पूर्व' एग च सयसहस्स तेत्तीस खलु भवे सहस्साइ' यह पाठ होना चाहिए, तभी यह अर्थ सगत हो सकता है कि 'एक लाख' तेतीस हजार नौ सौ पचास कोटाकोटि तारागण ।[1]

सभी द्वीप-समुद्रो मे चन्द्र आदि ज्योतिष्को का अतिदेश—पाँचवे सूत्र मे पुष्करार्द्ध द्वीप मे चन्द्र-सख्या के प्रश्न के उत्तर मे अतिदेश किया गया है कि इस प्रकार सभी द्वीप-समुद्रो मे चन्द्रमा ही नही, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह एव ताराओ (समस्त ज्योतिष्कदेवो) की सख्या जीवाभिगमसूत्र से जान लेनी चाहिए ।[2]

।। नवम शतक द्वितीय उद्देशक समाप्त ।।

---

१ (क) जीवाभिगमसूत्र १५३, पत्र ३००
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४७७
२ (क) जीवाभिगमसूत्र सू १७५-७७
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४२८

तईआइया तीसता उद्देसा : अंतरदीवा

तृतीय से तीसवें उद्देशक तक : अन्तर्द्वीप

उपोद्घात—

१ रायगिहे जाव एवं वयासी—

[१ उपोद्घात] राजगृह नगर में, यावत् गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा—

एकोरुक आदि अट्ठाईस अन्तर्द्वीपक मनुष्य—

२. कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाणं एगोरुयमणुस्साणं एगोरुयदीवे णामं दीवे पन्नत्ते ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं एवं जहा जीवाभिगमे[1] जाव सुद्धदंतदीवे जाव देवलोगपरिग्गहा णं ते मणुया पण्णत्ता समणाउसो ! ।

[२ प्र] भगवन् ! दक्षिण दिशा का 'एकोरुक' मनुष्यों का 'एकोरुकद्वीप' नामक द्वीप कहाँ बताया गया है ?

[२ उ] गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत से दक्षिण दिशा में [चुल्ल हिमवन्त नामक वर्षधर पर्वत के पूर्व दिशागत चरमान्त (किनारे) से उत्तर-पूर्वदिशा (ईशानकोण) में तीन सौ योजन लवण समुद्र में जाने पर वहाँ दक्षिणदिशा के 'एकोरुक' मनुष्यों का 'एकोरुक' नामक द्वीप है। हे गौतम ! उस द्वीप की लम्बाई-चौड़ाई तीन सौ योजन है और उसकी परिधि (परिक्षेप) नौ सौ उनचास योजन से कुछ कम है। वह द्वीप एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से चारों ओर से वेष्टित (घिरा हुआ) है। इन दोनों (पद्मवरवेदिका और वनखण्ड) का प्रमाण और वर्णन] जीवाभिगमसूत्र की तृतीय प्रतिपत्ति के प्रथम उद्देशक के अनुसार इसी क्रम से यावत् शुद्धदन्तद्वीप तक का वर्णन (जान लेना चाहिए।) यावत्—हे आयुष्मन् श्रमण ! इन द्वीपों के मनुष्य देवगतिगामी कहे गए हैं—यहाँ तक का वर्णन जान लेना चाहिए।

३. एवं अट्ठावीसं पि अंतरदीवा सएणं सएणं आयाम-विक्खंभेणं भाणियव्वा, नवरं दीवे दीवे उद्देसओ। एवं सव्वे वि अट्ठावीसं उद्देसगा।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

नवम सए : तइयाइआ तीसता उद्देसा समत्ता ॥ ९. ३-३०॥

---

१ देखिये—जीवाभिगम सूत्र सू. १०९-१२, पत्र १४४-१५६ (आगमो०)

"अधिक पाठ—दाहिणेणं चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दस्स उत्तर-पुरत्थिमेणं दिसिभागेणं तिन्नि जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं दाहिणिल्लाणं एगोरुयमणुस्साणं एगोरुयदीवे नामं दीवे पण्णत्ते, 'तं गोयमा !' तिन्नि जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं, नव एक्कूणवन्ने जोयणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं पन्नत्ते। से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, दोण्ह वि पमाणं वन्नओ य, एवं एएणं कमेणं ।" भगवती अ. वृत्ति पत्र ४२८

[३] इस प्रकार अपनी-अपनी लम्बाई-चौडाई के अनुसार इन अट्ठाईस अन्तर्द्वीपो का वर्णन कहना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ एक-एक द्वीप के नाम से एक-एक उद्देशक कहना चाहिए। इस प्रकार ये सब मिल कर इन अट्ठाईस अन्तर्द्वीपो के अट्ठाईस उद्देशक होते है।

हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है, यो कह कर भगवान् गौतम यावत् विचरण करते हैं।

विवेचन—अन्तर्द्वीप और वहाँ के निवासी मनुष्य—ये द्वीप लवणसमुद्र के अन्दर होने से 'अन्तर्द्वीप' कहलाते है। इनके रहने वाले मनुष्य अन्तर्द्वीपक कहलाते हैं। यो तो उत्तरवर्ती और दक्षिणवर्ती समस्त अन्तर्द्वीप छप्पन होते है, परन्तु '**दाहिणिल्लाण**' कह कर दक्षिणदिशावर्ती अन्तर्द्वीपो के सम्बन्ध मे ही प्रश्न है और वे २८ हैं। प्रज्ञापनासूत्र के अनुसार उनके नाम इस प्रकार हैं—१ एकोरुक, २ आभासिक, ३ लागूलिक, ४ वैषाणिक, ५ हयकर्ण, ६ गजकर्ण ७ गोकर्ण, ८ शष्कुलीकर्ण, ९ आदर्शमुख, १० मेण्ढमुख, ११ अयोमुख, १२ गोमुख, १३ अश्वमुख, १४ हस्तिमुख, १५ सिहमुख, १६ व्याघ्रमुख, १७ अश्वकर्ण, १८ सिहकर्ण, १९ अकर्ण, २० कर्णप्रावरण, २१ उल्कामुख, २२ मेघमुख, २३ विद्युन्मुख, २४ विद्युद्दन्त, २५ घनदन्त, २६ लष्टदन्त, २७ गूढदन्त और २८ शुद्धदन्त द्वीप। इन्ही अन्तर्द्वीपो के नाम पर इनके रहने वाले मनुष्य भी इसी नाम वाले कहलाते है तथा एकोरुक आदि २८ अन्तर्द्वीपो मे से प्रत्येक अन्तर्द्वीप के नाम से एक-एक उद्देशक है।[1]

जीवाभिगमसूत्र का अतिदेश—'जम्बूद्वीप मे मेरुपर्वत से दक्षिण मे' इतना मूल मे कह कर आगे जीवाभिगमसूत्र का अतिदेश किया गया है, कई प्रतियो मे—"चुल्लहिमवतस्स वासहरपव्वयस्स सव्वओ समता सपरिक्खित्ते, दोण्ह वि पमाण वण्णओ य, एव एएण कमेण," इत्यादि जो पाठ मिलता है, वह भगवतीसूत्र का मूलपाठ नही है, जीवाभिगमसूत्र का है। इसी कारण हमने कोष्ठक मे उसका अर्थ दे दिया है। यहाँ इतना ही मूलपाठ स्वीकृत किया है—"**एव जहा जीवाभिगमे जाव सुद्धदतदीवे** ।" जीवाभिगम के पाठ मे वेदिका, वनखण्ड, कल्पवृक्ष, मनुष्य-मनुष्यणी का वर्णन किया गया है।[2]

अन्तर्द्वीपक मनुष्यो का आहार-विहार आदि—अन्तर्द्वीपक मनुष्यो मे आहारसज्ञा एक दिन के अन्तर से उत्पन्न होती है। वे पृथ्वीरस, पुष्प और फल का आहार करते है। वहाँ की पृथ्वी का स्वाद खाड जैसा होता है। वृक्ष ही उनके घर होते है। वहाँ ईंट-चूने आदि के मकान नही होते। उन मनुष्यो की स्थिति पल्योपम के असख्यावे भाग होती है। छह मास आयुष्य शेष रहने पर वे एक साथ पुत्र-पुत्रीयुगल को जन्म देते है। ८१ दिन तक उनका पालन-पोषण करते है। तत्पश्चात् मर कर वे

---

१ (क) भगवती (प घेवरचन्दजी) भा ४, पृ १५७७
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४२८
(ग) पण्णवणासुत्त पद १, भा १, (महावीर विद्यालय) सू ९५, पृ ५५
२ (क) विहायपण्णत्तिसुत्त, मूलपाठ टिप्पण (म वि) भा १, पृ ४०८
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४२८

देवगति मे उत्पन्न होते है। इसीलिए कहा गया है—**'देवलोकपरिग्गहा'**अर्थात् वे देवगतिगामी होते है।[1]

वे अन्तर्द्वीप कहाँ?—जीवाभिगमसूत्र के अनुसार—जम्बूद्वीप मे भरत क्षेत्र और हैमवत की सीमा बाँधने वाला चुल्ल हिमवान पर्वत है। वह पर्वत पूर्व और पश्चिम मे लवणसमुद्र को स्पर्श करता है। इसी पर्वत के पूर्वी और पश्चिमी किनारे से लवणसमुद्र मे, चारो विदिशाओ मे से प्रत्येक विदिशा मे तीन-तीन सौ योजन आगे जाने पर एकोरुक आदि एक-एक करके चार अन्तर्द्वीप आते है। ये द्वीप गोल है। इनकी लम्बाई-चौडाई तीन-तीन सौ योजन की है, तथा प्रत्येक की परिधि ९४९ योजन से कुछ कम है। इन द्वीपो से आगे ४००-४०० योजन लवणसमुद्र मे जाने पर चार-चार सौ योजन लम्बे-चौडे हयकर्ण आदि पाँचवाँ, छठा, सातवाँ और आठवाँ, ये चार द्वीप आते है। ये भी गोल है। इनकी परिधि १२६५ योजन से कुछ कम है।

इसी प्रकार इन से आगे क्रमश पाच सौ, छह सौ, सात सौ, आठ सौ एव नौ सौ योजन जाने पर क्रमश ४-४ द्वीप आते है, जिनके नाम पहले बता चुके है। इन चार-चार अन्तर्द्वीपो की लम्बाई-चौडाई भी क्रमश पाच सौ से लेकर नौ सौ योजन तक जाननी चाहिए। ये सभी गोल है। इनकी परिधि तीन गुनी से कुछ अधिक है।[2]

इसी प्रकार चुल्ल हिमवान पर्वत की चारो विदिशाओ मे ये २८ अन्तर्द्वीप है।

छप्पन अन्तर्द्वीप—जिस प्रकार चुल्ल हिमवान पर्वत की चारो विदिशाओ मे २८ अन्तर्द्वीप कहे गए है, इसी प्रकार शिखरी पर्वत की चारो विदिशाओ मे भी २८ अन्तर्द्वीप है, जिनका वर्णन इसी शास्त्र के १० वे शतक के ७ वे से लेकर ३४ वे उद्देशक तक २८ उद्देशको मे किया गया है। उन अन्तर्द्वीपो के नाम भी इन्ही के समान है।[3]

कठिन शब्दो के अर्थ—**दाहिणिल्लाण**=दक्षिण दिशा के। **चरिमताओ**=अन्तिम किनारे से। **उत्तर-पुरत्थिमेण**=ईशानकोण=उत्तरपूर्व दिशा से। **ओगोहित्ता**=अवगाहन करने (आगे जाने) पर। **एगूणवण्णे**=उनचास। **किंचिविसेसूणे**=कुछ कम। **परिक्खेवेण**=परिधि (घेरे) से युक्त। **सव्वओ समता**=चारो ओर। **संपरिक्खित्ते**=परिवेष्टित, घिरा हुआ। **सएण**=अपने।[4]

॥ नवम शतक तीसरे से तीसवें उद्देशक तक समाप्त ॥

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४२९
(ख) विहायपण्णत्तिसुत्त भा १, पृ ४०८

२ (क) जीवाभिगमसूत्र प्रतिपत्ति ३, उ १, पृ १४४ से १५६ तक।
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४२९

३ भगवती शतक १०, उ ७ से ३४ तक मूलपाठ।

४ (क) भगवती (प घेवरचन्दजी) भा ४, पृ १५७७
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४२९

एगत्तीसइमो उद्देसओ : 'असोच्चा केवली'

इकतीसवाँ उद्देशक : अश्रुत्वा केवली

उपोद्घात—

१ रायगिहे जाव एव वयासी—

[१ उपोद्घात—] राजगृह नगर मे यावत् (गौतमस्वामी ने भगवान् महावीरस्वामी से) इस प्रकार पूछा—

केवली यावत् केवली-पाक्षिक उपासिका से धर्मश्रवणलाभालाभ—

२ [१] असोच्चा ण भते ! केवलिस्स वा केवलिसावगस्स वा केवलिसावियाए वा केवलि-उवासगस्स वा केवलिउवासियाए वा तप्पक्खियस्स वा तप्पक्खियसावगस्स वा तप्पक्खियसावियाए वा तप्पक्खियउवासगस्स वा तप्पक्खियउवासियाए वा केवलिपण्णत्त धम्म लभेज्जा सवणयाए ?

गोयमा ! असोच्चा ण केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा अत्थेगइए केवलिपण्णत्त धम्म लभेज्जा सवणयाए, अत्थेगतिए केवलिपण्णत्त धम्म नो लभेज्जा सवणयाए ।

[२-१ प्र] भगवन् ! केवली, केवली के श्रावक, केवली की श्राविका, केवली के उपासक, केवली की उपासिका, केवलि-पाक्षिक (स्वयम्बुद्ध), केवलि-पाक्षिक के श्रावक, केवलि-पाक्षिक की श्राविका, केवलि-पाक्षिक के उपासक, केवलि-पाक्षिक की उपासिका, (इनमे से किसी) से विना सुने ही किसी जीव को केवलिप्ररूपित धर्मश्रवण का लाभ होता है ?

[२-१ उ] गौतम ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका (इन दस) से सुने विना ही किसी जीव को केवलिप्ररूपित धर्म-श्रवण का लाभ होता है और किसी जीव को नही भी होता ।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ—असोच्चा ण जाव नो लभेज्जा सवणयाए ?

गोयमा ! जस्स ण नाणावरणिज्जाण कम्माण खओवसमे कडे भवइ से ण असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलिपण्णत्त धम्मं लभेज्ज सवणयाए, जस्स ण नाणावरणिज्जाण कम्माण खओवसमे नो कडे भवइ से ण असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलि-पण्णत्त धम्म नो लभेज्ज सवणयाए, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ—त चेव जाव नो लभेज्ज सवणयाए ।

[२-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका (इन दस) से सुने विना ही किसी जीव को केवलिप्ररूपित धर्म-श्रवण का लाभ होता है और किसी को नही भी होता ?

[२-२ उ] गौतम ! जिस जीव ने ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम किया हुआ है, उसको केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका (इन) मे से किसी से सुने विना ही केवलि-प्ररूपित धर्म-श्रवण का लाभ होता है और जिस जीव ने ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नही किया हुआ है, उसे केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से सुने विना केवलि-प्ररूपित धर्म-श्रवण का लाभ नही होता। हे गौतम ! इसी कारण ऐसा कहा गया कि यावत् किसी को धर्म-श्रवण का लाभ होता है और किसी को नही होता।

विवेचन—केवली इत्यादि शब्दो का भावार्थ—केवलिस्स—जिन अथवा तीर्थकर। **केवलि-श्रावक**—जिसने केवली भगवान् से स्वयमेव पूछा है, अथवा उनके वचन सुने है, वह। **केवलि-उपासक**—केवली की उपासना करने वाले अथवा केवली द्वारा दूसरे को कहे गए वचन को सुनकर बना हुआ उपासक भक्त। **केवलि-पाक्षिक**—केवलि-पाक्षिक अर्थात्—स्वयम्बुद्धकेवली।[1]

असोच्चा धम्म लभेज्जा सवणयाए—(उपर्युक्त दस मे से किसी के पास से) धर्मफलादि-प्रतिपादक वचन को सुने विना ही अर्थात्—स्वाभाविक धर्मानुराग-वश होकर ही (केवलिप्ररूपित) श्रुत-चारित्ररूप धर्म सुन पाता है, अर्थात्—श्रावणरूप से धर्म-लाभ प्राप्त करता है। आशय यह है कि वह धर्म का बोध पाता है।[2]

नाणावरणिज्जाण खओवसमे—ज्ञानावरणीयकर्म के मतिज्ञानावरणीय आदि भेदो के कारण तथा मतिज्ञानावरण के भी अवग्रहादि अनेक भेद होने से यहाँ बहुवचन का प्रयोग किया गया है। क्षयोपशम शब्द का प्रयोग करने के कारण यहाँ मतिज्ञानावरणीयादि चार ज्ञानावरणीय कर्म ही ग्राह्य है, केवलज्ञानावरण नही, क्योकि उसका क्षयोपशम नही, क्षय ही होता है। पर्वतीय नदी मे लुढकते-लुढकते गोल बने हुए पाषाणखण्ड की तरह किसी-किसी के स्वाभाविकरूप से ज्ञानावरणीय-कर्म का क्षयोपशम हो जाता है। ऐसी स्थिति मे इन दस मे से किसी से विना सुने ही धर्मश्रवण प्राप्त कर लेता है। धर्मश्रवणलाभ मे ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम अन्तरग कारण है।[3]

केवली आदि से शुद्धबोधि का लाभालाभ—

३. [१] असोच्चा ण भते ! केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवल बोहिं बुज्झेज्जा ?

गोयमा ! असोच्चा ण केवलिस्स वा जाव अत्थेगतिए केवलं बोहि बुज्झेज्जा, अत्थेगइए केवल बोहिं णो बुज्झेज्जा।

[३-१ प्र] भगवन् ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से सुने विना ही क्या कोई जीव शुद्धबोधि (सम्यग्दर्शन) प्राप्त कर लेता है ?

[३-१ उ] गौतम ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से सुने विना ही कई जीव शुद्ध वोधि प्राप्त कर लेते है और कई जीव प्राप्त नही कर पाते।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४३२

२ वही, पत्र ४३२

३ वही, पत्र ४३२

[२] से केणट्ठेण भंते ! जाव नो बुज्झेज्जा ?

गोयमा ! जस्स णं दरिसणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव केवलं बोहिं बुज्झेज्जा, जस्स णं दरिसणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे णो कडे भवइ से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव केवलं बोहिं णो बुज्झेज्जा, से तेणट्ठेणं जाव णो बुज्झेज्जा।

[३-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि यावत् शुद्ध बोधि प्राप्त नहीं कर पाते ?

[३-२ उ] हे गौतम ! जिस जीव ने दर्शनावरणीय (दर्शन-मोहनीय) कर्म का क्षयोपशम किया है, वह जीव केवली यावत् केवलि-पाक्षिक उपासिका से सुने बिना ही शुद्ध बोधि प्राप्त कर लेता है, किन्तु जिस जीव ने दर्शनावरणीय कर्मों का क्षयोपशम नहीं किया है, उस जीव को केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना शुद्ध बोधि का लाभ नहीं होता। इसी कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि यावत् किसी को सुने बिना शुद्ध बोधिलाभ नहीं होता।

विवेचन—शुद्ध बोधिलाभ सम्बन्धी प्रश्नोत्तर—प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि केवली आदि दस साधकों से धर्म सुने बिना ही शुद्ध बोधिलाभ उसी को होता है, जिसने दर्शन-मोहनीय कर्म का क्षयोपशम किया हो, जिसने दर्शनमोहनीय का क्षयोपशम नहीं किया, उसे शुद्ध बोधिलाभ नहीं होता।[१]

कतिपय शब्दों के भावार्थ—केवलं बोहिं बुज्झेज्जा=केवल=शुद्ध बोधि=शुद्ध सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है=अनुभव करता है। **दरिसणावरणिज्जाणं कम्माणं**=यहाँ 'दर्शनावरणीय' से दर्शन-मोहनीय कर्म का ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि बोधि, सम्यग्दर्शन का पर्यायवाची शब्द है। अतः सम्यग्दर्शन (बोधि) का लाभ दर्शनमोहनीयकर्म क्षयोपशमजन्य है।[२]

केवली आदि से शुद्ध अनगारिता का ग्रहण-अग्रहण—

४ [१] असोच्चा णं भंते ! केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वएज्जा ?

गोयमा ! असोच्चा णं केवलिस्स वा जाव उवासियाए वा अत्थेगतिए केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइज्जा, अत्थेगतिए केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं नो पव्वएज्जा।

[४-१ प्र] भगवन् ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक-उपासिका से सुने बिना ही क्या कोई जीव केवल मुण्डित हो कर अगारवास त्याग कर अनगारधर्म में प्रव्रजित हो सकता है ?

[४-१ उ] गौतम ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक-उपासिका से सुने बिना ही कोई जीव मुण्डित होकर अगारवास छोड़कर शुद्ध या सम्पूर्ण अनगारिता में प्रव्रजित हो पाता है, और कोई प्रव्रजित नहीं हो पाता।

---

१ भगवती अ. वृत्ति का निष्कर्ष, पत्र ४३२

२ वही, अ. वृत्ति, पत्र ४३२

[२] से केणट्ठेण जाव नो पव्वएज्जा ?

गोयमा ! जस्स ण धम्मतराइयाण खओवसमे कडे भवति से ण असोच्चा केवलिस्स वा जाव केवल मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वएज्जा, जस्स ण धम्मतराइयाण कम्माण खओवसमे नो कडे भवति से ण असोच्चा केवलिस्स वा जाव मु डे भवित्ता जाव णो पव्वएज्जा, से तेणट्ठेण गोयमा ! जाव नो पव्वएज्जा।

[४-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से यावत् कोई जीव प्रव्रजित नही हो पाता ?

[४-२ उ] गौतम ! जिस जीव के धर्मान्तरायिक कर्मों का क्षयोपशम किया हुआ है, वह जीव केवली आदि से सुने बिना ही मुण्डित होकर अगारवास से अनगारधर्म मे प्रव्रजित हो जाता है, किन्तु जिस जीव के धर्मान्तरायिक कर्मो का क्षयोपशम नही हुआ है, वह मुण्डित होकर अगारवास से अनगारधर्म मे प्रव्रजित नही हो पाता। इसी कारण से हे गौतम ! यह कहा गया है कि यावत् वह (कोई जीव) प्रव्रज्या ग्रहण नही कर पाता।

विवेचन—केवल मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वएज्जा भावार्थ—मुण्डित होकर गृहवासत्याग करके शुद्ध या सम्पूर्ण अनगारिता मे प्रव्रजित हो पाता है, अर्थात् अनगारधर्म मे दीक्षित हो पाता है।[1]

धम्मतराइयाण कम्माण—धर्म मे अर्थात्—चारित्र अगीकाररूप धर्म मे अन्तराय-विघ्न डालने वाले कर्म धर्मान्तरायिक कर्म अर्थात्—वीर्यान्तराय एव विविध चारित्रमोहनीय कर्म।[2]

केवली आदि से ब्रह्मचर्य-वास का धारण-अधारण—

५. [१] असोच्चा ण भते ! केवलिस्स वा जाव उवासियाए वा केवल बभचेरवास आवसेज्जा ?

गोयमा ! असोच्चा ण केवलिस्स वा जाव उवासियाए वा अत्थेगतिए केवल बभचेरवास आवसेज्जा, अत्थेगतिए केवल बभचेरवास नो आवसेज्जा।

[५-१ प्र] भगवन् ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना ही क्या कोई जीव शुद्ध ब्रह्मचर्यवास धारण कर पाता है ?

[५-१ उ] गौतम ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना ही कोई जीव शुद्ध ब्रह्मचर्यवास को धारण लेता है और कोई नही कर पाता।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ जाव नो आवसेज्जा ?

गोयमा ! जस्स ण चरित्तावरणिज्जाण कम्माण खओवसमे कडे भवइ से ण असोच्चा केवलिस्स वा जाव केवल बभचेरवास आवसेज्जा, जस्स ण चरित्तावरणिज्जाणं कम्माण खओवसमे नो कडे भवइ से ण असोच्चा केवलिस्स वा जाव नो आवसेज्जा, से तेणट्ठेण जाव नो आवसेज्जा।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४३३

२ वही, पत्र ४३३

[५-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि यावत् कोई जीव धारण नहीं कर पाता ?

[५-२ उ] गौतम ! जिस जीव ने चारित्रावरणीय कर्म का क्षयोपशम किया है, वह केवली आदि से सुने बिना ही शुद्ध ब्रह्मचर्यवास को धारण कर लेता है किन्तु जिस जीव ने चारित्रावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं किया है, वह जीव यावत् शुद्ध ब्रह्मचर्यवास को धारण नहीं कर पाता। इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि यावत् वह धारण नहीं कर पाता ।

विवेचन—चारित्रावरणीय कर्म—यहाँ वेद नोकषायमोहनीयरूप चारित्रावरणीयकर्म विशेष रूप से ग्रहण करने चाहिए, क्योंकि मैथुनविरमण रूप ब्रह्मचर्यवास के विशेषत आवारक कर्म वे ही हैं।[1]

केवली आदि से शुद्ध संयम का ग्रहण-अग्रहण—

६ [१] असोच्चा ण भंते ! केवलिस्स वा जाव केवलेण संजमेण संजमेज्जा ?

गोयमा ! असोच्चा ण केवलिस्स जाव उवासियाए वा जाव अत्थेगतिए केवलेण संजमेण संजमेज्जा, अत्थेगतिए केवलेण संजमेण नो संजमेज्जा ।

[६-१ प्र] भगवन् ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना ही क्या कोई जीव शुद्ध संयम द्वारा संयम-यतना करता है ?

[६-१ उ] हे गौतम ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना ही कोई जीव शुद्ध संयम द्वारा संयम—यतना करता है और कोई जीव नहीं करता ।

[२] से केणट्ठेण जाव नो संजमेज्जा ?

गोयमा ! जस्स ण जयणावरणिज्जाण कम्माण खओवसमे कडे भवइ से ण असोच्चा केवलिस्स वा जाव केवलेण संजमेण संजमेज्जा, जस्स ण जयणावरणिज्जाण कम्माण खओवसमे नो कडे भवइ से ण असोच्चा केवलिस्स वा जाव नो संजमेज्जा, से तेणट्ठेण गोयमा ! जाव अत्थेगतिए नो संजमेज्जा ।

[६-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि यावत् कोई जीव शुद्ध संयम द्वारा संयम—यतना करता है और कोई जीव नहीं करता ?

[६-२ उ] गौतम ! जिस जीव ने यतनावरणीय कर्म का क्षयोपशम किया हुआ है, वह केवली यावत् केवलि-पाक्षिक-उपासिका से सुने बिना ही शुद्ध संयम द्वारा संयम—यतना करता है, किन्तु जिसने यतनावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं किया है, वह केवली आदि से सुने बिना यावत् शुद्ध संयम द्वारा संयम—यतना नहीं करता। इसीलिए हे गौतम ! पूर्वोक्त प्रकार से कहा गया है।

विवेचन—केवलेण संजमेण संजमेज्जा—शुद्ध संयम अर्थात्—चारित्र ग्रहण अथवा पालन करके संयम—यतना करता है—अर्थात् संयम मे लगने वाले अतिचार का परिहार करने के लिए

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४३३ ।

यतनाविशेष करता है। जयणावरणिज्जाण कम्माण०—यतनावरणीय कर्म से चारित्रविशेषविषयक वीर्यान्तरायरूप कर्म समझना चाहिए।[1]

केवली आदि से शुद्ध संवर का आचरण-अनाचरण—

७ [१] असोच्चा ण भते ! केवलिस्स वा जाव उवासियाए वा केवलेण सवरेण सवरेज्जा ?

गोयमा ! असोच्चा ण केवलिस्स जाव अत्थेगतिए केवलेण सवरेण सवरेज्जा, अत्थेगतिए केवलेण जाव नो सवरेज्जा।

[७-१ प्र] भगवन् ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से धर्म-श्रवण किये विना ही क्या कोई जीव शुद्ध सवर द्वारा सवृत होता है ?

[७-१ उ] गौतम ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से सुने विना ही कोई जीव शुद्ध सवर से सवृत होता है और कोई जीव शुद्ध सवर से सवृत नही होता।

[२] से केणट्ठेण जाव नो सवरेज्जा ?

गोयमा ! जस्स ण अज्झवसाणावरणिज्जाण कम्माण खओवसमे कडे भवइ से ण असोच्चा केवलिस्स वा जाव केवलेण सवरेण सवरेज्जा, जस्स ण अज्झवसाणावरणिज्जाण कम्माण खओवसमे णो कडे भवइ से ण असोच्चा केवलिस्स वा जाव नो सवरेज्जा, से तेणट्ठेण जाव नो सवरेज्जा।

[७-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि कोई जीव केवली आदि से सुने विना ही शुद्ध सवर से सवृत होता है और कोई जीव यावत् नही होता ?

[७-२ उ] गौतम ! जिस जीव ने अध्यवसानावरणीय कर्मो का क्षयोपशम किया है, वह केवली आदि से सुने विना ही, यावत् शुद्ध सवर से सवृत हो जाता है, किन्तु जिसने अध्यवसानावरणीय कर्मो का क्षयोपशम नही किया है, वह जीव केवली आदि से सुने विना यावत् शुद्ध सवर से सवृत नही होता। इसी कारण से हे गौतम ! यह कहा जाता है कि यावत् शुद्ध सवर से सवृत नही होता।

विवेचन—केवलेण सवरेण सवरेज्जा—शुद्ध सवर से सवृत होता है, अर्थात्—आश्रवनिरोध करता है।

अज्झवसाणावरणिज्जाण कम्माण—सवर शब्द से यहाँ शुभ अध्यवसायवृत्ति विवक्षित है। वह भावचारित्र रूप होने से तदावरणक्षयोपशम-लभ्य है, इसलिए अध्यवसानावरणीय शब्द से यहाँ भावचारित्रावरणीय कर्म समझने चाहिए।[2]

केवली आदि से आभिनिबोधिक आदि ज्ञान-उपार्जन-अनुपार्जन—

८ [१] असोच्चा ण भते ! केवलिस्स जाव केवल आभिणिबोहियनाण उप्पाडेज्जा ?

गोयमा ! असोच्चा ण केवलिस्स वा जाव उवासियाए वा अत्थेगतिए केवल आभिणिबोहियनाण उप्पाडेज्जा, अत्थेगइए केवल आभिणिबोहियनाण नो उप्पाडेज्जा।

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४३३

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४३३

[८-१ प्र] भगवन् ! केवली आदि से सुने विना ही क्या कोई जीव शुद्ध आभिनिबोधिक-ज्ञान उपार्जन कर लेता है ?

[८-१ उ] गौतम ! केवली आदि से सुने विना कोई जीव शुद्ध आभिनिबोधिक ज्ञान प्राप्त करता है और कोई जीव यावत् नही प्राप्त करता।

[२] से केणट्ठेण जाव नो उप्पाडेज्जा ?

गोयमा ! जस्स ण आभिणिबोहियनाणावरणिज्जाण कम्माण खओवसमे कडे भवइ से ण असोच्चा केवलिस्स वा जाव केवल आभिणिबोहियनाण उप्पाडेज्जा, जस्स ण आभिणिबोहियनाणावरणिज्जाण कम्माण खओवसमे नो कडे भवइ से ण असोच्चा केवलिस्स वा जाव केवल आभिणिबोहियनाण नो उप्पाडेज्जा, से तेणट्ठेण जाव नो उप्पाडेज्जा।

[८-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से यावत् नही प्राप्त करता ?

[८-२ उ] गौतम ! जिस जीव ने आभिनिबोधिक-ज्ञानावरणीय कर्मो का क्षयोपशम किया है, वह केवली आदि से सुने बिना ही शुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान उपार्जन कर लेता है, किन्तु जिसने आभिनिबोधिक-ज्ञानावरणीय कर्मो का क्षयोपशम नही किया है, वह केवली आदि से सुने विना शुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान का उपार्जन नही कर पाता। हे गौतम ! इसीलिए कहा जाता है कि कोई जीव यावत् शुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान उपार्जन कर लेता है और कोई नही कर पाता।

९ असोच्चा ण भते ! केवलि० जाव केवल सुयनाण उप्पाडेज्जा ?

एव जहा आभिणिबोहियनाणस्स वत्तव्वया भणिया तहा सुयनाणस्स वि भाणियव्वा, नवर सुयनाणावरणिज्जाण कम्माण खओवसमे भाणियव्वे।

[९ प्र] भगवन् ! केवली आदि से सुने विना ही क्या कोई जीव श्रुतज्ञान उपार्जन कर लेता है ?

[९ उ] (गौतम !) जिस प्रकार आभिनिबोधिकज्ञान का कथन किया गया, उसी प्रकार शुद्ध श्रुतज्ञान के विषय मे भी कहना चाहिए।

विशेष इतना ही है कि यहाँ श्रुतज्ञानावरणीयकर्मो का क्षयोपशम कहना चाहिए।

१०. एव चेव केवल ओहिनाण भाणियव्व, नवर ओहिणाणावरणिज्जाण कम्माण खओवसमे भाणियव्वे।

[१०] इसी प्रकार शुद्ध अवधिज्ञान के उपार्जन के विषय मे कहना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ अवधिज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम कहना चाहिए।

११ एव केवल मणपज्जवनाण उप्पाडेज्जा, नवर मणपज्जवणाणावरणिज्जाण कम्माण खओवसमे भाणियव्वे।

[११] इसी प्रकार शुद्ध मन पर्यंयज्ञान के उत्पन्न होने के विषय मे कहना चाहिए। विशेष इतना ही है कि मन पर्यंयज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम का कथन करना चाहिए।

१२. असोच्चा ण भंते ! केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलनाणं उप्पाडेज्जा ?

एवं चेव, नवरं केवलनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खए भाणियव्वे, सेसं तं चेव। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ जाव केवलनाणं उप्पाडेज्जा।

[१२ प्र] भगवन् ! केवली आदि से सुने विना ही क्या कोई जीव केवलज्ञान उपार्जन कर लेता है ?

[१२ उ] पूर्ववत् यहाँ भी कहना चाहिए। विशेष इतना ही है कि यहाँ केवलज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय कहना चाहिए। शेष सब कथन पूर्ववत् है। इसीलिए हे गौतम ! यह कहा जाता है कि यावत् केवलज्ञान का उपार्जन करता।

विवेचन—आभिनिबोधिक आदि ज्ञानों के उत्पादन के सम्बन्ध में—निष्कर्ष यह है कि आभिनिबोधिक, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान, इन पाँच ज्ञानों का उपार्जन केवली आदि से सुने विना भी वही कर सकता है, जिसके उस-उस ज्ञान के आवरणरूप कर्मों का क्षयोपशम तथा क्षय हो गया हो, अन्यथा नहीं कर सकता।

केवली आदि से ग्यारह बोलों की प्राप्ति और अप्राप्ति—

१३. [१] असोच्चा ण भंते ! केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए व केवलिपन्नत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए १ ?, केवलं बोहिं बुज्झेज्जा २ ? केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वएज्जा ३ ?, केवलं बंभचेरवासं आवसेज्जा ४ ?, केवलेणं संजमेणं संजमेज्जा ५ ?, केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा ६ ?, केवलं आभिणिबोहियनाणं उप्पाडेज्जा ७ ?, जाव केवलं मणपज्जवनाणं उप्पाडेज्जा १० ?, केवलनाणं उप्पाडेज्जा ११ ?,

गोयमा ! असोच्चा णं केवलिस्स वा जाव उवासियाए वा अत्थेगतिए केवलिपन्नत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए, अत्थेगतिए केवलिपन्नत्तं धम्मं नो लभेज्जा सवणयाए १, अत्थेगतिए केवलं बोहिं बुज्झेज्जा, अत्थेगतिए केवलं बोहिं णो बुज्झेज्जा २, अत्थेगतिए केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वएज्जा, अत्थेगतिए जाव नो पव्वएज्जा ३, अत्थेगतिए केवलं बंभचेरवासं आवसेज्जा, अत्थेगतिए केवलं बंभचेरवासं नो आवसेज्जा ४, अत्थेगतिए केवलेणं संजमेणं संजमेज्जा, अत्थेगतिए केवलेणं संजमेणं नो संजमेज्जा ५, एवं संवरेण वि ६, अत्थेगतिए केवलं आभिणिबोहियनाणं उप्पाडेज्जा, अत्थेगतिए जाव नो उप्पाडेज्जा ७, एवं जाव[1] मणपज्जवनाणं ८-९-१०, अत्थेगतिए केवलनाणं उप्पाडेज्जा, अत्थेगतिए केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा ११।

[१३-१ प्र] भगवन् ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक-उपासिका (इन दस) के पास से धर्मश्रवण किये विना ही क्या, कोई जीव केवलि-प्ररूपित धर्म-श्रवण-लाभ करता है, शुद्ध

---

१ 'जाव' शब्द से यहाँ 'श्रुतज्ञान' और 'अवधिज्ञान' पद जोडना चाहिए।

बोधि (सम्यग्दर्शन) प्राप्त करता है, मुण्डित हो कर अगारवास में शुद्ध अनगारिता को स्वीकार करता है, शुद्ध ब्रह्मचर्यवास धारण करता है, शुद्ध संयम द्वारा संयम—यतना करता है, शुद्ध संवर से संवृत होता है, शुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान उत्पन्न करता है, यावत् शुद्ध मनःपर्यवज्ञान तथा केवलज्ञान उत्पन्न करता है ?

[१३-१ उ] गौतम ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना ही कोई जीव केवलि-प्ररूपित धर्म-श्रवण का लाभ पाता है, कोई जीव नहीं पाता १, कोई जीव शुद्ध बोधिलाभ प्राप्त करता है, कोई नहीं प्राप्त करता २, कोई जीव मुण्डित हो कर अगारवास में शुद्ध अनगारधर्म में प्रव्रजित होता है और कोई प्रव्रजित नहीं होता ३, कोई जीव शुद्ध ब्रह्मचर्यवास को धारण करता है और कोई नहीं धारण करता ४, कोई जीव शुद्ध संयम से संयम—यतना करता है और कोई नहीं करता ५, कोई जीव शुद्ध संवर से संवृत होता है और कोई जीव संवृत नहीं होता ६, इसी प्रकार कोई जीव आभिनिबोधिकज्ञान का उपार्जन करता है और कोई उपार्जन नहीं करता ७, कोई जीव यावत् मनःपर्यवज्ञान का उपार्जन करता है और कोई नहीं करता ८-९-१०, कोई जीव केवलज्ञान का उपार्जन करता है और कोई नहीं करता ११ ।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ असोच्चा णं तं चेव जाव अत्थेगतिए केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा ?

गोयमा ! जस्स णं नाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ १, जस्स णं दरिसणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ २, जस्स णं धम्मंतराइयाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ ३, एवं चरित्तावरणिज्जाणं ४, जयणावरणिज्जाणं ५, अज्झवसाणावरणिज्जाणं ६, आभिणिबोहियनाणावरणिज्जाणं ७, जाव मणपज्जवनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ ८-९-१०, जस्स णं केवलनाणावरणिज्जाणं जाव खए नो कडे भवइ ११, से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव[1] केवलिपन्नत्तं धम्मं नो लभेज्जा सवणयाए, केवलं बोहिं नो बुज्झेज्जा जाव केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा । जस्स णं नाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवति १, जस्स णं दरिसणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ २, जस्स णं धम्मंतराइयाणं ३, एवं जाव जस्स णं केवलनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खए कडे भवइ ११, से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव केवलिपन्नत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए १, केवलं बोहिं बुज्झेज्जा २, जाव केवलणाणं उप्पाडेज्जा ११ ।

[१३-२ प्र] भगवन् ! इस (पूर्वोक्त) कथन का क्या कारण है कि कोई जीव केवलिप्ररूपित धर्मश्रवण-लाभ करता है, यावत् केवलज्ञान का उपार्जन करता है और कोई यावत् केवलज्ञान का नहीं करता ?

[१३-२ उ] गौतम ! (१) जिस जीव ने ज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम नहीं किया, (२) जिस जीव ने दर्शनावरणीय (दर्शनमोहनीय) कर्म का क्षयोपशम नहीं किया, (३) धर्मान्तरायिक-

---

१ 'जाव' शब्द से यहाँ 'श्रुतज्ञान' और 'अवधिज्ञान' पद जोडना चाहिए ।

कर्म का क्षयोपशम नही किया, (४) चारित्रावरणीयकर्म का क्षयोपशम नही किया, (५) यतनावरणीय-कर्म का क्षयोपशम नही किया, (६) अध्यवसानावरणीयकर्म का क्षयोपशम नही किया, (७) आभिनिबोधिकज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम नही किया, (८ से १०) इसी प्रकार श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय और मन पर्यवज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नही किया, तथा (११) केवलज्ञानावरणीयकर्म का क्षय नही किया, वे जीव केवली आदि से धर्मश्रमण किये विना धर्म-श्रवणलाभ नही पाते शुद्धवोधिलाभ का अनुभव नही करते, यावत् केवलज्ञान को उत्पन्न नही कर पाते। (१) जिस जीव ने ज्ञानावरणीयकर्मो का क्षयोपशम किया है, (२) जिसने दर्शनावरणीयकर्मो का क्षयोपशम किया है, (३) जिसने धर्मान्तरायिककर्मो का क्षयोपशम किया है, (४-११) यावत् जिसने केवलज्ञानावरणीयकर्मो का क्षय किया है, वह केवली आदि से धर्मश्रवण किये विना ही केवलि-प्ररूपित धर्म-श्रवण लाभ प्राप्त करता है, शुद्ध बोधिलाभ का अनुभव करता है, यावत् केवलज्ञान को उपार्जित कर लेता है।

विवेचन—ग्यारह बोलो की प्राप्ति किसको और किसको नही ? केवलज्ञानी आदि दस मे से किसी से शुद्ध धर्म-श्रवण किये बिना ही कौन व्यक्ति केवलि-प्ररूपित धर्मश्रवण का लाभ पाता, शुद्ध सम्यग्दर्शन का अनुभव करता है, यावत् केवलज्ञान उपार्जित करता है ? इसके उत्तर मे प्रस्तुत सूत्र (स १३) मे उन-उन कर्मो का क्षयोपशम तथा क्षय करने वाले व्यक्ति को उस-उस बोल की प्राप्ति बताई गई है। इसके विपरीत जिस व्यक्ति के उन-उन आवारक कर्मो का क्षयोपशम या क्षय नही होता, वह उस-उस बोल की प्राप्ति से वचित रहता है।

केवली आदि से विना सुने केवलज्ञानप्राप्ति वाले को विभगज्ञान एव क्रमश. अवधिज्ञान प्राप्त होने की प्रक्रिया—

१४ तस्स ण छट्ठछट्ठेण अनिक्खित्तेण तवोकम्मेण उड्ढ बाहाओ पगिज्झिय पगिज्झिय सूराभिमुहस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्स पगतिभद्दयाए पगइउवसतयाए पगतिपयणुकोह-माण-माया-लोभयाए मिउमद्दवसपन्नयाए अल्लीणताए भद्दताए विणीतताए अण्णया कयाइ सुभेण अज्झवसाणेण, सुभेण परिणामेण, लेस्साहि विसुज्झमाणीहि तयावरणिज्जाण कम्माण खओवसमेण ईहापोह-मग्गण-गवेसण करेमाणस्स विब्भगे नाम अन्नाणे समुप्पज्जइ, से ण तेण विब्भगनाणेण समुप्पन्नेण जहन्नेण अगुलस्स असखेज्जइभाग, उक्कोसेण असखेज्जाइ जोयणसहस्साइ जाणइ पासइ, से ण तेण विब्भगनाणेण समुप्पन्नेण जीवे वि जाणइ, अजीवे वि जाणइ, पासंडत्थे सारभे सपरिग्गहे सकिलिस्समाणे वि जाणइ, विसुज्झमाणे वि जाणइ, से ण पुव्वामेव सम्मत्त पडिवज्जइ, सम्मत्त पडिवज्जित्ता समणधम्म रोएति, समणधम्म रोएत्ता चरित्त पडिवज्जइ, चरित्त पडिवज्जित्ता लिग पडिवज्जइ, तस्स ण तेहि मिच्छत्तपज्जवेहि परिहायमाणेहि परिहायमाणेहि, सम्मद्दसणपज्जवेहि परिवड्ढमाणेहि परिवड्ढमाणेहि से विब्भगे अन्नाणे सम्मत्तपरिग्गहिए खिप्पामेव ओही परावत्तइ।

[१४] निरन्तर छठ-छठ (बेले-बेले) का तप कर्म करते हुए सूर्य के सम्मुख बाहे ऊँची करके आतापनाभूमि मे आतापना लेते हुए उस (विना धर्मश्रवण किए केवलज्ञान तक प्राप्त करने वाले) जीव की प्रकृति-भद्रता मे, प्रकृति की उपशान्तता से स्वाभाविक रूप से ही क्रोध, मान, माया और

लोभ की अत्यन्त मन्दता होने से, अत्यन्त मृदुत्वसम्पन्नता मे, कामभोगो मे अनासक्ति मे, भद्रता और विनीतता से तथा किसी समय शुभ अध्यवसाय, शुभ परिणाम, विशुद्ध लेश्या एव तदावरणीय (विभगज्ञानावरणीय) कर्मो के क्षयोपशम से ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करते हुए 'विभग' नामक अज्ञान उत्पन्न होता है। फिर वह उस उत्पन्न हुए विभगज्ञान द्वारा जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट असख्यात हजार योजन तक जानता और देखता है। उस उत्पन्न हुए विभगज्ञान से वह जीवो को भी जानता है और अजीवो को भी जानता है। वह पाषण्डस्थ, सारम्भी (आरम्भयुक्त), सपरिग्रह (परिग्रही) और सक्लेश पाते हुए जीवो को भी जानता है और विशुद्ध होते हुए जीवो को भी जानता है। (तत्पश्चात्) वह (विभगज्ञानी) सर्वप्रथम सम्यक्त्व प्राप्त करता है, सम्यक्त्व प्राप्त करके श्रमणधर्म पर रुचि करता है, श्रमणधर्म पर रुचि करके चारित्र अगीकार करता है। चारित्र अगीकार करके लिंग (साधुवेश) स्वीकार करता है। तब उस (भूतपूर्व विभगज्ञानी) के मिथ्यात्व के पर्याय क्रमश क्षीण होते-होते और सम्यग्-दर्शन के पर्याय क्रमश बढते-बढते वह 'विभग' नामक अज्ञान, सम्यक्त्व-युक्त होता है और शीघ्र ही अवधि (ज्ञान) के रूप मे परिवर्तित हो जाता है।

विवेचन—'तस्स छट्ठछट्ठेण' आशय—जो व्यक्ति केवली आदि मे बिना सुने ही केवलज्ञान उपार्जन कर लेता है, ऐसे किसी जीव को किस क्रम से अवधिज्ञान प्राप्त होता है, उसकी प्रक्रिया यहाँ बताई गई है। 'छट्ठ छट्ठेण' यहाँ यह बताने के लिए कहा गया है कि प्राय लगातार बेले-बेले की तपस्या करने वाले बालतपस्वी को विभगज्ञान उत्पन्न होता है।[1]

ईहापोहमग्गणगवेसण ईहा—विद्यमान पदार्थों के प्रति ज्ञानचेष्टा। **अपोह**—'यह घट है, पट नही,' इस प्रकार विपक्ष के निराकरणपूर्वक वस्तुतत्त्व का विचार। **मार्गण**—अन्वयधर्म-पदार्थ मे विद्यमान गुणो का आलोचन (विचार)। **गवेषण**—व्यतिरेक (धर्म) का निराकरण रूप आलोचन (विचार)।[2]

समुत्पन्न विभगज्ञान की शक्ति—प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि वह बालतपस्वी विभगज्ञान प्राप्त होने पर जीवो को भी कथचित् ही जानता है, साक्षात् नही, क्योकि विभगज्ञानी मूर्त्तपदार्थो को ही जान सकता है, अमूर्त्त को नही। इसी प्रकार पाषण्डस्थ यानी व्रतस्थ, आरम्भ-परिग्रहयुक्त होने से महान् सक्लेश पाते हुए जीवो को भी जानता है और अल्पमात्रा मे परिणामो की विशुद्धि होने से परिणामविशुद्धिमान् जनो को भी जानता है।[3]

विभगज्ञान अवधिज्ञान में परिणत होने की प्रक्रिया—इससे पूर्व प्रकृतिभद्रता, विनम्रता, कषायो की उपशान्तता, कामभोगो मे अनासक्ति, शुभ अध्यवसाय एव सुपरिणाम आदि के कारण विभगज्ञानी होते हुए भी परिणामो की विशुद्धि होने मे सर्वप्रथम सम्यक्त्वप्राप्ति, फिर श्रमणधर्म पर रुचि, चारित्र को अगीकार और फिर साधुवेष को स्वीकार करता है। सम्यक्त्वप्राप्ति किस प्रकार होती है ? इसकी प्रक्रिया बताने के लिए अन्त मे पाठ दिया गया है— **विभगे अण्णाणे सम्मत्त-**

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४३३
२ वही अ वृत्ति, पत्र ४३३
३ वही अ वृत्ति, पत्र ४३३

कर्म का क्षयोपशम नही किया, (४) चारित्रावरणीयकर्म का क्षयोपशम नही किया, (५) यतनावरणीय-कर्म का क्षयोपशम नही किया, (६) अध्यवसानावरणीयकर्म का क्षयोपशम नही किया, (७) आभिनिबोधिकज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम नही किया, (८ से १०) इसी प्रकार श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय और मन पर्यवज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नही किया, तथा (११) केवलज्ञानावरणीयकर्म का क्षय नही किया, वे जीव केवली आदि मे धर्मश्रमण किये विना धर्म-श्रवणलाभ नही पाते, शुद्धबोधिलाभ का अनुभव नही करते, यावत् केवलज्ञान को उत्पन्न नही कर पाते। (१) जिस जीव ने ज्ञानावरणीयकर्मों का क्षयोपशम किया है, (२) जिसने दर्शनावरणीयकर्मों का क्षयोपशम किया है, (३) जिसने धर्मान्तरायिककर्मों का क्षयोपशम किया है, (४-११) यावत् जिसने केवलज्ञानावरणीयकर्मो का क्षय किया है, वह केवली आदि से धर्मश्रवण किये विना ही केवलि-प्ररूपित धर्म-श्रवण लाभ प्राप्त करता है, शुद्ध बोधिलाभ का अनुभव करता है, यावत् केवलज्ञान को उपार्जित कर लेता है।

विवेचन—ग्यारह बोलो की प्राप्ति किसको और किसको नही ? केवलज्ञानी आदि दस मे से किसी से शुद्ध धर्म-श्रवण किये विना ही कौन व्यक्ति केवलि-प्ररूपित धर्मश्रवण का लाभ पाता, शुद्ध सम्यग्दर्शन का अनुभव करता है, यावत् केवलज्ञान उपार्जित करता है ? इसके उत्तर मे प्रस्तुत सूत्र (स १३) मे उन-उन कर्मो का क्षयोपशम तथा क्षय करने वाले व्यक्ति को उस-उस बोल की प्राप्ति बताई गई है। इसके विपरीत जिस व्यक्ति के उन-उन आवारक कर्मो का क्षयोपशम या क्षय नही होता, वह उस-उस बोल की प्राप्ति से वचित रहता है।

केवली आदि से विना सुने केवलज्ञानप्राप्ति वाले को विभंगज्ञान एव क्रमशः अवधिज्ञान प्राप्त होने की प्रक्रिया—

१४ तस्स ण छट्ठछट्ठेण अनिक्खित्तेण तवोकम्मेण उड्ढ बाहाओ पगिज्झिय पगिज्झिय सूराभिमुहस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्स पगतिभद्दयाए पगइउवसतयाए पगतिपयणुकोह-माण-माया-लोभयाए मिउमद्दवसपन्नयाए अल्लीणताए भद्दताए विणीतताए अण्णया कयाइ सुभेण अज्झवसाणेण, सुभेण परिणामेण, लेस्साहि विसुज्झमाणीहि तयावरणिज्जाण कम्माण खओवसमेण ईहापोह-मग्गण-गवेसण करेमाणस्स विब्भगे नाम अन्नाणे समुप्पज्जइ, से ण तेण विब्भगनाणेण समुप्पन्नेण जहन्नेण अगुलस्स असखेज्जइभाग, उक्कोसेण असखेज्जाइ जोयणसहस्साइ जाणइ पासइ, से ण तेण विब्भगनाणेण समुप्पन्नेण जीवे वि जाणइ, अजीवे वि जाणइ, पासडत्थे सारभे सपरिग्गहे सकिलिस्समाणे वि जाणइ, विसुज्झमाणे वि जाणइ, से ण पुव्वामेव सम्मत्त पडिवज्जइ, सम्मत्त पडिवज्जित्ता समणधम्म रोएति, समणधम्म रोएत्ता चरित्त पडिवज्जइ, चरित्त पडिवज्जित्ता लिंग पडिवज्जइ, तस्स ण तेहि मिच्छत्तपज्जवेहि परिहायमाणेहि परिहायमाणेहि, सम्मद्दसणपज्जवेहि परिवड्ढमाणेहि परिवड्ढमाणेहि से विब्भगे अन्नाणे सम्मत्तपरिग्गहिए खिप्पामेव ओही परावत्तइ।

[१४] निरन्तर छठ-छठ (बेले-बेले) का तप कर्म करते हुए सूर्य के सम्मुख बाहे ऊँची करके आतापनाभूमि मे आतापना लेते हुए उस (विना धर्मश्रवण किए केवलज्ञान तक प्राप्त करने वाले) जीव की प्रकृति-भद्रता से, प्रकृति की उपशान्तता से स्वाभाविक रूप से ही क्रोध, मान, माया और

लोभ की अत्यन्त मन्दता होने से, अत्यन्त मृदुत्वसम्पन्नता से, कामभोगो मे अनासक्ति में, भद्रता और विनीतता से तथा किसी समय शुभ अध्यवसाय, शुभ परिणाम, विशुद्ध लेश्या एव तदावरणीय (विभगज्ञानावरणीय) कर्मो के क्षयोपशम मे ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेपणा करते हुए 'विभग' नामक अज्ञान उत्पन्न होता है। फिर वह उस उत्पन्न हुए विभगज्ञान द्वारा जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट असख्यात हजार योजन तक जानता और देखता है। उस उत्पन्न हुए विभगज्ञान मे वह जीवो को भी जानता है और अजीवो को भी जानता है। वह पापण्डस्थ, सारम्भी (आरम्भयुक्त), सपरिग्रह (परिग्रही) और सक्लेश पाते हुए जीवो को भी जानता है और विशुद्ध होते हुए जीवो को भी जानता है। (तत्पश्चात्) वह (विभगज्ञानी) सर्वप्रथम सम्यक्त्व प्राप्त करता है, सम्यक्त्व प्राप्त करके श्रमणधर्म पर रुचि करता है, श्रमणधर्म पर रुचि करके चारित्र अगीकार करता है। चारित्र अगीकार करके लिंग (साधुवेश) स्वीकार करता है। तब उस (भूतपूर्व विभगज्ञानी) के मिथ्यात्व के पर्याय क्रमश क्षीण होते-होते और सम्यग्-दर्शन के पर्याय क्रमश वढते-वढते वह 'विभग' नामक अज्ञान, सम्यक्त्व-युक्त होता है और शीघ्र ही अवधि (ज्ञान) के रूप मे परिवर्तित हो जाता है।

विवेचन—'तस्स छट्ठछट्ठेण' · आशय—जो व्यक्ति केवली आदि से विना सुने ही केवलज्ञान उपार्जन कर लेता है, ऐसे किसी जीव को किस क्रम से अवधिज्ञान प्राप्त होता है, उसकी प्रक्रिया यहाँ बताई गई है। 'छट्ठ छट्ठेण' यहाँ यह बताने के लिए कहा गया है कि प्राय लगातार वेले-वेले की तपस्या करने वाले बालतपस्वी को विभगज्ञान उत्पन्न होता है।[1]

ईहापोहमग्गणगवेसण ईहा—विद्यमान पदार्थो के प्रति ज्ञानचेष्टा। **अपोह**—'यह घट है, पट नही,' इस प्रकार विपक्ष के निराकरणपूर्वक वस्तुतत्त्व का विचार। **मार्गण**—अन्वयधर्म-पदार्थ मे विद्यमान गुणो का आलोचन (विचार)। **गवेषण**—व्यतिरेक (धर्म) का निराकरण रूप आलोचन (विचार)।[2]

समुत्पन्न विभगज्ञान की शक्ति—प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि वह बालतपस्वी विभगज्ञान प्राप्त होने पर जीवो को भी कथचित् ही जानता है, साक्षात् नही, क्योकि विभगज्ञानी मूर्त्तपदार्थो को ही जान सकता है, अमूर्त्त को नही। इसी प्रकार पाषण्डस्थ यानी व्रतस्थ, आरम्भ-परिग्रहयुक्त होने से महान् सक्लेश पाते हुए जीवो को भी जानता है और अल्पमात्रा मे परिणामो की विशुद्धि होने से परिणामविशुद्धिमान् जनो को भी जानता है।[3]

विभगज्ञान अवधिज्ञान में परिणत होने की प्रक्रिया—इससे पूर्व प्रकृतिभद्रता, विनम्रता, कषायो की उपशान्तता, कामभोगो मे अनासक्ति, शुभ अध्यवसाय एव सुपरिणाम आदि के कारण विभगज्ञानी होते हुए भी परिणामो की विशुद्धि होने मे सर्वप्रथम सम्यक्त्वप्राप्ति, फिर श्रमणधर्म पर रुचि, चारित्र को अगीकार और फिर साधुवेष को स्वीकार करता है। सम्यक्त्वप्राप्ति किस प्रकार होती है? इसकी प्रक्रिया वताने के लिए अन्त मे पाठ दिया गया है— **विभगे अण्णाणे सम्मत्त-**

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४३३

२ वही अ वृत्ति, पत्र ४३३

३ वही अ वृत्ति, पत्र ४३३

परिग्गहिए । उसका आशय यह है कि चारित्र प्राप्ति से पहले वह भूतपूर्व विभगज्ञानी सम्यक्त्व प्राप्त करता है और सम्यक्त्व प्राप्त होते ही उसका विभगज्ञान अवधिज्ञान के रूप मे परिणत हो जाता है। उसके बाद की प्रक्रिया है—श्रमणधर्म की रुचि, चारित्रधर्मस्वीकार, वेशग्रहण आदि, जो कि मूलपाठ मे पहले बता दी गई है।[1]

'अणिक्खित्तेण' आदि शब्दो का भावार्थ—**अणिक्खित्तेण**—लगातार बीच मे छोडे विना। **पगिज्झिय**—रख कर। **आयावणभूमीए**—आतापना लेने के स्थान मे। **पगइपतणुकोह** —प्रकृति से, स्वभाव से ही पतले क्रोधादि कषाय। **मिउमद्दवसपण्णयाए**—अत्यन्त मृदुता-कोमलता से सम्पन्न होने के कारण। **अल्लीणयाए**—अलीनता=अनासक्ति=कामभोगो के प्रति गृद्धिरहितता। **अण्णया कयावि**—अन्य किसी समय। **परिहायमाणेहिं**=परिक्षीण होते हुए। **परिवड्ढमाणेहिं**=बढते-बढते। **ओही परावत्तइ**—अवधिज्ञान मे परिवर्त्तित हो जाता है।[2]

पूर्वोक्त अवधिज्ञानी मे लेश्या, ज्ञान आदि का निरूपण—

१५ से ण भते ! कतिसु लेस्सासु होज्जा ?

गोयमा ! तिसु विसुद्धलेस्सासु होज्जा, त जहा—तेउलेस्साए पम्हलेस्साए सुक्कलेस्साए।

[१५ प्र] भगवन् ! वह अवधिज्ञानी कितनी लेश्याओ मे होता है ?

[१५ उ] गौतम ! वह तीन विशुद्ध लेश्याओ मे होता है। यथा—१ तेजोलेश्या, २ पद्म-लेश्या और ३ शुक्ललेश्या।

१६. से ण भते ! कतिसु णाणेसु होज्जा ?

गोयमा ! तिसु, आभिणिबोहियनाण-सुयनाण-ओहिनाणेसु होज्जा।

[१६ प्र] भगवन् ! वह अवधिज्ञानी कितने ज्ञानो मे होता है ?

[१६ उ] गौतम ! वह आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान, इन तीन ज्ञानो मे होता है।

१७ [१] से ण भते ! किं सजोगी होज्जा, अजोगी होज्जा ?

गोयमा ! सजोगी होज्जा, नो अजोगी होज्जा।

[१७-१ प्र] भगवन् ! वह सयोगी होता है, या अयोगी ?

[१७-१ उ] गौतम ! वह सयोगी होता है, अयोगी नही होता।

[२] जइ सजोगी होज्जा किं मणजोगी होज्जा, वइजोगी होज्जा, कायजोगी होज्जा ?

गोयमा ! मणजोगी वा होज्जा, वइजोगी वा होज्जा, कायजोगी वा होज्जा।

[१७-२ प्र] भगवन् ! यदि वह सयोगी होता है, तो क्या मनोयोगी होता है, वचनयोगी होता है या काययोगी होता है ?

[१७-२ उ] गौतम ! वह मनोयोगी होता है, वचनयोगी होता है और काययोगी भी होता है।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४३३-४३४

२ वही पत्र ४३३

१८ से ण भंते ! किं सागारोवउत्ते होज्जा, अणागारोवउत्ते होज्जा ?

गोयमा ! सागारोवउत्ते वा होज्जा, अणागारोवउत्ते वा होज्जा ।

[१८ प्र] भगवन् ! वह साकारोपयोग-युक्त होता है, अथवा अनाकारोपयोग-युक्त होता है ?

[१८ उ] गौतम ! वह साकारोपयोग-युक्त भी होता है और अनाकारोपयोग-युक्त भी होता है ।

१९ से ण भंते ! कयरम्मि संघयणे होज्जा ?

गोयमा ! वइरोसभनारायसंघयणे होज्जा ।

[१९ प्र] भगवन् ! वह किस संहनन में होता है ?

[१९ उ] गौतम ! वह वज्रऋषभनाराचसंहनन वाला होता है ।

२०. से ण भंते ! कयरम्मि संठाणे होज्जा ?

गोयमा ! छण्हं संठाणाणं अन्नयरे संठाणे होज्जा ।

[२० प्र] भगवन् ! वह किस संस्थान में होता है ?

[२० उ] गौतम ! वह छह संस्थानों में से किसी भी संस्थान में होता है ।

२१ से ण भंते ! कयरम्मि उच्चत्ते होज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेणं सत्त रयणी, उक्कोसेणं पंचधणुसतिए होज्जा ।

[२१ प्र] भगवन् ! वह कितनी ऊँचाई वाला होता है ?

[२१ उ] गौतम ! वह जघन्य सात हाथ (रत्नि) और उत्कृष्ट पाँच सौ धनुष ऊँचाई वाला होता है ।

२२ से ण भंते ! कयरम्मि आउए होज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेणं सातिरेगट्ठवासाउए, उक्कोसेणं पुव्वकोडिआउए होज्जा ।

[२२ प्र] भगवन् ! वह कितनी आयुष्य वाला होता है ?

[२२ उ] गौतम ! वह जघन्य साधिक आठ वर्ष और उत्कृष्ट पूर्वकोटि आयुष्य वाला होता है ।

२३ [१] से ण भंते ! किं सवेदए होज्जा, अवेदए होज्जा ?

गोयमा ! सवेदए होज्जा, नो अवेदए होज्जा ।

[२३-१ प्र] भगवन् ! वह सवेदी होता है या अवेदी ?

[२३-१ उ] गौतम ! वह सवेदी होता है, अवेदी नहीं होता ।

[२] जइ सवेदए होज्जा किं इत्थीवेदए होज्जा, पुरिसवेदए होज्जा, नपुंसगवेदए होज्जा, पुरिसनपुंसगवेदए होज्जा ?

गोयमा ! नो इत्थिवेदए होज्जा, पुरिसवेदए वा होज्जा, नो नपुंसगवेदए होज्जा, पुरिस-नपुंसगवेदए वा होज्जा ।

[२३-२ प्र] भगवन् ! यदि वह सवेदी होता है तो क्या स्त्रीवेदी होता है, पुरुषवेदी होता है अथवा नपु सकवेदी होता है, या पुरुष-नपु सक (—कृत्रिम नपु सक—) वेदी होता है ?

[२३-२ उ] गौतम ! वह स्त्रीवेदी नही होता, पुरुपवेदी होता है, नपु सकवेदी नही होता, किन्तु पुरुष-नपु सकवेदी होता है ।

२४. [१] से ण भते ! कि सकसाई होज्जा, अकसाई होज्जा ?

गोयमा ! सकसाई होज्जा, नो अकसाई होज्जा ।

[२४-१ प्र] भगवन् ! क्या वह (अवधिज्ञानी) सकपायी होता है, अथवा अकषायी होता है ?

[२४-१ उ] गौतम ! वह सकपायी होता है, अकषायी नही होता ।

[२] जइ सकसाई होज्जा, से ण भते ! कतिसु कसाएसु होज्जा ?

गोयमा ! चउसु सजलणकोह-माण-माया-लोभेसु होज्जा ।

[२४-२ प्र] भगवन् ! यदि वह सकषायी होता है, तो वह कितने कषायो वाला होता है ?

[२४-२ उ] गौतम ! वह सज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चार कषायो से युक्त होता है ।

२५ [१] तस्स ण भते ! केवतिया अज्झवसाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! असखेज्जा अज्झवसाणा पण्णत्ता ।

[२५-१ प्र] भगवन् ! उसके कितने अध्यवसाय होते है ?

[२५-१ उ] गौतम ! उसके असख्यात अध्यवसाय होते है ।

[२] ते ण भते ! किं पसत्था अप्पसत्था ?

गोयमा ! पसत्था, नो अप्पसत्था ।

[२५-२ प्र] भगवन् ! उसके वे अध्यवसाय प्रशस्त होते है या अप्रशस्त ?

[२५-२ उ] गौतम ! वे प्रशस्त होते हैं, अप्रशस्त नही होते ।

विवेचन—अवधिज्ञानी के सम्बन्ध मे प्रश्न—ये प्रश्न जो लेश्या, ज्ञान, योग, उपयोग आदि के सम्बन्ध मे किये गए हैं, वे उसके सम्बन्ध मे किये गए है जो पहले विभगज्ञानी था, किन्तु पूर्वोक्त प्रक्रियापूर्वक शुद्ध अध्यवसाय एव शुद्ध परिणाम के कारण सम्यक्त्व प्राप्त करके अवधिज्ञानो हुआ और श्रमणधर्म मे दीक्षित होकर चारित्र ग्रहण कर चुका है ।[१]

'तिसु विसुद्धलेसासु होज्ज'—प्रशस्त भावलेश्या होने पर ही सम्यक्त्वादि प्राप्त होते हैं, अप्रशस्त लेश्याओ मे नही ।

तिसु णाणेसु होज्ज—विभगज्ञानी को सम्यक्त्व प्राप्त होतें ही उसके मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और विभगज्ञान, ये तीनो अज्ञान, (मति-श्रुतावधि-) ज्ञानरूप मे परिणत हो जाते है ।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४३५

णो अजोगी होज्ज—अवधिज्ञानी को अवधिज्ञान काल मे अयोगी-अवस्था प्राप्त नही होती।

सागारोवउत्ते वा—विभगज्ञान से निवृत्त होने वाला अवधिज्ञानी, दोनो उपयोगो मे मे किसी भी एक उपयोग मे प्रवृत्त होता है।

साकारोपयोग एव अनाकारोपयोग का अर्थ—साकारोपयोग अर्थात् ज्ञान और अनाकारोपयोग अर्थात् ज्ञानोपयोग से पूर्व होने वाला दर्शन (निराकार ज्ञान)।

वज्रऋषभनाराच-सहनन ही क्यो ?—यहाँ जो अवधिज्ञानी के लिए वज्रऋषभनाराच-सहनन का कथन किया गया है, वह आगे प्राप्त होने वाले केवलज्ञान की अपेक्षा मे समझना चाहिए, क्योकि केवलज्ञान की प्राप्ति वज्रऋषभनाराच-सहनन वालो को ही होती है।

सवेदी आदि का तात्पर्य—विभगज्ञान से अवधिज्ञान काल मे साधक सवेदी होता है, क्योकि उस दशा मे उसके वेद का क्षय नही होता। विभगज्ञान से अवधिज्ञान प्राप्त करने की जो प्रक्रिया है, उस प्रक्रिया का स्त्री मे स्वभावत अभाव होता है। अत सवेदी मे वह पुरुषवेदी एव कृत्रिमनपु सकवेदी होता है।

सकसाई होज्ज—विभगज्ञान एव अवधिज्ञान के काल मे कषायक्षय नही होता, किन्तु सज्वलनकषाय होता है, क्योकि विभगज्ञान के अवधिज्ञान मे परिणत होने पर वह अवधिज्ञानी साधक जब चारित्र अगीकार कर लेता है, तब उसमे सज्वलन के ही क्रोधादि चार कषाय होते है।

प्रशस्त अध्यवसायस्थान ही क्यो ?—विभगज्ञान से अवधिज्ञान की प्राप्ति अप्रशस्त अध्यवसाय वाले को नही होती, इसलिए अवधिज्ञानी मे प्रशस्त अध्यवसायस्थान ही होते है।

उक्त अवधिज्ञानी को केवलज्ञान-प्राप्ति का क्रम—

२६. से ण पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं वट्टमाणे अणतेहिं नेरइयभवग्गहणेहितो अप्पाण विसजोएइ, अणतेहिं तिरिक्खजोणिय जाव विसजोएइ, अणतेहिं मणुस्सभवग्गहणेहितो अप्पाण विसजोएइ, अणतेहिं देवभवग्गहणेहितो अप्पाण विसजोएइ, जाओ वि य से इमाओ नेरइय-तिरिक्ख-जोणिय-मणुस्स-देवगतिनामाओ उत्तरपयडीओ तासि च ण उवग्गहिए अणताणुबधी कोह-माण-माया-लोभे खवेइ, अणताणुबधी कोह-माण-माया-लोभे खवित्ता अपच्चक्खाणकसाए कोह-माण-माया-लोभे खवेइ, अपच्चक्खाणकसाए कोह-माण-माया-लोभे खवित्ता पच्चक्खाणावरणे कोह-माण-माया-लोभे खवेइ, पच्चक्खाणावरणे कोह-माण-माया-लोभे खवित्ता सजलणे कोह-माण-माया-लोभे खवेइ। सजलणे कोह-माण-माया-लोभे खवित्ता पचविह नाणावरणिज्ज नवविह दरिसणावरणिज्ज पचविह-मतराइय तालमत्थकड च ण मोहणिज्ज कट्टु कम्मरयविकरणकर अपुव्वकरण अणुपविट्ठस्स अणते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरनाण-दसणे समुप्पज्जति।

[२६] वह अवधिज्ञानी बढते हुए प्रशस्त अध्यवसायो से, अनन्त नैरयिकभव-ग्रहणो से अपनी आत्मा को विसयुक्त (-विमुक्त) कर लेता है, अनन्त तिर्यञ्चयोनिक भवो से अपनी आत्मा को विसयुक्त कर लेता है, अनन्त मनुष्यभव-ग्रहणो से अपनी आत्मा को विसयुक्त कर लेता है और अनन्त देव-भवो से अपनी आत्मा को वियुक्त कर लेता है। जो ये नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति और

देवगति नामक चार उत्तर (कर्म-) प्रकृतियाँ है, उन प्रकृतियो के आधारभूत (उपगृहीत) अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ का क्षय करता है। अनन्तानुवन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ का क्षय करके अप्रत्याख्यानकषाय—क्रोध-मान-माया-लोभ का क्षय करता है, अप्रत्याख्यान क्रोधादि कपाय का क्षय करके प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ का क्षय करता है, प्रत्याख्यानावरण क्रोधादिकषाय का क्षय करके सज्वलन के क्रोध, मान, माया और लोभ का क्षय करता है। सज्वलन के क्रोध-मान-माया-लोभ का क्षय करके पचविध (पाच प्रकार के) ज्ञानावरणीयकर्म, नवविध (नौ प्रकार के) दर्शनावरणीयकर्म, पचविध अन्तरायकर्म को तथा मोहनीयकर्म को कटे हुए ताडवृक्ष के समान बना कर, कर्मरज को बिखेरने वाले अपूर्वकरण मे प्रविष्ट उस जीव के अनन्त, अनुत्तर, व्याघातरहित, आवरणरहित, कृत्स्न (सम्पूर्ण), प्रतिपूर्ण एव श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवलदर्शन (एक साथ) उत्पन्न होता है।

विवेचन—चारित्रात्मा अवधिज्ञानी के प्रशस्त अध्यवसायो का प्रभाव—प्रस्तुत मे केवलज्ञान-प्राप्ति का क्रम बताया गया है कि सर्वप्रथम प्रशस्त अध्यवसायो के प्रभाव से नरकादि चारो गतियो के भविष्यकालभावी अनन्त भवो से अपनी आत्मा को वियुक्त कर लेता है, फिर गतिनामकर्म की चारो नरकादि गतिरूप उत्तरकर्मप्रकृतियो के कारणभूत अनन्तानुवन्धी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी एव सज्वलन कषाय का क्षय कर लेता है। कषायो का सर्वथा क्षय होते ही ज्ञानावरणीयादि चार घातिक कर्मो का क्षय कर लेता है। इन चारो के क्षय होते ही अनन्त, अव्याघात परिपूर्ण, निरावरण केवलज्ञान-केवलदर्शन प्राप्त हो जाता है।[1]

मोहनीयकर्म का नाश, शेष घाति कर्मनाश का कारण—प्रस्तुत सूत्र मे ज्ञानावरणीयादि तीनो कर्मो का उत्तरप्रकृतियो सहित क्षय पहले बताया है, किन्तु मोहनीयकर्म के क्षय हुए बिना इन तीनो कर्मो का क्षय नही होता। इसी तथ्य को प्रकट करने के लिए यहाँ कहा गया है—**'तालमत्थकड च ण मोहणिज्ज कटट्टु'**, इसका भावार्थ यह है कि जिस प्रकार ताडवृक्ष का मस्तक सूचि भेद (सूई से या सूई की तरह छिन्न-भिन्न) करने से वह सारा का सारा वृक्ष क्षीण हो जाता है, उसी प्रकार मोहनीयकर्म का क्षय होने पर शेप घातिकर्मो का भी क्षय हो जाता है। अर्थात्—मोहनीयकर्म की शेष प्रकृतियो का क्षय करके साधक ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय इन तीनो कर्मो की सभी प्रकृतियो का क्षय कर देता है।[2]

केवलज्ञान के विशेषणो का भावार्थ—केवलज्ञान विषय की अनन्तता के कारण **अनन्त है**। केवलज्ञान से बढकर दूसरा कोई ज्ञान नही है, इसलिए वह अनुत्तर (सर्वोत्तम) ज्ञान है। वह दीवार, भीत आदि के व्यवधान के कारण प्रतिहत (स्खलित) नही होता—किसी भी प्रकार की कोई भी रुकावट उसे रोक नही सकती, इसलिए वह **'निर्व्याघात'** है। सम्पूर्ण आवरणो के क्षय होने पर उत्पन्न

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त ('मूल' टिप्पण) भा १ पृ ४१६ (ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४३५

२ यथा हि तालमस्तकविनाशक्रियाऽवश्यम्भावि-तालविनाशा एव मोहनीयकर्मविनाशक्रियाऽप्यवश्यम्भाविशेषकर्म विनाशेति। आह च—

मस्तकसूचिविनाशे, तालस्य यथा ध्रुवो भवति नाश।
तद्वत् कर्मविनाशोऽपि मोहनीयक्षये नित्यम् ॥१॥

—भगवती अ वृत्ति, पत्र ४३६

होने से वह 'निरावरण' है। सकल पदार्थो का ग्राहक होने से वह 'कृत्स्न' होता है। अपने सम्पूर्ण अंशो से युक्त उत्पन्न होने से वह 'प्रतिपूर्ण' होता है। केवलदर्शन के लिए भी यही विशेषण समझ लेने चाहिए।[1]

असोच्चा केवली द्वारा उपदेश-प्रव्रज्या सिद्धि आदि के सम्बन्ध मे—

२७ से ण भंते ! केवलिपण्णत्तं धम्मं आघवेज्जा वा पण्णवेज्जा वा परूवेज्जा वा ?

नो इणट्ठे समट्ठे, णऽन्नत्थ एगणाएण वा एगवागरणेण वा।

[२७ प्र] भगवन् ! वे असोच्चा केवली, केवलिप्ररूपित धर्म कहते है, बतलाते है अथवा प्ररूपणा करते है ?

[२७ उ] गौतम ! यह अर्थ (बात) समर्थ (शक्य) नही है। वे (केवल) एक ज्ञात (उदाहरण) के अथवा एक (व्याकरण) प्रश्न के उत्तर के सिवाय अन्य (धर्म का) उपदेश नही करते।

२८. से ण भंते ! पव्वावेज्ज वा मुंडावेज्ज वा ?

णो इणट्ठे समट्ठे, उवदेसं पुण करेज्जा।

[२८ प्र] भगवन् ! वे असोच्चा केवली (किसी को) प्रव्रजित करते है या मुण्डित करते है ?

[२८ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही। किन्तु उपदेश करते (कहते) है (कि तुम अमुक के पास प्रव्रज्या ग्रहण करो।)

२९. से ण भंते ! सिज्झति जाव अंतं करेति ?

हंता, सिज्झति जाव अंतं करेति।

[२९ प्र] भगवन् ! (क्या असोच्चा केवली) सिद्ध होते है यावत् समस्त दुःखो का अन्त करते है ?

[२९ उ] हाँ गौतम ! वे सिद्ध होते है, यावत् सर्व दुःखो का अन्त करते है।

३० से ण भंते ! किं उड्ढं होज्जा, अहो होज्जा, तिरियं होज्जा ?

गोयमा ! उड्ढं वा होज्जा, अहो वा होज्जा, तिरियं वा होज्जा। उड्ढं होज्जमाणे सद्दावइ-वियडावइ-गंधावइ-मालवंतपरियाएसु वट्टवेयड्ढपव्वएसु होज्जा, साहरणं पडुच्च सोमणसवणे वा पंडगवणे वा होज्जा। अहो होज्जमाणे गड्डाए वा दरीए वा होज्जा, साहरणं पडुच्च पायाले वा भवणे वा होज्जा। तिरियं होज्जमाणे पण्णरससु कम्मभूमीसु होज्जा, साहरणं पडुच्च अड्ढाइज्जदीव-समुद्दत-देक्कदेसभाए होज्जा।

[३० प्र] भगवन् ! वे असोच्चा केवली ऊर्ध्वलोक मे होते है, अधोलोक मे होते है या तिर्यग्लोक मे होते है ?

---

१ भगवतीसूत्र भा ४ (पं घेवरचन्दजी), पृ १६०४

[३० उ] गौतम ! वे ऊर्ध्वलोक मे भी होते है, अधोलोक मे भी होते है और तिर्यग्लोक मे भी होते है। यदि ऊर्ध्वलोक मे होते है तो शब्दापाती, विकटापाती, गन्धापाती, और माल्यवन्त नामक वृत्त (वैताढ्य) पर्वतो मे होते है तथा सहरण की अपेक्षा सौमनसवन मे अथवा पाण्डुकवन मे होते है। यदि अधोलोक मे होते है तो गर्त्ता (अधोलोक ग्रामादि) मे अथवा गुफा मे होते है तथा सहरण की अपेक्षा पातालकलशो मे अथवा भवनवासी देवो के भवनो मे होते है। यदि तिर्यग्लोक मे होते है तो पन्द्रह कर्मभूमि मे होते है तथा सहरण की अपेक्षा अढाई द्वीप और समुद्रो के एक भाग मे होते हैं।

३१. ते ण भते ! एगसमएण केवतिया होज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेण एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेण दस। से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ 'असोच्चा ण केवलिस्स वा जाव अत्थेगतिए केवलिपण्णत्त धम्म लभेज्जा सवणयाए, अत्थेगतिए असोच्चा ण केवलि जाव नो लभेज्जा सवणयाए जाव अत्थेगतिए केवलनाणं उप्पाडेज्जा, अत्थेगतिए केवलनाण नो उप्पाडेज्जा।

[३१ प्र] भगवन् ! वे असोच्चा केवली एक समय मे कितने होते है ?

[३१ उ] गौतम ! वे जघन्य एक, दो अथवा तीन और उत्कृष्ट दस होते है।

[उपसहार—] इसलिए हे गौतम ! मै ऐसा कहता हूँ कि केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से धर्मश्रवण किये बिना ही किसी जीव को केवलिप्ररूपित धर्म-श्रवण प्राप्त होता है और किसी को नही होता, यावत् कोई जीव केवलज्ञान उत्पन्न कर लेता है और कोई जीव केवलज्ञान उत्पन्न नही कर पाता।

विवेचन—असोच्चा केवली का आचार-विचार, उपलब्धि एव स्थान—२७ से ३१ सूत्र तक प्रस्तुत पाँच सूत्रो मे असोच्चा केवली से सम्बन्धित निम्नोक्त प्रश्नो के उत्तर है—(१) वे केवलि-प्ररूपित धर्म कहते, बतलाते या प्रेरणा करते है ?, (२) वे किसी को प्रव्रजित या मुण्डित करते है ?, (३) वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होते है यावत् सव दु खो का अन्त करते है ?, (४) वे ऊर्ध्व, अधो या तिर्यग्लोक मे कहाँ-कहाँ होते है ?, (५) वे एक समय मे कितने होते है ?[१]

आघवेज्ज—शिष्यो को शास्त्र का अर्थ ग्रहण कराते है, अथवा अर्थ-प्रतिपादन करके सत्कार प्राप्त कराते है।

पन्नवेज्ज—भेद वताकर या भिन्न-भिन्न करके समझाते है।

परूवेज्ज—उपपत्तिकथनपूर्वक प्ररूपण करते है।

पव्वावेज्ज मुंडावेज्ज—रजोहरण आदि द्रव्यवेष देकर प्रव्रजित (दीक्षित) करते है, मस्तक का लोच करके मुण्डित करते है।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा १, पृ ४१६-४१७

उवएस पुण करेज्ज—किसी दीक्षार्थी के उपस्थित होने पर 'अमुक के पास दीक्षा लो' केवल इतना सा उपदेश करते है।[1]

सद्दावइ इत्यादि पदो का आशय—शब्दापाती, विकटापाती गन्धापाती और माल्यवन्त, ये स्थान जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के अनुसार क्षेत्रसमास के अभिप्राय से क्रमश हैमवत, ऐरण्यवत, हरिवर्ष और रम्यक्वर्ष क्षेत्र मे है।

सोमणसवणे पडगवणे—मेरुपर्वत पर सौमनसवन तीसरा और पाण्डुकवन चौथा वन है।[2]

सोच्चा से सम्बन्धित प्रश्नोत्तर—

३२ सोच्चा ण भते ! केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलिपण्णत्त धम्म लभेज्जा सवणयाए ?

गोयमा ! सोच्चा ण केवलिस्स वा जाव अत्थेगतिए केवलिपण्णत्त धम्म०। एव जा चेव असोच्चाए वत्तव्वया सा चेव सोच्चाए वि भाणियव्वा, नवर अभिलावो सोच्चेति। सेस त चेव निरवसेस जाव 'जस्स ण मणपज्जवनाणावरणिज्जाण कम्माण खओवसमे कडे भवइ, जस्स ण केवल-नाणावरणिज्जाण कम्माण खए कडे भवइ से ण सोच्चा केवलिस्स वा जाव उवासियाए वा केवलि-पण्णत्त धम्म लभिज्ज सवणयाए, केवल बोहि बुज्झेज्जा जाव केवलनाण उप्पाडेज्जा (सु १३ [२])।

[३२ प्र] भगवन् ! केवली यावत् केवली-पाक्षिक की उपासिका से (धर्मप्रतिपादक वचन) श्रवण कर क्या कोई जीव केवलिप्ररूपित धर्म-बोध (श्रवण) प्राप्त करता है ?

[३२ उ] गौतम ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से धर्म-वचन सुनकर कोई जीव केवलिप्ररूपित धर्म का बोध प्राप्त करता है और कोई जीव प्राप्त नही करता। इस विषय मे जिस प्रकार असोच्चा की वक्तव्यता कही, उसी प्रकार 'सोच्चा' की वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ सर्वत्र 'सोच्चा' ऐसा पाठ कहना चाहिए। शेष सभी पूर्वोक्त वक्तव्यता कहनी चाहिए; यावत् जिसने मन पर्यवज्ञानावरणीय कर्मो का क्षयोपशम किया है तथा जिसने केवलज्ञानावरणीय कर्मो का क्षय किया है, वह केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से धर्मवचन सुनकर केवलि-प्ररूपित धर्म-बोध (श्रवण) प्राप्त करता है, शुद्ध बोधि (सम्यग्दर्शन) का अनुभव करता है, यावत् केवलज्ञान प्राप्त करता है।

विवेचन—'असोच्चा' का अतिदेश—जैसे केवली आदि के वचन बिना सुने ही जिन्हे सम्यग्-बोध से लेकर यावत् केवलज्ञान तक प्राप्त होता है, यह कहा गया है, उसी प्रकार केवली आदि से

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४३६

आघवेज्ज त्ति—आग्राहयेच्छिष्यान्, अर्घापयेद् वा—प्रतिपादनत पूजा प्रापयेत्।

पन्नवेज्ज त्ति—प्रज्ञापयेद्—भेदभणनतो बोधयेद् वा।

परूवेज्ज त्ति—उपपत्तिकथनत ।

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४३६

धर्मश्रवण करने वाले जीव को भी सम्यग्बोध से लेकर यावत् केवलज्ञान (तक) उत्पन्न होता है। 'असोच्चा' को लेकर जो पाठ था उसी पाठ का 'सोच्चा' के सभी प्रकरण मे अतिदेश किया गया है।[1]

केवली आदि से सुन कर अवधिज्ञान की उपलब्धि—

३३. तस्स ण अट्ठमअट्ठमेण अनिक्खित्तेण तवोकम्मेण अप्पाण भावेमाणस्स पगइभद्दयाए तहेव जाव गवेसण करेमाणस्स ओहिणाणे समुप्पज्जइ। से ण तेण ओहिनाणेण समुप्पन्नेण जहन्नेण अगुलस्स असखेज्जइभाग, उक्कोसेण असखेज्जाइ अलोए लोयप्पमाणमेत्ताइ खडाइ जाणइ पासइ।

[३३] (केवली आदि से धर्म-वचन सुन कर सम्यग्दर्शनादि प्राप्त जीव को) निरन्तर तेले-तेले (अट्ठम-अट्ठम) तप कर्म से अपनी आत्मा को भावित करते हुए प्रकृतिभद्रता आदि (पूर्वोक्त) गुणो से यावत् ईहा, अपोह, मार्गण एव गवेषण करते हुए अवधिज्ञान समुत्पन्न होता है। वह उस उत्पन्न अवधिज्ञान के प्रभाव से जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट अलोक मे भी लोकप्रमाण असख्य खण्डो को जानता और देखता है।

विवेचन—केवली आदि से सुनकर सम्यग्दर्शनादिप्राप्त जीव को अवधिज्ञान-प्राप्ति की प्रक्रिया- बिना सुने अवधिज्ञान प्राप्त करने वाले जीव को पहले विभगज्ञान प्राप्त होता है, फिर सम्यक्त्वादि प्राप्त होने पर वही विभगज्ञान अवधिज्ञान मे परिणत हो जाता है, जब कि सुन कर अवधिज्ञान प्राप्त करने वाला जीव बेले के बदले निरन्तर तेले की तपस्या करता है। प्रकृतिभद्रता आदि गुण तथा उससे ईहादि के कारण अवधिज्ञान प्राप्त हो जाता है। जिसके प्रभाव से उत्कृष्टत अलोक मे भी लोक-प्रमाण असख्य खण्डो को जानता-देखता है।[2] फिर वह सम्यक्त्व, चारित्र, साधुवेष आदि से केवल-ज्ञान भी प्राप्त कर लेता है।

तथारूप अवधिज्ञानी मे लेश्या, योग, देह आदि—

३४ से ण भते कतिसु लेस्सासु होज्जा ?

गोयमा ! छसु लेस्सासु होज्जा, त जहा—कण्हलेसाए जाव सुक्कलेसाए।

[३४ प्र] भगवन् ! वह (तथारूप अवधिज्ञानी जीव), कितनी लेश्याओ मे होता है ?

[३४ उ] गौतम ! वह छहो लेश्याओ मे होता है। यथा—कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या।

३५ से ण भते ! कतिसु णाणेसु होज्जा ?

गोयमा ! तिसु वा चउसु वा होज्जा। तिसु होज्जमाणे आभिणिबोहियनाण-सुयनाण-ओहिनाणेसु होज्जा, चउसु होज्जमाणे आभिणिबोहियनाण-सुयनाण-ओहिनाण-मणपज्जवनाणेसु होज्जा।

[३५ प्र] भते ! वह (तथारूप अवधिज्ञानी जीव) कितने ज्ञानो मे होता है ?

[३५ उ] गौतम ! वह तीन या चार ज्ञानो मे होता है। यदि तीन ज्ञानो मे होता है, तो

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र, ४३८

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४३८

आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान मे होता है। यदि चार ज्ञान मे होता है तो आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन पर्यवज्ञान मे होता है।

३६. से ण भते ! किं सजोगी होज्जा, अजोगी होज्जा ?

एव जोगो उवओगो सघयण सठाण उच्चत्त आउय च एयाणि सव्वाणि जहा असोच्चाए (सु १७-२२) तहेव भाणियव्वाणि।

[३६ प्र] भगवन् ! वह (तथारूप अवधिज्ञानी) सयोगी होता है अथवा अयोगी होता है ? (आदि प्रश्न यावत् आयुष्य तक)

[३६ उ] गौतम ! जैसे 'असोच्चा' के योग, उपयोग, सहनन, सस्थान, ऊँचाई और आयुष्य के विषय मे कहा, उसी प्रकार यहाँ (सोच्चा के) भी योगादि के विषय मे कहना चाहिए।

३७. [१] से ण भते किं सवेदए० पुच्छा।

गोयमा ! सवेदए वा होज्जा, अवेदए वा होज्जा।

[३७-१ प्र] भगवन् ! वह अवधिज्ञानी सवेदी होता है अथवा अवेदी ?
[३७-१ उ] गौतम ! वह सवेदी होता है अथवा अवेदी भी होता है।

[२] जइ अवेदए होज्जा किं उवसतवेयए होज्जा, खीणवेयए होज्जा ?

गोयमा ! नो उवसतवेदए होज्जा, खीणवेदए होज्जा।

[३७-२ प्र] भगवन् ! यदि वह अवेदी होता है तो क्या उपशान्तवेदी होता है अथवा क्षीणवेदी होता है ?

[३७-२ उ] गौतम ! वह उपशान्तवेदी नही होता, क्षीणवेदी होता है।

[३] जइ सवेदए होज्जा किं इत्थीवेदए होज्जा० पुच्छा।

गोयमा इत्थीवेदए वा होज्जा, पुरिसवेदए वा होज्जा, पुरिसनपु सगवेदए वा होज्जा।

[३७-३ प्र] भगवन् ! यदि वह सवेदी होता है तो क्या स्त्रीवेदी होता है पुरुषवेदी होता है, नपुसकवेदी होता है, अथवा पुरुष-नपु सकवेदी होता है ?

[३७-३ उ] गौतम ! वह स्त्रीवेदी भी होता है या पुरुषवेदी होता है अथवा पुरुष-नपुसकवेदी होता है।

३८ [१] से ण भते ! सकसाई होज्जा ? अकसाई होज्जा ?
गोयमा ! सकसाई वा होज्जा, अकसाई वा होज्जा।

[३८-१ प्र] भगवन् ! वह अवधिज्ञानी सकषायी होता है अथवा अकषायी होता है ?
[३८-१ उ] गौतम ! वह सकषायी होता है अथवा अकषायी भी होता है।

[२] जइ अकसाई होज्जा किं उवसतकसाई होज्जा, खीणकसाई होज्जा ?
गोयमा ! नो उवसतकसाई होज्जा, खीणकसाई होज्जा।

[३८-२ प्र] भगवन् ! यदि वह अकषायी होता है तो क्या उपशान्तकषायी होता है या क्षीणकषायी ?

[३८-२ उ] गौतम ! वह उपशान्तकषायी नही होता, किन्तु क्षीणकषायी होता है ।

[३] जइ सकसाई होज्जा से ण भते ! कतिसु कसाएसु होज्जा ?

गोयमा ! चउसु वा, तिसु वा, दोसु वा, एक्कम्मि वा होज्जा । चउसु होज्जमाणे चउसु सजलणकोह-माण-माया-लोभेसु होज्जा, तिसु होज्जमाणे तिसु सजलणमाण-माया-लोभेसु होज्जा, दोसु होज्जमाणे दोसु सजलणमाया-लोभेसु होज्जा, एगम्मि होज्जमाणे एगम्मि सजलणे लोभे होज्जा ।

[३८-३ प्र] भगवन् ! यदि वह सकषायी होता है तो कितने कषायो मे होता है ?

[३८-३ उ] गौतम ! वह चार कषायो मे, तीन कषायो मे, दो कषायो मे अथवा एक कषाय मे होता है । यदि वह चार कषायो मे होता है, तो सज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ मे होता है । यदि तीन कषायो मे होता है तो सज्वलन मान, माया और लोभ मे होता है । यदि वह दो कषायो मे होता है तो सज्वलन माया और लोभ मे होना है और यदि वह एक कषाय मे होता है तो एक सज्वलन लोभ मे होता है ।

३९. तस्स ण भते ! केवतिया अज्झवसाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! असखेज्जा, एव जहा असोच्चाए (सु. २५-२६) तहेव जाव केवलवरनाण-दसणे समुप्पज्जइ (सु. २६) ।

[३९ प्र] भते ! उस (तथारूप) अवधिज्ञानी के कितने अध्यवसाय बताए गए है ?

[३९ उ] गौतम ! उसके असख्यात अध्यवसाय होते है । जिस प्रकार (सू २५, २६ मे) असोच्चा केवली के अध्यवसाय के विषय मे कहा गया, उसी प्रकार यहाँ भी 'सोच्चा केवली' के लिए यावत् उसे केवलज्ञान—केवलदर्शन उत्पन्न होता है, यहाँ तक कहना चाहिए ।

सोच्चा केवली द्वारा उपदेश, प्रव्रज्या, सिद्धि आदि के सम्बन्ध मे—

४०. से ण भते ! केवलिपण्णत्त धम्म आघविज्जा वा, परूविज्जा वा ?

हंता, आघविज्ज वा, पण्णवेज्ज वा, परूवेज्ज वा ।

[४० प्र] भते ! वह 'सोच्चा केवली' केवलि-प्ररूपित धर्म कहते है, बतलाते है या प्ररूपित करते है ?

[४० उ] हाँ गौतम ! वे केवलि-प्ररूपित धर्म कहते हैं, बतलाते हैं और उसकी प्ररूपणा भी कहते है ।

४१ [१] से ण भते ! पव्वावेज्ज वा मु डावेज्ज वा ?

हता, गोयमा ! पव्वावेज्ज वा, मु डावेज्ज वा ।

[४१-१ प्र] भगवन् ! वे सोच्चाकेवली किसी को प्रव्रजित करते हैं या मुण्डित करते है ?

[४१-१ उ] हाँ, गौतम ! वे प्रव्रजित भी करते है, मुण्डित भी करते है ।

[२] तस्स ण भते ! सिस्सा वि पव्वावेज्ज वा, मु डावेज्ज वा ?

हता, पव्वावेज्ज वा मु डावेज्ज वा ।

[४२-२ प्र] भगवन् ! उन सोच्चाकेवली के शिप्य किमी को प्रव्रजित करते हैं या मुण्डित करते है ?

[४१-२ उ] हाँ गौतम ! उनके शिष्य भी प्रव्रजित करते है और मुण्डित करते हैं ।

[३] तस्स ण भते ! पसिस्सा वि पव्वावेज्ज वा मु डावेज्ज वा ?

हता, पव्वावेज्ज वा मु डावेज्ज वा ।

[४१-३ प्र] भगवन् ! क्या उन श्रुत्वाकेवली के प्रशिष्य भी किसी को प्रव्रजित और मुण्डित करते है ?

[४१-३ उ] हाँ गौतम ! उनके प्रशिष्य भी प्रव्रजित करते है और मुण्डित करते हैं ।

४२ [१] से ण भते ! सिज्झति बुज्झति जाव अत करेइ ?

हता, सिज्झइ जाव अत करेइ ।

[४२-१ प्र] भगवन् ! वे श्रुत्वाकेवली सिद्ध होते है, बुद्ध होते है, यावत् सर्वदु खो का अन्त करते है ?

[४२-१ उ] हाँ गौतम ! वे सिद्ध होते है, यावत् सर्वदु खो का अन्त करते है ।

[२] तस्स ण भते ! सिस्सा वि सिज्झति जाव अत करेंति ?

हता, सिज्झति जाव अत करेंति ।

[४२-२ प्र] भते ! क्या उन सोच्चाकेवली के शिष्य भी सिद्ध होते है यावत् सर्वदु खो का अन्त करते है ?

[४२-२ उ] हाँ, गौतम ! वे भी सिद्ध, बुद्ध होते है, यावत् सर्वदु खो का अन्त करते है ।

[३] तस्स ण भते ! पसिस्सा वि सिज्झति जाव अत करेंति ? एव चेव जाव अत करेंति ।

[४२-३ प्र] भगवन् ! क्या उनके प्रशिष्य भी सिद्ध होते है, यावत् सर्वदु खो का अन्त करते है ?

[४२-३ उ] हाँ, गौतम ! वे भी सिद्ध-बुद्ध हो जाते है, यावत् सर्व दु खो का अन्त करते है ।

४३ से ण भते ! किं उड्ढ होज्जा ? जहेव असोच्चाए (सु ३०) जाव तदेक्कदेसभाए होज्जा ।

[४३ प्र] भते ! वे सोच्चाकेवली ऊर्ध्वलोक मे होते है, अधोलोक मे होते है और तिर्यग्लोक मे भी होते है ? इत्यादि प्रश्न ।

[४३ उ] हे गौतम ! जैसे (सू ३० मे) असोच्चाकेवली के विषय मे कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए। यावत् वे अढाई द्वीप-समुद्र के एक भाग मे होते है, यहाँ तक कहना चाहिए।

४४ ते ण भते ! एगसमएण केवतिया होज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण अट्ठसय—१०८।

से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ—सोच्चा ण केवलिस्स वा जाव केवलिउवासियाए वा जाव अत्थेगतिए केवलनाण उप्पाडेज्जा, अत्थेगतिए केवलनाण नो उप्पाडेज्जा।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति जाव विहरइ।

॥ नवमसयस्स इगतीसइमो उद्देसो ॥

[४४ प्र] भगवन् ! वे सोच्चाकेवली एक समय मे कितने होते है ?

[४४ उ] गौतम ! वे एक समय मे जघन्य एक, दो या तीन होते है और उत्कृष्ट एक सौ आठ होते है।

[उपसहार—] इसीलिए हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से धर्मप्रतिपादक वचन सुन कर यावत् कोई जीव केवलज्ञान-केवलदर्शन प्राप्त करता है और कोई प्राप्त नही करता।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, ऐसा कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करते है।

विवेचन—सोच्चा अवधिज्ञानी के लेश्या आदि का निरूपण—सू ३४ से ४४ तक मे तथारूप अवधिज्ञानी के लेश्या, ज्ञान, योग, उपयोग, सघयण, सठाण, उच्चत्व, आयुष्य, वेद, कषाय, अध्यवसान, उपदेश, प्रव्रज्यादान, सिद्धि, स्थान एव एक समय मे कितनी सख्या आदि के सम्बन्ध मे असोच्चा-केवली के क्रम से ही प्रतिपादन किया गया है।[1]

असोच्चा से सोच्चा अवधिज्ञानी की कई बातो मे अन्तर—(१) लेश्या—असोच्चा अवधिज्ञानी मे तीन ही विशुद्ध लेश्याएँ बताई गई है, जबकि सोच्चा अवधिज्ञानी मे छह लेश्याएँ बताई गई है। उसका रहस्य यह है कि यद्यपि तीन प्रशस्त भावलेश्या होने पर ही अवधिज्ञान प्राप्त होता है, तथापि द्रव्यलेश्या की अपेक्षा से वह सम्यक्त्व श्रुत की तरह छह लेश्याओ मे होता है, क्योकि सोच्चाकेवली का अधिकार होने से मनुष्य ही उसका अधिकारी है। इसलिए उक्त लेश्या वाले द्रव्यो तथा उनकी परिणति की अपेक्षा से छह लेश्याओ का कथन किया गया है। (२) **ज्ञान**—तेले-तेले की विकट तपस्या करने वाले साधु को अवधिज्ञान उत्पन्न होता है और अवधिज्ञानी मे प्रारम्भिक दो ज्ञान (मति-श्रुतज्ञान) अवश्य होने से उसे तीन ज्ञानो मे बतलाया गया है। जो मन पर्यायज्ञानी होता है, उसके अवधिज्ञान उत्पन्न होने पर अवधिज्ञानी चार ज्ञानो से युक्त हो जाता है। (३) **वेद**—यदि अक्षीणवेदी को अवधिज्ञान की उत्पत्ति हो तो वह सवेदक होता है, उस समय या तो वह स्त्रीवेदी

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा १ (मूलपाठ-टिप्पण), पृ ४१८-४२०

होता है या पुरुषवेदी अथवा पुरुषनपुंसकवेदी होता है और अवेदी को अवधिज्ञान होता है तो वह क्षीणवेदी को होता है, उपशान्तवेदी को नहीं होता, क्योंकि आगे इसी अवधिज्ञानी के केवलज्ञान की उत्पत्ति का कथन विवक्षित है। (४) कषाय—कषायक्षय न होने की स्थिति में अवधिज्ञान प्राप्त होता है तो वह जीव सकषायी होता है और कषायक्षय होने पर अवधिज्ञान होता है तो अकषायी होता है। यदि अक्षीणकषायी अवधिज्ञान प्राप्त करता है तो चारित्रयुक्त होने से चार संज्वलन कषायों में होता है, जब क्षपकश्रेणिवर्ती होने से संज्वलन क्रोध क्षीण हो जाता है, तब अवधिज्ञान प्राप्त होता है, तो संज्वलनमानादि तीन कषाय युक्त होता है, जब क्षपकश्रेणि की दशा में संज्वलन क्रोध-मान क्षीण हो जाता है तो संज्वलन माया-लोभ से युक्त होता है और जब तीनों क्षीण हो जाते हैं तो वह अवधिज्ञानी एकमात्र संज्वलन लोभ से युक्त होता है।[1]

॥ नवम शतक : इकतीसवाँ उद्देशक समाप्त ॥

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४३८

त्तीसइमो उद्दे ो : 'गंगे '

बत्तीसवाँ उद्देशक : 'गांगेय'

उपोद्घात—

१. तेण कालेण तेण समएण वाणियगामे नगरे होत्था। वण्णओ। दूतिपलासे चेइए। सामी समोसढे। परिसा निग्गया। धम्मो कहिओ। परिसा पडिगया।

[१] उस काल, उस समय मे वाणिज्यग्राम नामक नगर था। (उसका वर्णन जान लेना चाहिए)। वहाँ द्युतिपलाश नाम का चैत्य (उद्यान) था। (एक वार) वहाँ भगवान् महावीरस्वामी (पधारे), (उन) का समवसरण लगा। परिषद् वन्दन के लिये निकली। (भगवान् ने) धर्मोपदेश दिया। परिषद् वापिस लौट गई।

२. तेणं कालेण तेणं समएणं पासावच्चिज्जे गगेए नाम अणगारे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामते ठिच्चा समण भगव महावीरं एव वयासी—

[२] उस काल उस समय मे पाश्र्वापत्य (पुरुषादानीय भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यानुशिष्य) गागेय नामक अनगार थे। जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ वे आए और श्रमण भगवान् महावीर के न अतिनिकट और न अतिदूर खडे रह कर उन्होने श्रमण भगवान् महावीर से इस प्रकार पूछा—

चौवीस दण्डकों में सान्तर-निरन्तर-उपपात-उद् ्न-प्ररूपणा—

३. सतर भते ! नेरइया उववज्जति, निरंतरं नेरइया उववज्जति ?

गगेया ! सतरं पि नेरइया उववज्जति, निरतर पि नेरइया उववज्जति।

[३ प्र] भगवन् ! नैरयिक सान्तर (सामयिक व्यवधान सहित) उत्पन्न होते है या निरन्तर (लगातार—बीच मे समय के व्यवधानबिना) उत्पन्न होते है ?

[३ उ] हे गागेय ! नैरयिक सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी।

४ [१] सतर भते ! असुरकुमारा उववज्जति, निरतर असुरकुमारा उववज्जति ?

गगेया ! संतर पि असुरकुमारा उववज्जति, निरंतरं पि असुरकुमारा उववज्जति।

[४-१ प्र] भगवन् ! असुरकुमार सान्तर उत्पन्न होते है या निरन्तर ?

[४-१ उ] गागेय ! वे सान्तर भी उत्पन्न होते है और निरन्तर भी।

[२] एव जाव थणियकुमारा।

[४-२] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार तक जानना चाहिए।

५. [१] सतर भते ! पुढविकाइया उववज्जति, निरतर पुढविकाइया उववज्जति ?
गगेया ! नो सतर पुढविकाइया उववजति, निरतर पुढविकाइया उववज्जति ।

[५-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव सान्तर उत्पन्न होते है या निरन्तर उत्पन्न होते है ?
[५-१ उ] गागेय ! पृथ्वीकायिक जीव सान्तर उत्पन्न नही होते, निरन्तर उत्पन्न होते है ।

[२] एव जाव वणस्सइकाइया ।

[५-२] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीवो तक जानना चाहिए ।

६. बेइदिया जाव वेमाणिया, एते जहा णेरइया ।

[६] द्वीन्द्रिय जीवो से लेकर यावत् वैमानिक देवो तक नैरयिको के समान (उत्पत्ति) जानना चाहिए ।

७. सतर भते ! नेरइया उव्वट्टति, निरतर नेरइया उव्वट्टति ?
गगेया ! सतर पि नेरइया उव्वट्टति, निरतर पि नेरइया उव्वट्टति ।

[७ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव सान्तर उद्वर्त्तित होते (मरते) है या निरन्तर ?
[७ उ] गागेय ! नैरयिक जीव सान्तर भी उद्वर्त्तित होते है और निरन्तर भी ।

८. एव जाव थणियकुमारा ।

[८] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारो तक (के उद्वर्त्तन के सम्बन्ध मे) जानना चाहिए ।

९. [१] सतर भते ! पुढविक्काइया उव्वट्टति० ? पुच्छा ।
गंगेया ! णो सतरं पुढविक्काइया उव्वट्टति, निरतर पुढविक्काइया उव्वट्टति ।

[९-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव सान्तर उद्वर्त्तित होते है या निरन्तर ?
[९-१ उ] गागेय ! पृथ्वीकायिक जीवो का उद्वर्त्तन (मरण) सान्तर नही होता, निरन्तर होता रहता है ।

[२] एव जाव वणस्सइकाइया नो संतर, निरतर उव्वट्टति ।

[९-२] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीवो तक (के उद्वर्त्तन के विषय मे) जानना चाहिए । ये सान्तर नही, निरन्तर उद्वर्त्तित होते है ।

१० सतर भते ! बेइदिया उव्वट्टति, निरतरं बेंदिया उव्वट्टंति ?
गंगेया ! सतर पि बेइदिया उव्वट्टति, निरतरं पि बेइदिया उव्वट्टति ।

[१० प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवो का उद्वर्त्तन (मरण) सान्तर होता है या निरन्तर ?
[१० उ] गागेय ! द्वीन्द्रिय जीवो का उद्वर्त्तन सान्तर भी होता है और निरन्तर भी ।

११. एवं जाव वाणमंतरा ।

[११] इसी प्रकार यावत् वाणव्यन्तर तक जानना चाहिए ।

१२ संतरं भंते ! जोइसिया चयंति० ? पुच्छा।

गंगेया ! संतरं पि जोइसिया चयंति, निरंतरं पि जोइसिया चयंति।

[१२ प्र] भगवन् ! ज्योतिष्क देवों का च्यवन (मरण) सान्तर होता है या निरन्तर ?

[१२ उ] गांगेय ! ज्योतिष्क देवों का च्यवन सान्तर भी होता है और निरन्तर भी।

१३. एवं जाव वेमाणिया वि।

[१३] इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक (च्यवन के सम्बन्ध में) जान लेना चाहिए।

विवेचन—उपपात-उद्वर्त्तन परिभाषा—जीवों के जन्म या उत्पत्ति को उपपात और मरण या च्यवन को उद्वर्त्तन कहते हैं। वैमानिक और ज्योतिष्क देवों का मरण 'च्यवन' कहलाता है। नारकादि का मरण उद्वर्त्तन।

सान्तर और निरन्तर—जीवों की उत्पत्ति आदि में समय आदि काल का अन्तर (व्यवधान) हो तो वह 'सान्तर' कहलाता है, जिसकी उत्पत्ति आदि में समय आदि काल का अन्तर (व्यवधान) नहीं होता, वह 'निरन्तर' कहलाता है।

एकेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति और मृत्यु—ये जीव प्रतिसमय उत्पन्न होते और प्रतिसमय मरते हैं। इसलिए उनकी उत्पत्ति और उद्वर्तन सान्तर नहीं, निरन्तर होता है। एकेन्द्रिय के सिवाय शेष सभी जीवों की उत्पत्ति और मृत्यु में अन्तर सम्भव है। इसलिए वे सान्तर एवं निरन्तर, दोनों प्रकार से उत्पन्न होते और मरते हैं।[1]

पासावच्चिज्जे—पार्श्वापत्य अर्थात्—पार्श्वनाथ भगवान् के सन्तानीय—शिष्यानुशिष्य।[2]

प्रवेशनक : चार प्रकार—

१४. कइविहे णं भंते ! पवेसणए पण्णत्ते ?

गंगेया ! चउव्विहे पवेसणए पण्णत्ते, तं जहा—नेरइयपवेसणए तिरिक्खजोणियपवेसणए मणुस्सपवेसणए देवपवेसणए।

[१४ प्र] भगवन् ! प्रवेशनक कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१४ उ] गांगेय ! प्रवेशनक चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—(१) नैरयिक-प्रवेशनक (२) तिर्यंग्योनिक-प्रवेशनक, (३) मनुष्य-प्रवेशनक और (४) देव-प्रवेशनक।

विवेचन—प्रवेशनक—एक गति से दूसरी गति में प्रवेश करना—जाना, प्रवेशनक है। अर्थात्—एक गति से मर कर दूसरी गति में उत्पन्न होना प्रवेशनक कहलाता है। गतियाँ चार होने से प्रवेशनक भी चार प्रकार का ही है।[3]

---

१ भगवतीसूत्र (अर्थ-विवेचन) भा. ४ (पं. घेवरचंदजी), पृ. १६१७

२ वही, पृ. १६१७

३ गत्यन्तरादुद्वृत्तस्य विजातीयगतौ जीवस्य प्रवेशनं उत्पाद इत्यर्थः। —भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ४४२

नैरयिक-प्रवेशनक निरूपण—

१५. नेरइयपवेसणए ण भते ! कइविहे पण्णत्ते ?

गगेया ! सत्तविहे पन्नत्ते, त जहा—रयणप्पभापुढविनेरइयपवेसणए जाव अहेसत्तमापुढविनेरइयपवेसणए ।

[१५ प्र] भगवन् ! नैरयिक-प्रवेशनक कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१५ उ] गागेय ! (नैरयिक-प्रवेशनक) सात प्रकार का कहा गया है, जैसे कि रत्नप्रभा-पृथ्वी नैरयिक-प्रवेशनक यावत् अध सप्तमपृथ्वी नैरयिक-प्रवेगनक ।

विवेचन—नैरयिक-प्रवेशनक सात ही क्यो ?—नरक सात है और नैरयिक जीव रत्नप्रभा आदि नरको मे से किसी भी एक नरक मे उत्पन्न होता है, अत उसके सात ही प्रवेशनक हो सकते हैं । यथा—रत्नप्रभा-प्रवेशनक, शर्कराप्रभा-प्रवेशनक आदि ।[1]

एक नैरयिक के प्रवेशनक-भग—

१६. एगे भते ! नेरइए नेरइयपवेसणए ण पविसमाणे किं रयणप्पभाए होज्जा, सक्करप्पभाए होज्जा, जाव अहेसत्तमाए होज्जा ?

गगेया ! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा ।७।

[१६ प्र] भते ! क्या एक नैरयिक जीव नैरयिकप्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ रत्नप्रभा-पृथ्वी मे होता है, या शर्कराप्रभा-पृथ्वी मे होता है अथवा यावत् अध सप्तम-पृथ्वी मे होता है ?

[१६ उ] गागेय ! वह नैरयिक रत्नप्रभा-पृथ्वी मे होता है, या यावत् अध सप्तम-पृथ्वी मे होता है ।

विवेचन—एक नैरयिक के असयोगी सात प्रवेशनक भग—यदि एक नारक रत्नप्रभा आदि नरको मे उत्पन्न (प्रविष्ट) हो तो उसके सात विकल्प होते है । जैसे कि—(१) या तो वह रत्नप्रभा-पृथ्वी मे उत्पन्न होता है, (२) या शर्कराप्रभा-पृथ्वी मे, (३ से ७) या इसी तरह आगे एक-एक पृथ्वी मे यावत् अथवा अध सप्तमपृथ्वी मे उत्पन्न होता है । इस प्रकार असयोगी सात भग होते है । उत्कृष्ट प्रवेशनक के सिवाय सभी नरकभूमियो मे असयोगी सात ही विकल्प होते है ।[2]

दो नैरयिको के प्रवेशनक भग—

१७ दो भते ! नेरइया नेरइयपवेसणए णं पविसमाणा किं रयणप्पभाए होज्जा जाव अहेसत्तमाए होज्जा ?

गगेया ! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा । ७ ।

अहवा एगे रयणप्पभाए हुज्जा, एगे सक्करप्पभाए होज्जा १ । अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए होज्जा २ । जाव एगे रयणप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा, ३-४-५-६ । अहवा एगे

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा १ (मूलपाठ-टिप्पण), पृ ४२२

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४४२ (ख) भगवती (प घेवरचदजी) भा ४, पृ १६१९

सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए होज्जा ७। जाव अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ८-९-१०-११। अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे पकप्पभाए होज्जा १२। एव जाव अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा, १३-१४-१५। एव एक्केक्का पुढवी छड्डेयव्वा जाव अहवा एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा, १६-१७-१८-१९-२०-२१।

[१७ प्र] भगवन्! दो नैरयिक जीव, नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभापृथ्वी मे उत्पन्न होते है, अथवा यावत् अध सप्तमपृथ्वी मे ?

[१७ उ] गागेय! वे दोनो (१) रत्नप्रभापृथ्वी मे उत्पन्न होते है, अथवा (२-७) यावत् अध सप्तमपृथ्वी मे उत्पन्न होते है।

अथवा (१) एक रत्नप्रभा पृथ्वी मे उत्पन्न होता है और एक शर्कराप्रभापृथ्वी मे। अथवा (२) एक रत्नप्रभा पृथ्वी मे उत्पन्न होता है, और एक वालुकाप्रभापृथ्वी मे (३-४-५-६)। अथवा यावत् एक रत्नप्रभापृथ्वी मे उत्पन्न होता है, और एक अध सप्तमपृथ्वी मे। (अर्थात्—एक रत्नप्रभापृथ्वी मे और एक पकप्रभापृथ्वी मे, एक रत्नप्रभापृथ्वी मे और एक धूमप्रभापृथ्वी मे, एक रत्नप्रभापृथ्वी मे और एक तम प्रभापृथ्वी मे, या एक रत्नप्रभा मे और एक तमस्तम प्रभापृथ्वी मे उत्पन्न होता है। इस प्रकार रत्नप्रभा के साथ छह विकल्प होते है।

(७) अथवा एक शर्कराप्रभा पृथ्वी मे उत्पन्न होता है और एक बालुकाप्रभा मे, अथवा (८-९-१०-११) यावत् एक शर्कराप्रभापृथ्वी मे उत्पन्न होता है और एक अध सप्तम पृथ्वी मे। (अर्थात्—एक शर्कराप्रभा मे और एक पकप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और एक धूमप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और एक तम प्रभा मे, अथवा एक शर्कराप्रभा मे और एक तमस्तम प्रभा मे उत्पन्न होता है। इस प्रकार शर्कराप्रभा के साथ पाच विकल्प हुए।)

(१२) अथवा एक बालुकाप्रभा मे और एक पकप्रभा मे उत्पन्न होता है, (१३-१४-१५) अथवा इसी प्रकार यावत् एक बालुकाप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे उत्पन्न होता है। (अर्थात्—अथवा एक बालुकाप्रभा मे और एक धूमप्रभा मे, या एक बालुकाप्रभा मे और एक तमस्तम प्रभा मे उत्पन्न होता है। इस प्रकार बालुकाप्रभा के साथ चार विकल्प हुए)।

(१६-१७-१८-१९-२०-२१) इसी प्रकार (पूर्व-पूर्व की) एक-एक पृथ्वी छोड देनी चाहिए, यावत् एक तम प्रभा मे और एक तमस्तम प्रभा मे उत्पन्न होता है। (अर्थात्—एक पकप्रभा मे और एक धूमप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक तम प्रभा मे या एक पकप्रभा मे और एक तमस्तम प्रभा मे, यो तीन विकल्प पकप्रभा के साथ तथा एक धूमप्रभा मे और एक तम प्रभा मे या एक धूमप्रभा मे और एक तमस्तम प्रभा मे, यो दो विकल्प धूमप्रभा के साथ तथा एक तम प्रभा मे और एक तमस्तम प्रभा मे उत्पन्न होता है, यो एक विकल्प तम प्रभा के साथ होता है)।

विवेचन—दो नैरयिको के प्रवेशनक-भग—दो नैरयिको के कुल प्रवेशनक-भग २८ होते है। जिनमे से एक-एक नरक मे दोनो नैरयिको के एक साथ उत्पन्न होने की अपेक्षा से ७ भग होते है। दो नरको मे एक-एक नैरयिक की एक साथ उत्पत्ति होने की अपेक्षा से द्विकसयोगी कुल २१ भग होते है, जिनमे रत्नप्रभा के साथ ६, शर्कराप्रभा के साथ ५, वालुकाप्रभा के साथ ४, पकप्रभा के साथ ३,

धूमप्रभा के साथ २ और तम प्रभा के साथ १, इस प्रकार कुल मिलाकर २१ भग होते हैं। दो नैरयिको के असयोगी ७ और द्विकसयोगी २१, ये दोनो मिला कर कुल २८ भग (विकल्प) होते है।[1]

तीन नैरयिको के प्रवेशनक-भंग—

१८. तिण्णि भते ! नेरइया नेरइयपवेसणए ण पविसमाणा किं रणयप्पभाए होज्जा जाव अहेसत्तमाए होज्जा ?

गगेया ! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा। ७।

अहवा एगे रयणप्पभाए, दो सक्करप्पभाए होज्जा १। जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, दो अहेसत्तमाए होज्जा, २-३-४-५-६। अहवा दो रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए होज्जा १। जाव अहवा दो रयणप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा, २-३-४-५-६=१२। अहवा एगे सक्करप्पभाए, दो वालुयप्पभाए होज्जा १। जाव अहवा एगे सक्करप्पभाए, दो अहेसत्तमाए होज्जा, २-३-४-५=१७। अहवा दो सक्करप्पभाए, एगे वालयप्पभाए होज्जा १। जाव अहवा दो सक्करपभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा, २-३-४-५=२२। एव जहा सक्करप्पभाए वत्तव्वया भणिया तहा सव्वपुढवीण भाणियव्वा, जाव अहवा दो तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा। ४-४, ३-३, २-२, १-१,=४२।

अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए होज्जा १। अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे पकप्पभाए होज्जा २। जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, एगेसक्करप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा, ३-४-५। अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए एगे पकप्पभाए होज्जा ६। अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे धूमप्पभाए होज्जा ७। एव जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा, ८-९। अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे पकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए होज्जा १०। जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे पकप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा, ११-१२। अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए होज्जा १३। अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १४। अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १५। अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे पकप्पभाए होज्जा १६। अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे धूमप्पभाए होज्जा १७। जाव अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा, १८-१९। अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे पकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए होज्जा २०। जाव अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे पकप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा, २१-२२। अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए होज्जा २३। अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे धूमप्प०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा २४। अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा २५। अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे पकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए होज्जा २६। अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे पकप्पभाए, एगे तमाए

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४४२, (ख) भगवती भा ४ (प घेवरचदजी), पृ १६२१

होज्जा २७। अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे पकप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा २८। अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए होज्जा २९। अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ३०। अहवा एगे वालुयप्पभाए एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ३१। अहवा एगे पकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए होज्जा ३२। अहवा एगे पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ३३। अहवा एगे पकप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ३४। अहवा एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ३५। ८४।

[१८ प्र] भगवन्! तीन नैरयिक नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा मे उत्पन्न होते है? अथवा यावत् अध सप्तमपृथ्वी मे उत्पन्न होते है?

[१८ उ] गागेय! वे तीन नैरयिक (एक साथ) रत्नप्रभा मे उत्पन्न होते है, अथवा यावत् अध सप्तम मे उत्पन्न होते है।

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे और दो शर्कराप्रभा मे, अथवा (२-३-४-५-६) यावत् एक रत्नप्रभा मे और दो अध सप्तम पृथ्वी मे उत्पन्न होते है। (इस प्रकार १-२ का रत्नप्रभा के साथ अनुक्रम से दूसरे नरको के साथ सयोग करने से छह भग होते है)।

(१) अथवा दो नैरयिक रत्नप्रभा मे और एक शर्कराप्रभा मे उत्पन्न होते है। (२-३-४-५-६) अथवा यावत् दो जीव रत्नप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार २-१ के भी पूर्ववत् ६ भग होते हैं)।

(१) अथवा एक शर्कराप्रभा मे और दो बालुकाप्रभा मे होते है, (२-३-४-५) अथवा यावत् एक शर्कराप्रभा मे और दो अध सप्तमपृथ्वी मे होते है। (इस प्रकार शर्कराप्रभा के साथ १-२ के पाच भग होते हैं)।

(१) अथवा दो शर्कराप्रभा मे और एक बालुकाप्रभा मे होता है, अथवा (२-३-४-५) यावत् दो शर्कराप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे उत्पन्न होता है। (इस प्रकार २-१ के पूर्ववत् पाच भग होते हैं)।

जिस प्रकार शर्कराप्रभा की वक्तव्यता कही, उसी प्रकार सातो नरको की वक्तव्यता, यावत् दो तम प्रभा मे और एक तमस्तम प्रभा मे होता है, यहाँ तक जानना चाहिए। (इस प्रकार ६+६+५+५=२२ तथा ४-४, ३-३, २-२, १-१=कुल ४२ भग हुए)

अथवा (१) एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रा मे और एक बालुकाप्रभा मे (२) अथवा एक रत्नप्रभा मे एक शर्कराप्रभा मे और एक पकप्रभा मे होता है।

अथवा (३-४-५) यावत् एक रत्नप्रभा मे एक शर्कराप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार रत्नप्रभा और शर्कराप्रभा के साथ ५ विकल्प होते है।)

अथवा (६) एक रत्नप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे और एक पकप्रभा मे होता है। (७) अथवा एकरत्नप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे और एक धूमप्रभा मे होता है। (८-९) इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। इस प्रकार रत्नप्रभा और वालुकाप्रभा के साथ ४ विकल्प होते है।

अथवा (१०) एक रत्नप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक धूमप्रभा मे होता है, (११-१२) यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार बालुकाप्रभा को छोडने पर रत्नप्रभा और पकप्रभा के साथ तीन विकल्प होते है।)

अथवा (१३) एक रत्नप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है, (१४) अथवा एक रत्नप्रभा मे एक धूमप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार पकप्रभा को छोड देने पर, रत्नप्रभा और धूमप्रभा के साथ दो विकल्प होते है।)

(१५) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (धूमप्रभा को छोड देने पर यह एक विकल्प होता है।) इस प्रकार रत्नप्रभा के ५+४+३+२+१= १५ विकल्प होते है।

(१६) अथवा एक शर्कराप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे और एक पकप्रभा मे होता है, (१७) अथवा एक शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और एक धूमप्रभा मे होता है, (१८-१९) यावत् अथवा एक शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार शर्कराप्रभा और बालुकाप्रभा के साथ चार विकल्प होते है।)

(२०) अथवा एक शर्कराप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक धूमप्रभा मे होता है, (२१-२२) यावत् अथवा एक शर्कराप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार बालुकाप्रभा को छोड देने पर शर्कराप्रभा और पकप्रभा के साथ तीन विकल्प होते है।)

(२३) अथवा एक शर्कराप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है।

(२४) अथवा एक शर्कराप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार पकप्रभा को छोड देने पर, शर्कराप्रभा और धूमप्रभा के साथ दो विकल्प होते है।)

(२५) अथवा एक शर्कराप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार धूमप्रभा को छोड देने पर एक विकल्प होता है। यो शर्कराप्रभा के साथ ४+३+२+१=१० विकल्प होते है।)

(२६) अथवा एक बालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक धूमप्रभा मे होता है। (२७) अथवा एक बालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है, (२८) अथवा एक बालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। अथवा (२९) एक बालुकाप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है। (३०) अथवा एक बालुकाप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (३१) अथवा एक बालुकाप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार बालुकाप्रभा के साथ ३+२+१= ६ विकल्प होते है।)

(३२) अथवा एक पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है। (३३) अथवा एक पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (यो पकप्रभा और धूमप्रभा के साथ दो विकल्प होते है।) (३४) अथवा एक पकप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तम-पृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार पकप्रभा के साथ २+१=३ विकल्प होते है।)

(३५) अथवा एक धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस तरह धूमप्रभापृथ्वी के साथ एक विकल्प होता है।)

(र १५+श १०+वा ६+प ३+धू १, यो त्रिकसयोगी कुल भग ३५ होते है।)

विवेचन—तीन नैरयिको के नरकप्रवेशनकभग—यदि तीन जीव नरक मे उत्पन्न हो तो उनके असयोगी (एक-एक) भग ७, द्विक सयोगी ४२ और त्रिक सयोगी ३५, ये सव मिल कर ८४ भग होते है। जो ऊपर बतला दिए गए है।[1]

चार नैरयिको के प्रवेशनकभग—

१९. चत्तारि भंते! नेरइया नेरइयपवेसणए ण पविसमाणा किं रयणप्पभाए होज्जा० ? पुच्छा।

गगेया! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा ७।

अहवा एगे रयणप्पभाए, तिण्णि सक्करप्पभाए होज्जा १। अहवा एगे रयणप्पभाए, तिण्णि वालुयप्पभाए होज्जा २। एव जाव[2] अहवा एगे रयणप्पभाए, तिण्णि अहेसत्तमाए होज्जा ३-६। अहवा दो रयणप्पभाए, दो सक्करप्पभाए होज्जा १, एव जाव[3] अहवा दो रयणप्पभाए, दो अहेसत्तमाए होज्जा २-६ = १२।

अहवा तिण्णि रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए होज्जा १। एव जाव[4] अहवा तिण्णि रयणप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा २-६ = १८।

अहवा एगे सक्करप्पभाए, तिण्णि वालुयप्पभाए होज्जा १, एव जहेव रयणप्पभाए उवरिमाहिं सम चारिय तहा सक्करप्पभाए वि उवरिमाहिं सम चारियव्व २-१५ = ३३।

एव एक्केक्काए सम चारेयव्व जाव अहवा तिण्णि तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १५-१५ = ६३।

अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, दो वालुयप्पभाए होज्जा १। अहवा एगे रयण-

---

१ भगवती—अ वृत्ति पत्र ४४२

२ 'जाव' पद से—'अहवा एगे रयणप्पभाए, तिण्णि पकप्पभाए होज्जा ३। अहवा एगे रयणप्पभाए, तिण्णि धूमप्पभाए होज्जा ४। अहवा एगे रयणप्पभाए, तिण्णि तमप्पभाए होज्जा ५।' इस प्रकार तृतीय, चतुर्थ एव पचम भग समझना चाहिए।

३ इसी प्रकार 'जाव' पद से—'अहवा दो रयणप्पभाए, दो वालुयप्पभाए होज्जा, २। अहवा दो रयणप्पभाए, दो पकप्पभाए होज्जा ३। अहवा दो रयणप्पभाए, दो धूमप्पभाए होज्जा ४। अहवा दो रयणप्पभाए, दो तमाए होज्जा।' इस प्रकार द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पचम भग समझना चाहिए।

४ एव 'जाव' पद से—'अहवा तिण्णि रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए २। अहवा तिण्णि रयणप्पभाए, एगे पकप्पभाए ३। अहवा तिण्णि रयणप्पभाए, एगे धूमप्पभाए ४। अहवा तिण्णि रयणप्पभाए, एगे तमाए ५।' इस प्रकार द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पचम भग समझना।

[१९ प्र] भगवन् ! नैरयिकप्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए चार नैरयिक जीव क्या रत्नप्रभा मे उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[१९ उ] 'गागेय ! वे चार नैरयिक जीव रत्नप्रभा मे होते है, अथवा यावत् अध सप्तम-पृथ्वी मे होते है । (इस प्रकार असयोगी सात विकल्प और सात ही भग होते है ।)

(द्विकसयोगी तिरेसठ भग)—(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे और तीन शर्कराप्रभा मे होते है, (२) अथवा एक रत्नप्रभा मे और तीन बालुकाप्रभा मे होते है, (३-४-५-६) इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे और तीन अध सप्तमपृथ्वी मे होते है । (इस प्रकार रत्नप्रभा के साथ १-३ के ६ भग होते है ।)

(७) अथवा दो रत्नप्रभा मे और दो शर्कराप्रभा मे होते है, (८-९-१०-११-१२) इसी प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा मे और दो अध सप्तमपृथ्वी मे होते है । (यो रत्नप्रभा के साथ २-२ के छह भग होते है ।)

(१३) अथवा तीन रत्नप्रभा मे और एक शर्कराप्रभा मे होता है, (१४-१८) इसी प्रकार यावत् अथवा तीन रत्नप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है । (इस प्रकार रत्नप्रभा के साथ ३-१ के ६ भग होते है । यो रत्नप्रभा के साथ कुल भग ६+६+६=१८ हुए ।)

(१) अथवा एक शर्कराप्रभा मे और तीन वालुकाप्रभा मे होते है । जिस प्रकार रत्नप्रभा का आगे की नरकपृथ्वियो के साथ सचार (योग) किया, उसी प्रकार शर्कराप्रभा का भी उसके आगे की नरको के साथ सचार करना चाहिए । (इस प्रकार शर्कराप्रभा के साथ १-३ के ५ भग, २-२ के ५ भग, एव ३-१ के ५ भग, यो कुल मिलाकर १५ भग हुए ।)

इसी प्रकार आगे की एक-एक (बालुकाप्रभा पकप्रभा, आदि) नरकपृथ्वियो के साथ योग करना चाहिए । (इस प्रकार बालुकाप्रभा के साथ भी १-३ के ४, २-२ के ४ और ३-१ के ४ यो कुल १२ भग पकप्रभा के साथ १-३ के ३, २-२ के ३ और ३-१ के ३, यो कुल ९ भग, तथा धूमप्रभा के साथ १-३ के २, २-२ के २, और ३-१ के २, तथा तम प्रभा के साथ १-३ का १, २-२ का १ और ३-१ का १ होता है । यावत् अथवा तीन तम प्रभा मे और एक तमम्तम प्रभा मे होता है, यहाँ तक कहना चाहिए । (इस प्रकार द्विकसयोगी कुल ६३ भग हुए ।)

(त्रिकसयोगी १०५ भग)—(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और दो बालुकाप्रभा मे होते है ।

(२) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और दो पकप्रभा मे होते है । (३-४-५) इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और दो अध सप्तमपृथ्वी मे होते । (इस प्रकार १-१-२ के पाँच भग हुए ।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे दो शर्कराप्रभा मे और एक वालुकाप्रभा मे होता है, (२ से ५) इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे दो शर्कराप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है । इसी प्रकार १-२-१ के भी पाँच भग हुए ।

(१) अथवा दो रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और एक बालुकाप्रभा मे होता है ।

(२ से ५) इसी प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा मे एक शर्कराप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार २-१-१ के पाँच भग हुए।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे और दो पकप्रभा मे होते है। इस प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे और दो अध सप्तमपृथ्वी मे होते है (२-३-४)। (इस प्रकार रत्नप्रभा और वालुकाप्रभा के साथ ४ भग होते है।)

इसी प्रकार के अभिलाप द्वारा जैसे तीन नैरयिको के त्रिकसयोगी भग कहे, उमी प्रकार चार नरयिको के भी त्रिकसयोगी भग जानना चाहिए, यावत् दो धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक तमस्तम प्रभा मे होता है। (इस प्रकार त्रिकसयोगी कुल १०५ भग हुए।)

(चतु सयोगी ३५ भग—) (१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे और एक पकप्रभा मे होता है। (२) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे और एक धूमप्रभा मे होता है, (३) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है।

(४) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे और एक अध - सप्तम पृथ्वी मे होता है। (ये चार भग हुए।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक धूमप्रभा मे होता है। (२) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है। (३) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक अध सप्तम पृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार ये तीन भग हुए।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे एक धूमप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है। (२) अथवा एक रत्नप्रभा मे एक शर्कराप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक अध सप्तम-पृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार ये दो भग हुए।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तम पृथ्वी मे होता है। (यह एक भग हुआ।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक धूमप्रभा मे होता है। (२) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे एक पकप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है। (३) अथवा एक रत्न मे, एक बालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (ये तीन भग हुए।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है। (२) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक अध सप्तम पृथ्वी मे होता है। (ये दो भग हुए।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तम-पृथ्वी मे होता है। (यह एक भग हुआ।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है। (२) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (ये दो भग होते है।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (यह एक भग) (१) अथवा एक रत्नप्रभा मे एक धूमप्रभा मे एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (यह एक भग हुआ। इस प्रकार रत्नप्रभा के सयोग वाले ४+३+२+१,+३+२+१,+२+१+१=२० भग होते हैं।)

(१) अथवा एक शर्कराप्रभा मे एक वालुकाप्रभा मे एक पकप्रभा मे और एक धूमप्रभा मे होता है। जिस प्रकार रत्नप्रभा का उससे आगे की पृथ्वियो के साथ सचार (योग) किया उसी प्रकार शर्कराप्रभा का उससे आगे की पृथ्वियो के साथ योग करना चाहिए यावत् अथवा एक शर्कराप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार शर्कराप्रभा के सयोग वाले १० भग होते है।)

(१) अथवा एक बालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है। (२) अथवा एक वालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (३) अथवा एक वालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस तरह वालुकाप्रभा के सयोग वाले ४ भग हुए।)

(१) अथवा एक वालुकाप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है अथवा एक पकप्रभा मे एक धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। इस प्रकार सब मिल कर चतु सयोगी भग २०+१०+४+१=३५ होते है। तथा चार नैरयिक, आश्रयी असयोगी ७, द्विकसयोगी ६३, त्रिकसयोगी १०५ और चतु सयोगी ३५, ये सब २१० भग होते है।)

विवेचन—चार नैरयिको के प्रवेशनक भग—चार नैरयिको के १-३, २-२, ३-१ इस प्रकार के द्विकसयोगी भग तीन होते है। उनमे से रत्नप्रभा के साथ शेष पृथ्वियो का सयोग करने से १-३ के ६, २-२ के ६, और ३-१ के ६, यो १८ भग हुए। इसी प्रकार शर्कराप्रभा के साथ पूर्वोक्त तीनो विकल्पो के ५+५+५=१५ भग, इसी प्रकार बालुकाप्रभा के साथ पूर्वोक्त तीनो विकल्पो के ४+४+४=१२, भग होते हैं। तथा पकप्रभा के साथ पूर्वोक्त तीनो विकल्प भी ३+३+३=९ भग, एव धूमप्रभा के साथ २+२+२=६ भग तथा तम प्रभा के साथ १+१+१=३ भग होते है। सभी मिलकर द्विकसयोगी ६३ भग बताए गए। उनमे से रत्नप्रभा के साथ सयोग वाले १८ भग ऊपर बता दिये गए हैं। इसी प्रकार शर्कराप्रभा के साथ आगे की पृथ्वियो का योग करने से १—३ के ५ भग होते है। यथा—एक शर्कराप्रभा मे और तीन बालुकाप्रभा आदि मे होते हैं। इसी तरह २—२ के भी पाँच भग होते है—दो शर्कराप्रभा मे और दो वालुकाप्रभा आदि मे होते हैं। यो शर्कराप्रभा के साथ सयोग वाले ५ भग हुए। इसी प्रकार ३—१ के भी शर्कराप्रभा के सयोग वाले ५ भग होते है। यथा—तीन शर्कराप्रभा मे और एक बालुकाप्रभा आदि मे होता है। इस प्रकार शर्कराप्रभा के साथ सयोग वाले कुल १५ भग हुए। वालुकाप्रभा के साथ आगे की पृथ्वियो का सयोग करने से ४ भग होते हैं, जो मूल पाठ मे वतला दिये है। उन्हे पूर्वोक्त तीन विकल्पो से गुणा करने पर कुल ४+४+४=१२ भग होते है। इसी प्रकार पकप्रभा के साथ आगे की पृथ्वियो का सयोग करने पर तथा तीन विकल्पो से गुणा करने पर कुल ९ भग होते है। इसी प्रकार धूमप्रभा के साथ ६ भग तथा तम प्रभा के साथ ३ भग होते हैं। यो उत्तरोत्तर आगे की पृथ्वियो के साथ सयोग करने मे ऊपर

बताए अनुसार रत्नप्रभा के १८ शर्कराप्रभा के १५, वालुकाप्रभा के १२, पकप्रभा के ९, धूमप्रभा के ६ और तम प्रभा के ३, ये कुल मिला कर चार नैरयिको के द्विसयोगी ६३ भग होते हैं।

चार नैरयिको के त्रिकसयोगी भग—१०५ होते है। यथा चार नैरयिको के १-१-२, १-२-१ और २-१-१ ये तीन भग एक विकल्प के होते हैं, इनको रत्नप्रभा और शर्कराप्रभा के साथ बालुकाप्रभा आदि आगे की पृथ्वियो के साथ सयोग करने पर ५ विकल्प होते हैं। पूर्वोक्त तीन भगो के साथ गुणा करने पर १५ भग होते है। इसी प्रकार इन तीन भगो द्वारा रत्नप्रभा और बालुकाप्रभा का आगे की पृथ्वियो के साथ सयोग करने से कुल १२ भग होते हैं। रत्नप्रभा और पकप्रभा के साथ शेष पृथ्वियो का सयोग करने पर कुल ९ भग होत हैं। रत्नप्रभा और धूमप्रभा का सयोग करने पर ६ भग, तथा रत्नप्रभा और तम प्रभा के साथ सयोग करने पर तीन भग होते हैं। इस प्रकार रत्नप्रभा के सयोग वाले कुल भग १५+१२+९+६+३=४५ होते हैं। पूर्वोक्त तीन विकल्पो द्वारा शर्कराप्रभा और बालुकाप्रभा के साथ सयोग करने पर १२, शर्कराप्रभा और पकप्रभा के साथ सयोग करने पर ९, शर्कराप्रभा और धूमप्रभा के साथ सयोग करने पर ६, तथा शर्कराप्रभा और तम प्रभा का सयोग करने पर ३ भग होते है। इस प्रकार शर्कराप्रभा के साथ सयोग वाले कुल भग १२+९+६+३=३० होते है। पूर्वोक्त तीन विकल्पो द्वारा वालुकाप्रभा और पकप्रभा के साथ शेष पृथ्वियो का सयोग करने पर ९, बालुकाप्रभा और धूमप्रभा के साथ ६ तथा वालुकाप्रभा और तम प्रभा के साथ सयोग करने से ३ भग होते है। इस प्रकार बालुकाप्रभा के साथ सयोग वाले कुल भग ९+६+३=१८ होते है। पूर्वोक्त तीन विकल्पो द्वारा पकप्रभा और धूमप्रभा के साथ शेष पृथ्वियो का सयोग करने पर ६, पकप्रभा और तम प्रभा के साथ सयोग वाले ३ भग होते है। यो पकप्रभा के सयोग वाले कुल भग ९+३=१२ होते हैं। पूर्वोक्त तीन विकल्पो द्वारा पकप्रभा और तम प्रभा के साथ सयोग करने पर तीन भग होते है। पूर्वोक्त तीन विकल्पो के द्वारा धूमप्रभा और तम प्रभा के साथ सयोग वाले ३ भग होते है। इस प्रकार त्रिकसयोगी समस्त भग ४५+३०+१८+९+३=१०५ होते है।[1]

उपर्युक्त पद्धति से चार नैरयिको के चतु सयोगी ३५ भग होते है, जिनका उल्लेख मूलपाठ मे कर दिया है।

यो चार नैरयिको की अपेक्षा से असयोगी ७, द्विकसयोगी ६३, त्रिकसयोगी १०५ और चतु-सयोगी ३५, यो कुल २१० भग होते है।

पंच नैरयिको के प्रवेशनकभग—

२० पच भते ! नेरइया नेरइयप्पवेसणए ण पविसमाणा किं रयणप्पभाए होज्जा ? पुच्छा।

गगेया ! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा ७।

पॉच नैरयिको के द्विसयोगी भग—

अहवा एगे रयण०, चत्तारि सक्करप्पभाए होज्जा १। जाव अहवा एगे रयण०, चत्तारि अहेसत्तमाए होज्जा ६। अहवा दो रयण० तिण्णि सक्करप्पभाए होज्जा १-७। एव जाव अहवा दो

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा-१, पृ ४२४ से ४२६ तक
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४४२

रयणप्पभाए, तिण्णि अहेसत्तमाए होज्जा ६ = १२। अहवा तिण्णि रयण०, दो सक्करप्पभाए होज्जा १-१३। एव जाव अहेसत्तमाए होज्जा ६ = १८। अहवा चत्तारि रयण०, एगे सक्करप्पभाए होज्जा १-१९। एव जाव अहवा चत्तारि रयण०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ६ = २४। अहवा एगे सक्कर०, चत्तारि वालुयप्पभाए होज्जा १। एव जहा रयणप्पभाए सम उवरिमपुढवीओ चारियाओ तहा सक्करप्पभाए वि सम चारेयव्वाओ जाव अहवा चत्तारि सक्करप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा २०। एव एक्केक्काए सम चारेयव्वाओ जाव अहवा चत्तारि तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ८४।

पॉच नैरयिको के त्रिसयोगी भग—

अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, तिण्णि वालुप्पभाए होज्जा १। एव जाव अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, तिण्णि अहेसत्तमाए होज्जा ५। अहवा एगे रयण०, दो सक्कर०, दो वालुयप्पभाए होज्जा १-६। एव जाव अहवा एगे रयण०, दो सक्कर०, दो अहेसत्तमाए होज्जा ५-१०। अहवा दो रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, दो वालुयप्पभाए होज्जा १-११। एव जाव अहवा दो रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, दो अहेसत्तमाए होज्जा ५-१५। अहवा एगे रयण०, तिण्णि सक्कर०, एगे वालुयप्पभाए होज्जा १-१६। एव जाव अहवा एगे रयण०, तिण्णि सक्कर०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ५-२०। अहवा दो रयण०, दो सक्कर०, एगे वालुयप्पभाए होज्जा १-२१। एव जाव दो रयण०, दो सक्कर०, एगे अहेसत्तमाए ५-२५। अहवा तिण्णि रयण०,एगे सक्कर०, एगे वालुयप्पभाए होज्जा १-२६। एव जाव अहवा तिण्णि रयण०, एगे सक्कर०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ५-३०। अहवा एगे रयण०, एगे वालुय०, तिण्णि पकप्पभाए होज्जा १-३१। एव एएण कमेण जहा चउण्ह तियसजोगो भणितो तहा पचण्ह वि तियसजोगो भाणियव्वो, नवर तत्थ एगो सचारिज्जइ, इह दोण्णि, सेस त चेव, जाव अहवा तिण्णि धूमप्पभाए एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा २१०।

पच नैरयिको के चतुःसयोगी भग—

अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे वालुय०, दो पकप्पभाए होज्जा १। एव जाव अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर० एगे वालुय०, दो अहेसत्तमाए होज्जा ४। अहवा एगे रयण० एगे सक्कर० दो वालुय०, एगे पकप्पपभाए होज्जा १-५। एव जाव अहेसत्तमाए ४-८। अहवा एगे रयण०, दो सक्करप्पभाए, एगे वालुय०, एगे पकप्पभाए होज्जा १-९। एव जाव अहवा एगे रयण०, दो सक्कर०, एगे वालुय०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ४-१२। अहवा दो रयण०, एगे सक्कर०, एगे वालुय०, एगे पकप्पभाए होज्जा १-१३। एव जाव अहवा दो रयण०, एगे सक्कर०, एगे वालुय०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ४-१६। अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे पक०, दो धूमप्पभाए होज्जा १-१७। एव जहा चउण्ह चउक्कसजोगो भणिओ तहा पचण्ह वि चउक्कसजोगो भाणियव्वो, नवर अब्भहिय एगो सचारेयव्वो, एव जाव अहवा दो पक०, एगे धूम०, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १४०।

अहवा १-१-१-१-१ एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे वालुय, एगे पक०, एगे धूमप्पभाए होज्जा १। अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे वालुय०, एगे पक०, एगे तमाए होज्जा २। अहवा एगे

रयण०, जाव एगे पक० एगे अहेसत्तमाए होज्जा ३ । अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे वालुयप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए होज्जा ४ । अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे वालुय०, एगे धूमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ५ । अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे वालुय०, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ६ । अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे पक०, एगे धूम०, एगे तमाए होज्जा ७ । अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे पक०, एगे धूम० एगे अहेसत्तमाए होज्जा ८ । अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे पक०, एगे तम०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ९ । अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे धूम०, एगे तम०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १० । अहवा एगे रयण०, एगे वालुय०, एगे पक०, एगे धूम०, एगे तमाए होज्जा ११ । अहवा एगे रयण०, एगे वालुय०, एगे पक०, एगे धूम०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १२ । अहवा एगे रयण०, एगे वालुय०, एगे पक०, एगे तम०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १३ । अहवा एगे रयण०, एगे वालुय०, एग धूम०, एगे तम०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १४ । अहवा एगे रयण०, एगे पक०, जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा १५ । अहवा एगे सक्कर० एगे वालुय० जाव एगे तमाए होज्जा १६ । अहवा एगे सक्कर० एगे वालुय०, एगे पक०, एगे धूम०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १७ । अहवा एगे सक्कर०, जाव एगे पक०, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १८ । अहवा एगे सक्कर०, एगे वालुय०, एगे धूम०, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १९ । अहवा एगे सक्कर०, एगे पक०, जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा २० । अहवा एगे वालुय० जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा २१ । ४६२ ।

[२० प्र] भगवन् ! पाच नैरयिक जीव, नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा मे उत्पन्न होते है ? इत्यादि पृच्छा ।

[२० उ] गागेय ! रत्नप्रभा मे होते है, यावत् अध सप्तम-पृथ्वी मे उत्पन्न होते है । (इस प्रकार असयोगी सात भग होते है ।)

(द्विकसयोगी ८४ भग—) (१) अथवा एक रत्नप्रभा मे और चार शर्कराप्रभा मे होते है, (२-६) यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे और चार अध.सप्तम-पृथ्वी मे होते है । (इस प्रकार रत्नप्रभा के साथ १-४ शेष पृथ्वियो का योग करने पर ६ भग होते है ।

(१) अथवा दो रत्नप्रभा मे और तीन शर्कराप्रभा मे होते है, (२-६) इसी प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा मे और तीन अध सप्तमपृथ्वी मे होते है । (यो २-३ से ६ भग होते है ।)

(१) अथवा तीन रत्नप्रभा मे और दो शर्कराप्रभा मे होते है । २-६ इसी प्रकार यावत् अथवा तीन रत्नप्रभा मे और दो अध सप्तमपृथ्वी मे होते है । (यो ३-२ से ६ भग होते है ।)

(१) अथवा चार रत्नप्रभा मे और एक शर्कराप्रभा मे होता है, (२-६) यावत् अथवा चार रत्नप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है । (इस प्रकार ४-१ से ६ भग होते है । यो रत्नप्रभा के साथ शेष पृथ्वियो के सयोग से कुल चौवीस भग होते है ।)

(१) अथवा एक शर्कराप्रभा मे और चार वालुकाप्रभा मे होते है । जिस प्रकार रत्नप्रभा के साथ (१-४, २-३, ३-२ और ४-१ से आगे की पृथ्वियो का सयोग किया, उसी प्रकार शर्कराप्रभा

के साथ सयोग करने पर बीस भग (५+५+५+५=२०) होते है। यावत् अथवा चार शर्कराप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है।

इसी प्रकार बालुकाप्रभा आदि एक-एक पृथ्वी के साथ आगे की पृथ्वियो का (१-४, २-३, ३-२ और ४-१ से) योग करना चाहिए, यावत् चार तम प्रभा मे और एक अध सप्तम-पृथ्वी मे होता है।

विवेचन—पाच नैरयिको के द्विकसयोगी भग—इसके ४ विकल्प होते है यथा—१-४, २-३, ३-२, और ४-१। रत्नप्रभा के द्विकसयोगी ६ भगो के साथ ४ विकल्पो का गुणा करने पर २४ भग होते है। शर्कराप्रभा के साथ ५ भगो से ४ विकल्पो का गुणा करने पर २०, बालुकाप्रभा के साथ-१६, पकप्रभा के साथ १२, धूमप्रभा के साथ ८ और तम प्रभा के साथ ४ भग होते। इस प्रकार कुल २४+२०+१६+१२+८+४=८४ भग द्विकसयोगी होते है।[1]

(**त्रिकसयोगी २१० भग**—) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और तीन वालुका-प्रभा मे होते है। इसी प्रकार यावत्—अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और तीन अध-सप्तम पृथ्वी मे होते है। (इस प्रकार एक, एक और तीन के रत्नप्रभा-शर्कराप्रभा के साथ सयोग से पाच भग होते है।)

अथवा एक रत्नप्रभा मे, दो शर्कराप्रभा मे और दो बालुकाप्रभा मे होते है, इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे, दो शर्कराप्रभा मे और दो अध सप्तमपृथ्वी मे होते है। (इस प्रकार एक, दो, दो के सयोग से पाच भग होते है।)

अथवा दो रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और दो बालुकाप्रभा मे होते है। इस प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और दो अध सप्तम पृथ्वी मे होते है। (यो दो, एक, दो के सयोग से ५ भग होते है।)

अथवा एक रत्नप्रभा मे, तीन शर्कराप्रभा मे, और एक बालुकाप्रभा मे होता है। इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे, तीन शर्करा प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार एक, तीन, एक के सयोग से पाच भग होते है।)

अथवा दो रत्नप्रभा मे, दो शर्कराप्रभा मे और एक बालुकाप्रभा मे होता है। इसी प्रकार यावत् दो रत्नप्रभा, दो शर्कराप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार दो, दो एक के सयोग से ५ भग हुए)

अथवा तीन रत्नप्रभा मे एक शर्करा प्रभा मे और एक वालुकाप्रभा मे होता है। इस प्रकार यावत् तीन रत्नप्रभा मे एक शर्कराप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (यो ३-१-१ के सयोग से ५ भग होते है।

विवेचन—पाच नैरयिको के त्रिक सयोगी भग—त्रिकसयोगी विकल्प ६ होते है। यथा—१-१-३, १-२-२, २-१-२, १-३-१, २-२-१, और ३-१-१ ये ६ विकल्प। प्रत्येक नरक के साथ

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४४४

सयोग होने से प्रत्येक के ५-५ भग होते है । यो ७×५=३५ भग हुए । इन ३५ भगो को ६ विकल्पो के साथ गुणा करने से ३५×६=२१० भग कुल होते है ।[1]

अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और तीन पकप्रभा मे होते है । इस क्रम से जिस प्रकार चार नैरयिको के त्रिकसयोगी भग कहे है, उसी प्रकार पाच नैरयिको के भी त्रिकसयोगी भग जानना चाहिए । विशेष यह है कि वहाँ 'एक' का सचार था, (उसके स्थान पर) यहाँ दो का सचार करना चाहिए । शेष सब पूर्ववत् जान लेना चाहिए, यावत्—अथवा तीन धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा मे, और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है, यहाँ तक कहना चाहिए ।

त्रिकसयोगी भग— इनमे से रत्नप्रभा के सयोग वाले ९०, शर्कराप्रभा के सयोग वाले ६०, बालुकाप्रभा के सयोगवाले ३६, पकप्रभा के सयोग वाले १८, और धूमप्रभा के सयोग वाले ६ भग होते है । ये सभी ९०+६०+३६,+१८+६=२१० भग त्रिकसयोगी होते है ।[2]

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और दो पकप्रभा मे होते है, इसी प्रकार (२-४) यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और दो अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं । (यो १-१-१-२ के सयोग से चार भग होते है ।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, दो बालुकाप्रभा मे और एक पकप्रभा मे होता है । इसी प्रकार (२-४) यावत् एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, दो बालुकाप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है । (यो १-१-२-१ के सयोग से चार भग होते है ।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, दो शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और एक पकप्रभा मे होता है । इस प्रकार (२-४) यावत् एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा मे एक बालुकाप्रभा मे, और एक अध - सप्तमपृथ्वी मे होता है । (यो १-२-१-१ के सयोग से चार भग होते हैं ।)

(१) अथवा दो रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और एक पकप्रभा मे होते है । इसी प्रकार यावत् (२-४) अथवा दो रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है । (यो २-१-१-१ के सयोग से ४ भग होते है ।)

अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और दो धूमप्रभा मे होते है । जिस प्रकार चार नैरयिक जीवो के चतु सयोगी भग कहे है, उसी प्रकार पाच नैरयिक जीवो के चतु सयोगी भग कहना चाहिए, किन्तु यहाँ एक अधिक का सचार (सयोग) करना चाहिए । इस प्रकार यावत् दो पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है, यहाँ तक कहना चाहिए । (ये चतु सयोगी १४० भग होते है) ।

विवेचन—पाच नैरयिको के चतु सयोगी भग—चतु सयोगी ४ विकल्प होते है, यथा—१-१-१-२, १-१-२-१, १-२-१-१, और २-१-१-१ । सात नरको के चतु सयोगी पैंतीस भग होते है । इन पैंतीस को ४ से गुणा करने पर कुल १४० भग होते है । यथा—रत्नप्रभा मे सयोग वाले ८०,

---

१ भगवती अ वृत्ति सूत्र ४४४

२ भगवती भाग ४, (प घेवरचन्दजी), पृ १६४३

के साथ सयोग करने पर बीस भग (५+५+५+५=२०) होते है । यावत् अथवा चार शर्कराप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है ।

इसी प्रकार वालुकाप्रभा आदि एक-एक पृथ्वी के साथ आगे की पृथ्वियो का (१-४, २-३, ३-२ और ४-१ से) योग करना चाहिए, यावत् चार तम प्रभा मे और एक अध सप्तम-पृथ्वी मे होता है ।

विवेचन—पाच नैरयिको के द्विकसयोगी भग—इसके ४ विकल्प होते है यथा—१-४, २-३, ३-२, और ४-१ । रत्नप्रभा के द्विकसयोगी ६ भगो के साथ ४ विकल्पो का गुणा करने पर २४ भग होते है । शर्कराप्रभा के साथ ५ भगो से ४ विकल्पो का गुणा करने पर २०, वालुकाप्रभा के साथ-१६, पकप्रभा के साथ १२, धूमप्रभा के साथ ८ और तम प्रभा के साथ ४ भग होते । इस प्रकार कुल २४+२०+१६+१२+८+४=८४ भग द्विकसयोगी होते है ।[1]

(त्रिकसंयोगी २१० भग—) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और तीन वालुकाप्रभा मे होते है । इसी प्रकार यावत्—अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और तीन अध - सप्तम पृथ्वी मे होते है । (इस प्रकार एक, एक और तीन के रत्नप्रभा-शर्कराप्रभा के साथ सयोग से पाच भग होते है ।)

अथवा एक रत्नप्रभा मे, दो शर्कराप्रभा मे और दो वालुकाप्रभा मे होते है, इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे, दो शर्कराप्रभा मे और दो अध सप्तमपृथ्वी मे होते है । (इस प्रकार एक, दो, दो के सयोग से पाच भग होते है ।)

अथवा दो रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और दो वालुकाप्रभा मे होते है । इस प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और दो अध सप्तम पृथ्वी मे होते है । (यो दो, एक, दो के सयोग से ५ भग होते है ।)

अथवा एक रत्नप्रभा मे, तीन शर्कराप्रभा मे, और एक वालुकाप्रभा मे होता है । इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे, तीन शर्करा प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है । (इस प्रकार एक, तीन, एक के सयोग से पाच भग होते है ।)

अथवा दो रत्नप्रभा मे, दो शर्कराप्रभा मे और एक वालुकाप्रभा मे होता है । इसी प्रकार यावत् दो रत्नप्रभा, दो शर्कराप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है । (इस प्रकार दो, दो एक के सयोग से ५ भग हुए)

अथवा तीन रत्नप्रभा मे एक शर्करा प्रभा मे और एक वालुकाप्रभा मे होता है । इस प्रकार यावत् तीन रत्नप्रभा मे एक शर्कराप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है । (यो ३-१-१ के सयोग से ५ भग होते है ।

विवेचन—पांच नैरयिको के त्रिक संयोगी भंग—त्रिकसयोगी विकल्प ६ होते हैं । यथा—१-१-३, १-२-२, २-१-२, १-३-१, २-२-१, और ३-१-१ ये ६ विकल्प । प्रत्येक नरक के साथ

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४४४

सयोग होने से प्रत्येक के ५-५ भग होते है। यो ७×५=३५ भग हुए। इन ३५ भगो को ६ विकल्पो के साथ गुणा करने से ३५×६=२१० भग कुल होते है।[1]

अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और तीन पकप्रभा मे होते है। इस क्रम से जिस प्रकार चार नैरयिको के त्रिकसयोगी भग कहे है, उसी प्रकार पाच नैरयिको के भी त्रिकसयोगी भग जानना चाहिए। विशेष यह है कि वहाँ 'एक' का सचार था, (उसके स्थान पर) यहाँ दो का सचार करना चाहिए। शेष सब पूर्ववत् जान लेना चाहिए, यावत्—अथवा तीन धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा मे, और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है, यहाँ तक कहना चाहिए।

त्रिकसयोगी भग— इनमे से रत्नप्रभा के सयोग वाले ९०, शर्कराप्रभा के सयोग वाले ६०, बालुकाप्रभा के सयोगवाले ३६, पकप्रभा के सयोग वाले १८, और धूमप्रभा के सयोग वाले ६ भग होते है। ये सभी ९०+६०+३६,+१८+६=२१० भग त्रिकसयोगी होते है।[2]

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और दो पकप्रभा मे होते है, इसी प्रकार (२-४) यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और दो अध सप्तमपृथ्वी मे होते है। (यो १-१-१-२ के सयोग से चार भग होते है।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, दो बालुकाप्रभा मे और एक पकप्रभा मे होता है। इसी प्रकार (२-४) यावत् एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, दो बालुकाप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (यो १-१-२-१ के सयोग से चार भग होते है।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, दो शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और एक पकप्रभा मे होता है। इस प्रकार (२-४) यावत् एक रत्नप्रभा मे, दो शर्कराप्रभा मे एक बालुकाप्रभा मे, और एक अध-सप्तमपृथ्वी मे होता है। (यो १-२-१-१ के सयोग से चार भग होते है।)

(१) अथवा दो रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और एक पकप्रभा मे होते है। इसी प्रकार यावत् (२-४) अथवा दो रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (यो २-१-१-१ के सयोग से ४ भग होते है।)

अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और दो धूमप्रभा मे होते है। जिस प्रकार चार नैरयिक जीवो के चतु सयोगी भग कहे है, उसी प्रकार पाच नैरयिक जीवो के चतु सयोगी भग कहना चाहिए, किन्तु यहाँ एक अधिक का सचार (सयोग) करना चाहिए। इस प्रकार यावत् दो पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है, यहाँ तक कहना चाहिए। (ये चतु सयोगी १४० भग होते है)।

विवेचन—पांच नैरयिको के चतु सयोगी भग—चतु सयोगी ४ विकल्प होते है, यथा—१-१-१-२, १-१-२-१, १-२-१-१, और २-१-१-१। सात नरको के चतु सयोगी पैंतीस भग होते है। इन पैंतीस को ४ से गुणा करने पर कुल १४० भग होते हैं। यथा—रत्नप्रभा मे सयोग वाले ८०,

---

१ भगवती अ वृत्ति सूत्र ४४४

२ भगवती भाग ४, (प घेवरचन्दजी), पृ १६४३

शर्कराप्रभा के सयोग वाले ४०, वालुकाप्रभा के सयोग वाले १६ और पकप्रभा के सयोग वाले ४, ये सभी मिलकर पच नैरयिको के चतु सयोगी १४० भग होते है।

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक धूमप्रभा मे होता है। (२) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, और एक तम प्रभा मे होता है, (३) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है।

(४) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है। (५) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है।

(६) अथवा एक रत्नप्रभा मे एक शर्कराप्रभा मे एक बालुकाप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है।

(७) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है। (८) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक धूम-प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (९) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (१०) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (११) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है। (१२) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (१३) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे एक पकप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (१४) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध-सप्तमपृथ्वी मे होता है। (१५) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, यावत् अध सप्नमपृथ्वी मे होता है। (१६) अथवा एक शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे; एक पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है। (१७) अथवा एक शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक अध सप्तम पृथ्वी मे होता है। (१८) अथवा एक शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (१९) एक शर्कराप्रमा मे, एक बालुकाप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (२०) अथवा एक शर्कराप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (२१) अथवा एक बालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है।

विवेचन—पच नैरयिको के पचसयोगी भग—पच नैरयिको का पचसयोगी विकल्प एव भग १-१-१-१-१ एक ही होता है इस प्रकार सात नरको के पचसयोगी २१ ही विकल्प और २१ ही भग होते है। जिनमे से रत्नप्रभापृथ्वी के सयोग वाले १५, शर्कराप्रभा के सयोग वाले ५ और

बालुकाप्रभा के सयोग वाला १ भग होता है । यो सभी मिलकर १५+५+१=२१ भग पचसयोगी होते है ।[1]

पाच नैरयिको के समस्त भग—पाँच नैरयिक जीवो के असयोगी ७, द्विकसयोगी ८४, त्रिकसयोगी २१०, चतु सयोगी १४० और पचसयोगी २१, ये सभी मिलकर ७+८४+२१०+१४०+२१=४६२ भग होते है ।[2]

छह नैरयिको के प्रवेशनकभग—

२१. छब्भते ! नेरइया नेरइयप्पवेसणए ण पविसमाणा किं रयणप्पभाए होज्जा० ? पुच्छा ।
गगेया ! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा ७ ।

अहवा एगे रयण०, पच सक्करप्पभाए वा होज्जा १ । अहवा एगे रयण०, पच वालुयप्पभाए वा होज्जा २ । जाव अहवा एगे रयण०, पच अहेसत्तमाए होज्जा ६ । अहवा दो रयण०, चत्तारि सक्करप्पभाए होज्जा १-७ । जाव अहवा दो रयण०, चत्तारि अहेसत्तमाए होज्जा ६-१२ । अहवा तिण्णि रयण०, तिण्णि सक्कर० १-१३ । एव एएण कमेण जहा पचण्ह दुयासजोगो तहा छण्ह वि भाणियव्वो, नवर एक्को अब्भहिओ सचारेयव्वो जाव अहवा पच तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा १०५ ।

अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, चत्तारि वालुयप्पभाए होज्जा १ । अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, चत्तारि पकप्पभाए होज्जा २ । एव जाव अहवा एगे रयण० एगे सक्कर० चत्तारि अहेसत्तमाए होज्जा ५ । अहवा एगे रयण०, दो सक्कर०, तिण्णि वालुयप्पभाए होज्जा ६ । एव एएण कमेण जहा पचण्ह तियासजोगो भणिओ तहा छण्ह वि भाणियव्वो, नवर एक्को अब्भहिओ उच्चारेयव्वो, सेस त चेव । ३५० ।

चउक्कसजोगो वि तहेव । ३५० ।

पचगसजोगो वि तहेव, नवर एक्को अब्भहिओ सचारेयव्वो जाव पच्छिमो भगो—अहवा दो वालुय०, एगे पक०, एगे धूम०, एगे तम०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा । १०५ ।

अहवा एगे रयण० एगे सक्कर० जाव एगे तमाए होज्जा १, अहवा एगे रयण० जाव एगे धूम०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा २, अहवा एगे रयण० जाव एगे पक० एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा ३, अहवा एगे रयण० जाव एगे वालुय० एगे धूम० जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा ४, अहवा एगे रयण० एगे सक्कर० एगे पक० जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा ५, अहवा एगे रयण० एगे वालुय० जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा ६, अहवा एगे सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा ७ । ९२४ ।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४४४

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४४४

[२१ प्र] भगवन् ! छह नैरयिक जीव, नैरयिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा मे उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न ।

[२१ उ] गागेय ! वे रत्नप्रभा मे होते है, अथवा यावत् अध सप्तमपृथ्वी मे होते है । (इस प्रकार ये असयोगी ७ भग होते है ।)

(द्विकसयोगी १०५ भग)—(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे और पाच शर्कराप्रभा मे होते है । (२) अथवा एक रत्नप्रभा मे और पाच बालुकाप्रभा मे होते है । अथवा (३-६) यावत् एक रत्नप्रभा मे और पाच अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं । (१) अथवा दो रत्नप्रभा मे और चार शर्कराप्रभा होते हैं, अथवा (२—६) यावत् दो रत्नप्रभा मे और चार अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं । (१) अथवा तीन रत्नप्रभा मे और तीन शर्कराप्रभा मे होते है । इस क्रम द्वारा जिस प्रकार पाच नैरयिक जीवो के द्विकसयोगी भग कहे है, उसी प्रकार छह नैरयिको के भी कहने चाहिए । विशेष यह है कि यहाँ एक अधिक का सचार करना चाहिए, यावत् अथवा पाच तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है ।

(त्रिकसयोगी ३५० भग)—(१) एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और चार बालुकाप्रभा मे होते है । (२) अथवा एक रत्नप्रभा मे एक शर्करप्रभा मे और चार पकप्रभा मे होते है । इस प्रकार यावत् (३—५) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और चार अध सप्तमपृथ्वी मे होते है । (६) अथवा एक रत्नप्रभा मे, दो शर्कराप्रभा मे और तीन बालुकाप्रभा मे होते है । इस क्रम से जिस प्रकार पाच नैरयिक जीवो के त्रिकसयोगी भग कहे है, उसी प्रकार छह नैरयिक जीवो के भी त्रिकसयोगी भग कहने चाहिए । विशेष इतना ही है कि यहाँ एक का सचार अधिक करना चाहिए । शेष सब पूर्ववत् जानना चाहिए । (इस प्रकार त्रिकसयोगी कुल ३५० भग हुए ।)

(चतुष्कसयोगी ३५० भग)—जिस प्रकार पाच नैरयिको के चतुष्कसयोगी भग कहे गए, उसी प्रकार छह नैरयिको के चतु सयोगी भग जान लेने चाहिए ।

(पंचसयोगी १०५ भग)—पाच नैरयिको के जिस प्रकार पचसयोगी भग कहे गए, उसी प्रकार छह नैरयिको के पचसयोगी भग जान लेने चाहिए, परन्तु इसमे एक नैरयिक का अधिक सचार करना चाहिए । यावत् अन्तिम भग (इस प्रकार है—) दो बालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है ।

(इस प्रकार पचसयोगी कुल १०५ भग हुए ।)

(षट्सयोगी ७ भग)— (१) अथवा एक रत्नप्रभा मे एक शर्कराप्रभा मे, यावत् एक तम प्रभा मे होता है, (२) अथवा एक रत्नप्रभा मे, यावत् एक धूमप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है । (३) अथवा एक रत्नप्रभा मे, यावत् एक पकप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है । (४) अथवा एक रत्नप्रभा मे, यावत् एक बालुकाप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे, यावत् एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है । (५) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, यावत् एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है । (६) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे यावत् एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है । (७) अथवा एक शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे, यावत् एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता ।

विवेचन—छह नैरयिको के प्रवेशनक भग—प्रस्तुत सू २१ मे छह नैरयिको के प्रवेशनक भगो का विवरण दिया गया है।

एक सयोगी ७ भग—प्रत्येक नरक मे ६ नैरयिको का प्रवेशनक होने से सात नरको के असयोगी भग ७ हुए।

द्विकसयोगी १०५ भग—द्विकसयोगी विकल्प ५ होते है—यथा—१-५, २-४, ३-३, ४-२, और ५-१। इन पाच विकल्पो को १—रत्नप्रभा-शर्कराप्रभा, २—रत्नप्रभा-वालुकाप्रभा, ६—रत्नप्रभा-पकप्रभा, ४—रत्नप्रभा-धूमप्रभा, ५—रत्नप्रभा-तम प्रभा और ६—रत्नप्रभा-तम स्तम प्रभा, इन ६ से गुणाकार करने पर ६×५=३० भग रत्नप्रभा के सयोग वाले हुए। इसी प्रकार शर्कराप्रभा के सयोग वाले २५ भग होते है, बालुकाप्रभा के सयोग वाले २०, पकप्रभा के सयोग वाले १५, धूमप्रभा के सयोग वाले १० और तम प्रभा के सयोग वाले ५ भग होते हैं। ये सभी मिलकर ३०+२५+२०+१५+१०+५=१०५ भग होते है।

त्रिकसयोगी ३५० भग—त्रिकसयोगी विकल्प १० होते है, यथा—१-१-४, १-२-३, २-१-३, १-३-२, २-२-२, ३-१-२, १-४-१, २-३-१, ३-२-१ और ४-१-१। इन १० विकल्पो को रत्नप्रभा के सयोग वाले र श वा, र श प, र श धू, र श त, र श अध, र बा प, र बा धू, र वा त, र वा अध, र प धू, र प त, र प अध, र धू त, र धू अध, र त अध, १५ भगो से गुणा करने पर १५० भग होते है। इसी तरह १० विकल्पो को शर्कराप्रभा के सयोग वाले—श बा प, श वा धू, श वा त, श वा अध, श प धू, श प त, श प अध, श धू तम, श धू अध, श त अध, इन १० भगो के साथ गुणा करने पर १०० भग होते है। बालुकाप्रभा के सयोग वाले—बा प धू, बा प त, वा प अध, बा धू त, बा धू अध, बा त अध, इन ६ भगो को १० विकल्पो से गुणा करने पर ६० भग होते है। इसी प्रकार पकप्रभा के सयोग वाले—प धू त, प धू अध, प त अध, इन ३ भगो के साथ १० विकल्पो को गुणा करने से ३० भग होते है। धूमप्रभा के सयोग वाला सिर्फ एक भग धू त अध, होता है। इसे १० विकल्पो के साथ गुणा करने से १० भग होते है। इस प्रकार ये सभी मिल कर १५०+१००+६०+३०+१०=३५० भग त्रिकसयोगी होते है।

चतु सयोगी ३५० भग—चतु सयोगी विकल्प भी १० होते है। यथा—१-१-१-३, १-१-२-२, १-२-१-२, २-१-१-२, १-१-३-१, १-२-२-१, २-१-२-१, १-३-१-१, २-२-१-१ और ३-१-१-१। इन दस विकल्पो को रत्नप्रभा आदि के सयोग वाले पूर्वोक्त ३५ भगो के साथ गुणाकार करने पर ३५० भग होते है।

पचसंयोगी १०५ भग—पचसयोगी ५ विकल्प होते है। यथा—१-१-१-१-२, १-१-१-२-१, १-१-२-१-१, १-२-१-१-१, २-१-१-१-१। इन ५ विकल्पो को रत्नप्रभा के सयोग वाले (र श वा प धू, र श वा प त, र श वा प अध, र श बा धू त, र श वा धू अध, (र श वा त अध, र श प, धू त, र श प धू अध, र श प त अध, र श धू त अध, र वा प धू तम, र वा प धू अध, र बा प त अध, र वा धू त अध, र श धू त अध इन १५ भगो के साथ गुणा करने पर ७५ भग होते हैं। इसी प्रकार शर्कराप्रभा के सयोग

वाले—श बा प धू त, श वा प धू अध, श बा प त अध, श वा धू त अध, श प धू त अध, इन ५ भगो को पूर्वोक्त ५ विकल्पो के साथ गुणा करने पर २५ भग होते है। इसी तरह वालुकाप्रभा के बा प धू त अध, इस एक भग के साथ ५ विकल्पो को गुणा करने पर ५ भग होते है। ये सभी मिलकर ७५+२५+५=१०५ भग पचसयोगी होते है।

षट्सयोगी ७ भग—६ नैरयिको का षट्सयोगी एक ही विकल्प होता है, उसके द्वारा सात नरको के षट्सयोगी ७ भग होते है। इस प्रकार ६ नैरयिक जीवो के असयोगी ७ भग, द्विकसयोगी १०५, त्रिकसयोगी ३५०, चतुष्कसयोगी ३५०, पचसयोगी १०५ और षट्मयोगी ७, ये सब मिलकर ९२४ प्रवेशनक भग होते है।[1]

सात नैरयिको के प्रवेशनकभंग—

२२. सत्त भते ! नेरइया नेरइयपवेसणएण पविसमाणा० पुच्छा।

गगेया ! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा ७।

अहवा एगे रयणप्पभाए, छ सक्करप्पभाए होज्जा। एव एएण कमेण जहा छण्ह दुयासजोगो तहा सत्तण्ह वि भाणियव्व नवर एगो अब्भहिओ सचारिज्जइ। सेस त चेव।

तियासजोगो, चउक्कसजोगो, पचसजोगो, छक्कसजोगो य छण्ह जहा तहा सत्तण्ह वि भाणियव्वो, नवर एक्केको अब्भहिओ सचारेयव्वो जाव छक्कगसजोगो। अहवा दो सक्कर० एगे वालुय० जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

अहवा एगे रयण० एगे सक्कर० जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा १। १७१६।

[२२ प्र] भगवन् ! सात नैरयिक जीव, नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभापृथ्वी मे उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न।

[२२ उ] गागेय ! वे सातो नैरयिक रत्नप्रभा मे होते है, यावत् अथवा अध सप्तम-पृथ्वी मे होते है। (इस प्रकार असयोगी ७ भग होते हैं।)

(द्विकसयोगी १२६ भग)—अथवा एक रत्नप्रभा मे और छह शर्कराप्रभा मे होते है। इस क्रम से जिस प्रकार छह नैरयिक जीवो के द्विकसयोगी भग कहे है, उसी प्रकार सात नैरयिक जीवो के भी द्विकसयोगी भग कहने चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ एक नैरयिक का अधिक सचार करना चाहिए। शेष सभी पूर्ववत् जानना चाहिए।

जिस प्रकार छह नैरयिको के त्रिकसयोगी, चतु सयोगी, पचसयोगी और षट्सयोगी भग कहे, उसी प्रकार सात नैरयिको के त्रिकसयोगी आदि भगो के विषय मे भी कहना चाहिए। विशेषता इतनी है कि यहाँ एक-एक नैरयिक जीव का अधिक सचार करना चाहिए। यावत्—षट्सयोगी का अन्तिम भग इस प्रकार कहना चाहिए—अथवा दो शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे, यावत् एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (यहाँ तक जानना चाहिए।)

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त, भा १ (मूलपाठ-टिप्पण), पृ ४३१-४३३
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४४५

सप्तसयोगी एक भग –अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे यावत् एक अध मप्तम-पृथ्वी मे होता है।

विवेचन—सात नैरयिको के असयोगी ७ भग—नरक सात है, प्रत्येक नरक मे सातो नैरयिक प्रवेश करते है, इसलिए ७ भग हुए।

द्विकसयोगी १२६ भग—द्विकसयोगी ६ विकल्प होते हैं, यथा—१-६, २-५, ३-४, ४-३, ५-२, ६-१। इन ६ विकल्पो के साथ रत्नप्रभादि के सयोग से जनित २१ भगो का गुणाकार करने से १२६ भग द्विकसयोगी होते है।

त्रिकसयोगी ५२५ भंग—सात नैरयिको के त्रिकसयोगी १५ विकल्प होते है। यथा—१-१-५, १-२-४, २-१-४, १-३-३, २-२-३, ३-१-३, १-४-२, २-३-२, ३-२-२, ४-१-२, १-५-१, २-४-१, ३-३-१, ४-२-१ और ५-१-१।

इन १५ विकल्पो को पूर्वोक्त त्रिकसयोगी ३५ विकल्पो के साथ गुणा करने से कुल ५२५ भग होते है।

चतु संयोगी ७०० भग—चतु सयोगी २० विकल्प होते है। यथा—१-१-१-४, १-१-४-१, १-४-१-१, ४-१-१-१, १-१-२-३, १-१-३-२, १-३-१-२, ३-१-१-२, १-२-१-३, २-१-१-३, ३-२-१-१, २-३-१-१, २-२-२-१, २-१-२-२, १-२-२-२, २-२-१-२, १-२-३-१, १-३-२-१, २-१-३-१ और ३-१-२-१।

इन २० विकल्पो को पूर्वोक्त ३५ भगो के साथ गुणाकार करने पर चतु सयोगी कुल ७०० भग होते है।

पचसयोगी ३१५ भग—इसके १५ विकल्प होते हे। यथा—१-१-१-१-३, १-१-१-३-१ इत्यादि। इन १५ विकल्पो को रत्नप्रभादि के सयोग से जनित २१ भगो के साथ गुणाकार करने पर पचसयोगी भगो की कुल सख्या ३१५ होती है।

षट्सयोगी ४२ भग—षट्सयोगी विकल्प ६ होते है। यथा—१-१-१-१-१-२, १-१-१-१-२-१, १-१-१-२-१-१, १-१-२-१-१-१, १-२-१-१-१-१, २-१-१-१-१-१। इन ६ विकल्पो के साथ रत्नप्रभादि के सयोग से जनित ७ भगो का गुणाकार करने पर षट्सयोगी भगो की कुल सख्या ४२ होती है।

सप्तसयोगी एक भग—१-१-१-१-१-१-१ इस प्रकार सप्तसयोगी एक ही भग होता है।

इस प्रकार सात नैरयिको के नरकप्रवेशनक मे एकसयोगी ७, द्विकसयोगी १२६, त्रिकसयोगी ५२५, चतुष्कसयोगी ७००, पचसयोगी ३१५, षट्सयोगी ४२ और सप्तसयोगी १, यो कुल मिलाकर १७१६ भग होते है।[1]

आठ नैरयिको के प्रवेशनकभग—

२३ अट्ठ भते! नेरतिया नेरइयपवेसणएण पविसमाणा० पुच्छा। गगेया! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा ७।

---

१ -(क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ ४३४-४३५
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४४५

अहवा १+७एगे रयण० सत्त सक्करप्पभाए होज्जा १। एव दुयासजोगो जाव छक्कसजोगो य जहा सत्तण्ह भणिओ तहा अट्ठण्ह वि भाणियव्वो, नवर एक्केको अब्भहिओ सचारेयव्वो। सेस त चेव जाव छक्कसजोगस्स। अहवा ३+१+१+१+१+१ तिण्णि सक्कर० एगे वालुय० जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयण० जाव एगे तमाए दो अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयण० जाव दो तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, एव सचारेयव्व जाव अहवा दो रयण० एगे सक्कर० जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा। ३००३।

[२३ प्र] भगवन्! आठ नैरयिक जीव, नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा मे उत्पन्न होते है? इत्यादि प्रश्न।

[२३ उ] गागेय! रत्नप्रभा मे होते है, यावत् अथवा अध सप्तमपृथ्वी मे होते है।

अथवा एक रत्नप्रभा मे और सात शर्कराप्रभा मे होते है, इत्यादि, जिस प्रकार सात नेरयिको के द्विकसयोगी त्रिकसयोगी, चतु सयोगी, पञ्चसयोगी और षट्सयोगी भग कहे गए है, उसी प्रकार आठ नैरयिको के भी द्विकसयोगी आदि भग कहने चाहिए, किन्तु इतना विशेष है कि एक-एक नैरयिक का अधिक सचार करना चाहिए। शेष सभी षट्सयोगी तक पूर्वोक्त प्रकार से कहना चाहिए। अन्तिम भग यह है—अथवा तीन शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे यावत् एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, यावत् एक तम प्रभा मे और दो अध सप्तमपृथ्वी मे होते है। (२) अथवा एक रत्नप्रभा मे यावत् दो तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। इसी प्रकार सभी स्थानो मे सचार करना चाहिए। यावत्—अथवा दो रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे यावत् एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है।

विवेचन—आठ नैरयिको के असयोगी भग सिर्फ ७ होते है।

द्विकसयोगी १४७ भंग—इसके सात विकल्प होते है। यथा—१-७, २-६, ३-५, ४-४, ५-३, ६-२, ७-१। इस सात विकल्पो के साथ सात नरको के २१ भगो का गुणाकार करने पर कुल १४७ भग होते है।

त्रिकसयोगी ७३५ भग—इसके २१ विकल्प होते है। यथा—१-१-६, १-२-५, १-३-४, १-४-३, १-५-२, १-६-१, ६-१-१, ५-२-१, २-१-५, २-२-४, २-३-३, २-४-२, २-५-१, ३-१-४, ३-२-३, ३-४-१, ३-३-२, ४-२-२, ४-३-१, ४-१-३, और ५-१-२। इन २१ विकल्पो के साथ सात नरको के त्रिकसयोगी (पूर्वोक्तवत्) ३५ भगो का गुणाकार करने पर कुल ७३५ भग होते है।

चतु-सयोगी १२२५ भग—इसके ३५ विकल्प होते है। यथा—१-१-१-५, १-१-२-४, १-२-१-४, २-१-१-४, १-१-३-३, १-२-२-३, २-१-२-३, १-३-१-३, २-२-१-३, ३-१-१-३, १-१-४-२, १-२-३-२, २-१-३-२, १-३-२-२, २-२-२-२, ३-१-२-२, १-४-१-२, २-३-१-२, ३-२-१-२, ४-१-१-२, १-१-५-१, १-२-४-१, २-१-४-१, १-३-३-१, २-२-३-१, ३-१-३-१, १-४-२-१, २-३-२-१, ३-२-२-१, ४-१-२-१, १-५-१-१, २-४-१-१, ३-३-१-१, ४-२-१-१ और ५-१-१-१। इन ३५ विकल्पो के साथ चतु सयोगी पूर्वोक्त ३५ भगो का गुणाकार करने पर कुल १२२५ भग होते है।

पचसंयोगी ७३५ भग—इमके विकल्प ३५ होते है। यथा—१-१-१-१-४ इत्यादि क्रम मे पूर्वापरसख्या के चालन से ३५ विकल्प पूर्ववत् होते हे। उन्हे मात नरकपदो से जनित २१ भगो के साथ गुणा करने मे कुल भगो की मख्या ७३५ होती हे।

षट्सयोगी १४७ भग—इमके २१ विकल्प होते हे। यथा—१-१-१-१-१-३ इत्यादि क्रम से पूर्वापर सख्याचालन से २१ विकल्प। इनके साथ मात नरको के मयोग मे जनित ७ भगो का गुणा करने से कुल भगो की सख्या १४७ होती हे।

सप्तसयोगी ७ भग—इनके ७ विकल्प होते हे। यथा—१-१-१-१-१-१-२, १-१-१-१-१-२-१ १-१-११-२-१-१, १-१-१-२-१-१-१, १-१-२-१-१-१-१, १-२-१-१-१-१-१, २-१-१-१-१-१-१। इन सात विकल्पो का प्रत्येक नरक के साथ सयोग करने से केवल ७ भग होते हे।

इस प्रकार आठ नैरयिको के नरकप्रवेशनक के असयोगी ७ भग, द्विकसयोगी १४७, त्रिकसयोगी ७३५, चतुष्कसयोगी १२२५, पचसयोगी, ७३५, पट्सयोगी १४७ और सप्तसयोगी ७ भग—कुल मिला कर सब भग ३००३ होते।[1]

नौ नैरयिको के प्रवेशनकभंग—

२४. नव भते! नेरतिया नेरतियपवेसणएण पविसमाणा० पुच्छा।

गगेया! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा ७।

अहवा १-८ एगे रयण० अट्ठ सक्करप्पभाए होज्जा। एव दुयासजोगो जाव सत्तगसजोगो य। जहा अट्ठण्ह भणिय तहा नवण्ह पि भाणियव्व, नवर एक्केक्को अब्भहिओ सचारेयव्वो, सेस त चेव। पच्छिमो आलावगो— अहवा तिण्णि रयण० एगे सक्कर० एगे वालुय० जाव एगे अहेसत्तमाए वा होज्जा। ५००५।

[२४ प्र] भगवन्! नौ नैरयिक जीव, नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा मे उत्पन्न होते है? इत्यादि प्रश्न।

[२४ उ] हे गागेय! वे नौ नैरयिक जीव रत्नप्रभा मे होते है, अथवा यावत् अध सप्तमपृथ्वी मे होते है।

अथवा एक रत्नप्रभा मे और आठ शर्कराप्रभा मे होते है, इत्यादि जिस प्रकार अष्ट नैरयिको के द्विकसयोगी, त्रिकसयोगी, चतुष्कसयोगी, पचसयोगी, षट्सयोगी और सप्तसयोगी भग कहे है, उसी प्रकार नौ नैरयिको के विषय मे भी कहना चाहिए। विशेष यह है कि एक-एक नैरयिक का अधिक सचार करना चाहिए। शेष सभी पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिए। अतिम भग इस प्रकार है—अथवा तीन रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे, यावत् एक अध सप्तम-पृथ्वी मे होता है।

विवेचन—नौ नैरयिको के असयोगी भग—सात होते है।

द्विकसयोगी १६८ भग—इनके १-८, २-७, ३-६, ४-५, ६-३, ५-४, ७-२, ८-१ ये ८ विकल्प

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४४६

(ख) वियाहपण्णत्तिसुत्त, (मूलपाठ—टिप्पणयुक्त) भा १, पृ, ४३६

अहवा १+७एगे रयण० सत्त सक्करप्पभाए होज्जा १ । एव दुयासजोगो जाव छक्कसजोगो य जहा सत्तण्ह भणिओ तहा अट्ठण्ह वि भाणियव्वो, नवर एक्केको अब्भहिओ सचारेयव्वो । सेस त चेव जाव छक्कसजोगस्स । अहवा ३+१+१+१+१+१ तिण्णि सक्कर० एगे वालुय० जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयण० जाव एगे तमाए दो अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयण० जाव दो तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, एव सचारेयव्व जाव अहवा दो रयण० एगे सक्कर० जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा । ३००३ ।

[२३ प्र] भगवन् ! आठ नैरयिक जीव, नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा मे उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न ।

[२३ उ] गागेय ! रत्नप्रभा मे होते है, यावत् अथवा अध सप्तमपृथ्वी मे होते है ।

अथवा एक रत्नप्रभा मे और सात शर्कराप्रभा मे होते है, इत्यादि, जिस प्रकार सात नैरयिको के द्विकसयोगी त्रिकसयोगी, चतु सयोगी, पचसयोगी और षट्सयोगी भग कहे गए है, उसी प्रकार आठ नैरयिको के भी द्विकसयोगी आदि भग कहने चाहिए, किन्तु इतना विशेष है कि एक-एक नैरयिक का अधिक सचार करना चाहिए । शेष सभी षट्सयोगी तक पूर्वोक्त प्रकार से कहना चाहिए । अन्तिम भग यह है—अथवा तीन शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे यावत् एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है । (१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, यावत् एक तम प्रभा मे और दो अध सप्तमपृथ्वी मे होते है । (२) अथवा एक रत्नप्रभा मे यावत् दो तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है । इसी प्रकार सभी स्थानो मे सचार करना चाहिए । यावत्—अथवा दो रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे यावत् एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है ।

विवेचन—आठ नैरयिको के असयोगी भग सिर्फ ७ होते है ।

द्विकसंयोगी १४७ भग—इसके सात विकल्प होते है । यथा—१-७, २-६, ३-५, ४-४, ५-३, ६-२, ७-१ । इस सात विकल्पो के साथ सात नरको के २१ भगो का गुणाकार करने पर कुल १४७ भग होते है ।

त्रिकसयोगी ७३५ भग—इसके २१ विकल्प होते है । यथा—१-१-६, १-२-५, १-३-४, १-४-३, १-५-२, १-६-१, ६-१-१, ५-२-१, २-१-५, २-२-४, २-३-३, २-४-२, २-५-१, ३-१-४, ३-२-३, ३-४-१, ३-३-२, ४-२-२, ४-३-१, ४-१-३, और ५-१-२ । इन २१ विकल्पो के साथ सात नरको के त्रिकसयोगी (पूर्वोक्तवत्) ३५ भगो का गुणाकार करने पर कुल ७३५ भग होते है ।

चतु सयोगी १२२५ भग—इसके ३५ विकल्प होते है । यथा—१-१-१-५, १-१-२-४, १-२-१-४, २-१-१-४, १-१-३-३, १-२-२-३, २-१-२-३, १-३-१-३, २-२-१-३, ३-१-१-३, १-१-४-२, १-२-३-२, २-१-३-२, १-३-२-२, २-२-२-२, ३-१-२-२, १-४-१-२, २-३-१-२, ३-२-१-२, ४-१-१-२, १-१-५-१, १-२-४-१, २-१-४-१, १-३-३-१, २-२-३-१, ३-१-३-१, १-४-२-१, २-३-२-१, ३-२-२-१, ४-१-२-१, १-५-१-१, २-४-१-१, ३-३-१-१, ४-२-१-१ और ५-१-१-१ । इन ३५ विकल्पो के साथ चतु सयोगी पूर्वोक्त ३५ भगो का गुणाकार करने पर कुल १२२५ भग होते है ।

पचसयोगी ७३५ भग— इनके विकल्प ३५ होते है। यथा—१-१-१-१-४ इत्यादि क्रम से पूर्वापरसख्या के चालन से ३५ विकल्प पूर्ववत् होते है। उन्हे सात नरकपदो मे जनित २१ भगो के साथ गुणा करने से कुल भगो की सख्या ७३५ होती है।

षट्सयोगी १४७ भग—इनके २१ विकल्प होते है। यथा –१-१-१-१-१-३ इत्यादि क्रम से पूर्वापर सख्याचालन से २१ विकल्प। इनके साथ सात नरको के सयोग से जनित ७ भगो का गुणा करने से कुल भगो की सख्या १४७ होती है।

सप्तसयोगी ७ भग—इनके ७ विकल्प होते है। यथा—१-१-१-१-१-१-२, १-१-१-१-१-२-१, १-१-११-२-१-१, १-१-१-२-१-१-१, १-१-२-१-१-१-१, १-२-१-१-१-१-१, २-१-१-१-१-१-१। इन सात विकल्पों का प्रत्येक नरक के साथ सयोग करने से केवल ७ भग होते हैं।

इस प्रकार आठ नैरयिको के नरकप्रवेशनक के असयोगी ७ भग, द्विकसयोगी १४७, त्रिकसयोगी ७३५, चतुष्कसयोगी १२२५, पचसयोगी, ७३५, षट्सयोगी १४७ और सप्तसयोगी ७ भग—कुल मिला कर सब भग ३००३ होते।[1]

नौ नैरयिको के प्रवेशनकभग—

२४ नव भंते ! नेरतिया नेरतियपवेसणएण पविसमाणा० पुच्छा।

गगेया ! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा ७।

अहवा १-८ एगे रयण० अट्ठ सक्करप्पभाए होज्जा। एव दुयासजोगो जाव सत्तगसजोगो य। जहा अट्ठण्ह भणिय तहा नवण्ह वि भाणियव्व, नवर एक्केक्को अब्भहिओ सचारेयव्वो, सेस त चेव। पच्छिमो आलावगो— अहवा तिण्णि रयण० एगे सक्कर० एगे वालुय० जाव एगे अहेसत्तमाए वा होज्जा। ५००५।

[२४ प्र] भगवन् ! नौ नैरयिक जीव, नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा मे उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न।

[२४ उ] हे गागेय ! वे नौ नैरयिक जीव रत्नप्रभा मे होते है, अथवा यावत् अध सप्तमपृथ्वी मे होते है।

अथवा एक रत्नप्रभा मे और आठ शर्कराप्रभा मे होते हैं, इत्यादि जिस प्रकार अष्ट नैरयिको के द्विकसयोगी, त्रिकसयोगी, चतुष्कसयोगी, पचसयोगी, षट्सयोगी और सप्तसयोगी भग कहे है, उसी प्रकार नौ नैरयिको के विषय मे भी कहना चाहिए। विशेष यह है कि एक-एक नैरयिक का अधिक सचार करना चाहिए। शेष सभी पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिए। अतिम भग इस प्रकार है—अथवा तीन रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे, यावत् एक अध सप्तम-पृथ्वी मे होता है।

विवेचन—नौ नैरयिको के असयोगी भग—सात होते है।

द्विकसयोगी १६८ भग—इनके १-८, २-७, ३-६, ४-५, ६-३, ५-४, ७-२, ८-१ ये ८ विकल्प

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४४६

(ख) वियाहपण्णत्तिसुत्त, (मूलपाठ—टिप्पणयुक्त) भा १, पृ, ४३६

अहवा १+७एगे रयण० सत्त सक्करप्पभाए होज्जा १। एव दुयासजोगो जाव छक्कसजोगो य जहा सत्तण्ह भणिओ तहा अट्ठण्ह वि भाणियव्वो, नवर एक्केको अब्भहिओ सचारेयव्वो। सेस त चेव जाव छक्कसजोगस्स। अहवा ३+१+१+१+१+१ तिण्णि सक्कर० एगे वालुय० जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयण० जाव एगे तमाए दो अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयण० जाव दो तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, एव सचारेयव्व जाव अहवा दो रयण० एगे सक्कर० जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा। ३००३।

[२३ प्र] भगवन्! आठ नैरयिक जीव, नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा मे उत्पन्न होते हैं? इत्यादि प्रश्न।

[२३ उ] गागेय! रत्नप्रभा मे होते है, यावत् अथवा अध सप्तमपृथ्वी मे होते है।

अथवा एक रत्नप्रभा मे और सात शर्कराप्रभा मे होते है, इत्यादि, जिस प्रकार सात नैरयिको के द्विकसयोगी त्रिकसयोगी, चतुष्कसयोगी, पचसयोगी और षट्कसयोगी भग कहे गए है, उसी प्रकार आठ नैरयिको के भी द्विकसयोगी आदि भग कहने चाहिए, किन्तु इतना विशेष है कि एक-एक नैरयिक का अधिक सचार करना चाहिए। शेष सभी षट्कसयोगी तक पूर्वोक्त प्रकार से कहना चाहिए। अन्तिम भग यह है—अथवा तीन शर्कराप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे यावत् एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, यावत् एक तम प्रभा मे और दो अध सप्तमपृथ्वी मे होते है। (२) अथवा एक रत्नप्रभा मे यावत् दो तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। इसी प्रकार सभी स्थानो मे सचार करना चाहिए। यावत्—अथवा दो रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे यावत् एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है।

विवेचन—आठ नैरयिको के असयोगी भग सिर्फ ७ होते है।

द्विकसयोगी १४७ भग—इनके सात विकल्प होते है। यथा—१-७, २-६, ३-५, ४-४, ५-३, ६-२, ७-१। इन सात विकल्पो के साथ सात नरको के २१ भगो का गुणाकार करने पर कुल १४७ भग होते है।

त्रिकसयोगी ७३५ भग—इनके २१ विकल्प होते है। यथा—१-१-६, १-२-५, १-३-४, १-४-३, १-५-२, १-६-१, ६-१-१, ५-२-१, २-१-५, २-२-४, २-३-३, २-४-२, २-५-१, ३-१-४, ३-२-३ ३-४-१, ३-३-२, ४-२-२ ४-३-१, ४-१-३, और ५-१-२। इन २१ विकल्पो के साथ सात नरको के त्रिकसयोगी (पूर्वोक्तवत्) ३५ भगो का गुणाकार करने पर कुल ७३५ भग होते है।

चतुष्कसयोगी १२२५ भग—इनके ३५ विकल्प होते है। यथा—१-१-१-५, १-१-२-४, [illegible] १-१-३-३, १-२-२-३, २-१-२-३, १-३-१-३, २-२-१-३, ३-१-१-३ [illegible] २-१-३-२, १-३-२-२, ३-२-२-२ [illegible] ३-१-२ २, १-४-१-२, २-३-१-२, [illegible] १-२-४-१, २-१-४-१, १-३-३-१, २-२-३-१, ३-१-३-१, [illegible] ३-२-२-१, ४-१-२-१, १-५-१-१, २-४-१-१, ३-३-१-१, ४-२-१-१ और [illegible] १-१ [illegible] चतुष्कसयोगी पूर्वोक्त ३५ भगो का गुणाकार करने पर कुल [illegible]।

अथवा एक रत्नप्रभा मे और नौ शर्कराप्रभा मे होते है, इत्यादि जिस प्रकार नौ नैरयिक जीवो के द्विकसयोगी, त्रिकसयोगी, चतुष्कसयोगी, पचसयोगी, षट्सयोगी एव सप्तसयोगी भग कहे गए है, उसी प्रकार दस नैरयिक जीवो के भी (द्विकसयोगी यावत् सप्तसयोगी) कहने चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ एक-एक नैरयिक का अधिक सचार करना चाहिए, शेष सभी भग पूर्ववत् जानने चाहिए। उनका अन्तिम आलापक (भग) इस प्रकार है—अथवा चार रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे यावत् एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है।

विवेचन—दस नैरयिको के असयोगी भग—केवल सात होते है।

द्विकसयोगी १८९ भग—इनके ९ विकल्प होते है। यथा १-९, २-८, ३-७, ४-६, ५-५ ६-४, ७-३, ८-२, ९-१। इन ९ विकल्पो के साथ सात नरको के सयोग मे जनित २१ भगो को गुणा करने पर कुल १८९ भग होते है।

त्रिकसयोगी १२६० भग—इनके ३६ विकल्प होते है। यथा—१-१-८, १-२-७, १-३-६, १-४-५, १-५-४, १-६-३, १-७-२, १-८-१, २-७-१, २-६-२, २-५-३, २-४-४, २-३-५, २-२-६, २-१-७, ३-६-१, ३-५-२, ३-४-३, ३-३-४, ३-२-५, ३-१-६, ४-५-१, ४-४-२, ४-३-३, ४-२-४, ४-१-५, ५-४-१, ५-३-२, ५-२-३, ५-१-४, ६-३-१, ६-२-२, ६-१-३, ७-२-१, ७-१-२, और ८-१-१। इन ३६ विकल्पो को, सात नरको के सयोग मे जनित पूर्वोक्त ३५ भगो के साथ गुणा करने पर कुल १२६० भग होते है।

चतुष्कसयोगी २९४० भग—इनके १-१-१-७ इत्यादि प्रकार से अको के परस्पर चालन से ८४ विकल्प होते है। इन ८४ विकल्पो को सात नरको क सयोग से पूर्वोक्त प्रकार से जनित ३५ भगो के साथ गुणाकार करने पर कुल भगो की सख्या २९४० होती है।

पचसयोगी २६४६ भग—इनके १-१-१-१-६ इत्यादि प्रकार से अको के परस्पर चालन से १२६ विकल्प होते हैं। इन १२६ विकल्पो को सात नरको के सयोग से (पूर्ववत्) जनित २१ भगो के साथ गुणा करने पर १२६ × २१ = २६४६ कुल भग होते है।

षट्सयोगी ८८२ भग—इनके १-१-१-१-१-५ इत्यादि प्रकार से अंको के परस्पर चालन करने से १२६ विकल्प होते है। इन १२६ विकल्पो को सात नरको के सयोग से जनित ७ भगो के साथ गुणा करने पर भगो की कुल सख्या ८८२ होती है।

सप्तसयोगी ८४ भग—इनके १-१-१-१-१-१-४ इत्यादि प्रकार से अको के परस्पर चालन से ८४ विकल्प होते है। इन्हे सात नरको के समुत्पन्न एक भग के साथ गुणाकार करने पर ८४ भग कुल होते हैं।

इस प्रकार दस नैरयिको के नरकप्रवेशनक के असयोगी ७ भग, द्विकसयोगी १८९, त्रिकसयोगी १२६०, चतुष्कसयोगी २९४०, पचसयोगी २६४६, षट्सयोगी ८८२ और सप्तसयोगी ८४ भग, ये सभी मिल कर दस नैरयिक जीवो के कुल ८००८ भग होते है।[1]

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा-१, पृ-४३८
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४४७

होते है। इन ८ विकल्पो को सात नरको के सयोग से जनित २१ भगो से गुणा करने पर कुल भगो की सख्या १६८ होती है।

त्रिकसयोगी ९८० भग—इसके २८ विकल्प होते है। यथा-१-१-७, २-३-४, ४-१-४, १-२-६, २-४-३, ४-२-३, १-३-५, २-५-२, ४-३-२, १-४-४, २-६-१, ४-४-१, १-५-३, ३-१-५, ५-१-३, १-६-२, ३-२-४, ५-२-२, १-७-१, ३-३-३, ५-३-१, २-१-६, ३-४-२, ६-१-२, २-२-५, ३-५-१, ६-२-१ और ७-१-१।

इन २८ विकल्पो को सात नरको के सयोग से जनित ३५ भगो के साथ गुणा करने पर कुल भगो की सख्या ९८० होती है।

चतुष्कसयोगी १९६० भग—इसके १-१-१-६ इस प्रकार चतु सयोगी ५६ विकल्प होते है। इन्हे सात नरको के सयोग से जनित (पूर्वोक्त) ३५ भगो के साथ गुणाकार करने पर कुल भगो की सख्या १९६० होती है।

पचसयोगी १४७० भग—इसके पचसयोगी १-१-१-१-६ इत्यादि प्रकार से ७० विकल्प होते है। इन्हे सात नरको के सयोग से जनित २१ भगो के साथ गुणा करने पर कुल भगो की सख्या १४७० होती है।

षट्सयोगी ३९२ भग—इसके १-१-१-१-१-४ इत्यादि प्रकार से ५६ विकल्प होते है। इन विकल्पो को सात नरको के सयोग से जनित ७ भगो के साथ गुणा करने पर कुल ३९२ भग होते हैं।

सप्तसयोगी २८ भग—इसके १-१-१-१-१-१-३ इत्यादि प्रकार से २८ विकल्प होते है, इनका सात नरको मे से प्रत्येक के साथ सयोग करने से केवल २८ भग ही होते है।

इस प्रकार नौ नैरयिको के नरकप्रवेशनक के एक-सयोगी (असयोगी) ७ भग, द्विकसयोगी १६८, त्रिकसयोगी ९८०, चतुष्कसयोगी १९६०, पचसयोगी १४७०, षट्सयोगी—३९२, और सप्तसयोगी २८ भग, ये सब मिलाकर ५००५ भग हुए।[1]

दश नैरयिको के प्रवेशनकभग—

२५. दस भते! नेरइया नेरइयपवेसणएणं पविसमाणा० पुच्छा। गंगेया! रयणप्पभाए होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा ७।

अहवा १+९ एगे रयणप्पभाए, नव सक्करप्पभाए होज्जा। एव दुयासजोगो जाव सत्तसजोगो य जहा नवण्ह, नवर एक्केक्को अब्भहिओ सचारेयव्वो। सेस त चेव। अपच्छिमआलावगो—अहवा ४+१+१+१+१+१+१, चत्तारि रयण०, एगे सक्करप्पभाए जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा। ८००८।

[२५ प्र] भगवन्! दस नैरयिकजीव, नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा मे होते हैं? इत्यादि (पूर्ववत्) प्रश्न।

[२५ उ] गागेय! वे दस नैरयिक जीव, रत्नप्रभा मे होते हैं, अथवा यावत् अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं।

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण युक्त) भा १, पृ ४३७
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४४६

अथवा एक रत्नप्रभा मे और नौ शर्कराप्रभा मे होते है, इत्यादि जिस प्रकार नौ नैरयिक जीवो के द्विकसयोगी, त्रिकसयोगी, चतुःसयोगी, पञ्चसयोगी, षट्सयोगी एव सप्तसयोगी भग कहे गए हैं, उसी प्रकार दस नैरयिक जीवो के भी (द्विकसयोगी यावत् सप्तसयोगी) कहने चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ एक-एक नैरयिक का अधिक सचार करना चाहिए, शेष सभी भग पूर्ववत् जानने चाहिए। उनका अन्तिम आलापक (भग) इस प्रकार है—अथवा चार रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे यावत् एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है।

विवेचन—दस नैरयिको के असयोगी भग—केवल सात होते है।

द्विकसयोगी १८९ भग—इनके ९ विकल्प होते हैं। यथा १-९, २-८, ३-७, ४-६, ५-५ ६-४, ७-३, ८-२, ९-१। इन ९ विकल्पो के साथ सात नरको के सयोग से जनित २१ भगो को गुणा करने पर कुल १८९ भग होते हैं।

त्रिकसयोगी १२६० भग—इनके ३६ विकल्प होते है। यथा—१-१-८, १-२-७, १-३-६, १-४-५, १-५-४, १-६-३, १-७-२, १-८-१, २-७-१, २-६-२, २-५-३, २-४-४, २-३-५, २-२-६, २-१-७, ३-६-१, ३-५-२, ३-४-३, ३-३-४, ३-२-५, ३-१-६, ४-५-१, ४-४-२, ४-३-३, ४-२-४, ४-१-५, ५-४-१, ५-३-२, ५-२-३, ५-१-४, ६-३-१, ६-२-२, ६-१-३, ७-२-१, ७-१-२, और ८-१-१। इन ३६ विकल्पो को, सात नरको के सयोग से जनित पूर्वोक्त ३५ भगो के साथ गुणा करने पर कुल १२६० भग होते हैं।

चतुष्कसयोगी २९४० भग—इनके १-१-१-७ इत्यादि प्रकार से अको के परस्पर चालन से ८४ विकल्प होते है। इन ८४ विकल्पो को सात नरको के सयोग से पूर्वोक्त प्रकार से जनित ३५ भगो के साथ गुणाकार करने पर कुल भगो की सख्या २९४० होती है।

पचसयोगी २६४६ भग—इनके १-१-१-१-६ इत्यादि प्रकार से अको के परस्पर चालन से १२६ विकल्प होते है। इन १२६ विकल्पो को सात नरको के सयोग से (पूर्ववत्) जनित २१ भगो के साथ गुणा करने पर १२६ × २१ = २६४६ कुल भग होते है।

षट्सयोगी ८८२ भग—इनके १-१-१-१-१-५ इत्यादि प्रकार से अको के परस्पर चालन करने से १२६ विकल्प होते हैं। इन १२६ विकल्पो को सात नरको के सयोग से जनित ७ भगो के साथ गुणा करने पर भगो की कुल सख्या ८८२ होती है।

सप्तसयोगी ८४ भग—इनके १-१-१-१-१-१-४ इत्यादि प्रकार से अको के परस्पर चालन से ८४ विकल्प होते है। इन्हे सात नरको के समुत्पन्न एक भग के साथ गुणाकार करने पर ८४ भग कुल होते है।

इस प्रकार दस नैरयिको के नरकप्रवेशनक के असयोगी ७ भग, द्विकसयोगी १८९, त्रिकसयोगी १२६०, चतुष्कसयोगी २९४०, पचसयोगी २६४६, षट्सयोगी ८८२ और सप्तसयोगी ८४ भग, ये सभी मिल कर दस नैरयिक जीवो के कुल ८००८ भग होते है।[१]

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा-१, पृ-४३८
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४४७

संख्यात नैरयिकों के प्रवेशनकभंग—

२६ संखेज्जा भंते ! नेरइया नेरइयप्पवेसणएणं पविसमाणा० पुच्छा । गंगेया ! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा ७ ।

अहवा एगे रयणप्पभाए, संखेज्जा सक्करप्पभाए होज्जा, एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा । अहवा दो रयण०, संखेज्जा सक्करप्पभाए वा होज्जा, एवं जाव अहवा दो रयण०, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा । अहवा तिण्णि रयण०, संखेज्जा सक्करप्पभाए होज्जा । एवं एएणं कमेणं एक्केक्को संचारेयव्वो जाव अहवा दस रयण०, संखेज्जा सक्करप्पभाए होज्जा, एवं जाव अहवा दस रयण०, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा । अहवा संखेज्जा रयण०, संखेज्जा सक्करप्पभाए होज्जा; जाव अहवा संखेज्जा रयणप्पभाए, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा । अहवा एगे सक्कर०, संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा; एवं जहा रयणप्पभाए उवरिमपुढवीहिं समं चारिया एवं सक्करप्पभाए वि उवरिमपुढवीहिं समं चारेयव्वा । एवं एक्केक्का पुढवी उवरिमपुढवीहिं समं चारेयव्वा जाव अहवा संखेज्जा तमाए, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा । २३१ ।

अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा । अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, संखेज्जा पंकप्पभाए होज्जा । जाव अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा । अहवा एगे रयण०, दो सक्कर०, संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा । जाव अहवा एगे रयण०, दो सक्कर०, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा । अहवा एगे रयण०, तिण्णि सक्कर०, संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा । एवं एएणं कमेणं एक्केक्को संचारेयव्वो । अहवा एगे रयण०, संखेज्जा सक्कर०, संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा, जाव अहवा एगे रयण०, संखेज्जा वालुय०, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा । अहवा दो रयण०, संखेज्जा सक्कर०, संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा । जाव अहवा दो रयण०, संखेज्जा सक्कर०, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा । अहवा तिण्णि रयण०, संखेज्जा सक्कर०, संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा । एवं एएणं कमेणं एक्केक्को रयणप्पभाए संचारेयव्वो, जाव अहवा संखेज्जा रयण०, संखेज्जा सक्कर०, संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा, जाव अहवा संखेज्जा रयण०, संखेज्जा सक्कर०, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा । अहवा एगे रयण०, एगे वालुय०, संखेज्जा पंकप्पभाए होज्जा, जाव अहवा एगे रयण०, एगे वालुय०, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा । अहवा एगे रयण०, दो वालुय०, संखेज्जा पंकप्पभाए होज्जा । एवं एएणं कमेणं तियासंजोगो चउक्कसंजोगो जाव सत्तगसंजोगो य जहा दसण्हं तहेव भाणियव्वो । पच्छिमो आलावगो सत्तसंजोगस्स—अहवा संखेज्जा रयण०, संखेज्जा सक्कर०, जाव संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा । ३३३७ ।

[२६ प्र] भगवन् ! संख्यात नैरयिक जीव, नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[२६ उ] गांगेय ! संख्यात नैरयिक रत्नप्रभा में होते हैं, यावत् अथवा अधःसप्तमपृथ्वी में होते हैं । (ये असंयोगी ७ भंग होते हैं ।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे होता है, और सख्यात शर्कराप्रभा मे होते हैं, (२-६) उसी प्रकार यावत् एक रत्नप्रभा मे और सख्यात अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं। (ये ६ भग हुए।)

(१) अथवा दो रत्नप्रभा मे और सख्यात शर्कराप्रभा मे होते है (२-६) उसी प्रकार यावत् दो रत्नप्रभा मे, और सख्यात अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं। (ये भी ६ भग हुए।)

(१) अथवा तीन रत्नप्रभा मे और सख्यात शर्कराप्रभा मे होते है। उसी प्रकार उसी क्रम से एक-एक नारक का सचार करना चाहिए। यावत् दस रत्नप्रभा मे और सख्यात शर्कराप्रभा मे होते है। इस प्रकार यावत् अथवा दस रत्नप्रभा मे और सख्यात अध सप्तमपृथ्वी मे होते है।

अथवा सख्यात रत्नप्रभा मे और सख्यात शर्कराप्रभा मे होते हैं। इस प्रकार यावत् सख्यात रत्नप्रभा मे और सख्यात अध सप्तमपृथ्वी मे होते है।

अथवा एक शर्कराप्रभा मे, और सख्यात वालुकाप्रभा मे होते हैं। जिस प्रकार रत्नप्रभा-पृथ्वी का शेष नरकपृथ्वियो के साथ सयोग-क्रिया उसी प्रकार शर्कराप्रभा-पृथ्वी का भी आगे की सभी नरक-पृथ्वियो के साथ सयोग करना चाहिए।

इसी प्रकार एक-एक पृथ्वी का आगे की नरक-पृथ्वियो के साथ सयोग करना चाहिए, यावत् अथवा सख्यात तम प्रभा मे और सख्यात अध सप्तमपृथ्वी मे होते है। (इस प्रकार द्विकसयोगी भगो की कुल सख्या २३१ हुई।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और सख्यात वालुकाप्रभा मे होते हैं। (२) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और सख्यात पकप्रभा मे होते है। इसी प्रकार यावत् (३-५) एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और सख्यात अध सप्तमपृथ्वी मे होते है।

अथवा एक रत्नप्रभा मे, दो शर्कराप्रभा मे और सख्यात वालुकाप्रभा मे होते है। यावत्—अथवा एक रत्नप्रभा मे, दो शर्कराप्रभा मे और सख्यात अध सप्तमपृथ्वी मे होते है।

अथवा एक रत्नप्रभा मे, तीन शर्कराप्रभा मे और सख्यात वालुकाप्रभा मे होते है। इस प्रकार इसी क्रम से एक-एक नारक का अधिक सचार करना चाहिए।

अथवा एक रत्नप्रभा मे सख्यात शर्कराप्रभा और सख्यात वालुकाप्रभा मे होते है। यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे सख्यात बालुकाप्रभा मे और सख्यात अध सप्तमपृथ्वी मे होते है।

अथवा दो रत्नप्रभा मे, सख्यात शर्कराप्रभा मे और सख्यात वालुकाप्रभा मे होते हैं। यावत् अथवा दो रत्नप्रभा मे, सख्यात शर्कराप्रभा मे और सख्यात अध सप्तमपृथ्वी मे होते है।

अथवा तीन रत्नप्रभा मे, सख्यात शर्कराप्रभा मे और सख्यात बालुकाप्रभा मे होते है। इस प्रकार इस क्रम से रत्नप्रभा मे एक-एक नैरयिक का सचार करना चाहिए, यावत् अथवा सख्यात रत्नप्रभा मे, सख्यात शर्कराप्रभा मे और सख्यात बालुकाप्रभा मे होते है। यावत्—अथवा सख्यात रत्नप्रभा मे, सख्यात शर्कराप्रभा मे और सख्यात अध सप्तमपृथ्वी मे होते है।

अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और सख्यात पकप्रभा मे होते है। यावत्-अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और सख्यात अध सप्तमपृथ्वी मे होते है।

अथवा एक रत्नप्रभा मे, दो बालुकाप्रभा मे और सख्यात पकप्रभा मे होते है ।

इसी प्रकार इसी क्रम से त्रिकसयोगी, चतुष्कसयोगी, यावत् सप्तसयोगी भगो का कथन, दस नैरयिकसम्बन्धी भगो के समान करना चाहिए । अन्तिम भग (आलापक) जो सप्तसयोगी है, यह है—अथवा सख्यात रत्नप्रभा मे, सख्यात शर्कराप्रभा मे यावत् सख्यात अध सप्तमपृथ्वी मे होते है ।

विवेचन—सख्यात का स्वरूप—आगमिक परिभाषानुसार यहाँ ग्यारह से लेकर शीर्षप्रहेलिका तक की सख्या को सख्यात कहा गया है ।

असयोगी ७ भग—प्रत्येक नरक के साथ सख्यात का सयोग होने से असयोगी या एकसयोगी ७ भग होते है ।

द्विकसयोगी २३१ भग—द्विकसयोगी मे सख्यात के दो विभाग किये गए है, इसलिए एक और सख्यात, दो और सख्यात, यावत् दस और सख्यात तथा सख्यात और सख्यात इस प्रकार एक विकल्प के ११ भग होते है ।

ये विकल्प रत्नप्रभादि पृथ्वियो के साथ आगे की पृथ्वियो का सयोग करने पर एक से लेकर सख्यात तक ग्यारह पदो का सयोग करने से और शर्कराप्रभादि पृथ्वियो के साथ केवल 'सख्यात' पद का सयोग करने से बनते है ।

रत्नप्रभादि पूर्व-पूर्व की पृथ्वियो के साथ सख्यात पद का सयोग और आगे-आगे की पृथ्वियो के साथ एकादि पदो का सयोग करने से जो भग होते है, उनकी विवक्षा यहाँ नही की गई है । अर्थात् एक रत्नप्रभा मे और सख्यात शर्कराप्रभा मे होते है, तथा एक रत्नप्रभा मे और सख्यात बालुकाप्रभा मे होते है । यही क्रम यहा अभीष्ट है, न कि सख्यात रत्नप्रभा मे और एक शर्कराप्रभा मे होते है, सख्यात रत्नप्रभा मे और एक बालुकाप्रभा मे होते है, इत्यादि क्रम से भग करना अभीष्ट नही है । पूर्वसूत्रो मे भी यही क्रम ग्रहण किया गया है ।

यहाँ भी पहले की नरकपृथ्वियो के साथ एकादि सख्या का और आगे-आगे की नरकपृथ्वियो के साथ सख्यात राशि का सयोग करना चाहिए । इसमे आगे-आगे की नरकपृथ्वियो के साथ वाली सख्याल राशि मे से एकादि सख्या को कम करने पर भी सख्यातराशि की सख्यातता कायम रहती है । इनमे से रत्नप्रभा के एक से लेकर सख्यात तक ११ पदो का और शेष पृथ्वियो के साथ अनुक्रम से 'सख्यात' पद का सयोग करने से ६६ भग होते है । शर्कराप्रभा का शेष नरकपृथ्वियो के साथ सयोग करने से ५ विकल्प होते हैं । उन ५ विकल्पो को एकादि ग्यारह पदो से गुणा करने पर शर्करा-प्रभा के सयोग वाले कुल ५५ भग होते है । इसी प्रकार वालुकाप्रभा के सयोगवाले ४४ भग पकप्रभा के सयोग वाले ३३ भग, धूमप्रभा के सयोग वाले २२ भग और तम प्रभा के सयोगवाले ११ भग होते हैं । ये सभी मिलकर द्विकसयोगी ६६+५५+४४+३३+२२+११=२३१ भग होते है ।

त्रिकसयोगी ७३५ भग—त्रिकसयोगी मे २१ विकल्प होते है । यथा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, और सख्यात वालुकाप्रभा मे, यह प्रथम विकल्प है । अव पहली नरक मे १ जीव और तीसरी नरक मे सख्यात जीव, इस पद को कायम रखकर दूसरी नरक मे अनुक्रम से सख्या का विन्यास किया जाता है । अर्थात्—दो से लेकर दस तक की सख्या का तथा 'सख्यात' पद का योग करने मे कुल ११ भग होते हैं । तथा इसके वाद दूसरी और तीसरी पृथ्वी मे सख्यात पद को कायम

रखकर पहली पृथ्वी मे दो से लेकर दस तक एव सख्यात पद का सयोग करने पर दस भग होते हैं। ये सब मिलकर २१ भग होते हैं। इन २१ विकल्पो के साथ पूर्वोक्त सात नरको के त्रिकसयोगी ३५ भगो को गुणा करने पर त्रिकसयोगी कुल ७३५ भग होते हैं।

चतुःसयोगी १०८५ भग—पहले की चार नरकपृथ्वियो के साथ क्रमश १-१-१ और सख्यात इस प्रकार प्रथम भग होता है। इसके वाद पूर्वोक्त क्रम मे तीसरी नरक मे, दो से लेकर सख्यात पद तक का सयोग करने से दूसरे १० विकल्प बनते हैं। इसी प्रकार दूसरी नरकपृथ्वी मे और प्रथम नरक-पृथ्वी मे भी दो से लेकर सख्यात पद तक का सयोग करने से बीस विकल्प होते हैं। ये सभी मिल कर ३१ विकल्प होते हैं। इन ३१ विकल्पो के साथ सात नरको के चतु सयोगी पूर्वोक्त ३५ विकल्पो को गुणा करने पर कुल १०८५ भग होते हैं।

पचसयोगी ८६१ भग—प्रथम की पाँच नरकभूमियो के साथ १-१-१-१ और सख्यात, इस क्रम से पहला भग होता है। इसके पश्चात् पूर्वोक्त क्रम से चौथी नरकभूमि मे अनुक्रम से दो से लेकर सख्यात-पद तक का सयोग करना चाहिए। इसी प्रकार तीसरी, दूसरी और पहली नरकपृथ्वी मे भी दो से लेकर सख्यात-पद तक का सयोग करना चाहिए। इस प्रकार सब मिल कर पचसयोगी ४१ भग होते है। उनके साथ पूर्वोक्त ७ नरक सम्बन्धी पचसयोगी २१ पदो का गुणा करने से कुल ८६१ भग होते है।

षट्सयोगी ३५७ भग—षट्सयोग मे पूर्वोक्त क्रमानुसार ५१ भग होते हैं। उनके साथ सात नरको के षट्सयोगी पूर्वोक्त ७ पदो का गुणा करने से कुल ३५७ भग होते हैं।

सप्तसयोगी ६१ भग—पूर्वोक्त रीति से ६१ भग समझने चाहिए। इस प्रकार सख्यात नैरयिक जीवो—आश्रयी ७+२३१+७३५+१०८५+८६१+३५७+६१=३३३७ कुल[1] भग होते है।

असंख्यात नैरयिकों के प्रवेशनकभंग—

२७ असखेज्जा भते ! नेरइया नेरइयपवेसणएणं० पुच्छा।

गगेया ! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा ७।

अहवा एगे रयण०, असखेज्जा सक्करप्पभाए होज्जा। एव दुयासजोगो जाव सत्तगसजोगो य जहा सखिज्जाण भणिओ तहा असखेज्जाण वि भाणियव्वो, नवर असखेज्जाओ अब्भहिओ भाणि-यव्वो, सेस त चेव जाव सत्तगसजोगस्स पच्छिमो आलावगो—अहवा असखेज्जा रयण० असखेज्जा सक्कर० जाव असखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा।

[२७ प्र] भगवन् ! असख्यात नैरयिक, नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते है ? इत्यादि प्रश्न।

[२७ उ] गागेय ! वे रत्नप्रभा मे होते है, अथवा यावत् अध सप्तमपृथ्वी मे होते है, अथवा एक रत्नप्रभा मे और असख्यात शर्कराप्रभा मे होते हैं।

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ—टिप्पणयुक्त) भा १, पृ ४४०
(ख) भगवती विवेचनयुक्त (प घेवरचन्दजी) भा ४, पृ १६६०-१६६१

अथवा एक रत्नप्रभा मे, दो वालुकाप्रभा मे और सख्यात पकप्रभा मे होते है ।

इसी प्रकार इसी क्रम से त्रिकसयोगी, चतुष्कसयोगी, यावत् सप्तसयोगी भगो का कथन, दस नैरयिकसम्बन्धी भगो के समान करना चाहिए । अन्तिम भग (आलापक) जो सप्तसयोगी है, यह है—अथवा सख्यात रत्नप्रभा मे, सख्यात शर्कराप्रभा मे यावत् सख्यात अध सप्तमपृथ्वी मे होते है ।

विवेचन—सख्यात का स्वरूप—आगमिक परिभाषानुसार यहाँ ग्यारह से लेकर शीर्षप्रहेलिका तक की सख्या को सख्यात कहा गया है ।

असंयोगी ७ भंग—प्रत्येक नरक के साथ सख्यात का सयोग होने से असयोगी या एकसयोगी ७ भग होते है ।

द्विकसयोगी २३१ भग—द्विकसयोगी मे सख्यात के दो विभाग किये गए है, इसलिए एक और सख्यात, दो और सख्यात, यावत् दस और सख्यात तथा सख्यात और सख्यात इस प्रकार एक विकल्प के ११ भग होते है ।

ये विकल्प रत्नप्रभादि पृथ्वियो के साथ आगे की पृथ्वियो का सयोग करने पर एक से लेकर सख्यात तक ग्यारह पदो का सयोग करने से और शर्कराप्रभादि पृथ्वियो के साथ केवल 'सख्यात' पद का सयोग करने से बनते है ।

रत्नप्रभादि पूर्व-पूर्व की पृथ्वियो के साथ सख्यात पद का सयोग और आगे-आगे की पृथ्वियो के साथ एकादि पदो का सयोग करने से जो भग होते है, उनकी विवक्षा यहाँ नही की गई है । अर्थात् एक रत्नप्रभा मे और सख्यात शर्कराप्रभा मे होते है, तथा एक रत्नप्रभा मे और सख्यात बालुकाप्रभा मे होते है । यही क्रम यहा अभीष्ट है, न कि सख्यात रत्नप्रभा मे और एक शर्कराप्रभा मे होते है, सख्यात रत्नप्रभा मे और एक बालुकाप्रभा मे होते है, इत्यादि क्रम से भग करना अभीष्ट नही है । पूर्वसूत्रो मे भी यही क्रम ग्रहण किया गया है ।

यहाँ भी पहले की नरकपृथ्वियो के साथ एकादि सख्या का और आगे-आगे की नरकपृथ्वियो के साय सख्यात राशि का सयोग करना चाहिए । इसमे आगे-आगे की नरकपृथ्वियो के साथ वाली सख्यात राशि मे से एकादि सख्या को कम करने पर भी सख्यातराशि की सख्यातता कायम रहती है । इनमे से रत्नप्रभा के एक से लेकर सख्यात तक ११ पदो का और शेष पृथ्वियो के साथ अनुक्रम से 'सख्यात' पद का सयोग करने से ६६ भग होते है । शर्कराप्रभा का शेष नरकपृथ्वियो के साथ सयोग करने से ५ विकल्प होते है । उन ५ विकल्पो को एकादि ग्यारह पदो से गुणा करने पर शर्करा-प्रभा के सयोग वाले कुल ५५ भग होते है । इसी प्रकार बालुकाप्रभा के सयोगवाले ४४ भग पकप्रभा के सयोग वाले ३३ भग, धूमप्रभा के सयोग वाले २२ भग और तम प्रभा के सयोगवाले ११ भग होते हैं । ये सभी मिलकर द्विकसयोगी ६६+५५+४४+३३+२२+११=२३१ भग होते हैं ।

त्रिकसयोगी ७३५ भग—त्रिकसयोगी मे २१ विकल्प होते हैं । यथा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, और सख्यात वालुकाप्रभा मे, यह प्रथम विकल्प है । अव पहली नरक मे १ जीव और तीसरी नरक मे सख्यात जीव, इस पद को कायम रखकर दूसरी नरक मे अनुक्रम से सख्या का विन्यास किया जाता है । अर्थात्—दो से लेकर दस तक की सख्या का तथा 'सख्यात' पद का योग करने से कुल ११ भग होते है । तथा इसके वाद दूसरी और तीसरी पृथ्वी मे सख्यात पद को कायम

रखकर पहली पृथ्वी मे दो से लेकर दस तक एव सख्यात पद का सयोग करने पर दस भग होते हैं। ये सब मिलकर २१ भग होते है। इन २१ विकल्पो के साथ पूर्वोक्त सात नरको के त्रिकसयोगी ३५ भगो को गुणा करने पर त्रिकसयोगी कुल ७३५ भग होते हैं।

चतु:सयोगी १०८५ भग—पहले की चार नरकपृथ्वियो के साथ क्रमश १-१-१ और सख्यात इस प्रकार प्रथम भग होता है। इसके बाद पूर्वोक्त क्रम से तीसरी नरक मे, दो से लेकर सख्यात पद तक का सयोग करने से दूसरे १० विकल्प बनते है। इसी प्रकार दूसरी नरकपृथ्वी मे और प्रथम नरक-पृथ्वी मे भी दो से लेकर सख्यात पद तक का सयोग करने से बीस विकल्प होते है। ये सभी मिल कर ३१ विकल्प होते है। इन ३१ विकल्पो के साथ सात नरको के चतु सयोगी पूर्वोक्त ३५ विकल्पो को गुणा करने पर कुल १०८५ भग होते हैं।

पचसयोगी ८६१ भग—प्रथम की पाँच नरकभूमियो के साथ १-१-१-१ और सख्यात, इस क्रम से पहला भग होता है। इसके पश्चात् पूर्वोक्त क्रम से चौथी नरकभूमि मे अनुक्रम से दो से लेकर सख्यात-पद तक का सयोग करना चाहिए। इसी प्रकार तीसरी, दूसरी और पहली नरकपृथ्वी मे भी दो से लेकर सख्यात-पद तक का सयोग करना चाहिए। इस प्रकार सब मिल कर पचसयोगी ४१ भग होते है। उनके साथ पूर्वोक्त ७ नरक सम्बन्धी पचसयोगी २१ पदो का गुणा करने से कुल ८६१ भग होते हैं।

षट्सयोगी ३५७ भग—षट्सयोग मे पूर्वोक्त क्रमानुसार ५१ भग होते हैं। उनके साथ सात नरको के षट्सयोगी पूर्वोक्त ७ पदो का गुणा करने से कुल ३५७ भग होते है।

सप्तसयोगी ६१ भग—पूर्वोक्त रीति से ६१ भग समझने चाहिए। इस प्रकार सख्यात नैरयिक जीवो—आश्रयी ७+२३१+७३५+१०८५+८६१+३५७+६१=३३३७ कुल[1] भग होते है।

असंख्यात नैरयिकों के प्रवेशनकभंग—

२७ असखेज्जा भते! नेरइया नेरइयपवेसणएणं० पुच्छा।

गगेया! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा ७।

अहवा एगे रयण०, असखेज्जा सक्करप्पभाए होज्जा। एव दुयासजोगो जाव सत्तगसजोगो य जहा सखिज्जाण भणिओ तहा असखेज्जाण वि भाणियव्वो, नवर असखेज्जाओ अब्भहिओ भाणियव्वो, सेस त चेव जाव सत्तगसजोगस्स पच्छिमो आलावगो—अहवा असखेज्जा रयण० असखेज्जा सक्कर० जाव असखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा।

[२७ प्र] भगवन्! असख्यात नैरयिक, नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते है? इत्यादि प्रश्न।

[२७ उ] गागेय! वे रत्नप्रभा मे होते हैं, अथवा यावत् अध सप्तमपृथ्वी मे होते है, अथवा एक रत्नप्रभा मे और असख्यात शर्कराप्रभा मे होते है।

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ—टिप्पणयुक्त) भा १, पृ ४४०
(ख) भगवती विवेचनयुक्त (प घेवरचन्दजी) भा ४, पृ १६६०-१६६१

जिस प्रकार सख्यात नैरयिको के द्विकसयोगी यावत् सप्तसयोगी भग कहे, उसी प्रकार असख्यात के भी कहना चाहिए। परन्तु इतना विशेष है कि यहाँ 'असख्यात' यह पद कहना चाहिए। (अर्थात्—बारहवाँ असख्यात पद कहना चाहिए।) शेष सभी पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिए। यावत्—अन्तिम आलापक यह है—अथवा असख्यात रत्नप्रभा मे, असख्यात शर्कराप्रभा मे यावत् असख्यात अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं।

विवेचन—असख्यात पद के एकसयोगी भग—सात होते है। **द्विकसयोगी से सप्तसयोगी तक भग**—असख्यातपद के द्विकसयोगी २५२, त्रिकसयोगी ८०५, चतुष्कसयोगी ११९० पचसयोगी ९४५, षट्सयोगी ३९२ एव सप्तसयोगी ६७ भग होते है, इस प्रकार असख्यात नैरयिको के नैरयिक-प्रवेशनक के कुल मिलाकर ३६५८ भग होते है।[1]

उत्कृष्ट नैरयिक-प्रवेशनक-प्ररूपणा—

२८. उक्कोसा ण भते! नेरइया नेरतियपवेसणएण० पुच्छा?

गगेया! सव्वे वि ताव रयणप्पभाए होज्जा ७।

अहवा रयणप्पभाए य सक्करप्पभाए य होज्जा। अहवा रयणप्पभाए य वालुयप्पभाए य होज्जा, जाव अहवा रयणप्पभाए य अहेसत्तमाए य होज्जा।

अहवा रयणप्पभाए य सक्करप्पभाए य वालुयप्पभाए य होज्जा। एव जाव अहवा रयण०, सक्करप्पभाए य अहेसत्तमाए य होज्जा ५। अहवा रयण०, वालुय०, पकप्पभाए य होज्जा, जाव अहवा रयण०, वालुय०, अहेसत्तमाए य होज्जा ४। अहवा रयण०, पकप्पभाए य, धूमाए य होज्जा। एवं रयणप्पभ अमुयतेसु जहा तिण्हं तियासजोगो भणिओ तहा भाणियव्व जाव अहवा रयण०, तमाए य, अहेसत्तमाए य होज्जा १५।

अहवा रयणप्पभाए, सक्करप्पभाए, वालुय०, पकप्पभाए य होज्जा। अहवा रयणप्पभाए, सक्करप्पभाए, वालुय०, धूमप्पभाए य होज्जा, जाव अहवा रयणप्पभाए, सक्करप्पभाए, वालुय०, अहेसत्तमाए य होज्जा ४। अहवा रयण०, सक्कर०, पक०, धूमप्पभाए य होज्जा। एव रयणप्पभ अमुयतेसु जहा चउण्ह चउक्कसजोगो तहा भाणियव्वं जाव अहवा रयण०, धूम०, तमाए, अहेसत्तमाए होज्जा २०। अहवा रयण०, सक्कर०, वालुय०, पक०, धूमप्पभाए य होज्जा १। अहवा रयणप्पभाए जाव पक०, तमाए य होज्जा २। अहवा रयण० जाव पंक०, अहेसत्तमाए य होज्जा ३। अहवा रयण०, सक्कर०, वालुय०, धूम०, तमाए य होज्जा ४। एवं रयणप्पभं अमुयतेसु जहा पंचण्ह पंचक-संजोगो तहा भाणियव्व जाव अहवा रयण०, पंकप्पभा, जाव अहेसमाए होज्जा १५।

अहवा रयण०, सक्कर०, जाव धूमप्पभाए, तमाए य होज्जा १। अहवा रयण०, जाव धूम०, अहेसत्तमाए य होज्जा २। अहवा रयण०, सक्कर०, जाव पक०, तमाए य, अहेसत्तमाए य होज्जा ३। अहवा रयण०, सक्कर०, वालुय०, धूमप्पभाए, तमाए, अहेसत्तमाए होज्जा ४। अहवा रयण०,

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, (मूलपाठ-टिप्पण) भा १, पृ ४४०

सक्कर०, पक० जाव अहेसत्तमाए य होज्जा ५। अहवा रयण०, वालुय०, जाव अहेसत्तमाए होज्जा ६। अहवा रयणप्पभाए य, सक्कर०, जाव एअहेसत्तमाए होज्जा १।

[२८ प्र] भगवन्! नैरयिक जीव नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए उत्कृष्ट पद मे क्या रत्नाप्रभा मे उत्पन्न होते है? इत्यादि प्रश्न।

[२८ उ] गागेय! उत्कृष्टपद मे सभी नैरयिक रत्नप्रभा मे होते है।

(द्विकसयोगी ६ भग)—(१) अथवा रत्नप्रभा और शर्कराप्रभा मे होते हैं। (२) अथवा रत्नप्रभा और बालुकाप्रभा मे होते है। इस प्रकार यावत् (३-६) रत्नप्रभा और अध सप्तमपृथ्वी मे होते है।

(त्रिकसयोगी १५ भग)—(१) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा और वालुकाप्रभा मे होते हैं। इस प्रकार यावत् (२-५) रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा और अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं। (६) अथवा रत्न-प्रभा वालुकाप्रभा और पकप्रभा मे होते हैं। यावत् (७-९) अथवा रत्नप्रभा, वालुकाप्रभा और अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं। (१०) अथवा रत्नप्रभा, पकप्रभा और धूमप्रभा मे होते हैं। जिस प्रकार रत्नप्रभा को न छोडते हुए तीन नैरयिक जीवो के त्रिकसयोगी भग कहे हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए। यावत् (१५) अथवा रत्नप्रभा, तम प्रभा और अध सप्तमपृथ्वी मे होते है।

(चतु सयोगी २० भग)—(१) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा और पकप्रभा मे होते है, (२) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा और धूमप्रभा मे होते है। यावत् (४) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा और अध सप्तमपृथ्वी मे होते है। (५) अथवा रत्नप्रभा, शर्करा-प्रभा, पकप्रभा और धूमप्रभा, मे होते हैं। रत्नप्रभा को न छोडते हुए जिस प्रकार चार नैरयिक जीवो के चतु सयोगी भग कहे हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए, यावत् (२०) अथवा रत्नप्रभा धूमप्रभा, तम प्रभा और अध सप्तमपृथ्वी मे होते है।

(पचसयोगी पन्द्रह भग) (१) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पकप्रभा और धूमप्रभा मे होते है। (२) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पकप्रभा और तम प्रभा मे होते है। (३) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पकप्रभा और अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं। (४) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा धूमप्रभा और तम पृथ्वी मे होते है। रत्नप्रभा को न छोडते हुए जिस प्रकार ५ नैरयिक जीवो के पचसयोगी भग कहे हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए, अथवा यावत् (१५) रत्नप्रभा, पकप्रभा यावत् अध सप्तमपृथ्वी मे होते है।

(षट्सयोगी ६ भग—) (१) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा यावत् धूमप्रभा और तम प्रभा मे होते है। (२) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा यावत् धूमप्रभा और अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं। (३) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा यावत् पकप्रभा, तम प्रभा और अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं। (४) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, धूमप्रभा, तम प्रभा और अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं। (५) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, पकप्रभा, यावत् अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं। (६) अथवा रत्नप्रभा, बालुकाप्रभा यावत् अध सप्तमपृथ्वी मे होते है।

(सप्तसयोगी एक भग—) (१) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, यावत् अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं।

इस प्रकार उत्कृष्ट पद के सभी मिल कर चौसठ (६+१५+२०+१५+६+१=६४) भग होते है।

विवेचन—उत्कृष्ट पद में नैरयिकप्रवेशनक भग—उत्कृष्ट पद मे सभी नैरयिक रत्नप्रभा मे होते है। इसलिए रत्नप्रभा का प्रत्येक भग के साथ सयोग होता है।

द्विकसयोगी ६ भग—१-२, १-३, १-४, १-५, १-६, १-७ ये ६ भग होते है।

त्रिकसयोगी १५ भग—१-२-३, १-२-४, १-२-५, १-२-६, १-२-७, १-३-४, १-३-५, १-३-६, १-३-७, १-४-५, १-४-६, १-४-७, १-५-६, १-५-७, और १-६-७।

चतुष्कसयोगी २० भग—१-२-३-४, १-२-३-५, १-२-३-६, १-२-३-७, १-२-४-५, १-२-४-६, १-२-४-७, १-२-५-६, १-२-५-७, १-२-६-७, १-३-४-५, १-३-४-६, १-३-४-७, १-३-५-६, १-३-५-७, १-३-६-७, १-४-५-६, १-४-५-७, १-४-६-७ और १-५-६-७।

पचमसयोगी १५ भग—१-२-३-४-५, १-२-३-४-६, १-२-३-४-७, १-२-३-५-६, १-२-३-५-७, १-२-३-६-७, १-२-४-५-६, १-२-४-५-७, १-२-४-६-७, १-२-५-६-७, १-३-४-५-६, १-३-४-५-७, १-३-४-६-७, १-३-५-६-७ और १-४-५-६-७।

षट्सयोगी ६ भग—१-२-३-४-५-६, १-२-३-४-५-७, १-२-३-४-६-७, १-२-३-५-६-७, १-२-४-५-६-७ और १-३-४-५-६-७।

सप्तसयोगी १ भग—१-२-३-४-५-६-७।[1]

रत्नप्रभादि नैरयिक प्रवेशनको का अल्पबहुत्व—

२९. एयस्स ण भते ! रयणप्पभापुढविनेरइयपवेसणगस्स सक्करप्पभापुढवि० जाव अहेसत्तमापुढविनेरइयपवेसणगस्स य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिए वा ?

गगेया ! सव्वत्थोवे अहेसत्तमापुढविनेरइयपवेसणए, तमापुढविनेरइयपवेसणए असखेज्जगुणे, एव पडिलोमग जाव रयणप्पभापुढविनेरइयपवेसणए असखेज्जगुणे।

[२९ प्र] भगवन् ! रत्नप्रभा-पृथ्वी के नैरयिकप्रवेशनक, शर्कराप्रभा पृथ्वी के नैरयिक-प्रवेशनक, यावत् अध सप्तमपृथ्वी के नैरयिकप्रवेशनक है, इनमे से कौन प्रवेशनक, किस प्रवेशनक से अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

[२९ उ] गागेय ! सबसे अल्प अध सप्तमपृथ्वी के नैरयिक-प्रवेशनक है, उनसे तम प्रभा-पृथ्वी नैरयिकप्रवेशनक असख्यातगुण है। इस प्रकार उलटे क्रम से, यावत् रत्नप्रभा-पृथ्वी नैरयिक-प्रवेशनक असख्यातगुण है।

विवेचन—अध सप्तम पृथ्वी मे जाने वाले जीव सबसे थोडे है। उनकी अपेक्षा तम प्रभा मे जाने वाले सख्यातगुण है। इस प्रकार विपरीत क्रम से एक-एक से[2] आगे के असख्यातगुणे हैं।

कठिन शब्दो का भावार्थ—**एयस्स ण**—इनमे से। **पडिलोमग**—प्रतिलोम—विपरीत क्रम से।[3]

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा १, पृ ४४१-४४२
२ भगवती विवेचन, (प घेवरचदजी) भा ४, पृ १६६६
३ भगवती विवेचन भा ४ (प घेवरचन्दजी) पृ १६६६

तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक : प्रकार और भग—

३०. तिरिक्खजोणियपवेसणए ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गगेया ! पचविहे पण्णत्ते, त जहा—एगिंदियतिरिक्खजोणियपवेसणए जाव पचेंदियतिरिक्ख-जोणियपवेसणए ।

[३० प्र] भगवन् ! तिर्यञ्चयोनिक प्रवेशनक कितने प्रकार का कहा गया है ?

[३० उ] गागेय ! वह पाँच प्रकार का कहा गया है। यथा—एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक यावत् पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक ।

३१. एगे भते ! तिरिक्खजोणिए तिरिक्खजोणियपवेसणएण पविसमाणे कि एगिंदिएसु होज्जा जाव पचिंदिएसु होज्जा ?

गगेया ! एगिंदिएसु वा होज्जा जाव पचिंदिएसु वा होज्जा ।

[३१ प्र] भगवन् ! एक तिर्यञ्चयोनिक जीव, तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ क्या एकेन्द्रिय जीवो मे उत्पन्न होता है अथवा यावत् पचेन्द्रिय जीवो मे उत्पन्न होता है ?

[३१ उ] गागेय ! एक तिर्यञ्चयोनिक जीव, एकेन्द्रियो मे होता है, अथवा यावत् पचेन्द्रियो मे उत्पन्न होता है ।

३२. दो भते ! तिरिक्खजोणिया० पुच्छा ।

गगेया ! एगिंदिएसु वा होज्जा जाव पचिंदिएसु वा होज्जा ५ ।

अहवा एगे एगिंदिएसु होज्जा एगे बेइंदिएसु होज्जा । एव जहा नेरइयपवेसणए तहा तिरिक्खजोणियपवेसणए वि भाणियव्वे जाव असखेज्जा ।

[३२ प्र] भगवन् ! दो तिर्यञ्चयोनिक जीव, तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या एकेन्द्रियो मे उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न ।

[३२ उ] गागेय ! एकेन्द्रियो मे होते है, अथवा यावत् पचेन्द्रियो मे होते है । अथवा एक एकेन्द्रिय मे और एक द्वीन्द्रिय मे होता है । जिस प्रकार नैरयिक जीवो के विषय मे कहा, उसी प्रकार तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक के विषय मे भी कहना चाहिए । यावत्—असख्य तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक तक कहना चाहिए ।

विवेचन—तिर्यञ्चो के प्रवेशनक और उनके भग—तिर्यञ्च एकेन्द्रिय भी होते है और पचेन्द्रिय भी होते है । इसलिए उनका प्रवेशनक भी पाँच प्रकार का बताया गया है । इसी प्रकार एक तिर्यञ्चयोनिक जीव एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक मे तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ उत्पन्न होता है ।[1]

तीन से लेकर असख्यात तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक-भग—तीन से लेकर असख्यात तिर्यञ्च-योनिक जीवो के प्रवेशनक नैरयिको के तीन से लेकर असख्यात तक के प्रवेशनक के समान जानने

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ ४४२-४४३

चाहिए। अन्तर इतना ही है, कि नैरयिक जीव सात नरकपृथ्वियो मे उत्पन्न होते है, जबकि तिर्यञ्च-जीव एकेन्द्रियादि पाँच स्थानो मे उत्पन्न होते है। इसलिए भगो की सख्या मे भिन्नता है। यह बुद्धिमानो को स्वय ऊहापोह करके जान लेना चाहिए। यद्यपि एकेन्द्रिय जीव (वनस्पति व निगोद की अपेक्षा से) अनन्त उत्पन्न होते है, किन्तु उपर्युक्त प्रवेशनक का लक्षण असख्यात तक ही घटित हो सकता है। इसलिए असख्यात तक ही प्रवेशनक कहे गये है।[1]

शका-समाधान—मूलपाठ मे 'एक जीव एकेन्द्रियो मे उत्पन्न होता है, यह बतलाया गया, किन्तु सिद्धान्तानुसार एक जीव एकेन्द्रियो मे कदापि उत्पन्न नही होता, वहाँ (वनस्पतिकाय की अपेक्षा तो) प्रतिसमय अनन्त जीव उत्पन्न होते है, ऐसी स्थिति मे उपर्युक्त शास्त्रवचन के साथ कैसे सगति हो सकती है? इसका समाधान वृत्तिकार यो करते है—विजातीय देवादि भव से निकल कर जो वहाँ (एकेन्द्रिय भव) मे उत्पन्न होता है, उस एक जीव की अपेक्षा से एकेन्द्रिय मे एक जीव का प्रवेशनक सम्भव है। वास्तव मे प्रवेशनक का अर्थ ही यह है कि विजातीय देवादिभव से निकल कर विजातीय भव मे उत्पन्न होना। सजातीय जीव सजातीय मे उत्पन्न हो, वह प्रवेशनक नही कहलाता, क्योकि वह (सजातीय) तो एकेन्द्रिय जाति (सजातीय) मे प्रविष्ट है ही। अर्थात्—एकेन्द्रिय जीव मर कर एकेन्द्रिय मे उत्पन्न हो, वह प्रवेशनक की कोटि मे नही आता। और जो अनन्त उत्पन्न होते है, वे तो एकेन्द्रिय मे से ही हैं।[2]

एक और दो तिर्यञ्चयोनिक जीवो का प्रवेशनक—एक जीव अनुक्रम से एकेन्द्रियादि पाँच स्थानो मे उत्पन्न हो तो उसके पाँच भग होते है। दो जीव भी एक-एक स्थान मे साथ उत्पन्न हो तो उनके भी पाँच भग ही होते है। और द्विकसयोगी १० भग होते है।[3]

उत्कृष्ट तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक प्ररूपणा—

३३. उक्कोसा भते! तिरिक्खजोणिया० पुच्छा।

गगेया! सव्वे वि ताव एगेंदिएसु वा होज्जा। अहवा एगिदिएसु वा बेइदिएसु वा होज्जा। एव जहा नेरतिया चारिया तहा तिरिक्खजोणिया वि चारेयव्वा। एगिदिया अमुयतेसु दुयासजोगो तियासजोगो चउक्कसजोगो पचसजोगो उवउज्जिऊण भाणियव्वो जाव अहवा एगिदिएसु वा बेइदिय जाव पचिदिएसु वा होज्जा।

[३३ प्र] भगवन्! उत्कृष्ट तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक के विषय मे पृच्छा।

[३३ उ] गागेय! ये सभी एकेन्द्रियो मे होते है। अथवा एकेन्द्रिय और द्वीन्द्रियो मे होते है। जिस प्रकार नैरयिक जीवो मे सचार किया गया है, उसी प्रकार तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक के विषय मे भी सचार करना चाहिए। एकेन्द्रिय जीवो को न छोडते हुए द्विकसयोगी, त्रिकसयोगी, चतु सयोगी और पचसयोगी भग उपयोगपूर्वक कहने चाहिए, यावत् अथवा एकेन्द्रिय जीवो मे द्वीन्द्रियो मे, यावत् पचेन्द्रियो मे होते हैं।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५१

२ वही, अ वृत्ति, पत्र ४५१

३ भगवनी विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा ४, पृ १६७०

विवेचन—एकेन्द्रियो मे उत्कृष्टपद-प्रवेशनक—एकेन्द्रिय जीव प्रतिसमय अत्यधिक सख्या मे उत्पन्न होते है, इसलिए एकेन्द्रियो मे ये सभी होते है।[1]

द्विकसयोगी से पचसयोगी तक भग—प्रसगवश यहाँ उत्कृष्टपद से द्विकसयोगी चार प्रकार के, त्रिकसयोगी छह प्रकार के, चतु सयोगी चार प्रकार के और पचसयोगी एक ही प्रकार के होते हे।[2]

एकेन्द्रियादि तिर्यञ्चप्रवेशनको का अल्पबहुत्व—

३४. एयस्स ण भते ! एगिदियतिरिक्खजोणियपवेसणगस्स जाव पचिदियतिरिक्खजोणियपवेसणयस्स य कयरे कयरेहितो जाव विसेसाहिए वा ?

गगेया ! सव्वत्थोवे पचिदियतिरिक्खजोणियपवेसणए, चउरिदियतिरिक्खजोणियप० विसेसाहिए, तेइदिय०, विसेसाहिए, बेइदिय० विसेसाहिए, एगिदियतिरिक्ख० विसेसाहिए।

[३४ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक से लेकर यावत् पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक तक मे से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[३४ उ] गागेय ! सबसे थोडे पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक है, उनसे चतुरिन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक विशेषाधिक है, उनसे त्रीन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक विशेषाधिक है, उनसे द्वीन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक विशेषाधिक है और उनसे एकेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक विशेपाधिक है।

विवेचन—तिर्यञ्च-प्रवेशनको का अल्पबहुत्व—विपरीत क्रम से अर्थात् पचेन्द्रिय तिर्यञ्च जीवो के प्रवेशनक से एकेन्द्रिय तिर्यञ्च-प्रवेशनक तक उत्तरोत्तर विशेषाधिक है।[3]

मनुष्य-प्रवेशनक : प्रकार और भंग—

३५. मणुस्सपवेसणए ण भते ! कतिविहे पन्नत्ते ?

गगेया ! दुविहे पण्णत्ते, त जहा—सम्मुच्छिममणुस्सपवेसणए, गब्भवक्कतियमणुस्सपवेसणए य।

[३५ प्र] भगवन् ! मनुष्यप्रवेशनक कितने प्रकार का कहा गया है ?

[३५ उ] गागेय ! मनुष्यप्रवेशनक दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—(१) सम्मूच्छिम मनुष्यप्रवेशनक और (२) गर्भजमनुष्य-प्रवेशनक।

३६ एगे भते ! मणुस्से मणुस्सपवेसणए ण पविसमाणे किं सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा, गब्भवक्कतियमणुस्सेसु होज्जा ?

गगेया ! सम्मुच्छिममणुस्सेसु वा होज्जा, गब्भवक्कतियमणुस्सेसु वा होज्जा।

---

१ भगवती अ वृत्ति पत्र ४५१

२ वही, अ वृत्ति, पत्र ४५१

३ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा १ पृ ४४३

चाहिए । अन्तर इतना ही है, कि नैरयिक जीव सात नरकपृथ्वियो मे उत्पन्न होते है, जबकि तिर्यञ्च-जीव एकेन्द्रियादि पाँच स्थानो मे उत्पन्न होते हैं। इसलिए भगो की सख्या मे भिन्नता है। यह बुद्धिमानो को स्वय ऊहापोह करके जान लेना चाहिए । यद्यपि एकेन्द्रिय जीव (वनस्पति व निगोद की अपेक्षा से) अनन्त उत्पन्न होते है, किन्तु उपर्युक्त प्रवेशनक का लक्षण असख्यात तक ही घटित हो सकता है । इसलिए असख्यात तक ही प्रवेशनक कहे गये है ।[1]

शका-समाधान—मूलपाठ मे 'एक जीव एकेन्द्रियो मे उत्पन्न होता है, यह बतलाया गया, किन्तु सिद्धान्तानुसार एक जीव एकेन्द्रियो मे कदापि उत्पन्न नही होता, वहाँ (वनस्पतिकाय की अपेक्षा तो) प्रतिसमय अनन्त जीव उत्पन्न होते है, ऐसी स्थिति मे उपर्युक्त शास्त्रवचन के साथ कैसे सगति हो सकती है ? इसका समाधान वृत्तिकार यो करते है—विजातीय देवादि भव से निकल कर जो वहाँ (एकेन्द्रिय भव) मे उत्पन्न होता है, उस एक जीव की अपेक्षा से एकेन्द्रिय मे एक जीव का प्रवेशनक सम्भव है । वास्तव मे प्रवेशनक का अर्थ ही यह है कि विजातीय देवादिभव से निकल कर विजातीय भव मे उत्पन्न होना । सजातीय जीव सजातीय मे उत्पन्न हो, वह प्रवेशनक नही कहलाता, क्योकि वह (सजातीय) तो एकेन्द्रिय जाति (सजातीय) मे प्रविष्ट है ही । अर्थात्—एकेन्द्रिय जीव मर कर एकेन्द्रिय मे उत्पन्न हो, वह प्रवेशनक की कोटि मे नही आता । और जो अनन्त उत्पन्न होते है, वे तो एकेन्द्रिय मे से ही है ।[2]

एक और दो तिर्यञ्चयोनिक जीवो का प्रवेशनक—एक जीव अनुक्रम से एकेन्द्रियादि पाँच स्थानो मे उत्पन्न हो तो उसके पाँच भग होते है । दो जीव भी एक-एक स्थान मे साथ उत्पन्न हो तो उनके भी पाँच भग ही होते है । और द्विकसयोगी १० भग होते है ।[3]

उत्कृष्ट तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक प्ररूपणा—

३३. उक्कोसा भते ! तिरिक्खजोणिया० पुच्छा ।

गगेया ! सव्वे वि ताव एगिंदिएसु वा होज्जा । अहवा एगिंदिएसु वा बेइदिएसु वा होज्जा । एव जहा नेरतिया चारिया तहा तिरिक्खजोणिया वि चारेयव्वा । एगिंदिया अमुयतेसु दुयासजोगो तियासजोगो चउक्कसजोगो पचसजोगो उवउज्जिऊण भाणियव्वो जाव अहवा एगिंदिएसु वा बेइदिय जाव पचिंदिएसु वा होज्जा ।

[३३ प्र] भगवन् ! उत्कृष्ट तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक के विषय मे पृच्छा ।

[३३ उ] गागेय ! ये सभी एकेन्द्रियो मे होते है । अथवा एकेन्द्रिय और द्वीन्द्रियो मे होते है । जिस प्रकार नैरयिक जीवो मे सचार किया गया है, उसी प्रकार तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक के विषय मे भी सचार करना चाहिए । एकेन्द्रिय जीवो को न छोडते हुए द्विकसयोगी, त्रिकसयोगी, चतु सयोगी और पचसयोगी भग उपयोगपूर्वक कहने चाहिए, यावत् अथवा एकेन्द्रिय जीवो मे द्वीन्द्रियो मे, यावत् पचेन्द्रियो मे होते है ।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५१

२ वही, अ वृत्ति, पत्र ४५१

३ भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा ४, पृ १६७०

विवेचन—एकेन्द्रियो मे उत्कृष्टपद-प्रवेशनक—एकेन्द्रिय जीव प्रतिसमय अत्यधिक सख्या मे उत्पन्न होते है, इसलिए एकेन्द्रियो मे ये सभी होते है।[1]

द्विकसयोगी से पचसयोगी तक भग—प्रसगवश यहाँ उत्कृष्टपद से द्विकसयोगी चार प्रकार के, त्रिकसयोगी छह प्रकार के, चतु सयोगी चार प्रकार के और पचसयोगी एक ही प्रकार के होते हैं।[2]

एकेन्द्रियादि तिर्यञ्चप्रवेशनको का अल्पबहुत्व—

३४. एयस्स ण भते ! एगिंदियतिरिक्खजोणियपवेसणगस्स जाव पंचिदियतिरिक्खजोणियपवेसणयस्स य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिए वा ?

गगेया ! सव्वत्थोवे पंचिदियतिरिक्खजोणियपवेसणए, चउरिदियतिरिक्खजोणियप० विसेसाहिए, तेइंदिय०, विसेसाहिए, बेइंदिय० विसेसाहिए, एगिंदियतिरिक्ख० विसेसाहिए।

[३४ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक से लेकर यावत् पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक तक मे से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[३४ उ] गागेय ! सबसे थोडे पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक है, उनसे चतुरिन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक विशेषाधिक है, उनसे त्रीन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक विशेषाधिक है, उनसे द्वीन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक विशेषाधिक है और उनसे एकेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक विशेषाधिक है।

विवेचन—तिर्यञ्च-प्रवेशनको का अल्पबहुत्व—विपरीत क्रम से अर्थात् पचेन्द्रिय तिर्यञ्च जीवो के प्रवेशनक से एकेन्द्रिय तिर्यञ्च-प्रवेशनक तक उत्तरोत्तर विशेषाधिक है।[3]

मनुष्य-प्रवेशनक : प्रकार और भंग—

३५. मणुस्सपवेसणए ण भते ! कतिविहे पन्नत्ते ?

गगेया ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सम्मुच्छिममणुस्सपवेसणए, गब्भवक्कतियमणुस्सपवेसणए य।

[३५ प्र] भगवन् ! मनुष्यप्रवेशनक कितने प्रकार का कहा गया है ?

[३५ उ] गागेय ! मनुष्यप्रवेशनक दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—(१) सम्मूर्च्छिम मनुष्यप्रवेशनक और (२) गर्भजमनुष्य-प्रवेशनक।

३६. एगे भते ! मणुस्से मणुस्सपवेसणए णं पविसमाणे किं सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा, गब्भवक्कतियमणुस्सेसु होज्जा ?

गगेया ! सम्मुच्छिममणुस्सेसु वा होज्जा, गब्भवक्कतियमणुस्सेसु वा होज्जा।

---

१ भगवती अ वृत्ति पत्र ४५१

२ वही, अ वृत्ति, पत्र ४५१

३ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा १ पृ ४४३

[३६ प्र] भगवन् ! मनुष्यप्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ एक मनुष्य क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यो मे उत्पन्न होता है, अथवा गर्भज मनुष्यो मे उत्पन्न होता है ?

[३६ उ] हे गागेय ! वह या तो सम्मूर्च्छिम मनुष्यो मे उत्पन्न होता है अथवा गर्भज मनुष्यो मे उत्पन्न होता है।

३७ दो भते ! मणुस्सा० पुच्छा।

गगेया ! सम्मुच्छिममणुस्सेसु वा होज्जा, गब्भवक्कतियमणुस्सेसु वा होज्जा। अहवा एगे सम्मुच्छिममणुस्सेसु वा होज्जा, एगे गब्भवक्कतियमणुस्सेसु वा होज्जा। एव एएण कमेण जहा नेरइयपवेसणए तहा मणुस्सपवेसणए वि भाणियव्वे जाव दस।

[३७ प्र] भगवन् ! दो मनुष्य, मनुष्य-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यो मे उत्पन्न होते है ? इत्यादि (पूर्ववत्) प्रश्न।

[३७ उ] गागेय ! दो मनुष्य या तो सम्मूर्च्छिम मनुष्यो मे उत्पन्न होते है, अथवा गर्भज मनुष्यो मे होते है। अथवा एक सम्मूर्च्छिम मनुष्यो मे और एक गर्भज मनुष्यो मे होता है। इस क्रम से जिस प्रकार नैरयिक-प्रवेशनक कहा, उसी प्रकार मनुष्य-प्रवेशनक भी कहना चाहिए। यावत् दस मनुष्यो तक कहना चाहिए।

३८. सखेज्जा भते ! मणुस्सा० पुच्छा।

गगेया ! सम्मुच्छिममणुस्सेसु वा होज्जा गब्भवक्कतियमणुस्सेसु वा होज्जा। अहवा एगे सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा, सखेज्जा गब्भवक्कतियमणुस्सेसु होज्जा। अहवा दो सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा, सखेज्जा गब्भवक्कतियमणुस्सेसु होज्जा। एव एक्केक्क ओसारिंतेसु जाव अहवा सखेज्जा सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा, सखेज्जा गब्भवक्कतियमणुस्सेसु होज्जा।

[३८ प्र] भगवन् ! सख्यात मनुष्य, मनुष्यप्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए सम्मूर्च्छिम मनुष्यो मे होते है ? इत्यादि प्रश्न।

[३८ उ] गागेय ! वे सम्मूर्च्छिम मनुष्यो मे होते है, अथवा गर्भज मनुष्यो मे होते है। अथवा एक सम्मूर्च्छिम मनुष्यो मे होता है और सख्यात गर्भज मनुष्यो मे होते है। अथवा दो सम्मूर्च्छिम मनुष्यो मे होते हैं और सख्यात गर्भज मनुष्यो मे होते है। इस प्रकार उत्तरोत्तर एक-एक बढाते हुए यावत् सख्यात सम्मूर्च्छिम मनुष्यो मे और सख्यात गर्भज मनुष्यो मे होते है।

३९. असखेज्जा भते ! मणुस्सा० पुच्छा।

गगेया ! सव्वे वि ताव सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा। अहवा असखेज्जा सम्मुच्छिममणुस्सेसु, एगे गब्भवक्कतियमणुस्सेसु होज्जा। अहवा असखेज्जा सम्मुच्छिमणुस्सेसु, दो गब्भवक्कतियमणुस्सेसु होज्जा। एव जाव असखेज्जा सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा, सखेज्जा गब्भवक्कतियमणुस्सेसु होज्जा।

[३९ प्र] भगवन् ! असख्यात मनुष्य, मनुष्यप्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए, इत्यादि प्रश्न।

[३९ उ] गागेय ! वे सभी सम्मूर्च्छिम मनुष्यो मे होते है। अथवा असख्यात सम्मूर्च्छिम

मनुष्यो मे होते है और एक गर्भज मनुष्यो मे होता है। अथवा असख्यात सम्मूर्च्छिम मनुष्यो मे होते है और दो गर्भज मनुष्यो से होते है। अथवा इस प्रकार यावत् असख्यात सम्मूर्च्छिम मनुष्यो मे होते है और सख्यात गर्भज मनुष्यो मे होते है।

विवेचन—मनुष्य-प्रवेशनक के प्रकार और भग—मनुष्य-प्रवेशनक के दो प्रकार है—सम्मूर्च्छिम-मनुष्य-प्रवेशनक और गर्भज-मनुष्य-प्रवेशनक। इन दोनो की अपेक्षा एक से लेकर सख्यात तक भग पूर्ववत् समझना चाहिए। सख्यातपद मे द्विकसयोगी भग पूर्ववत् ११ ही होते है। असख्यातपद मे पहले बारह विकल्प बताए गए है, लेकिन यहाँ ११ ही विकल्प (भग) होते है, क्योकि यदि सम्मूर्च्छिम मनुष्यो मे असख्यातपन की तरह गर्भज मनुष्यो मे भी असख्यातपन होता, तभी बारह भग बन सकते थे, किन्तु गर्भज मनुष्य असख्यात नही होते। अतएव उनके प्रवेशनक मे असख्यातपन नही हो सकता। अत असख्यातपद के सयोग से भी ११ ही विकल्प होते है।[1]

उत्कृष्टरूप से मनुष्य-प्रवेशनक-प्ररूपणा—

४०. उक्कोसा भते! मणुस्सा० पुच्छा।

गगेया! सव्वे वि ताव सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा। अहवा सम्मुच्छिममणुस्सेसु य गब्भवक्कतियमणुस्सेसु वा होज्जा।

[४० प्र] भगवन्! मनुष्य उत्कृष्टरूप से किस प्रवेशनक मे होते है? इत्यादि प्रश्न।

[४० उ] गागेय! वे सभी सम्मूर्च्छिम मनुष्यो मे होते है। अथवा सम्मूर्च्छिम मनुष्यो मे और गर्भज मनुष्यो मे होते है।

विवेचन—उत्कृष्टपद मे प्रवेशनक-विचार—उत्कृष्टपद मे सम्मूर्च्छिम-मनुष्य-प्रवेशनक कहा गया है, क्योकि सम्मूर्च्छिम मनुष्य ही असख्यात है। इसलिए उनके प्रवेशनक भी असख्यात हो सकते है।[2]

मनुष्य-प्रवेशनको का अल्प-बहुत्व—

४१ एयस्स ण भते! सम्मुच्छिममणुस्सपवेसणगस्स गब्भवक्कतियमणुस्सपवेसणगस्स य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिए वा?

गगेया! सव्वत्थोवे गब्भवक्कतियमणुस्सपवेसणए, सम्मुच्छिममणुस्सपवेसणए असखेज्जगुणे।

[४१ प्र] भगवन्! सम्मूर्च्छिम-मनुष्य-प्रवेशनक और गर्भज-मनुष्य-प्रवेशनक, इन (दोनो मे) से कौन किस से अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है?

[४१ उ] गागेय! सब से थोडे गर्भज-मनुष्य-प्रवेशनक है, उनसे सम्मूर्च्छिम-मनुष्य-प्रवेशनक असख्यातगुणे है।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५३

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५३

विवेचन—अल्पबहुत्व—सम्मूर्च्छिम मनुष्य असख्यात होने से गर्भज-मनुष्य-प्रवेशनक से उन (सम्मूर्च्छिम-मनुष्यो) के प्रवेशनक असख्यातगुणे अधिक है ।[1]

देव-प्रवेशनक : प्रकार और भग—

४२. देवपवेसणए ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गगेया ! चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—भवणवासिदेवपवेसणए जाव वेमाणियदेवपवेसणए ।

[४२ प्र] भगवन् ! देव-प्रवेशनक कितने प्रकार का कहा गया है ?

[४२ उ] गागेय ! वह चार प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार—(१) भवनवासी-देव-प्रवेशक, (२) वाणव्यन्तर-देव-प्रवेशनक, (३) ज्योतिष्क-देव-प्रवेशनक और (४) वैमानिक-देव-प्रवेशनक ।

४३. एगे भते ! देवे देवपवेसणए णं पविसमाणे किं भवणवासीसु होज्जा वाणमतर-जोइसिय-वेमाणिएसु होज्जा ?

गगेया ! भवणवासीसु वा होज्जा वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएसु वा होज्जा ।

[४३ प्र] भगवन् ! एक देव, देव-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ क्या भवनवासी देवो मे होता है, वाणव्यन्तर देवो मे होता है, ज्योतिष्क देवो मे होता है अथवा वैमानिक देवो मे होता है ?

[४३ उ] गागेय ! एक देव, देव-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ, भवनवासी देवो मे होता है, अथवा वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क अथवा वैमानिक देवो मे होता है ।

४४. दो भते ! देवा देवपवेसणए० पुच्छा ।

गगेया ! भवणवासीसु वा होज्जा, वाणमतर-जोइसिय-वेमाणिएसु वा होज्जा ।

अहवा एगे भवणवासीसु, एगे वाणमतरेसु होज्जा । एव जहा तिरिक्खजोणियपवेसणए तहा देवपवेसणए वि भाणियव्वे जाव असखिज्ज त्ति ।

[४४ प्र] भगवन् ! दो देव, देव-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या भवनवासी देवो मे, इत्यादि (पूर्ववत्) प्रश्न ।

[४४ उ] गागेय ! वे भवनवासी देवो मे होते है, अथवा वाणव्यन्तर देवो मे होते है, या ज्योतिष्क देवो मे होते है, अथवा वैमानिक देवो मे होते है । अथवा एक भवनवासी देवो मे होता है, और एक वाणव्यन्तर देवो मे होता है । जिस प्रकार तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक कहा, उसी प्रकार देव-प्रवेशनक भी कहना चाहिए, यावत् असख्यात-देव-प्रवेशनक तक कहना चाहिए ।

विवेचन—देव-प्रवेशनक-प्ररूपणा—देव-प्रवेशनक के चार प्रकार कहे गए है, जो आगमो मे प्रसिद्ध है । एक देव या दो देव भवनपति देवो मे, वाणव्यन्तर देवो मे, ज्योतिष्क देवो मे या वैमानिक देवो मे से किन्ही मे उत्पन्न हो सकते है । द्विकसयोगी भगो की सख्या तिर्यञ्चयोनिक जीवो की तरह ही समझनी चाहिए । देवो की सख्या ४ ही होती है, यह विशेष है ।

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५३

तीन से लेकर असख्यात तक के प्रवेशनक-भग—देवो के प्रवेशनक-भग ३ से असख्यात तक तिर्यंचो के प्रवेशनक-भग के समान समझने चाहिए।[1]

उत्कृष्टरूप से देव-प्रवेशनक-प्ररूपणा—

४५ उक्कोसा भते ! ० पुच्छा।

गगेया ! सव्वे वि ताव जोइसिएसु होज्जा।

अहवा जोइसिय-भवणवासीसु य होज्जा। अहवा जोइसिय-वाणमतरेसु य होज्जा। अहवा जोइसिय-वेमाणिएसु य होज्जा।

अहवा जोइसिएसु य भवणवासीसु य वाणमतरेसु य होज्जा। अहवा जोइसिएसु य भवणवासीसु य वेमाणिएसु य होज्जा। अहवा जोइसिएसु य वाणमतरेसु य वेमाणिएसु य होज्जा।

अहवा जोइसिएसु य भवणवासीसु य वाणमतरेसु य वेमाणिएसु य होज्जा।

[४५ प्र] भगवन् ! उत्कृष्टरूप से देव, देव-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए किन देवो मे होते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[४५ उ] गागेय ! वे सभी ज्योतिष्क देवो मे होते है।

अथवा ज्योतिष्क और भवनवासी देवो मे होते है, अथवा ज्योतिष्क और वाणव्यन्तर देवो मे होते है, अथवा ज्योतिष्क और वैमानिक देवो मे होते है।

अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी और वाणव्यन्तर देवो मे होते है, अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी और वैमानिक देवो मे होते है, अथवा ज्योतिष्क, वाणव्यन्तर और वैमानिक देवो मे होते है।

अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी, वाणव्यन्तर और वैमानिक देवो मे होते है।

विवेचन—उत्कृष्ट देव-प्रवेशनक-प्ररूपणा—ज्योतिष्क देवो मे जाने वाले जीव बहुत होते है। इसलिए उत्कृष्टपद मे कहा गया है कि ये सभी ज्योतिष्क देवो मे होते है।

द्विकसंयोगी ३ भग—ज्यो वाण, ज्यो वै, या ज्यो भ देवो मे।

त्रिकसयोगी ३ भग—ज्यो भ वा, ज्यो भ वै, एव ज्यो वा वै।

चतुष्कसयोगी एक भग—ज्योतिष्क, भ, वा वैमा।[2]

भवनवासी आदि देवो के प्रवेशनको का अल्पबहुत्व—

४६ एयस्स ण भते ! भवणवासिदेवपवेसणगस्स वाणमतरदेवपवेसणगस्स जोइसियदेवपवेसणगस्स वेमाणियदेवपवेसणगस्स य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिए वा ?

गगेया ! सव्वत्थोवे वेमाणियदेवपवेसणए, भवणवासिदेवपवेसणए असखेज्जगुणे, वाणमतरदेवपवेसणए असखेज्जगुणे, जोइसियदेवपवेसणए सखेज्जगुणे।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ ४४५

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४४५

विवेचन—अल्पबहुत्व—सम्मूर्च्छिम मनुष्य असख्यात होने से गर्भज-मनुष्य-प्रवेशनक से उन (सम्मूर्च्छिम-मनुष्यो) के प्रवेशनक असख्यातगुणे अधिक है ।[1]

देव-प्रवेशनक : प्रकार और भग—

४२. देवपवेसणए ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गगेया ! चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—भवणवासिदेवपवेसणए जाव वेमाणियदेवपवेसणए ।

[४२ प्र] भगवन् ! देव-प्रवेशनक कितने प्रकार का कहा गया है ?

[४२ उ] गागेय ! वह चार प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार—(१) भवनवासी-देव-प्रवेशक, (२) वाणव्यन्तर-देव-प्रवेशनक, (३) ज्योतिष्क-देव-प्रवेशनक और (४) वैमानिक-देव-प्रवेशनक ।

४३. एगे भते ! देवे देवपवेसणए ण पविसमाणे किं भवणवासीसु होज्जा वाणमतर-जोइसिय-वेमाणिएसु होज्जा ?

गगेया ! भवणवासीसु वा होज्जा वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएसु वा होज्जा ।

[४३ प्र] भगवन् ! एक देव, देव-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ क्या भवनवासी देवो मे होता है, वाणव्यन्तर देवो मे होता है, ज्योतिष्क देवो मे होता है अथवा वैमानिक देवो मे होता है ?

[४३ उ] गागेय ! एक देव, देव-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ, भवनवासी देवो मे होता है, अथवा वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क अथवा वैमानिक देवो मे होता है ।

४४. दो भते ! देवा देवपवेसणए० पुच्छा ।

गगेया ! भवणवासीसु वा होज्जा, वाणमतर-जोइसिय-वेमाणिएसु वा होज्जा ।

अहवा एगे भवणवासीसु, एगे वाणमतरेसु होज्जा । एव जहा तिरिक्खजोणियपवेसणए तहा देवपवेसणए वि भाणियव्वे जाव असखिज्ज त्ति ।

[४४ प्र] भगवन् ! दो देव, देव-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या भवनवासी देवो मे, इत्यादि (पूर्ववत्) प्रश्न ।

[४४ उ] गागेय ! वे भवनवासी देवो मे होते है, अथवा वाणव्यन्तर देवो मे होते है, या ज्योतिष्क देवो मे होते है, अथवा वैमानिक देवो मे होते है । अथवा एक भवनवासी देवो मे होता है, और एक वाणव्यन्तर देवो मे होता है । जिस प्रकार तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक कहा, उसी प्रकार देव-प्रवेशनक भी कहना चाहिए, यावत् असख्यात-देव-प्रवेशनक तक कहना चाहिए ।

विवेचन—देव-प्रवेशनक-प्ररूपणा—देव-प्रवेशनक के चार प्रकार कहे गए हैं, जो आगमो मे प्रसिद्ध हैं । एक देव या दो देव भवनपति देवो मे, वाणव्यन्तर देवो मे, ज्योतिष्क देवो मे या वैमानिक देवो मे से किन्ही मे उत्पन्न हो सकते है । द्विकसयोगी भगो की सख्या तिर्यञ्चयोनिक जीवो की तरह ही समझनी चाहिए । देवो की सख्या ४ ही होती है, यह विशेष है ।

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५३

तीन से लेकर असख्यात तक के प्रवेशनक-भग —देवो के प्रवेशनक-भग ३ से असख्यात तक तिर्यचो के प्रवेशनक-भग के समान समझने चाहिए।[1]

उत्कृष्टरूप से देव-प्रवेशनक-प्ररूपणा—

४५ उक्कोसा भते ! ० पुच्छा।

गगेया ! सव्वे वि ताव जोइसिएसु होज्जा।

अहवा जोइसिय-भवणवासीसु य होज्जा। अहवा जोइसिय-वाणमतरेसु य होज्जा। अहवा जोइसिय-वेमाणिएसु य होज्जा।

अहवा जोइसिएसु य भवणवासीसु य वाणमतरेसु य होज्जा। अहवा जोइसिएसु य भवणवासीसु य वेमाणिएसु य होज्जा। अहवा जोइसिएसु य वाणमतरेसु य वेमाणिएसु य होज्जा।

अहवा जोइसिएसु य भवणवासीसु य वाणमतरेसु य वेमाणिएसु य होज्जा।

[४५ प्र] भगवन् ! उत्कृष्टरूप से देव, देव-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए किन देवो मे होते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[४५ उ] गागेय ! वे सभी ज्योतिष्क देवो मे होते है।

अथवा ज्योतिष्क और भवनवासी देवो मे होते है, अथवा ज्योतिष्क और वाणव्यन्तर देवो मे होते है, अथवा ज्योतिष्क और वैमानिक देवो मे होते हैं।

अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी और वाणव्यन्तर देवो मे होते है, अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी और वैमानिक देवो मे होते है, अथवा ज्योतिष्क, वाणव्यन्तर और वैमानिक देवो मे होते है।

अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी, वाणव्यन्तर और वैमानिक देवो मे होते है।

विवेचन—उत्कृष्ट देव-प्रवेशनक-प्ररूपणा—ज्योतिष्क देवो मे जाने वाले जीव बहुत होते है। इसलिए उत्कृष्टपद मे कहा गया है कि ये सभी ज्योतिष्क देवो मे होते है।

द्विकसयोगी ३ भग—ज्यो वाण , ज्यो वै , या ज्यो भ देवो मे।

त्रिकसयोगी ३ भंग—ज्यो भ वा , ज्यो भ वै , एव ज्यो वा वै ।

चतुष्कसयोगी एक भंग—ज्योतिष्क, भ , वा वैमा ।[2]

भवनवासी आदि देवो के प्रवेशनको का अल्पबहुत्व—

४६. एयस्स ण भते ! भवणवासिदेवपवेसणगस्स वाणमतरदेवपवेसणगस्स जोइसियदेवपवेसणगस्स वेमाणियदेवपवेसणगस्स य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिए वा ?

गगेया ! सव्वत्थोवे वेमाणियदेवपवेसणए, भवणवासिदेवपवेसणए असखेज्जगुणे, वाणमतरदेवपवेसणए असखेज्जगुणे, जोइसियदेवपवेसणए सखेज्जगुणे।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ ४४५

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६४५

विवेचन—अल्पबहुत्व—सम्मूर्च्छिम मनुष्य असख्यात होने से गर्भज-मनुष्य-प्रवेशनक से उन (सम्मूर्च्छिम-मनुष्यो) के प्रवेशनक असख्यातगुणे अधिक है।[1]

देव-प्रवेशनक : प्रकार और भग—

४२. देवपवेसणए ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गगेया ! चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—भवणवासिदेवपवेसणए जाव वेमाणियदेवपवेसणए।

[४२ प्र] भगवन् ! देव-प्रवेशनक कितने प्रकार का कहा गया है ?

[४२ उ] गागेय ! वह चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—(१) भवनवासी-देव-प्रवेशक, (२) वाणव्यन्तर-देव-प्रवेशनक, (३) ज्योतिष्क-देव-प्रवेशनक और (४) वैमानिक-देव-प्रवेशनक।

४३. एगे भते ! देवे देवपवेसणए णं पविसमाणे किं भवणवासीसु होज्जा वाणमतर-जोइसिय-वेमाणिएसु होज्जा ?

गगेया ! भवणवासीसु वा होज्जा वाणमतर-जोइसिय-वेमाणिएसु वा होज्जा।

[४३ प्र] भगवन् ! एक देव, देव-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ क्या भवनवासी देवो मे होता है, वाणव्यन्तर देवो मे होता है, ज्योतिष्क देवो मे होता है अथवा वैमानिक देवो मे होता है ?

[४३ उ] गागेय ! एक देव, देव-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ, भवनवासी देवो मे होता है, अथवा वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क अथवा वैमानिक देवो मे होता है।

४४. दो भते ! देवा देवपवेसणए० पुच्छा।

गगेया ! भवणवासीसु वा होज्जा, वाणमतर-जोइसिय-वेमाणिएसु वा होज्जा।

अहवा एगे भवणवासीसु, एगे वाणमतरेसु होज्जा। एव जहा तिरिक्खजोणियपवेसणए तहा देवपवेसणए वि भाणियव्वे जाव असखिज्ज त्ति।

[४४ प्र] भगवन् ! दो देव, देव-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या भवनवासी देवो मे, इत्यादि (पूर्ववत्) प्रश्न।

[४४ उ] गागेय ! वे भवनवासी देवो मे होते है, अथवा वाणव्यन्तर देवो मे होते है, या ज्योतिष्क देवो मे होते है, अथवा वैमानिक देवो मे होते है। अथवा एक भवनवासी देवो मे होता है, और एक वाणव्यन्तर देवो मे होता है। जिस प्रकार तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक कहा, उसी प्रकार देव-प्रवेशनक भी कहना चाहिए, यावत् असख्यात-देव-प्रवेशनक तक कहना चाहिए।

विवेचन—देव-प्रवेशनक-प्ररूपणा—देव-प्रवेशनक के चार प्रकार कहे गए है, जो आगमो मे प्रसिद्ध है। एक देव या दो देव भवनपति देवो मे, वाणव्यन्तर देवो मे, ज्योतिष्क देवो मे या वैमानिक देवो मे से किन्ही मे उत्पन्न हो सकते है। द्विकसयोगी भगो की सख्या तिर्यञ्चयोनिक जीवो की तरह ही समझनी चाहिए। देवो की सख्या ४ ही होती है, यह विशेष है।

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५३

तीन से लेकर असख्यात तक के प्रवेशनक-भग --देवो के प्रवेगनक-भग ३ मे असख्यात तक तिर्यचो के प्रवेशनक-भग के समान समझने चाहिए।[1]

उत्कृष्टरूप से देव-प्रवेशनक-प्ररूपणा---

४५ उक्कोसा भते ! ० पुच्छा।

गगेया ! सव्वे वि ताव जोइसिएसु होज्जा।

अहवा जोइसिय-भवणवासीसु य होज्जा। अहवा जोइसिय-वाणमतरेसु य होज्जा। अहवा जोइसिय-वेमाणिएसु य होज्जा।

अहवा जोइसिएसु य भवणवासीसु य वाणमतरेसु य होज्जा। अहवा जोइसिएसु य भवणवासीसु य वेमाणिएसु य होज्जा। अहवा जोइसिएसु य वाणमतरेसु य वेमाणिएसु य होज्जा।

अहवा जोइसिएसु य भवणवासीसु य वाणमतरेसु य वेमाणिएसु य होज्जा।

[४५ प्र] भगवन् ! उत्कृष्टरूप से देव, देव-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए किन देवो मे होते है ? इत्यादि प्रश्न।

[४५ उ] गागेय ! वे सभी ज्योतिष्क देवो मे होते है।

अथवा ज्योतिष्क और भवनवासी देवो मे होते है, अथवा ज्योतिष्क और वाणव्यन्तर देवो मे होते है, अथवा ज्योतिष्क और वैमानिक देवो मे होते है।

अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी और वाणव्यन्तर देवो मे होते है, अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी और वैमानिक देवो मे होते है, अथवा ज्योतिष्क, वाणव्यन्तर और वैमानिक देवो मे होते है।

अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी, वाणव्यन्तर और वैमानिक देवो मे होते है।

विवेचन---उत्कृष्ट देव-प्रवेशनक-प्ररूपणा---ज्योतिष्क देवो मे जाने वाले जीव बहुत होते है। इसलिए उत्कृष्टपद मे कहा गया है कि ये सभी ज्योतिष्क देवो मे होते है।

द्विकसंयोगी ३ भग---ज्यो वाण, ज्यो वै, या ज्यो भ देवो मे।

त्रिकसयोगी ३ भग---ज्यो भ वा, ज्यो भ वै, एव ज्यो वा वै।

चतुष्कसयोगी एक भग---ज्योतिष्क, भ, वा वैमा।[2]

भवनवासी आदि देवो के प्रवेशनको का अल्पबहुत्व---

४६. एयस्स ण भते ! भवणवासिदेवपवेसणगस्स वाणमतरदेवपवेसणगस्स जोइसियदेवपवेसणगस्स वेमाणियदेवपवेसणगस्स य कयरे कयरेहितो जाव विसेसाहिए वा ?

गगेया ! सव्वत्थोवे वेमाणियदेवपवेसणए, भवणवासिदेवपवेसणए असखेज्जगुणे, वाणमतरदेवपवेसणए असखेज्जगुणे, जोइसियदेवपवेसणए सखेज्जगुणे।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ ४४५

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८४५

[४६ प्र] भगवन्! भवनवासीदेव-प्रवेशनक, वाणव्यन्तरदेव-प्रवेशनक, ज्योतिष्कदेव-प्रवेशनक और वैमानिकदेव-प्रवेशनक, इन चारो प्रवेशनको मे से कौन प्रवेशनक किस प्रवेशनक से अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है?

[४६ उ] गांगेय! सबसे थोडे वैमानिकदेव-प्रवेशनक है, उनसे भवनवासीदेव-प्रवेशनक असख्यातगुणे है, उनसे वाणव्यन्तरदेव-प्रवेशनक असख्यातगुणे है और उनसे ज्योतिष्कदेव-प्रवेशनक सख्यातगुणे है।

विवेचन—चारो देव-प्रवेशनको का अल्पबहुत्व—वैमानिकदेव सबसे कम होते है, और उनमे जाने वाले (प्रवेशनक) जीव भी सबसे थोडे होते है, इसीलिए अल्पबहुत्व मे पारस्परिक तुलना की दृष्टि से कहा गया है कि वैमानिकदेव-प्रवेशनक सबसे अल्प है।[1]

नारक-तिर्यञ्च-मनुष्य-देव प्रवेशनको का अल्पबहुत्व—

४७. एयस्स ण भते! नेरइयपवेसणगस्स तिरिक्ख० मणुस्स० देवपवेसणगस्स य कयरे कयरेहितो जाव विसेसाहिए वा?

गगेया! सव्वत्थोवे मणुस्सपवेसणए, नेरइयपवेसणए असखेज्जगुणे, देवपवेसणए असखेज्जगुणे, तिरिक्खजोणियपवेसणए असखेज्जगुणे।

[४७ प्र] भगवन्! इन नैरयिक-प्रवेशनक, तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक, मनुष्य-प्रवेशनक और देव-प्रवेशनक, इन चारो मे से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है?

[४७ उ] गांगेय! सबसे अल्प मनुष्य-प्रवेशनक है, उससे नैरयिक-प्रवेशनक असख्यातगुणा है, और उससे देव-प्रवेशनक असख्यातगुणा है, और उससे तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक असख्यातगुणा है।

विवेचन—चारो गतियो के जीवो के प्रवेशनको का अल्पबहुत्व—सबसे अल्प मनुष्य-प्रवेशनक है, क्योकि मनुष्य सिर्फ मनुष्यक्षेत्र मे ही है, जो कि बहुत ही अल्प है। उससे नैरयिक-प्रवेशनक असख्यातगुणा है, क्योकि नरक मे जाने वाले जीव असख्यातगुण है। इसी प्रकार देव-प्रवेशनक और तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक के विषय मे समझना चाहिए।[2]

चौबीस दण्डको मे सान्तर-निरन्तर उपपाद-उद्वर्तनप्ररूपणा—

४८ सतर भते! नेरइया उववज्जति? निरतर नेरइया उववज्जति? सतर असुरकुमारा उववज्जति? निरतर असुरकुमारा जाव सतर वेमाणिया उववज्जति? निरतर वेमाणिया उववज्जति? सतर नेरइया उव्वट्टति? निरतर नेरतिया उव्वट्टति? जाव सतर वाणमतरा उव्वट्टति? निरतर वाणमतरा उव्वट्टति? सतर जोइसिया चयति? निरतर जोइसिया चयति? सतर वेमाणिया चयति? निरतर वेमाणिया चयति?

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५३

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५३

गगेया ! सतर पि नेरतिया उववज्जति, निरतर पि नेरतिया उववज्जति जाव सतर पि थणियकुमारा उववज्जति, निरंतर पि थणियकुमारा उववज्जति । नो सतर पुढविक्काइया उववज्जति, निरतरं पुढविक्काइया उववज्जति; एव जाव वणस्सइकाइया । सेसा जहा नेरइया जाव सतर पि वेमाणिया उववज्जति, निरतर पि वेमाणिया उववज्जति । सतर पि नेरइया उव्वट्टति, निरंतर पि नेरइया उव्वट्टति; एव जाव थणियकुमारा । नो सतर पुढविक्काइया उव्वट्टति, निरतर पुढविक्काइया उव्वट्टति, एव जाव वणस्सइकाइया । सेसा जहा नेरइया, नवर जोइसिय-वेमाणिया चयति अभिलावो, जाव संतर पि वेमाणिया चयति, निरतरं पि वेमाणिया चयति ।

[४८ प्र] भगवन् ! नैरयिक सान्तर (अन्तरसहित) उत्पन्न होते है या निरन्तर (लगातार) उत्पन्न होते है ? असुरकुमार सान्तर उत्पन्न होते है अथवा निरन्तर ? यावत् वैमानिक देव सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर ?

(इसी तरह) नैरयिक का उद्वर्त्तन सान्तर होता है अथवा निरन्तर ? यावत् वाणव्यन्तर देवो का उद्वर्त्तन सान्तर होता है या निरन्तर ? ज्योतिष्क देवो का सान्तर च्यवन होता है या निरन्तर ? वैमानिक देवो का सान्तर च्यवन होता है या निरन्तर ?

[४८ उ] हे गागेय ! नैरयिक सान्तर भी उत्पन्न होते है और निरन्तर भी, यावत् स्तनितकुमार सान्तर भी उत्पन्न होते है और निरन्तर भी उत्पन्न होते है । पृथ्वीकायिक जीव सान्तर उत्पन्न नही होते, परन्तु निरन्तर ही उत्पन्न होते है । इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीव सान्तर उत्पन्न नही होते, किन्तु निरन्तर उत्पन्न होते है । शेष सभी जीव नैरयिक जीवो के समान सान्तर भी उत्पन्न होते है, निरन्तर भी, यावत् वैमानिक देव सान्तर भी उत्पन्न होते है और निरन्तर भी ।

नैरयिक जीव सान्तर भी उद्वर्तन करते है, निरन्तर भी । इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारो तक कहना चाहिए । पृथ्वीकायिक जीव सान्तर नही उद्वर्तते, निरन्तर उद्वर्तित होते है । इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिको तक कहना चाहिए । शेष सभी जीवो का कथन नैरयिको के समान जानना चाहिए । इतना विशेष है कि ज्योतिष्क देव और वैमानिक देव च्यवते है, ऐसा पाठ (अभिलाप) कहना चाहिए यावत् वैमानिक देव सान्तर भी च्यवते है और निरन्तर भी ।

विवेचन—शका-समाधान—यहाँ शका उपस्थित होती है कि नैरयिक आदि की उत्पत्ति के सान्तर-निरन्तर आदि तथा उद्वर्त्तनादि का कथन प्रवेशनक-प्रकरण से पूर्व किया ही था, फिर यहाँ पुन सान्तर-निरन्तर आदि का कथन क्यो किया गया है ? इसका समाधान यह है कि यहाँ पुन सान्तर आदि का निरूपण नारकादि सभी जीवो के भेदो का सामुदायिक रूप से सामूहिक उत्पाद एव उद्वर्तन की दृष्टि से किया गया है ।[1]

प्रकारान्तर से चौबीस दण्डकों मे उत्पाद-उद्वर्तना-प्ररूपणा—

४९. सओ भते ! नेरतिया उववज्जति ? असओ भते ! नेरइया उववज्जंति ?

गगेया ! सओ नेरइया उववज्जति, नो असओ नेरइया उववज्जति । एवं जाव वेमाणिया ।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५५

[४९ प्र] भगवन् ! सत् (विद्यमान) नैरयिक जीव उत्पन्न होते है या असत् (अविद्यमान) नैरयिक उत्पन्न होते है ?

[४९ उ] गागेय ! सत् नैरयिक उत्पन्न होते है, असत् नैरयिक उत्पन्न नही होते । इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक जानना चाहिए ।

५० सओ भते ! नेरतिया उव्वट्टति, असओ नेरइया उव्वट्टति ?

गगेया ! सतो नेरइया उव्वट्टति, नो असओ नेरइया उव्वट्टति । एव जाव वेमाणिया, नवर जोइसिय-वेमाणिएसु 'चयति' भाणियव्व ।

[५० प्र] भगवन् ! मत् नैरयिक उद्वर्त्तते है या असत् नैरयिक उद्वर्त्तते है ?

[५० उ] गागेय ! सत् नैरयिक उद्वर्तते है, किन्तु असत् नैरयिक उद्वर्तित नही होते । इमी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए । विशेष इतना ही है कि ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के लिए 'च्यवते हैं', ऐसा कहना चाहिए ।

५१. [१] सओ भते ! नेरइया उववज्जति, असओ नेरइया उववज्जति ? सओ असुर-कुमारा उववज्जति जाव सतो वेमाणिया उववज्जति, असतो वेमाणिया उववज्जति ? सतो नेरतिया उव्वट्टति, असतो नेरइया उव्वट्टति ? सतो असुरकुमारा उव्वट्टति जाव सतो वेमाणिया चयति, असतो वेमाणिया चयति ?

गगेया ! सतो नेरइया उववज्जति, नो असओ नेरइया उववज्जति, सओ असुरकुमारा उववज्जति, नो असतो असुरकुमारा उववज्जंति, जाव सओ वेमाणिया उववज्जति, नो असतो वेमाणिया उववज्जति । सतो नेरतिया उव्वट्टति, नो असतो नेरइया उव्वट्टति; जाव सतो वेमाणिया चयति, नो असतो वेमाणिया० ।

[५१-१ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव, सत् नैरयिको मे उत्पन्न होते है या असत् नैरयिको मे उत्पन्न होते है ? असुरकुमार देव, सत् असुरकुमार देवो मे उत्पन्न होते है या असत् असुरकुमार देवो मे ? इसी प्रकार यावत् सत् वैमानिको मे उत्पन्न होते है या असत् वैमानिको मे ? तथा सत् नैरयिको मे से उद्वर्त्तते है या असत् नैरयिको मे से ? सत् असुरकुमारो मे से उद्वर्त्तते है यावत् सत वैमानिको मे मे च्यवते है या असत् वैमानिको मे से च्यवते है ?

[५१-१ उ] गागेय ! नैरयिक जीव सत् नैरयिको मे उत्पन्न होते है, किन्तु असत् नैरयिको मे उत्पन्न नही होते । मत् असुरकुमारो मे उत्पन्न होते हे, असत् असुरकुमारो मे नही । इमी प्रकार यावत् मत् वैमानिको मे उत्पन्न होते है, असत् वैमानिको मे नही । (इसी प्रकार) सत् नैरयिको मे से उद्वर्त्तते हैं, अमत् नैरयिको मे से नही । यावत् सत् वैमानिको मे से च्यवते हे, असत् वैमानिको मे मे नही ।

[२] से केणट्ठेण भते ! एवं वुच्चइ सतो नेरइया उववज्जति, नो असतो नेरइया उववज्जति, जाव सओ वेमाणिया चयति, नो असओ वेमाणिया चयति ?

से नूणं गगेया ! पासेण अरहया पुरिसादाणीएण सासए लोए वुइए, अणाईए अणवयग्गे जहा पचमे सए (स० ५ उ० ९ सु० १४ [२]) जाव जे लोक्कइ से लोए, से तेणट्ठेण गगेया ! एव वुच्चइ जाव सतो वेमाणिया चयति, नो असतो वेमाणिया चयति।

[५१-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि नैरयिक सत् नैरयिको मे उत्पन्न होते है, असत् नैरयिको मे नही। इसी प्रकार यावत् सत् वैमानिको मे मे च्यवते है, असत् वैमानिको मे से नही ?

[५१-२ उ] गागेय ! निश्चित ही पुरुपादानीय अरह (अर्हन्) श्रीपार्श्वनाथ ने लोक को शाश्वत, अनादि और अनन्त कहा है इत्यादि, पचम शतक के नौवें उद्देशक मे कहे अनुसार जानना चाहिए, यावत्—जो अवलोकन किया जाए, उसे लोक कहते है। इस कारण हे गागेय ! ऐसा कहा जाता है कि यावत् सत् वैमानिको मे से च्यवते है, असत् वैमानिको मे से नही।

विवेचन—सत् ही उत्पन्न होने आदि का रहस्य—सत् अर्थात्—द्रव्यार्थतया विद्यमान नैरयिक आदि ही नैरयिक आदि मे उत्पन्न होते है, सर्वथा असत् (अविद्यमान) द्रव्य तो कोई भी उत्पन्न नही होता, क्योकि वह तो गधे के सीग के समान असत् है। इन जीवो मे सत्त्व (विद्यमानत्व या अस्तित्व) जीवद्रव्य की अपेक्षा से, अथवा नारक-पर्याय की अपेक्षा से समझना चाहिए, क्योकि भावी नारक-पर्याय की अपेक्षा से द्रव्यत नारक ही नारको मे उत्पन्न होते है। अथवा यहाँ से मर कर नरक मे जाते समय विग्रहगति मे नरकायु का उदय हो जाने से वे जीव भावनारक हो कर ही नैरयिको मे उत्पन्न होते है।[1]

सत् मे ही उत्पन्न होने आदि का रहस्य—जो जीव नरक मे उत्पन्न होते है, पहले से उत्पन्न हुए सत् नैरयिको मे समुत्पन्न होते है, असत् नैरयिको मे नही, क्योकि लोक शाश्वत होने से नारक आदि जीवो का सदैव सद्भाव रहता है।[2]

गागेय सम्मतसिद्धान्त के द्वारा स्वकथन की पुष्टि—भगवान् महावीर ने 'लोक शाश्वत है' ऐसा पुरुषादानीय भगवान् पार्श्वनाथ ने भी फरमाया है, यह कह कर गागेय-मान्य सिद्धान्त के द्वारा स्वकथन की पुष्टि की है।[3]

केवलज्ञानी आत्मप्रत्यक्ष से सब जानते है—

५२. [१] सय भते ! एतेव जाणह उदाहु असय ? असोच्चा एतेवं जाणह उदाहु सोच्चा 'सतो नेरइया उववज्जति, नो असतो नेरइया उववज्जति जाव सओ वेमाणिया चयति, नो असओ वेमाणिया चयति ?

गगेया ! सय एतेव जाणामि, नो असय; असोच्चा एतेव जाणामि, नो सोच्चा, 'सतो नेरइया उववज्जति, नो असओ नेरइया उववज्जति, जाव सतो वेमाणिया चयति, नो असतो वेमाणिया चयति।'

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५५

२ वही, अ वृत्ति, पत्र ४५५

३ वही, अ वृत्ति, पत्र ४५५

[५२-१ प्र] भगवन् ! आप स्वय इसे इस प्रकार जानते है, अथवा अस्वय जानते है ? तथा विना सुने ही इसे इस प्रकार जानते है, अथवा सुनकर जानते है कि 'सत् नैरयिक उत्पन्न होते है, असत् नैरयिक नही ? यावत् सत् वैमानिको मे से च्यवन होता है, असत् वैमानिको मे से नही ?'

[५२-१ उ] गागेय ! यह सब इस रूप मे मै स्वय जानता हूँ, अस्वय नही। तथा बिना सुने ही मैं इसे इस प्रकार जानता हूँ, सुनकर ऐसा नही जानता कि सत् नैरयिक उत्पन्न होते है, असत् नैरयिक नही, यावत् सत् वैमानिको मे से च्यवते है, असत् वैमानिको मे से नही।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ त चेव जाव नो असतो वेमाणिया चयति ?

गगेया ! केवली ण पुरत्थिमेण मियं पि जाणइ, अमियं पि जाणइ, दाहिणेण एव जहा सद्दुद्देसए (स० ५ उ० ४ सु० ४ [२])[1] जाव निव्वुडे नाणे केवलिस्स, से तेणट्ठेण गगेया ! एवं वुच्चइ त चेव जाव नो असतो वेमाणिया चयति।

[५२-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है, कि मै स्वय जानता हूँ, इत्यादि, (पूर्वोक्तवत्) यावत् सत् वैमानिको मे से च्यवते है, असत् वैमानिको मे से नही ?

[५२-२ उ] गागेय ! केवलज्ञानी पूर्व (दिशा) मे मित (मर्यादित) भी जानते है, अमित (अमर्यादित) भी जानते है। इसी प्रकार दक्षिण (दिशा) मे भी जानते है। इस प्रकार शब्द-उद्देशक (भगवती श ५, उ ४, सू ४-२) मे कहे अनुसार कहना चाहिए। यावत् केवली का ज्ञान निरावरण होता है, इसलिए हे गागेय ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि मै स्वय जानता हूँ, इत्यादि, यावत् असत् वैमानिको मे से नही च्यवते।

विवेचन—केवलज्ञानी द्वारा समस्त स्व-प्रत्यक्ष—प्रस्तुत सूत्र ५२ मे बताया गया है कि भगवान् की अतिशय ज्ञानसम्पदा की सम्भावना करते हुए गागेय ने जो प्रश्न किया है, उसके उत्तर मे भगवान् ने कहा—'मैं अनुमान आदि के द्वारा नही, किन्तु, स्वय—आत्मा द्वारा जानता हूँ, तथा दूसरे पुरुषो के वचनो को सुनकर अथवा आगमत सुनकर नही जानता, अपितु बिना सुने ही—आगमनिरपेक्ष होकर स्वय, 'यह ऐसा है' इस प्रकार जानता हूँ, क्योकि केवलज्ञानी का स्वभाव पारमार्थिक प्रत्यक्ष रूप केवलज्ञान द्वारा समस्त वस्तुसमूह को प्रत्यक्ष (साक्षात्) करने का होता है। अत भगवान् द्वारा केवलज्ञान के स्वरूप और सिद्धान्त का स्पष्टीकरण किया गया है।[2]

कठिन शब्दो का भावार्थ—सयं—स्वत प्रत्यक्षज्ञान। **असयं**—अस्वय, परत ज्ञान। **अमिय**—अपरिमित।

नैरयिक आदि की स्वयं उत्पत्ति—

५३ [१] सय भते ! नेरइया नेरइएसु उववज्जति ? असय नेरइया नेरइएसु उववज्जति ?

गगेया ! सय नेरइया नेरइएसु उववज्जति, नो असय नेरइया नेरइएसु उववज्जति।

[५३-१ प्र] हे भगवन् ! क्या नैरयिक, नैरयिको मे स्वय उत्पन्न होते है या अस्वय उत्पन्न होते हैं ?

---

१ देखिए—भगवती सूत्र श ५, उ ४, सू ४-२ मे

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५५

[५३-१ उ] गागेय ! नैरयिक, नैरयिको मे स्वय उत्पन्न होते है, अस्वय उत्पन्न नही होते ।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ जाव उववज्जति ?

गगेया ! कम्मोदएण कम्मगुरुयत्ताए कम्मभारियत्ताए कम्मगुरुसभारियत्ताए, असुभाण कम्माण उदएण, असुभाण कम्माण विवागेण, असुभाण कम्माणं फलविवागेणं सय नेरइया नेरइएसु उववज्जति, नो असय नेरइया नेरइएसु उववज्जति, से तेणट्ठेण गगेया ! जाव उववज्जति ।

[५३-२ प्र] भगवन् ! ऐसा क्यो कहते है कि यावत् अस्वय नही उत्पन्न होते ?

[५३-२ उ] गागेय ! कर्म के उदय से, कर्मो की गुरुता के कारण, कर्मो के भारीपन से, कर्मो के अत्यन्त गुरुत्व और भारीपन से, अशुभ कर्मो के उदय से, अशुभ कर्मो के विपाक से तथा अशुभ कर्मो के फलपरिपाक से, नैरयिक, नैरयिको मे स्वय उत्पन्न होते है, अस्वय (परप्रेरित) उत्पन्न नही होते । इसी कारण से हे गागेय ! यह कहा गया है कि नैरयिक नैरयिको मे स्वय उत्पन्न होते है, अस्वय उत्पन्न नही होते ।

विवेचन—नैरयिको आदि की स्वय उत्पत्ति—रहस्य और कारण—प्रस्तुत पाच सूत्रो (५३ से ५७ तक) मे नैरयिक से लेकर वैमानिक तक २४ दण्डको के जीवो की स्वय उत्पत्ति बताई गई है, अस्वय यानी पर-प्रेरित नही । इस सैद्धान्तिक कथन का रहस्य यह है, कतिपय मतावलम्वी मानते है कि '**यह जीव अज्ञ है, अपने लिए सुख-दु ख उत्पन्न करने मे असमर्थ है । ईश्वर की प्रेरणा से यह स्वर्ग अथवा नरक मे जाता है ।** जैनसिद्धान्त से विपरीत इस मत का यहाँ खण्डन हो जाता है, क्योकि जीव कर्म करने मे जैसे स्वतत्र है, उसी प्रकार कर्मो का फल भोगने के लिए वह स्वय स्वर्ग या नरक मे जाता है, किन्तु ईश्वर के भेजने से नही जाता ।'[1]

५४ [१] सय भते ! असुरकुमारा० पुच्छा ।

गगेया ! सय असुरकुमारा जाव उववज्जति, नो असय असुरकुमारा जाव उववज्जति ।

[५४-१ प्र] भते ! असुरकुमार, असुरकुमारो मे स्वय उत्पन्न होते है या अस्वय ? इत्यादि पृच्छा ।

[५४-१ उ] गागेय ! असुरकुमार असुरकुमारो मे स्वय उत्पन्न होते है, अस्वय उत्पन्न नही होते ।

[२] से केणट्ठेण त चेव जाव उववज्जति ?

गगेया ! कम्मोदएण कम्मविगतीए कम्मविसोहीए कम्मविसुद्धीए, सुभाण कम्माण उदएणं, सुभाण कम्माण विवागेण, सुभाण कम्माण फलविवागेण सय असुरकुमारा असुरकुमारत्ताए उववज्जति, नो असय असुरकुमारा असुरकुमारत्ताए उववज्जंति । से तेणट्ठेण जाव उववज्जंति । एवं जाव थणियकुमारा ।

---

१ अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मन सुख-दु खयो ।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ॥
—भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५५ ।

[५२-१ प्र] भगवन् ! आप स्वय इसे इस प्रकार जानते है, अथवा अस्वय जानते है ? तथा विना सुने ही इसे इस प्रकार जानते है, अथवा सुनकर जानते है कि 'सत् नैरयिक उत्पन्न होते है, असत् नैरयिक नही ? यावत् सत् वैमानिको मे से च्यवन होता है, असत् वैमानिको मे से नही ?'

[५२-१ उ] गागेय ! यह सब इस रूप मे मैं स्वय जानता हूँ, अस्वय नही। तथा बिना सुने ही मै इसे इस प्रकार जानता हूँ, सुनकर ऐसा नही जानता कि सत् नैरयिक उत्पन्न होते है, असत् नैरयिक नही, यावत् सत् वैमानिको मे से च्यवते है, असत् वैमानिको मे से नही।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ त चेव जाव नो असतो वेमाणिया चयति ?

गंगेया ! केवली ण पुरत्थिमेण मिय पि जाणइ, अमिय पि जाणइ, दाहिणेणं एव जहा सद्दुद्देसए (स० ५ उ० ४ सु० ४ [२])[1] जाव निव्वुडे नाणे केवलिस्स, से तेणट्ठेण गंगेया ! एव वुच्चइ त चेव जाव नो असतो वेमाणिया चयंति।

[५२-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है, कि मै स्वय जानता हूँ, इत्यादि, (पूर्वोक्तवत्) यावत् सत् वैमानिको मे से च्यवते है, असत् वैमानिको मे से नही ?

[५२-२ उ] गागेय ! केवलज्ञानी पूर्व (दिशा) मे मित (मर्यादित) भी जानते है, अमित (अमर्यादित) भी जानते हैं। इसी प्रकार दक्षिण (दिशा) मे भी जानते है। इस प्रकार शब्द-उद्देशक (भगवती श ५, उ ४, सू ४-२) मे कहे अनुसार कहना चाहिए। यावत् केवली का ज्ञान निरावरण होता है, इसलिए हे गागेय ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि मैं स्वय जानता हूँ, इत्यादि, यावत् असत् वैमानिको मे से नही च्यवते।

विवेचन—केवलज्ञानी द्वारा समस्त स्व-प्रत्यक्ष—प्रस्तुत सूत्र ५२ मे बताया गया है कि भगवान् की अतिशय ज्ञानसम्पदा की सम्भावना करते हुए गागेय ने जो प्रश्न किया है, उसके उत्तर मे भगवान् ने कहा—'मै अनुमान आदि के द्वारा नही, किन्तु स्वय—आत्मा द्वारा जानता हूँ, तथा दूसरे पुरुषो के वचनो को सुनकर अथवा आगमत सुनकर नही जानता, अपितु बिना सुने ही—आगमनिरपेक्ष होकर स्वय, 'यह ऐसा है' इस प्रकार जानता हूँ, क्योकि केवलज्ञानी का स्वभाव पारमार्थिक प्रत्यक्ष रूप केवलज्ञान द्वारा समस्त वस्तुसमूह को प्रत्यक्ष (साक्षात्) करने का होता है। अत भगवान् द्वारा केवलज्ञान के स्वरूप और सिद्धान्त का स्पष्टीकरण किया गया है।[2]

कठिन शब्दो का भावार्थ—सय—स्वत प्रत्यक्षज्ञान। **असयं—**अस्वय, परत ज्ञान। **अमिय—**अपरिमित।

नैरयिक आदि की स्वयं उत्पत्ति—

५३ [१] सय भते ! नेरइया नेरइएसु उववज्जति ? असयं नेरइया नेरइएसु उववज्जति ?

गंगेया ! सय नेरइया नेरइएसु उववज्जति, नो असय नेरइया नेरइएसु उववज्जति।

[५३-१ प्र] हे भगवन् ! क्या नैरयिक, नैरयिको मे स्वय उत्पन्न होते है या अस्वय उत्पन्न होते हैं ?

---

१ देखिए—भगवती सूत्र श ५, उ ४, सू ४-२ मे

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५५

[५३-१ उ] गागेय ! नैरयिक, नैरयिकों मे स्वय उत्पन्न होते हे, अस्वय उत्पन्न नही होते ।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ जाव उववज्जति ?

गगेया ! कम्मोदएण कम्मगुरुयत्ताए कम्मभारियत्ताए कम्मगुरुसभारियत्ताए, असुभाण कम्माण उदएण, असुभाण कम्माण विवागेण, असुभाण कम्माण फलविवागेण सय नेरइया नेरइएसु उववज्जति, नो असय नेरइया नेरइएसु उववज्जति, से तेणट्ठेण गगेया ! जाव उववज्जति ।

[५३-२ प्र] भगवन् ! ऐसा क्यो कहते है कि यावत् अस्वय नही उत्पन्न होते ?

[५३-२ उ] गागेय ! कर्म के उदय से, कर्मो की गुरुता के कारण, कर्मो के भारीपन से, कर्मो के अत्यन्त गुरुत्व और भारीपन से, अशुभ कर्मो के उदय से, अशुभ कर्मो के विपाक से तथा अशुभ कर्मो के फलपरिपाक से, नैरयिक, नैरयिको मे स्वय उत्पन्न होते है, अस्वय (परप्रेरित) उत्पन्न नही होते । इसी कारण से हे गागेय ! यह कहा गया है कि नैरयिक नैरयिको मे स्वय उत्पन्न होते है, अस्वय उत्पन्न नही होते ।

विवेचन—नैरयिको आदि की स्वय उत्पत्ति—रहस्य और कारण—प्रस्तुत पाच सूत्रो (५३ से ५७ तक) मे नैरयिक से लेकर वैमानिक तक २४ दण्डको के जीवो की स्वय उत्पत्ति बताई गई है, अस्वय यानी पर-प्रेरित नही । इस सैद्धान्तिक कथन का रहस्य यह है, कतिपय मतावलम्बी मानते है कि 'यह जीव अज्ञ है, अपने लिए सुख-दु ख उत्पन्न करने मे असमर्थ है । ईश्वर की प्रेरणा से यह स्वर्ग अथवा नरक मे जाता है । जैनसिद्धान्त से विपरीत इस मत का यहाँ खण्डन हो जाता है, क्योकि जीव कर्म करने मे जैसे स्वतत्र है, उसी प्रकार कर्मो का फल भोगने के लिए वह स्वय स्वर्ग या नरक मे जाता है, किन्तु ईश्वर के भेजने से नही जाता ।[१]

५४ [१] सय भते ! असुरकुमारा० पुच्छा ।

गगेया ! सयं असुरकुमारा जाव उववज्जति, नो असय असुरकुमारा जाव उववज्जति ।

[५४-१ प्र] भते ! असुरकुमार, असुरकुमारो मे स्वय उत्पन्न होते है या अस्वय ? इत्यादि पृच्छा ।

[५४-१ उ] गागेय ! असुरकुमार असुरकुमारो मे स्वय उत्पन्न होते है, अस्वय उत्पन्न नही होते ।

[२] से केणट्ठेण त चेव जाव उववज्जति ?

गगेया ! कम्मोदएण कम्मविगतीए कम्मविसोहीए कम्मविसुद्धीए, सुभाण कम्माण उदएणं, सुभाण कम्माण विवागेण, सुभाण कम्माण फलविवागेण सय असुरकुमारा असुरकुमारत्ताए उववज्जति, नो असय असुरकुमारा असुरकुमारत्ताए उववज्जति । से तेणट्ठेण जाव उववज्जति । एवं जाव थणियकुमारा ।

---

१ अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मन सुख-दु खयो ।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ॥

—भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५५ ।

[५४-२ प्र] भगवन्! ऐसा कहने का क्या कारण है कि यावत् अस्वय उत्पन्न नही होते ?

[५४-२ उ] हे गागेय! *कर्म के उदय से, (अशुभ) कर्म के अभाव से, कर्म की विशोधि से,* कर्मो की विशुद्धि से, शुभ कर्मो के उदय से, शुभ कर्मो के विपाक से, शुभ कर्मो के फलविपाक से असुरकुमार, असुरकुमारो मे स्वय उत्पन्न होते है, अस्वय उत्पन्न नही होते। इसलिए हे गागेय! पूर्वोक्त रूप से कहा गया है। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारो तक जानना चाहिए।

५५. [१] सयं भते! पुढविक्काइया० पुच्छा।

गंगेया! सय पुढविकाइया जाव उववज्जति, नो असय पुढविक्काइया जाव उववज्जति।

[५५-१ प्र] भगवन्! क्या पृथ्वीकायिक, पृथ्वीकायिको मे स्वय उत्पन्न होते है, या अस्वय उत्पन्न होते है ?

[५५-१ उ] गागेय! पृथ्वीकायिक, पृथ्वीकायिको मे स्वय यावत् उत्पन्न होते है अस्वय उत्पन्न नही होते।

[२] से केणट्ठेण भते! एव वुच्चइ जाव उववज्जति ?

गगेया! कम्मोदएणं कम्मगुरुयत्ताए कम्मभारियत्ताए कम्मगुरुसभारित्ताए, सुभासुभाण कम्माण उदएण, सुभासुभाण कम्माण विवागेणं, सुभासुभाण कम्माण फलविवागेण सय पुढविकाइया जाव उववज्जति, नो असयं पुढविकाइया जाव उववज्जति। से तेणट्ठेणं जाव उववज्जति।

[५५-२ प्र] भगवन्! ऐसा किस कारण से कहते है कि पृथ्वीकायिक स्वय उत्पन्न होते हैं, इत्यादि ?

[५५-२ उ] गागेय! कर्म के उदय से, कर्मो की गुरुता से, कर्म के भारीपन से, कर्म के अत्यन्त गुरुत्व और भारीपन से, शुभाशुभ कर्मो के उदय से, शुभाशुभ कर्मो के विपाक से, शुभाशुभ कर्मो के फल-विपाक से पृथ्वीकायिक, पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होते है, अस्वय उत्पन्न नही होते। इसलिए हे गागेय! पूर्वोक्त रूप से कहा गया है।

५६ एव जाव मणुस्सा।

[५६] इसी प्रकार यावत् मनुष्य तक जानना चाहिए।

५७. वाणमतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारा। से तेणट्ठेण गगेया! एव वुच्चइ—सय वेमाणिया जाव उववज्जति, नो असय जाव उववज्जति।

[५७] जिस प्रकार असुरकुमारो के विषय मे कहा, उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिको के विषय मे भी जानना चाहिए। इसी कारण से, हे गागेय! मै ऐसा कहता हूँ कि यावत् वैमानिक, वैमानिको मे स्वय उत्पन्न होते है, अस्वय उत्पन्न नही होते।

जीवो की नारक, देव आदि रूप मे स्वयं उत्पत्ति के कारण—(१) कर्मोदयवश, (२) कर्मो की गुरुता से, (३) कर्मो के भारीपन से, (४) कर्मो के गुरुत्व और भारीपन की अतिप्रकर्षावस्था मे,

(५) कर्मों के उदय से, (६) विपाक से (यानी कर्मों के फलभोग) से, अथवा यथावद्ध रसानुभूति मे, फलविपाक से-रस की प्रकर्षता से ।[1]

उपर्युक्त शब्दो मे किञ्चित् अर्थभेद है अथवा ये शब्द एकार्थक है । अर्थ के प्रकर्ष को वतलाने के लिए अनेक शब्दो का प्रयोग किया गया है ।[2]

भगवान् के सर्वज्ञत्व पर श्रद्धा और पचमहाव्रत धर्म-स्वीकार—

५८. तप्पभिइ च ण से गगेये अणगारे समण भगव महावीर पच्चभिजाणइ सव्वण्णू सव्वदरिसी ।

[५८] तब से अर्थात् इन प्रश्नोत्तरो के समय से गागेय अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर को सर्वज्ञ और सर्वदर्शी के रूप मे पहचाना ।

५९. तए ण से गगेये अणगारे समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेइ, करेत्ता वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—इच्छामि ण भते ! तुब्भ अतिय चाउज्जामाओ धम्माओ पचमहव्वइय एव जहा कालासवेसियपुत्तो (स० १ उ० ९ सु० २३-२४)[3] तहेव भाणियव्वं जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति० ।

॥ गगेयो समत्तो ॥९. ३२॥

[५९] इसके पश्चात् गागेय अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर को तीन वार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, वन्दन नमस्कार किया । उसके बाद इस प्रकार निवेदन किया—

भगवन् ! मैं आपके पास चातुर्यामरूप धर्म से (-धर्म के वदले) पचमहाव्रतरूप धर्म को अगीकार करना चाहता हूँ । इस प्रकार सारा वर्णन प्रथम शतक के नौवे उद्देशक मे कथित कालास्य-वेषिकपुत्र अनगार के समान जानना चाहिए । यावत् गागेय अनगार सिद्ध, बुद्ध, मुक्त यावत् सर्वदु खो से रहित वने ।

हे भगवन् यह इसी प्रकार है ! हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है !

विवेचन—भगवान् के सर्वज्ञत्व पर श्रद्धा और पचमहाव्रत धर्म का स्वीकार—प्रस्तुत दो सूत्रो (५८-५९) मे यह प्रतिपादन किया गया है कि जब गागेय अनगार को भगवान् के सर्वज्ञत्व एव सर्वदर्शित्व पर विश्वास हो गया, तव उन्होने भगवान् से चातुर्यामधर्म के स्थान पर पचमहाव्रतरूप धर्म स्वीकार किया और क्रमश सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हुए ।

॥ नवम शतक बत्तीसवां उद्देशक समाप्त ॥ □□

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५५

२ वही, अ वृत्ति, पत्र ४५५

३ भगवतीमूल श १, उ ९, सू २३-२४ मे देखिये ।

तेत्तीसइमो उद्देसो : तेती ँ उद्दे क

कुंडग्गामे : कुण्डग्राम

ऋषभदत्त और देवानन्दा

संक्षिप्त परिचय—

१. तेण कालेणं तेण समएण माहणकुंडग्गामे नयरे होत्था । वण्णओ । बहुसालए चेतिए । वण्णओ ।

[१] उस काल और उस समय मे ब्राह्मणकुण्डग्राम नामक नगर था। उसका वर्णन नगर-वर्णन के समान समझ लेना चाहिए। वहाँ बहुशाल नामक चैत्य (उद्यान) था। उसका वर्णन भी (औपपातिकसूत्र से) करना चाहिए।

२. तत्थ ण माहणकुंडग्गामे नयरे उसभदत्ते नाम माहणे परिवसति—अड्ढे दित्ते वित्ते जाव[1] अपरिभूए। रिउवेद-जजुवेद-सामवेद-अथव्वणवेद जहा खदओ (स० २ उ० १ सु० १२) जाव अन्नेसु य बहुसु बभण्णएसु नएसु सुपरिनिट्ठिए समणोवासए अभिगयजीवाजीवे उवलद्धपुण्ण-पावे जाव अप्पाण भावेमाणे विहरति ।

[२] उस ब्राह्मणकुण्डग्राम नगर मे ऋषभदत्त नाम का ब्राह्मण रहता था। वह आढ्य (धनवान्), दीप्त (तेजस्वी), प्रसिद्ध, यावत् अपरिभूत था। वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्वणवेद मे निपुण था। (शतक २, उद्देशक १, सू १२ मे कथित) स्कन्दक तापस की तरह वह भी ब्राह्मणो के अन्य बहुत से नयो (शास्त्रो) मे निष्णात था। वह श्रमणो का उपासक, जीव-अजीव आदि तत्त्वो का ज्ञाता, पुण्य-पाप के तत्त्व को उपलब्ध (हृदयगम किया हुआ), यावत् आत्मा को भावित करता हुआ विहरण (जीवन-यापन) करता था।

३ तस्स ण उसभदत्तमाहणस्स देवाणदा नाम माहणी होत्था, सुकुमालपाणि-पाया जाव पियदसणा सुरूवा समणोवासिया अभिगयजीवाजीवा उवलद्धपुण्ण-पावा जाव विहरइ ।

[३] उस ऋषभदत्त ब्राह्मण की देवानन्दा नाम की ब्राह्मणी (धर्मपत्नी) थी। उसके हाथ-पैर सुकुमाल थे, यावत् उसका दर्शन भी प्रिय था। उसका रूप सुन्दर था। वह श्रमणोपासिका थी, जीव-अजीव आदि तत्त्वो की जानकार थी तथा पुण्य-पाप के रहस्य को उपलब्ध की हुई थी, यावत् विहरण करती थी।

विवेचन—ब्राह्मणकुण्ड—यह 'क्षत्रियकुण्ड' के पास ही कोई कस्बा था। ब्राह्मणो की वस्ती अधिक होने से इसका नाम ब्राह्मणकुण्ड पड गया।[2]

---

१. जाव पद से सूचित पाठ—'विच्छिन्नविउलभवण-सयणासण जाव वाहणाइन्ने' इत्यादि ।

२ भगवतीसूत्र तृतीय खण्ड (गुजरात विद्यापीठ) पृ. १६२

ऋषभदत्त ब्राह्मणधर्मानुयायी था या श्रमणधर्मानुयायी ?—इस वर्णन मे ज्ञात होता है कि ऋषभदत्त पहले ब्राह्मण-सस्कृति का अनुगामी था, इसी कारण उसे चारो वेदो का ज्ञाता तथा अन्य अनेक ब्राह्मणग्रन्थो का विद्वान् बताया है। किन्तु बाद मे भगवान् पार्श्वनाथ के सन्तानीय मुनियो के सम्पर्क से वह श्रमणोपासक बना। श्रमणधर्म का तत्त्वज्ञ हुआ।[1]

कठिन शब्दो का अर्थ—परिवसइ=निवास करता था, रहता था। वित्त=प्रसिद्ध। अपरिभूए-अपरिभूत=किसी से नही दबने वाला, दबग। बभण्णएसु=ब्राह्मण-सस्कृति की नीति (धर्म) मे। सुपरिणिट्ठिए=परिपक्व, मँजा हुआ।[2]

भगवान् की सेवा मे वन्दना-पर्युपासनादि के लिए जाने का निश्चय—

४. तेण कालेण तेण समएण सामी समोसढे। परिसा जाव पज्जुवासति।

[४] उस काल और उस समय मे (श्रमण भगवान् महावीर) स्वामी वहाँ पधारे। समवसरण लगा। परिषद् यावत् पर्युपासना करने लगी।

५. तए ण से उसभदत्ते माहणे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठ जाव हियए जेणेव देवाणदा माहणी तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता देवाणद माहणि एव वयासी—एव खलु देवाणुप्पिए! समणे भगव महावीरे आदिगरे जाव सव्वण्णू सव्वदरिसी आगासगएण चक्केण जाव सुहसुहेण विहरमाणे जाव बहुसालए चेइए अहापडिरूव जाव विहरति। त महाफल खलु देवाणुप्पिए! तहारूवाण अरहताण भगवताण नाम-गोयस्स वि सवणयाए किमग पुण अभिगमण-वदण-नमसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए किमग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए? त गच्छामो ण देवाणुप्पिए! समण भगव महावीर वदामो नमसामो जाव पज्जुवासामो। एय ण इहभवे य परभवे य हियाए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ।

[५] तदनन्तर इस (श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पदार्पण की) बात को सुनकर वह ऋषभदत्त ब्राह्मण अत्यन्त हर्षित और सन्तुष्ट हुआ, यावत् हृदय मे उल्लसित हुआ और जहाँ देवानन्दा ब्राह्मणी थी, वहाँ आया और उसके पास आकर इस प्रकार बोला—हे देवानुप्रिये! धर्म की आदि करने वाले यावत् सर्वज्ञ सर्वदर्शी श्रमण भगवान् महावीर आकाश मे रहे हुए चक्र से युक्त यावत् सुखपूर्वक विहार करते हुए यहाँ पधारे है, यावत् बहुशालक नामक चैत्य (उद्यान) मे योग्य अवग्रह ग्रहण करके यावत् विचरण करते है। हे देवानुप्रिये! उन तथारूप अरिहन्त भगवान् के नाम-गोत्र के श्रवण से भी महाफल प्राप्त होता है, तो उनके सम्मुख जाने, वन्दन-नमस्कार करने, प्रश्न पूछने और पर्युपासना करने आदि से होने वाले फल के विषय मे तो कहना ही क्या! एक भी आर्य और धार्मिक सुवचन के श्रवण से महान् फल होता है, तो फिर विपुल अर्थ को ग्रहण करने से महाफल हो, इसमे तो कहना ही क्या है! इसलिए हे देवानुप्रिये! हम चले और श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमन करे यावत् उनकी पर्युपासना करे। यह कार्य हमारे लिए इस भव मे तथा परभव मे

---

१ भगवतीसूत्र अर्थागम (हिन्दी) द्वितीय खण्ड पृ ८३९

२ भगवती भा ४ (प घेवरचन्दजी) पृ १६९०

हित के लिए, सुख के लिए, क्षमता (—सगतता) के लिए, नि श्रेयस के लिए और आनुगामिकता (—शुभ अनुवन्ध) के लिए होगा।

६. तए ण सा देवाणदा माहणी उसभदत्तेणं माहणेणं एव वुत्ता समाणी हट्ठ जाव हियया करयल जाव कट्टु उसभदत्तस्स माहणस्स एयमट्ठ विणएण पडिसुणेइ।

[६] तत्पश्चात् ऋषभदत्त ब्राह्मण से इस प्रकार का कथन सुन कर देवानन्दा ब्राह्मणी हृदय मे अत्यन्त हर्षित यावत् उल्लसित हुई और उसने दोनो हाथ जोड कर मस्तक पर अजलि करके ऋषभदत्त ब्राह्मण के कथन को विनयपूर्वक स्वीकार किया।

विवेचन—भगवान् महावीर की सेवा मे दर्शन-वन्दनादि के लिए जाने का निश्चय—प्रस्तुत सू ४ से ६ तक मे भगवान् महावीर का ब्राह्मणकुण्ड मे पदार्पण, ऋषभदत्त द्वारा हर्षित होकर देवानन्दा को शुभ समाचार सुनाया जाना तथा भगवान् के नाम-गोत्र श्रवण, अभिगमन, वन्दन-नमन, पृच्छा, पर्युपासना, वचनश्रवण, ग्रहण आदि का माहात्म्य एव फल वताकर दर्शन-वन्दनादि के लिए जाने का विचार प्रस्तुत करना, तथा इस कार्य को हितकर, सुखकर, श्रेयस्कर एव परम्परानुगामी वताना, यह सब सुनकर देवानन्दा द्वारा हर्षित होकर सविनय समर्थन एव दर्शन-वन्दनादि के लिए जाने का दोनो का निश्चय क्रमश प्रतिपादित किया गया है।[1]

कठिन शब्दो के अर्थ—इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे=यह (—श्रमण भगवान् महावीर के कुण्डग्राम मे पदार्पण की) बात जान कर। **हट्ठतुट्ठचित्तमाणदिया**=अत्यन्त हृष्ट—प्रसन्न, सन्तुष्ट-चित्त एव आनन्दित। **आगासगएण चक्केणं**=आकाशगत चक्र(धर्मचक्र) से युक्त। **अहापडिरूव**=अपने कल्प के अनुरूप। **खमाए**=क्षमता—सगतता के लिए। **आणुगामियत्ताए**=आनुगामिकता अर्थात्—परम्परा से चलने वाले शुभ अनुबन्ध के लिए।[2]

ब्राह्मणदम्पती की दर्शनवन्दनार्थ जाने की तैयारी—

७. तए ण से उसभदत्ते माहणे कोडुबियपुरिसे सद्दावेइ कोडुबियपुरिसे सद्दावेत्ता एव वयासी—खिप्पामेव भो! देवाणुप्पिया! लहुकरणजुत्त-जोइय-समखुर-वालिधाण-समलिहियसिंगएहिं जबूणयामयकलावजुत्तपइविसिट्ठएहिं रययामयघटसुत्तरज्जुयवरकचणनत्थपग्गहोग्गहियएहिं नीलुप्पलकयामेलएहिं पवरगोणजुवाणएहिं नाणामणिरयणघटियाजालपरिगय सुजायजुगजोत्तरज्जुयजुगपसत्थसुविरचितनिम्मिय पवरलक्खणोववेय धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तामेव उवट्ठवेह, उवट्ठवित्ता मम एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह।

[७] तत्पश्चात् उस ऋषभदत्त ब्राह्मण ने अपने कौटुम्बिक पुरुषो (सेवको) को वुलाया और इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! शीघ्र चलने वाले, प्रशस्त, सदृशरूप वाले, समान खुर और पूछ वाले, एक समान सीग वाले, स्वर्णनिर्मित कलापो (आभूषणो) से युक्त, उत्तम गति (चाल) वाले, चादी की घटियो से युक्त, स्वर्णमय नाथ (नासारज्जु) द्वारा वाधे हुए, नील कमल की कलगी वाले दो उत्तम युवा

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ टिप्पण) भा १, पृ ४५०

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५९ (ख) भगवती खण्ड ३ (गु विद्यापीठ), पृ १६२

वैलो से युक्त, अनेक प्रकार की मणिमय घटियो के ममूह से व्याप्त, उत्तम काष्ठमय जुए (धूसर) और जोत की उत्तम दो डोरियो से युक्त, प्रवर (श्रेष्ठ) लक्षणों से युक्त धार्मिक श्रेष्ठ यान (रथ) शीघ्र तैयार करके यहाँ उपस्थित करो और इस आज्ञा को वापिस करो अर्थात् इस आज्ञा का पालन करके मुझे सूचना करो।

८ तए ण ते कोडु बियपुरिसा उसभदत्तेण माहणेण एव वुत्ता समाणा हट्ठ जाव हियया करयल० एव वयासी—सामी! 'तह' त्ताणाए विणएण वयण जाव पडिसुणेत्ता खिप्पामेव लहुकरण-जुत्त० जाव धम्मिय जाणप्पवर जुत्तामेव उवट्ठवेत्ता जाव तमाणत्तिय पच्चप्पिणति।

[८] जब ऋषभदत्त ब्राह्मण ने उन कौटुम्बिक पुरुपो को इस प्रकार कहा, तव वे उसे मुन कर अत्यन्त हर्षित यावत् हृदय मे आनन्दित हुए और मस्तक पर अर्जलि करके इस प्रकार कहा—स्वामिन्! आपकी यह आज्ञा हमे मान्य है—तथाऽस्तु (ऐसा ही होगा)। इस प्रकार कह कर विनयपूर्वक उनके वचनो को स्वीकार किया और (ऋपभदत्त की आज्ञानुसार) शीघ्र ही द्रुतगामी दो बैलो से युक्त यावत् श्रेष्ठ धार्मिक रथ को तैयार करके उपस्थित किया, यावत् उनकी आज्ञा के पालन की सूचना दी।

९. तए ण से उसभदत्ते माहणे ण्हाए जाव अप्पमहग्घाभरणालकियसरीरे साओ गिहाओ पडिनिक्खमति, साओ गिहाओ पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता धम्मिय जाणप्पवर दुरूढे।

[९] तदनन्तर वह ऋषभदत्त ब्राह्मण स्नान यावत् अल्पभार (कम वजन के) और महामूल्य वाले आभूपणो से अपने शरीर को अलकृत किये हुए अपने घर से बाहर निकला। घर से बाहर निकल-कर जहाँ बाहरी उपस्थानशाला थी और जहाँ श्रेष्ठ धार्मिक रथ था, वहाँ आया। आकर उस रथ पर आरूढ हुआ।

१० तए ण सा देवाणदा माहणी[1] ण्हाया जाव अप्पमहग्घाभरणालकियसरीरा बहूहिं खुज्जाहिं चिलाइयाहिं जाव[2] अतेउराओ निग्गच्छति, अतेउराओ निग्गच्छित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता जाव धम्मिय जाणप्प-वर दुरूढा।

---

१ वाचनान्तर मे देवानन्दा-वर्णक—'अतो अतेउरसि ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमगलपायच्छित्ता वरपादपत्तने-उरमणिमेहलाहाररइयउचियकडगखुड्डागएगावलीकठसुत्तउरत्थगेवेज्जसोणिसुत्तगणाणामणिरयणभूसणविराइयगी चीणसुयवत्थपवरपरिहिया दुगुल्लसुकुमालउत्तरिज्जा सव्वोउयसुरभिकुसुमवरियसिरया वरचदणवदिया वराभरण-भूसियगी कालागुरुधूवधूविया सिरीसमाणवेसा।' अ वृत्ति पत्राक ४५९

२ 'जाव' पद से निम्नलिखित पाठ समझना चाहिए—वामणियाहिं वडहियाहि बब्बरियाहिं पओसियाहिं ईसिगणि-याहिं वासगणियाहिं जोण्हि ('जोणि'प्रत्य०) याहिं पल्हवियाहिं ल्हासियाहि लउसियाहि आरबीहिं दमिलाहिं सिहलीहिं पुलिदीहिं पक्कणीहिं बहलीहिं मुरुडीहिं सबरीहिं पारसीहिं नाणादेसिविदेसपरिपिंडियाहिं सवेसने-वत्थगहियवेसाहिं इगियचितियपत्थियवियाणियाहि कुसलाहि विणीयाहि, युक्ता इति गम्यते।

[१०] तब देवानन्दा ब्राह्मणी ने भी (अन्त पुर मे) स्नान किया, यावत् अल्पभार वाले महामूल्य आभूषणो से शरीर को सुशोभित किया। फिर बहुत सी कुब्जा दासियो तथा चिलात देश की दासियो के साथ यावत् अन्त पुर से निकली। अन्त पुर से निकल कर जहाँ बाहर की उपस्थानशाला थी और जहाँ श्रेष्ठ धार्मिक रथ खडा था, वहाँ आई। उस श्रेष्ठ धार्मिक रथ पर आरूढ हुई।

विवेचन—भगवान् के दर्शन-वन्दनादि के लिए जाने की तैयारी—प्रस्तुत सू ७ से १० तक चार सूत्रो मे क्रमश कौटुम्बिक पुरुषो को श्रेष्ठ धार्मिक रथ को तैयार करके शीघ्र उपस्थित करने की आज्ञा दी, उन्होने आज्ञा शिरोधार्य की और शीघ्र धार्मिक रथ तैयार करके प्रस्तुत किया।

तदनन्तर ऋषभदत्त ब्राह्मण तथा देवानन्दा ब्राह्मणी पृथक्-पृथक् स्नानादि से निवृत्त होकर वेशभूषा से सुसज्जित हुए और धार्मिक रथ मे बैठे।[1]

कठिन शब्दो के अर्थ—कोडु बियपुरिसा=कौटुम्बिक पुरुष (सेवक या कर्मचारी)। **सद्दावेइ**=बुलाए। **खिप्पामेव**=शीघ्र ही। **लहुकरणजुत्त**=शीघ्र गति करने वाले उपकरणो-साधनो से युक्त। **समखुर-वालिधाण**=समानखुर और पूछ वाले। **समलिहियसिंगे**=समान चित्रित सींगोवाले। **जबूणयमयकलावजुत्त**=जाम्बुनद-स्वर्ण से बने हुए कलापो व कण्ठ के आभूषणो से युक्त। **परिविसिट्ठेहिं**=प्रतिविशिष्ट—प्रधानरूप से फुर्तीले। **रययामयघट**=चादी की घटियो से युक्त। **सुत्तरज्जुयवरकचणनत्थपग्गहोग्गहियएहिं**=सोने के डोरी (सूत्र) की नाथ (नासारज्जु) से बधे हुए। **णीलुप्पलकयामेलएहिं**=नील कमल की कलगी से युक्त। **पवरगोणजुवाणएहिं**=जवान श्रेष्ठ बैलो से। **सुजायजुगजोत्तरज्जुयजुगपसत्थ-सुविरचितनिम्मिय**=उत्तम काष्ठ के जुए और जोत की रस्सियो से सुनियोजित। **पवरलक्खणोववेय**=उत्कृष्ट लक्षणो से युक्त। **जुत्तामेव**=जोत कर। **उवट्ठवेह**=उपस्थित करो। **एयमाणत्तिय**=इस आज्ञा को। **पच्चप्पिणह**=प्रत्यर्पण करो-वापिस लौटाओ। **तहत्ति**=तथास्तु-ऐसा ही होगा। **खुज्जाहि**-कुब्जा दासियो के साथ। **चिलाइयाहिं**=चिलात (किरात) देश मे उत्पन्न दासियो के साथ।[2]

११ तए ण से उसभदत्ते माहणे देवाणदाए माहणीए सद्धि धम्मिय जाणप्पवर दुरूढे समाणे णियगपरियालसपरिवुडे माहणकु डग्गाम नगर मज्झमज्झेण निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव बहुसालए चेइए तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता छत्तादीए तित्थकरातिसए पासइ, २ धम्मिय जाणप्पवर ठवेइ, ठवेत्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, २ समण भगव महावीर पचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छति, त जहा—सचित्ताण दव्वाण विओसरणयाए एव जहा बिइयसए (स० २ उ० ५ सु० १४) जाव तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासइ।

[११] इसके पश्चात् वह ऋषभदत्त ब्राह्मण देवानन्दा ब्राह्मणी के साथ श्रेष्ठ धार्मिक रथ पर चढा हुआ अपने परिवार मे परिवृत्त होकर ब्राह्मणकुण्डग्राम नामक नगर के मध्य मे होता हुआ

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ टिप्पण) भा १, पृ ४५२

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५९

(ख) भगवती तृतीय खण्ड (गुजरात विद्यापीठ), पृ १६३

निकला और बहुशालक नामक उद्यान मे आया। वहाँ तीर्थंकर भगवान् के छत्र आदि अतिशयो को देखा। देखते ही उसने श्रेष्ठ धार्मिक रथ को ठहराया और उस श्रेष्ठ धर्म-रथ से नीचे उतरा।

रथ से उतर कर वह श्रमण भगवान् महावीर के पास पाच प्रकार के अभिगमपूर्वक गया। वे पाँच अभिगम इस प्रकार है—(१) सचित्त द्रव्यो का त्याग करना इत्यादि, द्वितीय शतक (के पचम उद्देशक सू १४) मे कहे अनुसार यावत् तीन प्रकार की पर्युपासना से उपासना करने लगा।

१२. तए ण सा देवाणदा माहणी धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता० बहुयाहि खुज्जाहि जाव[1] महत्तरगवदपरिक्खित्ता समण भगव महावीर पचविहेण अभिगमेण अभिगच्छइ, त जहा—सचित्ताण दव्वाण विओसरणयाए १ अचित्ताण दव्वाण अविमोयणयाए २ विणयोणयाए गायलट्ठीए ३ चक्खुफासे अजलिपग्गहेण ४ मणस्स एगत्तीभावकरणेण ५। जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करेत्ता वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता उसभदत्त माहण पुरओ कट्टु ठिया चेव सपरिवारा सुस्सूसमाणी णमसमाणी अभिमुहा विणएण पजलिउडा पज्जुवासइ।

[१२] तदनन्तर वह देवानन्दा ब्राह्मणी भी धार्मिक उत्तम रथ से नीचे उतरी और अपनी वहुत-सी दासियो आदि यावत् महत्तरिका-वृन्द से परिवृत हो कर श्रमण भगवान् महावीर के सम्मुख पचविध अभिगमपूर्वक जाने लगी। वे पाँच अभिगम इस प्रकार है—(१) सचित्त द्रव्यो का त्याग करना, (२) अचित्त द्रव्यो का त्याग न करना, अर्थात् वस्त्र आदि को व्यवस्थित ढग से धारण करना, (३) विनय से शरीर को अवनत करना (नीचे झुकाना), (४) भगवान् के दृष्टिगोचर होते ही दोनो हाथ जोडना, (५) मन को एकाग्र करना। इन पाच अभिग्रहो द्वारा जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ वह आई और उसने भगवान् को तीन वार आदक्षिण (दाहिनी ओर से) प्रदक्षिणा की, फिर वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार के बाद ऋषभदत्त ब्राह्मण को आगे करके अपने परिवार सहित शुश्रूषा करती हुई, नमन करती हुई, सम्मुख खडी रह कर विनयपूर्वक हाथ जोड कर उपासना करने लगी।

विवेचन—पांच अभिगम क्या और क्यो?—त्यागी महापुरुषो के पास जाने की एक विशिष्ट मर्यादा को शास्त्रीय परिभाषा मे अभिगम कहते है। वे पाँच प्रकार के है परन्तु स्त्री और पुरुष के लिए तीसरे अभिगम मे अन्तर है। श्रावक के लिए है—एक पट वाले दुपट्टे का उत्तरासग करना, जबकि श्राविका के लिए है—विनय से शरीर को झुकाना। साधु-साध्वियो के पास जाने के लिए इन पाच अभिगमो का पालन करना आवश्यक है।[2]

देवानन्दा की मातृवत्सलता और गौतम का समाधान—

१३ तए ण सा देवाणदा माहणी आगयपण्हया पप्फुयलोयणा सवरियवलयबाहा कचुयपरिक्खित्तिया धाराहयकलबग पिव समूससियरोमकूवा समण भगव महावीर अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणी देहमाणी चिट्ठति।

---

१ 'जाव' पद मे यह पाठ—चेडियाचक्कवालवरिसधर-थेरकचुइज्ज-महत्तरयवदपरिक्खित्ता।

२ भगवती भा ४ (प घेवरचन्दजी), पृ १७००

[१३] तदनन्तर उस देवानन्दा ब्राह्मणी के पाना चढा (अर्थात्—उसके स्तनो मे दूध आ गया)। उसके नेत्र हर्षाश्रुओ से भीग गए। हर्ष से प्रफुल्लित होती हुई उसकी बाहो को वलयो ने रोक लिया। (अर्थात्—उसकी भुजाओ के कडे—बाजूबद तग हो गए)। हर्षातिरेक से उसकी कञ्चुकी (काचली) विस्तीर्ण हो गई। मेघ की धारा से विकसित कदम्बपुष्प के समान उसका शरीर रोमाञ्चित हो गया। फिर वह श्रमण भगवान् महावीर को अनिमेष दृष्टि से (टकटकी लगाकर) देखती रही।

१४. 'भते!' त्ति भगव गोयमे समण भगव महावीर वदति नमंसति, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—किं ण भते! एसा देवाणदा माहणी आगयपण्हया तं चेव जाव रोमकूवा देवाणुप्पिय अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणी देहमाणी चिट्ठइ? 'गोयमा!' दि समणे भगव महावीरे भगव गोयम एव वयासी—एव खलु गोयमा! देवाणदा माहणी मम अम्मगा, अह ण देवाणंदाए माहणीए अत्तए। तेण एसा देवाणदा माहणी तेणं पुव्वपुत्तसिणेहाणुरागेणं आगयपण्हया जाव समूससियरोमकूवा मम अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणी देहमाणी[1] चिट्ठइ।

[१४] (यह देखकर) भगवान् गौतम ने, 'भगवन्!' यो कह कर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन नमस्कार किया। उसके पश्चात् इस प्रकार [प्रश्न] पूछा—भन्ते! इस देवानन्दा ब्राह्मणी के स्तनो से दूध कैसे निकल आया? यावत् इसे रोमाच क्यो हो आया? और यह आप देवानुप्रिय को अनिमेष दृष्टि से देखती हुई क्यो खडी है?

[उ] 'गौतम!' यो कह कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने भगवान् गौतम से इस प्रकार कहा—हे गौतम! देवानन्दा ब्राह्मणी मेरी माता है। मैं देवानन्दा का आत्मज (पुत्र) हूँ। इसलिए देवानन्दा को पूर्व-पुत्रस्नेहानुरागवश दूध आ गया, यावत् रोमाञ्च हुआ और यह मुझे अनिमेष दृष्टि से देख रही है।

विवेचन—देवानन्दा माता और पुत्रस्नेह—भगवान् महावीर को देखते ही देवानन्दा के स्तनो से दुग्धधारा फूट निकली, रोमाच हो गया। हर्ष से नेत्र प्रफुल्लित हो गए और वह भगवान् महावीर की ओर अपलक दृष्टि से देखने लगी। इस विषय की गौतमस्वामी की शका का समाधान करते हुए भगवान् ने रहस्योद्घाटन किया—देवानन्दा मेरी माता है। प्रथम गर्भाधानकाल मे मैं उसके गर्भ मे रहा, इसलिए पुत्रस्नेह रूप अनुरागवश यह सब होना स्वाभाविक है।[2]

कठिन शब्दो का अर्थ—आगयपण्हया—आगतप्रश्रवा=स्तनो मे दूध आ गया। **पप्फुयलोयणा**-प्रस्फुटितलोचना=हर्ष से नयन विकसित हो गए। **सवरियवलयबाहा**=हर्ष से फूलती हुई बाहो को बाजूबदो ने रोका। **कचुयपरिक्खित्ता**=कचुकी विस्तृत हो गई। **धाराहयकलबगपिव**=मेघधारा से विकसित कदम्बपुष्प के समान। **समूससियरोमकूवा**=रोमकूप विकसित हो गए। **अम्मगा**—अम्मा=माता। **अत्तए**=आत्मज—पुत्र। **देहमाणी**=देखती हुई।[3]

---

१ 'देहमाणी' के बदले 'पेहमाणी' पाठ अन्तकृत् आदि शास्त्रो मे अधिक प्रचलित है। अर्थ दोनो का समान है।

२ भगवती भा ४ (प घेव०), पृ १७००

३ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४६०

ऋषभदत्त द्वारा प्रव्रज्याग्रहण एव निर्वाणप्राप्ति—

१५. तए ण समणे भगवं महावीरे उसभदत्तस्स माहणस्स देवाणदाए य माहणीए तीसे य महतिमहालियाए इसिपरिसाए जाव[1] परिसा पडिगया।

[१५] तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने ऋषभदत्त ब्राह्मण और देवानन्दा ब्राह्मणी तथा उस अत्यन्त बडी ऋषिपरिषद् आदि को धर्मकथा कही, यावत् परिषद् वापस चली गई।

१६. तए ण से उसभदत्ते माहणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिय धम्म सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठाए उट्ठेत्ता समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आया० जाव नमसित्ता एव वयासी—'एवमेय भते! तहमेय भते!' जहा खदओ (स० २ उ० १ सु० ३४) जाव 'से जहेय तुब्भे वदह' त्ति कट्टु उत्तरपुरत्थिम दिसीभाग अवक्कमइ, उत्तरपुरत्थिम दिसीभाग अवक्कमित्ता सयमेव आभरण-मल्लालकार ओमुयइ, सयमेव आभरण-मल्लालकार ओमुइत्ता सयमेव पचमुट्ठिय लोय करेति, सयमेव पचमुट्ठिय लोय करित्ता जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण जाव नमसित्ता एव वयासी— आलित्ते[2] ण भते! लोए, पलित्ते ण भते! लोए, एव जहा खदओ (स० २ उ० १ सु० ३४) तहेव पव्वइओ जाव सामाइय-माइयाइ इक्कारस अगाइ अहिज्जइ जाव बहूहि चउत्थ-छट्ठ-ऽट्ठम-दसम जाव विचित्तेहि तवोकम्मेहि अप्पाण भावेमाणे बहूइ वासाइ सामण्णपरियाय पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए सलेहणाए अत्ताण भूसेति, मासियाए सलेहणाए अत्ताण भूसित्ता सट्ठि भत्ताइ अणसणाए छेदेति, सट्ठि भत्ताइ अणसणाए छेदेत्ता जस्सट्ठाए कीरति नग्गभावो जाव तमट्ठ आराहेइ, २ जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

[१६] इसके पश्चात् वह ऋषभदत्त ब्राह्मण, श्रमण भगवान् महावीर के पास धर्म-श्रवण कर और उसे हृदय मे धारण करके हर्षित और सन्तुष्ट होकर खडा हुआ। खडे होकर उसने श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, यावत् वन्दन-नमन करके इस प्रकार निवेदन किया—'भगवन्! आपने कहा, वैसा ही है, आपका कथन यथार्थ है भगवन्!' इत्यादि (दूसरे शतक के प्रथम उद्देशक सू ३४ मे) स्कन्दक तापस-प्रकरण मे कहे अनुसार, यावत्— जो आप कहते है, वह उसी प्रकार है।' इस प्रकार कह कर वह (ऋषभदत्त ब्राह्मण) ईशान कोण (उत्तरपूर्व दिशा भाग) मे गया। वहाँ जा कर उसने स्वयमेव आभूषण, माला और अलकार उतार दिये। फिर स्वयमेव पचमुष्टि केशलोच किया और श्रमण भगवान् महावीर के पास आया। भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा की, यावत् नमस्कार करके इस प्रकार कहा—भगवन्! (जरा और मरण से) यह लोक चारो ओर से प्रज्वलित हो रहा है, भगवन्! यह लोक चारो ओर से अत्यन्त जल रहा है, इत्यादि

---

१ 'जाव' पद से यहाँ—'मुणिपरिसाए, जइपरिसाए, अणेगसयाए अणेगसयविदपरिवाराए,' इत्यादि पाठ समझना चाहिए।

२ पाठान्तर—'आलित्तपलित्ते ण भते! लोए जराए मरणेण य, एव एएण कमेण इम जहा खदओ'।

कह कर (द्वितीय शतक, प्रथम उद्देशक, सू ३४ मे) जिस प्रकार स्कन्दक तापस की प्रव्रज्या का प्रकरण है, तदनुसार (ऋषभदत्त ब्राह्मण ने) प्रव्रज्या ग्रहण की, यावत् सामायिक आदि ग्यारह अगो का अध्ययन किया, यावत् बहुत-से उपवास (चतुर्थभक्त), बेला (षष्ठभक्त), तेला (अष्टमभक्त), चौला (दशमभक्त) इत्यादि विचित्र तप कर्मो से आत्मा को भावित करते हुए, बहुत वर्षो तक श्रामण्यपर्याय (श्रमण-दीक्षा) का पालन किया और (अन्त मे) एक मास की सल्लेखना से आत्मा को सलिखित करके साठ भक्तो का अनशन से छेदन किया और ऐसा करके जिस उद्देश्य से नग्नभाव (निर्ग्रन्थत्व-सयम) स्वीकार किया, यावत् उस निर्वाण रूप अर्थ की आराधना कर ली, यावत् वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत्त एव सर्वदु खो से रहित हुए ।

विवेचन—भगवान् का धर्मोपदेश—श्रवण एव दीक्षाग्रहण—सू १५-१६ मे भगवान् की धर्म-कथा सुनकर ससारविरक्त होकर ऋषभदत्त के द्वारा दीक्षाग्रहण, शास्त्राध्ययन, तपश्चरण, और अन्त मे सल्लेखना—सथारापूर्वक, समाधिमरण की आराधनापूर्वक सिद्ध-बुद्ध-मुक्तदशा की प्राप्ति । यह जीवन का सर्वोच्च आदर्श प्रस्तुत किया गया है ।[1]

कठिन शब्दो के अर्थ—इसिपरिसाए—क्रान्तदर्शी साधक मुनियो की सभा, ज्ञानी होते हैं, वे ऋषि है ।[2] **आलित्ते पलित्ते**—आदीप्त=चारो ओर से जल रहा है, प्रदीप्त=विशेष रूप से जल रहा है। **सामण्णपरियाय**=श्रमणत्व-दीक्षा को। **अत्ताण झूसित्ता**=अपनी आत्मा पर आए हुए कर्मावरणो को भस्म करके आत्मा को शुद्ध करके अथवा सल्लेखना से आत्मा के साथ लगे हुए कषायो को कृश करके । **सट्ठि भत्ताइ अणसणाए छेदेत्ता**=साठ टक के चतुर्विध आहाररूप भोजन के त्याग के रूप मे अनशन (यावज्जीवन आहारत्याग) से छेदन (कर्मो को छिन्न-भिन्न करके या मोहनीयादि घाति-अघाति सर्व कर्मो का क्षय) करके । **नग्गभाव**=नग्नभाव का तात्पर्य निर्ग्रन्थभाव है । **विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं**—विविध प्रकार की तपश्चर्याओ से ।[3]

देवानन्दा द्वारा साध्वी-दीक्षा और मुक्ति-प्राप्ति—

१७. तए ण सा देवाणदा माहणी समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिय धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा० समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण जाव नमसित्ता एवं वयासी—एवमेय भते !, तहमेय भते, एव जहा उसभदत्तो (सु० १६) तहेव जाव धम्ममाइक्खिय ।

[१७] तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीरस्वामी से धर्म सुन कर एव हृदयगम करके वह देवानन्दा ब्राह्मणी अत्यन्त हृष्ट एव तुष्ट (आनन्दित एव सन्तुष्ट) हुई और श्रमण भगवान् महावीर की तीन वार आदक्षिण-प्रदक्षिणा करके यावत् नमस्कार करके इस प्रकार वोली—भगवन् ! आपने

---

१ भगवती (मूलपाठ-टिप्पण) पृ ४५३

२ पश्यन्तीति ऋषय ज्ञानिन । भग अ वृ, पत्र ८६०

३ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८६०
(ख) भगवती, भा ४ (प घेवरचन्दजी), पृ १७०२-१७०३

जैसा कहा है, वसा ही है, भगवन् ! आपका कथन यथार्थ है । इस प्रकार जैसे ऋषभदत्त ने (सू १६ मे) प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए निवेदन किया था, वैसे ही विरक्त देवानन्दा ने भी निवेदन किया, यावत्—'धर्म कहा', यहाँ तक कहना चाहिए ।

१८ तए ण समणे भगव महावीरे देवाणद माहणि सयमेव पव्वावेति, सयमेव मु डावेति, सयमेव अज्जचदणाए अज्जाए सीसिणित्ताए दलयइ ।

[१८] तब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने देवानन्दा ब्राह्मणी को स्वयमेव प्रव्रजित कराया, स्वयमेव मुण्डित कराया और स्वयमेव आर्यचन्दना आर्या को शिष्यारूप मे सौप दिया ।

१९ तए ण सा अज्जचदणा अज्जा देवाणद माहणि सयमेव पव्वावेति, सयमेव मु डावेति, सयमेव सेहावेति, एव जहेव उसभदत्तो तहेव अज्जचदणाए अज्जाए इम एयारूव धम्मिय उवदेस सम्म सपडिवज्जइ—तमाणाए तहा गच्छइ जाव सजमेण सजमति ।

[१९] तत्पश्चात् आर्य चन्दना आर्या ने देवानन्दा ब्राह्मणी को स्वय प्रव्रजित किया, स्वयमेव मुण्डित किया और स्वयमेव उसे (सयम की) शिक्षा दी । देवानन्दा (नवदीक्षित साध्वी) ने भी ऋषभदत्त के समान इस प्रकार के धार्मिक (श्रमणधर्मपालन सम्बन्धी) उपदेश को सम्यक् रूप से स्वीकार किया और वह उनकी (आर्या चन्दनबाला की) आज्ञानुसार चलने लगी, यावत् सयम (-पालन) मे सम्यक् प्रवृत्ति करने लगी ।

२० तए ण सा देवाणदा अज्जा अज्जचदणाए अज्जाए अतिय सामाइयमाइयाइ एक्कारस अगाइ अहिज्जइ । सेस त चेव जाव सव्वदुक्खप्पहीणा ।

[२०] तदनन्तर आर्या देवानन्दा ने आर्य चन्दना आर्या से सामायिक आदि ग्यारह अगो का अध्ययन किया । शेष सभी वर्णन पूर्ववत् है, यावत् वह देवानन्दा आर्या सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत्त और समस्त दु खो से रहित हुई ।

विवेचन—देवानन्दा प्रव्रजित और मुक्त—ऋषभदत्त ब्राह्मण की तरह देवानन्दा को भी ससार से विरक्ति हुई, उसने भी भगवान् के समक्ष अपनी दीक्षाग्रहण की इच्छा व्यक्त की । योग्य समझ कर भगवान् ने उसे दीक्षा दी । साध्वी चन्दनबाला को शिष्या के रूप मे सौपी । आर्या चन्दना ने उसे शिक्षित किया, शास्त्राध्ययन कराया । देवानन्दा ने भी विविध तप किए और अन्त मे सल्लेखना—सथारापूर्वक-समाधिपूर्वक शरीर त्याग किया और मुक्ति प्राप्त की ।

इस पाठ से श्रमण-सस्कृति का सयम एव तप द्वारा कर्मक्षय करके मुक्त होने का सिद्धान्त स्पष्ट अभिव्यक्त होता है । वैदिक-सस्कृति-निरूपित, सयम मे पुरुषार्थ किये बिना ही भगवान् द्वारा स्वर्ग—मोक्ष प्रदान कर देने का सिद्धान्त खण्डित हो जाता है । (सू १८ मे) भगवान् महावीर द्वारा देवानन्दा को प्रव्रजित-मुण्डित करने के उपरान्त पुन (सू १९ मे) आर्या चन्दना द्वारा प्रव्रजित-मुण्डित करने का उल्लेख स्पष्ट करता है कि भ महावीर ने स्वय प्रव्रजित-मुण्डित नही करके आर्या चन्दना से प्रव्रजित-मुण्डित कराया और उसे शिष्या के रूप मे सौपा । आर्या चन्दना ने भगवदाज्ञा से उसे प्रव्रजित-मुण्डित किया ।

जमालि-चरित

जमालि और उसका भोग-वैभवमय जीवन—

२१. तस्स ण माहणकुडग्गामस्स नगरस्स पच्चत्थिमेण, एत्थ ण खत्तियकुडग्गामे नाम नगरे होत्था। वण्णओ।

[२१] उस ब्राह्मणकुण्डग्राम नामक नगर से पश्चिम दिशा मे क्षत्रियकुण्डग्राम नामक नगर था। उसका यहाँ वर्णन समझ लेना चाहिए।

२२. तत्थ ण खत्तियकुडग्गामे नयरे जमाली नाम खत्तियकुमारे परिवसति, अड्ढे दित्ते जाव अपरिभूए उप्पि पासायवरगए फुट्टमाणेहि मुइगमत्थएहि बत्तीसतिबद्धेहि नाडएहि वरतरुणीसपउत्तेहि उवनच्चिज्जमाणे उवनच्चिज्जमाणे उवगिज्जमाणे उवगिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे पाउस-वासारत्त-सरद-हेमत-वसत-गिम्हपज्जते छप्पि उऊ जहाविभवेण माणेमाणे माणेमाणे काल गालेमाणे इट्ठे सद्द-फरिस-रस-रूव-गधे पचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणे विहरइ।

[२२] उस क्षत्रियकुण्डग्राम नामक नगर मे जमालि नाम का क्षत्रियकुमार रहता था। वह आढ्य (धनिक), दीप्त (तेजस्वी) यावत् अपरिभूत था। वह जिसमे मृदग वाद्य की स्पष्ट ध्वनि हो रही थी, बत्तीस प्रकार के नाटको के अभिनय और नृत्य हो रहे थे, अनेक प्रकार की सुन्दर तरुणियो द्वारा सम्प्रयुक्त नृत्य और गुणगान (गायन) बार-बार किये जा रहे थे, उसकी प्रशसा से भवन गुजाया जा रहा था, खुशिया मनाई जा रही थी, ऐसे अपने उच्च श्रेष्ठ प्रासाद-भवन मे प्रावृट् (पावस), वर्षा, शरद, हेमन्त, वसन्त और ग्रीष्म, इन छह ऋतुओ मे अपने वैभव के अनुसार आनन्द (उत्सव) मनाता हुआ, समय बिताता हुआ, मनुष्यसम्बन्धी पाच प्रकार के इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, वाले कामभोगो का अनुभव करता हुआ रहता था।

विवेचन—जमालि और उसका भोगमय जीवन—प्रस्तुत दो सूत्रो मे जमालि कौन था, किस नगर का था, उसके पास वैभव और भोगसुखो का अम्बार किस प्रकार का लगा हुआ था, यह वर्णन किया गया है। 'जमालि' भगवान् महावीर का जामाता था, ऐसा उल्लेख तथा जमालि के माता-पिता के नाम का उल्लेख मूल मे या वृत्ति मे कही भी नही किया गया है।[1]

कठिन शब्दो के अर्थ—पच्चत्थिमेण=पश्चिम दिशा मे, **उप्पि पासायवरगए**=ऊपर के या उन्नत (उच्च) श्रेष्ठ प्रासाद मे रहता हुआ। **फुट्टमाणेहि मुइगमत्थएहि**=मृदग के मस्तक (सिर) पर अत्यन्त शीघ्रता से पीटने से स्पष्ट आवाज कर रहे थे। **उवनच्चिज्जमाणे**=नृत्य किये जा रहे थे। **उवगिज्जमाणे**=गीत गाए जा रहे थे। **उवलालिज्जमाणे**=प्रशसा से फुलाया (लडाया) जा

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा १ पृ ४५५

रहा था। माणेमाणे=मनाया जाता हुआ। कालं गालेमाणे=समय बिताता हुआ। बत्तीसतिबद्धेहिं नाडएहिं=बत्तीस प्रकार के अभिनयो अथवा नाटक के पात्रो से सम्बद्ध नाटक।[1]

भगवान् का पदार्पण सुन कर दर्शन-वन्दनादि के लिए गमन—

२३ तए णं खत्तियकुंडग्गामे नगरे सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर जाव[2] बहुजणसद्दे इ वा जहा उववाइए जाव[3] एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ—एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे आइगरे जाव सव्वण्णू सव्वदरिसी माहणकुंडग्गामस्स नगरस्स बहिया बहुसालए चेइए अहापडिरूवं जाव[4] विहरइ। तं महप्फलं खलु देवाणुप्पिया! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं जहा उववाइए जाव[5] एगाभिमुहे खत्तियकुंडग्गामं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता जेणेव माहणकुंडग्गामे नगरे जेणेव बहुसालए चेइए एवं जहा उववाइए जाव[6] तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासंति।

२३ उस दिन क्षत्रियकुण्डग्राम नामक नगर मे शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क और चत्वर यावत् महापथ पर बहुत-से लोगो का कोलाहल हो रहा था, इत्यादि सारा वर्णन जिस प्रकार औपपातिकसूत्र मे है, उसी प्रकार यहाँ जानना चाहिए, यावत् बहुत-से लोग परस्पर एक-दूसरे से इस प्रकार कह रहे थे, यावत् बता रहे थे कि 'देवानुप्रियो! आदिकर (धर्म-तीर्थ की आदि करने वाले) यावत् सर्वज्ञ, सर्वदर्शी श्रमण भगवान् महावीर, इस ब्राह्मणकुण्डग्राम नगर के बाहर बहुशाल नामक उद्यान (चैत्य) मे यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके यावत् विचरते है। अत हे देवानुप्रियो! तथारूप अरिहन्त भगवान् के नाम, गोत्र के श्रवण-मात्र से महान् फल होता है, इत्यादि वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार जान लेना चाहिए, यावत् वह जनसमूह तीन प्रकार की पर्युपासना करता है।

२४. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स तं महया जणसद्दं वा जाव जणसन्निवायं वा सुणमाणस्स वा पासमाणस्स वा अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव[7] समुप्पज्जित्था—किं णं अज्ज खत्तिय-

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४६२

२ 'जाव' पद सूचित पाठ—'चउम्मुहमहापह-पहेसु'—अ वृ

३ औपपातिक सूत्र गत पाठ सक्षेप मे—"जणवूहे इ वा जणबोले इ वा जणकलकले ति वा जणुम्मी इ वा जणुक्कलिया इ वा जणसन्निवाए इ वा बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ।"

४ 'जाव' शब्द निर्दिष्ट पाठ—"उग्गहं ओगिण्हति, ओगिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे।"

५ 'जाव' शब्द सूचक पाठ—"नामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण-वंदण-णमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए?, एगस्स वि आयरियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए?, तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया! समणं भगवं महावीरं वंदामो नमसामो सक्कारेमो सम्माणेमो, एयं णे पेच्चभवे हियाए सुहाए खमाए णिस्सेअसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ त्ति कट्टु बहवे उग्गा उग्गपुत्ता एवं भोगा राइन्ना खत्तिया भडा अप्पेगइया वंदणवत्तियं एवं पूअणवत्तियं सक्कारवत्तियं सम्माणवत्तियं कोउहलवत्तियं, अप्पेगइया 'जीयमेयं' ति कट्टु।"

६ 'जाव' शब्द सूचित पाठ—"तेणामेव उवागच्छंति, तेणामेव उवागच्छित्ता छत्ताइए तित्थयराइसए पासंति, जाणं वाहणाइं ठाइंति।"

७ 'जाव' शब्द से सूचित पाठ—"चिंतिए पत्थिए मणोगए सकप्पे।"

कुडग्गामे नगरे इंदमहे इ वा, खंदमहे इ वा, मुगुंदमहे इ वा, नागमहे इ वा, जक्खमहे इ वा, भूयमहे इ वा, कूवमहे इ वा, तडागमहे इ वा, नइमहे इ वा, दहमहे इ वा, पव्वयमहे इ वा, रुक्खमहे इ वा, चेइयमहे इ वा, थूभमहे इ वा, जं णं एए बहवे उग्गा भोगा राइन्ना इक्खागा णाया कोरव्वा खत्तिया खत्तियपुत्ता भडा भडपुत्ता सेणावई २ पसत्थारो २ लेच्छई २ माहणा २ इब्भा २ जहा उववाइए जाव[1] सत्थवाहप्पभिइओ ण्हाया कयबलिकम्मा जहा उववाइए जाव निग्गच्छंति ? एवं संपेहेइ, एवं संपेहित्ता कंचुइज्जपुरिसं सद्दावेति, कंचुइज्जपुरिसं सद्दावेत्ता एवं वयासि—किं णं देवाणुप्पिया ! अज्ज खत्तियकुंडग्गामे नगरे इंदमहे इ वा जाव निग्गच्छंति ?

[२४] तब बहुत-से मनुष्यों के शब्द और उनका परस्पर मिलन (सन्निपात) सुन और देख कर उस क्षत्रियकुमार जमालि के मन में विचार यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ—'क्या आज क्षत्रियकुण्ड-ग्राम नगर में इन्द्र का उत्सव है ?, अथवा स्कन्दोत्सव है ?, या मुकुन्द (वासुदेव) महोत्सव है ? नाग का उत्सव है, यक्ष का उत्सव है, अथवा भूतमहोत्सव है ? या किसी कूप का, सरोवर का, नदी का या द्रह का उत्सव है ?, अथवा किसी पर्वत का, वृक्ष का, चैत्य का अथवा स्तूप का उत्सव है ?, जिसके कारण ये बहुत-से उग्र (उग्रकुल के क्षत्रिय), भोग (भोगकुल या भोजकुल के क्षत्रिय), राजन्य, इक्ष्वाकु (कुलीन), ज्ञातृ (कुलीन), कौरव्य क्षत्रिय, क्षत्रियपुत्र, भट (योद्धा), भटपुत्र, सेनापति, सेना-पतिपुत्र, प्रशास्ता एवं प्रशास्तृपुत्र, लिच्छवी (लिच्छवीगण के क्षत्रिय), लिच्छवीपुत्र, ब्राह्मण (माहण), ब्राह्मणपुत्र एवं इभ्य (श्रेष्ठी) इत्यादि औपपातिक सूत्र में कहे अनुसार यावत् सार्थवाह-प्रमुख, स्नान आदि करके यावत् बाहर निकल रहे हैं ?

इस प्रकार विचार करके उसने कंचुकीपुरुष (सेवक) को बुलाया और उससे पूछा—"हे देवानुप्रियो ! क्या आज क्षत्रियकुण्डग्राम नगर के बाहर इन्द्र आदि का कोई उत्सव है, जिसके कारण यावत् ये सब लोग बाहर जा रहे हैं ?'

२५. तए णं से कंचुइज्जपुरिसे जमालिणा खत्तियकुमारेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ० समणस्स भगवओ महावीरस्स आगमणगहियविणिच्छए करयल० जमालिं खत्तियकुमारं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता एवं वयासी—'णो खलु देवाणुप्पिया ! अज्ज खत्तियकुंडग्गामे नयरे इंदमहे इ वा जाव[2] निग्गच्छंति। एवं खलु देवाणुप्पिया ! अज्ज समणे भगवं महावीरे आइगरे जाव सव्वण्णू सव्वदरिसी माहणकुंडग्गामस्स नगरस्स बहिया बहुसालए चेइए अहापडिरूवं उग्गहं जाव विहरति, तए णं एए बहवे उग्गा भोगा जाव[3] अप्पेगइया वंदणवत्तियं जाव[3] निग्गच्छंति'।

---

१ 'जाव' शब्द से सूचित पाठ—"माहणा भडा जोहा मल्लई लेच्छई अन्ने य बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ।"

२ 'जाव' शब्द से सूचित पाठ—"कयकोउयमंगलपायच्छित्ता सिरसाकंठेमालाकडा।"

३ 'जाव' शब्द से सूचित पाठ—"अप्पेगइया पूअणवत्तियं एवं सक्कारवत्तियं सम्माणवत्तियं कोउहल्लवत्तियं असुयाइं सुणिस्सामो, सुयाइं निस्संकियाइं करिस्सामो, मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामो, अप्पेगइया हयगया एवं गय-रह-सिबिया-संदमाणियागया, अप्पेगइया पायविहारचारिणो पुरिसवग्गुरापरिक्खित्ता महता उक्किट्ठसीहणायबोलकलकलरवेणं समुद्दरवभूयं पिव करेमाणा खत्तियकुंडग्गामस्स नगरस्स मज्झंमज्झेणं।"

[२५] तब जमालि क्षत्रियकुमार के इस प्रकार कहने पर वह कचुकी पुरुष अत्यन्त हर्षित एव सन्तुष्ट हुआ। उसने श्रमण भगवान् महावीर का (नगर मे) आगमन जान कर एव निश्चित करके हाथ जोड कर जय-विजय-ध्वनि से जमालि क्षत्रियकुमार को बधाई दी। तत्पश्चात् उसने इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! आज क्षत्रियकुण्डग्राम नगर के बाहर इन्द्र आदि का उत्सव नही है जिसके कारण यावत् लोग नगर से बाहर जा रहे है, किन्तु हे देवानुप्रिय ! आदिकर यावत् सर्वज्ञ-सर्वदर्शी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ब्राह्मणकुण्डग्राम नगर के बाहर बहुशाल नामक उद्यान मे अवग्रह ग्रहण करके यावत् विचरते है, इसी कारण ये उग्रकुल, भोगकुल आदि के क्षत्रिय आदि तथा और भी अनेक जन वन्दन के लिए यावत् जा रहे है।'

२६. तए ण से जमाली खत्तियकुमारे कचुइज्जपुरिसस्स अतिए एयमट्ठ सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ० कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, कोडु बियपुरिसे सद्दावइत्ता एव वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चाउग्घट आसरह जुत्तामेव उवट्ठवेह, उवट्ठवेत्ता मम एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह।

[२६] तदनन्तर कचुकीपुरुष से यह बात सुन कर और हृदय मे धारण करके जमालि क्षत्रियकुमार हर्षित एव सन्तुष्ट हुआ। उसने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और बुला कर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही चार घण्टा वाले अश्वरथ को जोत कर यहाँ उपस्थित करो और मेरी इस आज्ञा का पालन करके निवेदन करो।'

२७. तए ण ते कोडु'बियपुरिसा जमालिणा खत्तियकुमारेण एव वुत्ता समाणा जाव पच्चप्पिणति।

[२७] तब उन कौटुम्बिक पुरुषो ने क्षत्रियकुमार जमालि के इस आदेश को सुन कर तदनुसार कार्य करके यावत् निवेदन किया।

२८. तए णं से जमाली खत्तियकुमारे जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता ण्हाए कयबलिकम्मे जहा[1] उववाइए परिसा-वण्णओ तहा भाणियव्व जाव चदणोक्खित्तगायसरीरे सव्वालकारविभूसिए मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ, मज्जणघराओ पडिणिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव चाउघटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता चाउघट आसरह दुरूहेइ, चाउघट आसरह दुरूहित्ता सकोरटमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण महया भडचडकरपहकरवदपरिक्खित्ते खत्तियकु डग्गाम नगर मज्झमज्झेण निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव माहणकु डग्गामे नगरे जेणेव बहुसालए चेइए तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता तुरए निगिण्हेइ, तुरए निगिण्हित्ता रह ठवेइ, रह ठवित्ता रहाओ पच्चोरुहति, रहाओ पच्चोरुहित्ता पुप्फ-तबोलाउहमादीय वाहणाओ य विसज्जेइ, वाहणाओ विसज्जित्ता एगसाडिय उत्तरासग करेइ, एगसाडिय उत्तरासग करेत्ता आयते चोक्खे परमसुइब्भूए अजलिमउलियहत्थे जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेइ, तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेत्ता जाव तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासेइ।

१ औपपातिक सूत्र मे परिषद् वर्णन—"अणेगगणनायग-दडनायग-राईसर-तलवर-माडबिय-कोडु बिय-मति-महामति-गणग-दोवारिय-अमच्च-चेड-पीढमद्द-नगर-निगम-सेट्ठि-[सेणावइ-]सत्थवाह-दूय-सधिवाल सद्धि सपरिवुडे।"

[२८] तदनन्तर वह जमालि क्षत्रियकुमार, जहाँ स्नानगृह था, वहाँ आया और वहाँ आकर उसने स्नान किया तथा अन्य सभी दैनिक क्रियाएँ की, यावत् शरीर पर चन्दन का लेपन किया, समस्त आभूषणो से विभूषित हुआ और स्नानगृह से निकला आदि सारा वर्णन तथा परिषद् का वर्णन, जिस प्रकार औपपातिक सूत्र मे है, उसी प्रकार यहाँ जानना चाहिए।

फिर जहाँ बाहर की उपस्थानशाला थी और जहाँ सुसज्जित चतुर्घण्ट अश्वरथ था, वहाँ वह आया। उस अश्वरथ पर चढा। कोरण्टपुष्प की माला से युक्त छत्र को मस्तक पर धारण किया हुआ तथा वडे-बडे सुभटो, दासो, पथदर्शको आदि के समूह से परिवृत हुआ वह जमालि क्षत्रियकुमार क्षत्रियकुण्डग्राम नगर के मध्य मे से होकर निकला और ब्राह्मणकुण्डग्राम नामक नगर के बाहर जहाँ वहुशाल नामक उद्यान था, वहाँ आया। वहाँ घोडो को रोक कर रथ को खडा किया, तब वह रथ से नीचे उतरा। फिर उसने पुष्प, ताम्बूल, आयुध (शस्त्र) आदि तथा उपानह (जूते) वही छोड दिये। एक पट वाले वस्त्र का उत्तरासग (उत्तरीय धारण) किया। तदनन्तर आचमन किया हुआ और अशुद्धि दूर करके अत्यन्त शुद्ध हुआ जमालि मस्तक पर दोनो हाथ जोडे हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास पहुँचा। समीप जाकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, यावत् त्रिविध पर्युपासना की।

विवेचन—जमालि : भगवान् महावीर की सेवा मे—प्रस्तुत ६ सूत्रो (सू २३ से २८ तक) मे क्षत्रियकुमार जमालि ने जनता के मुख से नगर के स्थान-स्थान पर चर्चा सुनी। उसके मन मे जानने की उत्सुकता पैदा हुई। कचुकी से पूछने पर पता चला कि भ महावीर ब्राह्मणकुण्डग्राम मे पधारे है। जमालि ने सेवको को बुला कर धर्मरथ तैयार करने का आदेश दिया। रथ पर आरूढ होकर बडे ठाठबाठ से क्षत्रियकुण्डग्राम से ब्राह्मणकुण्डग्राम के बाहर भ महावीर के पास आया और वन्दना-पर्युपासना करने लगा।[1]

कठिन शब्दो के अर्थ—**सिघाडग**=सिघाडे के आकार का मार्ग। **तिय**—तिराहा। **चउक्क**=चौक या चौराहा। **चच्चर**=चत्वर, चार से अधिक रास्ते जहाँ से निकले, वह स्थान। **चाउघट**—चार घण्टो वाला। **खधमहे**—स्कन्ध-महोत्सव। **आगमण-गहियविणिच्छए**=आगमन की जानकारी का निश्चय करके। **चदणोक्खित्तगायसरीरे**=शरीर पर चन्दन लेपन किया हुआ। **सकोरटमल्लदामेणं छत्तेण**= कोरण्टपुष्प की माला लगे हुए छत्र को।[2]

जमालि द्वारा प्रवचन-श्रवण और श्रद्धा तथा ज्या की अभिव्यक्ति—

२९. तए ण समणे भगव महावीरे जमालिस्स खत्तियकुमारस्स तीसे य महतिमहालियाए इसि० जाव धम्मकहा जाव परिसा पडिगया।

[२९] तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीरस्वामी ने उस क्षत्रियकुमार जमालि को तथा उस वहुत वडी ऋषिगण आदि की परिषद् को यावत् धर्मोपदेश दिया। धर्मोपदेश सुन कर यावत् परिषद् वापस लौट गई।

---

१ वियाहपण्णत्ति (मू पा टि) भा १, पृ ४५६-४५८

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४६२-४६३

३०. तए णं से जमाली खत्तियकुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठ जाव उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठाए उट्ठेत्ता समण भगव महावीर तिक्खुत्तो जाव नमसित्ता एव वयासी—सद्दहामि ण भते ! निग्गथ पावयणं, पत्तियामि ण भते ! निग्गथ पावयण, रोएमि ण भते ! निग्गथ पावयण, अब्भुट्ठेमि ण भते ! निग्गथ पावयण, एवमेय भते ! तहमेय भते ! अवितहमेय भते ! असदिद्धमेय भते ! जाव से जहेव तुब्भे वदह, ज नवर देवाणुप्पिया ! अम्मा-पियरो आपुच्छामि, तए ण अह देवाणुप्पियाण अतिय मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वयामि। अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबध।

[३०] तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर के पास से धर्म सुन कर और उसे हृदयगम करके हर्षित और सन्तुष्ट क्षत्रियकुमार जमालि यावत् उठा और खडे होकर उसने श्रमण भगवान् महावीर-स्वामी को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की यावत् वन्दन-नमन किया और इस प्रकार कहा—"भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ। भगवन् ! मै निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर प्रतीति (विश्वास) करता हूँ। भन्ते ! निर्ग्रन्थ-प्रवचन मे मेरी रुचि है। भगवन् ! मै निर्ग्रन्थ-प्रवचन के अनुसार चलने के लिए अभ्युद्यत हुआ हूँ। भन्ते ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन तथ्य है, सत्य (अवितथ) है, भगवन् ! यह असदिग्ध है, यावत् जैसा कि आप कहते है। किन्तु हे देवानुप्रिय ! (प्रभो !) मैं अपने माता-पिता को (घर जाकर) पूछता हूँ और उनकी अनुज्ञा लेकर (गृहवास का परित्याग करके) आप देवानुप्रिय के समीप मुण्डित हो कर अगारधर्म से अनगारधर्म मे प्रव्रजित होना चाहता हूँ।" (भगवान् ने कहा—) "देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हे सुख हो वेसा करो, ।"

विवेचन—जमालि द्वारा प्रवचन-श्रवण, श्रद्धा और प्रव्रज्यासकल्प—प्रस्तुत दो सूत्रो (२९-३० सू) मे वर्णन है कि जमालि भगवदुपदेश सुन कर अत्यन्त प्रभावित हुआ, उसे ससार से विरक्ति हो गई। उसने विनयपूर्वक अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति के साथ अनगारधर्म मे दीक्षित होने की अभिलाषा व्यक्ति को। भगवान् ने उसकी बात सुन कर इच्छानुसार कार्य करने का परामर्श दिया।[1]

अब्भुट्ठेमि आदि पदो का भावार्थ—**अब्भुट्ठेमि**=मैं अभ्युद्यत (तत्पर) हूँ। **अवितहं**=अवितथ= सत्य। **तहमेयं**=यह तथ्य-यथार्थ है। **असदिद्ध**—सदेहरहित है।

'श्रद्धा' आदि पदो का भावार्थ—**श्रद्धा**—तर्करहित विश्वास, **प्रतीति**—तर्क और युक्तिपूर्वक विश्वास, **रुचि**—श्रद्धा के अनुसार चलने की इच्छा। **अभ्युत्थानेच्छा**=निर्ग्रन्थ-प्रवचनानुसार प्रवृत्ति के लिए उद्यत होने की इच्छा।[2]

माता-पिता से दीक्षा की अनुज्ञा का अनुरोध—

३१. तए णं से जमाली खत्तियकुमारे समणेण भगवया महावीरेण एव वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ० समण भगव महावीरं तिक्खुत्तो जाव नमसित्ता तमेव चाउघट आसरह दुरूहेइ, दुरूहित्ता समणस्स

---

१ वियाहप (मू पा टि) भा १, पृ ४५८-४५९

२ भगवती भा ४ (प वे) पृ १७१२, १७१५

कठिन शब्दो का अर्थ—**अमणाम**=मन के विपरीत, अनिच्छनीय। **असुयपुव्व**=पहले कभी नही सुनी हुई। **सेयागय-रोमकूव-पगलंत-विलीणगत्ता**=रोमकूपो मे से झरते हुए पसीने से शरीर तरवतर हो गया। **सोगभरपवेवियगमगी**=शोक के भार से अग-अग कापने लगे। **नित्तेया**=निस्तेज (मुर्झाई हुई)। **दीणविमणवयणा**=उसका मुख दीन एव विमन (उदास) हो गया। **करयलमलिय व्व कमलमाला**=हथेलियो से मर्दित की हुई कमलमाला के समान। **तक्खण-ओलुग्ग-दुब्बल-सरीर-लायन्न-सुन्न-निच्छाया**=उसी क्षण जिसका शरीर ग्लान एव दुर्बल, लावण्य से शून्य एव प्रभारहित हो गया। **गयसिरिया**=वह श्री (शोभा)-रहित हो गई। **पसिढिल-भूसण-पडत-खुण्णिय-सचुण्णिय-धवलवलय-पब्भट्ठ--उत्तरिज्जा**=उसके आभूषण ढीले हुए, श्वेत वलय (कगन) गिरकर चूर-चूर हो गए, शरीर से उत्तरीयवस्त्र (ओढना) सरक गया। **मुच्छावसणट्ठ-चेत-गुरुई**=मूर्च्छावश उसकी चेतना (सज्ञा) नष्ट होने से शरीर भारी हो गया। **सुकुमाल-विकिण्ण-केसहत्था**=उसकी कोमल केशराशि बिखर गई। **परसु-णियत्त व्व चपगलता**—कुल्हाडी से काटी हुई चपा की बेल की तरह। **निव्वत्तमहे व्व इदलट्ठी**=जो महोत्सव पूर्ण हो गया हो उसके इन्द्रध्वज (दण्ड) के समान। **विमुक्कसधिबधणा**=शरीर के सधिबन्धन ढीले हो गए। **कोट्टिमतलसि**=आगन (कुट्टिम) के तल (फर्श) पर।[1]

माता-पिता के साथ विरक्त जमालि का संलाप—

३५. तए ण सा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स माया ससभमोयत्तियाए तुरिय कचणभिगार-मुहविणिग्गयसीयलजलविमलधारापसिच्चमाणनिव्ववियगायलट्ठी उक्खेवगतालियटवीयणगजणियवा-एण सफुसिएण अतेउरपरिजणेण आसासिया समाणी रोयमाणी कदमाणी सोयमाणी विलवमाणी जमालि खत्तियकुमार एव वयासी—तुम सि ण जाया! अम्ह एगे पुत्ते इट्ठे कते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भडकरडगसमाणे रयणे रयणब्भूए जीविऊसविये हिययनदि-जणणे उबरपुप्फ पिव दुल्लभे सवणयाए किमग पुण पासणयाए? त नो खलु जाया! अम्हे इच्छामो तुब्भ खणमवि विप्पओग, त अच्छाहि ताव जाया! जाव ताव अम्हे जीवामो; तओ पच्छा अम्हेहि कालगएहि समाणेहि परिणयवये वड्ढियकुलवंसतंतुकज्जम्मि निरवयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिय मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइहिसि।

[३५] इसके पश्चात् क्षत्रियकुमार जमालि की व्याकुलतापूर्वक इधर-उधर गिरती हुई माता के शरीर पर शीघ्र ही दासियो ने स्वर्णकलशो के मुख से निकली हुई शीतल एव निर्मल जल-धारा का सिंचन करके शरीर को स्वस्थ किया। फिर (वास के बने हुए) उत्क्षेपको (पखो) तथा ताड के पत्तो से बने पखो से जलकणो (फुहारो) सहित हवा की। तदनन्तर (मूर्च्छा दूर होते ही) अन्त पुर के परिजनो ने उसे आश्वस्त किया। (मूर्च्छा दूर होते ही) रोती हुई, क्रन्दन करती हुई, शोक करती हुई, एव विलाप करती हुई माता क्षत्रियकुमार जमालि से इस प्रकार कहने लगी—पुत्र! तू हमारा इकलौता ही पुत्र है, (इसलिए) तू हमे इष्ट है, कान्त है, प्रिय है,

---

१ भगवती भा ४ (प घेवरचन्दजी) पृ १७१६-१७१

मनोज्ञ है, मनसुहाता, है, आधारभूत है विश्वासपात्र है, (इस कारण) तू सम्मत, अनुमत और वहुमत है। तू आभूषणो के पिटारे (करण्डक) के समान है, रत्नस्वरूप है, रत्नतुल्य है, जीवन या जीवितोत्सव के समान है, हृदय को आनन्द देने वाला है, उदुम्बर (गूलर) के फूल के समान तेरा नाम-श्रवण भी दुर्लभ है, तो तेरा दर्शन दुर्लभ हो, इसमे कहना ही क्या! इसलिए हे पुत्र! तेरा क्षण भर का वियोग भी हम नही चाहते। इसलिए जव तक हम जीवित रहे, तव तक तू घर मे ही रह। उसके पश्चात् जव हम (दोनो) कालधर्म को प्राप्त (परलोकवासी) हो जाएँ, तेरी उम्र भी परिपक्व हो जाए, (और तब तक) कुलवश की वृद्धि का कार्य हो जाए, तव (गृह-प्रयोजनो से) निरपेक्ष हो कर तू गृहवास का त्याग करके श्रमण भगवान् महावीर के पास मुण्डित होकर अनगारधर्म मे प्रव्रजित होना।

विवेचन—माता की मूर्च्छा दूर होने पर जमालि के प्रति उद्गार—प्रस्तुत सूत्र मे यह वर्णन है कि दासियो ने माता की मूर्च्छा विविध उपचारो से दूर की। परिजनो ने सान्त्वना दी, किन्तु फिर भी मोह-ममतावश जमालि को समझाने लगी कि हमारे जीवित रहने तक तुम दीक्षा मत लो।[1]

कठिन शब्दो का अर्थ—ससभमोयत्तियाए—घबराहट के कारण छटपटाती हुई या गिरती हुई। **कचणभिगारमुहविणिग्गय-सीयलजल-विमलधारा-पसिच्चमाण-निव्ववियगायलट्ठी**—सोने के कलश के मुख से निकलती हुई शीतल एव विमल जलधारा से सिंचन करने से देह (गात्रयष्टि) स्वस्थ हुई। **उक्खेवग-तालियट-वीयणगजणियवाएण सफुसिएण**—उत्क्षेपक (वास से निर्मित प खे) तथा ताड के पखे से पानी के फुहारो से युक्त हवा करने से। **अतेउरपरिजणेण आसासिया समाणी** अन्त पुर के परिजन से आश्वस्त की गई। **कदमाणी**—चिल्लाती हुई। **वेसासिए**—विश्वासपात्र। **थेज्जे**—स्थिरता के योग्य। **सम्मए**—अनेक कार्यो मे सम्मति देने योग्य। **अणुमए**—कार्य के अनुरूप या कार्य मे विघात आने के बाद सलाह देने योग्य। **बहुमए**—वहुत से कार्यो मे मान्य या वहुमान्य। **रयण**=रत्नरूप या (मनो) रजक है। **जीवियऊसविये**—जीवित-उत्सवरूप अथवा जीवन के उच्छ्वास (प्राण) रूप।[2] **अच्छाहि**—रहो या ठहरो। **परिणयवये**—परिपक्व अवस्था होने पर। **वड्ढियकुलवसतन्तु-कज्जम्मि**—कुलवशरूप तन्तु-पुत्रपौत्रादि से कुलवश की वृद्धि का कार्य होने पर। **णिरवयक्खे**—गृहस्थकार्यो से निरपेक्ष होने पर।[3]

३६. तए ण से जमाली खत्तियकुमारे अम्मा-पियरो एव वयासी--तहा वि ण त अम्म! ताओ! ज ण तुब्भे मम एव वदह 'तुम सि ण जाया! अम्ह एगे पुत्ते इट्ठे कते त चेव जाव पव्वइ-हिसि', एव खलु अम्म! ताओ! माणुस्सए भवे अणेगजाइ-जरा-मरण-रोग-सारीर-माणसपकाम-दुक्खवेयण-वसण-सतोवद्दवाभिभूए अधुवे अणितिए असासए सझब्भरागसरिसे जलबुब्बुदसमाणे कुसग्गजलबिंदुसन्निभे सुविणगदसणोवमे विज्जुलयाचचले अणिच्चे सडण-पडण-विद्ध सणधम्मे पुव्वि वा पच्छा वा अवस्सविप्पजहियव्वे भविस्सइ, से केस ण जाणइ अम्म! ताओ! के पुव्वि गमणयाए? के

---

१ वियाहपण्णत्ति (मू पा टि) भा १, पृ ४६०

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४६८

३ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४६८

पच्छा गमणयाए ? त इच्छामि ण अम्म ! ताओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइत्तए ।

[३६] तव क्षत्रियकुमार जमालि ने अपने माता-पिता से इस प्रकार कहा—हे माता-पिता ! अभी जो आपने कहा कि—हे पुत्र ! तुम हमारे इकलौते पुत्र हो, इष्ट, कान्त आदि हो, यावत् हमारे कालगत होने पर प्रव्रजित होना, इत्यादि, (उस विषय मे मुझे यह कहना है कि) माताजी ! पिताजी ! यो तो यह मनुष्य-जीवन जन्म, जरा, मृत्यु, रोग तथा शारीरिक और मानसिक अनेक दु खो की वेदना से और सैकडो व्यसनो (कष्टो) एव उपद्रवो से ग्रस्त है । अध्रु व, (चचल) है, अनियत है, अशाश्वत है, सन्ध्याकालीन बादलो के रग-सदृश क्षणिक है, जल-बुद्बुद के समान है कुश की नोक पर रहे हुए जलबिन्दु के समान है, स्वप्नदर्शन के तुल्य है, विद्युतलता की चमक के समान चचल और अनित्य है । सडने, पडने, गलने और विध्वस होने के स्वभाव वाला है । पहले या पीछे इसे अवश्य ही छोडना पडेगा । अत हे माता-पिता ! यह कौन जानता है कि हममे से कौन पहले जाएगा (मरेगा) और कौन पीछे जाएगा ? इसलिए हे माता-पिता ! मैं चाहता हूँ कि आपकी अनुज्ञा मिल जाए तो मै श्रमण भगवान् महावीर के पास मु डित होकर यावत् प्रव्रज्या अगीकार कर लू ।

विवेचन—जमालि के वैराग्यसूचक उद्गार—प्रस्तुत मे जमालि ने माता-पिता के समक्ष विविध उपमाओ द्वारा जीवन की क्षणभगुरता एव अनित्यता का सजीव चित्र खीचा है ।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—अणेगजाईजरा-मरण-रोग-सारीर-माणस-पकाम-दुक्खवेयण-वसण-सतोवद्दवाभिभूए—अनेक जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, शरीर एव मन सम्बन्धी अत्यन्त दुखो की वेदना और सैकडो व्यसनो (कष्टो) एव उपद्रवो से अभिभूत (ग्रस्त) है । **संझब्भरागसरिस**—सध्याकालीन मेघो के रग जैसा है । **जलबुब्बुदसमाणे** = जल के बुलबुलो के समान । **सुविणगदसणोवमे**—स्वप्न-दर्शन के तुल्य । **विज्जुलयाचचले**—विद्युत्-लता की चमक के समान चचल है । **सडण-पडण-विद्ध-सणधम्मे**—सडने, पडने, और विध्वस होने के धर्म-स्वभाव वाला है । **अवस्सविप्पजहियव्वे भविस्सइ**—अवश्य ही छोडना पडेगा ।[2]

३७ तए ण त जमालि खत्तियकुमार अम्मा-पियरो एव वयासी—इम च ते जाया ! सरीरग पविसिट्ठरूव लक्खण-वजण-गुणोववेय उत्तमबल-वीरिय-सत्तजुत्त विण्णाणवियक्खण ससोहग्गगुण-समुस्सिय अभिजायमहक्खम विविहवाहिरोगरहिय निरुवहयउदत्तलट्ठपचिदियपडु, पढमजोव्वणत्थ अणेगउत्तमगुणेहिं जुत्त, त अणुहोहि ताव जाव जाया ! नियगसरीररूवसोहग्गजोव्वणगुणे, तओ पच्छा अणुभूयनियगसरीररूवसोभग्गजोव्वणगुणे अम्हेहिं कालगएहिं समाणेहिं परिणयवये वड्ढियकुलवसततु-कज्जम्मि निरवयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिय मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइहिसि ।

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टिप्पण) भा १, पृ ४६१

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४६८

[३७] यह बात सुन कर क्षत्रियकुमार जमालि से उसके माता-पिता ने इस प्रकार कहा—हे पुत्र ! तुम्हारा यह शरीर विशिष्ट रूप, लक्षणो, व्यजनो (मस, तिल आदि चिह्नो) एव गुणो से युक्त है, उत्तम बल, वीर्य और सत्त्व से सम्पन्न है, विज्ञान मे विचक्षण है, सौभाग्य-गुण से उन्नत है, कुलीन (अभिजात) है, महान् समर्थ (क्षमतायुक्त) है, विविध व्याधियो और रोगो से रहित है, निरुपहत, उदात्त, मनोहर और पाचो इन्द्रियो की पटुता से युक्त है तथा प्रथम (उत्कृष्ट) यौवन अवस्था मे है, इत्यादि अनेक उत्तम गुणो से युक्त है। इसलिए, हे पुत्र ! जब तक तेरे शरीर मे रूप, सौभाग्य और यौवन आदि उत्तम गुण है, तब तक तू इनका अनुभव (उपभोग) कर। इन सब का अनुभव करने के पश्चात् हमारे कालधर्म प्राप्त होने पर जब तेरी उम्र परिपक्व हो जाए और (पुत्र-पौत्रादि से) कुलवश की वृद्धि का कार्य हो जाए तब (गृहस्थ-जीवन से) निरपेक्ष हो कर श्रमण भगवान् महावीर के पास मुण्डित हो कर अगारवास छोड कर अनगारधर्म मे प्रव्रजित होना।

विवेचन—माता-पिता के द्वारा जमालि को गृहस्थाश्रम मे रखने का पुन. उपाय—प्रस्तुत सूत्र मे जमालि को यह समझाया गया है कि इतने उत्कृष्ट गुणो से युक्त शरीर और यौवन आदि का उपयोग करके बुढापे मे दीक्षित होना।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—पविसिट्ठरूव—विशिष्ट रूप। **अभिजाय-महक्खम**-अभिजात (कुलीन) है और महती क्षमताओ से युक्त है। **निरुवहय-उदत्त-लट्ठ-पचिदियपडु**—निरुपहत, उदात्त, सुन्दर (लष्ट) एव पचेन्द्रिय-पटु है। **पढमजोवणत्थ**—उत्कृष्ट यौवन मे स्थित है। **अणुहोहि**=अनुभव कर (उपभोग कर)। **णियगसरीररूव-सोभग्ग-जोव्वणगुणे**=अपने शरीर के रूप, सौभाग्य, यौवन आदि गुणो का।[2]

३८ तए ण से जमाली खत्तियकुमारे अम्मा-पियरो एव वयासी—तहा वि ण त अम्म ! ताओ ! ज णं तुब्भे मम एव वदह 'इम च ण ते जाया ! सरीरग० त चेव जाव पव्वइहिसि' एव खलु अम्म ! ताओ ! माणुस्सग सरीर दुक्खाययणं विविहवाहिसयसन्निकेत अट्ठियकट्ठुट्ठिय छिरा-ण्हारु-जालओणद्ध-सपिणद्ध मट्टियभड व दुब्बल असुइसकिलिट्ठ अणिट्ठवियसव्वकालसठप्पय जराकुणिम-जज्जरघर व सडण-पडण-विद्ध सणधम्म पुव्विं वा पच्छा वा अवस्स-विप्पजहियव्व भविस्सइ, से केस ण जाणति अम्म ! ताओ ! के पुव्विं० ? त चेव जाव पव्वइत्तए।

[३८] तब क्षत्रियकुमार जमालि ने अपने माता-पिता से इस प्रकार कहा—हे माता-पिता! आपने मुझे जो यह कहा कि पुत्र! तेरा यह शरीर उत्तम रूप आदि गुणो से युक्त है, इत्यादि, यावत् हमारे कालगत होने पर तू प्रव्रजित होना। (किन्तु) हे माता-पिता! यह मानव-शरीर दु खो का घर (आयतन) है, अनेक प्रकार की सैकडो व्याधियो का निकेतन है, अस्थि-(हड्डी) रूप काष्ठ पर खडा हुआ है, नाडियो और स्नायुओ के जाल से वेष्टित है, मिट्टी के बर्तन के समान दुर्बल (नाजुक) है। अशुचि (गदगी) से सक्लिष्ट (बुरी तरह दूषित) है, इसको टिकाये (सस्थापित) रखने के लिए सदैव इसकी सभाल (व्यवस्था) रखनी पडती है, यह सडे हुए शव के समान और जीर्ण घर के

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टि) भा १, पृ ४६१

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४६९

समान है, सडना, पडना और नष्ट होना, इसका स्वभाव है। इस शरीर को पहले या पीछे अवश्य छोडना पडेगा, तब कौन जानता है कि पहले कौन जाएगा और पीछे कौन? इत्यादि सारा वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए, यावत्—इसलिए मैं चाहता हूँ कि आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर मैं प्रव्रज्या ग्रहण कर लू।

विवेचन—जमालि द्वारा शरीर की अस्थिरता, दु ख एव रोगादि की प्रचुरता का निरूपण— प्रस्तुत ३८ वें सूत्र मे जमालि द्वारा शरीर की अनित्यता, दु ख, व्याधि, रोग इत्यादि से सदैव ग्रस्तता आदि का वर्णन करके पुन दीक्षा की आज्ञा-प्रदान करने के लिए माता-पिता से निवेदन है।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—दुक्खायतण—दु खायतन-दु खो का स्थान। **विविहवाहि-सय-सन्निकेय—**सैकडो विविध व्याधियो का निकेतन = घर। **अट्ठिय-कट्ठुट्ठिय—**अस्थिरूपी काष्ठ पर उत्थित = खडा किया हुआ है। **छिरा-ण्हारु-जाल-ओणद्ध-सपिणद्धं—**शिराओ-नाडिओ के जाल से वेष्टित और अच्छी तरह ढंका हुआ। **मट्टियभड व दुब्बल—**मिट्टी के बर्तन की तरह कमजोर (टूटने वाला) है। **असुइसकिलिट्ठ—**अशुचि (गदगी) से सक्लिष्ट (दूषित या व्याप्त) है। **अणिट्ठविय-सव्वकाल-सठप्पय—**अनस्थापित (टिकाऊ न) होने से सदा टिकाए रखना पडता है। **जराकुणिम-जज्जरघरं—**जीर्ण शव और जीर्ण घर के समान।[2]

३९. तए ण त जमालिं खत्तियकुमार अम्मा-पियरो एव वयासी—इमाओ य ते जाया! विपुलकुलबालियाओ[3] कलाकुसलसव्वकाललालियसुहोचियाओ मद्दवगुणजुत्तनिउणविणओवयारपडिय-वियक्खणाओ मजुलमियमहुरभणियविहसियविप्पेक्खियगतिविलासचिट्ठियविसारदाओ अविकलकुल-सीलसालिणीओ विसुद्धकुलवंससताणततुवद्धणपगब्भवयभाविणीओ मणाणुकूलहियइच्छियाओ अट्ठ तुज्झ गुणवल्लभाओ उत्तमाओ निच्च भावाणुरत्तसव्वगसुदरीओ भारियाओ, त भुजाहि ताव जाया! एताहिं सद्धि विउले माणुस्सए कामभोगे, तओ पच्छा भुत्तभोगी विसयविगयवोच्छिन्नकोउ-हल्ले अम्हेहि कालगएहिं जाव पव्वइहिसि।

[३९] तव क्षत्रियकुमार जमालि के माता-पिता ने उससे इस प्रकार कहा—पुत्र! ये तेरी गुणवल्लभा, उत्तम, तुझमे नित्य भावानुरक्त, सर्वांगसुन्दरी आठ पत्नियाँ है, जो विशाल कुल मे उत्पन्न बालिकाएँ (नवयौवनाएँ) है, कलाकुशल है, सदैव लालित (लाड-प्यार मे रही हुई) और सुखभोग के योग्य है। ये मार्दवगुण से युक्त, निपुण, विनय-व्यवहार (उपचार) मे कुशल एव विचक्षण है। ये मजुल, परिमित और मधुर भाषिणी है। ये हास्य, विप्रेक्षित (कटाक्षपात), गति, विलास और चेष्टाओ मे विशारद है। निर्दोष कुल और शील से सुशोभित है, विशुद्ध कुलरूप वशतन्तु की वृद्धि करने मे समर्थ एव पूर्णयौवन वाली है। ये मनोनुकूल एव हृदय को इष्ट हैं। अत हे पुत्र! तू इनके साथ मनुष्यसम्बन्धी विपुल कामभोगो का उपभोग कर और बाद मे जब तू भुक्तभोगी हो जाए

---

१ वियाहपण्णत्ति सुत्त (मू पा टिप्पण) भा १, पृ ४६१

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४६९

३ अधिक पाठ—"सरित्तयाओ सरिव्वयाओ सरिसलावण्णरूवजोव्वणगुणोववेयाओ सरिसएहिंतो कुलेहिंतो आणिए-ल्लियाओ।"

और विषय-विकारो मे तेरी उत्सुकता समाप्त हो जाए, तब हमारे कालधर्म को प्राप्त हो जाने पर यावत् तू प्रव्रजित हो जाना ।

विवेचन—माता-पिता द्वारा भुक्तभोगी होने के बाद दीक्षा लेने का अनुरोध—प्रस्तुत सूत्र मे माता-पिता द्वारा जमालि को समझाया गया है कि तू अपनी इन आठ सर्वगुणसम्पन्ना सर्वांगसुन्दरी पत्नियो के साथ मनुष्य सम्बन्धी कामभोगो का उपभोग करके भुक्तभोगी होने के पश्चात् दीक्षित होना ।'[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—विपुलकुलबालियाओ—विशाल कुल की बालाएँ । **कलाकुसल-सव्वकाललालिय-सुहोचियाओ**—कलाओ मे दक्ष, सदैव लाडप्यार मे पली एव सुखशील । **मद्दवगुणजुत्त-निउण-विणओवयारपडिय-वियक्खणाओ**—मृदुता के गुणो से युक्त, निपुण एव विनय-व्यवहार में पण्डिता तथा विचक्षणा है । **मजुल-मिय-महुर-भणिय-विहसिय-विप्पेक्खिय-गति-विलास-चिट्ठिय-विसारदाओ**—मजुल, परिमित एव मधुरभाषिणी है, हास्य, प्रेक्षण, गति (चाल), विलास एव चेष्टाओ मे विशारद है । **अविकलकुलसीलसालिणीओ**—निर्दोष कुल और शील से सुशोभित है । **विसुद्धकुलवससताणततुवद्धण-पगब्भ-वय-भाविणीओ**—विशुद्ध कुल की वश-परम्परा रूपी तन्तु को बढाने वाली एव प्रगल्भ—पूर्ण यौवन वय वाली हैं । **मणाणुकूल-हियइच्छियाओ**=मनोनुकूल है और हृदय को अभीष्ट है । **भावाणुरत्तसव्वंगसुन्दरीओ**—ये तेरी भावनाओ मे अनुरक्त है और सर्वांगसुन्दरी है । **विसयविगयवोच्छिन्नकोउहल्ले**—विषय-विकारो (विकृतो) सम्बन्धी उत्सुकता क्षीण हो जाने पर ।[2]

४० तए ण से जमाली खत्तियकुमारे अम्मा-पियरो एव वयासी—तहा वि ण त अम्म ! ताओ ! ज ण तुब्भे मम एव वयह 'इमाओ ते जाया ! विपुलकुल० जाव पव्वइहिसि' एव खलु अम्म ! ताओ ! माणुस्सगा कामभोगा[3] उच्चार-पासवण-खेल-सिघाणग-वत-पित्त-पूय-सुक्क-सोणियसमुब्भवा अमणुण्णदुरूव-मुत्त-पूइयपुरीसपुण्णा मयगधुस्सासअसुभनिस्सासा उव्वेयणगा बीभच्छा अप्पकालिया लहुसगा कलमलाहिवासदुक्खबहुजणसाहारणा परिकिलेस-किच्छदुक्खसज्झा अबुहजणसेविया सदा साहुगरहणिज्जा अणतससारवद्धणा कडुयफलविवागा चुडलि व्व अमुच्चमाण दुक्खाणुबधिणो सिद्धि-गमणविग्धा, से केस ण जाणति अम्म ! ताओ ! के पुव्वि गमणयाए ? के पच्छा गमणयाए ? त इच्छामि ण अम्म ! ताओ ! जाव पव्वइत्तए ।

[४०] माता-पिता के पूर्वोक्त कथन के उत्तर मे जमालि क्षत्रियकुमार ने अपने माता-पिता से इस प्रकार कहा—हे माता-पिता ! तथापि आपने जो यह कहा कि विशाल कुल मे उत्पन्न तेरी ये आठ पत्नियाँ हैं, यावत् भुक्तभोग और वृद्ध होने पर तथा हमारे कालधर्म को प्राप्त होने पर दीक्षा लेना, किन्तु माताजी और पिताजी ! यह निश्चित है कि ये मनुष्य-सम्बन्धी कामभोग [अशुचि (अपवित्र) और अशाश्वत है,] मल (उच्चार), मूत्र, श्लेष्म (कफ), सिंघाण (नाक का मैल—लीट), वमन, पित्त, मवाद (पूति), शुक्र और शोणित (रक्त या रज) से उत्पन्न होते है, ये अमनोज्ञ और दुरूप (असुन्दर)

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टि), भा १, पृ ४६२

२ भगवती अ वृत्ति पत्र ४७०

३ अधिक पाठ—"असुई असासया वंतासवा पित्तासवा खेलासवा सुक्कासवा सोणियासवा ।"

मूत्र तथा दुर्गन्धयुक्त विष्ठा से परिपूर्ण है, मृत कलेवर के ममान गन्ध वाले उच्छ्वास एव अशुभ नि श्वास से युक्त होने से उद्वेग (ग्लानि) पैदा करने वाले है। ये वीभत्स हैं, अल्पकालस्थायी हैं, तुच्छस्वभाव के है, कलमल (शरीर मे रहा हुआ एक प्रकार का अशुभ द्रव्य) के स्थानरूप होने से दु खरूप है और वहु-जनसमुदाय के लिए भोग्यरूप से साधारण है, ये अत्यन्त मानसिक क्लेश से तथा गाढ शारीरिक कष्ट से साध्य है। ये अज्ञानी जनो द्वारा ही सेवित है, साधु पुरुषो द्वारा सदेव निन्दनीय (गर्हणीय) है, अनन्त ससार की वृद्धि करने वाले है, परिणाम मे कटु फल वाले है, जलते हुए घास के पूले के समान (एक वार लग जाने के वाद) कठिनता से छूटने वाले तथा दु खानुवन्धी है, सिद्धि (मुक्ति) गमन मे विघ्नरूप है। अत हे माता-पिता ! यह भी कौन जानता है कि हममे से कौन पहले जाएगा, कौन पीछे ? इसलिए हे माता-पिता ! आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ।

विवेचन—कामभोगो से विरक्ति-सम्बन्धी उद्गार—जमालि ने प्रस्तुत सूत्र मे काम भोगो की वीभत्सता, परिणाम मे दु खजनकता, ससारपरिवर्धकता वताई है।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—पूइयपुरीसपुण्णा—मवाद अथवा दुर्गन्धित विष्ठा से भरपूर है। **मयगधुस्सास-असुभनिस्सासा-उव्वेयणगा**—मृतक-सी गन्ध वाले उच्छ्वास और अशुभ नि श्वास से उद्वेगजनक है। **लहुसगा**—लघु-हलकी कोटि के है। **कलमलाहिवासदुक्खबहुजणसाहारणा**—शरीरस्थ अशुभ द्रव्य के रहने से दु खद है और सर्वजनसाधारण हैं। **परिकिलेस-किच्छदुक्खसज्झा**—परिक्लेश-मानसिक क्लेश तथा गाढ शरीरिक दु ख से साध्य हैं। **चुडलि व्व अमुच्चमाण**—घास के प्रज्वलित पूले के समान वहुत कष्ट से छूटने वाले हैं। **दुक्खाणुबंधिणो**—परम्परा से दु खदायक है।[2] **'कामभोग' शब्द का आशय**—यहाँ 'कामभोग' शव्द से उनके आधारभूत स्त्रीपुरुषो के शरीर का ग्रहण करना अभिप्रेत है।[3]

४१. तए ण त जमालिं खत्तियकुमार अम्मा-पियरो एव वयासी—इमे य ते जाया ! अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागए सुबहुहिरण्णे य सुवण्णे य कसे य दूसे य विउलधणकणग० जाव[4] सतसारसाव-एज्जे अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवसाओ पकाम दातु, पकाम भोत्तु, पकाम परिभाएउ, त अणुहोहि ताव जाया ! विउले माणुस्सए इड्ढिसक्कारसमुदए, तओ पच्छा अणुहूयकल्लाणे वड्ढियकुलवंसततु जाव पव्वइहिसि।

[४१] तदनन्तर क्षत्रियकुमार जमालि से उसके माता-पिता ने इस प्रकार कहा—"हे पुत्र ! तेरे पितामह, प्रपितामह और पिता के प्रपितामह से प्राप्त यह वहुत-सा हिरण्य, सुवर्ण, कास्य, उत्तम वस्त्र (दूष्य), विपुल धन, कनक यावत् सारभूत द्रव्य विद्यमान है। यह द्रव्य इतना है कि मात पीढी (कुलवश) तक प्रचुर (मुक्त हस्त से) दान दिया जाय पुष्कल भोगा जाय, और वहुत-सा वाटा जाय, तो भी पर्याप्त है (ममाप्त नही हो सकता)। अत हे पुत्र ! मनुष्य-सम्वन्धी इस विपुल ऋद्धि और

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, (मूलपाठटिप्पण) भा १, पृ ४६२

२ भगवती अ० वृत्ति, पत्र ४७०

३ वही, पत्र ४७०, 'इह कामभोगग्रहणेन तदाधारभूतानि स्त्रीपुरुषशरीराण्यभिप्रेतानि।'

४ 'जाव' पद सूचित पाठ—"रयण-मणि-मोत्तिय-सख-सिल-प्पवाल-रत्तरयणमाइए।"

सत्कार (सत्कार्य) समुदाय का अनुभव कर। फिर इस कल्याण (सुखरूप पुण्यफल) का अनुभव करके और कुलवशतन्तु की वृद्धि करने के पश्चात् यावत् तू प्रव्रजित हो जाना।

४२. तए ण से जमाली खत्तियकुमारे अम्मा-पियरो एव वयासी तहा— वि ण त अम्म ! ताओ ! ज ण तुब्भे मम एव वदह—'इमे य ते जाया ! अज्जग-पज्जग० जाव पव्वइहिसि' एव खलु अम्म ! ताओ ! हिरण्णे य सुवण्णे य जाव सावएज्जे अग्गिसाहिए चोरसाहिए रायसाहिए मच्चुसाहिए दाइयसाहिए अग्गिसामन्ने जाव दाइयसामन्ने अधुवे अणितिए असासए पुव्वि वा पच्छा वा अवस्स-विप्पजहियव्वे भविस्सइ, से केस ण जाणइ० त चेव जाव पव्वइत्तए।

[४२] इस पर क्षत्रियकुमार जमालि ने अपने माता-पिता से इस प्रकार कहा—हे माता-पिता ! आपने जो यह कहा कि तेरे पितामह, प्रपितामह आदि से प्राप्त द्रव्य के दान, भोग आदि के पश्चात् यावत् प्रव्रज्या ग्रहण करना आदि, किन्तु हे माता-पिता ! यह हिरण्य, सुवर्ण यावत् सारभूत द्रव्य अग्नि-साधारण, चोर-साधारण, राज-साधारण, मृत्यु-साधारण, एव दायाद-साधारण (अधीन) है, तथा अग्नि-सामान्य यावत् दायाद-सामान्य (अधीन) है। यह (धन) अध्रुव है, अनित्य है और अशाश्वत है। इसे पहले या पीछे एक दिन अवश्य छोडना पडेगा। अत कौन जानता है कि कौन पहले जाएगा और कौन पीछे जाएगा ? इत्यादि पूर्ववत् कथन जानना चाहिए, यावत् आपकी आज्ञा प्राप्त हो जाए तो मेरी दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा है।

विवेचन—माता-पिता द्वारा द्रव्य के दान भोगादि का प्रलोभन और जमालि द्वारा धन की पराधीनता और अनित्यता का कथन—प्रस्तुत ४१-४२वे सूत्र मे माता-पिता द्वारा प्रचुर धन के उपयोग का प्रलोभन दिया गया है, जबकि जमालि ने धन के प्रति वैराग्यभाव प्रदर्शित किया है।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—**अज्जय**=आर्य—पितामह, **पज्जय**—प्रार्य—प्रपितामह, **पिउपज्जय**—पिता के प्रपितामह। **दूसे**—दूष्य—बहुमूल्य वस्त्र। **सतसारसावएज्जे**—स्वायत्त विद्यमान सारभूत स्वापतेय—धन। **आसत्तमाओ कुलवसाओ**—सात कुलवशो (पीढी) तक। **अलाहि**—पर्याप्त। **पकाम**—प्रचुर। **परिभाएउ**—विभाजित करने के लिए। **अग्गिसाहिए**—अग्नि द्वारा साधारण या साध्य—नष्ट हो जाने वाला। **दाइय**=वन्धु आदि भागीदार। **सामन्ने**—सामान्य—साधारण।[2]

४३ तए ण त जमालि खत्तियकुमार अम्म-ताओ जाहे नो सचाएति विसयाणुलोमाहि बहूहि आघवणाहि य पण्णवणाहि य सन्नवणाहि य विण्णवणाहि य आघवित्तए वा पण्णवित्तए वा सन्नवित्तए वा विण्णवित्तए वा ताहे विसयपडिकूलाहि सजमभयुव्वेवणकरीहि पण्णवणाहि पण्णवेमाणा एव वयासी—एव खलु जाया ! निग्गथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवले जहा आवस्सए[3] जाव सव्वदुक्खाणमत करेंति, अहीव एगतदिट्ठीए, खुरो इव एगतधाराए, लोहमया जवा चावेयव्वा, वालुयाकवले इव निरस्साए, गगा वा महानदी पडिसोयगमणयाए, महासमुद्दे वा भुजाहि दुत्तरे, तिक्ख कमियव्व, गरुय

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टिप्पण) भा १, पृ ४६३

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४७०

३ आवश्यकसूत्रगत पाठ—"सल्लगत्तणे सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे निज्जाणमग्गे निव्वाणमग्गे अवितहे अविसधि सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे एत्थ ठिया जीवा सिज्झति, बुज्झति, मुच्चति, परिनिव्वायति।"

मूत्र तथा दुर्गन्धयुक्त विष्ठा से परिपूर्ण है, मृत कलेवर के समान गन्ध वाले उच्छ्वास एव अशुभ नि श्वास से युक्त होने से उद्वेग (ग्लानि) पैदा करने वाले है। ये बीभत्स है, अल्पकालस्थायी हैं, तुच्छस्वभाव के है, कलमल (शरीर मे रहा हुआ एक प्रकार का अशुभ द्रव्य) के स्थानरूप होने से दु खरूप है और बहु-जनसमुदाय के लिए भोग्यरूप से साधारण है, ये अत्यन्त मानसिक क्लेश से तथा गाढ शारीरिक कष्ट से साध्य है। ये अज्ञानी जनो द्वारा ही सेवित है, साधु पुरुषो द्वारा सदैव निन्दनीय (गर्हणीय) है, अनन्त ससार की वृद्धि करने वाले है, परिणाम मे कटु फल वाले है, जलते हुए घास के पूले के समान (एक बार लग जाने के बाद) कठिनता से छूटने वाले तथा दु खानुबन्धी हैं, सिद्धि (मुक्ति) गमन मे विघ्नरूप है। अत हे माता-पिता ! यह भी कौन जानता है कि हममे से कौन पहले जाएगा, कौन पीछे ? इसलिए हे माता-पिता ! आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ।

विवेचन—कामभोगो से विरक्ति-सम्बन्धी उद्गार—जमालि ने प्रस्तुत सूत्र मे काम भोगो की बीभत्सता, परिणाम मे दु खजनकता, ससारपरिवर्धकता बताई है।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—पूइयपुरीसपुण्णा—मवाद अथवा दुर्गन्धित विष्ठा से भरपूर है। **मयगधुस्सास-असुभनिस्सासा-उव्वेयणगा**—मृतक-सी गन्ध वाले उच्छ्वास और अशुभ नि श्वास से उद्वेगजनक है। **लहुसगा**—लघु-हलकी कोटि के है। **कलमलाहिवासदुक्खबहुजणसाहारणा**—शरीरस्थ अशुभ द्रव्य के रहने से दु खद है और सर्वजनसाधरण है। **परिकिलेस-किच्छदुक्खसज्झा**—परिक्लेश-मानसिक क्लेश तथा गाढ शारीरिक दु ख से साध्य है। **चुडलि व्व अमुच्चमाण**—घास के प्रज्वलित पूले के समान बहुत कष्ट से छूटने वाले हैं। **दुक्खाणुबधिणो**—परम्परा से दु खदायक है।[2] **'कामभोग' शब्द का आशय**—यहाँ 'कामभोग' शब्द से उनके आधारभूत स्त्रीपुरुषो के शरीर का ग्रहण करना अभिप्रेत है।[3]

४१ तए ण त जमालि खत्तियकुमार अम्मा-पियरो एव वयासी—इमे य ते जाया ! अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागए सुबहुहिरण्णे य सुवण्णे य कसे य दूसे य विउलधणकणग० जाव[4] सतसारसाव-एज्जे अल।हि जाव आसत्तमाओ कुलवसाओ पकाम दातु, पकाम भोत्तु, पकाम परिभाएउ, त अणुहोहि ताव जाया ! विउले माणुस्सए इड्ढिसक्कारसमुदए, तओ पच्छा अणुहूयकल्लाणे वड्ढियकुलव-सतनु जाव पव्वइहिसि।

[४१] तदनन्तर क्षत्रियकुमार जमालि से उसके माता-पिता ने इस प्रकार कहा—"हे पुत्र ! तेरे पितामह, प्रपितामह और पिता के प्रपितामह से प्राप्त यह बहुत-सा हिरण्य, सुवर्ण, कास्य, उत्तम वस्त्र (दूष्य), विपुल धन, कनक यावत् सारभूत द्रव्य विद्यमान है। यह द्रव्य इतना है कि सात पीढी (कुलवश) तक प्रचुर (मुक्त हस्त से) दान दिया जाय पुष्कल भोगा जाय, और बहुत-सा बाटा जाय, तो भी पर्याप्त है (समाप्त नही हो सकता)। अत हे पुत्र ! मनुष्य-सम्बन्धी इस विपुल ऋद्धि और

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, (मूलपाठटिप्पण) भा १, पृ ४६२

२ भगवती अ० वृत्ति, पत्र ४७०

३ वही, पत्र ४७०, 'इह कामभोगग्रहणेन तदाधारभूतानि स्त्रीपुरुषशरीराण्यभिप्रेतानि।'

४ 'जाव' पद सूचित पाठ—"रयण-मणि-मोत्तिय-सख-सिल-प्पवाल-रत्तरयणमाइए।"

सत्कार (सत्कार्य) समुदाय का अनुभव कर। फिर इस कल्याण (सुखरूप पुण्यफल) का अनुभव करके और कुलवशतन्तु की वृद्धि करने के पश्चात् यावत् तू प्रव्रजित हो जाना।

४२ तए ण से जमाली खत्तियकुमारे अम्मा-पियरो एव वयासी तहा— वि ण त अम्म! ताओ! ज ण तुब्भे मम एव वदह—'इमे य ते जाया! अज्जग-पज्जग० जाव पव्वइहिसि' एव खलु अम्म! ताओ! हिरण्णे य सुवण्णे य जाव सावएज्जे अग्गिसाहिए चोरसाहिए रायसाहिए मच्चुसाहिए दाइयसाहिए अग्गिसामन्ने जाव दाइयसामन्ने अधुवे अणितिए असासए पुव्वि वा पच्छा वा अवस्स-विप्पजहियव्वे भविस्सइ, से केस ण जाणइ० त चेव जाव पव्वइत्तए।

[४२] इस पर क्षत्रियकुमार जमालि ने अपने माता-पिता से इस प्रकार कहा—हे माता-पिता! आपने जो यह कहा कि तेरे पितामह, प्रपितामह आदि से प्राप्त द्रव्य के दान, भोग आदि के पश्चात् यावत् प्रव्रज्या ग्रहण करना आदि, किन्तु हे माता-पिता! यह हिरण्य, सुवर्ण यावत् सारभूत द्रव्य अग्नि-साधारण, चोर-साधारण, राज-साधारण, मृत्यु-साधारण, एव दायाद-साधारण (अधीन) है, तथा अग्नि-सामान्य यावत् दायाद-सामान्य (अधीन) है। यह (धन) अध्रुव है, अनित्य है और अशाश्वत है। इसे पहले या पीछे एक दिन अवश्य छोडना पडेगा। अत कौन जानता है कि कौन पहले जाएगा और कौन पीछे जाएगा? इत्यादि पूर्ववत् कथन जानना चाहिए, यावत् आपकी आज्ञा प्राप्त हो जाए तो मेरी दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा है।

विवेचन—माता-पिता द्वारा द्रव्य के दान भोगादि का प्रलोभन और जमालि द्वारा धन की पराधीनता और अनित्यता का कथन—प्रस्तुत ४१-४२वे सूत्र मे माता-पिता द्वारा प्रचुर धन के उपयोग का प्रलोभन दिया गया है, जबकि जमालि ने धन के प्रति वैराग्यभाव प्रदर्शित किया है।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—अज्जय=आर्य—पितामह, **पज्जय**—प्रार्य—प्रपितामह, **पिउपज्जय**—पिता के प्रपितामह। **दूसे**—दूष्य—बहुमूल्य वस्त्र। **सतसारसावएज्जे**—स्वायत्त विद्यमान सारभूत स्वापतेय—धन। **आसत्तमाओ कुलवसाओ**—सात कुलवशो (पीढी) तक। **अलाहि**—पर्याप्त। **पकाम**—प्रचुर। **परिभाएउ**—विभाजित करने के लिए। **अग्गिसाहिए**—अग्नि द्वारा साधारण या साध्य—नष्ट हो जाने वाला। **दाइय**=बन्धु आदि भागीदार। **सामन्ने**—सामान्य—साधारण।[2]

४३ तए ण त जमालिं खत्तियकुमार अम्म-ताओ जाहे नो सचाएति विसयाणुलोमाहि बहूहि आघवणाहि य पण्णवणाहि य सन्नवणाहि य विण्णवणाहि य आघवित्तए वा पण्णवित्तए वा सन्नवित्तए वा विण्णवित्तए वा ताहे विसयपडिकूलाहि सजमभयुव्वेवणकरीहि पण्णवणाहि पण्णवेमाणा एव वयासी—एव खलु जाया! निग्गथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवले जहा आवस्सए[3] जाव सव्वदुक्खाणमत करेंति, अहीव एगतदिट्ठीए, खुरो इव एगतधाराए, लोहमया जवा चावेयव्वा, वालुयाकवले इव निरस्साए, गगा वा महानदी पडिसोयगमणयाए, महासमुद्दे वा भुजाहि दुत्तरे, तिक्ख कमियव्व, गरुय

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टिप्पण) भा १, पृ ४६३

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४७०

३ आवश्यकसूत्रगत पाठ—"सल्लगत्तणे सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे निज्जाणमग्गे निव्वाणमग्गे अवितहे अविसधि सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे एत्थ ठिया जीवा सिज्झति, बुज्झति, मुच्चति, परिनिव्वायति।"

मूत्र तथा दुर्गन्धयुक्त विष्ठा से परिपूर्ण है, मृत कलेवर के समान गन्ध वाले उच्छ्वास एव अशुभ नि श्वास से युक्त होने से उद्वेग (ग्लानि) पैदा करने वाले है। ये बीभत्स है, अल्पकालस्थायी है, तुच्छस्वभाव के है, कलमल (शरीर मे रहा हुआ एक प्रकार का अशुभ द्रव्य) के स्थानरूप होने से दु खरूप है और बहु-जनसमुदाय के लिए भोग्यरूप से साधारण है, ये अत्यन्त मानसिक क्लेश से तथा गाढ शारीरिक कष्ट से साध्य है। ये अज्ञानी जनो द्वारा ही सेवित है, साधु पुरुषो द्वारा सदैव निन्दनीय (गर्हणीय) है, अनन्त ससार की वृद्धि करने वाले है, परिणाम मे कटु फल वाले है, जलते हुए घास के पूले के समान (एक वार लग जाने के वाद) कठिनता से छूटने वाले तथा दु खानुबन्धी है, सिद्धि (मुक्ति) गमन मे विघ्नरूप है। अत हे माता-पिता ! यह भी कौन जानता है कि हममे से कौन पहले जाएगा, कौन पीछे ? इसलिए हे माता-पिता ! आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ।

विवेचन—कामभोगो से विरक्ति-सम्बन्धी उद्गार—जमालि ने प्रस्तुत सूत्र मे काम भोगो की बीभत्सता, परिणाम मे दु खजनकता, ससारपरिवर्धकता बताई है।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—पूइयपुरीसपुण्णा—मवाद अथवा दुर्गन्धित विष्ठा से भरपूर है। **मयगधुस्सास-असुभनिस्सासा-उव्वेयणगा**—मृतक-सी गन्ध वाले उच्छ्वास और अशुभ नि श्वास से उद्वेगजनक है। **लहुसगा**—लघु-हलकी कोटि के है। **कलमलाहिवासदुक्खबहुजणसाहारणा**—शरीरस्थ अशुभ द्रव्य के रहने से दु खद है और सर्वजनसाधरण है। **परिकिलेस-किच्छदुक्खसज्झा**—परिक्लेश-मानसिक क्लेश तथा गाढ शरीरिक दु ख से साध्य है। **चुडलि व्व अमुच्चमाण**—घास के प्रज्वलित पूले के समान बहुत कष्ट से छूटने वाले है। **दुक्खाणुबंधिणो**—परम्परा से दु खदायक है।[2] **'कामभोग' शब्द का आशय**—यहाँ 'कामभोग' शब्द से उनके आधारभूत स्त्रीपुरुषो के शरीर का ग्रहण करना अभिप्रेत है।[3]

४१ तए ण त जमालिं खत्तियकुमार अम्मा-पियरो एवं वयासी—इमे य ते जाया ! अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागए सुबहुहिरण्णे य सुवण्णे य कसे य दूसे य विउलधणकणग० जाव[4] सतसारसाव-एज्जे अल हि जाव आसत्तमाओ कुलवसाओ पकाम दातु, पकाम भोत्तु, पकाम परिभाएउ, त अणुहोहि ताव जाया ! विउले माणुस्सए इड्डिसक्कारसमुदए, तओ पच्छा अणुहूयकल्लाणे वड्ढियकुलव-सततु जाव पव्वइहिसि।

[४१] तदनन्तर क्षत्रियकुमार जमालि से उसके माता-पिता ने इस प्रकार कहा—"हे पुत्र ! तेरे पितामह, प्रपितामह और पिता के प्रपितामह से प्राप्त यह वहुत-सा हिरण्य, सुवर्ण, कास्य, उत्तम वस्त्र (दूष्य), विपुल धन, कनक यावत् सारभूत द्रव्य विद्यमान है। यह द्रव्य इतना है कि सात पीढी (कुलवश) तक प्रचुर (मुक्त हस्त से) दान दिया जाय पुष्कल भोगा जाय, और वहुत-सा वाटा जाय, तो भी पर्याप्त है (समाप्त नही हो सकता)। अत हे पुत्र ! मनुष्य-सम्वन्धी इस विपुल ऋद्धि और

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, (मूलपाठटिप्पण) भा १, पृ ४६२

२ भगवती अ० वृत्ति, पत्र ४७०

३ वही, पत्र ४७०, 'इह कामभोगग्रहणेन तदाधारभूतानि स्त्रीपुरुषशरीराण्यभिप्रेतानि।'

४ 'जाव' पद सूचित पाठ—"रयण-मणि-मोत्तिय-सख-सिल-प्पवाल-रत्तरयणमाइए।"

कालगत हो जाने पर, यावत् प्रव्रज्या ग्रहण कर लेना।

विवेचन—माता-पिता द्वारा निर्ग्रन्थधर्माचरण की दुष्करता का प्रतिपादन—क्षत्रियकुमार जमालि को जब उसके माता-पिता विविध युक्तियो आदि द्वारा समझा नही सके, तब निरुपाय होकर वे निर्ग्रन्थ-प्रवचन (धर्म) की भयकरता, दुष्करता, दुश्चरणीयता आदि का प्रतिपादन करते है। प्रस्तुत सूत्र मे यही वर्णन है।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—नो सचाएति—समर्थ नही हुए। **विसयाणुलोमाहि**—शब्दादि विषयो के अनुकूल। **आघवणाहि**—सामान्य उक्तियो से, **पण्णवणाहि**—प्रज्ञप्तियो—विशेष उक्तियो से, **सन्नवणाहि**—सज्ञप्तियो—विशेष रूप से समझाने-बुझाने से, **विण्णवणाहि**—विज्ञप्तियो से—प्रेमपूर्वक अनुरोध करने से। **सजमभयुव्वेवणकरीहि**—सयम के प्रति भय और उद्वेग पैदा करने वाली। **अहीव एगतदिट्ठीए**—जैसे सर्प की एक ही (आमिषग्रहण की) ओर दृष्टि रहती है, वैसे ही निर्ग्रन्थप्रवचन मे एकमात्र चारित्रपालन के प्रति एकान्तदृष्टि होती है। **तिक्ख कमियव्व**—खड्गादि तीक्ष्णधारा पर चलना। **गरुय लबेयव्व**—महाशिलावत् गुरुतर (महाव्रत) भार उठाना। **असिधारग वत चरियव्व** तलवार की धार पर चलने के समान व्रताचरण करना होता है।[2]

आधाकर्मिक आदि का भावार्थ—आधाकर्मिक—किसी खास साधु के निमित्त सचित्त वस्तु को अचित्त करना या अचित्त को पकाना। **औद्देशिक**—सामान्यतया याचको और साधुओ के उद्देश्य से आहारादि तैयार करना। **मिश्रजात**—अपने और साधुओ के लिए एक साथ पकाया हुआ आहार। **अध्यवपूरक**—साधुओ का आगमन सुन कर अपने बनते हुए भोजन मे और मिला देना। **पूतिकर्म**—शुद्ध आहार मे आधाकर्मादि का अश मिल जाना। **क्रीत**—साधु के लिए खरीदा हुआ आहार। **प्रामित्य**-साधु के लिए उधार लिया हुआ आहारादि। **आछेद्य**—किसी से जबरन छीन कर साधु को आहारादि देना। **अनि सृष्ट**—किसी वस्तु के एक से अधिक स्वामी होने पर सबकी इच्छा के बिना देना। **अभ्याहृत**—साधु के सामने लाकर आहारादि देना। **कान्तारभक्त**—वन मे रहे हुए भिखारी आदि के लिए तैयार किया हुआ आहारादि। **दुर्भिक्षभक्त**—दुष्काल पीडित लोगो को देने के लिए तैयार किया हुआ आहारादि। **ग्लानभक्त**—रोगियो के लिए तैयार किया हुआ आहारादि। **वार्दलिकाभक्त**—दुर्दिन या वर्षा के समय भिखारियो के लिए तैयार किया हुआ आहारादि। **प्राघूर्णकभक्त**—पाहुनो के लिए बनाया हुआ आहारादि। **शय्यातरपिण्ड**—साधुओ को मकान देने वाले के यहाँ का आहार लेना। **राजपिण्ड**—राजपिण्ड—राजा के लिए बने हुए आहारादि मे से देना। **'सुहसमुयिते' आदि पदो के अर्थ—सुहसमुयिते**—सुख मे सवर्द्धित—पला हुआ अथवा सुख के योग्य (समुचित)। **वाला**—व्याल (सर्प) आदि हिंस्र जन्तुओ को। **सेंभिय**—श्लेष्म सम्बन्धी। **सन्निवाइए**—सन्निपातजन्य। **अहियासेत्तए**—सहन करने मे। **उदिण्णे**—उदय मे आने पर।[3]

४४ तए ण से जमाली खत्तियकुमारे अम्मा-पियरो एव वयासी—तहा वि ण त अम्म ! ताओ ! ज ण तुब्भे मम एवं वदह—एव खलु जाया ! निग्गथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवले त चेव

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त [मू पा टि] भा १, पृ ४६३

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४७१

३ भगवती अ वृत्ति पत्र ४७१

लवेयव्व, असिधारग वत चरियव्व, नो खलु कप्पइ जाया ! समणाणं निग्गथाण आहाकम्मिए इ वा, उद्देसिए इ वा, मिस्सजाए इ वा, अज्झोयरए इ वा, पूइए इ वा, कीए इ वा, पामिच्चे इ वा, अच्छेज्जे इ वा, अणिसट्ठे इ वा, अभिहडे इ वा, कतारभत्ते इ वा, दुब्भिक्खभत्ते इ वा, गिलाणभत्ते इ वा, वद्दलियाभत्ते इ वा, पाहुणगभत्ते इ वा, सेज्जायरपिडे इ वा, रायपिंडे इ वा, मूलभोयणे इ वा, कद-भोयणे इ वा, फलभोयणे इ वा, बीयभोयणे इ वा, हरियभोयणे इ वा, भुत्तए वा पायए वा । तुम सि च ण जाया ! सुहसमुयिते णो चेव ण दुहसमुयिते, नाल सीय, नाल उण्ह, नाल खुहा, नाल पिवासा, नाल चोरा, नाल वाला, नाल दसा, नाल मसगा, नाल वाइय-पित्तिय-सेंभिय-सन्निवाइए विविहे रोगायके परीसहोवसग्गे उदिण्णे अहियासेत्तए । त नो खलु जाया ! अम्हे इच्छामो तुज्झ खणमवि विप्पयोग, त अच्छाहि ताव जाया ! जाव ताव अम्हे जीवामो, तओ पच्छा अम्हेहिं जाव पव्वइहिसि ।

[४३] जब क्षत्रियकुमार जमालि को उसके माता-पिता विषय के अनुकूल बहुत-सी उक्तियो, प्रज्ञप्तियो, सज्ञप्तियो और विज्ञप्तियो द्वारा कहने, बतलाने और समझाने-बुझाने मे समर्थ नही हुए, तब विषय के प्रतिकूल तथा सयम के प्रति भय और उद्वेग उत्पन्न करने वाली उक्तियो से समझाते हुए इस प्रकार कहने लगे—हे पुत्र ! यह निर्ग्रन्थप्रवचन सत्य, अनुत्तर, (अद्वितीय, परिपूर्ण न्याययुक्त, सशुद्ध, शल्य को काटने वाला, सिद्धिमार्ग, मुक्तिमार्ग, निर्याणमार्ग और निर्वाणमार्गरूप है। यह अवितथ (असत्यरहित, असदिग्ध) आदि आवश्यक के अनुसार यावत् (सर्वदु खो का अन्त करने वाला है। इसमे तत्पर जीव सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होते है, निर्वाण प्राप्त करते है एव समस्त दु खो का अन्त करते है। परन्तु यह (निर्ग्रन्थधर्म) सर्प की तरह एकान्त (चारित्र पालन के प्रति निश्चय) दृष्टि वाला है, छुरे या खड्ग आदि तीक्ष्ण शस्त्र की तरह एकान्त (तीक्ष्ण) धार वाला है। यह लोहे के चने चबाने के समान दुष्कर है, बालु (रेत) के कौर (ग्रास) की तरह स्वादरहित (नीरस) है। गगा आद महानदी के प्रतिस्रोत (प्रवाह के सम्मुख) गमन के समान अथवा भुजाओ से महासमुद्र तैरने के समान पालन करने मे अतीव कठिन है। (निर्ग्रन्थधर्म पालन करना) तीक्ष्ण (तलवार की तीखी) धार पर चलना है, महाशिला को उठाने के समान गुरुतर भार उठाना है। तलवार की तीक्ष्ण धार पर चलने के समान व्रत का आचरण करना (दुष्कर) है।

हे पुत्र ! निर्ग्रन्थ श्रमणो के लिए ये बाते कल्पनीय नही है। यथा—(१) आधाकर्मिक, (२) औद्देशिक, (३) मिश्रजात, (४) अध्यवपूरक, (५) पूतिक (पूतिकर्म), (६) क्रीत, (७) प्रामित्य, (८) अछेद्य, (९) अनिसृप्ट, (१०) अभ्याहृत, (११) कान्तारभक्त, (१२) दुर्भिक्षभक्त, (१३) ग्लान-भक्त, (१४) वर्दलिकाभक्त, (१५) प्राघूर्णकभक्त, (१६) शय्यातरपिण्ड और (१७) राजपिण्ड, (इन दोषो से युक्त आहार साधु को लेना कल्पनीय नही है।) इसी प्रकार मूल, कन्द, फल, बीज और हरित—हरी वनस्पति का भोजन करना या पीना भी उसके लिए अकल्पनीय है। हे पुत्र ! तू सुख मे पला, सुख भोगने योग्य है, दु ख सहन करने योग्य नही है। तू (अभी तक) शीत, उष्ण, क्षुधा, पिपासा को तथा चोर, व्याल (सर्प आदि हिंस्र प्राणियो), डास, मच्छरो के उपद्रव को एव वात, पित्त, कफ एव सन्निपात सम्बन्धी अनेक रोगो के आतक को और उदय मे आए हुए परीषहो एव उपसर्गो को सहन करने मे समर्थ नही है। हे पुत्र ! हम तो क्षणभर भी तेरा वियोग सहन करना नही चाहते। अत पुत्र ! जब तक हम जीवित है, तब तक तू गृहस्थवास मे रह। उसके बाद हमारे

कालगत हो जाने पर, यावत् प्रव्रज्या ग्रहण कर लेना।

विवेचन—माता-पिता द्वारा निर्ग्रन्थधर्माचरण की दुष्करता का प्रतिपादन—क्षत्रियकुमार जमालि को जब उसके माता-पिता विविध युक्तियो आदि द्वारा समझा नही सके, तब निरुपाय होकर वे निर्ग्रन्थ-प्रवचन (धर्म) की भयकरता, दुष्करता, दुश्चरणीयता आदि का प्रतिपादन करते है। प्रस्तुत सूत्र मे यही वर्णन है।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—नो सचाएति—समर्थ नही हुए। **विसयाणुलोमाहि**—शब्दादि विषयो के अनुकूल। **आघवणाहि**—सामान्य उक्तियो से, **पण्णवणाहि**—प्रज्ञप्तियो—विशेष उक्तियो से, **सन्नवणाहि**—सज्ञप्तियो—विशेष रूप से समझाने-बुझाने से, **विण्णवणाहि**—विज्ञप्तियो मे—प्रेमपूर्वक अनुरोध करने से। **सजमभयुव्वेवणकरीहि**—सयम के प्रति भय और उद्वेग पैदा करने वाली। **अहीव एगतदिट्ठीए**—जैसे सर्प की एक ही (आमिषग्रहण की) ओर दृष्टि रहती है, वैसे ही निर्ग्रन्थप्रवचन मे एकमात्र चारित्रपालन के प्रति एकान्तदृष्टि होती है। **तिक्ख कमियव्व**—खड्गादि तीक्ष्णधारा पर चलना। **गरुय लबेयव्व**—महाशिलावत् गुरुतर (महाव्रत) भार उठाना। **असिधारग वत चरियव्व** तलवार की धार पर चलने के समान व्रताचरण करना होता है।[2]

आधाकर्मिक आदि का भावार्थ—आधाकर्मिक—किसी खास साधु के निमित्त सचित्त वस्तु को अचित्त करना या अचित्त को पकाना। **औद्देशिक**—सामान्यतया याचको और साधुओ के उद्देश्य से आहारादि तैयार करना। **मिश्रजात**—अपने और साधुओ के लिए एक साथ पकाया हुआ आहार। **अध्यवपूरक**—साधुओ का आगमन सुन कर अपने बनते हुए भोजन मे और मिला देना। **पूतिकर्म**—शुद्ध आहार मे आधाकर्मादि का अश मिल जाना। **क्रीत**—साधु के लिए खरीदा हुआ आहार। **प्रामित्य**-साधु के लिए उधार लिया हुआ आहारादि। **आछेद्य**—किसी से जबरन छीन कर साधु को आहारादि देना। **अनि सृष्ट**—किसी वस्तु के एक से अधिक स्वामी होने पर सबकी इच्छा के बिना देना। **अभ्याहृत**—साधु के सामने लाकर आहारादि देना। **कान्तारभक्त**—वन मे रहे हुए भिखारी आदि के लिए तैयार किया हुआ आहारादि। **दुर्भिक्षभक्त**—दुष्काल पीडित लोगो को देने के लिए तैयार किया हुआ आहारादि। **ग्लानभक्त**—रोगियो के लिए तैयार किया हुआ आहारादि। **वार्दलिकाभक्त**—दुर्दिन या वर्षा के समय भिखारियो के लिए तैयार किया हुआ आहारादि। **प्राघूर्णकभक्त**—पाहुनो के लिए बनाया हुआ आहारादि। **शय्यातरपिण्ड**—साधुओ को मकान देने वाले के यहाँ का आहार लेना। **राजपिण्ड**—राजपिण्ड—राजा के लिए बने हुए आहारादि मे से देना। **'सुहसमुयिते' आदि पदो के अर्थ—सुहसमुयिते**—सुख मे सवर्द्धित—पला हुआ अथवा सुख के योग्य (समुचित)। **वाला**—व्याल (सर्प) आदि हिंस्र जन्तुओ को। **सेंभिय**—श्लेष्म सम्बन्धी। **सन्निवाइए**—सन्निपातजन्य। **अहियासेत्तए**—सहन करने मे। **उदिण्णे**—उदय मे आने पर।[3]

४४ तए णं से जमाली खत्तियकुमारे अम्मा-पियरो एव वयासी—तहा वि ण त अम्म! ताओ! ज ण तुब्भे ममं एव वदह—एव खलु जाया! निग्गथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवले त चेव

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त [मू पा टि] भा १, पृ ४६३

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४७१

३ भगवती अ वृत्ति पत्र ४७१

जाव पव्वइहिसि। एव खलु अम्म ! ताओ ! निग्गथे पावयणे कीवाण कायराण कापुरिसाण इहलोगपडिबद्धाण परलोगपरम्मुहाण विसयतिसियाण दुरणुचरे, पागयजणस्स, धीरस्स निच्छियस्स ववसियस्स नो खलु एत्थ किंचि वि दुक्कर करणयाए, त इच्छामि ण अम्म ! ताओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइत्तए।

[४४] तब क्षत्रियकुमार जमालि ने माता-पिता को उत्तर देते हुए इस प्रकार कहा—हे माता-पिता ! आप मुझे यह जो कहते है कि यह निर्ग्रन्थ-प्रवचन सत्य है, अनुत्तर है, अद्वितीय है, यावत् तू समर्थ नही है इत्यादि यावत् बाद मे प्रव्रजित होना, किन्तु हे माता-पिता ! यह निश्चित है कि क्लीवो (नामर्दो), कायरो, कापुरुषो तथा इस लोक मे आसक्त और परलोक से पराड्मुख एव विषयभोगो की तृष्णा वाले पुरुषो के लिए तथा प्राकृतजन (साधारण व्यक्ति) के लिए इस निर्ग्रन्थ-प्रवचन (धर्म) का आचरण करना दुष्कर है, परन्तु धीर (साहसिक), कृतनिश्चय एव उपाय मे प्रवृत्त पुरुष के लिए इसका आचरण करना कुछ भी दुष्कर नही है। इसलिए मै चाहता हूँ कि आप मुझे (प्रव्रज्याग्रहण की) आज्ञा दे दे तो मै श्रमण भगवान् महावीर के पास दीक्षा ले लू।

विवेचन— जमालि के द्वारा उत्साहपूर्ण उत्तर—जमालि क्षत्रियकुमार ने माता-पिता के द्वारा निर्ग्रन्थधर्म-पालन की दुष्करता का उत्तर देते हुए कहा कि सयमपालन कायरो के लिए कठिन है, वीरो एव दृढनिश्चय पुरुषो के लिए नही। अत आप मुझे दीक्षा की आज्ञा प्रदान करे।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—कीवाण—क्लीब (मन्द सहनन वाले) लोगो के लिए। **कापुरिसाण**—डरपोक मनुष्यो के लिए। **इहलोगपडिबद्धाण**— इस लोक मे आबद्ध—आसक्त। **पागयजणस्स**—प्राकृतजन—साधारण मनुष्य के लिए। **दुरणुचरे**—आचरण करना दुष्कर है। **धीरस्स**—धीर—साहसिक पुरुष के लिए। **निच्छियस्स**—यह अवश्य करना है, इस प्रकार के दृढ निश्चय वाले। **ववसियस्स**—व्यवसित—उपाय मे प्रवृत्त के लिए। **करणयाए**—सयम का आचरण करना।[2]

जमालि को प्रव्रज्याग्रहण की अनुमति दी—

४५. तए ण त जमालिं खत्तियकुमार अम्मा-पियरो जाहे नो सचाएंति विसयाणुलोमाहि य विसयपडिकूलाहि य बहूहि य आघवणाहि य पण्णवणाहि य सन्नवणाहि य विण्णवणाहि य आघवेत्तए वा जाव विण्णवेत्तए वा ताहे अकामाइ चेव जमालिस्स खत्तियकुमारस्स निक्खमण अणुमन्नित्था।

[४५] जब क्षत्रियकुमार जमालि के माता-पिता विषय के अनुकूल और विषय के प्रतिकूल बहुत-सी उक्तियो, प्रज्ञप्तियो, सज्ञप्तियो और विज्ञप्तियो द्वारा उसे समझा-बुझा न सके, तब अनिच्छा से उन्होने क्षत्रियकुमार जमालि को दीक्षाभिनिष्क्रमण (दीक्षाग्रहण) की अनुमति दे दी।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टिप्पण), भा १, पृ ४६४

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४७२

(ख) भगवती भा ४ (प घेवरचन्दजी), पृ १७३१

विवेचन—निरुपाय माता-पिता द्वारा जमालि को दीक्षा की अनुमति—प्रस्तुत सूत्र ४५ मे यह निरूपण किया गया है कि जमालि के माता-पिता जब अनुकूल और प्रतिकूल युक्तियो, तर्कों, हेतुओ एव प्रेमानुरोधों से समझा-बुझा चुके और उस पर कोई प्रभाव न पडा, तब निरुपाय होकर उन्होने दीक्षाग्रहण करने की अनुमति दे दी।[1]

कठिन शब्दो के भावार्थ—**अकामाइ**—अनिच्छा से, अनमने भाव से। **निक्खमण अणुमन्नित्था**—दीक्षा ग्रहण करने के लिए अनुमति दी।[2]

जमालि के प्रव्रज्याग्रहण का विस्तृत वर्णन—

४६. तए ण तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एव वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! खत्तियकु डग्गाम नगर सब्भिंतरबाहिरिय आसियसम्मज्जिओवलित्त जहा उववाइए[3] जाव पच्चप्पिणति।

[४६] तदनन्तर क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और उन्हे इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही क्षत्रियकुण्डग्राम [नगर के अन्दर और बाहर पानी का छिडकाव करो, झाड/बुहार कर जमीन की सफाई करके उसे लिपाओ, इत्यादि औपपातिक सूत्र मे अकित वर्णन के अनुसार यावत् कार्य करके उन कौटुम्बिक पुरुषो ने आज्ञा वापस सौंपी।

४७ तए ण से जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया दोच्च पि कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एव वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! जमालिस्स खत्तियकुमारस्स महत्थं महग्घं महरिह विपुल निक्खमणाभिसेयं उवट्ठवेह।

[४७] इसके पश्चात् क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने दुबारा भी उन कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और फिर उनसे इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही जमालि क्षत्रियकुमार के महार्थ, महामूल्य, महार्ह (महान् पुरुषो के योग्य) और विपुल निष्क्रमणाभिषेक की तैयारी करो।

४८. तए ण ते कोडु बियपुरिसा तहेव जाव पच्चप्पिणति।

[४८] इस पर कौटुम्बिक पुरुषो ने उनकी आज्ञानुसार कार्य करके आज्ञा वापस सौंपी।

विवेचन—कौटुम्बिक पुरुषो द्वारा नगर की सफाई एव निष्क्रमणाभिषेक की तैयारी—प्रस्तुत तीन सूत्रो (४६ से ४८ तक) मे जमालि के पिता ने दीक्षा की आज्ञा देने के बाद नगर को पूर्ण साफ-सुथरा बनाने का और दीक्षाभिषेक की विधिवत् तैयारी का कौटुम्बिक पुरुषो को आदेश दिया, जिसका पालन उन्होने किया।[4]

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा १, पृ ४६४

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४७२

३ उववाईसूत्र के अनुसार पाठ इस प्रकार है—"सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु आसित्त-सित्तसुइयसम्मट्ठरत्यतरावणवीहिय मचाइमचकलिअ णाणाविहरागउच्छियज्झय-पडागाइपडागमडिय, इत्यादि।" —औपपातिक सूत्र पत्र ६१, सू २९

४ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टिप्पण) भा १, पृ ४६५

कठिन शब्दों का भावार्थ— **सब्भिंतरबाहिरियं**—भीतर के सहित बाहर का। **आसिय**=पानी से सींचो (छिड़काव करो)। **सम्मज्जिय**—झाड़ू आदि से सफाई करो। **उवलित्त**—लीपना। **महत्थ**—महाप्रयोजन वाला। **महग्घ**=महामूल्यवान्। **महरिह**=महान् पुरुषों के योग्य या महापूज्य। **निक्खमणाभिसेय**—निष्क्रमणाभिषेक सामग्री को। **उवट्ठवेह**—उपस्थित करो या तैयार करो।[1]

४९. तए णं तं जमालिं खत्तियकुमारं अम्मा-पियरो सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहं निसीयावेंति, निसीयावेत्ता अट्ठसएणं सोवण्णियाणं कलसाणं एवं जहा रायप्पसेणइज्जे[2] जाव अट्ठसएणं भोमिज्जाणं कलसाणं सव्विड्ढीए जाव[3] रवेणं महया महया निक्खमणाभिसेगेणं अभिसिंचइ, निक्खमणाभिसेगेण अभिसिंचित्ता करयल जाव जएणं विजएणं वद्धावेंति, जएणं विजएणं वद्धावेत्ता एवं वयासी—भण जाया! किं देमो? किं पयच्छामो? किणा वा ते अट्ठो?

[४९] इसके पश्चात् जमालि क्षत्रियकुमार के माता-पिता ने उसे उत्तम सिंहासन पर पूर्व की ओर मुख करके बिठाया। फिर एक सौ आठ सोने के कलशों से इत्यादि जिस प्रकार राजप्रश्नीयसूत्र में कहा है, तदनुसार यावत् एक सौ आठ मिट्टी के कलशों से सर्वऋद्धि (ठाठबाठ) के साथ यावत् (वाद्यों के) महाशब्द के साथ निष्क्रमणाभिषेक किया।

निष्क्रमणाभिषेक पूर्ण होने के बाद (जमालिकुमार के माता-पिता ने) हाथ जोड़ कर जय-विजय-शब्दों से उसे बधाया। फिर उन्होंने उससे कहा—'पुत्र! बताओ, हम तुम्हें क्या दें? तुम्हारे किस कार्य में क्या, (सहयोग) दें? तुम्हारा क्या प्रयोजन है?'

५०. तए णं से जमाली खत्तियकुमारे अम्मा-पियरो एवं वयासी—इच्छामि णं अम्म! ताओ! कुत्तियावणाओ रयहरणं च पडिग्गहं च आणिउं कासवगं च सद्दाविउं।

[५०] इस पर क्षत्रियकुमार जमालि ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—हे माता-पिता! मैं कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र मंगवाना चाहता हूँ और नापित को बुलाना चाहता हूँ।

५१. तए णं से जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइं गहाय सयसहस्सेणं सयसहस्सेणं कुत्तियावणाओ रयहरणं च पडिग्गहं च आणेह, सयसहस्सेण च कासवगं सद्दावेह।

---

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४७६

२ राजप्रश्नीयसूत्रानुसार पाठ यह है—"अट्ठसएणं सुवण्णमयाणं कलसाणं, अट्ठसएणं रुप्पमयाणं कलसाणं, अट्ठसएणं मणिमयाणं कलसाणं, अट्ठसएणं सुवण्ण-रुप्पमयाणं कलसाणं, अट्ठसएणं सुवण्ण-मणिमयाणं कलसाणं, अट्ठसएणं रुप्प-मणिमयाणं कलसाणं, अट्ठसएणं सुवण्ण-रुप्प-मणिमयाणं कलसाणं।"

—रायप्पसेणइज्ज (गुर्जर ग्रन्थ) पृ. २४१-२४२ कण्डिका १३५

३ 'जाव' शब्दसूचित पाठ—"सव्वजुईए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वरवेणं सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वपुप्फ-गंध-मल्लालंकारेणं सव्वतुडियसद्दसन्निनाएणं महया इड्ढीए महया जुईए महया बलेणं महया समुदएणं महया वरतुडिय-जमगसमगप्पवाइएणं संख-पणव-पडह-भेरि-झल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-मुरय-मुइंग-दुंदुहिनिग्घोसनाइय।"—भगवती अ. वृ.

[५१] तब क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और उनसे कहा—"देवानुप्रियो ! शीघ्र ही श्रीघर (भण्डार) से तीन लाख स्वर्णमुद्राएँ (सोनैया) निकाल कर उनमे से एक-एक लाख सोनैया दे कर कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र ले आओ तथा (शेष) एक लाख सोनैया देकर नापित को बुलाओ।"

५२. तए ण ते कोडुबियपुरिसा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिउणा एव वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा करयल जाव पडिसुणित्ता खिप्पामेव सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइ तहेव जाव कासवगं सद्दावेंति।

[५२] क्षत्रियकुमार जमालि के पिता की उपर्युक्त आज्ञा सुन कर वे कौटुम्बिक पुरुष बहुत ही हर्षित एव सतुष्ट हुए। उन्होने हाथ जोड कर यावत् स्वामी के वचन स्वीकार किये और शीघ्र ही श्रीघर (भण्डार) से तीन लाख स्वर्णमुद्राएँ निकाल कर कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र लाए तथा नापित को बुलाया।

विवेचन—निष्क्रमणाभिषेक तथा दीक्षा के उपकरणादि की माग—प्रस्तुत सू ४९ से ५२ तक मे जमालि के माता-पिता ने कौटुम्बिक पुरुषो द्वारा उसका निष्क्रमणाभिषेक कराया और फिर जमालि की इच्छानुसार रजोहरण, पात्र मगवाए और नापित को बुलाया।[1]

निष्क्रमणाभिषेक—दीक्षा के पूर्व प्रव्रजित होने वाले व्यक्ति का माता-पिता आदि द्वारा स्वर्ण आदि के कलशो से अभिषेक (मस्तक पर जलसिंचन करके स्नान) कराना निष्क्रमणाभिषेक है।

कठिन शब्दो का विशेषार्थ—सिरिघराओ—श्रीघर—भण्डार से। **कासवग**=नापित को। **भोमिज्जाण**=मिट्टी से बने हुए। **सव्विड्ढीए**—समस्त छत्र आदि राजचिह्नरूप ऋद्धिपूर्वक। **पयच्छामो**—विशेषरूप से क्या दे?

कुत्रिकापण—कुत्रिक, अर्थात् स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तीनो पृथ्वियो मे सभवित वस्तु मिलने वाली देवाधिष्ठित दुकान।[2]

५३. तए ण से कासवए जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिउणो कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविते समाणे हट्ठे तुट्ठे ण्हाए कयबलिकम्मे जाव सरीरे जेणेव जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता करयल० जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पियर जएण विजएण वद्धावेइ, जएण विजएण वद्धावित्ता एव वयासी—सदिसतु ण देवाणुप्पिया! ज मए करणिज्ज।

[५३] फिर क्षत्रियकुमार जमालि के पिता के आदेश से कौटुम्बिक पुरुषो द्वारा नाई को बुलाए जाने पर वह बहुत ही प्रसन्न और तुष्ट हुआ। उसने स्नानादि किया, यावत् शरीर को अलकृत किया, फिर जहाँ क्षत्रियकुमार जमालि के पिता थे, वहाँ आया और उन्हे जय-विजय शब्दो से बधाया, फिर इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिय! मुझे करने योग्य कार्य का आदेश दीजिये।"

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टिप्पण) भा १, पृ ४६५-४६६

२ भगवती अ० वृत्ति, पत्र ४७६

५४. तए णं से जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया तं कासवग एव वयासी—तुम ण देवाणुप्पिया ! जमालिस्स खत्तियकुमारस्स परेण जत्तेण चउरगुलवज्जे निक्खमणपाउग्गे अग्गकेसे कप्पेहि ।

[५४] इस पर क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने उस नापित से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! क्षत्रियकुमार जमालि के निष्क्रमण के योग्य अग्रकेश (सिर के आगे-आगे के बाल) चार अगुल छोड कर अत्यन्त यत्न पूर्वक काट दो ।

५५. तए ण से कासवए जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिउणा एव वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे करयल जाव एव सामी ! तहत्ताणाए विणएण वयण पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता सुरभिणा गधोदएण हत्थ-पादे पक्खालेइ, सुरभिणा गधोदएण हत्थ-पादे पक्खालित्ता सुद्धाए अट्ठपडलाए पोत्तीए मुह बधइ, मुह बधित्ता जमालिस्स खत्तियकुमारस्स परेण जत्तेण चउरगुलवज्जे निक्खमणपाउग्गे अग्गकेसे कप्पेइ ।

[५५] क्षत्रियकुमार जमालि के पिता के द्वारा यह आदेश दिये जाने पर वह नापित अत्यन्त हर्षित एव तुष्ट हुआ और हाथ जोड कर यावत् (इस प्रकार) बोला—"स्वामिन् ! आपकी जैसी आज्ञा है, वैसा ही होगा," इस प्रकार उसने विनयपूर्वक उनके वचनो को स्वीकार किया । फिर सुगन्धित गन्धोदक से हाथ-पैर धोए, आठ पट वाले शुद्ध वस्त्र से मुह बाधा और अत्यन्त यत्नपूर्वक क्षत्रिय-कुमार जमालि के निष्क्रमणयोग्य अग्रकेशो को चार अगुल छोड कर काटा ।

विवेचन—नापित द्वारा जमालि का अग्रकेशकर्त्तन—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे जमालि के पिता द्वारा नाई को बुला कर जमालि के निष्क्रमणयोग्य अग्रकेश काटने का आदेश देने पर वह बहुत प्रसन्न हुआ और विनयपूर्वक आदेश शिरोधार्य करके नहा-धोकर शुद्ध वस्त्र मुह पर बाध कर यत्नपूर्वक उसने जमालि कुमार के अग्रकेश काटे ।[1]

कठिन शब्दो का विशेषार्थ—सदिसतु—आदेश दीजिए, बताइए । **परेण जत्तेण**—अत्यन्त यत्नपूर्वक । **णिक्खमणपाउग्गे अग्गकेसे**—दीक्षित होने वाले व्यक्ति के आगे के केश चार अगुल छोड कर काटे जाते थे, ताकि गुरु अपने हाथ से उनका लुञ्चन कर सके, इसे निष्क्रमणयोग्य केशकर्तन कहा जाता था । **कप्पेहि**—काटो । **अट्ठपडलाए पोत्तीए**—आठ पटल (परत या तह) वाली पोतिका (मुखवस्त्रिका) से ।[2]

५६ तए ण सा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स माया हसलक्खणेण पडसाडएण अग्गकेसे पडिच्छइ, अग्गकेसे पडिच्छित्ता सुरभिणा गधोदएण पक्खालेइ, सुरभिणा गधोदएण पक्खालेत्ता अग्गेहिं वरेहिं गधेहिं मल्लेहिं अच्चेति, अच्चित्ता सुद्धवत्थेणं बधेइ, सुद्धवत्थेण बधित्ता रयणकरडगसि पक्खिवति, पक्खिवित्ता हार-वारिधार-सिंदुवार-छिन्नमुत्तावलिप्पगासाइं सुयवियोगदूसहाइ असूइ विणिम्मुयमाणी विणिम्मुयमाणी एव वयासी—एस ण अम्ह जमालिस्स खत्तियकुमारस्स बहूसु तिहीसु य पव्वणीसु य उस्सवेसु य जण्णेसु य छणेसु य अपच्छिमे दरिसणे भविस्सति इति कट्टु ओसीसगमूले ठवेति ।

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा १ (मू पा टिप्पण), पृ ४६६

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४७६ (ख) भगवती भा ४ (प घेवरचदजी), पृ ७३७

[५६] इसके पश्चात् क्षत्रियकुमार जमालि की माता ने शुक्लवर्ण के या हस-चिह्न वाले वस्त्र की चादर (शाटक) मे उन अग्रकेशो को ग्रहण किया। फिर उन्हे सुगन्धित गन्धोदक से धोया, फिर प्रधान एव श्रेष्ठ गन्ध (इत्र) एव माला द्वारा उनका अर्चन किया और शुद्ध वस्त्र मे उन्हे बाध कर रत्नकरण्डक (रत्नो के पिटारे) मे रखा। इसके बाद जमालिकुमार की माता हार, जलधारा, सिन्दुवार के पुष्पो एव टूटी हुई मोतियो की माला के समान पुत्र के दु सह (असह्य) वियोग के कारण आसू बहाती हुई इस प्रकार कहने लगी—"ये (जमालिकुमार के अग्रकेश) हमारे लिए बहुत-सी तिथियो, पर्वो, उत्सवो और नागपूजादिरूप यज्ञो तथा (इन्द्र-) महोत्सवादिरूप क्षणो मे क्षत्रियकुमार जमालि के अन्तिम दर्शनरूप होगे"—ऐसा विचार कर उन्हे अपने तकिये के नीचे रख दिया।

विवेचन—माता ने जमालिकुमार के अग्रकेश सुरक्षित रखे—प्रस्तुत सूत्र मे जमालिकुमार के उन अग्रकेशो को अर्चित करके रत्नपिटक मे सुरक्षित रखने का वर्णन है। साथ ही यह बताया गया है कि उन्हे सुरक्षित रखने का कारण माता की ममता है कि भविष्य मे जमालि के ये केश ही उसके दर्शन या स्मृति के प्रतीक होगे।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—पडिच्छइ—ग्रहण किये। **हसलक्खणेण पडसाडएण**—हस के समान श्वेत अथवा हसचिह्न वाले पट-शाटक—वस्त्र की चादर अथवा पल्ले मे। **पक्खिवति**—रखे। **अग्गेहि**—प्रधान (अग्र)। **वरेहि**—श्रेष्ठ। **सिंदुवार**—सिन्दुवार (निर्गुण्डी) के सफेद फूल। **छिन्नमुत्तावलिप्पगासाइ**—टूटी हुई मुक्तावली (मोतियो की माला) के समान। **तिहीसु**—तिथियो—मदन-त्रयोदशी आदि तिथियो मे, **पव्वणीसु**—कार्तिक पूर्णिमा आदि पर्वो मे। **उस्सवेसु**—प्रियजनो के सगमादि समारोहो मे। **जण्णेसु**—नागपूजा आदि यज्ञो मे। **छणेसु**—इन्द्रमहोत्सवादिरूप क्षणो—अवसरो पर। **अपच्छिमे दरिसणे**—अन्तिम दर्शन। **ओसीसगमूले**—तकिये के नीचे। **ठवेति**—रख देती है।[2]

५७ तए ण तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स अम्मा-पियरो दुच्च पि उत्तरावक्कमण सीहासण रयावेंति, दुच्च पि उत्तरावक्कमण सीहासण रयावित्ता जमालिं खत्तियकुमार सेयापीतएहि कलसेहि ण्हाणेंति, से० २[3] पम्हसुकुमालाए सुरभीए गधकासाइए गायाइ लूहेति, सुरभीए गधकासाइए गायाइं लूहेत्ता सरसेण गोसीसचदणेण गायाइ अणुलिपति, गायाइ अणुलिपित्ता नासानिस्सासवाय-वोज्झ चक्खुहर वण्णफरिसजुत्त हयलालापेलवातिरेग धवल कणगखचियतकम्म महरिह हसलक्खण पडसाडग परिहिति, परिहित्ता हार पिणद्धेंति, २ अद्धहार पिणद्धेंति, अ० पिणद्धित्ता एव जहा सूरियाभस्स[4] अलकारो तहेव जाव चित्त रयणसकडुक्कड मउड पिणद्धति, किं बहुणा ? गथिम-वेढिम-पूरिम-सघातिमेण चउव्विहेण मल्लेण कप्परुक्खग पिव अलकियविभूसिय करेंति।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा १, पृ ४६७

२ [क] भगवती अ वृत्ति, पत्र ४७७ (ख) भगवती भा ४ (प घेवरचन्दजी) पृ १३३७

३ पूरा पाठ—"सेयापीतएहिं कलसेहि ण्हाणेत्ता।"

४ राजप्रश्नीय मे सूर्याभदेव के अलकार का वर्णन—"एगावलिं पिणद्धति, एव मुत्तावलिं कणगावलिं रयणावलिं अगयाइ केऊराइ कडगाइ तुडियाइ कडिसुत्तय दसमुद्दयाणतय वच्छसुत्त मुरविं कठमुरविं पालब कुडलाइ चूडामणिं।" —भगवती अ वृ ४७७, पत्र, रायप्पसेणइज्ज (गुर्जर) पृ २५१-२५२ कण्डिका १३७

[५७] इसके पश्चात् क्षत्रियकुमार जमालि के माता-पिता ने दूसरी बार भी उत्तरदिशाभिमुख सिहासन रखवाया और क्षत्रियकुमार जमालि को श्वेत और पीत (चादी और सोने के) कलशो से स्नान करवाया। फिर रुएँदार सुकोमल गन्धकाषायित सुगन्धियुक्त वस्त्र (तौलिये या अगोछे) से उसके अग (गात्र) पोछे। उसके बाद सरस गोशीर्षचन्दन का गात्रो पर लेपन किया। तदनन्तर नाक के नि श्वास की वायु से उड जाए, ऐसा बारीक, नेत्रो को आह्लादक (या आकर्षक) लगने वाला, सुन्दर वर्ण और कोमल स्पर्श से युक्त, घोडे के मुख की लार से भी अधिक कोमल, श्वेत और सोने के तारो से जडा हुआ, महामूल्यवान् एव हस के चिह्न से युक्त पटशाटक (रेशमी वस्त्र) पहिनाया। फिर हार (अठारह लडी वाला हार) एव अर्द्धहार (नवसरा हार) पहिनाया। जैसे राजप्रश्नीयसूत्र मे सूर्याभदेव के अलकारो का वर्णन है, उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए, यावत् विचित्र रत्नो से जटित मुकुट पहनाया। अधिक क्या कहे ! ग्रन्थिम (गूथी हुई), वेष्टिम (लपेटी हुई), पूरिम—पूरी हुई—भरी हुई और सघातिम (परस्पर सघात की हुई) रूप मे तैयार की हुई चारो प्रकार की मालाओ से कल्पवृक्ष के समान उस जमालिकुमार को अलकृत एव विभूषित किया गया।

विवेचन—वस्त्राभूषणो से सुसज्जित जमालिकुमार—प्रस्तुत ५७ वे सूत्र मे वर्णन है-दीक्षाभिलाषी जमालिकुमार को उसके माता-पिता द्वारा स्नानादि करवा कर बहुमूल्य वस्त्रो और सोने चादी आदि के आभूषणो से सुसज्जित किया गया।[1]

कठिन शब्दो का विशेषार्थ—उत्तरावक्कमण—उत्तराभिमुख—उत्तरदिशा की ओर। **रयावेंति**—रचवाया या रखवाया। **सेयापीतएहि**—श्वेत (चादी) और पीत (सोने) के। **पम्हलसुकुमालाए**—रोएदार मुलायम वस्त्र (तौलिये) से। **गायाइ लूहेति**—शरीर पोछा। **अणुलिंपति**—लेपन किया। **नासा-निस्सास-वायवोज्झ**—नासिका के श्वास से उड जाए ऐसा बारीक। **चक्खुहर**—नेत्रो को आनन्द देने वाला, आकर्षक। **हयलालापेलवातिरेग**—घोडे के मुह की लार से भी अधिक नरम। **कणगखचितंतकम्म**—जिसके किनारो पर सोने के तार जडे हुए थे। **पिणद्धेंति**=धारण कराया। **रयणसकडुक्कड**—रत्नो से जटित। **पूरिम**—पिरोई हुई। **सघातिम**—परस्पर जोडे हुए। **मल्लेण**=माला से।[2]

५८ तए ण से जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एव वयासि—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अणेगखभसयसन्निविट्ठ लीलट्ठियसालभजियाग जहा रायप्पसेणइज्जे[3] विमाणवण्णओ जाव मणिरयणघटियाजालपरिखित्त पुरिससहस्सवाहणीय सीय उवट्ठवेह, उवट्ठवेत्ता मम एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ टिप्पण) भा १, पृ ४६७

२ भगवती भा ४ (प घेवरचन्द), पृ १७४०

३ रायप्रश्नीय मे वर्णित विमानवर्णन यह है—"**ईहामिय-उसम-तुरग-नर-मगर-व चमर-कुजर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्त, खभुग्गयवइरवेइयापरिगताभिराम पिव, अच्चीसहस्समालिणीय, रूवगसहस्सकलिय, भिसमाण ...... सस्सिरीयरूव घटावलिचलियमहुरमणहरस्सर, सुह कन्त दरिसणि- जालपरिक्खित्त ।**"

[५८] तदनन्तर क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही अनेक सैकडो खभो मे युक्त, लीलापूर्वक खडी हुई पुतलियो वाली, इत्यादि, राजप्रश्नीयसूत्र मे वर्णित विमान के समान यावत्-मणि-रत्नो की घटियो के समूह से चारो ओर से घिरी हुई, हजार पुरुषो द्वारा उठाई जाने योग्य शिविका (पालकी) (तैयार करके) उपस्थित करो और मेरी इस आज्ञा का पालन करके मुझे पुन निवेदन करो।

५९. तए ण ते कोडु बियपुरिसा जाव पच्चप्पिणति ।

[५९] इस आदेश को सुन कर कौटुम्बिक पुरुषो ने उसी प्रकार की शिविका तैयार करके यावत् (उन्हे) निवेदन किया।

६०. तए ण से जमाली खत्तियकुमारे केसालकारेण वत्थालकारेण मल्लालकारेण आभरणालकारेण चउव्विहेण अलकारेण अलकारिए समाणे पडिपुण्णालकारे सीहासणाओ अब्भुट्ठेति, सीहासणाओ अब्भुट्ठेत्ता सीय अणुप्पदाहिणीकरेमाणे सीय दुरुहइ, दुरूहित्ता सीहासणवरसि पुरत्थाभिमुहे सन्निसण्णे ।

[६०] तत्पश्चात् क्षत्रियकुमार जमालि केशालकार, वस्त्रालकार, माल्यालकार और आभरणालकार इन चार प्रकार के अलकारो से अलकृत होकर तथा प्रतिपूर्ण अलकारो से सुसज्जित हो कर सिहासन से उठा। वह दक्षिण की ओर से शिविका पर चढा और श्रेष्ठ सिहासन पर पूर्व की ओर मुह करके आसीन हुआ।

६१ तए ण तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स माया ण्हाया कयबलिकम्मा जाव सरीरा हंसलक्खणं पडसाडग गहाय सीय अणुप्पदाहिणीकरेमाणी सीय दुरूहइ, सीय दुरूहित्ता जमालिस्स खत्तियकुमारस्स दाहिणे पासे भद्दासणवरसि सन्निसण्णा ।

[६१] फिर क्षत्रियकुमार जमालि की माता स्नानादि करके यावत् शरीर को अलकृत करके हस के चिह्न वाला पटशाटक लेकर दक्षिण की ओर से शिविका पर चढी और जमालिकुमार की दाहिनी ओर श्रेष्ठ भद्रासन पर बैठी।

६२ तए ण तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स अम्मधाई ण्हाया जाव सरीरा रयहरण च पडिग्गह च गहाय सीय अणुप्पदाहिणीकरेमाणी सीय दुरूहइ, सीय दुरुहित्ता जमालिस्स खत्तियकुमारस्स वामे पासे भद्दासणवरसि सन्निसण्णा ।

[६२] तदनन्तर क्षत्रियकुमार जमालि की धायमाता ने स्नानादि किया, यावत् शरीर को अलकृत करके रजोहरण और पात्र ले कर दाहिनी ओर से (अथवा शिविका की प्रदक्षिणा करती हुई) शिविका पर चढी और क्षत्रियकुमार जमालि के बाई ओर श्रेष्ठ भद्रासन पर बैठी।

६३. तए ण तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिट्ठओ एगा वरतरुणी सिगारागारचारुवेसा सगय-गय जाव[1] रूवजोव्वणविलासकलिया सु दरथण०[2] हिम-रयत-कुमुद-कु देंदुप्पगास सकोरेंटमल्लदामं

---

१ 'जाव' पद-सूचित पाठ—"सगय-गय-हसिय-भणिय-चिट्ठिय-विलास-सलावुल्लावनिउणजुत्तो-वयारकुसला ।"

२ "सु दरथण इत्यनेन"—"सु दरथण-जहण-वयण-कर-चरण-णयण-लायण्ण-रूव-जोव्वणगुणोववेय त्ति ।" —अ वृ

धवल आयवत्त गहाय सलीलं धारेमाणी धारेमाणी चिट्ठति ।

[६३] फिर क्षत्रियकुमार जमालि के पृष्ठभाग मे (पीछे) शृ गार के घर के समान, सुन्दर वेष वाली, सुन्दर गतिवाली, यावत् रूप और यौवन के विलास से युक्त तथा सुन्दर स्तन, जघन (जाघ), वदन (मुख), कर चरण, लावण्य, रूप एव यौवन के गुणो से युक्त एक उत्तम तरुणी हिम (बर्फ), रजत (चादी), कुमुद, कुन्दपुष्प एव चन्द्रमा के समान, कोरण्टक पुष्प की माला से युक्त, श्वेत छत्र (आतपत्र) हाथ मे लेकर लीला-पूर्वक धारण करती हुई खडी हुई ।

६४ तए ण तस्स जमालिस्स उभयोपासिं दुवे वरतरुणीओ सिगारागारचारु जाव कलियाओ नाणामणि-कणग-रयण-विमलमहरिहतवणिज्जुज्जलविचित्तदडाओ चिल्लियाओ सखक-कु देंदु-दगरय-अमयमहियफेणपु जसन्निकासाओ चामराओ गहाय सलील वीयमाणीओ वीयमाणीओ चिट्ठति ।

[६४] तदनन्तर जमालिकुमार के दोनो (दाहिनी तथा बाई) ओर शृ गार के घर के समान, सुन्दर वेष वाली यावत् रूप-यौवन के विलास से युक्त दो उत्तम तरुणिया हाथ मे चामर लिए हुए लीलासहित ढुलाती हुई खडी हो गई। वे चामर अनेक प्रकार की मणियो, कनक, रत्नो तथा विशुद्ध एव महामूल्यवान् तपनीय (लाल स्वर्ण) से निर्मित उज्ज्वल एव विचित्र दण्ड वाले तथा चमचमाते हुए (देदीप्यमान) थे और शख, अकरत्न, कुन्द-(मोगरा के) पुष्प, चन्द्र, जलबिन्दु, मथे हुए अमृत के फेन के पु ज के समान श्वेत थे ।

६५ तए ण तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स उत्तरपुरत्थिमेण एगा वरतरुणी सिगारागार जाव कलिया सेय रयतामय विमलसलिलपुण्ण मत्तगयमहामुहाकितिसमाण भिंगार गहाय चिट्ठइ ।

[६५] और फिर क्षत्रियकुमार जमालि के उत्तरपूर्व (ईशानकोण) मे शृ गार के गृह के समान, उत्तम वेष वाली यावत् रूप, यौवन और विलास से युक्त एक श्रेष्ठ तरुणी पवित्र (शुद्ध) जल से परिपूर्ण, उन्मत्त हाथी के महामुख के आकार के समान श्वेत रजतनिर्मित कलश (भृ गार) (हाथ मे) लेकर खडी हो गई ।

६६. तए ण तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स दाहिणपुरत्थिमेण एगा वरतरुणी सिगारागार जाव कलिया चित्त कणगदड तालयड गहाय चिट्ठति ।

[६६] उसके बाद क्षत्रियकुमार जमालि के दक्षिणपूर्व (आग्नेय कोण) मे शृ गार गृह के तुल्य यावत् रूप यौवन और विलास से युक्त एक श्रेष्ठ युवती विचित्र स्वर्णमय दण्ड वाले एक ताडपत्र के पखे को लेकर खडी हो गई ।

विवेचन—जमालिकुमार परिजनो आदि सहित शिविकारूढ हुआ—प्रस्तुत सात सूत्रो (६० से ६६ सू. तक) मे जमालिकुमार तथा उसकी माता, धायमाता तथा अन्य तरुणियो के शिविका पर चढ कर यथास्थान स्थित हो जाने का वर्णन है ।[1]

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टि) भा १, पृ ४६८-४६९ ।

कठिन शब्दो का विशेषार्थ—सीय अणुप्पदाहिणीकरेमाणी : दो अर्थ—(१) शिविका की प्रदक्षिणा करते हुए, (२) दक्षिण की ओर से शिविका पर चढी। **पुरत्थाभिमुहे**—पूर्व की ओर मुख करके। **सण्णिसण्णे**—बैठा। **भद्दासणवरसि**—उत्तम भद्रासन पर। **'केसालकारेण'** इत्यादि का **भावार्थ**—केश, वस्त्र, माला और आभूषणो को यथास्थान साजसज्जा से युक्त किया। **पडिग्गह**—पात्र। **वामे पासे**—बाए पार्श्व मे। **पिट्ठओ**—पृष्ठभाग मे—पीठ के पीछे। **सिगारागार**—शृ गार का घर, अथवा शृ गारप्रधान आकृति। **विलासकलिया**—विलास—नेत्रजनितविकार से युक्त। **कणग**—पीला सोना। **तवणिज्ज**—लाल सोना। **महरिह**—महामूल्य। **सन्निकासाओ**—समान। **पगास**—समान। **आयवत्त**—छत्र। **सलील**—लीला सहित। **धारेमाणी**—धारण करती हुई। **वीय-माणीओ**=ढुलाती हुई। **सगय-गय**=सगत—व्यवस्थित गति (चाल) इत्यादि। **विमलसलिलपुण्ण**—जल से पूर्ण। **मत्तगय-महामुहाकितिसमाण**—उन्मत्त गज के मुख की स्वच्छ आकृति के समान। **भिगार**—कलश या झारी। **उत्तरपुरत्थिमेण**—उत्तर-पूर्व दिशा मे। **दाहिणपुरत्थिमेण**—दक्षिणपूर्व दिशा (आग्नेयकोण) मे। **चित्त कणगदड**—विचित्र स्वर्णमय दण्ड (हत्थे) वाले। **तालयट**—ताडपत्र के पखे को।[1]

६७. तए ण तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, कोडु बियपुरिसे सद्दावेत्ता एव वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सरिसय सरित्तय सरिव्वयं सरिसलावण्ण-रूव-जोव्वणगुणोववेय एगाभरणवसणगहियनिज्जोय कोडु बियवरतरुणसहस्स सद्दावेह।

[६७] इसके पश्चात् क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और उन्हे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही एक सरीखे, समान त्वचा वाले, समान वय वाले, समान लावण्य, रूप और यौवन-गुणो से युक्त, एक सरीखे आभूषण, वस्त्र और परिकर धारण किये हुए एक हजार श्रेष्ठ कौटुम्बिक तरुणो को बुलाओ।'

६८. तए ण ते कोडु बियपुरिसा जाव पडिसुणेत्ता खिप्पामेव सरिसयं सरित्तयं जाव सद्दावेंति।

[६८] तब वे कौटुम्बिक पुरुष स्वामी के आदेश को यावत् स्वीकार करके शीघ्र ही एक सरीखे, समान त्वचा वाले यावत् एक हजार श्रेष्ठ कौटुम्बिक तरुणो को बुला लाए।

६९. तए ण ते कोडु बियपुरिस(? तरुणा) जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिउणो कोडु बिय-पुरिसेहि सद्दाविया समाणा हट्ठतुट्ठ० ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमगलपायच्छित्ता एगाभरण-वसणगहियनिज्जोया जेणेव जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता करयल जाव वद्धावेत्ता एव वयासी—सदिसतु ण देवाणुप्पिया ! ज अम्हेहि करणिज्ज।

---

१ (क) भगवती भा ४ (प घेवरचन्दजी), पृ १७४०-१७४२
(ख) भग अ वृ, पत्र ४७८

[६९] जमालि क्षत्रियकुमार के पिता के (आदेश से) कौटुम्बिक पुरुषो द्वारा बुलाये हुए वे एक हजार तरुण सेवक हर्षित और सन्तुष्ट हो कर, स्नानादि से निवृत्त हो कर बलिकर्म, कौतुक, मगल एव प्रायश्चित्त करके एक सरीखे आभूषण और वस्त्र तथा वेष धारण करके जहाँ जमालि क्षत्रियकुमार के पिता थे, वहाँ आए और हाथ जोड कर यावत् उन्हे जय-विजय शब्दो से बधा कर इस प्रकार बोले—हे देवानुप्रिय ! हमे जो कार्य करना है, उसका आदेश दोजिए।

७०. तए ण से जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया त कोडु बियवरतरुणसहस्स एव वदासी—तुब्भे ण देवाणुप्पिया ! ण्हाया कयबलिकम्मा जाव गहियनिज्जोगा जमालिस्स खत्तियकमारस्स सीय परिवहह।

[७०] इस पर क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने उन एक हजार तरुण सेवको को इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! तुम स्नानादि करके यावत् एक सरीखे वेष मे सुसज्ज होकर जमालिकुमार की शिविका को उठाओ।

७१. तए ण ते कोडु बियपुरिसा (? तरुणा) जमालिस्स खत्तियकुमारस्स जाव पडिसुणेत्ता ण्हाया जाव गहियनिज्जोगा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स सीय परिवहति।

[७१] तब वे कौटुम्बिक तरुण क्षत्रियकुमार जमालि के पिता का आदेश शिरोधार्य करके स्नानादि करके यावत् एक सरीखी पोशाक धारण किये हुए (उन तरुण सेवको ने) क्षत्रियकुमार जमालि की शिविका उठाई।

विवेचन—कौटुम्बिक तरुणो को शिविका उठाने का आदेश—प्रस्तुत ५ सूत्रो (६७ से ७१ तक) मे जमालिकुमार के पिता द्वारा एक हजार तरुण सेवको को बुलाकर शिविका उठाने का आदेश देने और उनके द्वारा उसका पालन करने का वर्णन है।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—एगाभरण-वसण-गहिय-निज्जोया—एक-से आभरणो और वस्त्रो का (निर्योग) परिकर धारण किये हुए। **अट्ठट्ठमगलगा**—आठ-आठ मगल (मगलमय वस्तुएँ)। **गगणतलमणुलिहती**—आकाशतल को स्पर्श करने वाली।[2]

७२ तए ण तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणिं सीय दुरूढस्स समाणस्स तप्पढमयाए इमे अट्ठट्ठमगलगा पुरओ अहाणुपुव्वीए सपट्ठिया, तं०—सोत्थिय सिरिवच्छ जाव दप्पणा[3]। तदणतर च णं पुण्णकलसभिंगार जहा उववाइए[4] जाव गगणतलमणुलिहती पुरओ अहाणुपुव्वीए सपट्ठिया। एव जहा[5] उववाइए तहेव भाणियव्व जाव आलोय च करेमाणा 'जय जय' सद्द च

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, भा १ (मूलपाठ-टिप्पण), पृ ४६९-४७०

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४७९

३ 'जाव' पद सूचित पाठ—"नदियावत्त-वद्धमाणग-भद्दासण-कलस-मच्छ।" अ वृ

४ औपपातिक सूत्र मे पाठ इस प्रकार है—"दिव्वा य छत्तपडागा सचामरादसरइयआलोयदरिसणिज्जा वाउद्धुयविजयवेजयती य ऊसिया गगणतलमणुलिहती।"

—औपपातिकसूत्र, कुणिकनृपतिनिर्गमनवर्णन पृ, ६९ प्रथमपार्श्व सू ३१।

५ औपपातिक सूत्र मे वर्णित पाठ इस प्रकार है—"तयाणतर च णं वेरुलियभिसतविमलदड, पलबकोरटमल्लदामोवसोहिय चदमडलनिभ समूसिय विमलमायवत्त पवर सीहासण च मणिरयणपायपीढ सपाउयाजुगसमाउत्त बहुकिंकरकम्मगरपुरिसपायत्तपरिक्खित्त पुरओ अहाणुपुव्वीए सपट्ठिय। तयाणतर च ण बहवे लट्ठिग्गाहा

पउजमाणा पुरओ अहाणुपुव्वीए सपट्ठिया। तदणतर च ण बहवे उग्गा भोगा जहा[1] उववाइए जाव महापुरिसवग्गुरा परिक्खित्ता जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पुरओ य मग्गओ य पासओ य अहाणुपुव्वीए सपट्ठिया।

[७२] हजार पुरुषो द्वारा उठाई जाने योग्य उस शिविका पर जब जमालि क्षत्रियकुमार आदि सब आरूढ हो गए, तब उस शिविका के आगे-आगे सर्वप्रथम ये आठ मगल अनुक्रम से चले, यथा—(१) स्वस्तिक, (२) श्रीवत्स, (३) नन्द्यावर्त्त, (४) वर्धमानक, (५) भद्रासन, (६) कलश, (७) मत्स्य और (८) दर्पण। इन आठ मगलो के अनन्तर पूर्ण कलश चला, इत्यादि, औपपातिकसूत्र के कहे अनुसार यावत् गगनतलचुम्बिनी वैजयन्ती (ध्वजा) भी आगे यथानुक्रम से रवाना हुई। इस प्रकार जैसे औपपातिक सूत्र मे कहा है, तदनुसार यहाँ भी कहना चाहिए, यावत् आलोक करते हुए और जय-जयकार शब्द का उच्चारण करते हुए अनुक्रम से आगे चले। इसके पश्चात् बहुत से उग्रकुल के, भोगकुल के क्षत्रिय, इत्यादि औपपातिक सूत्र मे कहे अनुसार यावत् महापुरुषो के वर्ग से परिवृता होकर क्षत्रियकुमार जमालि के आगे, पीछे और आसपास चलने लगे।

७३. तए ण से जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया ण्हाए कतबलिकम्मे जाव विभूसिए हत्थिखधवरगए सकोरिंटमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं उद्धुव्वमाणीहिं हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरगिणीए सेणाए सद्धि सपरिवुडे महया भड-चडगर जाव परिक्खित्ते जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिट्ठओ पिट्ठओ अणुगच्छइ।

कुतग्गाहा चामरग्गाहा पासग्गाहा चावग्गाहा पोत्थयग्गाहा फलगग्गाहा पीढयग्गाहा वीणग्गाहा कूवयग्गाहा हडप्पग्गाहा पुरओ जहाणुपुव्वीए सपट्ठिया। तयाणतर च बहवे दडिणो मुडिणो सिहडिणो जडिणो पिच्छिणो हासकरा डमरकरा दवकरा चाडुकरा, कदप्पिया कोक्कुइआ वायता य गायता य हासता य भासिता य सासिता य सावेंता य रक्खता य ।" —औपपातिक सूत्र ३१-३२, प ६४, ७४।

एतच्च वाचनान्तरे प्राय साक्षाद् दृश्यते एव। तथेदमपर तत्रैवाधिकम्—तयाणतर च ण जच्चाण वरमल्लिहाणाण चचुच्चियललियपुलयविक्कमविलासियगईण हरिमेलामउलमल्लियच्छाण थासगअमिलाणचमरगड-परिमडियकडीण अट्ठसय वरतुरगाण पुरओ अहाणुपुव्वीए सपट्ठिय। तयाणतर च ण ईसिंदताण ईसिंमत्ताण ईसिं विसालधवलदताण कचणकोसीपविट्ठदतोवसोहियाण अट्ठसय गयकलहाण पुरओ अहाणुपुव्वीए सपट्ठिय। तयाणतर च ण सच्छत्ताण सज्झयाण सघटाण सपडागाण सतोरणवराण सखिखिणीहेमजालपेरतपरिक्खित्ताण सनदिघोसाण हेमवयचित्ततिणिसकणगनिज्जुत्तदारुगाण सुसविद्धचक्कमडलधुराण कालायससुकयनेमिजतकम्माण आइण्णवरतुरगसुसपउत्ताण कुसलनरच्छेयसारहिसुसपग्गहियाण सरसतबत्तीसतोणपरिमडियाण सकंकडवडेंसगाण सचावसरपहरणावरणभरियजुद्धसज्जाण अट्ठसय रहाण पुरओ अहाणुपुव्वीए सपट्ठिय। तयाणतर च असि-सत्ति-कोत-तोमर-सूल-लउड-भिंडिमाल-धणु-बाणसज्ज पायत्ताणीय पुरओ अहाणुपुव्वीए सपट्ठिय। तयाणतर च ण बहवे राईसर-तलवर-कोडुबिय-माडबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभिइओ अप्पेगइया हयगया अप्पेगइया गयगया अप्पेगइया रहगया पुरओ अहाणुपुव्वीए सपट्ठिया।

१ औपपातिक सूत्र मे यह पाठ इस प्रकार है—"राइण्णा खत्तिया इक्खागा नाया कोरव्वा।"

—औपपातिक सू २७ प ५८-५९

[७३] तदनन्तर क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने स्नान आदि किया। यावत् वे विभूषित होकर उत्तम हाथी के कधे पर चढे और कोरण्टक पुष्प की माला से युक्त छत्र धारण किये हुए, श्वेत चामरो से बिंजाते हुए, घोडे, हाथी, रथ और श्रेष्ठ योद्धाओ से युक्त चतुरगिणी सेना से परिवृत होकर तथा महासुभटो के समुदाय से घिरे हुए यावत् क्षत्रियकुमार के पीछे-पीछे चल रहे थे।

७४. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पुरओ मह आसा आसव(वा)रा, उभओ पासिं णागा णागवरा, पिट्ठओ रहा रहसगेल्ली।

[७४] साथ ही उस जमालि क्षत्रियकुमार के आगे बडे-बडे और श्रेष्ठ घुडसवार तथा उसके दोनो बगल (पार्श्व) मे उत्तम हाथी एव पीछे रथ और रथसमूह चल रहे थे।

विवेचन—शिविका के आगे-पीछे एव आसपास चलने वाले मगलादि एव जनवर्ग—प्रस्तुत सूत्रो मे यह वर्णन है कि सहस्रपुरुषवाहिनी शिविका पर सबके आरूढ होने पर उसके आगे-आगे अष्ट मगल, छत्र, पताका, चामर, विजयवैजयन्ती आदि तथा क्रमश पीठ, सिंहासन तथा अनेक किंकर, कर्मकर, एव यष्टि, भाला, चामर, पुस्तक, पीठ, फलक, वीणा, कुतप (कुप्पी) आदि लेकर चलने वाले एव उनके पीछे दण्डी, मुण्डी, शिखण्डी, जटी, पिच्छी, हास्यादि करने वाले लोग गाते-बजाते, हसते-हसाते चले जा रहे थे। निष्कर्ष यह कि जमालिकुमार की शिविका के साथ-साथ अपार जनसमूह चल रहा था।

उसके पीछे जमालिकुमार के पिता चतुरगिणी सेना एव भटादिवर्ग के साथ चल रहे थे। उनके पीछे श्रेष्ठ घोडे, घुडसवार, उत्तम हाथी, रथ तथा रथसमुदाय चल रहे थे।[1]

७५. तए ण से जमाली खत्तियकुमारे अब्भुग्गयभिंगारे पग्गहियतालियटे ऊसवियसेतछत्ते पवीइतसे मरबालवीयणीए सव्विड्ढीए जाव[2] णादितरवेण खत्तियकुडग्गामं नगर मज्झमज्झेण जेणेव माहणकुडग्गामे नयरे जेणेव बहुसालए चेइए जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

[७५] इस प्रकार (दीक्षाभिलाषी) क्षत्रियकुमार जमालि सर्व ऋद्धि (ठाठबाठ) सहित यावत् बाजे-गाजे के साथ (वाद्यो के निनाद के साथ) चलने लगा। उसके आगे कलश और ताडपत्र का पखा लिये हुए पुरुष चल रहे थे। उसके सिर पर श्वेत छत्र धारण किया हुआ था। उसके दोनो ओर श्वेत चामर और छोटे पखे बिंजाए जा रहे थे। [इनके पीछे बहुत-से लकडी, भाला, पुस्तक यावत् वीणा आदि लिये हुए लोग चल रहे थे। उनके पीछे एक सौ आठ हाथी आदि, फिर लाठी, खड्ग, भाला आदि, लिये हुए पदाति (पैदल चलने वाले)-पुरुष तथा उनके पीछे बहुत-से युवराज, धनाढ्य,

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा १ (मूलपाठ-टिप्पण), पृ ४७१-४७२

२ 'जाव' पद सूचित पाठ—"तयाणतर च ण बहवे लट्ठिग्गाहा कुतग्गाहा जाव पुत्थयग्गाहा जाव वीणग्गाहा। तयाणतर च ण अट्ठसय गयाण अट्ठसय तुरगाण अट्ठसय रहाण। तयाणतर च ण लउड-असि-कोतहत्थाण बहूण पायत्ताणीण पुरओ सपट्ठिय। तयाणतर च ण बहवे राईसर-तलवर जाव सत्थवाहपभिइओ पुरओ सपट्ठिया जाव णादितरवेण।
—औपपातिक सू ३२, पत्र ७३

यावत् सार्थवाह प्रभृति तथा बहुत-से लोग यावत् गाते-बजाते, हसते-खेलते चल रहे थे।] (इस प्रकार) क्षत्रियकुमार जमालि क्षत्रियकुण्डग्राम नगर के मध्य मे से होकर जाता हुआ, ब्राह्मणकुण्डग्राम के बाहर जहाँ बहुशालक नामक उद्यान मे श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, उस ओर गमन करने लगा।

विवेचन—जमालिकुमार का सर्वऋद्धि सहित भगवान् की ओर प्रस्थान—प्रस्तुत सू ७५ मे अत्यन्त ठाठबाठ, राजचिह्नो एव सभी प्रकार के जनवर्ग के साथ भगवान् महावीर की सेवा मे ब्राह्मणकुण्ड की ओर विरक्त जमालिकुमार के प्रस्थान का वर्णन है।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—अब्भुग्गयभिगारे—आगे कलश सिर पर ऊँचा उठाए हुए। **पग्गहियतालियंटे**—ताडपत्र के पखे लिये हुए। **ऊसवियसेतछत्ते**—ऊँचा श्वेत छत्र धारण किया हुआ। **पवीइत-सेत-चामर-बालवीयणीए**—श्वेत चामर और छोटे पखे दोनो ओर विजाते हुए। **णादित-रवेण**—वाद्यो के शब्द सहित। **पहारेत्थ गमणाए**—गमन करने लगा।[2]

७६. तए ण तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स खत्तियकुंडग्गाम नगर मज्झमज्झेण निग्गच्छमाणस्स सिंघाडग-तिग-चउक्क जाव[3] पहेसु बहवे अत्थत्थिया जहा[4] उववाइए जाव अभिनदता य अभित्थुणता य एव वयासी—जय जय णदा ! धम्मेण, जय जय णदा ! तवेण, जय जय णदा ! भद्द ते, अभग्गेहि णाण-दसण-चरित्तमुत्तमेहि अजियाइ जिणाहि इदियाइ, जिय च पालेहि समणधम्म, जियविग्घो वि य वसाहि त देव ! सिद्धिमज्झे, णिहणाहि य राग-दोसमल्ले तवेण धितिधणियबद्धकच्छे, मद्दाहि अट्ठकम्मसत्तू झाणेण उत्तमेण सुक्केण, अप्पमत्तो हराहि आराहणपडाग च धीर ! तिलोक्करगमज्झे, पावय वितिमिरमणुत्तर केवल च णाण, गच्छ य मोक्ख पर पद जिणवरोवदिट्ठेण सिद्धिमग्गेण अकुडिलेण, हता परीसहचमु, अभिभविय गामकटकोवसग्गा ण, धम्मे ते अविग्घमत्थु। त्ति कट्टु अभिनदति य अभिथुणति य।

[७६] जब क्षत्रियकुमार जमालि क्षत्रियकुण्डग्राम नगर के मध्य मे से होकर जा रहा था, तब शृ गाटक, त्रिक, चतुष्क यावत् राजमार्गो पर बहुत-से अर्थार्थी (धनार्थी), कामार्थी इत्यादि लोग, औपपातिक सूत्र मे कहे अनुसार इष्ट, कान्त, प्रिय आदि शब्दो से यावत् अभिनन्दन एव स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे—"हे नन्द (आनन्ददाता) ! धर्म द्वारा तुम्हारी जय हो ! हे नन्द ! तप के

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा १ (मूलपाठ-टिप्पण) पृ ४७२

२ भगवती भा ४ (प घेवरचन्दजी), पृ १७४६

३ 'जाव' पद सूचित पाठ—'चच्चर-चउम्मुह-महापह।'

४ औपपातिक सूत्र मे वर्णित पाठ यावत् अभिनदता, तक—"कामत्थिया भोगत्थिया लाभत्थिया इड्ढिसिया किट्टिसिया कारोडिया कारवाहिया सखिया चक्किया नगलिया मुहमगलिया वद्धमाणा पूसमाणवा ताहि इट्ठाहि कताहि पियाहि मणुण्णाहि मणामाहि ओरालाहि कल्लाणाहि सिवाहि धन्नाहि मगल्लाहि सस्सिरीयाहि हिययगमणिज्जाहि हिययपल्हायणिज्जाहि मिय-महुर-गभीरगाहियाहि अट्ठसइयाहि ताहि अपुणरुत्ताहि वग्गूहि अणवरय अभिनदता य।"

—औपपातिक सू ३२, पत्र ७३

द्वारा तुम्हारी जय हो ! हे नन्द ! तुम्हारा भद्र (कल्याण) हो ! हे देव ! अखण्ड उत्तम ज्ञान-दर्शन-चारित्र द्वारा (अब तक) अविजित इन्द्रियो को जीतो और विजित श्रमणधर्म का पालन करो। हे देव ! विघ्नो को जीत कर सिद्धि (मुक्ति) मे जाकर बसो ! तप से धैर्य रूपी कच्छ को अत्यन्त दृढता-पूर्वक बाध कर राग-द्वेष रूपी मल्लो को पछाडो ! उत्तम शुक्लध्यान के द्वारा अष्टकर्मशत्रुओ का मर्दन करो ! हे धीर ! अप्रमत्त होकर त्रैलोक्य के रगमच (विश्वमण्डप) मे आराधनारूपी पताका ग्रहण करो (अथवा फहरा दो) और अन्धकार रहित (विशुद्ध प्रकाशमय) अनुत्तर केवलज्ञान को प्राप्त करो ! तथा जिनवरोपदिष्ट सरल (अकुटिल) सिद्धिमार्ग पर चल कर परमपदरूप मोक्ष को प्राप्त करो ! परीषह-सेना को नष्ट करो तथा इन्द्रियग्राम के कण्टकरूप (प्रतिकूल) उपसर्गो पर विजय प्राप्त करो ! तुम्हारा धर्माचरण निर्विघ्न हो !" इस प्रकार से लोग अभिनन्दन एव स्तुति करने लगे।

विवेचन—विविध जनो द्वारा जमालिकुमार को आशीर्वाद, अभिनन्दन एव स्तुति—प्रस्तुत सू ७६ मे निरूपण है कि क्षत्रियकुण्ड से ब्राह्मणकुण्ड जाते हुए जमालिकुमार को मार्ग मे बहुत-से धनार्थी, कामार्थी, भोगार्थी, कापालिक, भाण्ड, मागध, भाट आदि ने विविध प्रकार से अपने उद्देश्य मे सफल होने का आशीर्वाद दिया, उसका अभिनन्दन एव स्तवन किया।[1]

विशेषार्थ—अजियाइ जिणाहि—नही जीती हुई (इन्द्रियो) को जीतो। **अभग्गेहि**—अखण्ड। **णिहणाहि**—नष्ट करो। **णदा धम्मेण** -धर्म से बढो। **णदा**—जगत् को आनन्द देने वाले। **धितिधणियबद्धकच्छे**—धैर्यरूपी कच्छे को दृढता से बाध कर। **मद्दाहि**—मर्दन करो। **हराहि** · **दो अर्थ**—(१) ग्रहण करो, (२) फहरा दो। **तिलोक्करगमज्झे**—त्रिलोकरूपी रगमडप मे। **पावय**—प्राप्त करो। **परिसहचमु**—परीषहरूपी सेना को। **अभिभविय गामकटकोवसग्गा**—इन्द्रिय-ग्रामो के कटकरूप प्रतिकूल उपसर्गो को हरा कर। **अविग्घमत्थु**—निर्विघ्न हो।[2]

७७. तए ण से जमाली खत्तियकुमारे नयणमालासहस्सेहिं पिच्छिज्जमाणे पिच्छिज्जमाणे एव जहा उववाइए[3] कूणिओ जाव णिग्गच्छति, निग्गच्छित्ता जेणेव माहणकुंडग्गामे नगरे जेणेव बहुसालए चेइए तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता छत्तादीए तित्थगरातिसए पासइ, पासित्ता पुरिससहस्स-वाहिणिं सीय ठवेइ, ठवित्ता पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ पच्चोरुहइ।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा १ (मू पा टि), पृ ४७२-४७३

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४८१-४८२

३ औपपातिकसूत्रगत पाठ—**वयणमालासहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे अभिथुव्वमाणे, हियमालासहस्सेहिं अभिनदिज्ज-माणे अभिनदिज्जमाणे , मणोरहमालासहस्सेहि विच्छि ` विच्छिप्पमाणे , कति-रूव-सोहग्गजोव्वण-गुणेहि पत्थिज्जमाणे पत्थिज्जमाणे , अगुलिमालासहस्सेहि दाइज्जमाणे दाइज्जमाणे, दाहिणहत्थेण बहूण नरनारिसहस्साण अजलिमालासहस्साइ पडिच्छमाणे पडिच्छमाणे, भवणभित्तिसहस्साइ समइच्छमाणे सम-इच्छमाणे, तती-तल-ताल-गीयवाइयरवेण महुरेण मणहरेण 'जय जय' सद्दुग्घोसमीसएण मजुमजुणा घोसेण अपडिबुज्झमाणे कदरगिरिविवरकुहर-गिरिवर-पासादुद्धघणभवण-देवकुल-सिघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-आरा-मुज्जाण-काणण-सभ-प्पवप्पदेसभागे-देसभागे समइच्छमाणे कदर-दरि-कुहर-विवर-गिरि-पायारट्टाल-चरिय-दार-गोउर-पासाय-दुवार-भवण-देवकुल-आरामुज्जाण-काणण-सभ-पएसे पडिसुय हस्ससकुले करेमाणे करेमाणे , हयहेसिय-हत्थिगुलुगुलाइअ-रहघणघणाइय-सद्दमीसएण महया कलकलरवेण य जणस्स सुमहुरेण पूरेंतो अबर,**

[७७] तब औपपातिकसूत्र मे वर्णित कूणिक के वर्णनानुसार क्षत्रियकुमार जमालि (दीक्षार्थी के रूप मे) हजारो (व्यक्तियो) की नयनावलियो द्वारा देखा जाता हुआ यावत् (क्षत्रियकुण्डग्राम नगर के बीचोबीच होकर) निकला। फिर ब्राह्मणकुण्डग्राम नगर के बाहर बहुशालक नामक उद्यान के निकट आया और ज्यो ही उसने तीर्थंकर भगवान् के छत्र आदि अतिशयो को देखा, त्यो ही हजार पुरुषो द्वारा उठाई जाने वाली उस शिविका को ठहराया और स्वय उस सहस्रपुरुषवाहिनी शिविका से नीचे उतरा।

७८ तए ण त जमालिं खत्तियकुमार अम्मा-पियरो पुरओ काउ जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता, समण भगव महावीर तिक्खुत्तो जाव नमसित्ता एव वदासी—एव खलु भते! जमाली खत्तियकुमारे अम्ह एगे पुत्ते इट्ठे कते जाव किमग पुण पासणयाए? से जहानामए उप्पले इ वा पउमे इ वा जाव[1] सहस्सपत्ते इ वा पके जाए जले सवुड्ढे णोवलिप्पति पकरएण णोवलिप्पइ जलरएण एवामेव जमाली वि खत्तियकुमारे कामेहिं जाए भोगेहिं सवुड्ढे णोवलिप्पइ कामरएण णोवलिप्पइ भोगरएण णोवलिप्पइ मित्त-णाइ-नियग-सयण-सबधि-परिजणेण, एस ण देवाणुप्पिया! ससारभउव्विग्गे, भीए जम्मण-मरणेणं देवाणुप्पियाण अतिए मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयइ, त एयं णं देवाणुप्पियाण अम्हे सीसभिक्खं दलयामो, पडिच्छतु ण देवाणुप्पिया सीसभिक्ख।

[७८] तदनन्तर क्षत्रियकुमार जमालि को आगे करके उसके माता-पिता, जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ उपस्थित हुए और श्रमण भगवान् महावीर को दाहिनी ओर से तीन वार प्रदक्षिणा की, यावत् वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—भगवन्! यह क्षत्रियकुमार जमालि, हमारा इकलौता, इष्ट, कान्त और प्रिय पुत्र है। यावत्—इसका नाम सुनना भी दुर्लभ है तो दर्शन दुर्लभ हो, इसमे कहना ही क्या! जैसे कोई कमल (उत्पल), पद्म या यावत् सहस्रदलकमल कीचड मे उत्पन्न होने और जल मे सर्वाद्धित (बडा) होने पर भी पकरज से लिप्त नही होता, न जलकण (जलरज) से लिप्त होता है, इसी प्रकार क्षत्रियकुमार जमालि भी काम मे उत्पन्न हुआ, भोगो मे सर्वाद्धित (बडा) हुआ, किन्तु काम मे रचमात्र भी लिप्त (आसक्त) नही हुआ और न ही भोग के अशमात्र से लिप्त (आसक्त) हुआ और न यह मित्र, ज्ञाति, निज-सम्बन्धी, स्वजनसम्बन्धी और परिजनो मे लिप्त हुआ है।

हे देवानुप्रिय! यह ससार—(जन्म-मरणरूप) भय से उद्विग्न हो गया है, यह जन्म-मरण (के चक्र) के भय से भयभीत हो चुका है। अत आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित हो कर, अगारवास

समता सुयधवरकुसुमचुण्ण-उव्विद्धवासरेणुमइल णभ करेंते कालागुरु-पवरकुदुरुक्क-तुरुक्क-धूवनिवहेण जीवलोय इव वासयते, समतओ खुभियचक्कवाल, पउरजण-बाल-वुड्ढपमुइयतुरियपहावियविउलाउलबोलबहुल नभ करेंते खत्तियकुडग्गामस्स नयरस्स मज्झमज्झेण।"

—भगवती अ वृत्ति, पत्र ४८०-४८२, औपपातिकसूत्र सू ३१-३२, पत्र ६८-७५

१ 'जाव' पद सूचित पाठ—कुमुदे इ वा नलिणे इ वा सुभगे इ वा सोगधिए इ वा इत्यादि।

—भगवती अ वृत्ति पत्र ४८३

छोड कर अनगार धर्म मे प्रव्रजित हो रहा है। इसलिए हम आप देवानुप्रिय को यह शिष्यभिक्षा देते है। आप देवानुप्रिय इस शिष्य रूप भिक्षा को स्वीकार करे।

विवेचन—दीक्षार्थी जमालिकुमार भगवान् के चरणो मे समर्पित—प्रस्तुत दो (७७-७८) सूत्रो मे वर्णन है कि शिविका द्वारा जमालिकुमार के भगवान् की सेवा मे पहुँचने पर उसके माता-पिता ने भगवान् के चरणो मे शिष्यभिक्षा के रूप मे समर्पित किया।[1]

७९ तए ण समणे भगव महावीरे त जमालि खत्तियकुमार एव वयासी—अहासुह देवाणुप्पिया! मा पडिबध।

[७९] इस पर श्रमण भगवान् महावीर ने उस क्षत्रियकुमार जमालि से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिय! जिस प्रकार तुम्हे सुख हो, वैसा करो, किन्तु (धर्मकार्य मे) विलम्ब मत करो।"

८० तए ण से जमाली खत्तियकुमारे समणेण भगवया महावीरेण एव वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे समण भगव महावीर तिक्खुत्तो जाव नमसित्ता उत्तरपुरत्थिम दिसीभाग अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरण-मल्लालकार ओमुयइ।

[८०] भगवान् के ऐसा कहने पर क्षत्रियकुमार जमालि हर्षित और तुष्ट हुआ, तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार प्रदक्षिणा कर यावत् वन्दना-नमस्कार कर, उत्तर-पूर्वदिशा (ईशानकोण) मे गया। वहाँ जा कर उसने स्वय ही आभूषण, माला और अलकार उतार दिये।

८१ तते ण से जमालिस्स खत्तियकुमारस्स माया हसलक्खणेण पडसाडएण आभरण-मल्लालकार पडिच्छति, पडिच्छित्ता हार-वारि जाव[2] विणिम्मुयमाणी विणिम्मुयमाणी जमालि खत्तियकुमार एव वयासी—'घडियव्व जाया!, जइयव्व जाया!, परक्कमियव्व जाया!, अस्सि च ण अट्ठे णो पमायेतव्व' ति कट्टु जमालिस्स खत्तियकुमारस्स अम्मा-पियरो समण भगव महावीर वदति णमसति, वदित्ता णमसित्ता, जामेव दिस पाउब्भूया तामेव दिस पडिगया।

[८१] तत्पश्चात् जमालि क्षत्रियकुमार की माता ने उन आभूषणो, माला एव अलकारो को हस के चिह्न वाले एक पटशाटक (रेशमी वस्त्र) मे ग्रहण कर लिया और फिर हार, जलधारा इत्यादि के समान यावत् आसू गिराती हुई अपने पुत्र से इस प्रकार बोली—हे पुत्र! सयम मे चेष्टा करना, पुत्र! सयम मे यत्न करना, हे पुत्र! सयम मे पराक्रम करना। इस (सयम के) विषय मे जरा भी प्रमाद न करना।

इस प्रकार कह कर क्षत्रियकुमार जमालि के माता-पिता श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार करके जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा मे वापस चले गए।

विवेचन—भगवान् द्वारा दीक्षा की स्वीकृति, माता द्वारा जमालि को सयमप्रेरणा—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू ७९ से ८१ तक) मे भ महावीर द्वारा जमालि की दीक्षा की स्वीकृति के सकेत,

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टिप्पण) भा १, पृ ४७४

२ 'जाव' पद द्वारा सूचित पाठ—धारा-सिदुवार-च्छिन्नमुत्तावलिपयासाइ असूणि।—अ वृ

जमालि द्वारा आभूषणादि के उतारे जाने तथा माता द्वारा सयम मे पुरुषार्थ करने की प्रेरणा का वर्णन किया गया है ।[1]

कठिन पदो के विशेषार्थ—**नयणमालासहस्सेहिं पिच्छिज्जमाणे**—हजारो नेत्रो द्वारा देखा जाता हुआ । **सवुड्ढे**—सर्वधित हुआ, बडा हुआ । **पक-रएण**—कीचड के लेशमात्र से । **काम-रएण**—कामरूप रज से या काम के अशमात्र से अथवा कामानुराग से । **सीसभिक्ख**—शिष्यरूप भिक्षा । **ओमुयइ**—उतारता है । **घडियव्व**—सयम पालन की चेष्टा करना । **जइयव्व**—सयम मे यत्न करना । **परक्कमियव्व**—पराक्रम करना । **णो पमायेतव्व**—प्रमाद न करना । **विणिम्मुयमाणी**—विमोचन करती हुई । **भोगेहिं**—गन्ध-रस-स्पर्शो मे । **कामेहिं**—शब्दादि रूप कामो मे ।[2]

८२. तए ण से जमाली खत्तियकुमारे सयमेव पचमुट्ठिय लोय करेति, करित्ता जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता एव[3] जहा उसभदत्तो (सु १६) तहेव पव्वइओ, नवर पचहिं पुरिससएहिं सद्धि तहेव सव्व जाव सामाइयमाइयाइ एक्कारस अगाइ अहिज्जइ, सामाइयमाइयाइ एक्कारस अगाइ अहिज्जेत्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठ-ऽट्ठम जाव मासद्धमासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाण भावेमाणे विहरइ ।

[८२] इसके पश्चात् जमालिकुमार ने स्वयमेव पचमुष्टिक लोच किया, फिर श्रमण भगवान् महावीर की सेवा मे उपस्थित हुआ और ऋषभदत्त ब्राह्मण (सू १६ मे वर्णित) की तरह भगवान् के पास प्रव्रज्या अगीकार की । विशेषता यह है कि जमालि क्षत्रियकुमार ने ५०० पुरुषो के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की, शेष सब वर्णन पूर्ववत् है, यावत् जमालि अनगार ने फिर सामायिक आदि ग्यारह अगो का अध्ययन किया और बहुत-से उपवास, बेला (छट्ठ), तेला (अट्ठम), यावत् अर्द्ध मास, मासखमण (मासिक) इत्यादि विचित्र तप कर्मो से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरण करने लगा ।

जमालिकुमार की प्रव्रज्या, अध्ययन और तपस्या—जमालिकुमार ने स्वय लोच किया, भगवान् से अपनी विरक्त दशा निवेदन करके पाच सौ पुरुषो के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की । प्रव्रज्या-ग्रहण के बाद जमालि अगनार ने ११ अगशास्त्रो का अध्ययन तथा अनेक प्रकार का तपश्चरण किया, जिसका उल्लेख प्रस्तुत सूत्र मे है ।[4]

'पचमुट्ठिय' आदि पदो का विशेषार्थ—**पचमुट्ठिय**—पाचो अगुलियो की मुट्ठी बाध कर लोच करना पचमुष्टिक लोच कहलाता है । **अप्पाण भावेमाणे**—आत्मभावो मे रमण करता हुआ अथवा आत्मचिन्तन—आत्मभावना करता हुआ । **तवोकम्मेहिं**—तप कर्मो से—तपश्चर्याओ से ।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त [मू पा टिप्पण] भा १, पृ ४७४-४७५

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४८४

३ 'जहा उसभदत्तो' द्वारा सूचित पाठ—तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, २ वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—आलित्ते ण भते ! लोए इत्यादि ।
—श ९, उ ३३, सू १६

४ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा १, पृ ४७५

भगवान् की बिना आज्ञा के जमालि का पृथक् विहार—

८३. तए ण से जमाली अणगारे अन्नया कयाई जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता समण भगव महावीर वदति नमसति, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी इच्छामि ण भते ! तुब्भेहि अब्भणुण्णाए समाणे पचहि अणगारसएहि सद्धि बहिया जणवय-विहार विहरित्तए ।

[८३] तदनन्तर एक दिन जमालि अनगार श्रमण भगवान् महावीर के पास आए और भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार बोले—भगवन् ! आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर मैं पाच सौ अनगारो के साथ इस जनपद से बाहर (अन्य जनपदो मे) विहार करना चाहता हूँ ।

८४. तए ण से समणे भगव महावीरे जमालिस्स अणगारस्स एयमट्ठ णो आढाइ, णो परिजाणाइ, तुसिणीए सचिट्ठइ ।

[८४] यह सुन कर श्रमण भगवान् महावीर ने जमालि अनगार की इस बात (माग) को आदर (महत्त्व) नही दिया, न स्वीकार किया । वे मौन रहे ।

८५. तए ण से जमाली अणगारे समण भगव महावीर दोच्च पि तच्च पि एव वयासी—इच्छामि ण भते ! तुब्भेहि अब्भणुण्णाए समाणे पचहि अणगारसएहि सद्धि जाव विहरित्तए ।

[८५] तब जमालि अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर से दूसरी बार और तीसरी बार भी इसी प्रकार कहा—भते ! आपकी आज्ञा मिल जाए तो मैं पाच सौ अनगारो के साथ अन्य जनपदो मे विहार करना चाहता हूँ ।

८६. तए णं समणे भगव महावीरे जमालिस्स अणगारस्स दोच्च पि तच्च पि एयमट्ठ णो इ जाव तुसिणीए सचिट्ठइ ।

[८६] जमालि अनगार के दूसरी बार और तीसरी वार भी वही बात कहने पर श्रमण भगवान् महावीर ने इस बात का आदर नही किया, यावत् वे मौन रहे ।

८७ तए ण से जमाली अणगारे समणं भगवं महावीरं वदइ णमसइ, वंदित्ता णमसित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ बहुसालाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पचहि अणगारसएहि सद्धि बहिया जणवयविहार विहरइ ।

[८७] तब (ऐसी स्थिति मे) जमालि अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और फिर उनके पास से बहुशालक उद्यान से निकला और फिर वह पाच सौ अनगारो के साथ बाहर के (अन्य) जनपदो मे विचरण करने लगा ।

विवेचन—गुरु-आज्ञा बिना जमालि अनगार का विचरण—प्रस्तुत ५ सूत्रो (सू ८३ से ८७ तक) के वर्णन से प्रतीत होता है कि जमालि अनगार द्वारा पाच-सौ अनगारो को लेकर सर्वत्र विचरण की महत्त्वाकाक्षा एव सर्वज्ञ-सर्वदर्शी भगवान् द्वारा उसके स्वतन्त्र विचरण के पीछे अहकार, महत्त्वाकाक्षा एव अधैर्य के प्रादुर्भाव होने की और भविष्य मे देव-गुरु आदि के विरोधी वन जाने की

सभावना देख कर स्वतन्त्र विहार की अनुज्ञा नही दी गई। किन्तु इस बात की अवहेलना करके जमालि अनगार भगवान् महावीर से पृथक् विहार करने लगे।[1]

विशेषार्थ—बहिया जणवयविहार—बाहर के जनपदो मे विहार। **णो आढाइ**—आदर (महत्त्व) नही किया। **णो परिजाणाइ**—अच्छा नही जाना या स्वीकार नही किया। **तुसिणीए सचिट्ठइ**—मौन रहे। **अतियाओ**—पास से। **सद्धि**—साथ।[2]

जमालि अनगार का श्रावस्ती मे और भगवान् का चपा मे विहरण—

८८. तेण कालेण तेण समएण सावत्थी नाम णयरी होत्था। वण्णओ। कोट्ठए चेइए। वण्णओ।[3] जाव वणसडस्स।

[८८] उस काल उस समय मे श्रावस्ती नाम की नगरी थी। उसका वर्णन (जान लेना चाहिए) वहाँ कोष्ठक नामक उद्यान था, उसका भी वर्णन, यावत् वनखण्ड तक (जान लेना चाहिए)।

८९. तेण कालेण तेण समएण चपा नाम नयरी होत्था। वण्णओ। पुण्णभद्दे चेइए। वण्णओ। जाव पुढविसिलावट्टओ।

[८९] उस काल और उस समय मे चम्पा नाम की नगरी थी। उसका वर्णन (औपपातिक सूत्र से जान लेना चाहिए।) वहाँ पूर्णभद्र नामक चैत्य था। उसका वर्णन (समझ लेना चाहिए) यावत् उसमे पृथ्वीशिलापट्ट था।

९०. तए ण से जमाली अणगारे अन्नया कयाइ पचहि अणगारसएहि सद्धि सपरिवुडे पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगाम दूइज्जमाणे जेणेव सावत्थी नयरी जेणेव कोट्ठए चेइए तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता अहापडिरूव उग्गह उग्गिण्हति, अहापडिरूव उग्गह उग्गिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ।

[९०] एक बार वह जमालि अनगार, पाच सौ अनगारो के साथ सपरिवृत होकर अनुक्रम से विचरण करता हुआ और ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ श्रावस्ती नगरी मे जहाँ कोष्ठक उद्यान था, वहाँ आया और मुनियो के कल्प के अनुरूप अवग्रह ग्रहण करके सयम और तप के द्वारा आत्मा को भावित करता हुआ विचरण करने लगा।

९१. तए ण समणे भगव महावीरे अन्नया कयाइ पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे जाव सुहसुहेण विहरमाणे जेणेव चपा नगरी जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता अहापडिरूव उग्गह उग्गिण्हति, अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ।

[९१] उधर श्रमण भगवान् महावीर भी एक बार अनुक्रम से विचरण करते हुए, यावत् सुखपूर्वक विहार करते हुए, जहाँ चम्पानगरी थी और पूर्णभद्र नामक चैत्य था, वहाँ पधारे, तथा

---

१ 'भाविदोपत्वेनोपेक्षणीयत्वादस्येति।' —भगवती अ वृत्ति, पत्र ४८६

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४८६, (ख) भगवती भा ४ (प० घेवरचन्दजी), पृ १७५३

३ देखो ''उववाइअसुत्त' मे नगरी और पूर्णभद्र चैत्य का वर्णन। —उव पत्र १-१ और ४-२

श्रमणो के अनुरूप अवग्रह ग्रहण करके सयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण कर रहे थे।

विवेचन—श्रावस्ती मे जमालि और चम्पा मे भगवान् महावीर—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू ८८ से ९१ तक) मे जमालि का भगवान् महावीर से पृथक् विहार करके श्रावस्ती मे पहुँचने का तथा भगवान् महावीर का चम्पा मे पधारने का वर्णन है।[1]

विशेषार्थ—अहापडिरूव—मुनियो के कल्प के अनुरूप। **उग्गह—अवग्रह**—यथापर्याप्त आवास स्थान तथा पट्टे-चौकी आदि की याचना करके ग्रहण करना।[2]

जमालि अनगार के शरीर मे रोगातंक की उत्पत्ति—

९२. तए ण तस्स जमालिस्स अणगारस्स तेहि अरसेहि य विरसेहि य अंतेहि य पंतेहि य लहेहि य तुच्छेहि य कालाइक्कतेहि य पमाणाइक्कतेहि य सीतएहि य पाण-भोयणेहि अन्नया कयाइ सरीरगसि विउले रोगातके पाउब्भूए-उज्जले तिउले पगाढे कक्कसे कडुए चडे दुक्खे दुग्गे तिव्वे दुरहियासे, पित्तज्जरपरिगतसरीरे दाहवक्कतिए यावि विहरइ।

[९२] उस समय जमालि अनगार को अरस, विरस, अन्त, प्रान्त, रूक्ष और तुच्छ तथा कालातिक्रान्त और प्रमाणातिक्रान्त एव ठडे पान (पेय पदार्थो) और भोजनो (भोज्य पदार्थो) (के सेवन) से एक बार शरीर मे विपुल रोगातक उत्पन्न हो गया। वह रोग उज्ज्वल, विपुल, प्रगाढ, कर्कश, कटुक, चण्ड, दु ख रूप, दुर्ग (कष्टसाध्य), तीव्र और दु सह था। उसका शरीर पित्तज्वर से व्याप्त होने के कारण दाह से युक्त हो रहा था।

विवेचन—जमालि, महारोगपीड़ित—जमालि अनगार को रूक्ष, अन्त, प्रान्त, नीरस आदि प्रतिकूल आहार-पानी करने के कारण महारोग उत्पन्न हो गया, जिसके फलस्वरूप उसके सारे शरीर मे जलन एव दाहज्वर के कारण असह्य पीडा हो उठी।[3]

कठिन शब्दो का भावार्थ—अरसेहि—हीग आदि के बघार विना का, विना रसवाले-बेस्वाद। **विरसेहि**—पुराने होने से खराब रस वाले—विकृत रस वाले। **अन्तेहि**—अरस होने से सब धान्यो से रद्दी (अन्तिम) धान्य—वाल, चने आदि। **पतेहि**—बचा-खुचा बासी आहार। **लूहेहि**=रूक्ष। **तुच्छेहि**—थोडे-से, या हल्की किस्म के। **कालाइक्कतेहि दो अर्थ**—जिसका काल व्यतीत हो चुका हो ऐसा आहार, अथवा भूख-प्यास का समय बीत जाने पर किया गया आहार। **पमाणाइक्कतेहि**—भूख-प्यास की मात्रा के अनुपात मे जो आहार न हो। **सीतएहि**—ठडा आहार। **विउले**—विपुल—समस्त शरीर मे व्याप्त। **पाउब्भूए**—उत्पन्न हुआ। **रोगातके**—रोग—व्याधि और आतक—पीडाकारी या उपद्रव। **उज्जले**—उत्कट ज्वलन—(दाह) कारक, या स्पष्ट। **पगाढे**—तीव्र या प्रबल। **कक्कसे**—कठोर या अनिष्टकारी। **चडे**—रौद्र-भयकर। **दुक्खे**—दु खरूप। **दुग्गे**—कष्टसाध्य। **दुरहियासे**—

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा० १, पृ० ४७६

२ भगवती सूत्र, तृतीय खण्ड (प० भगवानदास दोशी), पृ० १७९

३ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा १, पृ ४७६

दुस्सह। पित्तज्जरपरिगयसरीरे—पित्तज्वर से व्याप्त शरीर वाला। दाहवक्कतिए—दाह (जलन) उत्पन्न हुआ।[1]

रुग्ण जमालि को शय्यासंस्तारक के निमित्त से सिद्धान्त-विरुद्ध-स्फुरणा और प्ररूपणा—

९३ तए ण से जमाली अणगारे वेयणाए अभिभूए समाणे समणे णिग्गथे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एव वयासी—तुब्भे ण देवाणुप्पिया ! मम सेज्जासथारग सथरेह।

[९३] वेदना से पीडित जमालि अनगार ने तब (अपने साथी) श्रमण-निर्ग्रन्थो को बुला कर उनसे कहा—हे देवानुप्रियो ! मेरे सोने (शयन) के लिए तुम सस्तारक (बिछौना) बिछा दो।

९४. तए ण ते समणा णिग्गथा जमालिस्स अणगारस्स एयमट्ठ विणएण पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता जमालिस्स अणगारस्स सेज्जासथारग सथरेंति।

[९४] तब श्रमण-निर्ग्रन्थो ने जमालि अनगार की यह बात विनय-पूर्वक स्वीकार की और जमालि अनगार के लिए बिछौना बिछाने लगे।

९५. तए णं से जमाली अणगारे बलियतर वेदणाए अभिभूए समाणे दोच्च पि समणे निग्गथे सद्दावेइ, सद्दावित्ता दोच्च पि एव वयासी—मम ण देवाणुप्पिया ! सेज्जासथारए किं कडे ? कज्जइ ? तए ण ते समणा निग्गथा जमालिं अणगार एव वयासी—णो खलु देवाणुप्पियाण सेज्जासथारए कडे, कज्जति।

[९५] किन्तु जमालि अनगार प्रबलतर वेदना से पीडित थे, इसलिए उन्होने दुबारा फिर श्रमण-निर्ग्रन्थो को बुलाया और उनसे इस प्रकार पूछा—देवानुप्रियो ! क्या मेरे सोने के लिए सस्तारक (बिछौना) बिछा दिया या बिछा रहे हो ? इसके उत्तर मे श्रमण-निर्ग्रन्थो ने जमालि अनगार से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय के सोने के लिए बिछौना (अभी तक) बिछा नही, बिछाया जा रहा है।

९६. तए ण तस्स जमालिस्स अणगारस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—जं ण समणे भगव महावीरे एव आइक्खइ जाव एव परूवेइ—'एव खलु चलमाणे चलिए, उदीरिज्जमाणे उदीरिए जाव निज्जरिज्जमाणे णिज्जिण्णे' त ण मिच्छा, इम च ण पच्चक्खमेव दीसइ सेज्जासथारए कज्जमाणे अकडे, सथरिज्जमाणे असंथरिए, जम्हा ण सेज्जासथारए कज्जमाणे अकडे सथरिज्जमाणे असथरिए तम्हा चलमाणे वि अचलिए जाव निज्जरिज्जमाणे वि अणिज्जिण्णे। एव सपेहेइ; एव सपेहेत्ता समणे निग्गथे सद्दावेइ, समणे निग्गथे सद्दावेत्ता एव वयासी—ज ण देवाणुप्पिया ! समणे भगव महावीरे एव आइक्खइ जाव परूवेइ—एव खलु चलमाणे चलिए त चेव सव्व जाव णिज्जरिज्जमाणे अणिज्जिण्णे।

[९६] श्रमणो की यह बात सुनने पर जमालि अनगार के मन मे इस प्रकार का अध्यवसाय (निश्चयात्मक विचार) यावत् उत्पन्न हुआ कि श्रमण भगवान् महावीर जो इस प्रकार कहते है, यावत्

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४८६

प्ररूपणा करते है कि चलमान चलित है, उदीर्यमाण उदीरित है, यावत् निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण है, यह कथन मिथ्या है, क्योकि यह प्रत्यक्ष दीख रहा है कि जब तक शय्या-सस्तारक बिछाया जा रहा है, तब तक वह बिछाया गया नही है, (अर्थात्—) बिछौना जब तक 'बिछाया जा रहा हो', तब तक वह 'बिछाया गया' नही है । इस कारण 'चलमान' 'चलित' नही, किन्तु 'अचलित' है, यावत् 'निर्जीर्यमाण' 'निर्जीर्ण' नही, किन्तु 'अनिर्जीर्ण' है । इस प्रकार विचार कर श्रमण-निर्ग्रन्थो को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! श्रमण भगवान् महावीर जो इस प्रकार कहते है, यावत् प्ररूपणा करते है कि 'चलमान' 'चलित' (कहलाता) है, (इत्यादि पूर्ववत् सब कथन करना) यावत् (वस्तुत) निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण नही, किन्तु अनिर्जीर्ण है ।

विवेचन—जमालि को शय्यासस्तारक के निमित्त से सिद्धान्त-विरुद्ध स्फुरणा—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू ९३ से ९६ तक) मे निरूपण है कि प्रबलवेदनाग्रस्त जमालि अनगार के आदेश पर श्रमण बिछौना बिछाने लगे । अभी बिछाने का कार्य समाप्त नही हुआ था, तभी जमालि के पुन पूछने पर उन्हे कहा कि बिछौना बिछा नही, बिछाया जा रहा है, इस पर से जमालि को सिद्धान्त-विरुद्ध एकान्त स्फुरणा हुई कि भगवान् महावीर का 'चलमान' को 'चलित' कहने का सिद्धान्त मिथ्या है, मेरा सिद्धान्त यथार्थ है, क्योकि यह प्रत्यक्ष है कि जो बिछौना बिछाया जा रहा है, उसे 'बिछाया गया नही कहा जा सकता है ।[1]

विशेषार्थ—बलियतर वेयणाए अभिभूए—प्रबलतर वेदना से अभिभूत । **सेज्जासथारग**—शयन के लिए सस्तारक (बिछौना) । **कज्जमाणे अकडे**—जो क्रियमाण है, वह कृत नही । **सथरिज्जमाणे असथरिए**—बिछाया जारहा है, वह बिछाया गया नही है ।[2]

कुछ श्रमणो द्वारा जमालि के सिद्धान्त का स्वीकार, कुछ के द्वारा अस्वीकार—

९७. तए ण तस्स जमालिस्स अणगारस्स एव आइक्खमाणस्स जाव परूवेमाणस्स अत्थेगइया समणा निग्गथा एयमट्ठ सद्दहति पत्तियति रोयति । अत्थेगइया समणा निग्गथा एयमट्ठ णो सद्दहति णो पत्तियति णो रोयति । तत्थ ण जे ते समणा निग्गथा जमालिस्स अणगारस्स एयमट्ठ सद्दहति पत्तियति रोयति ते णं जमालिं चेव अणगार उवसपज्जित्ताणं विहरति । तत्थ ण जे ते समणा निग्गथा जमालिस्स अणगारस्स एयमट्ठं णो सद्दहति णो पत्तियंति णो रोयति ते णं जमालिस्स अणगारस्स अतियाओ कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता पुव्वाणुपुव्विं चरमाणा गामाणुगाम दूइज्जमाणा जेणेव चपानयरी जेणेव पुण्णभद्दे चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता समणं भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिण करेंति, करित्ता वदंति, णमसति २ समण भगव महावीर उवसपज्जित्ताण विहरति ।

[९७] जमालि अनगार द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर यावत् प्ररूपणा किये जाने पर कई श्रमण-निर्ग्रन्थो ने इस (उपर्युक्त) बात पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि की तथा कितने ही श्रमण-निर्ग्रन्थो ने इस बात पर श्रद्धा, प्रतीति एव रुचि नही की । उनमे से जिन श्रमण-निर्ग्रन्थो ने जमालि अनगार

१ वियाहपण्णत्ति भा १, मू पा टि , पृ ४७७

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४८६-४८७

की इस (उपर्युक्त) बात पर श्रद्धा, प्रतीति एव रुचि की, वे जमालि अनगार को आश्रय करके (निश्राय मे) विचरण करने लगे और जिन श्रमण-निर्ग्रन्थो ने जमालि अनगार की इस बात पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नही की, वे जमालि अनगार के पास से, कोष्ठक उद्यान से निकल गए और अनुक्रम से विचरते हुए एव ग्रामानुग्राम विहार करते हुए, चम्पा नगरी के बाहर जहाँ पूर्णभद्र नामक चैत्य था और जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ उनके पास पहुँचे। उन्होने श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार दाहिनी ओर से प्रदक्षिणा की, फिर वन्दना-नमस्कार करके वे भगवान् का आश्रय (निश्राय) स्वीकार कर विचरने लगे।

विवेचन—जमालि के सिद्धान्त का स्वीकार . अस्वीकार—प्रस्तुत सूत्र ९८ मे बताया गया है कि जमालि की जिनवचन विरुद्ध प्ररूपणा पर जिन साधुओ ने श्रद्धा, प्रतीति और रुचि की, वे उसके पास रहे और जिन साधुओ ने जमालि-प्रतिपादित सिद्धान्त पर श्रद्धा न की, वे वहाँ मे विहार करके भगवान् की सेवा मे लौट गए।[1]

'चलमान चलित': भगवान् का सिद्धान्त है—इसका सयुक्तिक विवेचन भगवतीसूत्र के प्रथम शतक के प्रथम उद्देशक मे कर दिया गया है। जमालि अनगार ने इस सिद्धान्त के विरुद्ध एकान्तदृष्टि से प्ररूपणा की, इसलिए यह सिद्धान्त अयथार्थ है। इसका विशेष विवेचन विशेषावश्यकभाष्य मे है।[2]

विशेषार्थ—चलमाणे चलिए—'जो चल रहा हो, वह 'चला।' उवसपज्जित्ताण—आश्रय करके (निश्राय मे)। अत्थेगइया—कोई-कोई—कितने ही।[3]

जमालि द्वारा सर्वज्ञता का मिथ्या दावा—

९८. तए ण से जमाली अणगारे अन्नया कयाइ ताओ रोगायकाओ विप्पमुक्के हट्ठे जाए अरोए बलियसरीरे सावत्थीओ नयरीओ कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगाम दूइज्जमाणे जेणेव चपा नयरी जेणेव पुण्णभद्दे चेइए जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामते ठिच्चा समणं भगव महावीर एव वयासी—जहा णं देवाणुप्पियाण बहवे अतेवासी समणा निग्गथा छउमत्था भवेत्ता छउमत्थावक्कमणेण अवक्कता, णो खलु अह तहा छउमत्थे भवित्ता छउमत्थावक्कमणेण अवक्कते, अहं ण उप्पन्नणाण-दसणधरे अरहा जिणे केवली भवित्ता केवलिअवक्कमणेण अवक्कते।

[९८] तदनन्तर किसी समय जमालि अनगार उस (पूर्वोक्त) रोगातक से मुक्त और हृष्ट (पुष्ट) हो गया, तथा नीरोग और बलवान् शरीर वाला हुआ, तब श्रावस्ती नगरी के कोष्ठक उद्यान से निकला और अनुक्रम से विचरण करता हुआ एव ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ, जहाँ चम्पा नगरी थी और जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, जिसमे कि श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, उनके

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, भा० १ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ० ४७८

२ (क) भगवतीसूत्र प्रथमखण्ड, श० १, (युवाचार्य श्री मधुकरमुनि), पृ १६-१७
(ख) विशेषावश्यकभाष्य, निह्नववाद (ग) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४८७-४८८

३ भगवती० भा० ४ (पं० घेवरचन्दजी), पृ० १७५७

पास आया। वह भगवान् महावीर से न तो अत्यन्त दूर और न अतिनिकट खडा रह कर भगवान् से इस प्रकार कहने लगा—जिस प्रकार आप देवानुप्रिय के बहुत-से शिष्य छद्‌मस्थ रह कर छद्‌मस्थ अवस्था मे ही (गुरुकुल से) निकल कर विचरण करते है, उस प्रकार मैं छद्‌मस्थ रह कर छद्‌मस्थ अवस्था मे निकल कर विचरण नही करता, मै उत्पन्न हुए केवलज्ञान—केवलदर्शन को धारण करने वाला अर्हत्, जिन, केवली हो कर केवली-(अवस्था मे निकल कर केवली-) विहार से विचरण कर रहा हूँ, अर्थात् मै केवली हो गया हूँ।

विवेचन—केवलज्ञानी होने का झूठा दावा—प्रस्तुत सू ९८ मे यह निरूपण किया गया है कि जमालि अनगार स्वस्थ एव सशक्त होने पर श्रावस्ती से भगवान् के पास चपा पहुँचा और उनके समक्ष अपने आपको केवलज्ञान प्राप्त होने का दावा करने लगा।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ - **हट्ठे**—हृष्टपुष्ट। **बलियसरीरे**—शरीर से वलिष्ठ। **छउमत्थावक्कमणेण अवक्कते** - छद्‌मस्थ=असर्वज्ञ रूप से अपक्रमण (अर्थात् गुरुकुल से निकल) कर विचरण करते है। **केवलिअवक्कमणेण अवक्कते**—सर्वज्ञ (केवली) रूप से अपक्रमण करके विचर रहा हूँ।[2]

गौतम के दो प्रश्नो का उत्तर देने में असमर्थ जमालि का भगवान् द्वारा सैद्धान्तिक समाधान—

९९. तए ण भगवं गोयमे जमालि अणगार एव वयासि—णो खलु जमाली ! केवलिस्स णाणे वा दसणे वा सेलसि वा थभसि वा थूभसि वा आवरिज्जइ वा णिवारिज्जइ वा। जइ ण तुम जमाली ! उप्पन्नणाण-दसणधरे अरहा जिणे केवली भवित्ता केवलिअवक्कमणेण अवक्कते तो ण इमाइ दो वागरणाइ वागरेहि, 'सासए लोए जमाली ! असासए लोए जमाली ! ? सासए जीवे जमाली ! असासए जीवे जमाली ! ?

[९९] इस पर भगवान् गौतम ने जमालि अनगार से इस प्रकार कहा—हे जमालि ! केवली का ज्ञान या दर्शन पर्वत (शैल), स्तम्भ अथवा स्तूप (आदि) से अवरुद्ध नही होता और न इनसे रोका जा सकता है। तो हे जमालि ! यदि तुम उत्पन्न -केवलज्ञान-दर्शन के धारक, अर्हत्, जिन और केवली हो कर केवली रूप से अपक्रमण (गुरुकुल से निर्गमन) करके विचरण कर रहे हो तो इन दो प्रश्नो का उत्तर दो—(१) जमालि ! लोक शाश्वत है या अशाश्वत है ? एव (२) जमालि ! जीव शाश्वत है अथवा अशाश्वत है ?

१००. तए णं से जमाली अणगारे भगवया गोयमेण एव वुत्ते समाणे सकिए कखिए जाव कलुससमावन्ने जाए यावि होत्था, णो सचाएति भगवओ गोयमस्स किंचि वि पमोक्खमाइक्खित्तए, तुसिणीए सचिट्ठइ।

१, वियाहपण्णत्तिसुत्त, भा १ (मू पा टिप्पण), पृ ४७८

२ (क) भगवती भा ४ (प घेवरचन्दजी), पृ १७५९

(ख) छउमत्थावक्कमणेण ति-छद्‌मस्थाना सतामपक्रमण—गुरुकुलान्निर्गमन छद्‌मस्थापक्रमण तेन।

—भगवती अ वृत्ति, पत्र ४८८

[१००] भगवान् गौतम द्वारा इस प्रकार (दो प्रश्नो के) जमालि अनगार से कहे जाने पर वह (जमालि) शकित एव काक्षित हुआ, यावत् कलुषित परिणाम वाला हुआ। वह भगवान् गौतम-स्वामी को (इन दो प्रश्नो का) किञ्चित् भी उत्तर देने मे समर्थ न हुआ। (फलत) वह मौन होकर चुपचाप खडा रहा।

१०१. 'जमाली' ति समणे भगव महावीरे जमालि अणगार एव वयासी—अत्थि ण जमाली ! मम बहवे अतेवासी समणा निग्गथा छउमत्था जे ण पभू एय वागरण वागरित्तए जहा ण अह, नो चेव ण एयप्पगार भास भासित्तए जहा ण तुम। सासए लोए जमाली ! जं ण कयावि णासि ण, कयावि ण भवति ण, न कदावि ण भविस्सइ, भुवि च, भवइ य, भविस्सइ य, धुवे णितिए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे। असासए लोए जमाली ! जओ ओसप्पिणी भवित्ता उस्सप्पिणी भवइ, उस्सप्पिणी भवित्ता ओसप्पिणी भवइ। सासए जीवे जमाली ! ज ण न कयाइ णासि जाव णिच्चे। असासए जीवे जमाली ! ज ण नेरइए भवित्ता तिरिक्खजोणिए भवइ, तिरिक्खजोणिए भवित्ता मणुस्से भवइ, मणुस्से भवित्ता देवे भवइ।

[१०१] (तत्पश्चात्) श्रमण भगवान् महावीर ने जमालि अनगार को सम्बोधित करके यो कहा—जमालि ! मेरे बहुत-से श्रमण निर्ग्रन्थ अन्तेवासी (शिष्य) छद्मस्थ (असर्वज्ञ) है जो इन प्रश्नो का उत्तर देने मे उसी प्रकार समर्थ है, जिस प्रकार मैं हूँ, फिर भी (जिस प्रकार तुम अपने आपको सर्वज्ञ अर्हत् जिन और केवली कहते हो,) इस प्रकार की भाषा वे नही बोलते। जमालि ! लोक शाश्वत है, क्योकि यह कभी नही था, ऐसा नही है, कभी नही है, ऐसा भी नही और कभी न रहेगा, ऐसा भी नही है, किन्तु लोक था, है और रहेगा। यह ध्रुव, नित्य, शाश्वत, अक्षय, अव्यय अवस्थित और नित्य है। (इसी प्रकार) हे जमालि ! (दूसरी अपेक्षा से) लोक अशाश्वत (भी) है, क्योकि अवसर्पिणी काल होकर उत्सर्पिणी काल होता है, फिर उत्सर्पिणी काल (व्यतीत) होकर अवसर्पिणी काल होता है।

हे जमालि ! जीव शाश्वत है, क्योकि जीव कभी (किसी समय) नही था, ऐसा नही है, कभी नही है, ऐसा नही और कभी नही रहेगा ऐसा भी नही है, इत्यादि यावत् जीव नित्य है। (इसी प्रकार) हे जमालि ! (किसी अपेक्षा से) जीव अशाश्वत (भी) है, क्योकि वह नैरयिक होकर तिर्यञ्च-योनिक हो जाता है, तिर्यञ्चयोनिक होकर मनुष्य हो जाता है और (कदाचित्) मनुष्य हो कर देव हो जाता है।

विवेचन—गौतम द्वारा प्रस्तुत दो प्रश्नो का उत्तर देने मे असमर्थ—जमालि का भगवान् द्वारा समाधान—प्रस्तुत सूत्रो मे यह प्रतिपादन किया गया है कि जमालि अनगार के सर्वज्ञता के दावे को असत्य सिद्ध करने हेतु गौतमस्वामी केवलज्ञान का स्वरूप बताकर दो प्रश्न प्रस्तुत करते है, जिसका उत्तर न देकर जमालि मौन हो जाता है। फिर भ महावीर उसे सर्वज्ञता का झूठा दावा न करने के लिए समझाकर उसे लोक और जीव की शाश्वतता—अशाश्वतता समझाते है।[1]

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा १ (मू पा टिप्पण), पृ ४७९

पास आया। वह भगवान् महावीर से न तो अत्यन्त दूर और न अतिनिकट खडा रह कर भगवान् से इस प्रकार कहने लगा—जिस प्रकार आप देवानुप्रिय के बहुत-से शिष्य छद्मस्थ रह कर छद्मस्थ अवस्था मे ही (गुरुकुल से) निकल कर विचरण करते है, उस प्रकार मै छद्मस्थ रह कर छद्मस्थ अवस्था मे निकल कर विचरण नही करता, मैं उत्पन्न हुए केवलज्ञान—केवलदर्शन को धारण करने वाला अर्हंत्, जिन, केवली हो कर केवली-(अवस्था मे निकल कर केवली-) विहार से विचरण कर रहा हूँ, अर्थात् मै केवली हो गया हूँ।

विवेचन—केवलज्ञानी होने का झूठा दावा—प्रस्तुत सू ९८ मे यह निरूपण किया गया है कि जमालि अनगार स्वस्थ एव सशक्त होने पर श्रावस्ती से भगवान् के पास चपा पहुँचा और उनके समक्ष अपने आपको केवलज्ञान प्राप्त होने का दावा करने लगा।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ- **हट्ठे**—हृष्टपुष्ट। **बलियसरीरे**—शरीर से बलिष्ठ। **छउमत्थावक्कमणेण अवक्कते** - छद्मस्थ=असर्वज्ञ रूप से अपक्रमण (अर्थात् गुरुकुल से निकल) कर विचरण करते है। **केवलिअवक्कमणेण अवक्कते**—सर्वज्ञ (केवली) रूप से अपक्रमण करके विचर रहा हूँ।[2]

गौतम के दो प्रश्नो का उत्तर देने मे असमर्थ जमालि का भगवान् द्वारा सैद्धान्तिक समाधान—

९९. तए ण भगव गोयमे जमालिं अणगार एव वयासि—णो खलु जमाली! केवलिस्स णाणे वा दसणे वा सेलसि वा थभसि वा थूभसि वा आवरिज्जइ वा णिवारिज्जइ वा। जइ ण तुम जमाली! उप्पन्नणाण-दसणधरे अरहा जिणे केवली भवित्ता केवलिअवक्कमणेण अवक्कते तो ण इमाइ दो वागरणाइ वागरेहि, 'सासए लोए जमाली! असासए लोए जमाली!? सासए जीवे जमाली! असासए जीवे जमाली!?

[९९] इस पर भगवान् गौतम ने जमालि अनगार से इस प्रकार कहा—हे जमालि! केवली का ज्ञान या दर्शन पर्वत (शैल), स्तम्भ अथवा स्तूप (आदि) से अवरुद्ध नही होता और न इनसे रोका जा सकता है। तो हे जमालि! यदि तुम उत्पन्न -केवलज्ञान-दर्शन के धारक, अर्हंत्, जिन और केवली हो कर केवली रूप से अपक्रमण (गुरुकुल से निर्गमन) करके विचरण कर रहे हो तो इन दो प्रश्नो का उत्तर दो—(१) जमालि! लोक शाश्वत है या अशाश्वत है? एव (२) जमालि! जीव शाश्वत है अथवा अशाश्वत है?

१००. तए णं से जमाली अणगारे भगवया गोयमेण एव वुत्ते समाणे सकिए कखिए जाव कलुससमावन्ने जाए यावि होत्था, णो सचाएति भगवओ गोयमस्स किंचि वि पमोक्खमाइक्खित्तए, तुसिणीए सचिट्ठइ।

१, वियाहपण्णत्तिसुत्त, भा १ (मू पा टिप्पण), पृ ४७८

२ (क) भगवती भा ४ (प घेवरचन्दजी), पृ १७५९

(ख) छउमत्थावक्कमणेण ति-छद्मस्थाना सतामपक्रमण—गुरुकुलान्निर्गमन छद्मस्थापक्रमण तेन।

—भगवती अ वृत्ति, पत्र ४८८

[१००] भगवान् गौतम द्वारा इस प्रकार (दो प्रश्नो के) जमालि अनगार से कहे जाने पर वह (जमालि) शकित एव काक्षित हुआ, यावत् कलुषित परिणाम वाला हुआ। वह भगवान् गौतम-स्वामी को (इन दो प्रश्नो का) किञ्चित् भी उत्तर देने मे समर्थ न हुआ। (फलत) वह मौन होकर चुपचाप खडा रहा।

१०१. 'जमाली' ति समणे भगव महावीरे जमालि अणगारं एव वयासी—अत्थि ण जमाली ! मम बहवे अतेवासी समणा निग्गंथा छउमत्था जे ण पभू एय वागरण वागरित्तए जहा ण अहं, नो चेव ण एयप्पगार भास भासित्तए जहा ण तुम। सासए लोए जमाली ! जं ण कयावि णासि ण, कयावि ण भवति ण, न कदावि ण भविस्सइ; भुविं च, भवइ य, भविस्सइ य, धुवे णितिए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे। असासए लोए जमाली ! जओ ओसप्पिणी भवित्ता उस्सप्पिणी भवइ, उस्सप्पिणी भवित्ता ओसप्पिणी भवइ। सासए जीवे जमाली ! ज ण न कयाइ णासि जाव णिच्चे। असासए जीवे जमाली ! ज ण नेरइए भवित्ता तिरिक्खजोणिए भवइ, तिरिक्खजोणिए भवित्ता मणुस्से भवइ, मणुस्से भवित्ता देवे भवइ।

[१०१] (तत्पश्चात्) श्रमण भगवान् महावीर ने जमालि अनगार को सम्बोधित करके यो कहा—जमालि ! मेरे बहुत-से श्रमण निर्ग्रन्थ अन्तेवासी (शिष्य) छद्मस्थ (असर्वज्ञ) है जो इन प्रश्नो का उत्तर देने मे उसी प्रकार समर्थ है, जिस प्रकार मैं हूँ, फिर भी (जिस प्रकार तुम अपने आपको सर्वज्ञ अर्हत् जिन और केवली कहते हो,) इस प्रकार की भाषा वे नही बोलते। जमालि ! लोक शाश्वत है, क्योकि यह कभी नही था, ऐसा नही है, कभी नही है, ऐसा भी नही और कभी न रहेगा, ऐसा भी नही है, किन्तु लोक था, है और रहेगा। यह ध्रुव, नित्य, शाश्वत, अक्षय, अव्यय अवस्थित और नित्य है। (इसी प्रकार) हे जमालि ! (दूसरी अपेक्षा से) लोक अशाश्वत (भी) है, क्योकि अवसर्पिणी काल होकर उत्सर्पिणी काल होता है, फिर उत्सर्पिणी काल (व्यतीत) होकर अवसर्पिणी काल होता है।

हे जमालि ! जीव शाश्वत है, क्योकि जीव कभी (किसी समय) नही था, ऐसा नही है, कभी नही है, ऐसा नही और कभी नही रहेगा ऐसा भी नही है, इत्यादि यावत् जीव नित्य है। (इसी प्रकार) हे जमालि ! (किसी अपेक्षा से) जीव अशाश्वत (भी) है, क्योकि वह नैरयिक होकर तिर्यञ्च-योनिक हो जाता है, तिर्यञ्चयोनिक होकर मनुष्य हो जाता है और (कदाचित्) मनुष्य हो कर देव हो जाता है।

विवेचन—गौतम द्वारा प्रस्तुत दो प्रश्नो का उत्तर देने मे असमर्थ—जमालि का भगवान् द्वारा समाधान—प्रस्तुत सूत्रो मे यह प्रतिपादन किया गया है कि जमालि अनगार के सर्वज्ञता के दावे को असत्य सिद्ध करने हेतु गौतमस्वामी केवलज्ञान का स्वरूप बताकर दो प्रश्न प्रस्तुत करते है, जिसका उत्तर न देकर जमालि मौन हो जाता है। फिर भ महावीर उसे सर्वज्ञता का झूठा दावा न करने के लिए समझाकर उसे लोक और जीव की शाश्वतता—अशाश्वतता समझाते है।[1]

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा १ (मू पा टिप्पण), पृ ४७९

भगवान् ने लोक को कथचित् शाश्वत और कथचित् अशाश्वत वताया है, इसी प्रकार जीव को भी कथचित् शाश्वत और कथचित् अशाश्वत सिद्ध किया है।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—**कलुससमावन्ने**—कालुष्य से युक्त। **सेलसि**—शैल—पर्वत से। **थूभंसि**—स्तूप से। **आवरिज्जइ**—आवृत होता है। **णिवारिज्जइ**—रोका जाता है। **वागरणाइ वागरेहि**—व्याकरणो—प्रश्नो का व्याकरण=समाधान या उत्तर दो। **णो सचाएति**—समर्थ नही होता। **पमोक्ख**—उत्तर या समाधान। **एयप्पगार**—इस प्रकार की। **अव्वए**—अव्यय। **अवट्ठिए**—अवस्थित।[2]

मिथ्यात्वग्रस्त जमालि की विराधकता का फल—

१०२ तए ण से जमाली अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स एवमाइक्खमाणस्स जाव एव परूवेमाणस्स एयमट्ठ णो सद्दहइ णो पत्तियइ णो रोएइ, एयमट्ठ असद्दहमाणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे दोच्च पि समणस्स भगवओ महावीरस्स अतियाओ आयाए अवक्कमइ, दोच्च पि आयाए अवक्कमित्ता बहूहि असब्भावुब्भावणाहि मिच्छत्ताभिणिवेसेहि य अप्पाण च पर च तदुभय च वुग्गाहेमाणे वुप्पाएमाणे बहूइ वासाइ सामण्णपरियाग पाउणइ, पाउणित्ता अद्धमासियाए सलेहणाए अत्ताण भूसेइ, अ० भूसेत्ता तीस भत्ताइ अणसणाए छेदेति, छेदेत्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कते कालमासे काल किच्चा लतए कप्पे तेरससागरोवमठितीएसु देवकिब्बिसिएसु देवेसु देवकिब्बिसियत्ताए उववन्ने।

[१०२] श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा जमालि अनगार को इस प्रकार कहे जाने पर, यावत् प्ररूपित करने पर भी उसने (जमालि ने) इस बात पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नही की और श्रमण भगवान् महावीर की इस बात पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नही करता हुआ जमालि अनगार दूसरी बार भी स्वय भगवान् के पास से चला गया।

इस प्रकार भगवान् से स्वय पृथक् विचरण करके जमालि ने बहुत-से असद्भूत भावो को प्रकट करके तथा मिथ्यात्व के अभिनिवेशो (हठाग्रहो) से अपनी आत्मा को, पर को तथा उभय (दोनो) को भ्रान्त (गुमराह) करते हुए एव मिथ्याज्ञानयुक्त करते हुए बहुत वर्षो तक श्रमण-पर्याय का पालन किया। अन्त मे अर्द्धमास (१५ दिन) की सलेखना द्वारा अपने शरीर को कृश करके तथा अनशन द्वारा तीस भक्तो का छेदन (त्याग) करके, उस स्थान (पूर्वोक्त मिथ्यात्वगत पाप) की आलोचना एव प्रतिक्रमण किये बिना ही, काल के समय मे काल (मृत्यु प्राप्त) करके लान्तक कल्प (देवलोक) मे तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विपिक देवो मे किल्विषिक देवरूप मे उत्पन्न हुआ।

विवेचन—भगवद्वचनो पर अश्रद्धालु मिथ्यात्वग्रस्त लि की मति-गति - प्रस्तुत सू १०२ मे प्रतिपादन किया गया है कि भगवान् महावीर द्वारा सद्भावनावश समझाने एव सत्-सिद्धान्त वताने पर भी जमालि मिथ्यात्वग्रस्त होने के कारण मिथ्या प्ररूपणा करने लगा, उसने जनता

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा १, पृ ४७९

२ भगवतीसूत्रम् तृतीय खण्ड (प भगवानदास दोशी), १८१

को अज्ञान के अन्धेरे मे धकेला। फलत अन्तिम समय मे उक्त पाप का आलोचन-प्रतिक्रमण न करने से मर कर लान्तक कल्प मे किल्विषी देव हुआ।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ- **आयाए**—अपने आप, स्वयमेव। **अवक्कमइ**—चला गया। **असब्भावुब्भावणाहिं** असद्भावो की उद्भावनाओ से—प्रकट करने से। **मिच्छत्ताभिणिवेसेहि**—मिथ्यात्व के अभिनिवेशो से (असत्य के दृढ हठाग्रह से) **वुग्गाहेमाणे**—भ्रान्त (गुमराह) करता हुआ या सिद्धान्तविरुद्ध हठाग्रह युक्त करता हुआ। **वुप्पाएमाणे**—विरुद्ध (मिथ्या) ज्ञानयुक्त या दुर्विदग्ध करता हुआ। **अणालोइय-पडिक्कते**—आलोचना और प्रतिक्रमण नही करने से **अत्ताण झूसेइ**—अपने शरीर को झोक दिया। **तीस भत्ताइ अणसणाए छेदेत्ता**—अनशन से तीस बार के भोजन का छेदन करते (भोजन से सम्बन्ध काटते हुए)।[2]

किल्विषिक देवो मे उत्पत्ति का भगवत्समाधान—

१०३. तए ण से भगवं गोयमे जमालिं अणगारं कालगयं जाणित्ता जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समण भगव महावीर वदति नमसति, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—एव खलु देवाणुप्पियाण अतेवासी कुसिस्से जमाली णाम अणगारे, से ण भते! जमाली अणगारे कालमासे काल किच्चा कहिं गए? कहिं उववन्ने? 'गोयमा' दि समणे भगव महावीरे भगव गोयम एव वयासी—एव खलु गोयमा! मम अतेवासी कुसिस्से जमाली नामं अणगारे से ण तदा मम एव आइक्खमाणस्स ४ एयमट्ठ णो सद्दहइ णो पत्तियइ णो रोएइ, एयमट्ठ असद्दहमाणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे दोच्च पि मम अतियाओ आयाए अवक्कमइ, अवक्कमित्ता बहूहिं असब्भावुब्भावणाहि त चेव जाव देवकिब्बिसियत्ताए उववन्ने।

[१०३] तदनन्तर जमालि अनगार को कालधर्म प्राप्त हुआ जान कर भगवान् गौतम स्वामी श्रमण भगवान् महावीर के पास आए और भगवान् महावीर को वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—[प्र०] भगवन्! यह निश्चित है कि जमालि अनगार आप देवानुप्रिय का अन्तेवासी कुशिष्य था। भगवन्! वह जमालि अनगार काल के समय काल करके कहाँ गया है, कहाँ उत्पन्न हुआ है? [उ०] हे गौतम! इस प्रकार सम्बोधित करके श्रमण भगवान् महावीर ने भगवान् गौतमस्वामी से इस प्रकार कहा गौतम! मेरा अन्तेवासी जमालि नामक अनगार वास्तव मे कुशिष्य था। उस समय मेरे द्वारा (सत्सिद्धान्त) कहे जाने पर यावत् प्ररूपित किये जाने पर उसने मेरे कथन पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नही की थी। उस (पूर्वोक्त) कथन पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि न करता हुआ दूसरी बार भी वह अपने आप मेरे पास से चला गया और बहुत-से असद्भावो के प्रकट करने से, इत्यादि पूर्वोक्त कारणो से यावत् वह काल के समय काल करके किल्विषिक देव के रूप मे उत्पन्न हुआ है।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा १ (मूलपाठ-टिप्पण), पृ ४७९

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४८९

(ख) भगवती भा ४ (प घेवरचन्दजी), पृ १७६२

विवेचन—जमालि की गति के विषय मे प्रश्नोत्तर—प्रस्तुत सू १०३ मे जमालि अनगार की मृत्यु के बाद गौतमस्वामी के द्वारा उसकी उत्पत्ति और गति के विषय मे पूछे जाने पर भगवान् ने उसका समाधान किया है ।

सिद्धान्त-निष्कर्ष—इस पाठ से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि कोई साधक चाहे जितनी ऊँची क्रिया करे, कठोर चारित्रपालन करे, किन्तु यदि उसकी दृष्टि एव मति मिथ्यात्वग्रस्त हो गई है, अज्ञानतिमिर से व्याप्त है, मिथ्याभिनिवेशवश वह मिथ्यासिद्धान्त को पकडे हुए है, सरलता और जिज्ञासापूर्वक समाधान पाने की रुचि उसमे नही है, तो वह देवलोक मे जाने पर भी निम्नकोटि का देव बनता है और ससारपरिभ्रमण करता है ।[1]

किल्विषिक देवो के भेद, स्थान एव उत्पत्तिकारण—

१०४. कतिविहा ण भते ! देवकिब्बिसिया पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा देवकिब्बिसिया पण्णत्ता, त जहा—तिपलिओवमट्ठिईया, तिसागरोवमट्ठिईया, तेरससागरोवमट्ठिईया ।

[१०४ प्र] भगवन् ! किल्विषिक देव कितने प्रकार के कहे गए है ?

[१०४ उ] गौतम ! किल्विषिक देव तीन प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार है—(१) तीन पल्योपम की स्थिति वाले, (२) तीन सागरोपम की स्थिति वाले और (३) तेरह सागरोपम की स्थिति वाले ।

१०५. कहि ण भते ! तिपलिओवमट्ठितीया देवकिब्बिसिया परिवसति ?

गोयमा ! उप्पि जोइसियाण, हिट्ठि सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु, एत्थ णं तिपलिओवमट्ठिईया देवकिब्बिसिया परिवसति ।

[१०५ प्र] भगवन् ! तीन पल्योपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव कहाँ रहते है ?

[१०५ उ] गौतम ! ज्योतिष्क देवो के ऊपर और सौधर्म-ईशान कल्पो (देवलोको) के नीचे तीन पल्योपम की स्थिति वाले देव रहते है ।

१०६. कहि ण भते ! तिसागरोवमट्ठिईया देवकिब्बिसिया परिवसति ?

गोयमा ! उप्पि सोहम्मीसाणाण कप्पाण, हिट्ठि सणकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु, एत्थ ण तिसागरोवमट्ठिईया देवकिब्बिसिया परिवसति ।

[१०६ प्र] भगवन् ! तीन सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव कहाँ रहते है ?

[१०६ उ] गौतम ! सौधर्म और ईशान कल्पो के ऊपर तथा सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक के नीचे तीन सागरोपम की स्थिति वाले देव रहते हैं ।

१०७. कहि ण भते ! तेरससागरोवमट्ठिईया देवकिब्बिसिया देवा परिवसति ?

गोयमा ! उप्पि बभलोगस्स कप्पस्स, हिट्ठि लतए कप्पे, एत्थ ण तेरससागरोवमट्ठिईया देवकिब्बिसिया देवा परिवसंति ।

---

१ वियाहपण्णत्ति सुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा १, पृ ४८०

[१०७ प्र] भगवन्! तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव कहाँ रहते है?

[१०७ उ] गौतम! ब्रह्मलोक कल्प के ऊपर तथा लान्तक कल्प के नीचे तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव रहते है।

१०८. देवकिब्बिसिया ण भते! केसु कम्मादाणेसु देवकिब्बिसियत्ताए उववत्तारो भवति?

गोयमा! जे इमे जीवा आयरियपडिणीया उवज्झायपडिणीया कुलपडिणीया गणपडिणीया, सघपडिणीया, आयरिय-उवज्झायाण अयसकरा अवण्णकरा अकित्तिकरा बहूहि असब्भावुब्भावणाहि मिच्छत्ताभिनिवेसेहि य अप्पाण च पर च उभयं च वुग्गाहेमाणा वुप्पाएमाणा बहूइ वासाइ सामण्णपरियाग पाउणति, पाउणित्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कता कालमासे काल किच्चा अन्नयरेसु देवकिब्बिसिएसु देवकिब्बिसियत्ताए उववत्तारो भवति; त जहा—तिपलिओवमट्ठितीएसु वा तिसागरोवमट्ठितीएसु वा तेरससागरोवमट्ठितीएसु वा।

[१०८ प्र] भगवन्! किन कर्मो के आदान (ग्रहण या निमित्त) से किल्विषिक देव, किल्विषिक देव के रूप मे उत्पन्न होते है?

[१०८ उ] गौतम! जो जीव आचार्य के प्रत्यनीक (द्वेषी या विरोधी) होते है, उपाध्याय के प्रत्यनीक होते है, कुल, गण और सघ के प्रत्यनीक होते है तथा आचार्य और उपाध्याय का अयश (अपयश) करने वाले, अवर्णवाद बोलने वाले और अकीर्ति करने वाले है तथा बहुत से असत्य भावो (विचारो या पदार्थो) को प्रकट करने से, मिथ्यात्व के अभिनिवेशो (कदाग्रहो) से, अपनी आत्मा को, दूसरो को और स्व-पर दोनो को भ्रान्त और दुर्बोध करने वाले बहुत वर्षो तक श्रमण-पर्याय का पालन करके उस अकार्य (पाप)-स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये विना काल के समय काल करके निम्नोक्त तीन मे (से) किन्ही किल्विषिक देवो मे किल्विषिक देव रूप मे उत्पन्न होते है। जैसे कि—(१) तीन पल्योपम की स्थिति वालो मे, (२) तीन सागरोपम की स्थिति वालो मे अथवा (३) तेरह सागरोपम की स्थिति वालो मे।

१०९. देवकिब्बिसिया ण भते! ताओ देवलोगाओ आउक्खएण भवक्खएणं ठिइक्खएण अणतर चय चइत्ता कहिं गच्छति? कहिं उववज्जति?

गोयमा! जाव चत्तारि पच नेरइय-तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवभवग्गहणाइ ससार अणुपरियट्टित्ता तओ पच्छा सिज्झति बुज्झति जाव अत करेंति। अत्थेगइया अणादीय अणवदग्ग दीहमद्धं चाउरतससारकतार अणुपरियट्टति।

[१०९ प्र] भगवन्! किल्विषिक देव उन देवलोको से आयु का क्षय होने पर, भवक्षय होने पर और स्थिति का क्षय होने के बाद च्यवकर कहाँ जाते है, कहाँ उत्पन्न होते है?

[१०९ उ] गौतम! कुछ किल्विषिक देव, नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव के चार-पाच भव करके और इतना ससार-परिभ्रमण करके तत्पश्चात् सिद्ध—बुद्ध -मुक्त होते है, यावत् सर्व-दु खो का अन्त करते है और कितने ही किल्विषिक देव अनादि, अनन्त और दीर्घ मार्ग वाले चार गतिरूप ससार-कान्तार (ससार रूपी अटवी) मे परिभ्रमण करते है।

विवेचन—किल्विषिक देव प्रकार, निवास एव उत्पत्तिकारण—प्रस्तुत ६ सूत्रो (सू १०४ से १०९ तक) मे किल्विषिक देवो के प्रकार, उनके निवासस्थान और उनके किल्विषिक रूप मे उत्पन्न होने के कारण बताए गए है । अन्त मे किल्विषिक देवो की अनन्तर गति का निरूपण किया गया है ।[1]

कठिन शब्दो का अर्थ—उप्पि—ऊपर, **हिट्ठि**—नीचे । **पडिणीया**—प्रत्यनीक—शत्रु या विद्वेषी । **अवण्णकरा**—निन्दा करने वाले । **अणुपरियट्टित्ता**— परिभ्रमण करके । **दीहमद्धं**—दीर्घमार्ग रूप । **चाउरतससारकंतार**—चार गतियो वाले ससाररूप महारण्य को । **अणवदग्ग**—अनन्त । **कम्मादाणेसु**—कर्मो के आदान=कारण से । **उववत्तारो**—उत्पन्न होते है ।[2]

किल्विषिक देव · स्वरूप और गतिविषयक समाधान—किल्विषिक देव उन्हे कहते है, जो पाप के कारण देवो मे चाण्डालकोटि के देव होते है । वे देवसभा मे चाण्डाल की तरह अपमानित होते है । देवसभा मे जब कुछ बोलने के लिए मुह खोलते है तो महर्द्धिक देव उन्हे अपमानित करके बिठा देते हैं, बोलने नही देते । कोई देव उनका आदर-सत्कार नही करता ।

सू १०९ मे जो यह कहा गया है कि किल्विषिक देव, नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य एव देव के ४-५ भव ग्रहण करके मोक्ष जाते है, यह सामान्य कथन है । वस्तुत देव और नारक मर कर तुरन्त देव और नारक नही होते । वे वहाँ से मनुष्य या तिर्यञ्च मे उत्पन्न होते है, इसके पश्चात् देवो या नारको मे उत्पन्न हो सकते हैं ।[3]

किल्विषिक देवो मे जमालि की उत्पत्ति का कारण—

११०. जमाली ण भते ! अणगारे अरसाहारे विरसाहारे अताहारे पताहारे लूहाहारे तुच्छाहारे अरसजीवी विरसजीवी जाव तुच्छजीवी उवसतजीवी पसतजीवी विवित्तजीवी ?

हता, गोयमा ! जमाली ण अणगारे अरसाहारे विरसाहारे जाव विवित्तजीवी ।

[११० प्र] भगवन् ! क्या जमालि अनगार अरसाहारी, विरसाहारी, अन्ताहारी, प्रान्ताहारी, रूक्षाहारी, तुच्छाहारी, अरसजीवी, विरसजीवी यावत् तुच्छजीवी, उपशान्तजीवी, प्रशान्तजीवी और विविक्तजीवी था ?

[११० उ०] हाँ, गौतम ! जमालि अनगार अरसाहारी, विरसाहारी यावत् विविक्तजीवी था ।

१११. जति ण भते ! जमाली अणगारे अरसाहारे विरसाहारे जाव विवित्तजीवी कम्हा ण भते ! जमाली अणगारे कालमासे किच्चा लतए कप्पे तेरससागरोवमट्ठितीएसु देवकिब्बिसिएसु देवेसु देवकिब्बिसियत्ताए उववन्ने ?

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, भा १ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ४८०-४८१

२ भगवती (प घेवरचन्दजी) भा ४, पृ १७६५-१७६६

३ वही, भा ४, पृ १७६८

गोयमा ! जमाली ण अणगारे आयरियपडिणीए उवज्झायपडिणीए आयरिय-उवज्झायाण अयसकारए जाव वुग्गाहेमाणे वुप्पाएमाणे वहूइ वासाइ सामण्णपरियाग पाउणित्ता अद्धमासियाए सलेहणाए तीस भत्ताइ अणसणाए छेदेति, तीस भत्ताइ अणसणाए छेदेत्ता तस्स ठाणस्स अणालोइय-पडिक्कते कालमासे काल किच्चा लतए कप्पे जाव उववन्ने ।

[१११ प्र] भगवन् ! यदि जमालि अनगार अरसाहारी, विरसाहारी यावत् विविक्तजीवी था, तो काल के समय काल करके वह लान्तककल्प मे तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देवो मे किल्विषिक देव के रूप मे क्यो उत्पन्न हुआ ?

[१११ उ] गौतम ! जमालि अनगार आचार्य का प्रत्यनीक (द्वेषी), उपाध्याय का प्रत्यनीक तथा आचार्य और उपाध्याय का अपयश करने वाला और उनका अवर्णवाद करने वाला था, यावत् वह मिथ्याभिनिवेश द्वारा अपने आपको, दूसरो को और उभय को भ्रान्ति मे डालने वाला और दुर्विदग्ध (मिथ्याज्ञान के अहकार वाला) बनाने वाला था, यावत् बहुत वर्षो तक श्रमण पर्याय का पालन कर, अर्द्धमासिक सलेखना से शरीर को कृश करके तथा तीस भक्त का अनशन द्वारा छेदन (छोड) कर उस अकृत्यस्थान (पाप) की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही, उसने काल के समय काल किया, जिससे वह लान्तक देवलोक मे तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देवो मे किल्विषिक देवरूप मे उत्पन्न हुआ ।

विवेचन—स्वादजयी अनगार किल्विषिक देव क्यो ? —प्रस्तुत दो सूत्रो (११०-१११) मे श्री गौतमस्वामी द्वारा यह प्रश्न पूछे जाने पर कि जमालि जैसा स्वादजयी, प्रशान्तात्मा एव तपस्वी अनगार लान्तककल्प मे किल्विषिक देवो मे क्यो उत्पन्न हुआ ? भगवान् ने उस आवृत रहस्य को स्पष्टरूप से खोल कर रख दिया है कि इतना त्यागी, तपस्वी होने पर भी देव-गुरु का द्वेषी, मिथ्या-प्ररूपक एव मिथ्यात्वग्रस्त होने से किल्विषिकदेव हुआ ।[1]

कठिन शब्दो का विशेषार्थ- उवसतजीवी—जिसके जीवन मे कषाय उपशान्त हो या अन्तर्वृत्ति से शान्त । **पसतजीवी**—बहिर्वृत्ति से प्रशान्त जीवन वाला । **विवित्तजीवी**—पवित्र और स्त्री-पशु-नपुसकससर्गरहित एकान्त जीवन वाला ।[2]

जमाली का भविष्य—

११२. जमाली ण भते ! देवे ताओ देवलोयाओ आउक्खएण जाव कहिं उववज्जिहिति ?

गोयमा ! जाव पच तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवभवग्गहणाइ ससार अणुपरियट्टित्ता ततो पच्छा सिज्झिहिति जाव अत काहिति ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति० ।

।। जमाली समत्तो ।। ९. ३३ ।।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा १, पृ० ४८१

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९०

[११२ प्र] भगवन् ! वह जमालि देव उस देवलोक से आयु क्षय होने पर यावत् कहाँ उत्पन्न होगा ?

[११२ उ] गौतम ! तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य और देव के पाच भव ग्रहण करके और इतना ससार-परिभ्रमण करके तत्पश्चात् वह सिद्ध होगा, बुद्ध होगा यावत् सर्वदु खो का अन्त करेगा ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरण करने लगे ।

विवेचन—जमालि को परम्परा से सिद्धिगति-प्राप्ति— प्रस्तुत सू ११२ मे जमालि के भविष्य के विषय मे पूछे जाने पर भगवान् ने भविष्य मे तिर्यञ्च, मनुष्य और देव के ५ भव ग्रहण करने के पश्चात् सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होने का कथन किया है ।[1]

शका-समाधान—यहाँ शका उपस्थित होती है कि भगवान् सर्वज्ञ थे और जमालि के भविष्य मे प्रत्यनीक होने की घटना को जानते थे, फिर भी उसे क्यो प्रव्रजित किया ? इसका समाधान वृत्तिकार इस प्रकार करते है—अवश्यम्भावी भवितव्य को महापुरुष भी टाल नही सकते अथवा इसी प्रकार ही उन्होने गुणविशेष देखा होगा । अर्हन्त भगवान् अमूढलक्षी होने से किसी भी क्रिया मे निष्प्रयोजन प्रवृत्त नही होते ।[2]

।। नवम शतक : तेतीसवाँ उद्देशक सम्पूर्ण ।।

□□

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), भा १, पृ ४८१

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९०

चउत्तीसइमो उद्देसो : पुरि

चौतीसवाँ उद्देशक पुरुष

पुरुष और नोपुरुष का घातक

उपोद्घात—

१. तेण कालेण तेण समएण रायगिहे जाव एव वदासी—

[१] उस काल और उस समय मे राजगृह नगर था। वहाँ भगवान गौतम ने यावत् भगवान् से इस प्रकार पूछा—

पुरुष के द्वारा अश्वादिघात सम्बन्धी प्रश्नोत्तर—

२. [१] पुरिसे णं भंते ! पुरिस हणमाणे किं पुरिस हणति, नोपुरिस हणति ?

गोयमा ! पुरिसं पि हणति, नोपुरिसे वि हणति।

[२-१ प्र] भगवन् कोई पुरुष, पुरुष की घात करता हुआ क्या पुरुष की ही घात करता है अथवा नोपुरुष (पुरुष के सिवाय अन्य जीवो) की भी घात करता है ?

[२-१ उ] गौतम ! वह (पुरुष) पुरुष की भी घात करता है और नोपुरुष की भी घात करता है।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चइ 'पुरिसं पि हणइ, नोपुरिसे वि हणइ' ?

गोतमा ! तस्स ण एव भवइ—'एव खलु अह एग पुरिस हणामि' से ण एग पुरिस हणमाणे अणेगे जीवे हणइ। से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ 'पुरिस पि हणइ नोपुरिसे वि हणति'।

[२-२ प्र] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि वह पुरुष की भी घात करता है, नोपुरुष की भी घात करता है ?

[२-२ उ] गौतम ! (घात करने के लिए उद्यत) उस पुरुष के मन मे ऐसा विचार होता है कि मैं एक ही पुरुष को मारता हूँ, किन्तु वह एक पुरुष को मारता हुआ अन्य अनेक जीवो को भी मारता है। इसी दृष्टि से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि वह घातक, पुरुष को भी मारता है और नोपुरुष को भी मारता है।

३. [३] पुरिसे ण भंते ! आस हणमाणे किं आस हणइ, नोआसे वि हणइ ?

गोयमा ! आस पि हणइ, नोआसे वि हणइ।

[३-१ प्र] भगवन् ! अश्व को मारता हुआ कोई पुरुष क्या अश्व को ही मारता है या नो-अश्व (अश्व के सिवाय अन्य जीवो को भी) मारता है ?

[३-१ उ] गौतम ! वह (अश्वघात के लिए उद्यत पुरुष) अश्व को भी मारता है और नो-अश्व अश्व के अतिरिक्त दूसरे जीवो) को भी मारता है।

[२] से केणट्ठेण ? अट्ठो तहेव।

[३-२ प्र] भगवन् ! ऐसा कहने का क्या कारण है ?

[३-२ उ] गौतम ! इसका उत्तर पूर्ववत् समझना चाहिए।

४. एव हत्थि सीह वग्घ जाव चिल्ललग।

[४] इसी प्रकार हाथी, सिह, व्याघ्र (बाघ) यावत् चित्रल तक समझना चाहिए।

५ [१] पुरिसे ण भते ! अन्नयर तसपाण हणमाणे किं अन्नयरं तसपाणं हणइ, नोअन्नयरे तसे पाणे हणइ ?

गोयमा ! अन्नयर पि तसपाण हणइ, नोअन्नयरे वि तसे पाणे हणइ।

[५-१ प्र] भगवन् ! कोई पुरुष किसी एक त्रस प्राणी को मारता हुआ क्या उसी त्रसप्राणी को मारता है, अथवा उसके सिवाय अन्य त्रसप्राणियो को भी मारता है ?

[५-१ उ] गौतम ! वह उस त्रसप्राणी को भी मारता है और उसके सिवाय अन्य त्रसप्राणियो को भी मारता है।

[२] से केणट्ठेणं भते ! एव वुच्चइ 'अन्नयर पि तसपाण [हणति] नोअन्नयरे वि तसे पाणे हणइ' ?

गोयमा ! तस्स ण एव भवइ—एवं खलु अह एगं अन्नयर तस पाणं हणामि, से ण एग अन्नयर तस पाण हणमाणे अणेगे जीवे हणइ। से तेणट्ठेण गोयमा ! त चेव। एए सव्वे वि एक्कगमा।

[५-२ प्र] भगवन् ! किस हेतु से आप ऐसा कहते है कि वह पुरुष उस त्रसजीव को भी मारता है और उसके सिवाय अन्य त्रसजीवो को भी मार देता है।

[५-२ उ] गौतम ! उस त्रसजीव को मारने वाले पुरुष के मन मे ऐसा विचार होता है कि मैं उसी त्रसजीव को मार रहा हूँ, किन्तु वह उस त्रसजीव को मारता हुआ, उसके सिवाय अन्य अनेक त्रसजीवो को भी मारता है। इसलिए, हे गौतम ! पूर्वोक्तरूप से जानना चाहिए। इन सभी का एक समान पाठ (आलापक) है।

६ [१] पुरिसे ण भते ! इसिं हणमाणे किं इसिं हणइ, नोइसिं हणइ ?

गोयमा ! इसिं पि हणइ नोइसिं पि हणइ।

[६-१ प्र] भगवन् ! कोई पुरुष, ऋषि को मारता हुआ क्या ऋषि को ही मारता है, अथवा नोऋषि (ऋषि के सिवाय अन्य जीवो) को भी मारता है ?

[६-१ उ] गौतम ! वह (ऋषि को मारने वाला पुरुष) ऋषि को भी मारता है, नोऋषि को भी मारता है।

[२] से केणट्ठेणं भते ! एवं वुच्चइ जाव नोइसिं पि हणइ ?

गोयमा ! तस्स णं एव भवइ—एव खलु अह एग इसिं हणामि, से ण एगं इसिं हणमाणे अणते जीवे हणइ से तेणट्ठेण निक्खेवओ।

[६-२ प्र] भगवन् ! ऐसा कहने का क्या कारण है कि ऋषि को मारने वाला पुरुष ऋषि को भी मारता है और नोऋषि को भी ?

[६-२ उ] गौतम ! ऋषि को मारने वाले उस पुरुष के मन मे ऐसा विचार होता है कि मैं एक ऋषि को मारता हूँ, किन्तु वह एक ऋषि को मारता हुआ अनन्त जीवो को मारता है। इस कारण हे गौतम ! पूर्वोक्त रूप से कहा गया है।

विवेचन—प्राणिघात के सम्बन्ध मे सापेक्ष सिद्धान्त—(१) कोई व्यक्ति किसी पुरुष को मारता है तो कभी केवल उसी पुरुष का वध करता है, कभी उसके साथ अन्य एक जीव का और कभी अन्य जीवो का वध भी करता है, यो तीन भग होते है, क्योकि कभी उस पुरुष के आश्रित जू, लीख, कृमि-कीडे आदि या रक्त, मवाद आदि के आश्रित अनेक जीवो का वध कर डालता है। शरीर को सिकोडने-पसारने आदि मे भी अनेक जीवो का वध सभव है।

(२) ऋषि का घात करता हुआ व्यक्ति अनन्त जीवो का घात करता है, यह एक ही भग है। इसका कारण यह है कि ऋषि-अवस्था मे वह सर्वविरत होने से अनन्त जीवो का रक्षक होता है, किन्तु मर जाने पर वह अविरत होकर अनन्त जीवो का घातक बन जाता है। अथवा जीवित रहता हुआ ऋषि अनेक प्राणियो को प्रतिबोध देता है, वे प्रतिबोधप्राप्त प्राणी क्रमश मोक्ष पाते है। मुक्त जीव अनन्त ससारी प्राणियो के अघातक होते है। अत उन अनन्त जीवो की रक्षा मे जीवित ऋषि कारण है। इसलिए कहा गया है कि ऋषिघातक व्यक्ति अन्य अनन्त जीवो की घात करता है।[1]

घातक व्यक्ति को वैरस्पर्श की प्ररूपणा—

७ [१] पुरिसे ण भते ! पुरिस हणमाणे किं पुरिसवेरेण पुट्ठे, नोपुरिसवेरेणं पुट्ठे ?

गोयमा ! नियमा ताव पुरिसवेरेण पुट्ठे १, अहवा पुरिसवेरेण य णोपुरिसवेरेण य पुट्ठे २, अहवा पुरिसवेरेण य नोपुरिसवेरेहि य पुट्ठे ३।

[७-१ प्र] भगवन् ! पुरुष को मारता हुआ कोई भी व्यक्ति क्या पुरुष-वैर से स्पृष्ट होता है, अथवा नोपुरुष-वैर (पुरुष के सिवाय अन्य जीव के साथ वैर) से स्पृष्ट भी होता है ?

[७-१ उ] गौतम ! वह व्यक्ति नियम से (निश्चित रूप से) पुरुषवैर से स्पृष्ट होता ही है। अथवा पुरुषवैर से और नोपुरुषवैर से स्पृष्ट होता है, अथवा पुरुषवैर से और नोपुरुषवैरो (पुरुषो के अतिरिक्त अनेक जीवो के वैर) से स्पृष्ट होता है।

[२] एव आस, एव जाव चिल्ललग जाव अहवा चिल्ललगवेरेण य णोचिल्ललगवेरेहि य पुट्ठे।

[७-२] इसी प्रकार अश्व से लेकर यावत् चित्रल के विषय मे भी जानना चाहिए, यावत् अथवा चित्रलवैर से और नोचित्रल-वैरो से स्पृष्ट होता है।

८ पुरिसे ण भते ! इसिं हणमाणे किं इसिवेरेण पुट्ठे, णोइसिवेरेण पुट्ठे ?

गोयमा ! नियमा ताव इसिवेरेण पुट्ठे १, अहवा इसिवेरेण य णोइसिवेरेण य पुट्ठे २, अहवा इसिवेरेण य नोइसिवेरेहि य पुट्ठे ३।

१ (क) भगवती अ वृत्ति ४९१ (ख) भगवती भा ४ (प घेवरचन्दजी) पृ १७७६

[८ प्र] भगवन् ! ऋषि को मारता हुआ कोई पुरुष, क्या ऋषिवैर से स्पृष्ट होता है, या नोऋषिवैर से स्पृष्ट होता है ?

[८ उ] गौतम ! वह (ऋषिघातक) नियम से ऋषिवैर और नोऋषि-वैरो से स्पृष्ट होता है ।

विवेचन—घातक व्यक्ति के लिए वैरस्पर्शप्ररूपणा—(क) पुरुष को मारने वाले व्यक्ति के लिए वैरस्पर्श के तीन भग होते है –(१) वह नियम से पुरुषवैर से स्पृष्ट होता है, (२) पुरुष को मारते हुए किसी दूसरे प्राणी का वध करे तो एक पुरुषवैर से और एक नोपुरुषवैर से स्पृष्ट होता है, (३) यदि एक पुरुष का वध करता हुआ, अन्य अनेक प्राणियो का वध करे तो वह पुरुषवैर से और अन्य अनेक नोपुरुषवैरो से स्पृष्ट होता है । हस्ती, अश्व आदि के सम्बन्ध मे भी सर्वत्र ये ही तीन भग होते है । (ख) सोपक्रम आयुवाले ऋषि का कोई वध करे तो वह प्रथम और तृतीय भग का अधिकारी बनता है । यथा—वह ऋषिवैर से तो स्पृष्ट होता ही है, किन्तु जब सोपक्रम आयु वाले अचरम-शरीरी ऋषि का पुरुष का वध होता है तब उसकी अपेक्षा से यह तीसरा भग कहा गया है ।[1]

एकेन्द्रिय जीवो की परस्पर श्वासोच्छ्वाससम्बन्धी प्ररूपणा—

९. पुढविकाइये ण भते ! पुढविकाय चेव आणमति वा पाणमति वा ऊससति वा नीससति वा ?

हता, गोयमा ! पुढविक्काइए पुढविक्काइय चेव आणमति वा जाव नीससति वा ।

[९ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव, पृथ्वीकायिक जीव को आभ्यन्तर और बाह्य श्वासोच्छ्वास के रूप मे ग्रहण करता है और छोडता है ?

[९ उ] हाँ, गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव, पृथ्वीकायिक जीव को आभ्यन्तर और बाह्य श्वासोच्छ्वास के रूप मे ग्रहण करता है और छोडता है ।

१०. पुढविक्काइए ण भते ! आउक्काइय आणमति वा जाव नीससति वा ?

हता, गोयमा ! पुढविक्काइए आउक्काइय आणमति वा जाव नीससति वा ।

[१० प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव, अप्कायिक जीव को यावत् श्वासोच्छ्वास के रूप मे ग्रहण करता और छोडता है ?

[१० उ] हाँ, गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव, अप्कायिक जीव को (आभ्यन्तर और बाह्य श्वासोच्छ्वास के रूप मे) ग्रहण करता और छोडता है ।

११ एव तेउक्काइय वाउक्काइय । एवं वणस्सइकाइय ।

[११] इसी प्रकार तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीव को भी यावत् ग्रहण करता और छोडता है ।

१२. आउक्काइए ण भते ! पुढविक्काइय आणमति वा पाणमति वा० ? एवं चेव ।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्र ४९१

[१२ प्र] भगवन् ! अप्कायिक जीव, पृथ्वीकायिक जीवो को आभ्यन्तर एव बाह्य श्वासोच्छ्वास के रूप मे ग्रहण करते और छोडते है ?

[१२ उ] गौतम ! पूर्वोक्तरूप से ही जानना चाहिए ।

१३. आउक्काइए ण भते ! आउक्काइय चेव आणमति वा० ? एव चेव ।

[१३ प्र] भगवन् ! अप्कायिक जीव, अप्कायिक जीव को आभ्यन्तर एव बाह्य श्वासोच्छ्वास के रूप मे ग्रहण करता और छोडता है ?

[१३ उ] (हाँ, गौतम !) पूर्वोक्तरूप से जानना चाहिए ।

१४ एव तेउ-वाउ-वणस्सइकाइय ।

[१४] इसी प्रकार तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक के विषय मे भी जानना चाहिए ।

१५. तेउक्काइए ण भते ! पुढविक्काइय आणमति वा ? एवं जाव वणस्सइकाइए ण भते ! वणस्सइकाइय चेव आणमति वा० ? तहेव ।

[१५ प्र] भगवन् ! तेजस्कायिक जीव पृथ्वीकायिकजीवो को आभ्यन्तर एव बाह्य श्वासोच्छ्वास के रूप मे ग्रहण करता और छोडता है ? इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीव वनस्पतिकायिक जीव को आभ्यन्तर एव बाह्य श्वासोच्छ्वास के रूप मे ग्रहण करता और छोडता है ?

[१५ उ] (गौतम !) यह सब पूर्वोक्तरूप से जानना चाहिए ।

विवेचन—एकेन्द्रिय जीवो की श्वासोच्छ्वाससम्बन्धी प्ररूपणा—प्रस्तुत सात सूत्रो (९ से १५ तक) मे बताया गया है कि पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवो को श्वासोच्छ्वास रूप मे ग्रहण करते और छोडते है। इसी प्रकार अप्कायिकादि चारो स्थावर जीव भी पृथ्वीकायिकादि पाचो स्थावर जीवो को श्वासोच्छ्वास रूप मे ग्रहण करते और छोडते है । इन पाचो के २५ आलापक (सूत्र) होते है । जैसे वनस्पति एक के ऊपर दूसरी स्थित हो कर उसके तेज को ग्रहण कर लेती है, उसी प्रकार पृथ्वीकायिकादि भी अन्योन्य सम्बद्ध होने से उस रूप मे श्वासोच्छ्वास (प्राणापान) आदि कर लेते है ।[1]

आणमति पाणमति · भावार्थ—आभ्यन्तर श्वास और उच्छ्वास लेता है ।[2]

ऊससति नीससति—बाह्य श्वास और उच्छ्वास ग्रहण करते-छोडते हैं ।[3]

पृथ्वीकायिकादि द्वारा पृथ्वीकायिकादि को श्वासोच्छ्वास करते समय क्रिया-प्ररूपणा—

१६ पुढविक्काइए ण भते ! पुढविकाइय चेव आणममाणे वा पाणममाणे वा ऊससमाणे वा नीससमाणे वा कइकिरिए ?

गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पचकिरिए ।

---

१ (क) भगवती भा ४ (प घेवरचन्दजी), पृ १७८१ (ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९२
२ वही, पत्र ४९२ ३ वही, पत्र ४९२

[१६ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव, पृथ्वीकायिक जीव को आभ्यन्तर एव बाह्य श्वासोच्छ्वास के रूप मे ग्रहण करते और छोडते हुए कितनी क्रिया वाले होते है ?

[१६ उ] गौतम ! कदाचित् तीन क्रिया वाले, कदाचित् चार क्रिया वाले और कदाचित् पाच क्रिया वाले होते है ।

१७. पुढविक्काइए ण भते ! आउक्काइय आणममाणे वा० ? एव चेव ।

[१७ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव, अप्कायिक जीवो को आभ्यन्तर एव बाह्य श्वासोच्छ्वास के रूप मे ग्रहण करते और छोडते हुए कितनी क्रिया वाले होते है ?

[१७ उ] हे गौतम ! पूर्वोक्त प्रकार से ही जानना चाहिए ।

१८ एव जाव वणस्सइकाइय ।

[१८] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक तक कहना चाहिए ।

१९. एव आउक्काइएण वि सव्वे वि भाणियव्वा ।

[१९] इसी प्रकार अप्कायिक जीवो के साथ भी पृथ्वीकायिक आदि सभी का कथन करना चाहिए ।

२०. एव तेउक्काइएण वि ।

[२०] इसी प्रकार तेजस्कायिक के साथ भी पृथ्वीकायिक आदि का कथन करना चाहिए ।

२१. एव वाउक्काइएण वि ।

[२१] इसी प्रकार वायुकायिक जीवो के साथ भी पृथ्वीकायिक आदि का कथन करना चाहिए ।

२२. वणस्सइकाइए ण भते ! वणस्सइकाइय चेव आणममाणे वा० ? पुच्छा ।

गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पचकिरिए ।

[२२ प्र] भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीव, वनस्पतिकायिक जीवो को आभ्यन्तर और बाह्य श्वासोच्छ्वास के रूप मे ग्रहण करते और छोडते हुए कितनी क्रिया वाले होते है ?

[२२ उ] गौतम ! कदाचित् तीन क्रिया वाले, कदाचित् चार क्रिया वाले और कदाचित् पाच क्रिया वाले होते हैं ।

विवेचन—श्वासोच्छ्वास मे क्रियाप्ररूपणा—पृथ्वीकायिकादि जीव पृथ्वीकायिकादि जीवो को श्वासोच्छ्वासरूप मे ग्रहण करते हुए, छोडते हुए, जब तक उनको पीडा उत्पन्न नही करते, तब तक कायिकी आदि तीन क्रियाएँ लगती है, जब पीडा उत्पन्न करते है तब पारितापनिकी-सहित चार क्रियाएँ लगती है और जब उन जीवो का वध करते है तब प्राणातिपातिकी सहित पाचो क्रियाएँ लगती हैं ।[1]

---

१ (क) पाच क्रियाएँ इस प्रकार है—(१) कायिकी, (२) आधिकरणिकी, (३) प्राद्वेषिकी, (४) पारितापनिकी और (५) प्राणातिपातिकी ।

(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९२

वायुकाय को वृक्षमूलादि कंपाने-गिराने संबंधी क्रिया—

२३. वाउक्काइए ण भते ! रुक्खस्स मूल पचालेमाणे वा पवाडेमाणे वा कतिकिरिए ?

गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पचकिरिए।

[२३ प्र] भगवन् ! वायुकायिक जीव, वृक्ष के मूल को कपाते हुए और गिराते हुए कितनी क्रिया वाले होते है ?

[२३ उ] गौतम ! वे कदाचित् तीन क्रिया वाले, कदाचित् चार क्रिया वाले और कदाचित् पाच क्रिया वाले होते है।

२४ एव कद।

[२४] इसी प्रकार कद को कपाने आदि के सम्बन्ध मे जानना चाहिए।

२५. एव जाव बीय पचालेमाणे वा० पुच्छा।

गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पचकिरिए।

सेवं भंते ! सेव भते ! त्ति०।

॥ चउत्तीसइमो उद्देसो समत्तो ॥९ ३४॥

॥ नवम सत समत्त ॥९॥

[२५ प्र] इसी प्रकार यावत् बीज को कपाते या गिराते हुए आदि की क्रिया से सम्बन्धित प्रश्न।

[२५ उ] गौतम ! वे कदाचित् तीन क्रिया वाले, कदाचित् चार क्रिया वाले, कदाचित् पाच क्रिया वाले होते है।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर यावत् गौतमस्वामी विचरते हैं।

विवेचन—वायुकायिको द्वारा वृक्षादि कम्पन-पातन-सम्बन्धी क्रिया—वायुकायिक जीव वृक्ष के मूल को तभी कम्पित कर सकते है या गिरा सकते है, जब कि वृक्ष नदी के किनारे हो और उसका मूल पृथ्वी से ढँका हुआ न हो।

शका-समाधान—वृक्ष के मूल को गिराने मात्र से पारितापनिकी सहित तीन क्रियाएँ वायुकायिकजीवो को कैसे लग सकती है ? इसका समाधान वृत्तिकार यो करते है—'अचेतनमूल की अपेक्षा से तीन क्रियाएँ सम्भव हैं।'[1]

। नवम शतक चौतीसवाँ उद्देशक समाप्त ॥

॥ नवम शतक समाप्त ॥

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९२

दसमं सयं : दशम शतक

प्राथमिक

* भगवतीसूत्र के दसवे शतक मे कुल चौतीस उद्देशक है, जिनमे मनुष्य जीवन से तथा दिव्य जीवन से सम्बन्धित विषयो का प्रतिपादन किया गया है।

* दिशाएँ, मानव के लिए ही नही, समस्त सञ्ज्ञीपचेन्द्रिय जीवो के लिए अत्यन्त मार्गदर्शक बनती है, विशेषत जल, स्थल एव नभ से यात्रा करने वाले मनुष्य को अगर दिशाओ का बोध न हो तो वह भटक जाएगा, पथभ्रान्त हो जाएगा। जिस श्रावक ने दिशापरिमाणव्रत अगीकार किया हो, उसके लिए तो दिशा का ज्ञान अतीव ही आवश्यक है। प्राचीनकाल मे समुद्रयात्री कुतुबनुमा (दिशादर्शक-यत्र) रखते थे, जिसकी सुई सदैव उत्तर की ओर रहती है। योगी जन रात्रि मे ध्रुव तारे को देखकर दिशा ज्ञात करते है। इसीलिए श्रीगौतमस्वामी ने भगवान् से प्रथम उद्देशक मे दिशाओ के स्वरूप के विषय मे प्रश्न किया है कि वे कितनी है? वे जीवरूप है या अजीवरूप? उनके देवता कौन-कौन से है जिनके आधार पर उनके नाम पडे है? दिशाओ को भगवान् ने जीवरूप भी बताया है, अजीवरूप भी। विदिशाएँ जीवरूप नही, किन्तु जीवदेश, जीवप्रदेश रूप हैं तथा रूपी अजीवरूप भी है, अरूपी अजीवरूप भी है, इत्यादि वर्णन पढने से यह स्पष्ट प्रेरणा मिलती है कि प्रत्येक साधक को दिशाओ मे स्थित जीव या अजीव की किसी प्रकार से आशातना या असयम नही करना चाहिए। अन्तिम दो सूत्रो मे शरीर के प्रकार एव उससे सम्बन्धित तथ्यो का अतिदेश किया है।

* द्वितीय उद्देशक मे कषायभाव मे स्थित सवृत अनगार को विविध रूप देखते हुए साम्परायिकी और अकषायभाव मे स्थित को ऐर्यापथिकी क्रिया लगने का सयुक्तिक प्रतिपादन है। साथ ही योनियो और वेदनाओ के भेद-प्रभेद एव स्वरूप का तथा मासिक भिक्षुप्रतिमा की वास्तविक आराधना का दिग्दर्शन कराया गया है। इसके पश्चात् अकृत्यसेवी भिक्षु की आराधना-अनाराधना का सयुक्तिक प्रतिपादन किया गया है। यह उद्देशक साधको के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण व प्रेरक है।

* तृतीय उद्देशक मे देवो और देवियो की, एक दूसरे के मध्य मे होकर गमन करने की सहज शक्ति और अपरा शक्ति [वैक्रियशक्ति] का निरूपण किया गया है। १८ वे सूत्र मे दौडते हुए घोडे की खू-खू ध्वनि का हेतु बताया गया है और अन्तिम १९ वें सूत्र मे असत्यामृषाभाषा के १२ प्रकार बता कर उनमे से बैठे रहेगे, सोयेगे, खडे होगे आदि भाषा को प्रज्ञापनी बताकर भगवान् ने उसके मृषा होने का निषेध किया है।

* चतुर्थ उद्देशक के प्रारम्भ मे गणधर गौतमस्वामी से श्यामहस्ती अनगार के त्रायस्त्रिशक देवो के अस्तित्व हेतु तथा सदाकाल स्थायित्व के सम्बन्ध मे प्रश्नोत्तर है। अन्त मे गौतम-

स्वामी के प्रश्न के उत्तर मे स्वय भगवान् बताते है कि द्रव्यार्थिक नय से त्रायस्त्रिशक देव प्रवाह-रूप से नित्य है, किन्तु पर्यायार्थिक नय से व्यक्तिगत रूप से पुराने देवो का च्यवन हो जाता है, उनके स्थान पर नये त्रायस्त्रिशक देव जन्म लेते है। त्रायस्त्रिशक देव बनने के जो कारण बताए है, उनसे दो बाते स्पष्ट होती है—[१] जो भवनपति देवो के इन्द्रो के त्रायस्त्रिशक देव हुए, वे पूर्वजन्म मे पहले तो उग्रविहारी शुद्धाचारी श्रमणोपासक थे, किन्तु बाद मे शिथिलाचारी प्रमादी बन गए तथा अन्तिम समय मे सल्लेखना-सथारा के समय आलोचना-प्रतिक्रमणादि नही किया, तथा [२] जो वैमानिक देवेन्द्रो के त्रायस्त्रिशक देव हुए, वे पूर्वजन्म मे पहले और पीछे उग्रविहारी शुद्धाचारी श्रमणोपासक रहे और अन्तिम समय मे सलेखना-सथारा के दौरान उन्होने आलोचना, प्रतिक्रमणादि करके आत्मशुद्धि कर ली। इस समग्र पाठ से यह स्पष्ट है कि वाणव्यन्तर और ज्योतिष्क देवो मे त्रायस्त्रिशक देव नही होते।

* पचम उद्देशक मे चमरेन्द्र आदि भवनवासी देवेन्द्रो तथा उनके लोकपालो का, पिशाच आदि व्यन्तरजातीय देवो के इन्द्रो की, चन्द्रमा सूर्य एव ग्रहो की एव शक्रेन्द्र तथा ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियो की सख्या, प्रत्येक अग्रमहिषी के देवी-परिवार की सख्या एव अपने-अपने नाम के अनुरूप राजधानी एव सिहासन पर बैठकर अपनी-अपनी सुधर्मा सभा मे स्वदेवीवर्ग के साथ मैथुन निमित्तक भोग भोगने की असमर्थता का निरूपण किया है।

* छठे उद्देशक मे शक्रेन्द्र की सौधर्मकल्प स्थित सुधर्मा सभा की लम्बाई-चौडाई, विमानो की सख्या तथा शक्रेन्द्र के उपपात, अभिषेक, अलकार, अर्चनिका, स्थिति, यावत् आत्मरक्षक इत्यादि परिवार के समस्त वर्णन का अतिदेश किया गया है। अन्तिम सूत्र मे शक्रेन्द्र की ऋद्धि, द्युति, यश, प्रभाव, स्थिति, लेश्या, विशुद्धि एव सुख आदि का निरूपण भी अतिदेशपूर्वक किया गया है।

* सातवे से चौतीसवे उद्देशक तक मे उत्तरदिशावर्ती २८ अन्तर्द्वीपो का निरूपण भी जीवा= जीवाभिगम सूत्र के अतिदेशपूर्वक किया गया है। [1]

* कुल मिलाकर पूरे शतक मे मनुष्यो और देवो की आध्यात्मिक, भौतिक एव दिव्य शक्तियो का निर्देश किया गया है। □□

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, विसयाणुक्कमो पृ ३७-३८

स य : दश शतक

संग्रहणी-गाथार्थ

दशम शतक के चौतीस उद्देशको की संग्रहगाथा—

> **१. दिस १ सवुडअणगारे २ आइड्ढी ३ सामहत्थि ४ देवि ५ सभा ६ ।**
> **उत्तर अतरदीवा ७-३४ दसमम्मि सयम्मि चोत्तीसा ।।१।।**

[१] दसवे शतक के चौतीस उद्देशक इस प्रकार है—

(१) दिशा, (२) सवृत अनगार, (३) आत्मऋद्धि, (४) श्यामहस्ती, (५) देवी, (६) सभा और (७ से ३४ तक) उत्तरवर्ती अन्तर्द्वीप ।

विवेचन—दशम शतक के चोतीस उद्देशक—प्रस्तुत सूत्र (१) मे दसवे शतक के चौतीस उद्देशको का नामोल्लेख किया गया है। उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—(१) प्रथम उद्देशक मे दिशाओ के सम्बन्ध मे निरूपण है। (२) द्वितीय उद्देशक मे सवृत अनगार आदि के विषय मे निरूपण है। (३) तृतीय उद्देशक मे देवावासो को उल्लघन करने मे देवो की आत्मऋद्धि (स्वशक्ति) का निरूपण है। (४) चतुर्थ उद्देशक मे श्रमण भगवान् महावीर के 'श्यामहस्ती' नामक शिष्य के प्रश्नो से सम्बन्धित कथन है। (५) पचम उद्देशक मे चमरेन्द्र आदि इन्द्रो की देवियो (अग्रमहिषियो) के सम्बन्ध मे निरूपण है। (६) छठे उद्देशक मे देवो की सुधर्मा सभा के विषय मे प्रतिपादन है और ७ वे से ३४ वे उद्देशक मे उत्तरदिशा के २८ अन्तर्द्वीपो के विषय मे २८ उद्देशक है।[१]

□□

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९२

पढमो उद्देसओ : थम उद्देशक

'दिस' : दिशाओ का स्वरूप

उपोद्घात—

२ रायगिहे जाव एव वदासी—

[२] राजगृह नगर मे गौतम स्वामी ने (श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से) यावत् इस प्रकार पूछा—

दिशाओ का स्वरूप—

३. किमिय भते ! पाईणा ति पवुच्चति ?

गोयमा ! जीवा चेव अजीवा चेव ।

[३ प्र] भगवन् ! यह पूर्व दिशा क्या कहलाती है ?

[३ उ] गौतम ! यह जीवरूप भी है और अजीवरूप भी है ।

४. किमिय भते ! पडीणा ति पवुच्चति ?

गोयमा ! एव चेव ।

[४ प्र] भगवन् ! यह पश्चिम दिशा क्या कहलाती है ?

[४ उ] गौतम ! यह भी पूर्वदिशा के समान जानना चाहिए ।

५. एव दाहिणा, एव उदीणा, एवं उड्ढा, एव अहा वि ।

[५] इसी प्रकार दक्षिण दिशा, उत्तर दिशा, ऊर्ध्व दिशा और अधो दिशा के विषय मे भी जानना चाहिए ।

विवेचन—दिशाएँ : जीव-अजीवरूप क्यो ? प्रस्तुत तीन सूत्रो (३-४-५) मे पूर्वादि छहो दिशाओ के स्वरूप के सम्बन्ध मे गौतमस्वामी द्वारा पूछे जाने पर भगवान् ने उन्हे जीवरूप भी बताया है, अजीवरूप भी । पूर्व आदि सभी दिशाएँ जीवरूप इसलिए है कि उनमे एकेन्द्रिय आदि जीव रहे हुए है और अजीवरूप इसलिए हैं कि उनमे अजीव (धर्मास्तिकायादि) पदार्थ रहे हुए है ।[1] पूर्व दिशा का 'प्राची' और पश्चिम दिशा का 'प्रतीची' नाम भी प्रसिद्ध है ।

दूसरे दार्शनिको—विशेषत नैयायिक-वैशेषिको ने दिशा को द्रव्यरूप माना है, कई दर्शन-परम्पराओ मे दिशाओ को देवतारूप मान कर उनकी पूजा करने का विधान किया है । तथागत बुद्ध ने द्रव्यदिशाओ की अपेक्षा भावदिशाओ की पूजा का स्वरूप बताया है । किन्तु भगवान् महावीर ने पूर्वोक्त कारणो से इन्हे जीव-अजीवरूप बताया है ।[2]

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९३

२ (क) पृथिव्यपतेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनासि नवैव । —तर्कसग्रह, सू २

(ख) सिंगालसुत्त जातक

दिशाओं के दस भेद—

६. कति ण भंते ! दिसाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! दस दिसाओ पण्णत्ताओ, त जहा—पुरत्थिमा १ पुरत्थिमदाहिणा २ दाहिणा ३ दाहिणपच्चत्थिमा ४ पच्चत्थिमा ५ पच्चत्थिमुत्तरा ६ उत्तरा ७ उत्तरपुरत्थिमा ८ उड्ढा ९ अहा १० ।

[६ प्र] भगवन् ! दिशाएँ कितनी कही गई है ?

[६ उ] गौतम ! दिशाएँ दस कही गई है । वे इस प्रकार है—(१) पूर्व, (२) पूर्व-दक्षिण (आग्नेयकोण), (३) दक्षिण, (४) दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्यकोण), (५) पश्चिम, (६) पश्चिमोत्तर (वायव्यकोण), (७) उत्तर, (८) उत्तरपूर्व (ईशानकोण), (९) ऊर्ध्वदिशा और (१०) अधोदिशा ।

विवेचन—दश दिशाओं के नाम—प्रस्तुत छठे सूत्र मे दश दिशाओं के नामो का उल्लेख किया गया है । पूर्वसूत्रो मे ६ दिशाएँ बताई गई थी । इसमे चार विदिशाओं के ४ कोणो (पूर्वदक्षिण, दक्षिणपश्चिम, पश्चिमोत्तर, एव उत्तरपूर्व) को जोड कर १० दिशाएँ बताई गई है ।[1]

दिशाओं का यन्त्र—

वायव्य	उत्तर	ईशान
पश्चिम	ऊर्ध्व एव अध	पूर्व
नैऋत्य	दक्षिण	आग्नेय

दश दिशाओं के नामान्तर—

७. एयासि ण भंते ! दसण्हं दिसाण कति णामधेज्जा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दस नामधेज्जा पण्णत्ता, त जहा—

इदऽग्गेयी १-२ जम्मा य ३ नेरती ४ वारुणी ५ य वायव्वा ६ ।
सोमा ७ ईसाणी या ८ विमला य ९ तमा य १० बोधव्वा ॥२॥

[७ प्र] भगवन् ! इन दस दिशाओं के कितने नाम कहे गए है ?

[७ उ] गौतम ! (इनके) दस नाम है । वे इस प्रकार है—

[गाथार्थ] (१) ऐन्द्री (पूर्व), (२) आग्नेयी (अग्निकोण), (३) याम्या (दक्षिण), (४) नैऋती (नैऋत्यकोण), (५) वारुणी (पश्चिम), (६) वायव्या (वायव्यकोण), (७) सौम्या (उत्तर), (८) ऐशानी (ईशानकोण), (९) विमला (ऊर्ध्वदिशा) और (१०) तमा (अधोदिशा) । ये दस (दिशाओं के) नाम समझने चाहिए ।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठटिप्पण) भा २, पृ ४८५

विवेचन—दिशाओ के ये दस नामान्तर क्यो ? प्रस्तुत ७ वे सूत्र मे दिशाओ के दूसरे नामो का उल्लेख किया गया है। पूर्वदिशा (ऐन्द्री) इसलिए कहलाती है क्योकि उसका स्वामी (देवता) इन्द्र है। इसी प्रकार अग्नि, यम, नैर्ऋति, वरुण, वायु, सोम और ईशान देवता स्वामी होने से इन दिशाओ को क्रमश आग्नेयी, याम्या, नैर्ऋती, वारुणी, वायव्या, सौम्या और ऐशानी कहते हे। ऊर्ध्वदिशा प्रकाश-युक्त होने से उसे 'विमला' कहते है और अधोदिशा अन्धकारयुक्त होने से उमे 'तमा' कहते है।[1]

दश दिशाओ की जीव-अजीव सम्बन्धी वक्तव्यता—

८ इदा ण भते ! दिसा कि जीवा, जीवदेसा, जीवपदेसा, अजीवा, अजीवदेसा, अजीवपदेसा ?

गोयमा ! जीवा वि, त चेव जाव अजीवपएसा वि। जे जीवा ते नियम एगिदिया बेइदिया जाव पचिदिया, अणिदिया। जे जीवदेसा ते नियम एगिदियदेसा जाव अणिदियदेसा। जे जीवपएसा ते नियम एगिदियपएसा जाव अणिदियपएसा। जे अजीवा, ते दुविहा पण्णत्ता, त जहा— रूविअजीवा य, अरूविअजीवा य। जे रूविअजीवा ते चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—खधा १ खधदेसा २ खधपएसा ३ परमाणुपोग्गला ४।

जे अरूविअजीवा ते सत्तविहा पण्णत्ता, त जहा—नो धम्मत्थिकाये, धम्मत्थिकायस्स देसे १ धम्मत्थिकायस्स पदेसा २, नो अधम्मत्थिकाये, अधम्मत्थिकायस्स देसे ३ अधम्मत्थिकायस्स पदेसा ४, नो आगासत्थिकाये, आगासत्थिकायस्स देसे ५ आगासत्थिकायस्स पदेसा ६ अद्धासमये ७।

[८ प्र] भगवन् ! ऐन्द्री (पूर्व) दिशा जीवरूप है, जीव के देशरूप है, जीव के प्रदेशरूप है, अथवा अजीवरूप है, अजीव के देशरूप है या अजीव के प्रदेशरूप है ?

[८ उ] गौतम ! वह (ऐन्द्री दिशा) जीवरूप भी है, इत्यादि पूर्ववत् जानना चाहिए, यावत् वह अजीवप्रदेशरूप भी है।

उसमे जो जीव है, वे नियमत एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, यावत् पचेन्द्रिय तथा अनिन्द्रिय (केवलज्ञानी) है। जो जीव के देश है, वे नियमत एकेन्द्रिय जीव के देश हैं, यावत् अनिन्द्रिय जीव के देश है। जो जीव के प्रदेश है, वे नियमत एकेन्द्रिय जीव के प्रदेश है, यावत् अनिन्द्रिय जीव के प्रदेश हैं। उसमे जो अजीव है, वे दो प्रकार के है। यथा-रूपी अजीव और अरूपी अजीव। रूपी अजीवो के चार भेद है। यथा (१) स्कन्ध, (२) स्कन्धदेश, (३) स्कन्धप्रदेश और (४) परमाणुपुद्गल। जो अरूपी अजीव है, वे सात प्रकार के हैं। यथा—(१) (स्कन्धरूपसमग्र) धर्मास्तिकाय नही, किन्तु धर्मास्तिकाय का देश है, (२) धर्मास्तिकाय के प्रदेश है, (३) (स्कन्धरूप) अधर्मास्तिकाय नही, किन्तु अधर्मास्तिकाय का देश है, (४) अधर्मास्तिकाय के प्रदेश है, (५) (स्कन्धरूप) आकाशास्तिकाय नही, किन्तु आकाशास्तिकाय का देश है, (६) आकाशास्तिकाय के प्रदेश है और (७) अद्धासमय अर्थात् काल है।

---

१ इन्द्रो देवता यस्या सैन्द्री। अग्निर्देवता यस्या साऽग्नेयी। ईशानदेवता ऐशानी विमलतया विमला। तमा रात्रिस्तदाकारत्वात्तमाऽन्धकारेत्यर्थ। —भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९३

विवेचन—दिशा-विदिशाओं का आकार एवं व्यापकत्व—पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण, ये चारो महादिशाएँ गाडी (शकट) की उद्धि (ओढण) के आकार की है और आग्नेयी, नैर्ऋती, वायव्या और ऐशानी ये चार विदिशाएँ मुक्तावली (मोतियो की लडी) के आकार की हैं। ऊर्ध्वदिशा और अधोदिशा रुचकाकार है, अर्थात्—मेरुपर्वत के मध्यभाग मे ८ रुचकप्रदेश है, जिनमे से चार ऊपर की ओर और चार नीचे की ओर गोस्तनाकार है। यहाँ से दस दिशाएँ निकली हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण, ये चारो दिशाएँ मूल मे दो-दो प्रदेशी निकली है और आगे दो-दो प्रदेश की वृद्धि होती हुई लोकान्त तक एव अलोक मे चली गई है। लोक मे असख्यात प्रदेश तक और अलोक मे अनन्त प्रदेश तक बढी है। इसलिए इनकी आकृति गाडी के ओढण के समान है। चारो विदिशाएँ एक-एक प्रदेश वाली निकली है और लोकान्त तक एकप्रदेशी ही चली गई हैं। ऊर्ध्व और अधोदिशा चार-चार प्रदेशी निकली है और लोकान्त तक एव अलोक मे भी चली गई है। पूर्वदिशा जीवादिरूप है किन्तु वहाँ समग्र धर्मास्तिकायादि नही, किन्तु धर्म, अधर्म एव आकाश का एक देशरूप और असख्यप्रदेशरूप है तथा अद्धा-समयरूप है। इस प्रकार अरूपी अजीवरूप सात प्रकार की पूर्वदिशा है।[1]

९. अग्गेयी ण भते ! दिसा किं जीवा, जीवदेसा, जीवपदेसा० पुच्छा।

गोयमा ! णो जीवा, जीवदेसा वि, जीवपदेसा वि, अजीवा वि, अजीवदेसा वि, अजीवपदेसा वि। जे जीवदेसा ते नियम एगिंदियदेसा। अहवा एगिंदियदेसा य बेइदियस्स देसे १, अहवा एगिंदियदेसा बेइदियस्स देसा २, अहवा एगिंदियदेसा य बेइदियाण य देसा ३। अहवा एगिंदियदेसा य तेइदियस्स देसे, एव चेव तियभगो भाणियव्वो। एव जाव अणिंदियाण तियभगो। जे जीवपदेसा ते नियमा एगिंदियपदेसा। अहवा एगिंदियपदेसा य बेइदियस्स पदेसा, अहवा एगिंदियपदेसा य बेइदियाण य पएसा। एव आदिल्लविरहिओ जाव अणिंदियाण।

जे अजीवा ते दुविहा पण्णत्ता, त जहा—रूविअजीवा य अरूविअजीवा य। जे रूविअजीवा ते चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—खधा जाव[2] परमाणुपोग्गला ४। जे अरूविअजीवा ते सत्तविधा पण्णत्ता, त जहा—नो धम्मत्थिकाये, धम्मत्थिकायस्स देसे १ धम्मत्थिकायस्स पदेसा २, एव अधम्मत्थिकायस्स वि ३-४, एव आगासत्थिकायस्स वि जाव आगासत्थिकायस्स पदेसा ५-६; अद्धासमये ७।

[९ प्र] भगवन् आग्नेयीदिशा क्या जीवरूप है, जीवदेशरूप है, अथवा जीवप्रदेशरूप है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[९ उ] गौतम ! वह (आग्नेयीदिशा) जीवरूप नही, किन्तु जीव के देशरूप है, जीव के प्रदेशरूप भी है, तथा अजीवरूप है और अजीव के प्रदेशरूप भी है।

इसमे जीव के जो देश है वे नियमत एकेन्द्रिय जीवो के देश है, अथवा एकेन्द्रियो के बहुत देश और द्वीन्द्रिय का एक देश है १, अथवा एकेन्द्रियो के बहुत देश एव द्वीन्द्रियो के बहुत देश है २

---

१ "सगडुद्धिसठियाओ महादिसाओ हुवति चत्तारि। मुत्तावलीव चउरो दो चेव य होंति रुयगनिभे॥"
—भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९४

२. 'जाव' पद-सूचित पाठ—"खधदेसा, खधपएसा।"

अथवा एकेन्द्रियो के बहुत देश और बहुत द्वीन्द्रियो के बहुत देश है ३ (ये तीन भग है, इसी प्रकार) एकेन्द्रियो के बहुत देश और एक त्रीन्द्रिय का एक देश है १, इसी प्रकार से पूर्ववत् त्रीन्द्रिय के साथ तीन भग कहने चाहिए। इसी प्रकार यावत् अनिन्द्रिय तक के भी क्रमश तीन-तीन भग कहने चाहिए। इसमे जीव के जो प्रदेश है, वे नियम से एकेन्द्रियो के प्रदेश हैं। अथवा एकेन्द्रियो के बहुत प्रदेश और एक द्वीन्द्रिय के बहुत प्रदेश है, अथवा एकेन्द्रियो के बहुत प्रदेश और बहुत द्वीन्द्रियो के बहुत प्रदेश है। इसी प्रकार सर्वत्र प्रथम भग को छोड कर दो-दो भग जानने चाहिए, यावत् अनिन्द्रिय तक इसी प्रकार कहना चाहिए। अजीवो के दो भेद है। यथा—रूपी अजीव और अरूपी अजीव। जो रूपी अजीव है, वे चार प्रकार के है। यथा—स्कन्ध से लेकर यावत् परमाणु पुद्गल तक। अरूपी अजीव सात प्रकार के है। यथा—धर्मास्तिकाय नही, किन्तु धर्मास्तिकाय का देश, धर्मास्तिकाय के प्रदेश, अधर्मास्तिकाय नही, किन्तु अधर्मास्तिकाय का देश, अधर्मास्तिकाय के प्रदेश, आकाशास्तिकाय नही, किन्तु आकाशास्तिकाय का देश, आकाशास्तिकाय के प्रदेश और अद्धासमय (काल)। (विदिशाओ मे जीव नही है, इसलिए सर्वत्र देश-प्रदेश-विषयक भग होते है।)

आग्नेयी विदिशा का स्वरूप—आग्नेयी विदिशा जीवरूप नही है, क्योकि सभी विदिशाओ की चौडाई एक-एक प्रदेशरूप है। वे एकप्रदेशी ही निकली हैं और अन्त तक एकप्रदेशी ही रही है और एक प्रदेश मे समग्र जीव का समावेश नही हो सकता, क्योकि जीव की अवगाहना असख्य-प्रदेशात्मक है।[1]

जीवदेश सम्बन्धी भगजाल—एकेन्द्रिय सकललोकव्यापी होने से आग्नेयी दिशा मे नियमत एकेन्द्रिय देश तो होते ही है। अथवा एकेन्द्रिय सकललोकव्यापी होने से और द्वीन्द्रिय अल्प होने से कही एक की भी सभावना है। इसलिए कहा गया—एकेन्द्रियो के बहुत देश और एक द्वीन्द्रिय का देश, इस प्रकार द्विकसयोगी प्रथम भग हुआ। यो तीन भग होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय के साथ तीन-तीन भग होते है।[2]

१०. जम्मा ण भते ! दिसा किं जीवा० ?

जहा इदा (सु ८) तहेव निरवसेसं।

[१० प्र] भगवन् ! याम्या (दक्षिण)-दिशा क्या जीवरूप है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[१० उ] (गौतम !) ऐन्द्रीदिशा के समान सभी कथन (सू ८ मे उक्त) जानना चाहिए।

११. नेरई जहा अग्गेयी (सु ९)।

[११] नैर्ऋती विदिशा का (एतद्विषयक समग्र) कथन (सू ९ मे उक्त) आग्नेयी विदिशा के समान जानना चाहिए।

१२. वारुणी जहा इदा (सु. ८)।

[१२] वारुणी (पश्चिम)-दिशा का (इस सम्बन्ध मे कथन) (सू ८ मे उक्त) ऐन्द्रीदिशा के समान जानना चाहिए।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९४
२ वही, पत्र ४९४

१३. वायव्वा जहा अग्गेयी (सु. ९)।

[१३] वायव्या विदिशा का कथन आग्नेयी के समान है।

१४. सोमा जहा इंदा।

[१४] सौम्या (उत्तर)-दिशा का कथन ऐन्द्रीदिशा के समान जान लेना चाहिए।

१५ ईसाणी जहा अग्गेयी।

[१५] ऐशानी विदिशा का कथन आग्नेयी के समान जानना चाहिए।

१६. विमलाए जीवा जहा अग्गेईए, अजीवा जहा इंदाए।

[१६] विमला (ऊर्ध्व)-दिशा मे जीवो का कथन आग्नेयी के समान है तथा अजीवो का कथन ऐन्द्रीदिशा के समान है।

१७. एवं तमाए वि, नवरं अरूवी छव्विहा। अद्धासमयो न भण्णति।

[१७] इसी प्रकार तमा (अधोदिशा) का कथन भी जानना चाहिए। विशेष इतना ही है कि तमादिशा मे अरूपी-अजीव के ६ भेद ही हैं, वहाँ अद्धासमय नही है। अत अद्धासमय का कथन नही किया गया।

शेष दिशा-विदिशाओ की जीव-अजीवप्ररूपणा—सू १० से १७ तक आठ सूत्रो मे निरूपित तथ्य का निष्कर्ष यह है कि शेष तीनो दिशाओ का जीव-अजीव सम्बन्धी कथन पूर्वदिशा के समान जानना चाहिए और शेष तीनो विदिशाओ का जीव-अजीव सम्बन्धी कथन आग्नेयीदिशा के समान जानना चाहिए। ऊर्ध्वदिशा मे जीवो का कथन आग्नेयी के समान तथा अजीव-सम्बन्धी कथन ऐन्द्री के समान जानना चाहिए। तमा (अधो)-दिशा का भी जीव-अजीव-सम्बन्धी कथन ऊर्ध्वदिशावत् है किन्तु वहाँ गतिमान् सूर्य का प्रकाश न होने से अद्धासमय का व्यवहार सम्भव नही है। अत वहाँ अद्धासमय (काल) नही है। यद्यपि ऊर्ध्वदिशा मे भी गतिमान् सूर्य का प्रकाश न होने से अद्धासमय का व्यवहार सभव नही है, तथापि मेरुपर्वत के स्फटिक काण्ड मे गतिमान् सूर्य के प्रकाश का सक्रमण होता है। इसलिए वहाँ समय का व्यवहार सम्भव है।[1]

शरीर के भेद प्रभेद तथा सम्बन्धित निरूपण—

१८. कति ण भंते ! सरीरा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंच सरीरा पण्णत्ता, तं जहा—ओरालिए जाव कम्मए।

[१८ प्र] भगवन् ! शरीर कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[१८ उ] गौतम ! शरीर पाच प्रकार के कहे गए है। यथा—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९४

१९. ओरालियसरीरे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ? एवं ओगाहणसंठाणपदं निरवसेसं भाणियव्वं जाव अप्पाबहुगं ति ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ दसमे सए पढमो उद्देसो समत्तो ॥१०-१ ॥

[१९ प्र] भगवन् ! औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१९ उ] (गौतम !) यहाँ प्रज्ञापनासूत्र के (२१वें) अवगाहन-संस्थान-पद में वर्णित समस्त वर्णन यावत् अल्पबहुत्व तक कहना चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ! हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है !

विवेचन—शरीर : प्रकार तथा अवगाहनादि—प्रस्तुत दो सूत्रों (१८-१९) में शरीर सम्बन्धी प्ररूपणा प्रज्ञापनासूत्र के २१ वें अवगाहनसंस्थानपद का अतिदेश करके की गई है । वहाँ शरीर के औदारिक आदि ५ प्रकार, उनका संस्थान (आकार), प्रमाण, पुद्गलचय, शरीरों का पारस्परिक संयोग, द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ, तथा अल्पबहुत्व एवं शरीरों की अवगाहना आदि द्वारों के माध्यम से विस्तृत वर्णन किया गया है । वही समग्र वर्णन अल्पबहुत्व तक यहाँ करना चाहिए ।[1]

॥ दशम शतक : प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

□□
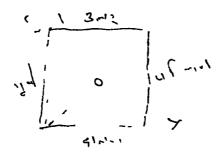
१ (क) प्रज्ञापनासूत्र अवगाहन-संस्थानपद, २१, सू १४७४—१५६६, पृ ३२८-३४९ (महा जै विद्यालय)

(ख) संग्रहगाथा—कइ १ संठाण २ पमाण ३, पोग्गलचिणणा ४ सरीरसंजोगो ५ ।
दव्व-पएसऽप्पबहु ६ सरीरोगाहणाए य ॥१॥ —भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९५

ीओ उद्दे ओ : द्वितीय उद्दे क

संवुडग्रणगारे : संवृत ग्रनगार

उपोद्घात—

१. रायगिहे जाव एव वयासी ।

[१] राजगृह मे (श्रमण भगवान् महावीर से) यावत् गौतमस्वामी ने इस प्रकार पूछा—

वीचिपथ ग्रौर ग्रवीचिपथ स्थित संवृत ग्रनगार को लगने वाली क्रिया—

२. [१] सवुडस्स ण भते ! अणगारस्स वीयी पथे ठिच्चा पुरओ रूवाइं निज्झायमाणस्स, मग्गतो रूवाइ अवयक्खमाणस्स, पासतो रूवाइ अवलोएमाणस्स, उड्ढ रूवाइं ओलोएमाणस्स, अहे रूवाइ ग्रालोएमाणस्स तस्स ण भते ! किं इरियावहिया किरिया कज्जइ, सपराइया किरिया कज्जइ ?

गोयमा ! सवुडस्स णं अणगारस्स वीयी पथे ठिच्चा जाव तस्स ण णो इरियावहिया किरिया कज्जइ, संपराइया किरिया कज्जइ ।

[२-१ प्र] भगवन् ! वीचिपथ (कषायभाव) मे स्थित होकर सामने के रूपो को देखते हुए, पीछे रहे हुए रूपो को देखते हुए, पार्श्ववर्त्ती (दोनो बगल मे) रहे हुए रूपो को देखते हुए, ऊपर के (ऊर्ध्वस्थित) रूपो का ग्रवलोकन करते हुए एव नीचे के (ग्रध स्थित) रूपो का निरीक्षण करते हुए सवृत ग्रनगार को क्या ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है ग्रथवा साम्परायिकी क्रिया लगती है ?

[२-१ उ] गौतम ! वीचिपथ (कषायभाव) मे स्थित हो कर सामने के रूपो को देखते हुए यावत् नीचे के रूपो का ग्रवलोकन करते हुए सवृत ग्रनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया नही लगती, किन्तु साम्परायिकी क्रिया लगती है ।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चइ—सवुड० जाव सपराइया किरिया कज्जइ ?

गोयमा ! जस्स ण कोह-माण-माया-लोभा एव जहा सत्तमसए पढमोद्देसए (स. ७ उ. १ सु. १६ [२]) जाव से ण उस्सुत्तमेव रीयति, से तेणट्ठेण जाव सपराइया किरिया कज्जति ।

[२-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ग्राप ऐसा कहते है कि वीचिपथ मे स्थित यावत् सवृत ग्रनगार को यावत् साम्परायिकी क्रिया लगती है, ऐर्यापथिकी क्रिया नही लगती ?

[२-२ उ] गौतम ! जिसके क्रोध, मान, माया एव लोभ व्युच्छिन्न हो गए हो, उसी को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, इत्यादि (सवृत ग्रनगारसम्बन्धी) सब कथन सप्तम शतक के प्रथम उद्देशक मे कहे ग्रनुसार, यावत्—वह सवृत ग्रनगार सूत्रविरुद्ध (उत्सूत्र) ग्राचरण करता है, यहाँ तक जानना चाहिए । इसी कारण से हे गौतम ! कहा गया कि यावत् साम्परायिकी क्रिया लगती है ।

३. [१] **संवुडस्स ण भते ! अणगारस्स अवीयी पथे ठिच्चा पुरतो रूवाइ निज्झायमाणस्स जाव तस्स णं भते ! किं इरियावहिया किरिया कज्जइ० ? पुच्छा ।**

गोयमा ! संवुड० जाव तस्स ण इरियावहिया किरिया कज्जइ, नो संपराइया किरिया कज्जइ ।

[३-१ प्र] भगवन् ! अवीचिपथ (अकषायभाव) मे स्थित सवृत अनगार को सामने के रूपो को निहारते हुए यावत् नीचे के रूपो का अवलोकन करते हुए क्या ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, अथवा साम्परायिकी क्रिया लगती है ?, इत्यादि प्रश्न ।

[३-१ उ] गौतम ! अकषाय भाव मे स्थित सवृत अनगार को उपर्युक्त रूपो का अवलोकन करते हुए ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, (किन्तु) साम्परायिकी क्रिया नही लगती ।

[२] **से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ ? जहा सत्तमसए सत्तमुद्देसए (स ७ उ. ७ सु. १ [२]) जाव से ण अहासुत्तमेव रीयति, से तेणट्ठेण जाव नो संपराइया किरिया कज्जइ ।**

[३-२ प्र] भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते है ?

[३-२ उ] गौतम ! सप्तम शतक के सप्तम उद्देशक मे वर्णित (—जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न हो गए हो)—ऐसा जो सवृत अनगार यावत् सूत्रानुसार आचरण करता है, (उसको ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, साम्परायिकी क्रिया नही।) इसी कारण मैं कहता हूँ, यावत् साम्परायिक क्रिया नही लगती ।

ऐर्यापथिकी और साम्परायिकी क्रिया के अधिकारी—सप्तम शतक मे प्रतिपादित जैनसिद्धान्त का अतिदेश करके यहाँ बताया गया है कि जो आगे-पीछे के, अगल-बगल के एव ऊपर-नीचे के रूपो का अवलोकन करते हुए चलता है, किन्तु जिसका कषायभाव व्युच्छिन्न नही हुआ है, ऐसे सूत्र-विरुद्ध प्रवृत्ति करने वाले सवृत अनगार को साम्परायिकी क्रिया लगती है, किन्तु जिसका कषायभाव व्युच्छिन्न हो गया है यावत् जो सूत्रानुसार प्रवृत्ति करता है, उस सवृत अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है ।[१-२]

वीयीपथे · चार रूप चार अर्थ—(१) **वीचि(मतः)पथे**—वीचि का यहाँ अर्थ है—सम्प्रयोग, अत भावार्थ हुआ—कषाओ और जीव का सम्बन्ध । वीचिमान् का अर्थ कषायवान् के और पथे का अर्थ 'मार्ग मे' है । (२) **विचिपथे**—विचिर् धातु पृथक्भाव अर्थ मे है । अत भावार्थ हुआ जो यथाख्यातसयम से पृथक् होकर कषायोदय के मार्ग मे है । (३) **विचितिपथे**—जो रागादि विकल्पो के विचिन्तन के पथ मे है, और (४) **विकृतिपथे**—जिस स्थिति मे सरागता होने से विरूपा कृति—क्रिया है, उस विकृति के मार्ग मे ।

अवीयीपथे—चाररूप : चार अर्थ—(१) **अवीचिपथे**—अकषाय सम्बन्ध वाले मार्ग मे, (२) **अविचिपथे**=यथाख्यातसयम से अपृथक् मार्ग मे, (२) **अविचितिपथे**—रागादि विकल्पो के

१-२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९५ का साराश

अविचिन्तन पथ मे और (४) **अविकृतिपथे**—अविकृतिरूप पथ मे यानी वीतराग होने से जिस पथ मे क्रिया अविकृत हो।[1]

'पुरओ' आदि शब्दो का भावार्थ—**पुरओ**—आगे के। **निज्झायमाणस्स**—निहारते या चिन्तन करते हुए। **मग्गओ**—पीछे के। **अवयक्खमाणस्स**—अवकाक्षा—अपेक्षा करते हुए, या प्रेक्षण करते हुए। **अवलोएमाणस्स**—अवलोकन करते हुए। **सपराइया**—साम्परायिकी—कषायसम्बन्धी। **उस्सुत्तमेव रीयति**—उत्सूत्र—सूत्रविरुद्ध ही चलता है। **अहासुत्त**—यथासूत्र—सूत्रानुसार। **ईरियावहिया किरिया**—ऐर्यापथिकी क्रिया, जो केवल योगप्रत्यया कर्मबन्धक्रिया हो।[2]

योनियो के भेद-प्रभेद प्रकार एव स्वरूप—

४. कतिविधा ण भते ! जोणी पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा जोणी पण्णत्ता, त जहा—सीया उसिणा सीतोसिणा। एव जोणीपय निरवसेस भाणियव्व।

[४ प्र] भगवन् ! योनि कितने प्रकार की कही गई है ?

[३ उ] गौतम ! योनि तीन प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—शीत, उष्ण, शीतोष्ण। यहाँ (प्रज्ञापनासूत्र का नौवाँ) योनिपद सम्पूर्ण कहना चाहिए।

विवेचन—योनिसम्बन्धी निरूपण—प्रस्तुत चौथे सूत्र मे योनि के प्रकार, भेदोपभेद, सख्या, वर्णादि का विवरण जानने के लिए प्रज्ञापनासूत्रगत योनिपद का अतिदेश किया गया है।[3]

योनि का निर्वचनार्थ—योनिशब्द 'यु मिश्रणे' धातु से निष्पन्न हुआ है। अत इसका व्युत्पत्तिजन्य अर्थ हुआ—जिसमे तैजस-कार्मणशरीर वाले जीव औदारिक आदि शरीर के योग्य पुद्गलस्कन्ध-समुदाय के साथ मिश्रित होते हैं, उसे योनि कहते है।[4]

योनि के सामान्यतया तीन प्रकार—प्रस्तुत मूल पाठ मे योनि तीन प्रकार की बताई गई है—शीत, उष्ण, शीतोष्ण। शीतस्पर्श के परिणाम वाली शीतयोनि, उष्णस्पर्श के परिणाम वाली उष्णयोनि और उभय-स्पर्श के परिणाम वाली शीतोष्णयोनि कहलाती है। प्रज्ञापना के योनिपद के अनुसार नारको की शीत और उष्ण दो प्रकार की योनियाँ है, देवो और गर्भज जीवो की शीतोष्ण योनियाँ है। तेजस्काय की उष्णयोनि होती है तथा शेष जीवो के तीनो प्रकार की योनियाँ होती है।

---

१ वही, अ वृत्ति, पत्र ४९६

२ वही, पत्र ४९६

३ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), भा २, पृ ४८८-४८९

(ख) प्रज्ञापनासूत्र (म जै विद्यालय) ९ वाँ योनिपद, सू ७३८-७३, पृ १९०-९२

४ 'युवन्ति-तैजस-कार्मणशरीरवन्त औदारिकादिशरीरयोग्यस्कन्धसमुदायेन मिश्रीभवन्ति जीवा यस्या सा योनि ।'

—भगवती अ वृ, पत्र ४९६

प्रकारान्तर से योनि के तीन भेद—इस प्रकार है—सचित्त (जीव-प्रदेशो से सम्बन्धित) अचित्त (सर्वथा जीवरहित) और मिश्र। नारको और देवो की योनियाँ अचित्त होती हे। गर्भज जीवो की सचित्ताचित्त (अगत जीवप्रदेश-सहित और अगत जीवप्रदेश-रहित) योनि होती हे और शेष जीवो की तीनो प्रकार की योनि होती हे।

अन्य प्रकार से योनि के तीन भेद—ये हे—सवृत (जो उत्पत्तिस्थान ढँका हुआ—गुप्त हो, वह), विवृत (जो उत्पत्तिस्थान खुला हुआ हो, वह), एव सवृत-विवृत (जो कुछ ढँका हुआ और कुछ खुला हुआ हो, वह) योनि। नारको, देवो और एकेन्द्रिय जीवो के सवृतयोनि, गर्भज जीवो के सवृत-विवृतयोनि और शेप जीवो के विवृतयोनि होती है।

उत्कृष्टता-निकृष्टता की दृष्टि से योनि के तीन प्रकार—**कूर्मोन्नता** (कछुए की पीठ की तरह उन्नत), **शंखावर्ता**—(शख के समान आवर्त वाली) और **वशीपत्रा**—(वास के दो पत्तो के समान सम्पुट मिले हुए हो)। चक्रवर्ती की पटरानी श्रीदेवी की शखावर्त्ता योनि। तीर्थंकर, वलदेव, वासुदेव आदि उत्तम पुरुषो की माता के कूर्मोन्नता योनि तथा शेप समस्त ससारी जीवो की माता के वशीपत्रा योनि होती है।[1]

चौरासी लाख जीवयोनियाँ—वास्तव मे योनि कहते है—जीवो के उत्पत्तिस्थान को। वह योनि प्रत्येक जीवनिकाय के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के भेद से अनेक प्रकार की है। यथा—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय और वायुकाय की प्रत्येक की ७-७ लाख योनियाँ है, प्रत्येक वनस्पतिकाय की १० लाख, साधारण वनस्पतिकाय की १४ लाख, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय की प्रत्येक की ४-४ लाख और मनुष्य की १४ लाख योनियाँ है। ये सब मिला कर ८४ लाख योनियाँ होती है। यद्यपि व्यक्तिभेद की अपेक्षा से अनन्त जीव होने से जीवयोनियो की सख्या अनन्त होती है, किन्तु यहाँ समान वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाली योनियो को जातिरूप से सामान्यतया एक योनि मानी गई है। इस दृष्टि से योनियो की कुल ८४ लाख जातियाँ (किस्मे) है।[2]

विविध वेदना : प्रकार एवं स्वरूप—

५. कतिविधा ण भते ! वेदणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा वेदणा पण्णत्ता, त जहा—सीता उसिणा सीतोसिणा। एव वेदणापद भाणितव्व जाव—

नेरइया ण भते ! किं दुक्ख वेदणं वेदेंति, सुह वेदण वेदेंति, अदुक्खमसुह वेदण वेदेंति ?

गो ! दुक्ख पि वेदण वेदेंति, सुह पि वेदण वेदेंति, अदुक्खमसुहं पि वेदण वेदेंति।

[५ प्र] भगवन् ! वेदना कितने प्रकार की कही गई है ?

---

१ (क) प्रज्ञापना ९ वाँ योनिपद

(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९६-४९७

२ भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा ४, पृ १७९५

"समवण्णाई समेया बहवो वि हु जोणिभेयलक्खा उ।
सामण्णा घेप्पति हु एक्कजोणीए गहणेणं ॥"

[५ उ] गौतम ! वेदना तीन प्रकार की कही गई है । यथा—शीता, उष्णा और शीतोष्णा । इस प्रकार यहाँ प्रज्ञापनासूत्र का सम्पूर्ण पैंतीसवाँ वेदनापद कहना चाहिए, यावत्—[प्र] 'भगवन्! क्या नैरयिक जीव दु खरूप वेदना वेदते है, या सुखरूप वेदना वेदते है, अथवा अदु ख-असुखरूप वेदना वेदते है ? [उ] हे गौतम ! नैरयिक जीव दु खरूप वेदना भी वेदते है, सुखरूप वेदना भी वेदते हैं और अदु ख-असुखरूप वेदना भी वेदते है ।

विवेचन—वेदनापद के अनुसार वेदना-निरूपण—प्रस्तुत ५ वे सूत्र मे प्रज्ञापनासूत्रगत वेदनापद का अतिदेश करके वेदना सम्बन्धी समग्र निरूपण का सकेत किया गया है ।[1]

वेदना : स्वरूप और प्रकार—जो वेदी (अनुभव की) जाए उसे वेदना कहते हैं । प्रस्तुत मे वेदना के तीन प्रकार बताए गए है—शीतवेदना, उष्णवेदना और शीतोष्णवेदना । नरक मे शीत और उष्ण दोनो प्रकार की वेदना पाई जाती है । शेष असुरकुमारादि से वैमानिक तक २३ दण्डको मे तीनो प्रकार की वेदना पाई जाती हैं । दूसरे प्रकार से वेदना ४ प्रकार की है—द्रव्यत , क्षेत्रत , कालत और भावत । पुद्गल द्रव्यो के सम्बन्ध से जो वेदना होती है वह द्रव्यवेदना, नरकादि क्षेत्र से सम्बन्धित वेदना क्षेत्रवेदना, पचमारक एव षष्ठारक सम्बन्धी वेदना कालवेदना, शोक-क्रोधादिसम्बन्ध-जनित वेदना भाववेदना है । समस्त ससारी जीवो के ये चारो प्रकार की वेदनाएँ होती हैं ।[2]

प्रकारान्तर से त्रिविधवेदना—शारीरिक, मानसिक और शारीरिक-मानसिक वेदना । १६ दण्डकवर्ती समनस्क जीव तीनो प्रकार की वेदना वेदते हैं । जबकि पाच स्थावर एव तीन विकलेन्द्रिय इन ८ दण्डको के असज्ञी जीव शारीरिक वेदना वेदते है ।

वेदना के पुन तीन भेद हैं—सातावेदना, असातावेदना और साता-असाता वेदना । चौवीस दण्डको मे इन तीनो प्रकार की वेदना पाई जाती है । वेदना के पुन तीन भेद है—दु खा, सुखा और अदु खसुखा वेदना । तीनो प्रकार की वेदना चौवीस ही दण्डको मे पाई जाती हैं । साता-असाता तथा सुखा-दु खा वेदना मे अन्तर यह है कि साता-असाता क्रमश उदयप्राप्त वेदनीयकर्म-पुद्गलो की अनुभवरूप वेदनाएँ हैं, जबकि सुखा-दु खा दूसरे के द्वारा उदीर्यमाण वेदनीय के अनुभवरूप वेदनाएँ हैं ।

वेदना के दो भेद—अन्य प्रकार से भी हैं । यथा—आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी । स्वयं कष्ट को स्वीकार करके वेदी जाने वाली आभ्युपगमिकी वेदना है, यथा-केशलोच आदि तथा औपक्रमिकी वेदना वह है, जो स्वय उदीर्ण (उदय मे आई हुई, ज्वरादि) वेदना होती है, अथवा जिसमे उदीरणा करके उदय मे लाई वेदना का अनुभव किया जाता है । तिर्यञ्चपचेन्द्रिय और मनुष्य मे दोनो प्रकार की वेदनाएँ होती हैं, शेष बाईस दण्डको मे एकमात्र औपक्रमिकी वेदना होती है ।

वेदना के दो भेद प्रकारान्तर से—निदा और अनिदा । विवेकसहित जो वेदी जाए वह निदावेदना है और विवेकपूर्वक न वेदी जाए वह अनिदावेदना है । नैरयिक, भवनपति, वाणव्यन्तर, तिर्यञ्चपचेन्द्रिय एव मनुष्य ये १४ दण्डको के जीव दोनो प्रकार की वेदनाएँ वेदते है । इनमे जो सज्ञीभूत

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा २, पृ ४८९
(ख) प्रज्ञापनासूत्र (म जै विद्यालय) ३५ वाँ वेदनापद, सू २०५४-८४, पृ ४२४-२७ ।

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९७
(ख) प्रज्ञापना ३५ वाँ वेदनापद

है, वे निदा और जो असज्ञीभूत है वे अनिदा वेदना वेदते है—यथा-असज्ञीभूत पाच स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय । ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के दो प्रकार है—मायी मिथ्यादृष्टि और अमायी सम्यग्दृष्टि । मायी मिथ्यादृष्टि अनिदावेदना वेदते है और अमायी सम्यग्दृष्टि निदा वेदना वेदते है ।[1]

वेदनासम्बन्धी विस्तृत वर्णन प्रज्ञापनागत वेदनापद मे है ।

मासिक भिक्षुप्रतिमा की वास्तविक आराधना—

६. मासिय ण भते ! भिक्खुपडिम पडिवन्नस्स अणगारस्स निच्च वोसट्ठे काये चियत्ते देहे, एव मासिया भिक्खुपडिमा निरवसेसा भाणियव्वा जहा दसाहि जाव आराहिया भवति ।

[६ प्र] भगवन् ! मासिक भिक्षुप्रतिमा जिस अनगार ने अगीकार की हे तथा जिसने शरीर (के प्रति ममत्व) का त्याग कर दिया है और (शरीरसस्कार आदि के रूप मे) काया का सदा के लिए व्युत्सर्ग कर दिया है, इत्यादि दशाश्रुतस्कन्ध मे बताए अनुसार मासिक भिक्षु-प्रतिमा सम्बन्धी समग्र वर्णन (बारहवी भिक्षुप्रतिमा तक) करना चाहिए, यावत् (तभी) आराधित होती है, यहाँ तक कहना चाहिए ।

विवेचन—भिक्षुप्रतिमा की वास्तविक आराधना—यहाँ छठे सूत्र मे मासिक भिक्षुप्रतिमा को स्वीकार किये हुए भिक्षु की भिक्षुप्रतिमाऽऽराधना के विषय मे दशाश्रुतस्कन्ध की सातवी दशा का हवाला देकर यह बताया है कि ऐसा भिक्षु स्नानादि शरीरसस्कार के त्याग के रूप मे काया का व्युत्सर्ग कर देता है तथा शरीर के प्रति ममत्व का त्याग कर देता है, ऐसी स्थिति मे जो कोई परिषह या देवकृत, मनुष्यकृत या तिर्यञ्चकृत उपसर्ग उत्पन्न होते है, उन्हे सम्यक् प्रकार से सहता है, स्थान से विचलित न होकर क्षमाभाव धारण कर लेता है, दीनता न लाकर तितिक्षा करता है, समभाव से मन-वचन-काया से सहता है, तो उसकी भिक्षुप्रतिमा आराधित होती है ।[2]

भिक्षुप्रतिमा स्वरूप और प्रकार—साधु की एक प्रकार की प्रतिज्ञा (अभिग्रह) विशेष को भिक्षुप्रतिमा कहते है । यह बारह प्रकार की है । पहली से लेकर सातवी प्रतिमा तक क्रमश एक मास से लेकर सात मास की है । आठवी, नौवी और दसवी प्रतिमा प्रत्येक सात-अहोरात्र की होती हैं । ग्यारहवी प्रतिमा एक अहोरात्र की और बारहवी भिक्षुप्रतिमा केवल एक रात्रि की होती है । इसका विस्तृत वर्णन दशाश्रुतस्कन्ध की सातवी दशा मे है ।[3]

भावार्थ—वोसट्ठे काए—स्नानादि शरीरसस्कार त्याग कर काम का व्युत्सर्ग कर दिया ।

चइत्ते देहे—(१) कोई भी व्यक्ति मारे-पीटे या शरीर पर प्रहार करे तो भी निवारण न करे, इस प्रकार से शरीर के प्रति ममत्व का त्याग कर दिया हो, अथवा **चियत्ते**—देह को धर्मसाधन के रूप मे प्रधानता से मान कर ।[4]

---

१ (क) वही ३५ वाँ वेदनापद
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९७

२ (क) दशाश्रुतस्कन्ध की सातवी साधुप्रतिमादशा पत्र, ४४-४६ । (मणिविजयग्रन्थमाला-प्रकाशन)
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९८

३ (क) वही, पत्र ४९८ (ख) भगवती विवेचन भा ४ (प घेवरचदजी), पृ १७९९

४ भगवती. अ वृत्ति, पत्र ४९८

अकृत्यसेवी भिक्षु : अनाराधक, आराधक ?

७. [१] भिक्खू य अन्नयर अकिच्चट्ठाण पडिसेवित्ता, से ण तस्स ठाणस्स अणालोइयऽपडिक्कते कालं करेति नत्थि तस्स आराहणा।

[७-१] कोई भिक्षु किसी अकृत्य (पाप) का सेवन करके, यदि उस अकृत्यस्थान की आलोचना तथा प्रतिक्रमण किये बिना ही काल कर (मर) जाता है तो उसके आराधना नही होती।

[२] से ण तस्स ठाणस्स आलोइयपडिक्कते कालं करेति अत्थि तस्स आराहणा।

[७-२] यदि वह भिक्षु उस सेवित अकृत्यस्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण करके काल करता है, तो उसके आराधना होती है।

८. [१] भिक्खू य अन्नयर अकिच्चट्ठाणं पडिसेवित्ता, तस्स णं एव भवति पच्छा वि ण अहं चरिमकालसमयसि एयस्स ठाणस्स आलोएस्सामि जाव पडिवज्जिस्सामि, से णं तस्स ठाणस्स अणालोइयऽपडिक्कते जाव नत्थि तस्स आराहणा।

[८-१] कदाचित् किसी भिक्षु ने किसी अकृत्यस्थान का सेवन कर लिया, किन्तु बाद मे उसके मन मे ऐसा विचार उत्पन्न हो कि मैं अपने अन्तिम समय मे इस अकृत्यस्थान की आलोचना करूगा यावत् तपरूप प्रायश्चित्त स्वीकार करूगा, परन्तु वह उस अकृत्यस्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही काल कर जाए, तो उसके आराधना नही होती।

[२] से ण तस्स ठाणस्स आलोइयपडिक्कते कालं करेइ अत्थि तस्स आराहणा।

[८-२] यदि वह (अकृत्यस्थानसेवी भिक्षु) आलोचन और प्रतिक्रमण करके काल करे, तो उसके आराधना होती है।

९. [१] भिक्खू य अन्नयर अकिच्चट्ठाण पडिसेवित्ता, तस्स ण एवं भवति—'जइ ताव समणोवासगा वि कालमासे काल किच्चा अन्नयरेसु देवलोगेसु देवत्ताए उववत्तारो भवति किमग पुण अह अणपन्नियदेवत्तणं पि नो लभिस्सामि ?' त्ति कट्टु से ण तस्स ठाणस्स अणालोइयऽपडिक्कते कालं करेति नत्थि तस्स आराहणा।

[९-१] कदाचित् किसी भिक्षु ने किसी अकृत्यस्थान का सेवन कर लिया हो और उसके बाद उसके मन मे यह विचार उत्पन्न हो कि श्रमणोपासक भी काल के अवसर पर काल करके किन्ही देवलोको मे देवरूप मे उत्पन्न हो जाते हैं, तो क्या मैं अणपन्निक देवत्व भी प्राप्त नही कर सकूगा ?, यह सोच कर यदि वह उस अकृत्य स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही काल कर जाता है, तो उसके आराधना नही होती।

[२] से ण तस्स ठाणस्स आलोइयपडिक्कते कालं करेति अत्थि तस्स आराहणा।
सेव भते ! सेवं भते ! त्ति०।

॥ दसमे सए बीओ उद्देसओ समत्तो ॥१०-२॥

[९-२] यदि वह (अकृत्यसेवी साधु) उस अकृत्यस्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण करके काल करता है, तो उसके आराधना होती है।

हे भगवन्! यह इसी प्रकार है! हे भगवन्! यह उसी प्रकार है।

विवेचन—आराधक-विराधक भिक्षु—प्रस्तुत तीन सूत्रो (७-८-९) मे आराधक और विराधक भिक्षु की ६ कोटियाँ बताई गई हैं—

(१) अकृत्यस्थान का सेवन करके आलोचना-प्रतिक्रमण किये विना ही काल करने वाला अनाराधक (विराधक)।

(२) अकृत्यस्थान का सेवन करके आलोचना-प्रतिक्रमण कर काल करने वाला आराधक।

(३) अकृत्यस्थानसेवी, अन्तिम समय मे आलोचनादि करके प्रायश्चित्त स्वीकार करने की भावना करने वाला वाला, किन्तु आलोचना-प्रतिक्रमण किये विना ही काल करने वाला अनाराधक।

(४) अकृत्यस्थानसेवी, अन्तिम समय मे आलोचनादि करने का भाव और आलोचना प्रतिक्रमण करके काल करने वाला आराधक।

(५) अकृत्यस्थानसेवी, श्रमणोपासकवत् देवगति प्राप्त कर लूगा, इस भावना से आलोचनादि किये विना ही काल करने वाला अनाराधक।

(६) अकृत्यस्थानसेवी, श्रमणोपासकवत् देवगति प्राप्ति की भावना, किन्तु आलोचनादि करके काल करने वाला आराधक।[1]

॥ दशम शतक : द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

०

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा २, पृ ४८९-४९०

इओ उद्देसओ : ृती उद्दे

आइड्ढी : आत्मऋद्धि

देव की उल्लघनशक्ति

उपोद्घात—

१. रायगिहे जाव एव वदासि—

[१] राजगृह नगर मे (श्री गौतमस्वामी ने भगवान् महावीर से) यावत् इस प्रकार पूछा—

देवो की देवावासो की उल्लघनशक्ति : अपनी और दूसरी—

२ आइड्ढीए ण भंते ! देवे जाव चत्तारि पच देवावासंतराइं वीतिक्कते तेण परं परिड्ढीए ?

हता, गोयमा ! आइड्ढीए ण०, त चेव ।

[२ प्र] भगवन् ! देव क्या आत्मऋद्धि (अपनी शक्ति) द्वारा यावत् चार-पाच देवावासान्तरो का उल्लघन करता है और इसके पश्चात् दूसरी शक्ति द्वारा उल्लघन करता है ?

[२ उ] हाँ, गौतम ! देव आत्मशक्ति से यावत् चार-पाच देवावासो का उल्लघन करता है और उसके उपरान्त दूसरी (वैक्रिय) शक्ति (पर-ऋद्धि) द्वारा उल्लघन करता है ।

३ एव असुरकुमारे वि । नवर असुरकुमारावासतराइ, सेस त चेव ।

[३] इसी प्रकार असुरकुमारो के विषय मे भी समझ लेना चाहिए । परन्तु विशेष यह है कि वे असुरकुमारो के आवासो का उल्लघन करते है । शेष पूर्ववत् जानना चाहिए ।

४ एव एएण कमेणं थणियकुमारे ।

[४] इसी प्रकार इसी अनुक्रम से यावत् स्तनितकुमारपर्यन्त जानना चाहिए ।

५ एवं वाणमतरे जोतिसिए वेमाणिए जाव तेण परं परिड्ढीए ।

[५] इसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव-पर्यन्त जानना चाहिए । यावत् वे आत्मशक्ति से चार-पाच अन्य देवावासो का उल्लघन करते हैं, इसके उपरान्त परऋद्धि (स्वाभाविक शक्ति से अतिरिक्त दूसरी वैक्रियशक्ति) से उल्लघन करते हैं ।

विवेचन—आत्मऋद्धि और परऋद्धि से देवो की उल्लघनशक्ति—प्रस्तुत ४ सूत्रो (२ से ५ तक) मे गौतमस्वामी के प्रश्न के उत्तर मे भगवान् ने यह बताया है कि सामान्य देव, यहाँ तक कि भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव आत्मऋद्धि (स्वकीय स्वाभाविकशक्ति) से अपनी-अपनी जाति के चार-पाच अन्य देवावासो का उल्लघन कर सकते हैं, इसके उपरान्त वे पर-ऋद्धि यानि स्वाभाविक शक्ति के अतिरिक्त दूसरी (वैक्रिय) शक्ति से उल्लघन करते हैं ।[1]

---

१ वियाहपण्णत्ति (मू पा टि), भा २, पृ ४९०

कठिन शब्दो का भावार्थ—आइड्ढीए—स्वकीय शक्ति से अथवा जिसमे आत्मा की (अपनी) ही ऋद्धि है, वह आत्मऋद्धिक होकर। **परिड्ढीए**—पर (दूसरी-वैक्रिय) शक्ति से। **वीइक्कते**—उल्लघन करता है। **देवावासतराइ**—देवावास विशेषो को।[1]

देवो का मध्य मे से होकर गमनसामर्थ्य—

६. अप्पिड्ढीए ण भते ! देवे महिड्ढीयस्स देवस्स मज्झमज्झेण वीतीवइज्जा ?

णो इणट्ठे समट्ठे।

[६ प्र] भगवन्! क्या अल्पऋद्धिक (अल्पशक्तियुक्त) देव, महर्द्धिक (महाशक्ति वाले) देव के बीच मे हो कर जा सकता है ?

[६ उ] गौतम ! यह अर्थ (बात) समर्थ (शक्य) नही है। (वह, महर्द्धिक देव के बीचोबीच हो कर नही जा सकता।)

७. [१] समिड्ढीए ण भते ! देवे समिड्ढीयस्स देवस्स मज्झमज्झेण वीतीवएज्जा ?

णो इणट्ठे समट्ठे। पमत्त पुण वीतीवएज्जा।

[७-१ प्र] भगवन् ! समर्द्धिक (समान शक्ति वाला) देव समर्द्धिक देव के बीच मे से हो कर जा सकता है ?

[७-१ उ] गौतम! यह अर्थ समर्थ नही है, परन्तु यदि वह (दूसरा समर्द्धिक देव) प्रमत्त (असावधान) हो तो (बीचोबीच हो कर) जा सकता है।

[२] से ण भते ! किं विमोहित्ता पभू, अविमोहित्ता पभू ?

गोयमा ! विमोहेत्ता पभू, नो अविमोहेत्ता पभू।

[७-२ प्र] भगवन्! क्या वह देव, उस (सामने वाले समर्द्धिक देव) को विमोहित करके जा सकता है या विमोहित किये विना जा सकता है ?

[७-२ उ] गौतम ! वह देव, सामने वाले समर्द्धिक देव को विमोहित करके जा सकता है, विमोहित किये विना नही जा सकता।

[३] से भते ! किं पुव्वि विमोहेत्ता पच्छा वीतीवएज्जा ? पुव्वि वीतीवएत्ता पच्छा विमोहेज्जा ?

गोयमा ! पुव्वि विमोहेत्ता पच्छा वीतीवएज्जा, णो पुव्वि वीतीवइत्ता पच्छा विमोहेज्जा।

[७-३ प्र] भगवन् ! क्या वह देव, उस देव को पहले विमोहित करके बाद मे जाता है, या पहले जा कर बाद मे विमोहित करता है ?

[७-३ उ] गौतम ! वह देव, पहले उसे विमोहित करता है और बाद मे जाता है, परन्तु पहले जा कर बाद मे विमोहित नही करता।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९९

८. [१] महिड्ढीए ण भंते ! देवे अप्पिड्ढीयस्स देवस्स मज्झमज्झेण वीतीवएज्जा ?

हंता, वीतीवएज्जा।

[८-१ प्र] भगवन् ! क्या महर्द्धिक देव, अल्पऋद्धिक देव के बीचोबीच हो कर जा सकता है ?

[८-१ उ] हाँ, गौतम ! जा सकता है।

[२] से भंते ! किं विमोहित्ता पभू, अविमोहित्ता पभू ?

गोयमा ! विमोहित्ता वि पभू, अविमोहित्ता वि पभू।

[८-२ प्र] भगवन् ! वह महर्द्धिक देव, उस अल्पऋद्धिक देव को विमोहित करके जाता है, अथवा विमोहित किये बिना जाता है ?

[८-२ उ] गौतम ! वह विमोहित करके भी जा सकता है और विमोहित किये बिना भी जा सकता है।

[३] से भंते ! किं पुव्वि विमोहेत्ता पच्छा वीतीवइज्जा ? पुव्वि वीतीवइत्ता पच्छा विमोहेज्जा ?

गोयमा ! पुव्वि वा विमोहित्ता पच्छा वीतीवएज्जा, पुव्वि वा वीतीवइत्ता पच्छा विमोहेज्जा।

[८-३ प्र] भगवन् ! वह महर्द्धिक देव, उसे पहले विमोहित करके बाद मे जाता है, अथवा पहले जा कर बाद मे विमोहित करता है?

[८-३ उ] गौतम ! वह महर्द्धिक देव, पहले उसे विमोहित करके बाद मे भी जा सकता है और पहले जा कर बाद मे भी विमोहित कर सकता है।

९. [१] अप्पिड्ढीए ण भंते ! असुरकुमारे महिड्ढीयस्स असुरकुमारस्स मज्झंमज्झेणं वीतीवएज्जा ?

णो इणट्ठे समट्ठे।

[९-१ प्र] भगवन् ! अल्प-ऋद्धिक असुरकुमार देव, महर्द्धिक असुरकुमार देव के बीचोबीच हो कर जा सकता है ?

[९-१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही।

[२] एव असुरकुमारेण वि तिण्णि आलावगा भाणियव्वा जहा ओहिएण देवेण भणिता।

[९-२] इसी प्रकार सामान्य देव के आलापको की तरह असुरकुमार के भी तीन आलापक कहने चाहिए।

[३] एव जाव थणियकुमारेण।

[९-३] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार तक तीन-तीन आलापक कहना चाहिए।

१०. वाणमतर-जोतिसिय-वेमाणिएण एव चेव (सु ९) ।

[१०] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के विषय मे भी इसी प्रकार (सू ९ के अनुसार) कहना चाहिए ।

विवेचन—अल्पर्द्धिक, महर्द्धिक और समर्द्धिक देवो का एक दूसरे के मध्य मे हो कर गमनसामर्थ्य—प्रस्तुत पाच सूत्रो (६ से १० तक) मे मध्य मे हो कर गमनसामर्थ्य के विषय मे मुख्यतया ४ आलापक प्रस्तुत किये गए हैं—(१) अल्पऋद्धिक देव महर्द्धिक देव के साथ, (२) समर्द्धिक समर्द्धिक के साथ (३) महर्द्धिक देव का अल्पर्द्धिक देव के साथ और (४) अल्पर्द्धिक चारो जाति के देवो का स्व-स्व जातीय महर्द्धिक देवो के साथ । इन सूत्रो का निष्कर्ष यह है कि अल्पर्द्धिक देव महर्द्धिक देव के बीचोबीच हो कर नही जा सकते । महर्द्धिक देव अल्पर्द्धिक देव के बीचोबीच हो कर उसे पहले या पीछे विमोहित करके या विमोहित किये विना भी जा सकते है । समर्द्धिक समर्द्धिक देव के बीचोबीच हो कर पहले उसे विमोहित करके जा सकता है, बशर्ते कि जिसके बीचोबीच होकर जाना है, वह असावधान हो ।[1]

विमोहित करने का तात्पर्य—विमोहित का यहाँ प्रसगवश अर्थ है—विस्मित करना, अर्थात् महिका (धूअर) आदि के द्वारा अन्धकार करके मोह उत्पन्न कर देना । उस अन्धकार को देख कर सामने वाला देव विस्मय मे पड जाता है कि यह क्या है ? ठीक उसी समय उसके न देखते हुए ही बीच मे से निकल जाना, विमोहित करके निकल जाना कहलाता है ।[2]

देव-देवियो का एक दूसरे के मध्य मे से होकर गमनसामर्थ्य—

११. अप्पिड्ढीए ण भते ! देवे महिड्ढीयाए देवीए मज्झमज्झेण वीतीवएज्जा ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[११ प्र] भगवन् ! क्या अल्प-ऋद्धिक देव, महर्द्धिक देवी के मध्य मे हो कर जा सकता है ?

[११ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही ।

१२ समिड्ढीए ण भते ! देवे समिड्ढीयाए देवीए मज्झमज्झेण० ? एव तहेव देवेण य देवीए य दडओ भाणियव्वो जाव वेमाणियाए ।

[१२ प्र] भगवन् ! क्या समर्द्धिक देव, समर्द्धिक देवी के बीचोबीच हो कर जा सकता है ?

[१२ उ] गौतम ! पूर्वोक्त प्रकार से (सू ७ के अनुसार) देव के साथ देवी का भी दण्डक यावत् वैमानिक-पर्यन्त कहना चाहिए ।

१३ अप्पिड्ढिया ण भते ! देवी महिड्ढीयस्स देवस्स मज्झमज्झेण० ? एव एसो वि तइओ दडओ भाणियव्वो जाव महिड्ढिया वेमाणिणी अप्पिड्ढियस्स वेमाणियस्स मज्झमज्झेण वीतीवएज्जा ?

हता, वीतीवएज्जा ।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९९

२ वही, पत्र ४९९

[१३ प्र] भगवन् ! अल्प-ऋद्धिक देवी, महर्द्धिक देव के मध्य मे से हो कर जा सकती है ?

[१३ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही ।

इस प्रकार यहाँ भी यह तीसरा दण्डक कहना चाहिए यावत्—(प्र) भगवन् ! महर्द्धिक वैमानिक देवी, अल्प-ऋद्धिक वैमानिक देव के बीच मे से होकर जा सकती है ? [उ] हा, गौतम ! जा सकती है ।

१४. अप्पिड्ढीया ण भते ! देवी महिड्ढियाए देवीए मज्झमज्झेण वीतीवएज्जा ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[१४ प्र] भगवन् ! अल्प-ऋद्धिक देवी महर्द्धिक देवी के मध्य मेहोकर जा सकती है ?

[१४ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही ।

१५. एव समिड्ढिया देवी समिड्ढियाए देवीए तहेव ।

[१५] इसी प्रकार सम-ऋद्धिक देवी का सम-ऋद्धिक देवी के साथ (सू ७ के अनुसार) पूर्ववत् आलापक कहना चाहिए ।

१६ महिड्ढिया देवी अप्पिड्ढियाए देवीए तहेव ।

[१६] महर्द्धिक देवी का अल्प-ऋद्धिक देवी के साथ (सू ८ के अनुसार) आलापक कहना चाहिए ।

१७ एव एक्केक्के तिण्णि तिण्णि आलावगा भाणियव्वा जाव महिड्ढीया ण भते ! वेमाणिणी अप्पिड्ढीयाए वेमाणिणीए मज्झमज्झेण वीतीवएज्जा ? हता, वीतीवएज्जा । सा भते ! किं विमोहित्ता पभू ? तहेव जाव पुव्विं वा वीइवइत्ता पच्छा विमोहेज्जा । एए चत्तारि दडगा ।

[१७] इसी प्रकार एक-एक के तीन-तीन आलापक कहने चाहिए, यावत्—(प्र) भगवन् ! वैमानिक महर्द्धिक देवी, अल्प-ऋद्धिक वैमानिक देवी के मध्य मे होकर जा सकती है ? [उ] हाँ गौतम ! जा सकती है, यावत्—(प्र) क्या वह महर्द्धिक देवी, उसे विमोहित करके जा सकती है या विमोहित किए बिना भी जा सकती है ? तथा पहले विमोहित करके बाद मे जाती है, अथवा पहले जा कर बाद मे विमोहित करती है ? (उ) हे गौतम ! पूर्वोक्त रूप से जानना चाहिए, यावत्—पहले जाती है और पीछे भी विमोहित करती है, तक कहना चाहिए । इस प्रकार के चार दण्डक कहने चाहिए ।

विवेचन—महर्द्धिक-समर्द्धिक-अल्पर्द्धिक देव-देवियो का एक दूसरे के मध्य मे से गमन-सामर्थ्य—प्रस्तुत ७ सूत्रो (११ से १७ तक) मे पूर्ववत् गमनसामर्थ्य के विषय मे ७ आलापक प्रस्तुत किये गए है । यथा—(१) अल्पर्द्धिक देव का महर्द्धिक देवी के साथ, (२) समर्द्धिक देव का समर्द्धिक देवी के साथ, (सभी जातियो के देवो का स्व-स्वजातीय देवियो के साथ), (३) अल्प-ऋद्धिक देवी का महर्द्धिक देव के साथ, (४) महर्द्धिक चतुर्निकायगत देवी अल्प-ऋद्धिक चारो जाति के देवो के साथ, (५) अल्प-ऋद्धिक देवी महर्द्धिक देवी के साथ, (६) सम-ऋद्धिक देवी समर्द्धिक देवी के साथ, और (७) महर्द्धिक देवी का अल्प-ऋद्धिक देवी के साथ । (यावत् भवनपति से वैमानिक तक महर्द्धिक देवियो

का अल्पर्द्धिक देवियो के साथ) । इन सबका निष्कर्ष यह है कि जैसे पहले अल्प-ऋद्धिक, महर्द्धिक और समर्द्धिक देवो के विपय मे कहा है, वैसे ही देव-देवियो के तथा देवियो-देवियो के विपय मे भी कहना चाहिए। शेप सभी पूर्ववत् समझना चाहिए।[1]

दौड़ते हुए अश्व के 'खु-खु' शब्द का कारण—

१८ आसस्स ण भते ! धावमाणस्स किं 'खु खु' त्ति करेइ ?

गोयमा ! आसस्स ण धावमाणस्स हिययस्स य जगयस्स य अतरा एत्थ ण कक्कडए नामं वाए समुट्ठइ, जे ण आसस्स धावमाणस्स 'खु खु' त्ति करेति।

[१८ प्र] भगवन् ! दौडता हुआ घोडा 'खु-खु' शब्द क्यो करता है ?

[१८ उ] गौतम ! जब घोडा दौडता है तो उसके हृदय और यकृत् के वीच मे कर्कट नामक वायु उत्पन्न होती है, इससे दौडता हुआ घोडा 'खु-खु' शब्द करता है।

विवेचन—घोड़े की खु-खु आवाज क्यो और कहाँ से ?—प्रस्तुत सूत्र १८ मे दौडते हुए घोडे की 'खु-खु' आवाज का कारण हृदय और यकृत के वीच मे कर्कटवायु का उत्पन्न होना वताया है।[2]

कठिन शब्दो का भावार्थ—**आसस्स**—अश्व के। **धावमाणस्स**—दौडते हुए। **जगयस्स**—यकृत=(लीवर—पेट के दाहिनी ओर का अवयव विशेष, प्लीहा) के। **हिययस्स**—हृदय के। **कक्कडए**—कर्कट। **समुट्ठइ**—उत्पन्न होता है।[3]

प्रज्ञापनी भाषा : मृषा नही—

१९ अह भते ! आसइस्सामो सइस्सामो चिट्ठिस्सामो निसिइस्सामो तुयट्टिस्सामो,

आमतणि १ आणमणी २ जायणि ३ तह पुच्छणी ४ य पण्णवणी ५।

पच्चक्खाणी भासा ६ भासा इच्छाणुलोमा य ७ ॥१॥

अणभिग्गहिया भासा ८ भासा य अभिग्गहम्मि बोधव्वा ९।

ससयकरणी भासा १० वोयड ११ मव्वोयडा १२ चेव ॥२॥

पण्णवणी ण एसा भासा, न एसा भासा मोसा ?

हता, गोयमा ! आसइस्सामो० त चेव जाव न एसा भासा मोसा।

सेव भते ! सेवं भते ! त्ति०।

॥ दसमे सए तइओ उद्देसो समत्तो ॥१०. ३॥

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९९
(ख) भगवती (विवेचन) पृ १८६, भा ४

२ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टिप्पणयुक्त), भा २, पृ ४९३

३ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९९

[१९ प्र] भगवन् ! १ आमन्त्रणी, २ आज्ञापनी, ३ याचनी, ४ पृच्छनी, ५ प्रज्ञापनी, ६ प्रत्याख्यानी, ७ इच्छानुलोमा, ८ अनभिगृहीता, ९ अभिगृहीता, १० सशयकरणी, ११ व्याकृता और १२ अव्याकृता, इन बारह प्रकार की भाषाओ मे 'हम आश्रय करेंगे, शयन करेंगे, खडे रहेंगे, बैठेंगे, और लेटेंगे' इत्यादि भाषण करना क्या प्रज्ञापनी भाषा कहलाती है और ऐसी भाषा मृषा (असत्य) नही कहलाती है ?

[१९ उ] हाँ, गौतम ! यह (पूर्वोक्त) आश्रय करेंगे, इत्यादि भाषा प्रज्ञापनी भाषा है, यह भाषा मृषा (असत्य) नही है ।

'हे, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यह इसी प्रकार है !' ऐसा कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करते है ।

विवेचन—'आश्रय करेंगे' इत्यादि भाषा की सत्यासत्यता का निर्णय—प्रस्तुत सू १९ मे लौकिक व्यवहार की प्रवृत्ति का कारण होने से आमन्त्रणी आदि १२ प्रकार की असत्यामृषा (व्यवहार) भाषाओ मे से 'आश्रय करेंगे' इत्यादि भाषा प्रज्ञापनी होने से मृषा नही है, ऐसा निर्णय दिया गया है ।[1]

बारह प्रकार की भाषाओ का लक्षण—मूलत चार प्रकार की भाषाएँ शास्त्र मे बताई गई है । यथा—सत्या, मृषा (असत्या), सत्यामृषा और असत्यामृषा (व्यवहार) भाषा । प्रज्ञापनासूत्र के ग्यारहवे भाषापद मे असत्यामृषाभाषा के १२ भेद बताए है, जिनका नामोल्लेख मूलपाठ मे है । उनके लक्षण क्रमश इस प्रकार है—

(१) **आमन्त्रणी**—किसी को आमन्त्रण-सम्बोधन करना । जैसे—हे भगवन् !

(२) **आज्ञापनी**—दूसरे को किसी कार्य मे प्रेरित करने वाली । यथा—बैठो, उठो आदि ।

(३) **याचनी**—याचना करने के लिए प्रयुक्त की जाने वाली भाषा । जैसे—मुझे सिद्धि प्रदान करे ।

(४) **पृच्छनी**—अज्ञात या सदिग्ध पदार्थों को जानने के लिए पृच्छा व्यक्त करने वाली । जैसे—'इसका अर्थ क्या है ?'

(५) **प्रज्ञापनी**—उपदेश या निवेदन करने के लिए प्रयुक्त की गई भाषा । जैसे—मृषावाद अविश्वास का हेतु है । अथवा ऐसे बैठेंगे, लेटेंगे इत्यादि ।

(६) **प्रत्याख्यानी**—निषेधात्मक भाषा । जैसे—चोरी मत करो । अथवा मै चोरी नही करूंगा ।

(७) **इच्छानुलोमा**—दूसरे की इच्छा का अनुसरण करना अथवा अपनी इच्छा प्रकट करना ।

(८) **अनभिगृहीता**—प्रतिनियत (निश्चित) अर्थ का ज्ञान न होने पर उसके लिए बोलना ।

(९) **अभिगृहीता**—प्रतिनियत अर्थ का बोध कराने वाली भाषा ।

(१०) **संशयकरणी**—अनेकार्थवाचक शब्द का प्रयोग करना ।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ४९३

(११) व्याकृता—स्पष्ट अर्थवाली भाषा।

(१२) अव्याकृता—अस्पष्ट उच्चारण वाली या गभीर अर्थ वाली भाषा।

'हम आश्रय करेंगे', इत्यादि भाषा यद्यपि भविष्यत्कालीन है, तथापि वर्तमान सामीप्य होने से प्रज्ञापनी भाषा है, जो असत्य नहीं है।[1] ☐☐

॥ दशम शतक : तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

---

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४९९-५००

उत्थो उद्दे ओ : च ुर्थ उद्देशक

सामहत्थी : श्यामहस्ती

उपोद्घात—

१ तेण कालेण तेण समएण वाणियगामे नाम नगरे होत्था। वण्णओ। दूतिपलासए चेतिए। सामी समोसढे जाव परिसा पडिगया।

[१] उस काल और उस समय मे वाणिज्यग्राम नामक नगर था। उसका यहाँ वर्णन समझ लेना चाहिए। वहाँ द्युतिपलाश नामक उद्यान था। (एक वार) वहाँ श्रमण भगवान् महावीर का समवसरण हुआ। यावत् परिषद् आई और वापस लौट गई।

२ तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवतो महावीरस्स जेट्ठे अतेवासी इदभूती नाम अणगारे जाव उड्ढजाणू जाव विहरइ।

[२] उस काल और उस समय मे, (वहाँ श्रमण भगवान् महावीर की सेवा मे) श्रमण भगवान् महावीरस्वामी के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति (गौतम) नामक अनगार थे। वे ऊर्ध्वजानु यावत् विचरण करते थे।

३ तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवतो महावीरस्स अतेवासी सामहत्थी नाम अणगारे पगतिभद्दए जहा रोहे जाव उड्ढजाणू जाव विहरति।

[३] उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर के एक अन्तेवासी (शिष्य) थे—श्यामहस्ती नामक अनगार। वे प्रकृतिभद्र, प्रकृतिविनीत, यावत् रोह अनगार के समान ऊर्ध्वजानु, यावत् विचरण करते थे।

४ तए ण से सामहत्थी अणगारे जायसड्ढे जाव उट्ठाए उट्ठेति, उ० २ जेणेव भगव गोयमे तेणेव उवागच्छति, ते० उ० २ भगव गोयमं तिक्खुत्तो जाव पज्जुवासमाणे एव वदासी—

[४] एक दिन उन श्यामहस्ती नामक अनगार को श्रद्धा, सशय, विस्मय आदि उत्पन्न हुए। यावत् वे अपने स्थान से उठे और उठ कर जहाँ भगवान् गौतमस्वामी विराजमान थे, वहाँ आए। भगवान् गौतमस्वामी के पास आकर वन्दना-नमस्कार कर यावत् पर्युपासना करते हुए इस प्रकार पूछने लगे—

विवेचन—श्यामहस्ती अनगार : परिचय एवं प्रश्न का उत्थान—प्रस्तुत ४ सूत्रो मे बताया गया है कि उस समय श्रमण भगवान् महावीर वाणिज्यग्राम नगर मे द्युतिपलाश नामक उद्यान मे विराजमान थे। उनके पट्टशिष्य इन्द्रभूति गौतमस्वामी भी उन्ही की सेवा मे थे। वही भगवान् महावीर की सेवा मे उनके एक शिष्य श्यामहस्ती थे, जो प्रकृति से भद्र, नम्र एव विनीत थे। एक

दिन श्यामहस्ती अनगार के मन मे कुछ प्रश्न उठे। उनके मन मे श्री गौतमस्वामी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति जागी। उद्भूत प्रश्नो का समाधान पाने के लिए उनके कदम बढे और जहाँ गौतम-स्वामी थे, वहाँ आकर उन्होने वन्दना—नमस्कारपूर्वक सविनय कुछ प्रश्न पूछे। श्यामहस्ती अनगार के प्रश्न होने से इस उद्देशक का नाम भी श्यामहस्ती है।[1]

कठिन शब्दार्थ—पगतिभद्दए—प्रकृति से भद्र। जायसड्ढे—श्रद्धा उत्पन्न हुई।[2]

चमरेन्द्र के त्रायस्त्रिशक देव : अस्तित्व, कारण एव सदैव स्थायित्व—

५. [१] अत्थि ण भते! चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तावत्तीसगा देवा? हंता, अत्थि।

[५-१ प्र] भगवन्! क्या असुरकुमारो के राजा, असुरकुमारो के इन्द्र चमर के त्रायस्त्रिशक देव है?

[५-१ उ] हाँ, (श्यामहस्ती! चमरेन्द्र के त्रायस्त्रिशक देव) है।

[२] से केणट्ठेण भते! एव वुच्चति—चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तावत्तीसगा देवा, तावत्तीसगा देवा?

एव खलु सामहत्थी! तेण कालेण तेण समएण इहेव जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे कायदी नाम नगरी होत्था। वण्णओ। तत्थ ण कायदीए नयरीए तावत्तीस सहाया गाहावती समणोवासगा परिवसति अड्ढा जाव अपरिभूया अभिगयजीवाऽजीवा उवलद्धपुण्ण-पावा जाव विहरति। तए ण ते तावत्तीस सहाया गाहावती समणोवासया पुव्वि उग्गा उग्गविहारी सविग्गा सविग्गविहारी भवित्ता तओ पच्छा पासत्था पासत्थविहारी ओसन्ना ओसन्नविहारी कुसीला कुसीलविहारी अहाछदा अहाछदविहारी बहूइ वासाइ समणोवासगपरियाग पाउणति, पा० २ अद्धमासियाए सलेहणाए अत्ताण झूसेंति, झू० २ तीस भत्ताइ अणसणाए छेदेंति, छे० २ तस्स ठाणस्स अणालोइयऽपडिक्कता कालमासे काल किच्चा चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तावत्तीसगदेवत्ताए उववन्ना।

[५-२ प्र] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहते है कि असुरकुमारो के राजा असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिशक देव है?

[५-२ उ] हे श्यामहस्ती! (असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिशक देव होने का) कारण इस प्रकार है—उस काल उस समय मे इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष मे काकन्दी नाम की नगरी थी। उसका वर्णन यहाँ समझ लेना चाहिए। उस काकन्दी नगरी मे (एक दूसरे के) सहायक तेतीस गृहपति श्रमणोपासक (श्रावक) रहते थे। वे धनाढ्य यावत् अपरिभूत थे। वे जीव-अजीव के ज्ञाता एव पुण्य-पाप को हृदयगम किये हुए विचरण (जीवन-यापन) करते थे। एक समय था, जब वे परस्पर सहायक गृहपति श्रमणोपासक पहले उग्र (उत्कृष्ट-आचारी), उग्र-विहारी, सविग्न, सविग्नविहारी थे, परन्तु तत्पश्चात् वे पार्श्वस्थ, पार्श्वस्थविहारी, अवसन्न, अवसन्नविहारी, कुशील, कुशीलविहारी, यथाच्छन्द और यथाच्छन्दविहारी हो गए। बहुत वर्षो तक श्रमणोपासक-पर्याय का पालन कर, अर्धमासिक

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टि), भा २, पृ ४९३-४९४

२ भगवती अ वृ, पत्र ५०२

सलेखना द्वारा शरीर को (अपने आप को) कृश करके तथा तीस भक्तो का अनशन द्वारा छेदन (छोड) करके, उस (प्रमाद-) स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये विना ही काल के अवसर पर काल कर वे (तीसो ही) असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिशक देव के रूप मे उत्पन्न हुए है।

[३] जप्पभिति च ण भते ! ते कायदगा तावत्तीस सहाया गाहावती समणोवासगा चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तावत्तीसदेवत्ताए उववन्ना तप्पभिति च ण भते ! एव वुच्चति 'चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तावत्तीसगा देवा, तावत्तीमगा देवा' ? ।

[५-३ प्र] (श्यामहस्ती गौतमस्वामी से—) भगवन् ! जब से वे काकन्दीनिवासी परस्पर सहायक तेतीस गृहपति श्रमणोपासक असुरराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिश-देवरूप मे उत्पन्न हुए है, क्या तभी से ऐसा कहा जाता है कि असुरराज असुरेन्द्र चमर के (ये) तेतीस देव त्रायस्त्रिशक देव है ? (क्या इससे पहले उसके त्रायस्त्रिशक देव नही थे ?)

६ तए ण भगव गोयमे सामहत्थिणा अणगारेण एव वुत्ते समाणे सकिते कखिए वितिगिंछिए उट्ठाए उट्ठेइ, उ० २ सामहत्थिणा अणगारेण सद्धि जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, ते० उ० २ समण भगव महावीर वदइ नमसइ, व० २ एव वदासी—

[६] तब श्यामहस्ती अनगार के द्वारा इस प्रकार से पूछे जाने पर भगवान् गौतमस्वामी शकित, काक्षित एव विचिकित्सित (अतिसदेहग्रस्त) हो गए। वे वहाँ से उठे और श्यामहस्ती अनगार के साथ जहाँ श्रमण भगवान् महावीरस्वामी विराजमान थे, वहाँ आए। तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीरस्वामी को वन्दना-नमस्कार किया और इस प्रकार पूछा—

७. [१] अत्थि ण भते ! चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो तावत्तीसगा देवा, तावत्तीसगा देवा ?

हंता, हत्थि।

[७-१ प्र] (गौतमस्वामी ने भगवान् से—) भगवन् ! क्या असुरराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिशक देव है ?

[७-१ उ] हाँ, गौतम है।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चइ, एवं त चेव सव्व (सु. ५-२) भाणियव्व, जाव तावत्तीसगदेवत्ताए उववण्णा।

[७-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि चमर के त्रायस्त्रिशक देव है ? इत्यादि पूर्ववत् (५-२ के अनुसार) प्रश्न।

[७-२ उ] उत्तर मे पूर्वकथित त्रायस्त्रिशक देवो का समस्त वृत्तान्त कहना चाहिए यावत् वे ही (काकन्दीनिवासी परस्पर सहायक तेतीस गृहस्थ श्रमणोपासक मर कर) चमरेन्द्र के त्रायस्त्रिश देव के रूप मे उत्पन्न हुए।

[३] भते ! तप्पभिति च ण एव वुच्चइ चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तावत्तीसगा देवा, तावत्तीसगा देवा ?

णो इणट्ठे समट्ठे, गोयमा ! चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तावत्तीसगाणं देवाणं सासए नामधेज्जे पण्णत्ते, जं न कदायि नासी, न कदायि न भवति, जाव निच्चे अव्वोच्छित्तिनयट्ठताए। अन्ने चयंति, अन्ने उववज्जंति।

[७-३ प्र] भगवन् ! जब से वे (काकन्दीनिवासी परस्पर सहायक तेतीस गृहस्थ श्रमणोपासक असुरराज असुरेन्द्र चमर के) त्रायस्त्रिंशक देवरूप मे उत्पन्न हुए है, क्या तभी से ऐसा कहा जाता है कि असुरराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक देव है ? (क्या इस से पूर्व उसके त्रायस्त्रिंशक देव नही थे ?)

[७-३ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही, (अर्थात्—ऐसा सम्भव नही है) असुरराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक देवो के नाम शाश्वत कहे गए है। इसलिए किसी समय नही थे, या नही है। ऐसा नही, और कभी नही रहेगे, ऐसा भी नही। यावत् अव्युच्छित्ति (द्रव्यार्थिक) नय की अपेक्षा से वे नित्य है, (किन्तु पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से) पहले वाले च्यवते है, और दूसरे उत्पन्न होते है। (उनका प्रवाहरूप से कभी विच्छेद नही होता।)

विवेचन—असुरेन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देवो की नित्यता-अनित्यता का निर्णय—प्रस्तुत तीन सूत्रो (५-६-७) मे बताया गया है कि श्यामहस्ती अनगार द्वारा असुरराज चमरेन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देवो के अस्तित्व तथा त्रायस्त्रिंशक होने के कारणो के सम्बन्ध मे गौतमस्वामी से पूछा। गौतमस्वामी ने उनका पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनाया। किन्तु जब श्यामहस्ती ने यह पूछा कि क्या इससे पूर्व असुरेन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देव नही थे ? इस पर विनम्र गौतमस्वामी ने भगवान् महावीर के चरणो मे जा कर अपनी इस शका को प्रस्तुत करके समाधान प्राप्त किया कि द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि ये त्रायस्त्रिंशक देव शाश्वत एव नित्य है, किन्तु पर्यायार्थिकनय की दृष्टि से पूर्व के त्रायस्त्रिंशक देव आयु समाप्त होने पर च्यवन कर जाते है, उनके स्थान पर नये त्रायस्त्रिंशक देव उत्पन्न होते है। परन्तु त्रायस्त्रिंशक देवो का प्रवाहरूप से कभी विच्छेद नही होता।[1]

'उग्गा' आदि शब्दो का भावार्थ— **उग्गा**—भाव से उदात्त या उदारचरित। **उग्गविहारी**—उदार आचार वाले। **संविग्गा**—मोक्षप्राप्ति के इच्छुक अथवा ससार से भयभीत। **संविग्गविहारी**—मोक्ष के अनुकूल आचरण करने वाले। **पासत्था**—पाशस्थ—शरीरादि मोहपाश मे बधे हुए, या पार्श्वस्थ—ज्ञानादि से बहिर्भूत। **पासत्थविहारी**—मोहपाशग्रस्त होकर व्यवहार करने वाले अथवा ज्ञानादि से बहिर्भूत प्रवृत्ति करने वाले। **ओसन्ना**—उत्तर आचार का पालन करने मे आलसी। **ओसन्नविहारी**—जीवनपर्यन्त शिथिलाचारी। **कुसीला**—ज्ञानादि आचार की विराधना करने वाले। **कुसीलविहारी**—जीवनपर्यन्त ज्ञानादि आचार के विराधक। **अहाछंदा**—अपनी इच्छानुसार सूत्रविरुद्ध प्रवृत्ति करने वाले। **अहाछंदविहारी**—जीवनपर्यन्त स्वच्छन्दाचारी।[2]

त्रायस्त्रिंश देवो का लक्षण—जो देव मत्री और पुरोहित का कार्य करते है, वे त्रायस्त्रिंशक

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ—टिप्पण), भा २, पृ ४९४-४९५

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५०२

कहलाते है, ये तेतीस की सख्या मे होते है ।[1] सहाया : दो रूप . दो अर्थ—(१) सहाया.—परस्पर सहायक । (२) सभाजा·—परस्पर प्रीतिभाजन ।[2]

बलीन्द्र के त्रायस्त्रिशक देवों की नित्यता का प्रतिपादन—

८. [१] अत्थि ण भते ! बलिस्स वइरोयणिदस्स वइरोयणरण्णो तावत्तीसगा देवा, तावत्तीसगा देवा ?

हता, हत्थि ।

[८-१ प्र] भगवन् ! वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बलि के त्रायस्त्रिशक देव है ?

[८-१ उ] हाँ, गौतम ! है ।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति—बलिस्स वइरोयणिदस्स जाव तावत्तीसगा देवा, तावत्तीसगा देवा ?

एव खलु गोयमा ! तेण कालेण तेण समएणं इहेव जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे विब्भेले णाम सन्निवेसे होत्था । वण्णओ । तत्थ ण वेभेले सन्निवेसे जहा चमरस्स जाव उववन्ना । जप्पभिति च ण भते ! ते विब्भेलगा तावत्तीस सहाया गाहावती समणोवासगा बलिस्स वइरोयणिदस्स वइरोयणरण्णो सेस त चेव (सु. ७ [२]) जाव निच्चे अव्वोच्छित्तिनयट्ठयाए । अन्ने चयति, अन्ने उववज्जति ।

[८-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते है कि वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बलि के तेतीस त्रायस्त्रिशक देव है ?

[८-२ उ] गौतम ! उस काल और उस समय मे इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे बिभेल नामक एक सन्निवेश था । उसका वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार करना चाहिए । उस बिभेल सन्निवेश मे परस्पर सहायक तेतीस गृहस्थ श्रमणोपासक थे , इत्यादि जैसा वर्णन चमरेन्द्र के त्रायस्त्रिशको के लिए (५-२ मे) किया गया है, वैसा ही यहाँ जानना चाहिए, यावत्—वे त्रायस्त्रिशक देव के रूप मे उत्पन्न हुए ।

[प्र] भगवन् ! जब से वे बिभेलसन्निवेशनिवासी परस्पर सहायक तेतीस गृहपति श्रमणोपासक बलि के त्रायस्त्रिशक देव के रूप मे उत्पन्न हुए, क्या तभी से ऐसा कहा जाता है कि वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बलि के त्रायस्त्रिशक देव है ? इत्यादि प्रश्न ।

[उ] (इसके उत्तर मे) शेष सभी वर्णन (सू ७-२ के अनुसार) पूर्ववत् जानना चाहिए , यावत्—वे अव्युच्छित्ति (द्रव्यार्थिक)-नय की अपेक्षा नित्य है । (किन्तु पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा से) पुराने (त्रायस्त्रिशक देव) च्यवते रहते है, (उनके स्थान पर) दूसरे (नये) उत्पन्न होते रहते है,—यहाँ तक कहना चाहिए ।

विवेचन—बलीन्द्र के त्रायस्त्रिशक देवो की नित्यता-अनित्यता का निर्णय—प्रस्तुत ८ वे सूत्र मे वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बलि के त्रायस्त्रिशक देवो के अस्तित्व, उत्पत्ति एव द्रव्यार्थिकनय की

१ 'त्रायस्त्रिशा—मन्त्रिविकल्पा ।'—भगवती अ वृत्ति, पत्र ५०२

२ (क) सहाया —परस्परेण सहायकारिण ।—वही, पत्र ५०२

(ख) सभाजा —परस्पर प्रीतिभाज ।—वियाहप मू पा टि, भा , २ पृ ४९४

दृष्टि से नित्यता और पर्यायार्थिक-दृष्टि से व्यक्तिगत रूप से अनित्यता किन्तु प्रवाहरूप से अविच्छिन्नता का प्रतिपादन पूर्वसूत्रो के अतिदेश द्वारा किया गया है।[1]

धरणेन्द्र से महाघोषेन्द्र-पर्यन्त के त्रायस्त्रिंशक देवों की नित्यता का निरूपण—

९. [१] अत्थि ण भंते ! धरणस्स नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो तावत्तीसगा देवा, तावत्तीसगा देवा ?

हंता, अत्थि।

[९-१ प्र] भगवन् ! क्या नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण के त्रायस्त्रिंशक देव है ?

[९-१ उ] हाँ, गौतम ! है।

[२] से केणट्ठेण जाव तावत्तीसगा देवा, तावत्तीसगा देवा ?

गोयमा ! धरणस्स नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो तावत्तीसगाण देवाण सासए नामधेज्जे पण्णत्ते, ज न कदायि नासी, जाव अन्ने चयति, अन्ने उववज्जति।

[९-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते है कि नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण के त्रायस्त्रिंशक देव है ?

[९-२ उ] गौतम ! नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण के त्रायस्त्रिंशक देवो के नाम शाश्वत कहे गये है। वे किसी समय नही थे, ऐसा नही है, 'नही रहेगे'—ऐसा भी नही, यावत् पुराने च्यवते है और (उनके स्थान पर) नये उत्पन्न होते है। (इसलिए प्रवाहरूप से वे अनादिकाल से हैं)।

१०. एव भूयाणंदस्स वि। एव जाव महाघोसस्स।

[१०] इसी प्रकार भूतानन्द इन्द्र, यावत् महाघोष इन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देवो के विषय मे जानना चाहिए।

विवेचन—धरणेन्द्र से महाघोषेन्द्र तक के त्रायस्त्रिंशक देवो की नित्यता—सूत्र ९ एव १० मे प्रतिपादित है।

शक्रेन्द्र से अच्युतेन्द्र तक के त्रायस्त्रिंशक : कौन और कैसे ?

११ [१] अत्थि ण भंते ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो० पुच्छा।
हंता, अत्थि।

[११-१ प्र] भगवन् ! क्या देवराज देवेन्द्र शक्र के त्रायस्त्रिंशक देव है ? इत्यादि प्रश्न।

[११-१ उ] हाँ, गौतम ! है।

[२] से केणट्ठेण जाव तावत्तीसगा देवा, तावत्तीसगा देवा ?

एव खलु गोयमा ! तेण कालेण तेण समएण इहेव जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वालाए नाम सन्निवेसे होत्था। वण्णओ। तत्थ ण वालाए सन्निवेसे तावत्तीस सहाया गाहावती समणोवासगा जहा चमरस्स जाव विहरति। तए णं ते तावत्तीसं सहाया गाहावती समणोवासगा पुव्विं पि पच्छा वि उग्गा

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ टिप्पण), भा २, पृ ४९५

कहलाते है, ये तेतीस की सख्या मे होते है।[1] सहाया दो रूप दो अर्थ—(१) सहायाः—परस्पर सहायक। (२) सभाजा—परस्पर प्रीतिभाजन।[2]

बलीन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देवों की नित्यता का प्रतिपादन—

८. [१] **अत्थि ण भते! बलिस्स वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो तावत्तीसगा देवा, तावत्तीसगा देवा?**

हता, हत्थि।

[८-१ प्र] भगवन्! वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बलि के त्रायस्त्रिंशक देव है?

[८-१ उ] हाँ, गौतम! है।

[२] **से केणट्ठेण भते! एव वुच्चति—बलिस्स वइरोयणिंदस्स जाव तावत्तीसगा देवा, तावत्तीसगा देवा?**

एव खलु गोयमा! तेण कालेणं तेण समएण इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे बिब्भेले णाम सन्निवेसे होत्था। वण्णओ। तत्थ ण वेभेले सन्निवेसे जहा चमरस्स जाव उववन्ना। जप्पभिति च ण भते! ते बिब्भेलगा तावत्तीस सहाया गाहावती समणोवासगा बलिस्स वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो सेस त चेव (सु. ७ [२]) जाव निच्चे अव्वोच्छित्तिनयट्ठयाए। अन्ने चयति, अन्ने उववज्जति।

[८-२ प्र] भगवन्! ऐसा किस कारण से कहते है कि वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बलि के तेतीस त्रायस्त्रिंशक देव है?

[८-२ उ] गौतम! उस काल और उस समय मे इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे बिभेल नामक एक सन्निवेश था। उसका वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार करना चाहिए। उस बिभेल सन्निवेश मे परस्पर सहायक तेतीस गृहस्थ श्रमणोपासक थे, इत्यादि जैसा वर्णन चमरेन्द्र के त्रायस्त्रिंशको के लिए (५-२ मे) किया गया है, वैसा ही यहाँ जानना चाहिए, यावत्—वे त्रायस्त्रिंशक देव के रूप मे उत्पन्न हुए।

[प्र] भगवन्! जब से वे बिभेलसन्निवेशनिवासी परस्पर सहायक तेतीस गृहपति श्रमणोपासक बलि के त्रायस्त्रिंशक देव के रूप मे उत्पन्न हुए, क्या तभी से ऐसा कहा जाता है कि वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बलि के त्रायस्त्रिंशक देव हैं? इत्यादि प्रश्न।

[उ] (इसके उत्तर मे) शेष सभी वर्णन (सू ७-२ के अनुसार) पूर्ववत् जानना चाहिए, यावत्—वे अव्युच्छित्ति (द्रव्यार्थिक)-नय की अपेक्षा नित्य है। (किन्तु पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा से) पुराने (त्रायस्त्रिंशक देव) च्यवते रहते है, (उनके स्थान पर) दूसरे (नये) उत्पन्न होते रहते है,—यहाँ तक कहना चाहिए।

विवेचन—बलीन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देवो की नित्यता-अनित्यता का निर्णय—प्रस्तुत ८ वे सूत्र मे वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बलि के त्रायस्त्रिंशक देवो के अस्तित्व, उत्पत्ति एव द्रव्यार्थिकनय की

---

१ 'त्रायस्त्रिंशा—मन्त्रिविकल्पा।'—भगवती अ वृत्ति, पत्र ५०२

२ (क) सहाया—परस्परेण सहायकारिण।—वही, पत्र ५०२

(ख) सभाजा—परस्पर प्रीतिभाज।—वियाहप सू पा टि, भा, २ पृ ४९४

दृष्टि से नित्यता और पर्यायार्थिक-दृष्टि से व्यक्तिगत रूप मे अनित्यता किन्तु प्रवाहरूप मे अविच्छिन्नता का प्रतिपादन पूर्वसूत्रो के अतिदेश द्वारा किया गया है ।[1]

धरणेन्द्र से महाघोषेन्द्र-पर्यन्त के त्रायस्त्रिंशक देवो की नित्यता का निरूपण—

९ [१] अत्थि ण भते ! धरणस्स नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो तावत्तीसगा देवा, तावत्तीसगा देवा ?

हता, अत्थि ।

[९-१ प्र] भगवन् ! क्या नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण के त्रायस्त्रिंशक देव है ?

[९-१ उ] हाँ, गौतम ! है ।

[२] से केणट्ठेण जाव तावत्तीसगा देवा, तावत्तीसगा देवा ?

गोयमा ! धरणस्स नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो तावत्तीसगाण देवाण सासए नामधेज्जे पण्णत्ते, ज न कदायि नासी, जाव अन्ने चयति, अन्ने उववज्जति ।

[९-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते है कि नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण के त्रायस्त्रिंशक देव है ?

[९-२ उ] गौतम ! नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण के त्रायस्त्रिंशक देवो के नाम शाश्वत कहे गये है । वे किसी समय नही थे, ऐसा नही है, 'नही रहेगे'—ऐसा भी नही, यावत् पुराने च्यवते है और (उनके स्थान पर) नये उत्पन्न होते हैं । (इसलिए प्रवाहरूप से वे अनादिकाल से है) ।

१० एव भूयाणदस्स वि । एव जाव महाघोसस्स ।

[१०] इसी प्रकार भूतानन्द इन्द्र, यावत् महाघोष इन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देवो के विषय मे जानना चाहिए ।

विवेचन—धरणेन्द्र से महाघोषेन्द्र तक के त्रायस्त्रिंशक देवो की नित्यता—सूत्र ९ एव १० मे प्रतिपादित है ।

शक्रेन्द्र से अच्युतेन्द्र तक के त्रायस्त्रिंशक : कौन और कैसे ?

११. [१] अत्थि ण भते ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो० पुच्छा ।

हता, अत्थि ।

[११-१ प्र] भगवन् ! क्या देवराज देवेन्द्र शक्र के त्रायस्त्रिंशक देव है ? इत्यादि प्रश्न ।

[११-१ उ] हाँ, गौतम ! है ।

[२] से केणट्ठेण जाव तावत्तीसगा देवा, तावत्तीसगा देवा ?

एव खलु गोयमा ! तेण कालेण तेण समएण इहेव जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वालाए नाम सन्निवेसे होत्था । वण्णओ । तत्थ ण वालाए सन्निवेसे तावत्तीस सहाया गाहावती समणोवासगा जहा चमरस्स जाव विहरति । तए ण ते तावत्तीसं सहाया गाहावती समणोवासगा पुव्वि पि पच्छा वि उग्गा

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ टिप्पण), भा २, पृ ४९५

उग्गविहारी संविग्गा संविग्गविहारी बहूइं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेंति, झू० २ सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदेंति, छे० २ आलोइयपडिक्कंता समाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा जाव उववन्ना। जप्पभिंति च णं भंते! ते बालागा तावत्तीसं सहाया गाहावती समणोवासगा सेसं जहा चमरस्स जाव अन्ने उववज्जति।

[११-२ प्र] भगवन्! ऐसा किस कारण से कहते है कि देवेन्द्र देवराज शक्र के त्रायस्त्रिंशक देव है?

[११-२ उ] गौतम! उस काल और उस समय मे इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे, भारतवर्ष मे वालाक (अथवा पलाशक) सन्निवेश था। उसका वर्णन करना चाहिए। उस वालाक सन्निवेश मे परस्पर सहायक (अथवा प्रीतिभाजन) तेतीस गृहपति श्रमणोपासक रहते थे, इत्यादि सब वर्णन चरमेन्द्र के त्रायस्त्रिंशको (सू ५—१-२) के अनुसार करना चाहिए, यावत् विचरण करते थे। वे तेतीस परस्पर सहायक गृहस्थ श्रमणोपासक पहले भी और पीछे भी उग्र, उग्रविहारी एव संविग्न तथा संविग्नविहारी होकर बहुत वर्षो तक श्रमणोपासकपर्याय का पालन कर, मासिक संलेखना से शरीर को कृश करके, साठ भक्त का अनशन द्वारा छेदन करके, अन्त मे आलोचना और प्रतिक्रमण करके काल के अवसर पर समाधिपूर्वक काल करके यावत् शक्र के त्रायस्त्रिंशक देव के रूप मे उत्पन्न हुए। 'भगवन्! जब से वे बालाक निवासी परस्परसहायक गृहपति श्रमणोपासक शक्र के त्रायस्त्रिंशको के रूप मे उत्पन्न हुए, क्या तभी से शक्र के त्रायस्त्रिंशक देव है?' इत्यादि प्रश्न एव उसके उत्तर मे शेष समग्र वर्णन, यावत् पुराने च्यवते है और नये उत्पन्न होते है, यहाँ तक चरमेन्द्र के समान कहना चाहिए।

१२ अत्थि णं भंते! ईसाणस्स०। एवं जहा सक्कस्स, नवरं चंपाए नगरीए जाव उववन्ना। जप्पिभिंति च णं भंते! चंपिच्चा तावत्तीसं सहाया० सेसं तं चेव जाव अन्ने उववज्जति।

[१२ प्र उ] भगवन्! क्या देवराज देवेन्द्र ईशान के त्रायस्त्रिंशक देव है? इत्यादि प्रश्न का उत्तर शक्रेन्द्र के समान जानना चाहिए। इतना विशेष है कि ये तेतीस श्रमणोपासक चम्पानगरी के निवासी थे, यावत् ईशानेन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देव के रूप मे उत्पन्न हुए। (इसके पश्चात्) जब से ये चम्पानगरी निवासी तेतीस परस्पर सहायक श्रमणोपासक त्रायस्त्रिंशक बने, इत्यादि (प्रश्न और उसके उत्तर मे) शेष समग्र वर्णन पूर्ववत् करना चाहिए, यावत् पुराने च्यवते है और नये (अन्य) उत्पन्न होते है, यहाँ तक कहना चाहिए।

१३ [१] अत्थि णं भंते! सणंकुमारस्स देविंदस्स देवरण्णो० पुच्छा। हंता, अत्थि।

[१३-१ प्र] भगवन्! क्या देवराज देवेन्द्र सनत्कुमार के त्रायस्त्रिंशक देव है?

[१३-१ उ] हाँ गौतम है।

[२] से केणट्ठेणं०? जहा धरणस्स तहेव।

[१३-२ प्र] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहते है? इत्यादि समग्र प्रश्न तथा उसके उत्तर मे जैसे धरणेन्द्र के विषय मे कहा है, उसी प्रकार कहना चाहिए।

१४ एव जाव पाणतस्स । एव अच्चुतस्स जाव अन्ने उववज्जति ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति ।

॥ दसमस्स चउत्थो ॥१० ४॥

[१४] इसी प्रकार यावत् प्राणत (देवेन्द्र) तक के त्रायस्त्रिशक देवो के विषय मे जान लेना चाहिए और इसी प्रकार अच्युतेन्द्र के त्रायस्त्रिशक देवो के सम्बन्ध मे जानना चाहिए, यावत् पुराने च्यवते है और (उनके स्थान पर) नये (त्रायस्त्रिश देव) उत्पन्न होते है, यहाँ तक कहना चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ! भगवन् ! यह इसी प्रकार है ! यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करते है ।

विवेचन—शक्रेन्द्र से अच्युतेन्द्र तक के त्रायस्त्रिशक देवो की नित्यता—प्रस्तुत ४ सूत्रो (११ से १४ तक) मे पूर्वोक्त सूत्रो का अतिदेश करके शक्रेन्द्र से अच्युतेन्द्र तक १२ प्रकार के कल्पो के वैमानिक देवेन्द्रो के त्रायस्त्रिशक देवो की नित्यता का प्रतिपादन किया है । प्राय सभी का वर्णन एक-सा है । केवल त्रायस्त्रिशको के पूर्वजन्म मे उग्र, उग्रविहारी, सविग्न एव सविग्नविहारी श्रमणोपासक थे और अन्तिम समय मे इन्होने सलेखना एव अनशनपूर्वक एव आलोचना—प्रायश्चित्त करके आत्मशुद्धिपूर्वक समाधिमरण (पण्डितमरण) प्राप्त किया था ।[१]

त्रायस्त्रिशक देव किन देवनिकायो मे ?—देवो के ४ निकाय है—भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक । इनमे से वाणव्यन्तर एव ज्योतिष्क देवो मे त्रायस्त्रिशक नही होते, किन्तु भवनपति एव वैमानिक देवो मे होते है । इसीलिए यहाँ भवनपति और वैमानिक देवो के त्रायस्त्रिशक देवो का वर्णन है ।[२]

॥ दशम शतक चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

---

८ वियाहपण्णत्ति सुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ४९६-४९७

९, भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी), भा ४, पृ १८१९

पंचमो उद्देओ : पंचम उद्देशक

देवी : अग्रमहिषीवर्णन

उपोद्घात—

१ तेण कालेण तेण समएणं रायगिहे नामं नगरे गुणसिलए चेइए जाव परिसा पडिगया।

[१] उस काल और उस समय मे राजगृह नामक नगर था। वहाँ गुणशीलक नामक उद्यान था। (वहाँ श्रमण भगवान् महावीरस्वामी का समवसरण हुआ।) यावत् परिषद् (धर्मोपदेश सुन कर) लौट गई।

२, तेणं कालेण तेण समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे अंतेवासी थेरा भगवतो जाइसपन्ना जहा अट्ठमे सए सत्तमुद्देसए (स. ८ उ ७ सु. ३) जाव विहरंति।

[२] उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीरस्वामी के बहुत-से अन्तेवासी (शिष्य) स्थविर भगवान् जातिसम्पन्न इत्यादि विशेषणो से युक्त थे, आठवें शतक के सप्तम उद्देशक के अनुसार अनेक विशिष्ट गुणसम्पन्न, यावत् विचरण करते थे।

३ तए ण ते थेरा भगवतो जायसड्ढा जायससया जहा गोयमसामी जाव पज्जुवासमाणा एव वदासी—

[३] एक बार उन स्थविरो (के मन) मे (जिज्ञासायुक्त) श्रद्धा और शका उत्पन्न हुई। अत वे गौतमस्वामी की तरह, यावत् (भगवान् की) पर्युपासना करते हुए इस प्रकार पूछने लगे—

विवेचन—स्थविरो द्वारा पृच्छा—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे इस उद्देशक की उत्थानिका प्रस्तुत करते हुए शास्त्रकार कहते है कि एक बार जब भगवान् महावीर राजगृहस्थित गुणशीलक उद्यान मे विराजमान थे, तब उनके शिष्यस्थविरो के मन मे कुछ जिज्ञासाएँ उत्पन्न हुईं। उनका समाधान पाने के लिए उन्होने अपनी प्रश्नावली क्रमश भगवान् महावीर के समक्ष सविनय प्रस्तुत की।[1]

४ चमरस्स ण भते! असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो कति अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ?

अज्जो! पच अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—काली रायी रयणी विज्जू मेहा। तत्थ ण एगमेगाए देवीए अट्ठट्ठ देवीसहस्सा परिवारो पन्नत्तो। पभू ण ताओ एगमेगा देवी अन्नाइ अट्ठट्ठ देवीसहस्साइ परियारं विउव्वित्तए। एवामेव सपुव्वावरेण चत्तालीस देवीसहस्सा, से त्त तुडिए।

[४ प्र] भगवन्! असुरेन्द्र असुरराज चमर की कितनी अग्रमहिषियाँ (पटरानियाँ—मुख्यदेवियाँ) कही गई है?

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), भा २, पृ ४९७

[४ उ] आर्यो ! (चमरेन्द्र की) पाच अग्रमहिषियाँ कही गई है । वे इस प्रकार—(१) काली, (२) राजी, (३) रजनी, (४) विद्युत् और (५) मेघा । इनमे से एक-एक अग्रमहिषी का आठ-आठ हजार देवियो का परिवार कहा गया है ।

एक-एक देवी (अग्रमहिषी), दूसरी आठ-आठ हजार देवियो के परिवार की विकुर्वणा कर सकती है । इस प्रकार पूर्वापर सब मिला कर (पाच अग्रमहिषियो का परिवार) चालीस हजार देवियाँ है । यह एक त्रुटिक (वर्ग) हुआ ।

विवेचन—चमरेन्द्र की अग्रमहिषियो का परिवार—प्रस्तुत चौथे सूत्र मे चमरेन्द्र की ५ अग्रमहिषियो तथा उनके प्रत्येक के ८-८ हजार देवियो का परिवार तथा कुल ४० हजार देवियाँ वताई गई है । इन सबका एक वर्ग (त्रुटिक) कहलाता है ।

कठिन शब्दार्थ—अग्गमहिसी अग्रमहिषी (पटरानी या प्रमुख देवी) **अट्ठट्ठदेवीसहस्साइ**—आठ-आठ हजार देवियाँ ।[1]

अपनी सुधर्मा सभा में चमरेन्द्र की मैथुननिमित्तक भोग की असमर्थता—

५ [१] पभू ण भते ! चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया चमरचचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरसि सीहासणसि तुडिएण सद्धि दिव्वाइ भोगभोगाइ भु जमाणे विहरित्तए ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[५-१ प्र] भगवन् ! क्या असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर अपनी चमरचचा राजधानी की सुधर्मासभा मे चमर नामक सिंहासन पर बैठ कर (पूर्वोक्त) त्रुटिक (स्वदेवियो के परिवार) के साथ भोग्य दिव्य भोगो को भोगने मे समर्थ है ?

[५-१ उ] (हे आर्यो !) यह अर्थ समर्थ नही ।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ—नो पभू चमरे असुरिंदे चमरचचाए रायहाणीए जाव विहरित्तए ? "अज्जो ! चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चमरचचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए माणवए चेइयखभे वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहूओ जिणसकहाओ सन्निक्खित्ताओ चिट्ठति, जाओ ण चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो अन्नेसि च बहूण असुरकुमाराण देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ वदणिज्जाओ नमसणिज्जाओ पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाण मगल देवय चेतिय पज्जुवासणिज्जाओ भवति, तेसि पणिहाए नो पभू, से तेणट्ठेण अज्जो ! एव वुच्चइ—नो पभू चमरे असुरिंदे जाव राया चमरचचाए जाव विहरित्तए ।"

[५-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते है कि असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर चमरचचा राजधानी की सुधर्मासभा मे यावत् भोग्य दिव्य भोगो को भोगने मे समर्थ नही है ?

[५-२ उ] आर्यो ! असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर की चमरचचा नामक राजधानी की सुधर्मासभा मे माणवक चैत्यस्तम्भ मे, वज्रमय (हीरो के) गोल डिब्बो मे जिन भगवान् की बहुत-सी अस्थियाँ रखी हुई है, जो कि असुरेन्द्र असुरकुमारराज के लिए तथा अन्य बहुत-से असुरकुमार देवो

---

१ भगवती विवेचन, (प घेवरचन्दजी) भा ४, पृ १८२१

और देवियो के लिए अर्चनीय, वन्दनीय, नमस्करणीय, पूजनीय, सत्कारयोग्य एव सम्मानयोग्य है। वे कल्याणरूप, मगलरूप, देवरूप चैत्यरूप एव पर्युपासनीय है। इसलिए उन (जिन भगवान् की अस्थियो) के प्रणिधान (सान्निध्य) मे वह (असुरेन्द्र, अपनी राजधानी की सुधर्मासभा मे) यावत् भोग भोगने मे समर्थ नही है। इसीलिए हे आर्यो! ऐसा कहा गया है कि असुरेन्द्र यावत् चमर, चमरचचा राजधानी मे यावत् दिव्य भोग भोगने मे समर्थ नही है।

[३] पभू ण अज्जो! चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया चमरचचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरसि सीहासणसि चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीहिं तावत्तीसाए जाव अन्नेहि य बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहि य देवीहि य सद्धि सपरिवुडे महयाऽहय जाव[1] भुजमाणे विहरित्तए, केवल परियारिड्ढीए; नो चेव ण मेहुणवत्तिय।

[५-३ उ] परन्तु हे आर्यो! वह असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर, अपनी चमरचचा राजधानी की सुधर्मासभा मे चमर नामक सिंहासन पर बैठ कर चौसठ हजार सामानिक देवो, त्रायस्त्रिशक देवो और दूसरे बहुत-से असुरकुमार देवो और देवियो से परिवृत होकर महानिनाद के साथ होने वाले नाट्य, गीत, वादित्र आदि के शब्दो से होने वाले (राग-रग रूप) दिव्य भोग्य भोगो का केवल परिवार की ऋद्धि से उपभोग करने मे समर्थ है, किन्तु मैथुननिमित्तक भोग भोगने मे समर्थ नही।

विवेचन—चमरेन्द्र सुधर्मा सभा मे मैथुननिमित्तक भोग भोगने मे असमर्थ—प्रस्तुत पाँचवे सूत्र मे सुधर्मासभा मे मैथुन-निमित्तक भोग भोगने की चमरेन्द्र की असमर्थता का सयुक्तिक प्रतिपादन किया गया है।[2]

कठिन शब्दो का भावार्थ—वइरामएसु—वज्रमय (हीरो के बने हुए), **गोलवट्टसमुग्गएसु**—वृत्ताकार गोल डिब्बो मे। **जिणसकहाओ**—जिन भगवान् की अस्थियाँ। **अच्चणिज्जा**—अर्चनीय। **पज्जुवासणिज्जाओ**—उपासना करने योग्य। **पणिहाए**—प्रणिधान—सान्निध्य मे। **मेहुणवत्तिय**—मैथुन के निमित्त। **परियारिड्ढीए**—परिवार की ऋद्धि से अर्थात्—अपने देवी परिवार की स्त्री शब्द-श्रवण-रूपदर्शनादि परिचारणा रूप आदि से।[3]

चमरेन्द्र के सोमादि लोकपालो का देवी-परिवार—

६ चमरस्स ण भते! असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सोमस्स महारण्णो कति अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ? अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—कणगा कणगलया चित्तगुत्ता वसुधरा। तत्थ ण एगमेगाए देवीए एगमेग देविसहस्स परिवारो पन्नत्तो। पभू ण ताओ एगमेगा देवी अन्न एगमेग देविसहस्स परिवार विउव्वित्तए। एवामेव चत्तारि देविसहस्सा, से त्तं तुडिए।

---

१ 'जाव' पद सूचित पाठ—"नट्टगीयवाइयततीतलतालतुडियघणमुइगपडुप्पवाइयरवेण दिव्वाइ भोगभोगाइ ति"। अ वृ व्याख्या पत्र ५०६

२ विहायपण्णत्तिसुत्त (मूल पाठ टिप्पण) भा २, पृ ४९८

३ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५०५-५०६

[६ प्र] भगवन् ! असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के लोकपाल सोम महाराज की कितनी अग्रमहिषियाँ है ?

[६ उ] आर्यो ! उनके चार अग्रमहिषियाँ है। यथा—कनका, कनकलता, चित्रगुप्ता और वसुन्धरा। इनमे से प्रत्येक देवी का एक-एक हजार देवियो का परिवार है। इनमे से प्रत्येक देवी, एक-एक हजार देवियो के परिवार की विकुर्वणा कर सकती है। इस प्रकार पूर्वापर सब मिल कर चार हजार देवियाँ होती है। यह एक त्रुटिक (देवी-वर्ग) कहलाता है।

७ पभू ण भते ! चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सोमे महाराया सोमाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए सोमसि सीहासणसि तुडिएण० ? अवसेस जहा चमरस्स, नवर परियारो जहा सूरियाभस्स,[1] सेस त चेव जाव णो चेव ण मेहुणवत्तिय।

[७ प्र] भगवन् ! क्या असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर का लोकपाल सोम महाराजा, अपनी सोमा नामक राजधानी की सुधर्मासभा मे, सोम नामक सिहासन पर बैठ कर अपने उस त्रुटिक (देवियो के परिवारवर्ग) के साथ भोग्य दिव्य-भोग भोगने मे समर्थ है ?

[७ उ] (हे आर्यो !) जिस प्रकार असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के सम्बन्ध मे कहा गया, उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए, परन्तु इसका परिवार, राजप्रश्नीय सूत्र मे वर्णित सूर्याभदेव के परिवार के समान. जानना चाहिए। शेष सब वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए, यावत् वह सोमा राजधानी की सुधर्मा सभा मे मैथुननिमित्तक भोग भोगने मे समर्थ नही है।

८ चमरस्स ण भते ! जाव रण्णो जमस्स महारण्णो कति अग्गमहिसीओ० ? एव चेव, नवर जमाए रायहाणीए सेस जहा सोमस्स।

[८ प्र] भगवन् ! चमरेन्द्र के यावत् लोकपाल यम महाराजा की कितनी अग्रमहिषियाँ है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[८ उ] (आर्यो !) जिस प्रकार सोम महाराजा के सम्बन्ध मे कहा है, उसी प्रकार यम महाराजा के सम्बन्ध मे भी कहना चाहिए, किन्तु इतना विशेष है कि यम लोकपाल की राजधानी यमा है। शेष सब वर्णन सोम महाराजा के समान जानना चाहिए।

९. एव वरुणस्स वि, नवर वरुणाए रायहाणीए।

[९] इसी प्रकार (लोकपाल) वरुण महाराजा का भी कथन करना चाहिए। विशेष यही है कि वरुण महाराजा की राजधानी का नाम वरुणा है। (शेष सब वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए।)

१० एव वेसमणस्स वि, नवर वेसमणाए रायहाणीए। सेस त चेव जाव णो चेव ण मेहुणवत्तिय।

[१०] इसी प्रकार (लोकपाल) वैश्रमण महाराजा के विषय मे भी जानना चाहिए। विशेष इतना ही है कि वैश्रमण की राजधानी वैश्रमणा है। शेष सब वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए, यावत्—'वे वहाँ मैथुननिमित्तक भोग भोगने मे समर्थ नही है।

---

१ यहाँ राजप्रश्नीयसूत्रगत सूर्याभदेव का वर्णन जान लेना चाहिए

विवेचन—चमरेन्द्र के चार लोकपालो का देवीपरिवार तथा सुधर्मासभा मे भोग-असमर्थता—प्रस्तुत ५ सूत्रो (६ से १० तक) मे चमरेन्द्र के चारो लोकपालो (सोम, यम, वरुण, वैश्रमण) की अग्रमहिषियो तथा तत्सम्बन्धी देवीवर्ग की सख्या का निरूपण किया गया है। साथ ही अपनी-अपनी राजधानी की सुधर्मा सभा मे बैठ कर अपने देवीवर्ग के साथ सबकी, मैथुननिमित्तक भोग की असमर्थता बताई गई है। सबकी राजधानी और सिहासन का नाम अपने-अपने नाम के अनुरूप है।[1]

बलीन्द्र एव उसके लोकपालो का देवीपरिवार—

११ बलिस्स ण भते ! वइरोयणिदस्स० पुच्छा। अज्जो ! पच अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—सु भा निसु भा रभा निरभा मयणा। तत्थ ण एगमेगाए देवीए अ ० सेस जहा चमरस्स, नवर बलिचचाए रायहाणीए परियारो जहा मोउद्देसए (स ३ उ. १ सु. ११-१२),[2] सेस त चेव, जाव मेहुणवत्तिय।

[११ प्र] भगवन् ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बली की कितनी अग्रमहिषियाँ है ?

[११ उ] आर्यो ! (बलीन्द्र की) पाँच अग्रमहिषियाँ है। वे इस प्रकार है—शुम्भा, निशुम्भा, रम्भा, निरम्भा और मदना। इनमे से प्रत्येक देवी (अग्रमहिषी) के आठ-आठ हजार देवियो का परिवार है, इत्यादि शेष समग्र वर्णन चमरेन्द्र के देवीवर्ग के समान जानना चाहिए। विशेष इतना है कि बलीन्द्र की राजधानी बलिचचा है। इनके परिवार का वर्णन तृतीय शतक के प्रथम मोक उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए। शेष सब वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए, यावत्– वह (सुधर्मा सभा मे) मैथुननिमित्तक भोग भोगने मे समर्थ नही है।

१२. बलिस्स ण भते ! वइरोयणिदस्स वइरोयणरण्णो सोमस्स महारण्णो कति अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ ? अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—मीणगा सुभद्दा विजया असणी। तत्थ ण एगमेगाए देवीए० सेस जहा चमरसोमस्स, एव जाव वेसमणस्स।

[१२ प्र] भगवन् ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि के लोकपाल सोम महाराजा की कितनी अग्रमहिषियाँ है ?

[१२ उ] आर्यो ! (सोम महाराजा की) चार अग्रमहिषियाँ है ? वे इस प्रकार—(१) मेनका, (२) सुभद्रा, (३) विजया और (४) अशनी। इनकी एक-एक देवी का परिवार आदि समग्र चमरेन्द्र के लोकपाल सोम के समान जानना चाहिए। इसी प्रकार यावत् वैरोचनेन्द्र बलि के लोकपाल वैश्रमण तक सारा वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

विवेचन—वैरोचनेन्द्र एव उनके चार लोकपालो की अग्रमहिषियो आदि का वर्णन—प्रस्तुत दो (११-१२) सूत्रो मे वैरोचनेन्द्र बली एव पूर्वोक्त नाम के चार लोकपालो की अग्रमहिषियो तथा

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ४९८-४९९

२ यहाँ भगवतीसूत्र के शतक ३ उ १ के 'मोका' उद्देशक मे उल्लिखित वर्णन समझ लेना चाहिए

उनके देवी-परिवार का वर्णन है, साथ ही उनको अपनी-अपनी राजधानी की सुधर्मा सभा मे अपने देवी वर्ग के साथ उनकी मैथुननिमित्तक असमथता का भी अतिदेश किया गया है।[1]

धरणेन्द्र और उसके लोकपालो का देवी-परिवार—

१३. धरणस्स ण भते ! नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो कति अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ ? अज्जो ! छ अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—अला[2] मक्का सतेरा सोयामणी इदा घणविज्जुया। तत्थ ण एगमेगाए देवीए छ च्छ देविसहस्सा परियारो पन्नत्तो। पभू ण ताओ एगमेगा देवी अन्नाइ छ च्छ देविसहस्साइ परियार विउव्वित्तए। एवामेव सपुव्वावरेण छत्तीस देविसहस्सा, से त्त तुडिए।

[१३ प्र] भगवन् ! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण की कितनी अग्रमहिषियाँ कही गई है ?

[१३ उ] आर्यो ! (धरणेन्द्र की) छह अग्रमहिषियाँ है। यथा--(१) अला (इला), (२) मक्का (शुक्रा), (३) सतारा, (४) सौदामिनी (५) इन्द्रा और (६) घनविद्युत्। उनमे से प्रत्येक अग्रमहिषी के छह-छह हजार देवियो का परिवार कहा गया है। इनमे से प्रत्येक देवी (अग्रमहिषी), अन्य छह-छह हजार देवियो के परिवार की विकुर्वणा कर सकती है। इस प्रकार पूर्वापर सब मिला कर छत्तीस हजार देवियो का यह त्रुटिक (वर्ग) कहा गया है।

१४ पभू ण भते ! धरणे ? सेस त चेव, नवर धरणाए रायहाणीए धरणसि सीहासणसि सओ परियारो,[3] सेस त चेव।

[१४ प्र] भगवन् ! क्या धरणेन्द्र (सुधर्मासभा मे देवीपरिवार के साथ) यावत् भोग भोगने मे समर्थ है ? इत्यादि प्रश्न।

[१४ उ] पूर्ववत् समग्र कथन जानना चाहिए। विशेष इतना ही है कि (धरणेन्द्र की) राजधानी धरणा मे धरण नामक सिंहासन पर (बैठ कर) स्वपरिवार शेष सब वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए।

१५ धरणस्स ण भंते ! नागकुमारिंदस्स कालवालस्स लोगपालस्स महारण्णो कति अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ ? अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—असोगा विमला सुप्पभा सुदसणा। तत्थ ण एगमेगाए० अवसेस जहा चमरलोगपालाण। एव सेसाण तिण्ह वि लोगपालाण।

[१५ प्र] भगवन् ! नागकुमारेन्द्र धरण के लोकपाल कालवाल नामक महाराजा की कितनी अग्रमहिषियाँ है ?

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, (मूलपाठ टिप्पणयुक्त) भा २, पृ ४९९

२ पाठान्तर—दूसरी प्रति मे 'अला' के स्थान मे 'इला', तथा 'मक्का' के स्थान मे 'सुक्का' पाठ मिलता है।

३ धरणेन्द्र का स्वपरिवार—इस प्रकार है—"छहिं सामाणियसाहस्सीहिं, तायत्तीसाए तायत्तीसाए, चउहिं लोगपालेहिं, छहिं अग्गमहिसीहिं सत्तहिं अणिएहिं, सत्तहिं अणियाहिवईहिं चउवीसाए आयरक्खसाहस्सीहिं अन्नेहि य बहूहिं नागकुमारेहि देवेहि य देवीहि य सद्धि सपरिवडेत्ति।"

—जीवाभिगमसूत्र, भगवती अ वृत्ति, पत्र ५०६

[१५ उ] आर्यो ! (धरणेन्द्र के लोकपाल कालवाल की) चार अग्रमहिषियाँ है। यथा—अशोका, विमला, सुप्रभा और सुदर्शना। इनमे से एक-एक देवी का परिवार आदि वर्णन चमरेन्द्र के लोकपाल के समान समझना चाहिए। इसी प्रकार (धरणेन्द्र के) शेष तीन लोकपालो के विषय मे भी कहना चाहिए।

विवेचन—धरणेन्द्र तथा उसके चार लोकपालो का देवीपरिवार तथा सुधर्मासभा मे भोग-असमर्थता की प्ररूपणा—प्रस्तुत तीन सूत्रो (१३-१४-१५) मे धरणेन्द्र तथा उसके लोकपालो की अग्रमहिषियो सहित देवीवर्ग की सख्या तथा सुधर्मा सभा मे उनकी भोग-असमर्थता का प्रतिपादन किया गया है।[1]

भूतानन्दादि भवनवासी इन्द्रो तथा उनके लोकपालो का देवीपरिवार—

१६. भूयाणदस्स ण भते !० पुच्छा। अज्जो ! छ अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—रूया रूयसा सुरूया रुयगावती रूयकता रूयप्पभा। तत्थ ण एगमेगाए देवीए० अवसेस जहा धरणस्स।

[१६ प्र] भगवन् ! भूतानन्द (भवनपतीन्द्र) की कितनी अग्रमहिषियाँ है ?

[१६ उ] आर्यो ! भूतानन्द की छह अग्रमहिषियाँ है। यथा—रूपा, रूपाशा, सुरूपा, रूपकावती, रूपकान्ता और रूपप्रभा। इनमे से प्रत्येक देवी—अग्रमहिषी के परिवार आदि का तथा शेष समस्त वर्णन धरणेन्द्र के समान जानना चाहिए।

१७. भूयाणदस्स ण भते ! नागवित्तस्स० पुच्छा। अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ,, त जहा—सुणदा सुभद्दा सुजाया सुमणा। तत्थ ण एगमेगाए देवीए० अवसेस जहा चमर-लोगपालाण। एव सेसाण तिण्ह वि लोगपालाण।

[१७ प्र] भगवन् ! भूतानन्द के लोकपाल नागवित्त के कितनी अग्रमहिषियाँ है ? इत्यादि पृच्छा।

[१७ उ] आर्यो ! (नागवित्त की) चार अग्रमहिषियाँ है। वे इस प्रकार—सुनन्दा, सुभद्रा, सुजाता और सुमना। इसमे प्रत्येक देवी के परिवार आदि का शेष वर्णन चमरेन्द्र के लोकपाल के समान जानना चाहिए। इसी प्रकार शेष तीन लोकपालो का वर्णन भी (चमरेन्द्र के शेष तीन लोकपालो के समान) जानना चाहिए।

१८. जे दाहिणिल्ला इदा तेसि जहा धरणस्स। लोगपालाण पि तेसि जहा धरणलोग-पालाण। उत्तरिल्लाण इदाण जहा भूयाणदस्स। लोगपालाण वि तेसि जहा भूयाणदस्स लोगपालाण। नवर इंदाण सव्वेसि रायहाणीओ, सीहासणाणि य सरिसणामगाणि, परियारो जहा मोउद्देसए (स ३ उ. १ सु १४)।[2] लोगपालाण सव्वेसि रायहाणीओ सीहासणाणि य सरिसनामगाणि, परियारो जहा चमरलोगपालाण।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टिप्पण) भा २, पृ ५००

२ देखिये—भगवतीसूत्र शतक ३, मोका नामक प्रथम उद्देशक, सू १४

[१८] जो दक्षिणदिशावर्ती इन्द्र है, उनका कथन धरणेन्द्र के समान तथा उनके लोकपालो का कथन धरणेन्द्र के लोकपालो के समान जानना चाहिए। उत्तरदिशावर्ती इन्द्रो का कथन भूतानन्द के समान तथा उनके लोकपालो का कथन भी भूतानन्द के लोकपालो के समान जानना चाहिए। विशेष इतना है कि सब इन्द्रो की राजधानियो और उनके सिंहासनो का नाम इन्द्र के नाम के समान जानना चाहिए। उनके परिवार का वर्णन भगवती सूत्र के तीसरे शतक के प्रथम मोक उद्देशक मे कहे अनुसार जानना चाहिए। सभी लोकपालो की राजधानियो और उनके सिंहासनो का नाम लोकपालो के नाम के सदृश जानना चाहिए तथा उनके परिवार का वर्णन चमरेन्द्र के लोकपालो के परिवार के वर्णन के समान जानना चाहिए।

विवेचन—भूतानन्द, दक्षिण-उत्तरवर्ती इन्द्र एव उनके लोकपालो के देवी-परिवार का वर्णन—प्रस्तुत तीन सूत्रो (१६-१७-१८) मे अतिदेशपूर्वक किया गया है। प्राय सारा वर्णन समान है, केवल राजधानियो, सिंहासनो तथा व्यक्तियो के नामो मे अन्तर है। राजधानियो और सिंहासनो के नाम प्रत्येक इन्द्र के अपने-अपने नाम के अनुसार है। सुधर्मासभा मे प्रत्येक इन्द्र की अपने देवी-परिवार के साथ मैथुननिमित्तक असमर्थता भी साथ-साथ ध्वनित कर दी है।[1]

व्यन्तरजातीय देवेन्द्रो के देवी-परिवार आदि का निरूपण—

१९ [१] कालस्स ण भते ! पिसायिदस्स पिसायरण्णो• कति अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ ? अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—कमला कमलप्पभा उप्पला सुदसणा। तत्थ ण एगमेगाएदेवीए एगमेग देविसहस्स, सेस जहा चमरलोगपालाण। परियारो तहेव, नवर कालाए रायहाणीए कालसि सीहासणसि, सेस तं चेव।

[१९-१ प्र] भगवन् ! पिशाचेन्द्र पिशाचराज काल की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ?

[१९-१ उ] आर्यो ! (कालेन्द्र की) चार अग्रमहिषियाँ है। यथा—कमला, कमलप्रभा, उत्पला और सुदर्शना। इनमे से प्रत्येक देवी (अग्रमहिषी) के एक-एक- हजार देवियो का परिवार है। शेष समग्र वर्णन चमरेन्द्र के लोकपालो के समान जानना चाहिए एव परिवार का कथन भी उसी के परिवार के सदृश करना चाहिए। विशेष इतना है कि इसके 'काला' नाम की राजधानी और काल नामक सिंहासन है। शेष सब वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

[२] एव महाकालस्स वि।

[१९-२] इसी प्रकार पिशाचेन्द्र महाकाल का एतद्विषयक वर्णन भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

२० [१] सुरूवस्स ण भते ! भूइदस्स भूयरन्नो० पुच्छा। अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा— रूववती बहुरूवा सुरूवा सुभगा। तत्थ ण एगमेगाए० सेस जहा कालस्स।

[२०-१ प्र] भगवन् ! भूतेन्द्र भूतराज सुरूप की कितनी अग्रमहिषियाँ है ?

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, (मू प। टिप्पणयुक्त), भा २, पृ ५००-५०१

[२०-१ उ] आर्यो ! (सुरूपेन्द्र भूतराज की) चार अग्रमहिषियाँ है। यथा—रूपवती, बहुरूपा, सुरूपा और सुभगा। इनमे से प्रत्येक देवी (अग्रमहिषी) के परिवार आदि का वर्णन कालेन्द्र के समान जानना चाहिए।

[२] एव पडिरूवगस्स वि।

[२०-२] इसी प्रकार प्रतिरूपेन्द्र के (देवी-परिवार आदि के) विषय मे भी जानना चाहिए।

२१. [१] पुण्णभद्दस्स ण भते ! जक्खिदस्स० पुच्छा। अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—पुण्णा बहुपुत्तिया उत्तमा तारया। तत्थ ण एगमेगाए० सेस जहा कालस्स०।

[२१-१ प्र] भगवन् यक्षेन्द्र यक्षराज पूर्णभद्र की कितनी अग्रमहिषियाँ है ?

[२१-१ उ] आर्यो ! (पूर्णभद्रेन्द्र की) चार अग्रमहिषियाँ है। यथा—पूर्णा, बहुपुत्रिका, उत्तमा और तारका। इनमे प्रत्येक देवी (अग्रमहिषी) के परिवार आदि का वर्णन कालेन्द्र के समान जानना चाहिए।

[२] एव माणिभद्दस्स वि।

[२१-२] इसी प्रकार माणिभद्र (यक्षेन्द्र) के विपय मे भी जान लेना चाहिए।

२२. [१] भीमस्स ण भते ! रक्खसिदस्स० पुच्छा। अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—पउमा पउमावती कणगा रयणप्पभा। तत्थ ण एगमेगा० सेस जहा कालस्स।

[२२-१ प्र] भगवन् ! राक्षसेन्द्र राक्षसराज भीम के कितनी अग्रमहिषियाँ कही गई है ?

[२२-१ उ] आर्यो ! (भीमेन्द्र की) चार अग्रमहिषियाँ कही गई है। वे इस प्रकार—पद्मा, पद्मावती, कनका और रत्नप्रभा। इनमे से प्रत्येक देवी (अग्रमहिषी) के परिवार आदि का वर्णन कालेन्द्र के समान जानना चाहिए।

[२] एव महाभीमस्स वि।

[२२-२] इसी प्रकार महाभीम (राक्षसेन्द्र) के विषय मे भी जान लेना चाहिए।

२३ [१] किन्नरस्स ण भते !० पुच्छा। अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—वडेंसा केतुमती रतिसेणा रतिप्पिया। तत्थ ण० सेस त चेव।

[२३-१ प्र] भगवन् ! किन्नरेन्द्र की कितनी अग्रमहिषियाँ है ?

[२३-१ उ] आर्यो ! (किन्नरेन्द्र की) चार अग्रमहिषियाँ है। वे इस प्रकार है—१ अवतसा, २ केतुमती, ३ रतिसेना और ४ रतिप्रिया। इनमे से प्रत्येक अग्रमहिषी के देवी-परिवार के विषय मे पूर्वोक्तरूप से जानना चाहिए।

[२] एव किंपुरिसस्स वि।

[२३-२] इसी प्रकार किम्पुरुषेन्द्र के विषय मे कहना चाहिए।

२४ [१] सप्पुरिसस्स ण० पुच्छा। अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—रोहिणी नवमिया हिरी पुप्फवती। तत्थ ण एगमेगा०, सेस त चेव।

[२४-१ प्र] भगवन् ! सत्पुरुषेन्द्र की कितनी अग्रमहिषियाँ है ?

[२४-१ उ] आर्यो! (सत्पुरुषेन्द्र की) चार अग्रमहिषियाँ हैं। यथा—१ रोहिणी, २, नवमिका, ३ ह्री और ४ पुष्पवती। इनमे से प्रत्येक अग्रमहिषी के देवी-परिवार का वर्णन पूर्वोक्तरूप से जानना चाहिए।

[२] एव महापुरिसस्स वि।

[२४-२] इसी प्रकार महापुरुषेन्द्र के विषय मे भी समझ लेना चाहिए।

२५ [१] अतिकायस्स ण भते! ० पुच्छा। अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—भुयगा भुयगवती महाकच्छा फुडा। तत्थ ण०, सेस त चेव।

[२५-१ प्र] भगवन्! अतिकायेन्द्र की कितनी अग्रमहिषियाँ है?

[२५-१ उ] आर्यो! (अतिकायेन्द्र की) चार अग्रमहिषियाँ है। यथा—१ भुजगा, २ भुजगवती, ३ महाकच्छा और ४ स्फुटा। इनमे से प्रत्येक अग्रमहिषी के देवी-परिवार का वर्णन पूर्वोक्तरूप से जानना चाहिए।

[२] एव महाकायस्स वि।

[२५-२] इसी प्रकार महाकायेन्द्र के विषय मे भी समझ लेना चाहिए।

२६. [१] गीतरतिस्स ण भते! ० पुच्छा। अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—सुघोसा विमला सुस्सरा सरस्सती। तत्थ ण०, सेस त चेव।

[२६-१ प्र] भगवन्! गीतरतीन्द्र की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं?

[२६-१ उ] आर्यो! (गीतरतीन्द्र की) चार अग्रमहिषियाँ है। वे इस प्रकार—१ सुघोषा, २ विमला, ३ सुस्वरा और ४ सरस्वती। इनमे से प्रत्येक अग्रमहिषी के देवी-परिवार का वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

[२] एव गीयजसस्स वि। सव्वेसि एतेसि जहा कालस्स, नवर सरिसनामियाओ रायहाणीओ सीहासणाणि य। सेस त चेव।

[२६-२] इसी प्रकार गीतयश-इन्द्र के विषय मे भी जान लेना चाहिए।

इन सभी इन्द्रो का शेष सम्पूर्ण वर्णन कालेन्द्र के समान जानना चाहिए। राजधानियो और सिंहासनो का नाम इन्द्रो के नाम के समान है। शेष सभी वर्णन पूर्ववत् (एक सरीखा) है।

विवेचन--व्यन्तरदेवो की विविध जाति के इन्द्रो का देवीपरिवार आदि वर्णन—प्रस्तुत ८ सूत्रो (सू १९ से २६ तक) मे आठ प्रकार के व्यन्तर देवो के इन्द्रो की अग्रमहिषियो तथा उनकी देवियो की सख्या एव अपनी-अपनी सुधर्मा सभा मे उनकी अपने देवीपरिवार के साथ मैथुननिमित्तक भोग भोगने की असमर्थता का अतिदेश किया गया है।[1]

व्यन्तरजातीय देवो के ८ प्रकार—(१) पिशाच, (२) भूत, (३) यक्ष, (४) राक्षस, (५) किन्नर, (६) किम्पुरुष, (७) महोरग, एव (८) गन्धर्व।[2]

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), भा २, पृ ५०१-५०२

२ (क) भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा ४,

(ख) तत्त्वार्थसूत्र अ ४, सू १२ व्यन्तरा किन्नर- किम्पुरुष-महोरग-गान्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचा।

इन आठो के प्रत्येक समूह के दो-दो इन्द्रो के नाम—(१) पिशाच के दो इन्द्र— काल और महाकाल, (२) यक्ष के दो इन्द्र—पूर्णभद्र और माणिभद्र, (३) भूत के दो इन्द्र—सुरूप और प्रतिरूप, (४) राक्षस के दो इन्द्र—भीम और महाभीम, (५) किन्नर के दो इन्द्र—किन्नर और किम्पुरुष, (६) किम्पुरुष के दो इन्द्र—सत्पुरुष और महापुरुष, (७) महोरग के दो इन्द्र—अतिकाय और महाकाय तथा (८) गान्धर्व के दो इन्द्र—गीतरति और गीतयश ।[1]

इनके प्रत्येक के चार-चार अग्रमहिषियाँ है और प्रत्येक अग्रमहिषी के देवी-परिवार की सख्या एक-एक हजार है । अर्थात्—प्रत्येक इन्द्र के चार-चार हजार देवी-वर्ग है । इन इन्द्रो की प्रत्येक की राजधानी और सिंहासन का नाम अपने-अपने नाम के अनुरूप होता है । ये सभी इन्द्र अपनी-अपनी सुधर्मासभा मे अपने देवीपरिवार के साथ मैथुननिमित्तक भोग नही भोग सकते ।[2]

चन्द्र सूर्य-ग्रहो के देवीपरिवार आदि का निरूपण—

२७. चदस्स ण भते ! जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो० पुच्छा । अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—चदप्पभा दोसिणाभा अच्चिमाली पभकरा । एव जहा जीवाभिगमे[3] जोतिसियउद्देसए तहेव ।

[२७ प्र] भगवन् ! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज चन्द्र की कितनी अग्रमहिषियाँ है ?

[२७ उ] आर्यो ! ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र की चार अग्रमहिषियाँ है। वे इस प्रकार है—(१) चन्द्रप्रभा, (२) ज्योत्स्नाभा, (३) अर्चिमाली एव (४) प्रभकरा । शेष समस्त वर्णन जीवाभिगम-सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति के द्वितीय उद्देशक मे कहे अनुसार जानना चाहिए ।

२८. सूरस्स वि सूरप्पभा आयवाभा अच्चिमाली पभकरा । सेस त चेव जाव नो चेव ण मेहुणवत्तिय ।

[२८] इसी प्रकार सूर्य के विषय मे भी जानना चाहिए । सूर्येन्द्र की चार अग्रमहिषियाँ ये है—सूर्यप्रभा, आतपाभा, अर्चिमाली और प्रभकरा । शेष सब वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए, यावत् वे अपनी राजधानी की सुधर्मासभा मे सिहासन पर बैठ कर अपने देवीपरिवार के साथ मैथुननिमित्तक भोग भोगने मे समर्थ नही है ।

२९ इगालस्स ण भते ! महग्गहस्स कति अग्ग० पुच्छा । अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—विजया वेजयती जयती अपराजिया । तत्थ ण एगमेगाए देवीए०, सेस जहा चदस्स । नवर इगालवडेंसए विमाणे इगालगसि सीहासणसि । सेस त चेव ।

[२९ प्र] भगवन् ! अगार (मगल) नामक महाग्रह की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ?

[२९ उ] आर्यो ! (अगार-महाग्रह की) चार अग्रमहिषियाँ है । वे इस प्रकार—(१) विजया, (२) वैजयन्ती, (३) जयन्ती और (४) अपराजिता । इनमे से प्रत्येक अग्रमहिषी के देवी-~ वर्णन चन्द्रमा के देवी-परिवार के समान जानना चाहिए । परन्तु इतना विशेष है ~.

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), भा २, पृ ५०१-५०२

२ वही, पृ ५०२

३ देखिये—जीवाभिगमसूत्र प्रतिपत्ति ३, उ २, सू २०२-४, पत्र ३७५-८५ (

का नाम अगारावतसक और सिहासन का नाम अगारक है, (जिस पर बैठ कर यह देवी-परिवार के साथ मैथुननिमित्तक भोग नही भोग सकता) इत्यादि शेप समग्रवर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए ।

३०. एव वियालगस्स वि । एव अट्ठासीतीए वि महागहाण भाणियव्व जाव भावकेउस्स । नवर वडेंसगा सीहासणाणि य सरिसनामगाणि । सेस त चेव ।

[३०] इसी प्रकार व्यालक नामक ग्रह के विपय मे भी जानना चाहिए । इसी प्रकार ८८ महाग्रहो के विषय मे यावत्—भावकेतु ग्रह तक जानना चाहिए । परन्तु विशेप यह है कि अवतसको और सिंहासनो का नाम इन्द्र के नाम के अनुरूप है । शेप सब वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए ।

विवेचन—चन्द्र, सूर्य और ग्रहो की देवियो की सख्या—प्रस्तुत ४ सूत्रो (२७ से ३० तक) मे चन्द्र, सूर्य, अगारक, व्यालक आदि ८८ महाग्रहो की अग्रमहिषियो तथा देवी-परिवार आदि का अतिदेशपूर्वक निरूपण किया गया है ।[1]

शक्रेन्द्र और उसके लोकपालो का देवी-परिवार—

३१ सक्कस्स ण भते ! देविंदस्स देवरण्णो० पुच्छा । अज्जो ! अट्ठ अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—पउमा सिवा सुयो अजू अमला अच्छरा नवमिया रोहिणी । तत्थ ण एगमेगाए देवीए सोलस सोलस देविसहस्सा परियारो पन्नत्तो । पभू ण ताओ एगमेगा देवी अन्नाइं सोलस सोलस देविसहस्सा परियार विउव्वित्तए । एवामेव सपुव्वावरेण अट्ठावीसुत्तर देविसयसहस्स, से त तुडिए ।

[३१ प्र] भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र की कितनी अग्रमहिषियाँ है ?

[३१ उ] आर्यो ! (शक्रेन्द्र की) आठ अग्रमहिषियाँ है । यथा—(१) पद्मा, (२) शिवा, (३) श्रेया, (४) अजू, (५) अमला, (६) अप्सरा, (७) नवमिका और (८) रोहिणी । इनमे से प्रत्येक देवी (अग्रमहिषी) का सोलह-सोलह हजार देवियो का परिवार कहा गया है । इनमे से प्रत्येक देवी सोलह-सोलह हजार देवियो के परिवार की विकुर्वणा कर सकती है । इस प्रकार पूर्वापर सब मिला कर एक लाख अट्ठाईस हजार देवियो का परिवार होता है । यह एक त्रुटिक (देवियो का वर्ग) कहलाता है ।

३२ पभू ण भते ! सक्के देविंदे देवराया सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए सक्कसि सीहासणसि तुडिएण सद्धि० सेस जहा चमरस्स (सु. ६-७) । नवर परियारो जहा मोउद्देसए (स. ३ उ १ सु १५) ।

[३२ प्र] भगवन् ! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र, सौधर्मकल्प (देवलोक) मे, सौधर्मावतसक विमान मे, सुधर्मासभा मे, शक्र नामक सिहासन पर बैठ कर अपने (उक्त) त्रुटिक के साथ भोग भोगने मे समर्थ है ?

[३२ उ] आर्यो ! इसका समग्र वर्णन चमरेन्द्र के समान (सू ६-७ के अनुसार) जानना चाहिए । विशेष इतना ही है कि इसके परिवार का कथन भगवतीसूत्र के तीसरे शतक के 'मोका' नामक प्रथम उद्देशक (सू १५) के अनुसार जान लेना चाहिए ।

३३ सक्कस्स ण देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो कति अग्गमहिसीओ० पुच्छा । अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—रोहिणी मदणा चित्ता सोमा । तत्थ ण

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणायुक्त), भा २, पृ ५०२-५०३

इन आठो के प्रत्येक समूह के दो-दो इन्द्रो के नाम—(१) पिशाच के दो इन्द्र—काल और महाकाल, (२) यक्ष के दो इन्द्र—पूर्णभद्र और माणिभद्र, (३) भूत के दो इन्द्र—सुरूप और प्रतिरूप, (४) राक्षस के दो इन्द्र—भीम और महाभीम, (५) किन्नर के दो इन्द्र—किन्नर और किम्पुरुष, (६) किम्पुरुष के दो इन्द्र—सत्पुरुष और महापुरुष, (७) महोरग के दो इन्द्र—अतिकाय और महाकाय तथा (८) गान्धर्व के दो इन्द्र—गीतरति और गीतयश।[1]

इनके प्रत्येक के चार-चार अग्रमहिषियाँ है और प्रत्येक अग्रमहिषी के देवी-परिवार की सख्या एक-एक हजार है। अर्थात्—प्रत्येक इन्द्र के चार-चार हजार देवी-वर्ग है। इन-इन्द्रो की प्रत्येक की राजधानी और सिंहासन का नाम अपने-अपने नाम के अनुरूप होता है। ये सभी इन्द्र अपनी-अपनी सुधर्मासभा मे अपने देवीपरिवार के साथ मैथुननिमित्तक भोग नही भोग सकते।[2]

चन्द्र सूर्य-ग्रहो के देवीपरिवार आदि का निरूपण—

२७. चदस्स ण भते! जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो० पुच्छा। अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—चदप्पभा दोसिणाभा अच्चिमाली पभंकरा। एवं जहा जीवाभिगमे[3] जोतिसियउद्देसए तहेव।

[२७ प्र] भगवन्! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज चन्द्र की कितनी अग्रमहिषियाँ है?

[२७ उ] आर्यो! ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र की चार अग्रमहिषियाँ है। वे इस प्रकार है—(१) चन्द्रप्रभा, (२) ज्योत्स्नाभा, (३) अर्चिमाली एव (४) प्रभकरा। शेष समस्त वर्णन जीवाभिगम-सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति के द्वितीय उद्देशक मे कहे अनुसार जानना चाहिए।

२८. सूरस्स वि सूरप्पभा आयवाभा अच्चिमाली पभंकरा। सेस त चेव जाव नो चेव ण मेहुणवत्तियं।

[२८] इसी प्रकार सूर्य के विषय मे भी जानना चाहिए। सूर्येन्द्र की चार अग्रमहिषियाँ ये है—सूर्यप्रभा, आतपाभा, अर्चिमाली और प्रभकरा। शेष सब वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए, यावत् वे अपनी राजधानी की सुधर्मासभा मे सिहासन पर वैठ कर अपने देवीपरिवार के साथ मैथुननिमित्तक भोग भोगने मे समर्थ नही है।

२९. इगालस्स ण भते! महग्गहस्स कति अग्ग० पुच्छा। अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—विजया वेजयती जयती अपराजिया। तत्थ ण एगमेगाए देवीए०, सेसं जहा चदस्स। नवर इगालवडेंसए विमाणे इगालगसि सीहासणसि। सेस त चेव।

[२९ प्र] भगवन्! अगार (मगल) नामक महाग्रह की कितनी अग्रमहिषियाँ है?

[२९ उ] आर्यो! (अगार-महाग्रह की) चार अग्रमहिषियाँ है। वे इस प्रकार—(१) विजया, (२) वैजयन्ती, (३) जयन्ती और (४) अपराजिता। इनमे से प्रत्येक अग्रमहिषी के देवी-परिवार का वर्णन चन्द्रमा के देवी-परिवार के समान जानना चाहिए। परन्तु इतना विशेष है कि इसके विमान

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), भा २, पृ ५०१-५०२

२ वही, पृ ५०२

३ देखिये—जीवाभिगमसूत्र प्रतिपत्ति ३, उ २, सू २०२-४, पत्र ३७५-८५ (आगमोदय)।

का नाम अगारावतसक और सिहासन का नाम अगारक है, (जिस पर बैठ कर यह देवी-परिवार के साथ मैथुननिमित्तक भोग नही भोग सकता) इत्यादि शेष समग्रवर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

३०. एव वियालगस्स वि। एव अट्ठासीतीए वि महागहाण भाणियव्व जाव भावकेउस्स। नवर वडेंसगा सीहासणाणि य सरिसनामगाणि। सेस त चेव।

[३०] इसी प्रकार व्यालक नामक ग्रह के विषय मे भी जानना चाहिए। इसी प्रकार ८८ महाग्रहो के विषय मे यावत्—भावकेतु ग्रह तक जानना चाहिए। परन्तु विशेष यह हे कि अवतसको और सिहासनो का नाम इन्द्र के नाम के अनुरूप है। शेष सब वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

विवेचन—चन्द्र, सूर्य और ग्रहो की देवियो की सख्या—प्रस्तुत ४ सूत्रो (२७ से ३० तक) मे चन्द्र, सूर्य, अगारक, व्यालक आदि ८८ महाग्रहो की अग्रमहिषियो तथा देवी-परिवार आदि का अतिदेशपूर्वक निरूपण किया गया है।[1]

शक्रेन्द्र और उसके लोकपालो का देवी-परिवार—

३१ सक्कस्स ण भते! देविदस्स देवरण्णो० पुच्छा। अज्जो! अट्ठ अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—पउमा सिवा सुयो अजू अमला अच्छरा नवमिया रोहिणी। तत्थ ण एगमेगाए देवीए सोलस सोलस देविसहस्सा परियारो पन्नत्तो। पभू ण ताओ एगमेगा देवी अन्नाइ सोलस सोलस देविसहस्सा परियार विउव्वित्तए। एवामेव सपुव्वावरेण अट्ठावीसुत्तर देविसयसहस्स, से त तुडिए।

[३१ प्र] भगवन्! देवेन्द्र देवराज शक्र की कितनी अग्रमहिषियाँ है?

[३१ उ] आर्यो! (शक्रेन्द्र की) आठ अग्रमहिषियाँ है। यथा—(१) पद्मा, (२) शिवा, (३) श्रेया, (४) अजू, (५) अमला, (६) अप्सरा, (७) नवमिका और (८) रोहिणी। इनमे से प्रत्येक देवी (अग्रमहिषी) का सोलह-सोलह हजार देवियो का परिवार कहा गया है। इनमे से प्रत्येक देवी सोलह-सोलह हजार देवियो के परिवार की विकुर्वणा कर सकती है। इस प्रकार पूर्वापर सब मिला कर एक लाख अट्ठाईस हजार देवियो का परिवार होता है। यह एक त्रुटिक (देवियो का वर्ग) कहलाता है।

३२ पभू ण भते! सक्के देविंदे देवराया सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए सक्कसि सीहासणसि तुडिएण सद्धि० सेस जहा चमरस्स (सु. ६-७)। नवर परियारो जहा मोउद्देसए (स ३ उ १ सु १५)।

[३२ प्र] भगवन्! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र, सौधर्मकल्प (देवलोक) मे, सौधर्मावतसक विमान मे, सुधर्मासभा मे, शक्र नामक सिहासन पर बैठ कर अपने (उक्त) त्रुटिक के साथ भोग भोगने मे समर्थ है?

[३२ उ] आर्यो! इसका समग्र वर्णन चमरेन्द्र के समान (सू ६-७ के अनुसार) जानना चाहिए। विशेष इतना ही है कि इसके परिवार का कथन भगवतीसूत्र के तीसरे शतक के 'मोका' नामक प्रथम उद्देशक (सू १५) के अनुसार जान लेना चाहिए।

३३ सक्कस्स ण देविदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो कति अग्गमहिसीओ० पुच्छा। अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—रोहिणी मदणा चित्ता सोमा। तत्थ ण

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणायुक्त), भा २, पृ ५०२-५०३

एगमेगा०, सेस जहा चमरलोगपालाण (सु ८-१३)। नवरं सयंपभे विमाणे सभाए सुहम्माए सोमसि सीहासणसि, सेस त चेव। एव जाव[1] वेसमणस्स, नवर विमाणाइ जहा ततियसए (स. ३ उ ७ सु. ३)।

[३३ प्र] भगवन्! देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल सोम महाराजा की कितनी अग्रमहिषियाँ है ?

[३३ उ] आर्यो! (लोकपाल सोम महाराजा की) चार अग्रमहिषियाँ है। वे इस प्रकार—(१) रोहिणी, (२) मदना, (३) चित्रा और (४) सोमा। इनमे से प्रत्येक अग्रमहिषी के देवी-परिवार का वर्णन चमरेन्द्र के लोकपालो के समान (सू ८-१३ के अनुसार) जानना चाहिए। किन्तु इतना विशेष है कि स्वयम्प्रभ नामक विमान मे सुधर्मासभा मे, सोम नामक सिहासन पर बैठ कर यावत् मैथुननिमित्तक भोग भोगने मे समर्थ नही इत्यादि पूर्ववत् जानना चाहिए। यावत् वैश्रमण लोकपाल तक का कथन करना चाहिए। विशेष यह है कि इनके विमान आदि का वर्णन (भगवती) तृतीयशतक के सातवे उद्देशक (सू ३) मे कहे अनुसार जानना चाहिए।

विवेचन—शक्रेन्द्र तथा उसके लोकपालो की देवियो आदि का वर्णन—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे शक्रेन्द्र की अग्रमहिषियो तथा उनके अधीनस्थ कुलदेवियो के परिवार का एव सुधर्मासभा मे उनके साथ मैथुननिमित्तक भोग भोगने की असमथता का प्रतिपादन किया गया है।[2]

ईशानेन्द्र तथा उसके लोकपालो का देवी-परिवार—

३४. ईसाणस्स ण भते!० पुच्छा। अज्जो! अट्ठ अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—कण्हा कण्हराई रामा रामरक्खिया वसू वसुगुत्ता वसुमित्ता वसुधरा। तत्थ ण एगमेगाए०, सेस जहा सक्कस्स।

[३४ प्र] भगवन्! देवेन्द्र देवराज ईशान की कितनी अग्रमहिषियाँ है ?

[३४ उ] आर्यो! ईशानेन्द्र की आठ अग्रमहिषियाँ है। यथा—(१) कृष्णा, (२) कृष्णराजि, (३) रामा, (४) रामरक्षिता, (५) वसु, (६) वसुगुप्ता, (७) वसुमित्रा, (८) वसुन्धरा। इनमे से प्रत्येक अग्रमहिषी की देवियो के परिवार आदि का शेष समस्त वर्णन शक्रेन्द्र के समान जानना चाहिए।

३५. ईसाणस्स ण भते! देविदस्स सोमस्स महारण्णो कति० पुच्छा। अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—पुढवी राती रयणी विज्जू। तत्थ ण०, सेस जहा सक्कस्स लोगपालाण। एव जाव वरुणस्स, नवर विमाणा जहा चउत्थसए (स ४ उ. १ सु ३)। सेस त चेव जाव नो चेव ण मेहुणवत्तिय।

सेव भते! सेव भते! त्ति जाव विहरइ।

॥ दसमे सए पचमो उद्देसो समत्तो ॥

---

१ 'जाव' पद से यहाँ 'यम, वरुण' समझना चाहिए

२ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ५०३

[३५ प्र] भगवन् ! देवेन्द्र ईशान के लोकपाल सोम महाराजा की कितनी अग्रमहिषियाँ कही गई है ?

[३५ उ] आर्यो ! (सोम लोकपाल की) चार अग्रमहिषियाँ है। यथा—पृथ्वी, रात्रि, रजनी और विद्युत्। इनमे से प्रत्येक अग्रमहिषी की देवियो के परिवार आदि शेष समग्र वर्णन शक्रेन्द्र के लोकपालो के समान है। इसी प्रकार यावत् वरुण लोकपाल तक जानना चाहिए। विशेष यह है कि इनके विमानो का वर्णन चौथे शतक के प्रथम उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए। शेष पूर्ववत्, यावत्—वह मैथुननिमित्तक भोग भोगने मे समर्थ नही है।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ! भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यो कह कर आर्य स्थविर यावत् विचरण करते है।

विवेचन—ईशानेन्द्र एव उसके लोकपालो का देवी-परिवार—प्रस्तुत दो सूत्रो (३४-३५) मे ईशानेन्द्र (द्वितीय देवलोक के इन्द्र) तथा उसके लोकपालो की अग्रमहिषियो आदि का वर्णन पूर्वसूत्र का अतिदेश करके किया गया है। चूंकि वैमानिक देवो मे केवल पहले और दूसरे देवलोक तक ही देवियाँ उत्पन्न होती है। इसलिए यहाँ प्रथम और द्वितीय देवलोक के इन्द्रो और उनके लोकपालो की अग्र-महिषियो का वर्णन किया गया है।[1] □□

॥ दशम शतक पचम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी), भा ४, पृ १८३१

छट्ठो उद्देसओ : छठा उद्देश

सभा · सभा (शक्रेन्द्र की सुधर्मा सभा)

१ कहिं णं भंते ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सभा सुहम्मा पन्नत्ता ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए एवं जहा रायप्पसेणइज्जे जाव पंच वडेंसगा पन्नत्ता, तं जहा—असोगवडेंसए जाव[1] मज्झे सोहम्मवडेंसए। से णं सोहम्मवडेंसए महाविमाणे अद्धतेरस जोयणसयसहस्साइं आयाम-विक्खभेणं।

एवं जह सूरियाभे तहेव माणं तहेव उववातो।
सक्कस्स य अभिसेओ तहेव जह सूरियाभस्स ॥१॥

अलंकार अच्चणिया तहेव जाव आयरक्ख त्ति, दो सागरोवमाइं ठिती।

[१ प्र] भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र की सुधर्मासभा कहाँ है ?

[१ उ] गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत से दक्षिण दिशा मे, इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसम रमणीय भूभाग से अनेक कोटाकोटि योजन दूर ऊँचाई मे सौधर्म नामक देवलोक मे सुधर्मा सभा है, इस प्रकार सारा वर्णन राजप्रश्नीयसूत्र के अनुसार जानना, यावत् पाच अवतसक विमान कहे गए है, यथा—अशोकावतसक यावत् मध्य मे सौधर्मावतसक विमान है। वह सौधर्मावतसक महाविमान लम्बाई और चौडाई मे साढे बारह लाख योजन है।

[गाथार्थ—] (राजप्रश्नीय सूत्रगत) सूर्याभविमान के समान विमान-प्रमाण तथा उपपात, अभिषेक, अलकार तथा अर्चनिका, यावत् आत्मरक्षक इत्यादि सारा वर्णन सूर्याभदेव के समान जानना चाहिए। उसकी स्थिति (आयु) दो सागरोपम की है।

२. सक्के णं भंते ! देविंदे देवराया केमहिड्ढीए जाव[2] केमहासोक्खे ?

गोयमा ! महिड्ढीए जाव महासोक्खे, से णं तत्थ बत्तीसाए विमाणवाससयसहस्साणं जाव विहरति, एमहिड्ढीए जाव[3] एमहासोक्खे सक्के देविंदे देवराया।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

॥ दसमे सए छट्ठो उद्देसओ समत्तो ॥१०.६॥

---

१ जाव पद सूचित पाठ—"सत्तवण्णवडेंसए चंपयवडेंसए चूयवडेंसए।" अ वृ

२ जाव पद सूचित पाठ—"केमहज्जुइए केमहाणुभागे केमहायसे केमहाबले त्ति।" अ वृ

३ जाव पद सूचित पाठ—"चउरासीए सामाणियसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं जाव अन्नेसिं च बहूणं जाव देवाणं देवीण य आहेवच्चं जाव करेमाणे पालेमाणे त्ति।" —अ वृ

[२ प्र] भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र कितनी महती ऋद्धि वाला यावत् कितने महान् सुख वाला है ?

[२ उ] गौतम ! वह महा-ऋद्धिशाली यावत् महासुख-सम्पन्न है। वह वहाँ बत्तीस लाख विमानो का स्वामी है, यावत् विचरता है। देवेन्द्र देवराज शक्र इस प्रकार की महाऋद्धि-सम्पन्न और महासुखी है।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है !', इस प्रकार कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरण करते है।

विवेचन—सूर्याभ के अतिदेशपूर्वक शक्रेन्द्र तथा उसकी सुधर्मासभा आदि का वर्णन—राजप्रश्नीयसूत्र मे सूर्याभदेव का विस्तृत वर्णन है। यहाँ शकेन्द्र के उपपात आदि के वर्णन के लिए उसी का अतिदेश किया गया है। अत इसका समग्र वर्णन सूर्याभदेववत् समझना चाहिए। यहाँ पिछले सूत्र मे सूर्याभदेववत् शक्र की ऋद्धि, सुख, द्युति आदि का वर्णन किया गया है।[1]

॥ दशम शतक छठा उद्देशक समाप्त ॥

□□

---

१ (क) राजप्रश्नीयसूत्र (गुर्जरग्रन्थ) पृ १७२-७४
(ख) वियाहप (मू पा टि), भा २, पृ ५०४

सत्तमाइ-चोत्ती इम पज ता उद्दे ।

सातवें से चौतीसवें तक के उद्देशक

उत्तर-अंतरदीवा : उत्तरवर्ती (अट्ठाईस) अन्तर्द्वीप

१. कहि ण भते ! उत्तरिल्लाण एगोरुयमणुस्साण एगोरुयदीवे नाम दीवे पन्नत्ते ? एव जहा जीवाभिगमे तहेव निरवसेस जाव सुद्धदतदीवो त्ति । एए अट्ठावीस उद्देसगा भाणियव्वा ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति जाव विहरति ।

॥ दसमे सए सत्तमाइ-चोत्तीसइम पज्जता उद्देसा समत्ता ॥१०. ७-३४॥

॥ दसम सय समत्तं ॥

[१ प्र] भगवन् ! उत्तरदिशा मे रहने वाले एकोरुक मनुष्यो का एकोरुकद्वीप नामक द्वीप कहाँ है ?

[१ उ] गौतम ! एकोरुकद्वीप से लेकर यावत् शुद्धदन्तद्वीप तक का समस्त वर्णन जीवाभिगमसूत्र मे कहे अनुसार जानना चाहिए । (प्रत्येक द्वीप के सम्बन्ध मे एक-एक उद्देशक है ।) इस प्रकार अट्ठाईस द्वीपो के ये अट्ठाईस उद्देशक कहने चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ! भगवन् ! यह इसी प्रकार है !', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करते है ।

विवेचन—उत्तरदिशावर्ती अट्ठाईस अन्तर्द्वीप—प्रस्तुत सूत्र मे उत्तरदिग्वर्ती अट्ठाईस अन्तर्द्वीपो का निरूपण जीवाभिगमसूत्र के अतिदेशपूर्वक किया गया है ।

इससे पूर्व नौवे शतक के तीसरे से तीसवे उद्देशक तक मे दक्षिणदिशा के अन्तर्द्वीपो का वर्णन किया जा चुका है । प्रस्तुत दशम शतक के ७ वे से ३४ वे उद्देशक तक मे उत्तरदिशा के अन्तर्द्वीपो का निरूपण किया गया है, जो दक्षिणदिग्वर्ती अन्तर्द्वीपो के ही समान है । २८ नाम भी समान है ।[1]

॥ दशम शतक : सातवें से चौतीसवें उद्देशक तक सम्पूर्ण ॥

॥ दशम शतक सम्पूर्ण ॥

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ५०५

(ख) जीवाभिगमसूत्र प्रतिपत्ति ३, उद्देशक १, पत्र १४४-५६ (आगमोदय) मे विस्तृत वर्णन देखिये

अ ध्या काल

[स्व० आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म० द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत]

स्वाध्याय के लिए आगमो मे जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रो का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल मे स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियो मे भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायो का उल्लेख करते है। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थो का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या सयुक्त होने के कारण, इन का भी आगमो मे अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि—

दसविधे अतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, त जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते असज्झातिते, त जहा—अट्ठी, मस, सोणिते, असुतिसामते, सुसाणसामते, चदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अतो ओरालिए सरीरगे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गथाण वा, निग्गथीण वा चउहिं महापाडिवएहिं सज्झाय करित्तए, त जहा—आसाढपाडिवए, इदमहापाडिवए, कत्तिअपाडिवए, सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चउहिं सझाहिं सज्झाय करेत्तए, त जहा—पडिमाते, पच्छिमाते, मज्झण्हे, अड्ढरत्ते। कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चाउक्काल सज्झाय करेत्तए, त जहा—पुव्वण्हे, अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान ४, उद्देश २

उपरोक्त सूत्रपाठ के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गए हैं। जिनका सक्षेप मे निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे—

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१. उल्कापात-तारापतन—यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र-स्वाध्याय नही करना चाहिए।

२ दिग्दाह—जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पड़े कि दिशा मे आग सी लगी है, तब भी स्वाध्याय नही करना चाहिए।

३ गर्जित—बादलो के गर्जन पर दो प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

४ विद्युत्—बिजली चमकने पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

किन्तु गर्जन और विद्युत् का अस्वाध्याय चातुर्मास मे नही मानना चाहिए। क्योकि वह

गर्जन और विद्युत् प्राय ऋतु स्वभाव से ही होता है। अत आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नही माना जाता।

५. निर्घात—बिना बादल के आकाश मे व्यन्तरादिकृत घोर गर्जन होने पर, या वादलो सहित आकाश मे कडकने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।

६. यूपक—शुक्ल पक्ष मे प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया को सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनो प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

७. यक्षादीप्त—कभी किसी दिशा मे बिजली चमकने जैसा, थोडे थोडे समय पीछे जो प्रकाश होता है, वह यक्षादीप्त कहलाता है। अत आकाश मे जव तक यक्षाकार दीखता रहे तव तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

८. धूमिका-कृष्ण—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघो का गर्भमास होता है। इसमे धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धु ध पडती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जव तक यह धु ध पडती रहे, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

९. मिहिकाश्वेत—शीतकाल मे श्वेत वर्ण का सूक्ष्म जलरूप धुन्ध मिहिका कहलाती है। जव तक यह गिरती रहे, तव तक अस्वाध्याय काल है।

१०. रज उद्‌घात—वायु के कारण आकाश मे चारो ओर धूलि छा जाती है। जव तक यह धूलि फैली रहती है, स्वाध्याय नही करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के है।

औदारिक सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३ हड्डी मांस और रुधिर—पचेन्द्रिय तिर्यच की हड्डी, मास और रुधिर यदि सामने दिखाई दे, तो जव तक वहाँ से यह वस्तुएँ उठाई न जाएँ तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओ के होने पर अस्वाध्याय मानते है।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि, मास और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन-रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एव बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमश सात एव आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४. अशुचि—मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५ श्मशान—श्मशानभूमि के चारो ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६. चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम वारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

१७. सूर्यग्रहण—सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमश आठ, वारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८. पतन—किसी बडे मान्य राजा अथवा राष्ट्रपुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसस्कार न हो, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए। अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो, तब तक शनै शनै स्वाध्याय करना चाहिए।

१९. राजव्युद्ग्रह—समीपस्थ राजाओ मे परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक और उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नही करे।

२०. औदारिक शरीर—उपाश्रय के भीतर पचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पडा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पडा हो तो स्वाध्याय नही करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिक शरीर सम्बन्धी कहे गये है।

२१-२८. चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा—आषाढ-पूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चैत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव है। इन पूर्णिमाओ के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते हैं। इनमे स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९-३२. प्रातः, साय, मध्याह्न और अर्धरात्रि—प्रात सूर्य उगने से एक घडी पहिले तथा एक घडी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घडी पहले तथा एक घडी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर मे एक घडी आगे और एक घडी पीछे एव अर्धरात्रि मे भी एक घडी आगे तथा एक घडी पीछे स्वाध्याय नही करना चाहिए।

□□

श्री आगम प्रका   समिति, ब्यावर

अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

१ श्री सेठ मोहनमलजी चोरडिया, मद्रास
२ श्री गुलाबचन्दजी मागीलालजी सुराणा, सिकन्दराबाद
३ श्री पुखराजजी शिशोदिया, ब्यावर
४ श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरडिया, बैंगलोर
५ श्री प्रेमराजजी भवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
६ श्री एस किशनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
७ श्री कवरलालजी बैताला, गोहाटी
८ श्री सेठ खीवराजजी चोरडिया, मद्रास
९ श्री गुमानमलजी चोरडिया, मद्रास
१० श्री एस बादलचन्दजी चोरडिया, मद्रास
११ श्री जे दुलीचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१२ श्री एस रतनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१३ श्री जे. अन्नराजजी चोरडिया, मद्रास
१४ श्री एस सायरचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१५ श्री आर शान्तिलालजी उत्तमचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१६ श्री सिरेमलजी हीराचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१७. श्री जे हुक्मीचन्दजी चोरडिया, मद्रास

स्तम्भ सदस्य

१ श्री अगरचन्दजी फतेचन्दजी पारख, जोधपुर
२ श्री जसराजजी गणेशमलजी सचेती, जोधपुर
३ श्री तिलोकचदजी सागरमलजी सचेती, मद्रास
४ श्री पूसालालजी किस्तूरचदजी सुराणा, कटंगी
५ श्री आर प्रसन्नचन्दजी चोरडिया, मद्रास
६ श्री दीपचन्दजी बोकडिया, मद्रास
७ श्री मूलचन्दजी चोरडिया, कटगी
८ श्री वर्द्धमान इण्डस्ट्रीज, कानपुर
९ श्री मागीलालजी मिश्रीलालजी सचेती, दुर्ग

सरक्षक

१ श्री बिरदीचदजी प्रकाशचदजी तलेसरा, पाली
२ श्री ज्ञानराजजी केवलचन्दजी मूथा, पाली
३ श्री प्रेमराजजी जतनराजजी मेहता, मेडता सिटी
४ श्री शा० जडावमलजी माणकचन्दजी बेताला, बागलकोट
५ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपडा, ब्यावर
६ श्री मोहनलालजी नेमीचदजी ललवाणी, चागाटोला
७ श्री दीपचदजी चन्दनमलजी चोरडिया, मद्रास
८ श्री पन्नालालजी भागचन्दजी बोथरा, चागाटोला
९ श्रीमती सिरेकुँवर बाई धर्मपत्नी स्व श्री सुगनचदजी झामड, मदुरान्तकम्
१० श्री बस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा (K G F) जाडन
११ श्री थानचदजी मेहता, जोधपुर
१२ श्री भैरुदानजी लाभचदजी सुराणा, नागौर
१३ श्री खूबचन्दजी गादिया, ब्यावर
१४ श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया, ब्यावर
१५ श्री इन्द्रचदजी बैद, राजनादगाव
१६ श्री रावतमलजी भीकमचदजी पगारिया, बालाघाट
१७ श्री गणेशमलजी धर्मीचदजी काकरिया, टगला
१८ श्री सुगनचन्दजी बोकडिया, इन्दौर
१९ श्री हरकचदजी सागरमलजी बेताला, इन्दौर
२० श्री रघुनाथमलजी लिखमीचदजी लोढा, चागाटोला
२१ श्री सिद्धकरणजी शिखरचन्दजी बैद, चागाटोला

२२ श्री सागरमलजी नोरतमलजी पींचा, मद्रास
२३ श्री मोहनराजजी मुकनचन्दजी बालिया, अहमदाबाद
२४ श्री केशरीमलजी जवरीलालजी तलेसरा, पाली
२५ श्री रतनचदजी उत्तमचदजी मोदी, ब्यावर
२६ श्री धर्मीचदजी भागचदजी बोहरा, झूठा
२७ श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढा, डोडीलोहारा
२८ श्री गुणचदजी दलीचदजी कटारिया, बेल्लारी
२९ श्री मूलचदजी सुजानमलजी सचेती, जोधपुर
३०. श्री सी० अमरचदजी बोथरा, मद्रास
३१. श्री भवरीलालजी मूलचदजी सुराणा, मद्रास
३२ श्री बादलचदजी जुगराजजी मेहता, इन्दौर
३३ श्री लालचदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
३४ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपडा, अजमेर
३५ श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बैंगलोर
३६ श्री भवरीमलजी चोरडिया, मद्रास
३७ श्री भवरलालजी गोठी, मद्रास
३८ श्री जालमचदजी रिखबचदजी बाफना, आगरा
३९ श्री घेवरचदजी पुखराजजी भुरट, गोहाटी
४० श्री जबरचदजी गेलडा, मद्रास
४१ श्री जडावमलजी सुगनचदजी, मद्रास
४२ श्री पुखराजजी विजयराजजी, मद्रास
४३ श्री चेनमलजी सुराणा ट्रस्ट, मद्रास
४४ श्री लूणकरणजी रिखबचदजी लोढा, मद्रास
४५ श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी महेता, कोप्पल

सहयोगी सदस्य

१ श्री देवकरणजी श्रीचन्दजी डोसी, मेडतासिटी
२ श्री छगनीबाई विनायकिया, ब्यावर
३ श्री पूनमचदजी नाहटा, जोधपुर
४ श्री भवरलालजी विजयराजजी काकरिया, विल्लीपुरम्
५ श्री भवरलालजी चौपडा, ब्यावर
६ श्री विजयराजजी रतनलालजी चतर, ब्यावर
७ श्री बी गजराजजी बोकडिया, सलेम
८ श्री फूलचन्दजी गौतमचन्दजी काठेड, पाली
९ श्री के पुखराजजी बाफणा, मद्रास
१० श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, दिल्ली
११ श्री मोहनलालजी मगलचदजी पगारिया, रायपुर
१२ श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१३ श्री भवरलालजी गौतमचन्दजी पगारिया, कुशालपुरा
१४ श्री उत्तमचदजी मागीलालजी, जोधपुर
१५ श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
१६ श्री सुमेरमलजी मेडतिया, जोधपुर
१७ श्री गणेशमलजी नेमीचन्दजी टाटिया, जोधपुर
१८ श्री उदयराजजी पुखराजजी सचेती, जोधपुर
१९ श्री बादरमलजी पुखराजजी बट, कानपुर
२० श्रीमती सुन्दरबाई गोठी W/o श्री जवरीलालजी गोठी, जोधपुर
२१ श्री रायचदजी मोहनलालजी, जोधपुर
२२ श्री घेवरचदजी रूपराजजी, जोधपुर
२३ श्री भवरलालजी माणकचदजी सुराणा, मद्रास
२४ श्री जवरीलालजी अमरचन्दजी कोठारी, ब्यावर
२५ श्री माणकचन्दजी किशनलालजी, मेडतासिटी
२६ श्री मोहनलालजी गुलाबचन्दजी चतर, ब्यावर
२७ श्री जसराजजी जवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
२८ श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
२९ श्री नेमीचदजी डाकलिया मेहता, जोधपुर
३० श्री ताराचदजी केवलचदजी कर्णावट, जोधपुर
३१ श्री आसूमल एण्ड क०, जोधपुर
३२ श्री पुखराजजी लोढा, जोधपुर
३३ श्रीमती सुगनीबाई W/o श्री मिश्रीलालजी साड, जोधपुर
३४ श्री बच्छराजजी सुराणा, जोधपुर
३५ श्री हरकचन्दजी मेहता, जोधपुर
३६ श्री देवराजजी लाभचदजी मेडतिया, जोधपुर
३७ श्री कनकराजजी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
३८ श्री घेवरचन्दजी पारसमलजी टाटिया, जोधपुर
३९ श्री मागीलालजी चोरडिया, कुचेरा

४० श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
४१ श्री श्रोकचंदजी हेमराज जी सोनी, दुर्ग
४२ श्री सूरजकरणजी सुराणा, मद्रास
४३ श्री घीसूलालजी लालचदजी पारख, दुर्ग
४४ श्री पुखराजजी बोहरा, (जैन ट्रान्सपोर्ट क) जोधपुर
४५ श्री चम्पालालजी सकलेचा, जालना
४६ श्री प्रेमराजजी मीठालालजी कामदार, बैंगलोर
४७ श्री भवरलालजी मूथा एण्ड सन्स, जयपुर
४८ श्री लालचदजी मोतीलालजी गादिया, बैंगलोर
४९ श्री भवरलालजी नवरत्नमलजी साखला, मेट्टूपालियम
५० श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुल्ली
५१ श्री श्रासकरणजी जसराज जी पारख, दुर्ग
५२ श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
५३ श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेडतासिटी
५४ श्री घेवरचदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
५५ श्री मागीलालजी रेखचदजी पारख, जोधपुर
५६ श्री मुन्नीलालजी मूलचदजी गुलेच्छा, जोधपुर
५७ श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
५८ श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेडता सिटी
५९ श्री भवरलालजी रिखबचदजी नाहटा, नागौर
६० श्री मागीलालजी प्रकाशचन्दजी रूणवाल, मैसूर
६१ श्री पुखराजजी बोहरा, पीपलिया
६२ श्री हरकचदजी जुगराजजी बाफना, बैंगलोर
६३ श्री चन्दनमलजी प्रेमचदजी मोदी, भिलाई
६४ श्री भीवराजजी बाघमार, कुचेरा
६५ श्री तिलोकचदजी प्रेमप्रकाशजी, श्रजमेर
६६ श्री विजयलालजी प्रेमचदजी गुलेच्छा, राजनादगांव
६७ श्री रावतमलजी छाजेड, भिलाई
६८ श्री भवरलालजी डूगरमलजी काकरिया, भिलाई
६९ श्री हीरालालजी हस्तीमलजी देशलहरा, भिलाई
७० श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावकसघ, दल्ली-राजहरा
७१ श्री चम्पालालजी बुद्धराजजी बाफणा, ब्यावर
७२ श्री गगारामजी इन्द्रचदजी बोहरा, कुचेरा
७३ श्री फतेहराजजी नेमीचदजी कर्णावट, कलकत्ता
७४ श्री बालचदजी थानचन्दजी भुरट, कलकत्ता
७५ श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७६ श्री जवरीलालजी शातिलालजी सुराणा, बोलारम
७७ श्री कानमलजी कोठारी, दादिया
७८ श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
७९ श्री माणकचदजी रतनलालजी मुणोत, टगला
८० श्री चिम्मनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढा, ब्यावर
८१ श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गौहाटी
८२ श्री पारसमलजी महावीरचदजी बाफना, गोठन
८३ श्री फकीरचदजी कमलचदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
८४ श्री माँगीलालजी मदनलालजी चोरडिया भैरूदा
८५ श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
८६ श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जवरीलालजी कोठारी, गोठन
८७ श्री सरदारमलजी एन्ड कम्पनी, जोधपुर
८८ श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा, जोधपुर
८९ श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
९० श्री इन्द्रचन्दजी मुकन्दचन्दजी, इन्दौर
९१ श्री भवरलालजी बाफणा, इन्दौर
९२ श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
९३ श्री बालचन्दजी श्रमरचन्दजी मोदी, ब्यावर
९४. श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भडारी
९५ श्री कमलाकवर ललवाणी धर्मपत्नी श्री स्व. पारसमलजी ललवाणी, गोठन
९६ श्री श्रखेचदजी लूणकरणजी भण्डारी, कलकत्ता
९७ श्री सुगनचन्दजी सचेती, राजनादगाँव

९८ श्री प्रकाशचदजी जैन, भरतपुर
९९ श्री कुशालचदजी रिखवचदजी सुराणा, बोलारम
१०० श्री लक्ष्मीचदजी अशोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
१०१ श्री गूदडमलजी चम्पालालजी, गोठन
१०२ श्री तेजराज जी कोठारी, मागलियावास
१०३ श्री सम्पतराजजी चोरडिया, मद्रास
१०४ श्री अमरचदजी छाजेड, पादु बडी
१०५ श्री जुगराजजी धनराजजी बरमेचा, मद्रास
१०६ श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
१०७ श्रीमती कचनदेवी व निर्मलादेवी, मद्रास
१०८ श्री दुलेराजजी भवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१०९ श्री भवरलालजी मागीलालजी वेताला, डेह
११० श्री जीवराजजी भवरलालजी, चोरडिया भैरूदा
१११ श्री मॉगीलालजी शातिलालजी रूणवाल, हरसोलाव
११२ श्री चादमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११३ श्री रामप्रसन्न ज्ञानप्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
११४ श्री भूरमलजी दुल्लीचदजी बोकडिया, मेडता सिटी
११५ श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली
११६ श्रीमती रामकुवरवाई धर्मपत्नी श्री चादमलजी लोढा, बम्बई
११७ श्री मॉगीलालजी उत्तमचदजी वाफणा, वेंगलोर
११८ श्री साचालालजी वाफणा, औरगावाद
११९ श्री भीकमचन्दजी माणकचन्दजी खाबिया, (कुडालोर) मद्रास
१२० श्रीमती अनोपकु वर धर्मपत्नी श्री चम्पालालजी सघवी, कुचेरा
१२१ श्री सोहनलालजी सोजतिया, थावला
१२२ श्री चम्पालालजी भण्डारी, कलकत्ता
१२३ श्री भीकमचदजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
१२४ श्री पुखराजजी किशनलालजी तातेड, सिकन्दराबाद
१२५ श्री मिश्रीलालजी सज्जनलालजी कटारिया, सिकन्दराबाद
१२६ श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ, बगडीनगर
१२७ श्री पुखराजजी पारसमलजी ललवाणी, बिलाडा
१२८ श्री टी पारसमलजी चोरडिया, मद्रास
१२९. श्री मोतीलालजी आसूलालजी बोहरा एण्ड क, बेगलोर
१३० श्री सम्पतराजजी सुराणा, मनमाड

□□